जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-घासीलालजी-महाराज-

विरचितयाऽऽआचारचिन्तामणि-व्याख्यया समलङ्कृतं

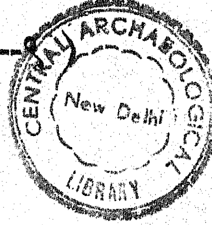
हिन्दीगुर्जरभाषाऽनुवादसहितम्-

आचाराङ्गसूत्रम् ।

ACHARANGA SUTRA

(तृतीयो भागः अध्य० ५-९)

[प्रथमः श्रुतस्कन्धः]



नियोजक :

संस्कृत-प्राकृतज्ञ-जैनागमनिष्णात-प्रियव्याख्यानि-

पण्डित-मुनिश्रीकन्हैयालालजी-महाराजः

प्रकाशकः

अ० भा० श्वे० स्था० जैनशास्त्रोद्धारसमितिप्रमुखः

श्रेष्ठि-श्री-शान्तिलाल-मङ्गलदासभाई-महोदयः

मु० राजकोट

मूल्यम् रु. १०-०-०

મળવાનું ઠેકાણું:
શ્રી. અ. ભા. શ્વે. સ્થાનકવાસી
જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ
ગ્રીન લૉજ પાસે, રાજકોટ

*
પ્રથમ આવૃત્તિ : પ્રત ૧૦૦૦
વીર સંવત : ૨૪૮૩
વિક્રમ સંવત: ૨૦૧૩
ઈસ્વી સન : ૧૯૫૭
*

: મુદ્રક :
મણિલાલ છગનલાલ શાહ
ધી નવપ્રભાત પ્રિન્ટીંગ પ્રેસ
ઘીકાંટા રોડ : : અમદાવાદ

રૂા. ૧૦,૦૦૦) આપનાર આદ્ય મુરબ્બી
સમિતિના પ્રમુખ; દાનવીર શેઠશ્રી,



શેઠ શાંતિલાલ મંગળદાસભાઈ
અમદાવાદ.

શ્રી-વર્ધમાન-શ્રમણ-સંઘના આચાર્યશ્રી

પૂજ્ય આત્મારામજી મહારાજશ્રીએ

આપેલ

સમ્મતિપત્ર

*

ઉપરાંત

પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ-રચિત

બીજા સૂત્રોની ટીકા માટે તેઓશ્રીના મંતવ્યો

*

તેમજ

અન્ય મહાત્માઓ, મહાસતીજીઓ, અદ્યતન-પદ્ધતિવાળા કોલેજના પ્રોફેસરો

તેમજ

શાસ્ત્રજ્ઞ શ્રાવકોના અભિપ્રાયો

ઠે. ગ્રીન લૉજ પાસે
ગરેડીયા કુવારોડ
રાજકોટ : સૌરાષ્ટ્ર

શ્રી અખિલ ભારત શ્વે. સ્થા. જૈન.
શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ

जैनागमवेत्ता जैनधर्मदिवाकर उपाध्याय श्री १००८ श्री आत्मारामजी महाराज तथा न्याय व्याकरणके ज्ञाता परम पण्डित मुनिश्री १००७ श्रीहेमचन्द्रजी महाराज, इन दोनों महात्माओंका दिया हुआ श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रका प्रमाण पत्र निम्न प्रकार है—

सम्मइवत्तं

सिरि-वीरनिव्वाण-संवच्छर २४५८ आसोई

(पुण्णमासी) १५ सुक्कवारो लुहियाणाओ।

मए मुणिहेमचंदेण य पंडियरयणमुणिसिरि-घासीलालविणिम्मिया सिरिउवासगसुत्तस्स अगारधम्मसंजीवणीनामिया वित्ती पंडियमूलचन्दवासाओ अज्जोवंतं सुया, समीईणं, इयं वित्ती जहाणामं तहा गुणेवि धारेइ, सच्चं अगाराणं तु इमा जीवण (संजमजीवण) दाई एव अत्थि। वित्तिकत्तुणा मूलसुत्तस्स भावो उज्जुसेलीओ फुडीकओ, अहय उवासयस्स सामण्णविसेसधम्मो, णयसियवायवाओ, कम्मपुरिसट्ठवाओ, समणोवासयस्स धम्मदढया य, इच्चाइविसया अस्सिं फुडरीइओ वण्णिया, जेण कत्तणो पडिहाए सुठुप्पयारेण परिचओ होइ, तह इइहासदिट्ठिओवि सिरिसमणस्स भगवओ महावीरस्स समए वट्टमाण–भरहवासस्स य कत्तुणा विसयप्पयारेण चित्तं चित्तियं, पुणो सक्कयपाढीणं, वट्टमाणकाले हिन्दीणामियाए भासाए भासीणं य परमोवयारो कडो, इमेण कत्तुणो अरिहत्ता दीसइ, कत्तुणो एयं कज्जं परमप्पसंसणिज्जमत्थि। पत्तेयजणस्स मज्झत्थभावाओ अस्स सुत्तस्स अवलोयणमईव लाहप्पयं, अवि उ सावयस्स तु (उ) इमं सत्थं सव्वस्समेव अत्थि, अओ कत्तुणो अणेगकोडीसो धन्नवाओ अत्थि, जेहिं अच्चंतपरिस्समेण जइणजणतोवरि असीमोवयारो कडो, अह य सावयस्स वारस नियमा उ पत्तेयजणस्स पढणिज्जा अत्थि, जेसिं पहावओ वा गहणाओ आया निव्वाणाहिगारी भवइ, तहा भवियव्वयावाओ पुरिसक्कारपरक्कमवाओ य अवस्समेव दंसणिज्जो, किंबहुणा इमीए वित्तीए पत्तेयविसयस्स फुडसद्देहिं वण्णणं कयं, जइ अन्नोवि एवं अम्हाणं पसुत्तप्पाए समाजे विज्जं भवेज्जा तया नाणस्स चरित्तस्स तहा संघस्स य खिप्पं उदयो भविस्सइ, एवं हं मन्ने॥

भवईओ–

उवज्झाय--जइणमुणि–आयाराम,-पंचनईओ,

सम्मतिपत्र

(भाषान्तर)

श्री वीरनिर्वाण सं० २४५८ आसोज
शुक्ला (पूर्णिमा) १५ शुक्रवार लुधियाना

मैंने और पंडितमुनि हेमचन्द्जीने पंडितरत्नमुनिश्री घासीलाल-जीकी रची हुई उपासकदशांग सूत्रकी गृहस्थधर्मसंजीवनी नामक टीका पंडित मूलचन्द्रजी व्याससे आद्योपान्त सुनी है। यह वृत्ति यथानाम तथागुणवाली-अच्छी बनी-है। सच यह गृहस्थोंके तो जीवनदात्री-संयमरूप जीवनको देनेवाली-ही है। टीकाकारने मूलसूत्र के भावको सरल रीतिसे वर्णन किया है, तथा श्रावकका सामान्य धर्म क्या है? और विशेष धर्म क्या है? इसका खुलासा इस टीकामें अच्छे ढंगसे बतलाया है। स्याद्वादका स्वरूप कर्म-पुरुषार्थ-वाद और श्रावकको धर्मके अन्दर दृढ़ता किस प्रकार रखना, इत्यादि विषयोंका निरूपण इसमें भलीभांति किया है। इससे टीकाकारकी प्रतिभा खूब झलकती है। ऐतिहासिक दृष्टिसे श्रमण भगवान् महावीरके समय जैनधर्म किस जाहोजहाली पर था? और वर्तमान समय जैनधर्म किस स्थितिमें पहुंचा? इस विषयका तो ठीक चित्र ही चित्रित कर दिया है। फिर संस्कृत जाननेवालोंको तथा हिन्दीभाषाके जाननेवालोंको भी पुरा लाभ होगा, क्योंकि टीका संस्कृत है उसकी सरल हिन्दी कर दी गई है। इसके पढनेसे कर्ताकी योग्यताका पता लगता है कि वृत्तिकारने समझानेका कैसा अच्छा प्रयत्न किया है। टीकाकारका यह कार्य परम प्रशंसनीय है। इस सूत्रको मध्यस्थ भावसे पढने वालोंको परम लाभकी प्राप्ति होगी। क्या कहें श्रावकों (गृहस्थों) का तो यह सूत्र सर्वस्व ही है, अतः टीकाकारको कोटिशः धन्यवाद दिया जाता है, जिन्होंने अत्यन्त परिश्रमसे जैनजनताके ऊपर असीम उपकार किया है। इसमें श्रावकके बारह नियम प्रत्येक पुरुषके पढने योग्य हैं, जिनके प्रभावसे अथवा यथायोग्य ग्रहण करनेसे आत्मा मोक्षका अधिकारी होता है, तथा भवितव्यतावाद और पुरुषकार-

पराक्रमवाद हरएकको अवश्य देखना चाहिये। कहां तक कहें इस टीकामें प्रत्येक विषय सम्यक् प्रकारसे बताये गये हैं। हमारी सुसप्राय (सोई हुईसी) समाजमें अगर आप जैसे योग्य विद्वान् फिर भी कोई होंगे तो ज्ञानचारित्र तथा श्रीसंघका शीघ्र उदय होगा, ऐसा मैं मानता हुँ–

आपका

उपाध्याय जैनमुनि आत्माराम पंजाबी.



इसी प्रकार लाहोरमें बिराजते हुए पण्डितवर्य विद्वान् मुनिश्री १००८ श्री भागचन्दजी महाराज तथा पं० मुनिश्री त्रिलोकचन्दजी महाराजके दिये हुए, श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रके प्रमाणपत्रका हिन्दी सारांश निम्न प्रकार है–

श्री श्री स्वामी घासीलालजी महाराज कृत श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रकी संस्कृत टीका व भाषाका अवलोकन किया, यह टीका अतिरमणीय व मनोरञ्जक है, इसे अपने बडे परिश्रम व पुरुषार्थसे तय्यार किया है सो आप धन्यवादके पात्र हैं। आप जैसे व्यक्ति-योंकी समाजमें पूर्ण आवश्यकता है। आपकी इस लेखनीसे समाजके विद्वान् साधुवर्ग पढ कर पूर्ण लाभ उठावेंगे, टीकाके पढनेसे हमको अत्यानन्द हुवा, और मनमें ऐसे विचार उत्पन्न हुए कि हमारी समाजमें भी ऐसे २ सुयोग्य रत्न उत्पन्न होने लगे–यह एक हमारे लिये बडे गौरवकी बात है।

वि. सं. १९८९ मा. आश्विन
कृष्णा १३ वार भौम लाहोर.



श्री ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्र की 'अनगारधर्माऽमृतवर्षिणी' टीका पर
जैनदिवाकर साहित्यरत्न जैनागमरत्नाकर परमपूज्य श्रद्धेय
जैनाचार्य श्री आत्मारामजी महाराजका

सम्मतिपत्र

लुधियाना, ता. ४-८-५१

मैंने आचार्यश्री घासीलालजी म. द्वारा निर्मित 'अनगार-धर्माऽमृत-वर्षिणी' टीका वाले श्री ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्रका मुनिश्री रत्नचन्द्रजीसे आद्योपान्त श्रवण किया।

यह निःसन्देह कहना पड़ता है कि यह टीका आचार्यश्री घासीलालजी म. ने बडे परिश्रम से लिखी है। इसमें प्रत्येक शब्दका प्रामाणिक अर्थ और कठिन स्थलों पर सार-पूर्ण विवेचन आदि कई एक विशेषतायें हैं। मूल स्थलोंको सरल बनानेमें काफी प्रयत्न किया गया है, इससे साधारण तथा असाधारण सभी संस्कृतज्ञ पाठकोंको लाभ होगा ऐसा मेरा विचार है।

मैं स्वाध्यायप्रेमी सज्जनों से यह आशा करूंगा कि वे वृत्तिकारके परिश्रम को सफल बना कर शास्त्रमें दी गई अनमोल शिक्षाओं से अपने जीवनको शिक्षित करते हुए परमसाध्य मोक्षको प्राप्त करेंगे।

श्रीमान्‌जी जयवीर

आपकी सेवामें पोष्ट द्वारा पुस्तक भेज रहे हैं और इस पर आचार्यश्रीजी की जो सम्मति है वह इस पत्रके साथ भेज रहे हैं पहुंचने पर समाचार देवें।

श्री आचार्यश्री आत्मारामजी म. ठाने ६ सुखशान्तिसे विराजते हैं। पूज्य श्री घासीलालजी म. सा. ठाने ४ को हमारी ओरसे वन्दना अर्जकर सुखशाता पूछें।

पूज्य श्री घासीलालजी म. जी का लिखा हुआ (विपाकसूत्र) महाराजश्रीजी देखना चाहते हैं इसलिये १ कापी आप भेजनेकी कृपा करें; फिर आपको वापिस भेज देवेंगे। आपके पास नहीं हो तो जहांसे मिले वहांसे १ कापी जरूर भिजवाने का कष्ट करें, उत्तर जल्द देनेकी कृपा करें। योग्य सेवा लिखते रहें।

लुधियाना ता. ४-८-५१

निवेदक
प्यारेलाल जैन

जैनागमवारिधि–जैनधर्मदिवाकर–उपाध्याय–पण्डित–मुनि श्रीआत्मारामजी महाराज (पंजाब) का आचाराङ्गसूत्र की आचारचिन्तामणि टीका पर

सम्मतिपत्र

मैंने पूज्य आचार्यवर्य श्री घासीलालजी (महाराज)की बनाई हुई श्रीमद् आचाराङ्गसूत्रके प्रथम अध्ययन की आचारचिन्तामणि टीका सम्पूर्ण उपयोगपूर्वक सुनी।

यह टीका–न्याय सिद्धान्त से युक्त, व्याकरण के नियम से निबद्ध है। तथा इसमें प्रसङ्ग २ पर क्रमसे अन्य सिद्धान्त का संग्रह भी उचित रूप से मालूम होता है।

टीकाकारने अन्य सभी विषय सम्यक् प्रकार से स्पष्ट किये हैं, तथा प्रौढ विषयोंका विशेषरूप से संस्कृत भाषा में स्पष्टतापूर्वक प्रतिपादन अधिक मनोरंजक है, एतदर्थ आचार्य महोदय धन्यवादके पात्र हैं।

मैं आशा करता हूं कि–जिज्ञासु महोदय इसका भलीभांति पठन–द्वारा जैनागम सिद्धान्तरूप अमृत पी–पी कर मन को हर्षित करेंगे, और इसके मनन से दक्ष जन चार अनुयोगों का स्वरूपज्ञान पावेंगे। तथा आचार्यवर्य इसी प्रकार दूसरे भी जैनागमोंके विशद विवेचन द्वारा श्वेताम्बर–स्थानकवासी समाज पर महान उपकार कर यशस्वी बनेंगे।

वि. सं. २००२
मृगसर सुदि १

जैनमुनि–उपाध्याय आत्माराम
लुधियाना (पंजाब) शुभमस्तु ॥

*

बीकानेरवाळा समाजभूषण शास्त्रज्ञ भेरुदानजी शेठियानो अभिप्राय–

*

आप जो शास्त्रका कार्य कर रहे हैं यह बडा उपकारका कार्य है। इससे जैन जनताको काफी लाभ पहुंचेगा।

(ता. २८–३–५६ना पत्रमांथी)

॥ श्रीः ॥

जैनागमवारिधि-जैनधर्मदिवाकर-जैनाचार्य-पूज्य-श्री आत्मारामजी-
महाराजानां पञ्चनद-(पंजाब) स्थानामनुत्तरोपपातिकसूत्राणा-
मर्थबोधिनीनामकटीकायामिदम्-

सम्मतिपत्रम्

आचार्यवर्यैः श्री घासीलालमुनिभिः सङ्कलिता अनुत्तरोपपातिकसूत्राणामर्थबोधिनीनाम्नी संस्कृतवृत्तिरुपयोगपूर्वकं सकलाऽपि स्वशिष्यमुखेनाऽश्रावि मया, इयं हि वृत्तिर्मुनिवरस्य वैदुष्यं प्रकटयति। श्रीमद्भिर्मुनिभिः सूत्राणामर्थान् स्पष्टयितुं यः प्रयत्नो व्यधायि तदर्थमनेकशो धन्यवादानर्हन्ति ते। यथा चेयं वृत्तिः सरला सुबोधिनी च तथा सारवत्यपि। अस्याः स्वाध्यायेन निर्वाणपदमभीप्सुभिर्निर्वाणपदमनुसरद्भिर्ज्ञान-दर्शन-चारित्रेषु प्रयतमानैर्मुनिभिः श्रावकैश्च ज्ञान-दर्शन-चारित्राणि सम्यक् सम्प्राप्याऽन्येऽप्यात्मानस्तत्र प्रवर्तयिष्यन्ते।

आशासे श्रीमदाशुकविर्मुनिवरो गीर्वाणवाणीजुषां विदुषां मनस्तोषाय जैनागमसूत्राणां सारावबोधाय च अन्येषामपि जैनागमानामित्थं सरलाः सुस्पष्टाश्च वृत्तीर्विधाय तांस्तान् सूत्रग्रन्थान् देवगिरा सुस्पष्टयिष्यति।

अन्ते च "मुनिवरस्य परिश्रमं सफलयितुं सरलां सुबोधिनीं चेमां सूत्रवृत्तिं स्वाध्यायेन सनाथयिष्यन्त्यवश्यं सुयोग्या हंसनिभाः पाठकाः।" इत्याशास्ते—

विक्रमाब्द २००२ श्रावणकृष्णा प्रतिपदा लुधियाना	उपाध्याय आत्मारामो जैनमुनिः

*

(श्री दशवैकालिकसूत्रका सम्मतिपत्र)

॥ श्री वीरगौतमाय नमः ॥

सम्मतिपत्रम् ।

मए पंडियमुणि–हेमचंदेण य पंडिय–मूलचन्दवासवारा पत्ता पंडिय–रयण–मुणि–घासीलालेण विरइया सक्कय–हिंदी–भासाहिं जुत्ता सिरि–दसवेयालिय–नामसुत्तस्स आयारमणिमंजूसा वित्ती अवलोइया, इमा मणोहरा अत्थि, एत्थ सद्दाणं अइसयजुत्तो अत्थो वण्णिओ, विउजणाणं पाययजणाण य परमोवयारिया इमा वित्ती दीसइ। आयारविसए वित्तीकत्तारेण अइसयपुव्वं उल्लेहो कडो, तहा अहिंसाए सरूवं जे जहा–तहा न जाणंति तेसिं इमाए वित्तीए परमलाहो भविस्सइ, कत्तुणा पत्तेयविसयाणं फुडरूवेण वण्णणं कडं, तहा मुणिणो अरहत्ता इमाए वित्तीए अवलोयणाओ अइसय जुत्ता सिज्झइ। सक्कयछाया सुत्तपयाणं पयच्छेओ य सुबोहदायगो अत्थि, पत्तेयजिण्णासुणो इमा वित्ती दट्ठव्वा। अम्हाणं समाजे एरिसविज्ज–मुणिरयणाणं सब्भावो समाजस्स अहोभग्गं अत्थि, किं? उत्तविज्ञमुणिरयणाणं कारणाओ जो अम्हाणं समाजो सुत्तप्पाओ, अम्हकेरं साहिच्चं च लुत्तप्पायं अत्थि तेसिं पुणोवि उदओ भविस्सइ जस्स कारणाओ भवियप्पा मोक्खस्स जोग्गो भवित्ता पुणो निव्वाणं पाविहिइ अओहं आयारमणिमंजूसाए कत्तुणो पुणो पुणो धन्नवायं देमि– ॥

वि. सं. १९९० फाल्गुन–
शुक्लत्रयोदशी मङ्गले
(अलवरस्टेट)

इइ–
उवज्जाय-जइण-मुणी, आयारामो
(पचनईओ)

ऐसे ही :—

मध्यभारत सैलाना–निवासी श्रीमान् रतनलालजी डोसी श्रमणोपासक जैन लिखते हैं कि—

श्रीमान् की की हुई टीकावाला उपासकदशांग सेवक के दृष्टिगत हुवा, सेवक अभी उसका मनन कर रहा है यह ग्रन्थ सर्वाङ्ग–सुन्दर एवम् उच्च कोटि का उपकारक है।

निरयावलिकासूत्रका सम्मतिपत्र
आगमवारिधि-सर्वतन्त्रस्वतंत्र-जैनाचार्य पूज्यश्री
आत्मारामजी महाराजकी तरफका आया हुवा

सम्मतिपत्र

लुधियाना ता. ११ नवम्बर ४८

श्रीयुत् गुलाबचन्दजी पानाचंदजी ! सादर जयजिनेन्द्र ॥

पत्र आपका मिला, निरयावलिका विषय पूज्यश्रीका स्वास्थ्य ठीक न होनेसे उनके शिष्य पं. श्री हेमचन्द्रजी महाराजने सम्मतिपत्र लिख दिया है आपको भेज रहे हैं। कृपया एक कोपी निरयावलिका की और भेज दीजिये और कोई योग्य सेवा कार्य लिखते रहें। !

भवदीय.
गुजरमल-बलवंतराय जैन

॥ सम्मति ॥

(लेखक जैनमुनि पंडित श्री हेमचंद्रजी महाराज)

सुन्दरबोधिनीटीकया समलङ्कृतं हिन्दी-गुर्जर भाषानुवादसहितं च श्रीनिरयावलिकासूत्रं मेधाविनामल्पमेधसां चोपकारकं भविष्यतीति सुदृढं मेऽभिमतम्, संस्कृतटीकेयं सरला सुबोधा सुललिता चात एव अन्वर्थनाम्नी चाप्यस्ति। सुविशदत्वात् सुगमत्वात् प्रत्येकदुर्बोधपद-व्याख्यायुतत्वाच्च टीकैषा संस्कृतसाधारणज्ञानवतामप्युपयोगिनी भाविनीत्यभिप्रैमि । हिन्दी-गुर्जरभाषानुवादावपि एतद्भाषाविज्ञानां महीयसे लाभाय भवेतामिति सम्यक् संभावयामि।

जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-घासीलालजी-महाराजानां परिश्रमोऽयं प्रशंसनीयो धन्यवादार्हाश्च ते मुनिसत्तमाः। एवमेव श्री-समीरमल्लजी-श्री-कन्हैलालजी-मुनिवरेण्ययोर्नियोजनकार्यमपि श्लाघ्यं, तावपि च मुनिवरौ धन्यवादार्हौ स्तः।

सुन्दरप्रस्तावनाविषयानुक्रमादिना समलङ्कृते सूत्ररत्नेऽस्मिन् यदि शब्दकोषोऽपि दत्तः स्यात्तर्हि वरतरं स्यात् । यतोऽस्यावश्यकतां सर्वेऽप्यन्वेषकविद्वांसोऽनुभवन्ति ।

पाठकाः सूत्रस्याध्ययनाध्यापनेन लेखकनियोजकमहोदयानां परिश्रमं सफलयिष्यन्तीत्याशास्महे। इति।

श्री उपासकदशाङ्ग सूत्र परत्वे जैन समाजना अग्रगण्य जैनधर्मभूषण महान् विद्वान् संतोए तेमज विद्वान् श्रावकोए सम्मतिओ समर्पी छे तेमना नामो नीचे प्रमाणे छे-

(१) लुधियाना-संवत् १९८९, आश्विन पूर्णिमा का पत्र, श्रुतज्ञान के भंडार आगमरत्नाकर जैनधर्मदिवाकर श्री १०००८ श्री उपाध्याय श्री आत्मारामजी महाराज, तथा न्यायव्याकरणवेत्ता श्री १०००७ तच्छिष्य श्री मुनि हेमचन्द्रजी महाराज.

(२) लाहौर-वि० सं० १९८९ आश्विन वदि १३ का पत्र, पण्डितरत्न श्री १००८ श्री भागचंदजी महाराज तथा तच्छिष्य पण्डितरत्न श्री १००७ श्री त्रिलोकचंदजी महाराज.

(३) खिचन-से ता. ९-११-३६ का पत्र, क्रियापात्र स्थविर श्री १००८ श्री भारतरत्न श्री समरथमलजी महाराज.

(४) बालाचोर-ता. १४-११-३६ का पत्र, परम प्रसिद्ध भारतरत्न श्री १००८ श्री शतावधानी श्री रत्नचंदजी महाराज.

(५) बम्बई-ता. १६-११-३६ का पत्र, प्रसिद्ध कवीन्द्र श्री १००८ श्री कवि नानचंद्रजी महाराज.

(६) आगरा-ता. १८-१२-३६, जगत् वल्लभ श्री १००८ जैनदिवाकर श्री चौथमलजी महाराज, गुणवन्त गणीजी श्री १००७ श्री साहित्यप्रेमी श्री प्यारचन्दजी :महाराज.

(७) हैद्राबाद-(दक्षिण) ता. २५-११-३६ का पत्र, स्थिवरपदभूषित भाग्यवान पुरुष श्री ताराचंदजी महाराज, तथा प्रसिद्धवक्ता श्री १००७ श्री सोभागमलजी महाराज.

(८) जयपुर-ता. २७-११-३६ का पत्र, संप्रदाय के गौरववर्धक शांत-स्वभावी श्री १००८ श्री पूज्य श्री खूबचन्दजी महाराज.

(९) अम्बाला-ता. २९-११-३६ का पत्र, परमप्रतापी पंजाबकेशरी श्री १००८ श्री. पूज्य श्री काशीरामजी महाराज.

(१०) सैलाना–ता. २९–११–३६ का पत्र, शास्त्रोंके ज्ञाता श्रीमान् रतनलालजी डोसी.

(११) खीचन–ता. ९–११–३६ का पत्र, पंडितरत्न न्यायतीर्थ सुश्रावक श्रीयुत् माधवलालजी.

सादर जय जिनेन्द्र

आपका भेजा हुवा उपासकदशांग सूत्र तथा पत्र मिला यहां विराजित प्रवर्तक वयोवृद्ध श्री १००८ श्री ताराचंदजी महाराज पण्डित श्री किशनलालजी महाराज आदि ठाणा १४ सुख शांति में विराजमान हैं आपके वहां विराजित जैनशास्त्राचार्य पूज्यपाद श्री १००८ श्री घासीलालजी महाराज आदि ठाणा नव से हमारी वन्दना अर्ज कर सुख शांति पूछे, आपने उपासकदशांग सूत्र के विषय में यहां विराजित मुनिवरों की सम्मति मंगाई उसके विषय में वक्ता श्री सोभागमलजी महाराजने फरमाया है कि वर्तमानमें स्थानकवासी समाजमें अनेकानेक विद्वान् मुनि महाराज मौजूद हैं मगर जैनशास्त्र की वृत्ति रचनेका साहस जैसा घासीलालजी महाराजने किया है वैसा अन्यने किया हो ऐसा नजर नहीं आता। दूसरा यह शास्त्र अत्यन्त उपयोगी तो यों है ही संस्कृत प्राकृत हिंदी और गुजराती भाषा होने से चारों भाषा वाले एक ही पुस्तक से लाभ उठा सकते हैं। जैन समाज में ऐसे विद्वानों का गौरव बढे यही शुभ कामना है। आशा है कि स्थानकवासी संघ विद्वानों की कदर करना सीखेगा।

योग्य लिखें शेष शुभ   भवदीय

जमनालाल रामलाल कीमती

आगरा से—

श्री जैनदिवाकर प्रसिद्ध वक्ता जगद्वल्लभ मुनि श्री चोथमलजी महाराज व पंडितरत्न सुव्याख्यानी गणीजी श्री प्यारचन्द जी महाराज ने इस पुस्तक को अतीव पसन्द की है।

श्रीमान् न्यायतीर्थ पण्डित

माधवलालजी खीचनसे लिखते हैं कि—

उन पंडितरत्न महाभाग्यवंत पुरुषों के सामने उनकी अगाध-तत्त्वगवेषणा के विषय में मैं नगण्य क्या सम्मति दे सकता हूं।

परन्तु—

मेरे दो मित्रों ने जिन्होंने इसको कुछ पढा है बहुत सराहना की है, वास्तव में ऐसे उत्तम व सबके समझने योग्य ग्रन्थों की बहुत आवश्यकता है और इस समाज का तो ऐसे ग्रन्थ ही गौरव बढा सकते हैं। ये दोनों ग्रन्थ वास्तव में अनुपम हैं। ऐसे ग्रन्थरत्नों के सुप्रकाशसे यह समाज अमावास्या के घोर अन्धकारमें दीपावली का अनुभव करती हुई महावीर के अमूल्य वचनों का पान करती हुई अपनी उन्नति में अग्रसर होती रहेगी।

*

ता. २९-११-३६

अम्बाला (पंजाब)

पत्र आपका मिला श्री श्री १००८ पंजाबकेसरी पूज्य श्री काशीरामजी महाराज की सेवा में पढ़ कर सुना दिया। आपकी भेजी हुई उपासदशाङ्गसूत्र तथा गृहिधर्मकल्पतरु की एक २ प्रति भी प्राप्त हुई। दोनों पुस्तकें अति उपयोगी तथा अत्यधिक परिश्रम से लिखी हुई हैं। ऐसे ग्रन्थरत्नों के प्रकाशित करवानेकी बड़ी आवश्यकता है। इन पुस्तकों से जैन तथा अजैन सबका उपकार हो सकता है। आपका यह पुरुषार्थ सराहनीय है।

आपका

शशिभूषण शास्त्री

अध्यापक जैन हाईस्कूल

अम्बाला शहर

शान्तस्वभावी वैराग्यमूर्ति तत्ववारिधि, धैर्यवान श्री जैनाचार्य पूज्यवर श्री श्री १००८ श्री खूबचंदजी महाराज साहेबने सूत्र श्री उपासकदशाङ्गजी को देखा। आपने फरमाया कि पण्डित मुनि घासीलालजी महाराज ने उपासकदशाङ्ग सूत्रकी टीका लिखने में बडा ही परिश्रम किया है। इस समय इस प्रकार प्रत्येक सूत्रोंकी संशोधनपूर्वक सरल टीका और शुद्धहिन्दी अनुवाद होने से भगवान निर्ग्रन्थों के प्रवचनों के अपूर्व रस का लाभ मिल सकता है।

*

बालाचोर से भारतरत्न शतावधानी पंडित मुनिश्री १००८ श्री रतनचन्दजी महाराज फरमाते हैं कि—

उत्तरोत्तर जोतां मूल सूत्रकी संस्कृत टीकाओ रचवामां टीकाकारे स्तुत्य प्रयास कर्यो छे, जे स्थानकवासी समाज माटे मगरूरी लेवा जेवुं छे, वली करांचीना श्री संघे सारा कागळमां अने सारा टाईपमां पुस्तक छपावी प्रगट कर्युं छे जे एक प्रकारनी साहित्य सेवा बजावी छे.

*

बम्बई शहरमें विराजमान कवि मुनि श्री नानचन्दजी महाराजने फरमाया है कि पुस्तक सुन्दर है प्रयास अच्छा है।

*

खीचन से स्थविर क्रियापात्र मुनि श्री रतनचन्दजी महाराज और पंडित रत्न मुनिश्री समर्थमलजी महाराजश्री फराते हैं कि–विद्वान् महात्मा पुरुषोंका प्रयत्न सराहनीय है, जैनागम श्रीमद् उपादशाङ्गसूत्र की टीका, एवं उसकी सरल सुबोधनी शुद्ध हिन्दी भाषा बडी हो सुन्दरता से लिखी है।

*

श्री वीतरागय नमः ।।

श्री श्री श्री १००८ जैनधर्मदिवाकर जैनागमरत्नाकर श्रीमज्जैनाचार्य श्री पूज्य घासीलालजी महाराज चरणवन्दन स्वीकार हो।

अपरञ्च समाचार यह है कि आपके भेजे हुए ९ शास्त्र मास्टर शोभालालजी के द्वारा प्राप्त हुए, एतदर्थ धन्यवाद ! आपश्रीजीने तो ऐसा कार्य किया है जो कि हजारों वर्षो से किसी भी स्थानकवासी जैनाचार्यने नहीं किया।

आपने स्थानकवासीजैनसमाज के ऊपर जो उपकार किया है वह कदापि भुलाया नहीं जा सकता और नहीं भुलाया जा सकेगा।

हम तीनों मुनि भगवान महावीर से अथवा शासनदेव से प्रार्थना करते हैं कि आपकी इस वज्रमयी लेखनीको उत्तरोत्तर शक्तिप्रदान करें ता कि आप जैनसमाज के ऊपर और भी उपकार करते रहें और आप चिरञ्जीवी हों।

हम हैं आपके मुनि तीन

मुनि सत्येन्द्रदेव, मुनि लखपतराय, मुनि पद्मसेन,

*

इतवारी बाजार

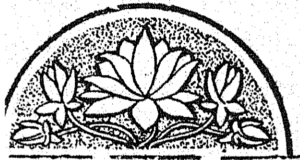
नागपुर ता. १९-१२-५६

प्रखर विद्वान् जैनाचार्य मुनिराज श्री घासीलालजी महाराजद्वारा जो आगमोद्धारा हुआ और हो रहा है सचमुच महाराज श्री का यह स्तुत्य कार्य है। हमने प्रचारकजी के द्वारा नौ सूत्रोंका सेट देखा और कइ मार्मिक स्थलोंको पढा, पढ कर विद्वान मुनिराजश्री की शुद्ध श्रद्धा तथा लेखनीके प्रति हार्दिक प्रसन्नता फूट पडी।

वास्तव में मुनिराज श्री जैन समाज पर ही नहीं इतर समाज पर भी गहरा उपकार कर रहे हैं। ज्ञान किसी एक समाज का नहीं होता वह सभी समाज की अनमोल निधि है जिसे कठिन परिश्रम से तैयार कर जनता के सम्मुख रक्खा जा रहा है, जिसका एक एक सेट हर शहर गांव और घर घर में होना आवश्यक है।

साहित्यरत्न

मोहनमुनि सोहनमुनि जैन



શ્રી દશવૈકાલિક સૂત્રનું સમ્મતિ પત્ર

શ્રમણ સંઘના મહાન આચાર્ય આગમ વારિધિ સર્વતન્ત્રસ્વતંત્ર જૈનાચાર્ય પૂજ્યશ્રી આત્મારામજી મહારાજે આપેલા સમ્મતિપત્રનો ગુજરાતી અનુવાદ.

*

મેં તથા પંડિત મુનિ હેમચંદ્રજીએ પંડિત મુલચંદ વ્યાસ (नागौर मारवाडवाला) દ્વારા મળેલી પંડિત રત્ન શ્રી ઘાસીલાલજી મુનિ વિરચિત સંસ્કૃત અને હિન્દી ભાષા સહિત શ્રી દશવૈકાલિક સૂત્રની આચારમણિમંજૂષા ટીકાનું અવલોકન કર્યું. આ ટીકા સુંદર બની છે. તેમાં પ્રત્યેક શબ્દોનો અર્થ સારી રીતે વિશેષભાવ લઈને સમજાવવામાં આવેલ છે.

તેથી વિદ્વાનો અને સાધારણ બુદ્ધિવાળાઓ માટે ઉપકાર કરવાળી છે. ટીકાકારે મુનિના આચાર વિષયનો સારો ઉલ્લેખ કરેલ છે. જે આધુનિક-મતાવલંબી અહિંસાના સ્વરૂપને નથી જાણતા, દયામાં પાપ સમજે છે તેમને માટે 'અહિંસા શું વસ્તુ છે' તેનું સારી રીતે પ્રતિપાદન કરેલ છે. વૃત્તિકારે સૂત્રના પ્રત્યેક વિષયને સારી રીતે સમજાવેલ છે. આ વૃત્તિના અવલોકનથી વૃત્તિકારની અતિશય યોગ્યતા સિદ્ધ થાય છે.

આ વૃત્તિમાં એક બીજી વિશેષતા એ છે કે મૂલસૂત્રની સંસ્કૃત છાયા હોવાથી સૂત્ર, સૂત્રનાં પદ અને પદચ્છેદ સુબોધદાયક બનેલ છે.

પ્રત્યેક જીજ્ઞાસુએ આ ટીકાનું અવલોકન અવશ્ય કરવું જોઈએ. વધારે શું કહેવું? અમારી સમાજમાં આવા પ્રકારના વિદ્વાન મુનિરત્નનું હોવું એ સમાજનું અહોભાગ્ય છે. આવા વિદ્વાન મુનિરત્નોના કારણે સુપ્તપ્રાય—સુતેલો સમાજ અને લુપ્તપ્રાય એટલે લોપ પામેલું સાહિત્ય એ બન્નેનો ફરીથી ઉદય થશે. અમો વૃત્તિકારને વારંવાર ધન્યવાદ આપીએ છીએ.

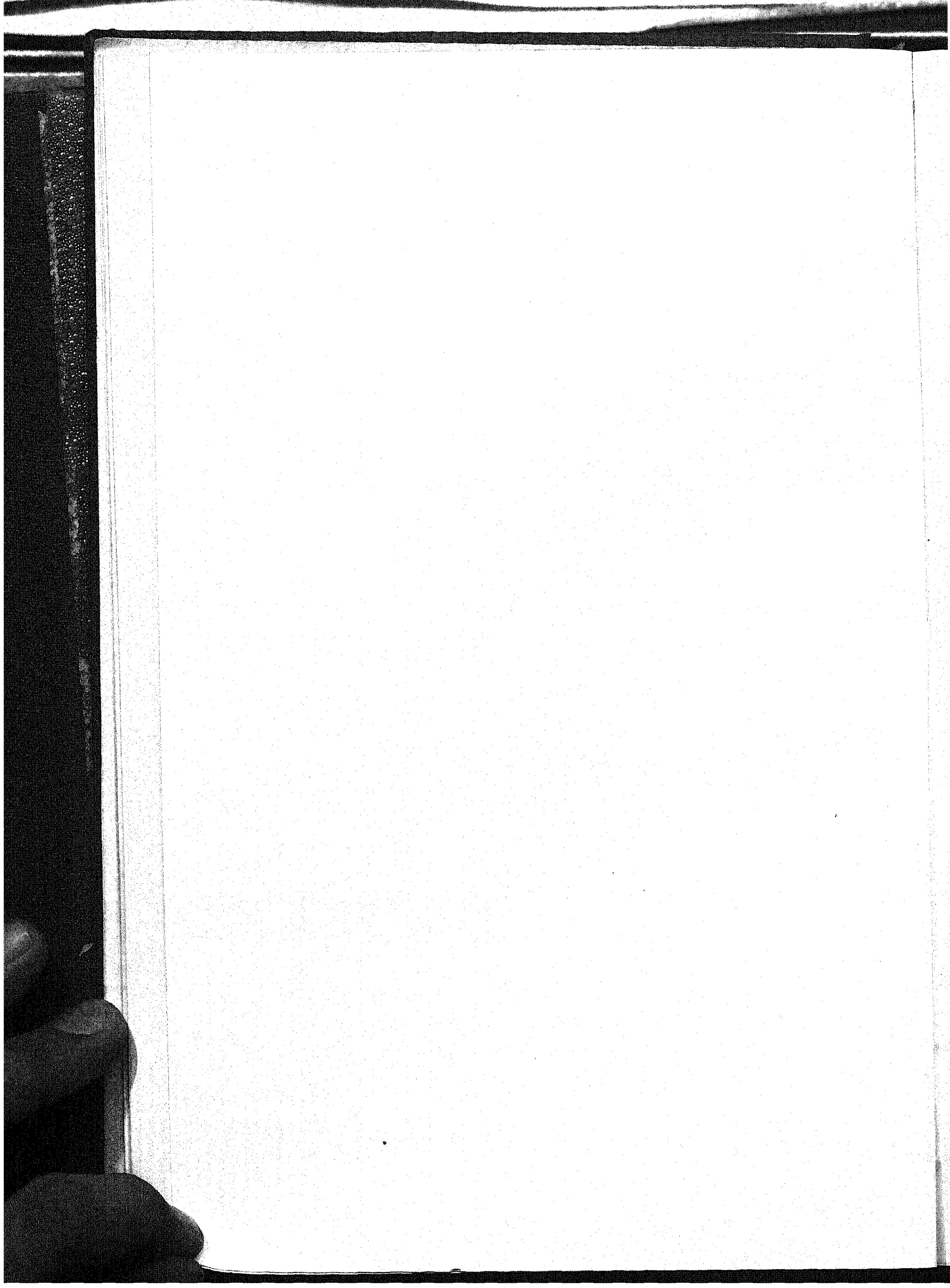
વિક્રમ સંવત ૧૯૯૦ ફાલ્ગુન શુકલ તેરસ મંગળવાર (અલવર સ્ટેટ) } ઈઈ

ઉવજઝાય જઇણિ
મુણી આયારામો
પંચનઈઓ

રૂા. ૬૦૦૦] આપનાર આદ્ય મુરબ્બીશ્રી



શેઠ હરખચંદ કાળીદાસ વારીયા
ભાણવડ.



શ્રમણ સંઘના પ્રચારમંત્રી પંજાબકેશરી મહારાજ **શ્રી પ્રેમચંદજી મહારાજ** જેઓશ્રી રાજકોટમાં પધારેલા હતા ત્યારે તેઓના તરફથી શાસ્ત્રોને માટે મળેલો અભિપ્રાય.

*

શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિ તરફથી પૂજ્યપાદ શાસ્ત્રવારિધિ પંડિતરાજ સ્વામીશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ દ્વારા શાસ્ત્રોદ્ધારનું જે કાર્ય થઈ રહ્યું છે તે કાર્ય જૈનસમાજ તેમાં ખાસ કરીને સ્થાનકવાસીજૈનસમાજને માટે મૂળભૂત મૌલિક સંસ્કૃતિની જડને મજબુત કરવાવાળું છે.

એટલા ખાતર આ કાર્ય અતિ પ્રશંસનીય છે માટે દરેક વ્યક્તિએ તેમાં યથાશક્તિ ભોગ દેવાની ખાસ આવશ્યક્તા છે અને તેથી એ ભગીરથ કાર્ય જલ્દીથી જલ્દી સંપૂર્ણપણે પાર પાડી શકાય અને જનતા શ્રુતજ્ઞાનનો લાભ મેળવી શકે.

*

દરીયાપુર સંપ્રદાયના પૂજ્ય આચાર્યશ્રી ઇશ્વરલાલજી મહારાજ સાહેબના

સૂત્રો સંબંધે વિચારો

નમામિ વીરં ગિરિસારધીરં

પૂજ્યપાદ જ્ઞાનિપ્રવર શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ તથા પંડિતશ્રી કનૈયાલાલજી મહારાજ આદિ થાણા છની સેવામાં—

અમદાવાદ શાહપુર ઉપાશ્રયથી મુનિ દયાનંદજીના ૧૦૮ પ્રણિપાત.

આપ સર્વે થાણાઓ સુખ સમાધિમાં હશો નિરંતર ધર્મધ્યાન ધર્મારાધનામાં લીન હશો.

સૂત્ર પ્રકાશન કાર્ય ત્વરિત થાય એવી ભાવના છે દશવૈકાલિક તથા આચારાંગ એક એક ભાગ અહીં છે. ટીકા ખુબ સુંદર, સરળ અને પંડિતજનોને સુપ્રિય થઈ પડે તેવી છે. સાથે સાથે ટીકા વિનાના મુળ અને અર્થ સાથે પ્રકાશન થાય તો શ્રાવકગણ તેનો વિશેષ લાભ લઈ શકે, અને પૂજ્ય આચાર્ય ગુરૂદેવને આંખે મોતીયો ઉતરાવ્યો છે અને સારૂં છે એજ.

આસો શુદ ૧૦, મંગળવાર, તા. ૨૫-૧૦-૫૫

પુનઃ પુનઃ શાતા ઈચ્છતો,
દયામુનિના પ્રણિપાત.

*

દરીયાપુર સંપ્રદાયના પંડિતરત્ન ભાઇચંદજી મહારાજનો અભિપ્રાય

શ્રી

રાણપુર તા. ૧૯-૧૨-૧૯૫૫

પૂજ્યપાદ જ્ઞાનિપ્રવર પંડિતરત્ન પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહરાજ આદિ મુનિવરોની સેવામાં, આપ સર્વ સુખસમાધીમાં હશો.

સૂત્રપ્રકાશનનું કામ સુંદર થઈ રહ્યું છે તે જાણી અત્યંત આનંદ આપના પ્રકાશિત થયેલાં કેટલાંક સૂત્રો એવાં જોયાં. સુંદર અને સરલ સિદ્ધાંતના ન્યાયને પુષ્ટિ કરતી ટીકા પંડિતરત્નોને સુપ્રિય થઈ પડે તેવી છે. સૂત્રપ્રકાશનનું કામ ત્વરિત પૂર્ણ થાય અને ભવિ આત્માઓને આત્મકલ્યાણ કરવામાં સાધનભૂત થાય એજ અભ્યર્થના.

લી. પંડિતરત્ન બાળબ્રહ્મચારી
પૂ૦ શ્રી ભાઇચંદ મહારાજની
આજ્ઞાનુસાર શાન્તિમુનીના
પાયવંદન સ્વીકારશો.

*

તા. ૧૧-૫-૫૬
વીરમગામ

ગચ્છાધિપતિ પૂજ્ય મહરાજ શ્રી જ્ઞાનચંદ્રજી મહારાજના સંપ્રદાયના આત્માર્થી, ક્રિયાપાત્ર, પંડિતરત્ન, મુનિશ્રી સમરથમલજી મહારાજનો અભિપ્રાય.

ખીચનથી આવેલ તા. ૧૨-૨-૫૬ના પત્રથી ઉદ્ધૃત.

પૂજ્ય આચાર્ય ઘાસીલાલજી મહારાજના હસ્તક જે સૂત્રોનું લખાણ સુંદર અને સરળ ભાષામાં થાય છે તે સાહિત્ય, પંડિત મુનિશ્રી સમરથમલજી મહારાજ સમય ઓછો મળવાને કારણે સંપૂર્ણ જોઈ શકયા નથી. છતાં જેટલું સાહિત્ય જોયું છે, તે બહુ જ સારૂં અને મનન સાથે લખાયેલું છે, તે લખાણ શાસ્ત્ર-આજ્ઞાને અનુરૂપ લાગે છે. આ સાહિત્ય દરેક શ્રદ્ધાળુ જીવોને વાંચવા યોગ્ય છે. આમાં સ્થાનકવાસી સમાજની શ્રદ્ધા, પ્રરૂપણા અને ફરસણાની દૃઢતા શાસ્ત્રાનુકૂળ છે. આચાર્યશ્રી અપૂર્વ પરિશ્રમ લઈ સમાજ ઉપર મહાન ઉપકાર કરે છે.

લી. કિશનલાલ પૃથ્વીરાજ માલુ.
મુ. ખીચન.

*

લીંબડી સંપ્રદાયના સદાનંદી મુનિશ્રી છોટાલાલજી મહારાજનો અભિપ્રાય

શ્રી વીતરાગદેવે જ્ઞાનપ્રચારને તીર્થંકર-નામ-ગોત્ર બાંધવાનું નિમિત્ત કહેલ છે. જ્ઞાનપ્રચાર કરનાર, કરવામાં સહાય કરનાર, અને તેને અનુમોદન આપનાર જ્ઞાનાવરણીય કર્મને ક્ષય કરી કેવળ જ્ઞાનને પ્રાપ્ત કરી પરમપદના અધિકારી બને છે. શાસ્ત્રજ્ઞ, પરમ શાન્ત અને અપ્રમાદી પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ પોતે અવિશ્રાન્તપણે જ્ઞાનની ઉપાસના અને તેની પ્રભાવના અનેક વિકટ પ્રસંગોમાં પણ કરી રહ્યા છે. તે માટે તેઓશ્રી અનેકશઃ ધન્યવાદના અધિકારી છે. વંદનીય છે. તેમની જ્ઞાનપ્રભાવનાની ધગસ ઘણા પ્રમાદિઓને અનુકરણીય છે. જેમ પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ પોતે જ્ઞાન પ્રચાર માટે અવિશ્રાન્ત પ્રયત્ન કરે છે. તેમજ-શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિના કર્યવાહકો પણ એમાં સહાય કરીને જે પવિત્ર સેવા કરી રહેલ છે. તે પણ ખરેખર ધન્યવાદના પૂર્ણ અધિકારી છે.

એ સમિતિના કાર્યકરોને મારી એક સુચના છે કેઃ—

શાસ્ત્રોદ્ધાર પ્રવર પંડિત અપ્રમાદી સંત ઘાસીલાલજી મહારાજ જે શાસ્ત્રોદ્ધારકનું કામ કરી રહેલ છે. તેમાં સહાય કરવા માટે-પંડિતો વિગેરેના માટે જે ખર્ચો થઈ રહેલ છે તેને પહોંચીવળવા માટે સારૂં સરખું ફંડ જોઈએ. એના માટે મારી એ સુચના છે કેઃ-શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિના મુખ્ય કાર્યવાહકોઃ-જો બની શકે તો પ્રમુખ પોતે અને બીજા બે ત્રણ જણાઓ ગુજરાત, સૌરાષ્ટ્ર, અને કચ્છમાં પ્રવાસ કરી મેમ્બરો બનાવે અને આર્થિક સહાય મેળવે.

જો કે અત્યારની પરિસ્થિતિ વિષમ છે. વ્યાપારીઓ, ધંધાદારીઓને પોતાના વ્યવહાર સાચવવા પણ મુશ્કેલ બન્યા છે. છતાં જો સંભવિત ગૃહસ્થો પ્રવાસે નીકળે તો જરૂર કાર્ય સફળ કરે એવી મને શ્રદ્ધા છે.

આર્થિક અનુકૂળતા થવાથી શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ પણ વધુ સરલતાથી થઈ શકે. પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ જ્યાં સુધી આ તરફ વિચરે છે ત્યાં સુધીમાં એમની જ્ઞાનશક્તિનો જેટલો લાભ લેવાય તેટલો લઈ લેવો, કદાચ સૌરાષ્ટ્રમાં વધુ વખત રહેવાથી તેમને હવે બહાર વિહરવાની ઇચ્છા થતી હોય તો શાન્તિભાઈ શેઠ જેવાએ વિનંતિ કરી અમદાવાદ પધારવા, અને ત્યાં અનુકુળતા મુજબ બે-ત્રણ વર્ષની સ્થિરતા કરાવીને તેમની પાસે શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ પૂર્ણ કરાવી લેવું જોઈએ.

થોડા વખતમાં જામજોધપુરમાં શાસ્ત્રોદ્ધારકમીટી મળવાની છે, તે વખતે ઉપરની સૂચના વિચારાય તો ઠીક.

ફરી શાસ્ત્રોદ્ધારક પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજને એમની આ સેવા અને પરમ કલ્યાણકારક પ્રવૃત્તિને માટે વારંવાર અભિનંદન છે. શાસનનાયક દેવ તેમના શરીરાદિને સશક્ત અને દીર્ઘાયુ રાખે જેથી સમાજ ધર્મની વધુ ને વધુ સેવા કરી શકે ૐ અસ્તુ.

ચાતુર્માસ સ્થળ લીંબડી } લી.
સ. ૨૦૧૦ શ્રાવણ વદ ૧૩ ગુરૂ } સદાનંદી જૈનમુનિ છોટાલાલજી

*

શ્રી વર્ધમાન સંપ્રદાયના પૂજ્યશ્રી પુનમચંદ્રજી મહારાજનો અભિપ્રાય

શાસ્ત્રવિશાદ પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજશ્રીએ જૈન આગમો ઉપર જે સંસ્કૃત ટીકા વગેરે રચેલ છે તે માટે તેઓશ્રી ધન્યવાદને પાત્ર છે. તેમણે આગમો ઉપરની સ્વતંત્ર ટીકા રચીને સ્થાનકવાસી જૈન સમાજનું ગૌરવ વધાર્યું છે, આગમો ઉપરની તેમની સંસ્કૃતટીકા ભાષા અને ભાવની દૃષ્ટિએ ઘણી જ સુંદર છે. સંસ્કૃતરચના માધુર્ય તેમજ અલંકાર વગેરે ગુણોથી યુક્ત છે. વિદ્વાનોએ તેમજ જૈન સમાજના આચાર્યો, ઉપાધ્યાયો વગેરે એ શાસ્ત્રો ઉપર રચેલી આ સંસ્કૃતરચનાની કદર કરવી જોઈએ. અને દરેક પ્રકારનો સહકાર આપવો જોઇએ.

આવા મહાન કાર્યમાં પંડિતરત્ન પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ જે પ્રયત્ન કરી રહ્યા છે તે અલૌકિક છે. તેમનું આગમ ઉપરની સંસ્કૃત ટીકા વગેરે રચવાનું ભગીરથકાર્ય શીઘ્ર સફળ થાય એ જ શુભેચ્છા સાથે.

અમદાવાદ
તા. ૨૨–૪–૫૬ રવીવાર } મુનિ પુનમચંદ્રજી
મહાવીર જયંતિ

*

ખંભાત સંપ્રદાયના મહાસતી શારદાબાઈ સ્વામીનો અભિપ્રાય

લખતર તા. ૨૫–૪–૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાંતીલાલભાઈ મંગળદાસભાઈ
પ્રમુખ સાહેબ અખિલ ભારત શ્વે૦ સ્થા૦ જૈન શસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ

મુ. અમદાવાદ

અમો અત્રે દેવગુરૂની કૃપાએ સુખરૂપ છીએ. વિ. મા. આપની સમિતિદ્વારા પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ સાહેબ જે સૂત્રોનું કાર્ય કરે છે તે પૈકીનાં સૂત્રોમાંથી ઉપાસકદશાંગસૂત્ર, આચારાંગસૂત્ર, અનુત્તરોપપતિકસૂત્ર

દશવૈકાલિકસૂત્ર વિગેરે સૂત્રો જોયાં તે સૂત્રો સંસ્કૃત હિન્દી અને ગુજરાતી ભાષાઓમાં હોવાને કારણે વિદ્વાન અને સામાન્ય જનોને ઘણું જ લાભદાયક છે. તે વાંચન ઘણું જ સુંદર અને મનોરંજન છે. આ કાર્યમાં પૂજ્ય આચાર્યશ્રી જે અઘાત પુરૂષાર્થે કાર્ય કરે છે તે માટે વારંવાર ધન્યવાદને પાત્ર છે. આ સૂત્રોથી સમાજને ઘણું લાભનું કારણ છે.

હંસ સમાન બુદ્ધિવાળા આત્માઓ સ્વપરના ભેદથી નિખાલસ ભાવનાએ અવલોકન કરશે તો આ સાહિત્ય સ્થાનકવાસી સમાજ માટે અપૂર્વ અને ગૌરવ લેવા જેવું છે. દરેક ભવ્ય આત્માઓને સૂચન કરૂં છું કે આ સૂત્રો પોતપોતાના ઘરમાં વસાવાની સુંદર તકને ચુકસો નહિ. કારણ આવા શુદ્ધ પવિત્ર અને સ્વપરંપરાને પુષ્ટિરૂપ સૂત્રો મળવાં બહુ મુશ્કેલ છે. આ કાર્યને આપશ્રી તથા સમિતિના અન્ય કાર્યકરો જે શ્રમ લઈ રહ્યા છો તેમાં મહાન નિર્જરાનું કારણ જોવામાં આવે છે તે બદલ ધન્યવાદ. એ જ

લી. **શારદાબાઈ સ્વામી**
ખંભાત સંપ્રદાય.

*

બરવાળા સંપ્રદાયના વિદુષી મહાસતીજી મોંઘીબાઈ સ્વામીનો અભિપ્રાય

ધંધુકા તા. ૨૭-૧-૫૯

શ્રીમાન શેઠ શાન્તીલાલ મંગળદાસભાઈ
પ્રમુખ અ૦ ભા૦ શ્વે૦ સ્થા૦ જૈનશાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ
મુ૦ રાજકોટ

અત્રે બીરાજતા ગુ૦ ગુ૦ના ભંડાર મહાસતીજી વિદુષી મોંઘીબાઈ સ્વામી તથા હીરાબાઈ સ્વામી આદિઠાણાં બન્ને સુખશાતમાં બીરાજે છે. આપને સૂચન છે કે અપ્રમત્ત અવસ્થામાં રહી નિવૃત્તિ ભાવને મેળવી ધર્મધ્યાન કરશો એજ આશા છે.

વિશેષમાં અમને પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના રચેલાં સૂત્રો ભાઈ પોપટ ધનજીભાઈ તરફથી ભેટ તરીકે મળેલાં તે સૂત્રો તમામ આદ્યોપાન્ત વાંચ્યાં મનન કર્યાં અને વિચાર્યાં છે તે સૂત્રો સ્થાનકવાસી સમાજને અને વીતરાગમાર્ગને ખુબ જ ઉન્નત બનાવનાર છે. તેમાં આપણી શ્રદ્ધા એટલી ન્યાયરૂપથી ભરેલી છે તે આપણા સમાજ માટે ગૌરવ લેવા જેવું છે. હંસ સમાન

આત્માઓ જ્ઞાનઝરણાઓથી આત્મરૂપવાડીને વિકસિત કરશે, ધન્ય છે આપને અને સમિતિના કાર્યકરોને જે સમાજ ઉત્થાન માટે કોઈની પણ પરવા કર્યા વગર જ્ઞાનનું દાન ભવ્ય આત્માઓને આપવા નિમિત્તરૂપ થઈ રહ્યા છો. આવા સમર્થ વિદ્વાન પાસેથી સંપૂર્ણ કાર્ય પુરૂં કરાવશો તેવી આશા છે.

એજ લિ૦ બરવાળા સંપ્રદાયના વિદુષી
મહાસતીજી **મોંઘીબાઈ સ્વામી**
ના ફરમાનથી લી. ખોડીદાસ ગણેશભાઈ—ધંધુકા
સ્થાનકવાસી જૈન સંઘના પ્રમુખ

*

અદ્યતન પધ્ધતિને અપનાવનાર વડોદરા કોલેજના એક વિદ્વાન પ્રોફેસરનો અભિપ્રાય

સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયના મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારજ જૈનશાસ્ત્રોના સંસ્કૃત ટીકાબદ્ધ, ગુજરાતીમાં અને હિન્દીમાં ભાષાંતરો કરવાના ઘણા વિકટ કાર્યમાં વ્યાસ થયેલા છે. શાસ્ત્રો પૈકી જે શાસ્ત્રો પ્રસિદ્ધ થયાં છે તે હું જોઈ શકયો છું, મુનિશ્રી પોતે સંસ્કૃત, અર્ધમાગધી હિંદી ભાષાઓના નિષ્ણાત છે. એ એમનો ટુંક પરિચય કરતાં સહજ જણાઈ અવે છે. શાસ્ત્રોનું સંપાદન કરવામાં તેમને પોતાના શિષ્ય વર્ગનો અને વિશેષમાં ત્રણ પંડિતોનો સહકાર મળ્યો છે. તે જોઈ મને આનંદ થયો.સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયના અગ્રેસરોએ પંડિતોનો સહકાર મેળવી આપી,મુનિશ્રીના કાર્યને સરળ અને શિષ્ટ બનાવ્યું છે. સ્થાનકવાસી સમાજમાં વિદ્વત્તા ઘણી ઓછી છે, તે દિગંબર મૂર્તિપૂજક શ્વેતાંબર વગેરે જૈનદર્શનના પ્રતિનિધિઓના ઘણા સમયથી પરિચયમાં આવતાં હું વિરોધના ભય વગર કહી શકું. પૂ૦ મહારાજનો આ પ્રયાસ સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયમાં પ્રથમ છે એવી મારી માન્યતા છે. સંસ્કૃત સ્પષ્ટીકરણો સારાં આપવામાં આવ્યાં છે, ભાષા શુદ્ધ છે એમ ચોક્કસ કહી શકું છું. ગુજરાતી ભાષાંતરો પણ શુદ્ધ અને સરળ થયેલાં છે. મને વિશ્વાસ છે કે મહારાજશ્રીના આ સ્તુત્ય પ્રયાસને જૈનસમાજ ઉત્તેજન આપશે અને શાસ્ત્રોના ભાષાંતરોને વાચનાલયમાં અને કુંટુંબોમાં વસાવી શકાય તે પ્રમાણે વ્યવસ્થા કરશે.

પ્રતાપગંજ, **વડોદરા** — **કામદાર કેશવલાલ હિંમતરામ**
તા. ૨૭—૨—૧૯૫૬ — **એમ. એ.**

મુંબઈની બે કોલેજોના પ્રોફેસરોનો અભિપ્રાય

મુંબઈ તા. ૩૧-૩-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાન્તિલાલ મંગળદાસ

પ્રમુખ : શ્રી અખિલ ભારત શ્વે. સ્થા. જૈનશાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિ,

રાજકોટ.

પૂજ્યાચાર્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજે તૈયાર કરેલાં આચારાંગ દશવૈકાલિક, આવશ્યક, ઉપાસકદશાંગ વગેરે સૂત્રો અમે જોયાં. આ સૂત્રો ઉપર સંસ્કૃતમાં ટીકા આપવામાં આવી છે અને સાથે હિંદી અને ગુજરાતી ભાષાંતરો પણ આપવામાં આવ્યાં છે. સંસ્કૃતટીકા અને ગુજરાતી તથા હિંદી ભાષાંતરો જોતાં આચાર્યશ્રીના આ ત્રણે ભાષા પરના એક સરખા અસાધારણ પ્રભુત્વની સચોટ અને સુરેખ છાપ પડે છે. આ સૂત્ર ગ્રંથોમાં પાને પાને પ્રગટ થતી આચાર્યશ્રીની અપ્રતિમ વિદ્વત્તા મુગ્ધ કરી દે તેવી છે. ગુજરાતી તથા હિંદીમાં થયેલાં ભાષાંતરમાં ભાષાની શુદ્ધિ અને સરળતા નોંધપાત્ર છે. એવી વિદ્વદ્‌જન અને સાધારણ માણસ ઉભયને સંતોષ આપે એવી એમની લેખનીની પ્રતીતિ થાય છે. ૩૨ સૂત્રોમાંથી હજુ ૧૩ સૂત્રો પ્રગટ થયાં છે. બીજાં ૭ સૂત્રો લખાઈને તૈયાર થઇ ગયાં છે. આ બધાં જ સૂત્રો જ્યારે એમને હાથે તૈયાર થઈને પ્રગટ થશે ત્યારે જૈન-સૂત્ર-સાહિત્યમાં અમૂલ્ય સંપત્તિરૂપ ગણાશે એમાં સંશય નથી. આચાર્યશ્રી આ મહાન કાર્યને જૈનસમાજનો વિશેષતઃ સ્થાનકવાસી સમાજનો સંપૂર્ણ સહકાર સાંપડી રહેશે એવી અમે આશા રાખીએ છીએ.

પ્રો. **રમણલાલ ચીમનલાલ શાહ**
સેંટ ઝેવિયર્સ કોલેજ, **મુંબઈ.**
પ્રો. **તારા રમણલાલ શાહ**
સોફીયા કોલેજ, **મુંબઈ**

*

રાજકોટ ધર્મેન્દ્રસિંહજી કોલેજના પ્રોફેસર સાહેબનો અભિપ્રાય

જયમહાલ
જાગનાથ પ્લોટ
રાજકોટ, તા. ૧૮-૪-૫૬

પૂજ્યાચાર્ય પં. મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ આજે જૈનસમાજ માટે એક એવા કાર્યમાં વ્યાપ્ત થયેલા છે કે જે સમાજ માટે બહુ ઉપયોગી થઈ પડશે. મુનિશ્રીએ તૈયાર કરેલાં આચારાંગ, દશવૈકાલિક, શ્રી વિપાકશ્રુત વિ. મેં જોયાં.

આ સૂત્રો જોતાં પહેલીજ નજરે મહારાજશ્રીનો સંસ્કૃત, અર્ધમાગધી, હિન્દી તથા ગુજરાતી ભાષાઓ ઉપરનો અસાધારણ કાબુ જણાઈ આવે છે. એક પણ ભાષા મહારાજશ્રીથી અજાણી નથી. આપણે જોઈએ છીએ કે એ સૂત્રો ઉચ્ચ અને પ્રથમ કોટીના છે. તેની વસ્તુ ગંભીર, વ્યાપક અને જીવનને તલસ્પર્શી છે, આટલા ગહન અને સર્વગ્રાહ્ય સૂત્રોનું ભાષાંતર પૂ. ઘાસીલાલજી મહારાજ જેવા ઉચ્ચ કોટીના મુનિરાજને હાથે થાય છે તે આપણાં અહોભાગ્ય છે. યંત્રવાદ અને ભૌતિકવાદના આ જમાનામાં જ્યારે ધર્મભાવના ઓસરતી જાય છે એવે વખતે આવા તત્ત્વજ્ઞાન આધ્યાત્મકતાથી ભરેલાં સૂત્રોનું સરળ ભાષામાં ભાષાંતર દરેક જીજ્ઞાસુ, મુમુક્ષુ અને સાધકને માર્ગદર્શક થઈ પડે તેમ છે. જૈન અને જૈનેતર, વિદ્વાન અને સાધારણ માણસ સાધુ અને શ્રાવક દરેકને સમજણ પડે તેવી સ્પષ્ટ, સરળ અને શુદ્ધ ભાષામાં સૂત્રો લખવામાં આવ્યાં છે. મહારાજશ્રીને જ્યારે જોઈએ ત્યારે તેમના આ કાર્યમાં સંકળાયેલા જોઇએ છીએ. એ ઉપરથી મુનિશ્રીના પરિશ્રમ અને ધગશની કલ્પના કરી શકાય તેમ છે. તેમનું જીવન સૂત્રોમાં વણાઈ ગયું છે.

મુનિશ્રીના આ અસાધારણ કાર્યમાં પોતાના શિષ્યોનો તથા પંડિતોનો સહકાર મળ્યો છે. મને આશા છે કે જો દરેક મુમુક્ષુ આ પુસ્તકોને પોતાના ઘરમાં વસાવશે અને પોતાના જીવનને સાચા સુખને માર્ગે વાળશે તો મહારાજશ્રીએ ઉઠાવેલી શ્રમ સંપૂર્ણપણે સફળ થશે.

પ્રો. રસિકલાલ કસ્તુરચંદ ગાંધી
એમ. એ. એલ. એલ. બી
ધર્મેન્દ્રસિંહજી કોલેજ
રાજકોટ (સૌરાષ્ટ્ર)

*

મુંબઇ અને ઘાટકોપરમાં મળેલી સભાએ ભિનાસર કોન્ફરેન્સ તથા સાધુસંમેલનમાં મોકલાવેલ ઠરાવ

હાલ જે વખતે શ્રી શ્વેતાંબર સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ માટે આગમ સંશોધન અને સ્વતંત્ર ટીકાવાળા શાસ્ત્રોદ્ધારની અતિ આવશ્યકતા છે અને જે મહાનુભાવોએ આ વાત દીર્ઘ દૃષ્ટિથી પહેલી પોતાના મગજમાં લઇ તે પાર પાડવા મહેનત લઇ રહ્યા છે તેવા મુનિ મહારાજ પંડિતરત્ન શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ કે જેઓને સાદડી અધિવેશનમાં સર્વાનુમતે સાહિત્યમંત્રી નીમ્યા છે તેઓશ્રીની દેખરેખ નીચે અ. ભા. શ્વે. સ્થા. જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ જે એક મોટી વગવાળી કમિટી છે તેની મારફતે કામ થઇ રહ્યું છે. જેને પ્રધાનાચાર્યશ્રી તથા પ્રચારમંત્રીશ્રી

તથા અનેક અનુભવી મહાનુભાવોએ પોતાની પસંદગીની મહોર છાપ આપી છે. અને છેલ્લામાં છેલ્લા વડોદરા યુનિવર્સીટીના પ્રોફેસર કેશવલાલ કામદાર એમ. એ. પોતાનું સવિસ્તર પ્રમાણપત્ર આપ્યું છે તે શાસ્ત્રોદ્ધાર કમિટીના કામને આ સંમેલન તથા કોન્ફરન્સ હાર્દિક અભિનંદન આપે છે. અને તેમના કામને જ્યાં જ્યાં અને જે જે જરૂર પડે–પંડિતની અને નાણાંની પોતાની પાસેના ફંડમાંથી અને જાહેર જનતા પાસેથી મદદ મળે તેવી ઈચ્છા ધરાવે છે.

આ શાસ્ત્રો અને ટીકાઓને જ્યારે આટલી બધી પ્રશંસાપૂર્વક પસંદગી મળી છે ત્યારે તે કામને મદદ કરવાની આ કોન્ફરન્સ પોતાની ફરજ માને છે અને જે કોઈ ત્રુટી હોય તે પં. ર. શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજની સાંનિધ્યમાં જઈ, બતાવીને સુધારવા પ્રયત્ન કરવો. આ કામને ટલ્લે ચઢાવવા જેવું કોઈ પણ કામ સત્તા ઉપરના અધિકારીઓના વાણી કે વર્તનથી ન થાય તે જોવા પ્રમુખ સાહેબને ભલામણ કરે છે.

(સ્થા. જૈન પત્ર તા. ૪–૫–૫૬)

*

સ્વતંત્રવિચારક અને નિડર લેખક 'જૈનસિદ્ધાંત'ના તંત્રી શેઠ નગીનદાસ ગીરધરલાલનો અભિપ્રાય

શ્રી સ્થાનકવાસી શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ સ્થાપીને પૂ. ઘાસીલાલજી મહારાજને સૌરાષ્ટ્રમાં બોલાવી તેમની પાસે બત્રીસે સૂત્રો તૈયાર કરવાની હિલચાલ ચાલતી હતી ત્યારે તે હિલચાલ કરનાર શાસ્ત્રજ્ઞ શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈ સાથે મારે પત્રવ્યવહાર ચાલેલો ત્યારે શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈએ તેમના એક પત્રમાં મને લખેલું કે—

> "આપણા સૂત્રોના મૂળ પાઠ તપાસી શુદ્ધ કરી સંસ્કૃત સાથે તૈયાર કરી શકે તેવા સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયમાં મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મ. સિવાય મને કોઈ વિશેષ વિદ્વાન મુનિ જોવામાં આવતા નથી. લાંબી તપાસને અંતે મેં મુનિશ્રી ઘાસીલાલજીને પસંદ કરેલા છે."

શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈ પોતે વિદ્વાન હતા. શાસ્ત્રજ્ઞ હતા તેમ વિચારક પણ હતા. શ્રાવકો તેમજ મુનિઓ પણ તેમની પાસેથી શિક્ષા વાંચના લેતા, તેમ જ્ઞાનચર્ચા પણ કરતા. એવા વિદ્વાન શેઠશ્રીની પસંદગી યથાર્થ જ હોય એમાં

નવાઇ નથી. અને પૂ. શ્રી ઘાસીલાલજીના બનાવેલાં સૂત્રો જોતાં સૌ કોઈને ખાત્રી થાય તેમ છે કે દામોદરદાસભાઇએ તેમજ સ્થાનકવાસી સમાજે જેવી આશા શ્રી ઘાસીલાલજી મ. પાસેથી રાખેલી તે બરાબર ફળીભૂત થયેલ છે.

શ્રી વર્ધમાન શ્રમણસંઘના આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજે શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના સૂત્રો માટે ખાસ પ્રશંસા કરી અનુમતિ આપેલ છે તે ઉપરથી જ શ્રી ઘાસીલાલજી મ. ના સૂત્રોની ઉપયોગિતાની ખાત્રી થશે.

આ સૂત્રો વિદ્યાર્થીને. અભ્યાસીને તેમજ સામાન્ય વાંચકોને સર્વને એક સરખી રીતે ઉપયોગી થઈ પડે છે. વિદ્યાર્થીને તેમજ અભ્યાસીને મૂળ તથા સંસ્કૃત ટીકા વિશેષ કરીને ઉપયોગી થાય તેમ છે. ત્યારે સામાન્ય હિંદી વાંચકને હિંદી અનુવાદ અને ગુજરાતી વાંચકને ગુજરાતી અનુવાદથી આખું સૂત્ર સરળતાથી સમજાય છે.

કેટલાકનો એવો ભ્રમ છે કે સૂત્રો વાંચવાનું કામ આપણું કામ નહિ, સૂત્રો આપણને સમજાય નહિ. આ ભ્રમ તદ્દન ખોટો છે. બીજા કોઈ પણ શાસ્ત્રીય પુસ્તક કરતાં આ સૂત્રો સામાન્ય વાચકને પણ ઘણી સરળતાથી સમજાઈ જાય છે. સામાન્ય માણસ પણ સમજી શકે તેટલા માટે જ ભગવાન મહાવીરે તે વખતની લોકભાષામાં (અર્ધમાગધી ભાષામાં) સૂત્રો બનાવેલાં છે. એટલે સૂત્રો વાંચવાં તેમજ સમજવામાં ઘણાં સરળ છે.

માટે કોઈ પણ વાંચકને એનો ભ્રમ હોય તો તે કાઢી નાંખવો અને ધર્મનું તેમજ ધર્મના સિદ્ધાંતોનું સાચું જ્ઞાન મેળવવા માટે સૂત્રો વાંચવાને ચૂકવું નહિ. એટલું જ નહિ પણ જરૂરથી પહેલાં સૂત્રો જ વાંચવાં.

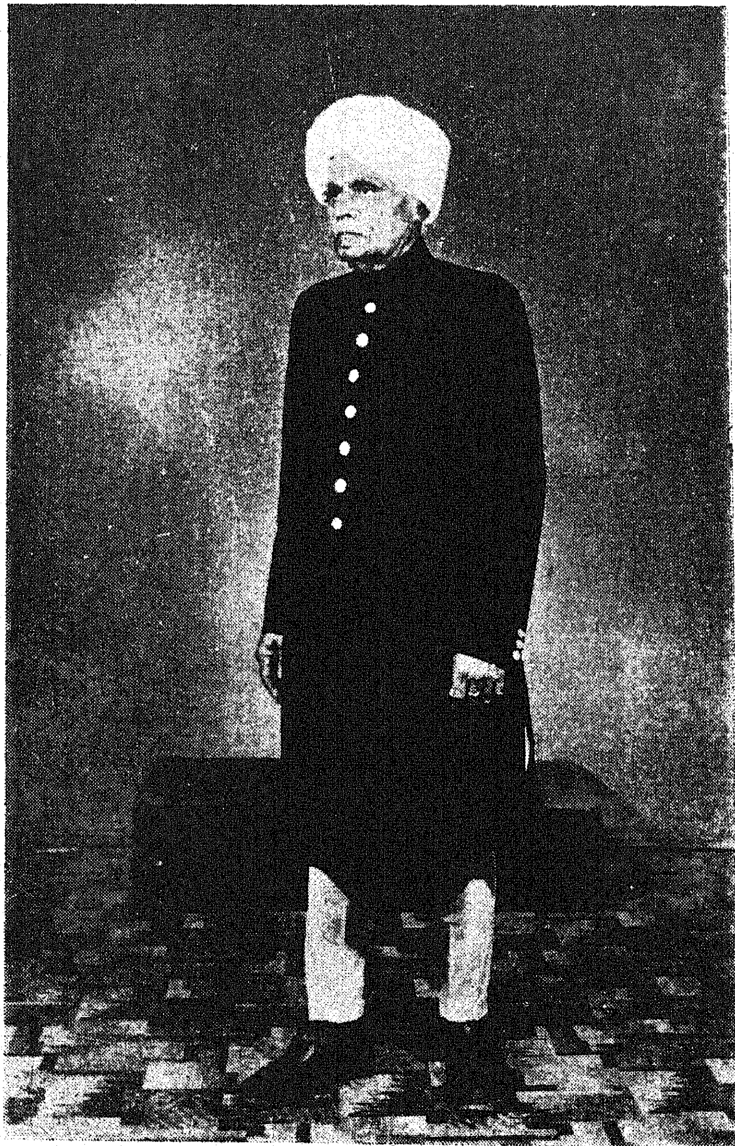
સ્થાનકવાસીઓમાં આ શ્રી સ્થા૦ જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિએ જે કામ કર્યું છે. અને કરી રહી છે તેવું કોઈ પણ સંસ્થાએ આજ સુધી કર્યું નથી. સ્થા૦ જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના છેલ્લા રિપોર્ટ પ્રમાણે બીજાં છ સૂત્રો લખાયેલ પડયાં છે, બે સૂત્રો–અનુયોગદ્વાર અને ઠાણાંગ સૂત્ર–લખાય છે તે પણ થોડા વખતમાં તૈયાર થઈ જશે. તે પછી બાકીના સૂત્રો હાથ ધરવામાં આવશે.

તૈયાર સૂત્રો જલ્દી છપાઈ જાય એમ ઇચ્છીએ છીએ અને સ્થા. બંધુઓ સમિતિને ઉત્તેજન અને સહાયતા આપીને તેમનાં સૂત્રો ઘરમાં વસાવે એમ ઇચ્છીએ છીએ.

'જૈન સિદ્ધાંત' પત્ર–મે ૧૯૫૫

*

રૂા. ૫૨૫૧) આપનાર આદ્ય મુરબ્બીશ્રી



કોઠારી હરગોવિંદભાઈ જેચંદ
રાજકોટ.

શ્રુત–ભકિત

(પૂ૦ આચાર્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મ૦ સા૦ની આજ્ઞા અનુસાર લખનાર)

દ. સ. ના જૈન મુનિ શ્રી દયાનંદજી મહારાજ

તા. ૨૩–૯–૫૬ શાહપુર, અમદાવાદ

આજે લગભગ ૨૦ વર્ષથી શ્રદ્ધેય પરમપૂજ્ય, જ્ઞાનદિવાકર પં૦ મુનિશ્રી **ઘાસીલાલજી** મ૦ ચરમ તીર્થંકર ભગવાન મહાવીરના અનુત્તર, અનુપમ ન્યાય યુક્ત, પૂર્વાપર અવિરોધસ્વરૂપ કલ્યાણકારક, ચરમ શીતળ વાણીના દ્યોતક એવા શ્રી **જિનાગમ** પર પ્રકાશ પાડે છે, તેઓશ્રી પ્રાચીન, પૌર્વાત્ય સંસ્કૃતાદિ અનેક ભાષાના પ્રખર પંડિત છે અને જિનવાણીનો પ્રકાશ સંસ્કૃત, ગુજરાતી અને હિંદીમાં મૂળ શબ્દાર્થ, ટીકા, વિસ્તૃત, વિવરણ સાથે પ્રકાશમાં લાવે છે એ **જૈન** સમાજ માટે અતિ ગૌરવ અને આનંદનો વિષય છે.

ભ૦ મહાવીર અત્યારે આપણી પાસે વિદ્યમાન નથી. પરંતુ તેમની વાણી રૂપે અક્ષરદેહ ગણધર મહારાજોએ શ્રુતપરંપરાએ સાચવી રાખ્યો શ્રુતપરંપરાથી સચવાતું જ્ઞાન જ્યારે વિસ્મૃત થવાનો સમય ઉપસ્થિત થવા લાગ્યો ત્યારે શ્રી દેવર્દ્ધિંગણિ ક્ષમાશ્રમણે વલ્લભીપુર–વળામાં તે આગમોને પુસ્તકો રૂપે આરૂઢ કર્યો. આજે આ સિદ્ધાંતો આપણી પાસે છે. તે અર્ધમાગધી ભાષામાં છે. અત્યારે આ ભાષા ભગવાનની, દેવોની તથા જનગણની ધર્મભાષા છે- તેને આપણા શ્રમણો અને શ્રમણીઓ તથા મુમુક્ષુ શ્રાવક શ્રાવિકાઓ મુખપાઠ કરે છે, પરન્તુ તેનો અર્થ અને ભાવ ઘણા થોડાઓ સમજે છે.

જિનાગમ એ આપણાં શ્રદ્ધેય પવિત્ર ધર્મસૂત્રો છે. એ આપણી આંખો છે. તેનો અભ્યાસ કરવો એ આપણી સૌની–જૈન માત્રની ફરજ છે. તેને સત્ય સ્વરૂપે સમજાવવા માટે આપણા સદ્ભાગ્યે જ્ઞાનદિવાકર શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજે સત્ સંકલ્પ કર્યો છે અને તે લિખિત સૂત્રોને પ્રગટાવી શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિદ્વારા જ્ઞાન પરબ વહેતી કરી છે. આવા અનુપમ કાર્યમાં સકળ જૈનોનો સહકાર અવશ્ય હોવો ઘટે અને તેનો વધારેમાં વધારે પ્રચાર થાય તે માટે પ્રયત્નો કરવા ઘટે.

ભ૦ મહાવીરને ગણધર ગૌતમ પૂછે છે કે હે ભગવાન, સૂત્રની આરાધના કરવાથી શું ફળ પ્રાપ્ત થાય છે? ભગવાન તેનો પ્રતિ ઉત્તર આપે છે કે શ્રુતની આરાધનાથી જીવોના અજ્ઞાનનો નાશ થાય છે, અને તેઓ સંસારના કલેશોથી નિવૃત્તિ મેળવે છે, અને સંસાર કલેશોથી નિવૃત્તિ અને અજ્ઞાનનો નાશ થતાં મોક્ષ ફળની પ્રાપ્તિ થાય છે.

આવા જ્ઞાનકાર્યમાં મૂર્તિપૂજક જૈનો, દિગંબરો અને અન્ય ધર્મિઓ હજારો અને લાખો રૂપીયા ખર્ચે છે. હિંદુ ધર્મમાં પવિત્ર મનાતા ગ્રંથ ગીતાના સેંકડો નહિ પણ હજારો ટીકા ગ્રંથો દુનિયાની લગભગ સર્વ ભાષાઓમાં પ્રગટ થયા છે. ઈસાઇ ધર્મના પ્રચારકો તેમના પવિત્ર ધર્મગ્રન્થ બાઈબલના પ્રચારાર્થે તેનું જગતની સવ

ભાષાઓમાં ભાષાંતર કરી તેને પડતર કરતાં પણ ઘણી ઓછી કિંમતે વેચી ધર્મ-સૂત્રોનો પ્રચાર કરે છે. મુસ્લિમ લોકો પણ તેમના પવિત્ર મનાતા ગ્રન્થ કુરાનનું અનેક ભાષાઓમાં ભાષાંતર કરી સમાજમાં પ્રચાર કરે છે. આપણે પૈસા પરનો મોહ ઉતારી ભગવાનના સિદ્ધાંતોનો પ્રચાર કરવા માટે તન, મન, ધન સમર્પણ કરવાં જોઈએ. અને સૂત્ર પ્રકાશનના કાર્યને વધુ ને વધુ વેગ મળે તે માટે સક્રિય પ્રયત્નો કરવા જોઈએ. આવા પવિત્ર કાર્યમાં સાંપ્રદાયિક મતભેદો સૌએ ભૂલી જવા જોઈએ અને શુદ્ધ આશયથી થતા શુદ્ધ કાર્યને અપનાવી લેવું જોઈએ. સમિતિના નિયમાનુસાર રૂ. ૨૫૧) ભરી સમિતિના સભ્ય બનવું જોઈએ. ધાર્મિક અનેક ખાતાઓના મુકાબલે સૂત્ર પ્રકાશનનું–જ્ઞાનપ્રચારનું આ ખાતું સર્વશ્રેષ્ઠ ગણવું જોઈએ.

આ કાર્યને વેગ આપવાની સાથે સાથે એ આગમો–ભગવાનની એ મહાવાણીનું પાન કરવા પણ આપણે હરહંમેશ તત્પર રહેવું જોઈએ. જેથી પરમ શાંતિ અને જીવનસિદ્ધિ મેળવી શકાય. (સ્થા. જૈન તા. ૫–૭–૫૬)

*

શ્રી. અ. ભા. શ્વે. સ્થા. **જૈન** શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિનાં પ્રમુખ શ્રી વગેરે. **રાણપુર**

પરમ પવિત્ર સૌરાષ્ટ્રની પુણ્ય ભૂમિ પર જ્યારથી શાંત–શાસ્ત્રવિશારદ અપ્રમાદિ પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજનાં પુનીત પગલાં થયાં છે ત્યારથી ઘણા લાંબા કાળથી લાગુ પડેલ જ્ઞાનાવરણીય કર્મનાં પડળ ઉતારવાનો શુભ પ્રયાસ થઈ રહ્યો છે. અને જે પ્રવચનની પ્રભાવના તેઓશ્રી કરી રહ્યા છે તે અનંત ઉપકારક કાર્યમાં તમે જે અપૂર્વ સહાય આપી રહ્યા છો તે માટે તમો સર્વને ધન્ય છે અને એ શુભ પ્રવૃત્તિના શુભ પરિણામોનો જનતા લાભ લે છે, મને તો સમજાય છે કે સાધુજી છઠે ગુણસ્થાનકે હોય છે પણ પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ તો બહુધા સાતમે અપ્રમત્ત ગુણસ્થાનકે જ રહે છે. એવા અપ્રમત્ત માત્ર પાંચ–સાત સાધુઓ જો સ્થાનકવાસી જૈનસમાજમાં હોય તો સમાજનું શ્રેય થતાં જરાએ વાર ન લાગે સમાજાકાશમાં સ્થા. જૈન સંપ્રદાયનો દિવ્ય પ્રભાકર જળહળી નીકળે. પણ વો દિન........

શ્રી શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિને મારી એક નમ્ર સુચના છે કે–પૂજ્યશ્રીની વૃદ્ધાવસ્થા છે, અને કાર્યપ્રણાલિકા યુવાનોને શરમાવે તેવી છે. તેમને ગામેગામ વિહાર કરવું અને શાસ્ત્રોદ્ધારનું કાર્ય કરવું તેમાં ઘણાં શારીરિક માનસિક અને વ્યવહારિક મુશ્કેલી વેઠવી પડે છે, તો કોઈ યોગ્ય સ્થળ કે જ્યાંના શ્રાવકો ભક્તિ વાળા હોય. વાડાનાં રાગના વિષથી અલિપ્ત હોય. એવા કોઈ સ્થળે શાસ્ત્રોદ્ધારનું કાર્ય પૂર્ણ થાય ત્યાં સુધી સ્થિરતા કરી શકે એના માટે પ્રબંધ કરવો જોઈએ. બીજા કોઈ એવા સ્થળની અનુકુળતા ન મળે તો છેવટ અમદાવાદમાં યોગ્ય સ્થળે રહેવાની સગવડતા કરી અપાય તો વધુ સારૂં. મ્હારી આ સુચના પર ધ્યાન આપવા ફરી યાદ આપું છું. ફરીવાર પૂજ્ય આચાર્યશ્રીને અને તેમના સતકાર્યના સહાયકોને મારા અભિનંદન પાઠવું છું તે સ્વીકારશોજી. લી. **સદાનંદી જૈનમુનિ છોટાલાલજી**

"જૈનસિધ્ધાંતના" તંત્રીશ્રીનો અભિપ્રાય

સ્થાનકવાસીઓમાં પ્રમાણભૂત સૂત્રો બહાર પાડનારી આ એકની એક સંસ્થા છે. અને એના આ છેલ્લા રિપોર્ટ ઉપરથી જણાય છે કે તેણે ઘણી સારી પ્રગતી કરી છે તે જોઈ આનંદ થાય છે.

મૂળ પાઠ, ટીકા, હિંદી તથા ગુજરાતી અનુવાદ સહિત સૂત્રો બહાર પાંડવાં એ કાંઈ સહેલું કામ નથી એ એક મહાભારત કામ છે અને તે કામ આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ ઘણી સફળતાથી પાર પાડી રહી છે તે સ્થાનકવાસી સમાજ માટે ઘણા ગૌરવનો વિષય છે અને સમિતિ ધન્યવાદને પાત્ર છે.

સમિતિ તરફથી નવસૂત્રો બહાર પડી ચુકયાં છે, હાલમાં ત્રણ સૂત્રો છપાય છે. નવ સૂત્રો લખાઈ ગયાં છે અને જંબૂદ્વીપ પ્રજ્ઞપ્તિ તથા નંદીસૂત્ર તૈયાર થઈ રહ્યાં છે.

હાલમાં મંત્રી શ્રી સાકરચંદ ભાઈચંદ સમિતિના કામમાં જ તેમનો આખો વખત ગાળે છે અને સમિતિના કામકાજને ઘણો વેગ આપી રહ્યા છે. તેમની ખંત માટે ધન્યવાદ.

અને આ મહાભારત કામના મુખ્ય કાર્યકર્તા તો છે વયોવૃદ્ધ પંડિત મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ. મૂળ પાઠનું સંશોધન તથા સંસ્કૃત ટીકા તેઓશ્રી જ તૈયાર કરે છે. મુનિશ્રીનો આ ઉપકાર આખાય સ્થા. જૈન સમાજ ઉપર ઘણો મહાન છે. એ ઉપકારનો બદલો તો વાળી શકાય તેમજ નથી.

પરંતુ આ સમિતિના મેમ્બર બની તેના બહાર પડેલાં સૂત્રો ઘરમાં વસાવી તેનું અધ્યયન કરવામાં આવે તો જ મહારાજશ્રીનું થોડું ઋણ અદા કર્યું ગણાય.

ભગવાને કહ્યું છે કે पढमं णाणं तओ दया પહેલું જ્ઞાન પછી દયા, દયા ધર્મને યથાર્થ સમજવો હોય તો ભગવાનની વાણીરૂપ આપણા સૂત્રો વાંચવાં જ જોઇએ તેનું અધ્યયન કરવું જોઈએ અને તેનો ભાવાર્થ સમજવો જોઈએ.

એટલા માટે આ શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિના સર્વ સૂત્રો દરેક સ્થા. જૈન પોતાના ઘરમાં વસાવવાં જ જોઈએ સર્વ ધર્મજ્ઞાન આપણા સૂત્રોમાંજ સમાયેલું છે અને સૂત્રો સહેલાઈથી વાંચીને સમજી શકાય છે, માટે દરેક સ્થા. જૈન આ સુત્રો વાંચે એ ખાસ જરૂરનું છે.

"જૈનસિદ્ધાંત" ડીસેમ્બર–૫૬

*

શ્રી ઉપાશક દશાંગ સૂત્રને માટે અભિપ્રાય

મૂળ સૂત્ર તથા પૂજ્ય મુનિશ્રી ઘાસીલાલજીએ બનાવેલ સંસ્કૃત છાયા તથા ટીકા અને હિંદી તથા ગુજરાતી–અનુવાદ સહિત.

પ્રકાશક–અ. ભા. શ્વે. સ્થાનકવાસી જૈનશાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિ, ગરેડીઆ કુવા રોડ, ગ્રીન લોજ પાસે, રાજકોટ. (સૌરાષ્ટ્ર) પૃષ્ઠ ૬૧૬ બીજી આવૃત્તિ બેવડું (મોટું) કદ. પાકું પુઠું, જેકેટ સાથે સને ૧૯૫૬ કિંમત રૂા. ૮–૮–૦

આપણા મૂળ બાર અંગ સૂત્રોમાંનું ઉપાશકદશાંગ એ સાતમું અંગ સૂત્ર છે. એમાં ભગવાન મહાવીરના દશ ઉપાસકો–શ્રાવકોનાં જીવનચરિત્રો આપેલાં છે, તેમાં પહેલું ચરિત્ર આનંદ શ્રાવકનું આવે છે.

આનંદ શ્રાવકે જૈનધર્મ અંગીકાર કર્યો અને બાર વ્રત ભગવાન મહાવીર પાસે અંગીકાર કરી પ્રતિજ્ઞા (પ્રત્યાખ્યાન) લીધાં તેનું સવિસ્તર વર્ણન આવે છે. તેની અંતર્ગત અનેક વિષયો જેવા કે, અભિગમ, લોકાલોકસ્વરૂપ, નવતત્ત્વ, નરક, દેવલોક વગેરેનું વર્ણન પણ આવે છે.

આનંદ શ્રાવકે બાર વ્રત લીધાં તે બાર વ્રતની વિગત અતિચારની વિગત વગેરે બધું આપેલું છે. તે જ પ્રમાણે બીજા નવ શ્રાવકોની પણ વિગત આપેલ છે.

આનંદ શ્રાવકની પ્રતિજ્ઞામાં अरिहंतचेइयाइं શબ્દ આવે છે. મૂર્તિપૂજકો મૂર્તિપૂજા સિદ્ધ કરવા માટે તેનો અર્થ અરિહંતનું ચૈત્ય (પ્રતિમા) એવો કરે છે. પણ તે અર્થ તદ્દન ખોટો છે. અને તે જગ્યાએ આગળ પાછળના સંબંધ પ્રમાણે તેનો એ ખોટો અર્થ બંધ બેસતો જ નથી તે મુનિશ્રી ઘાસીલાલજીએ તેમની ટીકામાં અનેક રીતે પ્રમાણો આપી સાબિત કરેલ છે અને अरिहंतचेइयाइंનો અર્થ સાચો થાય છે. તે બતાવી આપેલ છે.

આ પ્રમાણે આ સૂત્રમાંથી શ્રાવકના શુદ્ધ ધર્મની માહિતી મળે છે તે ઉપરાંત તે શ્રાવકોની ઋધ્ધિ, રહેઠાણ, નગરી વગેરેના વર્ણનો ઉપરથી તે વખતની સામાજિક સ્થિતિ, રીતરિવાજ રાજવ્યવસ્થા વગેરે બાબતોની માહિતી મળે છે.

એટલે આ સૂત્ર દરેક શ્રાવકે અવશ્ય વાંચવું જોઈએ, એટલું જ નહિ પણ વારંવાર અધ્યયન કરવા માટે ઘરમાં વસાવવું જોઈએ.

પુસ્તકની શરૂઆતમાં વર્ધમાન શ્રમણસંઘના આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજનું સંમતિપત્ર તથા બીજા સાધુઓ તેમજ શ્રાવકોના સંમતિપત્રો આપેલ છે, તે સૂત્રની પ્રમાણભૂતતાની ખાત્રી આપે છે.

"જૈનસિધ્ધાંત" જાન્યુઆરી–૫૭

*

રૂા. ૫૦૦૧) આપનાર આદ્ય સુરબ્બીશ્રી



(સ્વ.) શેઠ ધારસીભાઈ જીવણભાઈ
સોલાપુર.

आचाराङ्गसूत्रके पञ्चम अध्ययनकी

विषयानुक्रमणिका–

प्रथम उद्देश

॥ इति चतुर्थ उद्देशः ॥

*

॥ अथ पञ्चम उद्देश ॥

॥ इति पञ्चम उद्देश ॥

*

॥ अथ षष्ठ उद्देश ॥

॥ इति षष्ठ उद्देश ॥

॥ इति पञ्चम अध्ययन सम्पूर्ण ॥ ५ ॥

*

॥ अथ षष्ठ अध्ययन ॥

॥ इति द्वितीय उद्देश ॥

*

॥ अथ तृतीय उद्देश ॥

॥ इति तृतीय उद्देश ॥

*

॥ अथ चतुर्थ उद्देश ॥

विषय पृष्ठाङ्क

॥ इति द्वितीय उद्देश ॥

*

॥ अथ तृतीय उद्देश ॥

॥ इति षष्ठ उद्देश संपूर्ण ॥

*

॥ अथ सप्तम उद्देश ॥

॥ इति सप्तम उद्देश ॥

*

॥ अथ अष्टम उद्देश ॥

विषय पृष्ठाङ्क

विषय पृष्ठाङ्क

॥ इति अष्टम अध्ययन ॥

*

॥ अथ नवम अध्ययन ॥

(प्रथम उद्देश)

विषय पृष्टाङ्क

॥ इति प्रथम उद्देश संपूर्ण ॥

*

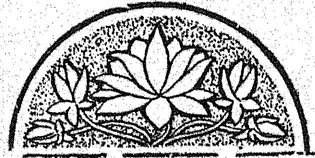
॥ अथ द्वितीय उद्देश ॥

॥ इति तृतीय उद्देश संपूर्ण ॥

*

॥ अथ चतुर्थ उद्देश ॥

॥ इति विषयानुक्रमणिका सम्पूर्ण ॥



॥ अथाचाराङ्गसूत्रस्य लोकसारनामकं पञ्चममध्ययनम् ॥

गतं चतुर्थमध्ययनं साम्प्रतं पञ्चममध्ययनं प्रारभ्यते । चतुर्थाध्ययने सम्यक्त्वं, तदन्तर्गतं ज्ञानं च निरूपितं, सम्यक्त्वज्ञानकारणजन्यं चारित्रं, तदेव प्रधानं मोक्ष-कारणमतस्तदेव लोके सारभूतमिति लोकसाराख्यमिदमध्ययनम्; तथा हि—लोकस्य सारो धर्मो, धर्मस्य सारो ज्ञानं, ज्ञानस्य सारश्चारित्रं, तस्य च सारो मोक्ष इत्यस्य प्रतिपादनात्, तेन लोकसारतया चारित्रमेवात्र प्रतिपादयितव्यमस्ति । इहाध्ययनार्थाधिकारस्तु 'लोकस्य सारः परिचिन्तनीयः' इति । उद्देशार्थाधिकारो यथा—

॥ आचाराङ्गसूत्र का लोकसारनामक पांचवां अध्ययन ॥

चतुर्थ अध्ययन प्रतिपादित किया जा चुका है। अब यहां पंचम अध्ययनका व्याख्यान प्रारम्भ होता है। चतुर्थ अध्ययनमें सम्यक्त्व एवं उस के अन्तर्गत ज्ञानका निरूपण किया है। इस पाँचवें अध्ययन का नाम 'लोकसार' है। लोकमें सारभूत चारित्र है। वह चारित्र सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानसे होना है, अर्थात् इनके सहित होनेवाला चारित्र ही सम्यक्चारित्र है। वही मोक्षका प्रधान कारण माना गया है। लोकका सार धर्म, धर्म का सार ज्ञान, ज्ञान का सार चारित्र और चारित्रका सार मोक्ष है। इस कारण लोकमें सारभूत होनेसे चारित्रका ही वर्णन इस अध्ययनमें किया जायगा। "लोकस्य सारः परिचिन्तनीयः" अर्थात् चारित्र ही लोकका सार है, ऐसा विचारना चाहिये। इस प्रकार यहां पर यह अध्ययनका अर्थाधिकार है। उद्देश का अर्थाधिकार इस प्रकार है—

આચારાંગસૂત્રનું 'લોકસાર' નામનું પાંચમું અધ્યયન.

ચોથું અધ્યયન કહેવાઇ ગયું છે. હવે અહીંથી પાંચમા અધ્યયનનો પ્રારંભ થાય છે. ચોથા અધ્યયનમાં સમ્યક્ત્વ અને તેના અંતર્ગત જ્ઞાનની સમજણ આપવામાં આવી છે. આ પાંચમા અધ્યયનનું નામ "લોકસાર" છે. લોકમાં સારભૂત ચારિત્ર છે. તે ચારિત્ર સમ્યગ્દર્શન અને સમ્યગ્જ્ઞાનથી થાય છે. તાત્પર્ય કે તેનાથી થતું ચારિત્ર તેજ સમ્યક્ ચારિત્ર છે. તેને જ મોક્ષનું પ્રધાન કારણ માનવામાં આવે છે. લોકનો સાર ધર્મ, ધર્મનો સાર જ્ઞાન, જ્ઞાનનો સાર ચારિત્ર અને ચારિત્રનો સાર મોક્ષ છે. આ કારણોથી લોકમાં સારભૂત હોવાથી ચારિત્રનું જ વર્ણન આ અધ્યયનમાં કરવામાં આવશે. "लोकस्य सारः परिचिन्तनीयः" અર્થાત્ ચારિત્ર જ લોકનો સાર છે એમ માનવું જોઈએ. આ અહીં અધ્યયનનો અર્થાધિકાર છે. ઉદ્દેશનો અર્થાધિકાર આ પ્રમાણે છે:—

प्रथम उद्देशे–हिंसासमारम्भाधिकारः प्रथमः, यदर्थं हिंसादयः सावद्यव्यापारा विधीयन्ते, तेषां विषयाणामधिकारो द्वितीयः, विषयार्थमेव विहरन्न मुनिर्भवतीति च तृतीय इत्यधिकारत्रयं प्रतिपाद्यते ।

द्वितीये च–'हिंसादितो विषयादितोऽप्रशस्तैकचर्यातो वा विरतो मुनिर्भवती'–ति वर्णितम् ।

तृतीये—एष विरत एव मुनिरपरिग्रहो निर्विण्णकामभोगश्च भवतीति दर्शितम् ।

चतुर्थे–चाऽगीतार्थमुनेरेकाकिविहरणे प्रत्यवाया भवन्तीति कथितम् ।

इस अध्ययन के छह उद्देश हैं; इन में–(१) प्रथम उद्देशमें प्रथम–हिंसासमारम्भाधिकार, द्वितीय–जिनके लिये हिंसा आदि सावद्य व्यापार किये जाते हैं उन विषयों का अधिकार, तृतीय–विषयों के लिये ही विचरण करनेवाला मुनि नहीं होता है, इसका अधिकार; इस प्रकार तीन अधिकार बतलाये गये हैं ।

(२) द्वितीय उद्देशमें यह बतलाया गया है कि–हिंसादि से विषयादि से तथा अप्रशस्त एकचर्यासे निवृत्त ही मुनि होता है ।

(३) तृतीय उद्देशमें इस बात की व्याख्या की गई है कि–जो हिंसादि से, विषयादिसे और अप्रशस्त एकचर्यासे निवृत्त है वही मुनि है; वही अपरिग्रही है और वही कामभोगों से विरक्त है ।

(४) चतुर्थ उद्देशमें अगीतार्थ मुनिको एकाकी हो कर विचरना नहीं चाहिये, क्यों कि–इस प्रकार के विहार में उसे अनेक विघ्नबाधाएँ आती हैं, यह विषय बतलाया गया है ।

આ અધ્યયનના છ ઉદ્દેશ છે, તે ઉદ્દેશો પૈકી (૧) પ્રથમ ઉદ્દેશમાં પહેલો–હિંસાસમારંભાધિકાર, બીજો–જેને માટે હિંસા આદિ સાવદ્ય વ્યાપારો કરવામાં આવે છે તે વિષયોનો અધિકાર, ત્રીજો–વિષયોને માટે જ વિચરણ કરવાવાળો મુનિ નથી થતો–એનો અધિકાર; આ પ્રકારે ત્રણ અધિકારો કહેવામાં આવેલા છે.

(૨) બીજા ઉદ્દેશમાં એ બતાવવામાં આવ્યું છે કે હિંસાદિથી, વિષયાદિથી અને અપ્રશસ્ત એકચર્યાથી રહિત જ મુનિ થાય છે.

(૩) ત્રીજા ઉદ્દેશમાં એ વાતની વ્યાખ્યા બતાવવામાં આવી છે કે જે હિંસાદિથી, વિષયાદિથી અને અપ્રશસ્ત એકચર્યાથી રહિત છે, તે જ મુનિ છે, તે જ અપરિગ્રહી છે અને તે જ કામભોગોથી વિરક્ત છે.

(૪) ચોથા ઉદ્દેશમાં આ ગીતાર્થ મુનિએ એકલવાયા (એકલવિહારી) જીવનમાં રહીને વિચરવું ન જોઈએ, કારણ કે આવા પ્રકારના વિહારમાં તેને ઘણા પ્રકારનાં વિઘ્નો આવે છે, આ વિષય બતાવવામાં આવેલ છે.

पञ्चमे च–ह्रदोपमाः सर्वतोगुप्ता निःसङ्गा ज्ञानदर्शनचारित्रधारिणो विस्रोतसिका-रहिताः संयमिनो भवेयुरित्यभिहितम्।

षष्ठे च–कुदृष्टे रागद्वेषयोश्च परित्यागो वर्णितः।

अनन्तरसूत्रसम्बन्धो यथा–पूर्वसूत्रे 'साहिस्सामो नाणं वीराणं सहियाणं' इत्यादिना चारित्रग्रहणं कथितं, चारित्रपरिपालनार्थमेव चेहाचारित्रवतां दोषा वर्णनीया इति। चारित्रदोषानेवोद्घाटयितुमादिसूत्रमाह–'आवंती' इत्यादि।

---

(५) पंचम उद्देशमें यह बतलाया गया है कि–मुनिको ह्रदके समान होना चाहिये, मन वचन और काय–गुप्तियुक्त होना चाहिये, स्त्री आदि के संगसे रहित होना चाहिए और सम्यग्दर्शन ज्ञान और चारित्रका धारक होना चाहिये, संशयादिक दोषों से रहित होना चाहिये।

(६) छठे उद्देशके अंदर साधुको उन्मार्ग में गमनका और राग एवं द्वेष का त्याग कर देना चाहिये, यह विषय बतलाया गया है।

इस अध्ययनका अनन्तर सूत्रके साथ इस प्रकार सम्बन्ध है–पूर्व सूत्रमें–"साहिस्सामो नाणं वीराणं सहियाणं" इत्यादि सूत्रसे चारित्रका ग्रहण करना प्रकट किया गया है। जब तक अचारित्री (असंयमी) के दोष यहां नहीं बतलाये जायेंगे तब तक चारित्र का पालन नहीं हो सकता; इस लिये अचारित्रवानके दोषों को प्रकट करने के लिये प्रथम सूत्र कहते हैं—'आवंती' इत्यादि।

---

(૫) પાંચમા ઉદ્દેશમાં એ બતાવવામાં આવ્યું છે કે મુનિને હ્રદસમાન હોવું જોઈએ. મન, વચન અને કાયાના યોગ સ્થિર રાખવા જોઈએ, સ્ત્રી આદિના સંગથી દૂર રહેવું જોઈએ અને સમ્યગ્દર્શન જ્ઞાન અને ચારિત્રને ધારણ કરવા-વાળો હોવો જોઈએ. સંશયાદિક દોષોથી પરે હોવો જોઈએ.

(૬) છઠ્ઠા ઉદ્દેશની અંદર સાધુને ઉન્માર્ગમાં વિચરવાનો ત્યાગ અને રાગ તથા દ્વેષનો ત્યાગ કરવો તે વિષય બતાવવામાં આવ્યો છે.

આ અધ્યયનનો અનન્તર સૂત્રની સાથે એવા પ્રકારનો સંબંધ છે–પૂર્વ સૂત્રમાં "साहिस्सामो नाणं वीराणं सहियाणं" ઈત્યાદિ સૂત્રથી ચારિત્રને ગ્રહણ કરવું તેમ બતાવવામાં આવેલ છે. જ્યાં સુધી અચારિત્રી એટલે કે અસંયમીના દોષ બતા-વવામાં ન આવે ત્યાં સુધી ચારિત્રનું પાલન બની શકતું નથી. આથી ચારિત્રના પાલન માટે અચારિત્રવાનોના દોષો પ્રગટ કરવા સૂત્રકાર પ્રથમ આ સૂત્ર કહે છે–"आवंती" ઈત્યાદિ.

मूलम्—आवंती केयावंती लोयंसि विप्परामुसंति अट्ठाए अणट्ठाए, एएसु चेव विप्परामुसंति, गुरू से कामा, तओ से मारंते, जओ से मारंते तओ से दूरे, नेव सो अंते नेव सो दूरे ॥ सू० १ ॥

छाया——यावन्तः कियन्तो लोके विपरामृशन्ति अर्थाय अनर्थाय, एतेषु एव विपरामृशन्ति, गुरवस्तस्य कामाः, ततः स मारान्तः, यतः स मारान्तस्ततः स दूरे, नैव सोऽन्तर्नैव दूरे ॥ सू० १ ॥

टीका—'यावन्त'–इत्यादि। लोके=पञ्चास्तिकायरूपे चतुर्दशरज्ज्वात्मके वा, यद्वा–गृहस्थान्यतीर्थिके लोके, यावन्तः=यत्प्रमाणा अतीतानागतवर्त्तमानाः, कियन्तः=ये केऽप्यसंयता आरम्भजीविनो मनुजाः प्राणिनो वा, ते–अर्थाय=प्रयोजनाय

"लोयंसि" पंचास्तिकायरूप अथवा चौदह राजुप्रमाणवाले लोकमें, अथवा गृहस्थ तथा अन्यतीर्थिकरूप लोकमें "आवंती केयावंती" जितने कितने भी असंयमी–आरम्भजीवी प्राणी हैं वे "अट्ठाए अणट्ठाए" किसी प्रयोजन या विना प्रयोजनसे त्रस स्थावर जीवोंका "विप्परामुसंति" अनेक प्रकारसे उपमर्दन (घात) किया करते हैं।

विशेषार्थ—यह लोक–धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय आकाशास्तिकाय जीवास्तिकाय एवं पुद्गलास्तिकाय, इन पांच अस्तिकायरूप द्रव्योंसे समन्वित है और चौदह राजु प्रमाणवाला है। इसमें जितने भी असंयमी जीव भूतकालमें हुए हैं, भविष्यत्कालमें होंगे और वर्त्तमानकालमें हैं, वे सब भूतकालमें आरम्भजीवी थे, भविष्यमें आरम्भजीवी होंगे और वर्तमानमें भी आरम्भजीवी हैं। आरम्भजीवी प्राणी प्रयोजन या

"लोयंसि" પાંચ અસ્તિકાયરૂપ અથવા ચૌદ રાજુ પ્રમાણુવાળા લોકમાં અથવા ગૃહસ્થ તથા અન્યતીર્થિકરૂપ લોકમાં "आवंती केयावंती" જેટલા કેટલાક પણ અસંયમી અને આરંભજીવી પ્રાણીયો છે તેઓ "अट्ठाए अणट्ठाए" કોઈ પણ પ્રયોજન અગર તો પ્રયોજન વગર ત્રસ સ્થાવર જીવોના "विपरामुसंति" અનેક પ્રકારથી ઉપમર્દન–ઘાત કર્યા કરે છે.

વિશેષાર્થ—આ લોક–ધર્માસ્તિકાય, અધર્માસ્તિકાય, આકાશાસ્તિકાય, જીવાસ્તિકાય અને પુદ્ગલાસ્તિકાય, આ પાંચ અસ્તિકાયરૂપ દ્રવ્યોથી સમન્વિત છે અને ચૌદ રાજુ પ્રમાણુવાળો છે. તેની અંદર જેટલા અસંયમી જીવો ભૂતકાળમાં થયા છે, ભવિષ્યકાળમાં થશે અને વર્તમાનમાં છે તે બધા ભૂતકાળમાં આરંભજીવી હતા, ભવિષ્યમાં આરંભજીવી થશે અને વર્તમાનમાં આરંભજીવી છે. આરંભજીવી પ્રાણી

धर्मार्थकामाद्यर्थाय, पृथगपि धर्मार्थं=देवप्रतिमा-देवमन्दिर-निमित्तम्, अर्थार्थं =कृष्याद्यर्थं, कामार्थं=प्रासादाद्यर्थं च पृथिवीकायं, कृष्यादिसेचनाद्यर्थं जलकायं, पाकाद्यर्थं तैजसकायं, ग्रीष्मसन्तापोपशमनाय तालवृन्तादिना वायुकायम्, एवं पाकाद्यर्थं वनस्पतिकायं, तत्तदाश्रितं त्रसकायं च, एवमनर्थाय= निष्प्रयोजनाय-व्यर्थमिति यावत्, कौतुकवशात्पृथिव्यादिकं मृगयाद्यर्थं त्रसांश्च 'विपरामृशन्ति' विविधप्रकारेण परामृशन्ति=उपतापयन्ति-खनित्रकुद्दालादिशस्त्रेण घातयन्तीत्यर्थः, एवं शेषव्रतेष्वपि 'सत्यव्रते मृषावादिनो विपरामृशन्ती'-त्यादि

विना प्रयोजनसे भी त्रस स्थावर जीवों की हिंसादि कार्यों में प्रवृत्तिशील रहा करते हैं। धर्म अर्थ और काम, इन तीनों पुरुषार्थों की सिद्धिके लिये, अथवा पृथक्-धर्मादि एक एक के लिये ऐसे प्राणियोंसे जीवोंकी हिंसा अवश्य होती रहती है। देवप्रतिमा तथा देवमन्दिर बनवाने, कृष्यादि कार्य करने कराने और महल-मकान आदिके चिनाने में पृथिवीकायिक जीवों की, कृषि आदिके सेचनमें अप्कायिक जीवों की, भोजन आदिके तैयार करने कराने में तैजस्कायिक जीवोंकी, ग्रीष्मजन्य तापके उपशमन करने करानेमें पंखा आदिसे वायुकायकी, तथा शाक पाक आदिके लिये वनस्पति- कायकी एवं पृथिवी आदिके आश्रित त्रसकायिक जीवोंकी विराधना होती है। इसी प्रकार विना प्रयोजन भी-व्यर्थ ही कौतुकवश पृथिव्यादिक को पावडे एवं कुदाली आदि द्वारा खोदनेसे, शिकार आदिके करनेसे पृथिवी- कायिक आदि स्थावर एवं त्रसकायिक जीवोंकी हिंसा होती है।

પ્રયોજન અગર કોઈ પણ પ્રકારના પ્રયોજન વગર ત્રસ અને સ્થાવર જીવોની હિંસાના કાર્યમાં પ્રવૃત્તિશીલ રહ્યા કરે છે. ધર્મ અર્થ અને કામ આ ત્રણે પુરૂ- ષાર્થની સિદ્ધિને માટે અથવા પૃથક્-ધર્માદિના કોઇ એકેક કારણને માટે એવા પ્રાણીયોથી જીવોની હિંસા જરૂર થતી રહે છે. દેવની પ્રતિમા બનાવવી, મંદિર બનાવવું, ખેતીનું કામ કરવું કે કરાવવું તેમાં અને મહેલ-મકાન બનાવવામાં પૃથ્વી- કાયિક જીવોની, ખેતી વગેરેના કામકાજમાં, અપ્કાયિક જીવોની, ભોજન આદિ તૈયાર કરવા કરાવવામાં તેજસ્કાયિક જીવોની અને ગરમીમાં ઠંડી હવાના ઉપયોગ માટે પંખા આદિથી વાયુકાયિક જીવોની તેમજ પાક આદિને માટે વનસ્પતિકાયિક જીવોની અને પૃથ્વી આદિના આશ્રિત ત્રસકાયિક જીવોની હિંસા થાય છે. તેવી રીતે કોઇ પણ જાતના કારણ વગર વ્યર્થ-કુતુહલવશ પૃથ્વી આદિને પાવડા કોદાળી ઇત્યાદિ દ્વારા ખોદવાથી, શિકાર જેવાં કાર્યો કરવાથી પૃથ્વીકાયિક આદિ સ્થાવર તથા ત્રસકાયિક જીવોની હિંસા થાય છે.

योज्यम् । एतेषु एव=षड्जीवनिकायेष्वेव तत्तदुपघातकारिणः सूक्ष्मबादरपर्याप्तकापर्याप्तकरूपान् जन्तून्निहत्य 'विपरामृशन्ति' वि=विविधप्रकारेण नानायोनिभाक्त्वेन परामृशन्ति=उत्पद्यन्ते । यद्वा–एतेषु एव तत्तज्जीवनिकायघातप्राप्तकर्मभिस्तेष्वेव जीवनिकायेषु जन्म लब्ध्वा तेन तेन प्रकारेण विपरामृशन्ति=वि=विविधं दुःखं परामृशन्ति=अनुभवन्ति ।

भावार्थ—अहिंसा व्रतके न पालनेसे असंयमी जीव, त्रस एवं स्थावरकायकी किसी भी प्रयोजनवश हिंसा करते रहते हैं। विना प्रयोजन के भी उनसे हिंसाका परिहार नहीं होता, जैसे–अपने पासकी घास–दूर्वा आदि उखाडना, मिट्टी खोदना आदि, इसी प्रकार रस्ते चलते किसी वृक्ष आदिकी डाली तोड़ लेना, लकडीसे कुत्ते आदिको मारना, इत्यादि ।

इसी प्रकार जो सत्यव्रत अचौर्यव्रत आदि नहीं पालते हैं ऐसे मृषावादी और चौरी आदि पाप करनेवाले प्राणी भी त्रस और स्थावर की हिंसासे बचे नहीं रह सकते, उन्हें भी त्रस और स्थावरकी हिंसासे होनेवाला पाप लगता ही रहता है, इस प्रकारकी योजना शेषव्रतों में भी कर लेनी चाहिये ।

" एतेष्वेव विपरामृशन्ति "—इस प्रकार असंयमी जीव उस २ कायकी विराधना या विराधनाजन्य पापकर्मके बन्धसे उस २ निकायके जीवोंमें उत्पन्न होते हैं ।

ભાવાર્થ—અહિંસાવ્રત ન પાળવાથી અસંયમી જીવ ત્રસ અને સ્થાવરકાયના જીવોની કોઈ પ્રયોજનાર્થે હિંસા કરતા રહે છે, કારણ વગર પણ તેમનાથી હિંસાનો ત્યાગ થઈ શકતો નથી. જેવાં કે આસપાસનું ઘાસ–ધરો વગેરે ઉખાડવું, માટી ખોદવી, આ ઉપરાંત રસ્તે ચાલતાં ચાલતાં વૃક્ષ વગેરેની ડાળીઓ તોડવી, લાકડીથી કુતરાં વગેરેને મારવાં. ઈત્યાદિ.

આ પ્રકારે જે સત્યવ્રત, અચૌર્યવ્રત વગેરે પાળતા નથી એવા જુઠા બોલા અને ચોરી આદિ પાપ કરવાવાળા પ્રાણી પણ ત્રસ અને સ્થાવરની હિંસાથી બચી શકતા નથી, તેઓને પણ ત્રસ અને સ્થાવરની હિંસાથી થતું પાપ લાગ્યા વગર રહેતું નથી. આ પ્રકારની યોજના શેષવ્રતોમાં પણ કરી લેવી જોઈએ.

" एतेष्वेव विपरामृशन्ति " આ પ્રકારે અસંયમી જીવો તે તે કાયની વિરાધનાજન્ય પાપકર્મના બંધથી તે તે કાયોના જીવોમાં ઉત્પન્ન થાય છે.

विशेषार्थ—एकेन्द्रिय जीव सूक्ष्म और बादरके भेदसे दो प्रकारके हैं। ये पर्याप्त और अपर्याप्त होते हैं। अपनी २ योग्य पर्याप्तियाँ जिन जीवोंकी पूर्ण हो जाती हैं वे पर्याप्त, और जिनकी पूर्ण नहीं होती वे अपर्याप्त कहलाते हैं। ये असंज्ञी ही होते हैं। इसी प्रकार द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय–विकलत्रय जीव तथा संज्ञी पञ्चेन्द्रिय और असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव भी पर्याप्त और अपर्याप्त होते हैं। विकलेन्द्रिय तीन असंज्ञी ही होते हैं, इनके मन नहीं होता। इस प्रकार ये सातों प्रकारके जीव पर्याप्त और अपर्याप्तके भेदसे चौदह प्रकारके होते हैं। जो असंयमी जीव किसी प्रयोजनवश या विना किसी प्रयोजनके इनकी विराधना करता है वह इन्हीं जीवों में अनेक प्रकार की पर्यायों को धारण करता है। सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों की न किसी द्वारा घात होती है न इनके द्वारा किसीकी घात होती है, फिर भी मनकी दुष्परिणति से हिंसा होती है। इस कारण टीकाकारने जीवके चौदह भेदो में उनका यहां निर्देश किया है। अथवा–इन जीवोंकी जो जिस जिस रूपसे विराधना करता है वह इन जीवों की विराधना से होनेवाले कर्मबन्धके कारण उनही जीवनिकायों में जन्म धारण कर उसी उसी प्रकारसे अनेक दुःखों का अनुभव करता है।

વિશેષાર્થ:—એકેન્દ્રિય જીવ સૂક્ષ્મ અને બાદરના ભેદથી બે પ્રકારે છે. તેઓ પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્ત છે. પોતપોતાની યોગ્ય પર્યાપ્તિ જે જીવોની સંપૂર્ણ થાય છે તે પર્યાપ્ત અને જેમની પર્યાપ્તિ પુરી નથી થતી તે અપર્યાપ્ત કહેવાય છે. આ જીવો અસંજ્ઞી હોય છે, આ પ્રકારે બે-ઇન્દ્રિય જીવ, ત્રણ-ઇન્દ્રિય જીવ ચાર-ઈન્દ્રિય જીવ, આ ત્રણ વિકલેન્દ્રિય જીવો, તથા સંજ્ઞિ-પંચેન્દ્રિય અને અસંજ્ઞિ-પંચેન્દ્રિય જીવ પણ પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્ત હોય છે. વિકલેન્દ્રિય ત્રણ અસંજ્ઞી જ હોય છે. તેને મન નથી હોતું. આ રીતે આ સાતે પ્રકારના જીવ પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્તના ભેદથી ચૌદ પ્રકારે થાય છે, જે અસંયમી જીવો કોઇ પણ પ્રયોજનવશ અથવા તો પ્રયોજન વગર તેની વિરાધના કરે છે તેઓ તે જીવોમાં અનેક પ્રકારની પર્યાયોને ધારણ કરે છે. સૂક્ષ્મ એકેન્દ્રિય જીવોની ન કોઈનાથી ઘાત થાય છે અને તે જીવો દ્વારા પણ કોઈની ઘાત થઈ શકતી નથી, તો પણ માત્ર મનની દુષ્પરિણતિથી હિંસા થાય છે, આ કારણે ટીકાકારે જીવના ચૌદ ભેદોમાં તેઓનો અહીં નિર્દેશ કરેલ છે. અથવા તે જીવોની જે જે પ્રકારે વિરાધના કરે છે તેઓ તે જીવોની વિરાધનાથી થનારા કર્મબંધને કારણે તેજ જીવનિકાયોમાં જન્મ ધારણ કરી તેવા તેવા પ્રકારે અનેક દુઃખોનો અનુભવ કરે છે.

किमर्थं सावद्यव्यापारान् करोतीत्याह 'गुरवः' इत्यादि। तस्य=नरकनिगोदादिकटुफलानभिज्ञस्य पुंसः कामाः शब्दादिविषया गुरवः=अनतिक्रमणीया दुस्त्यजतया लङ्घयितुमनर्हा इत्यर्थः, यो यस्यानतिक्रमणीयः स तस्य गुरुर्भवतीति तात्पर्यम्, यतः शब्दादयो दुस्त्यजा अतस्तत्प्राप्तये षट्कायोपमर्दनप्रवृत्तः स गुरुकामः पापमुपचिनोतीति भावः। पापोपचयाच्च किमित्याह—'ततः' इत्यादि, ततः=षड्जीवनिकायघातानन्तरं गुरुकामानन्तरं च स=गुरुकामी 'मारान्तः' मरणं मारः=

जीव इन सावद्य व्यापारोंको क्यों करता है ? इसका उत्तररूप "गुरवस्तस्य कामाः" यह वाक्य सूत्रकार कहते हैं। इसमें वे बतलाते हैं कि उसकी इच्छाएं प्रबल हैं। हिंसादिक सावद्य व्यापारों के करने में उसे शब्दादिविषयक इच्छाएँ निमित्त होती हैं। इन इच्छाओंके अधीन बना हुआ संसारी जीव सावद्य व्यापारों को करता हुआ "नरकनिगोदादिक के दुःखों को हमें सहन करना पडेगा" इस प्रकारके भयसे निर्मुक्त रहा करता है। बात भी सच है—जिन्हें सावद्य व्यापारोंके फलस्वरूप नरकनिगोदादिक के भयंकर दुःखोंके सहन करनेका कुछ भी विचार नहीं है ऐसे अज्ञानी प्राणियों की शब्दादिविषयक इच्छाएँ बलिष्ठ हों तो इस में आश्चर्यकी बात ही कौनसी है ?। उन प्रकारकी इच्छाओं का अधीन जीव इस लिये होता है कि वह उन्हें अज्ञानसे दुस्त्यज मान बैठा है। जिसका छोड़ना जिसे अशक्य होता है वह विषय उसे भारी मालूम देता है। अज्ञानी जीव शब्दादिक विषयोंको दुस्त्यज

જીવ આવાં સાવદ્ય વ્યાપાર શા માટે કરે છે? તેના ઉત્તરમાં "गुरवस्तस्य कामाः" આ વાકય સૂત્રકાર કહે છે. એમાં તેમણે બતાવ્યું છે કે એમની ઇચ્છાઓ પ્રબળ છે. હિંસાદિક પાપ કામો કરવામાં તેઓને શબ્દાદિવિષયક ઇચ્છાઓ નિમિત્ત બને છે. આ ઇચ્છાઓને આધીન બનેલા સંસારી જીવ સાવદ્ય વ્યાપારો કરતાં કરતાં 'નરક નિગોદાદિકનાં દુઃખ અમારે ભોગવવાં પડશે' આવા પ્રકારના ભયથી નિર્મુકત રહ્યા કરે છે. વાત પણ સાચી છે, જેઓને પાપાદિ વ્યાપારોના ફળસ્વરૂપ નરકનિગોદાદિકનાં ભયંકર દુઃખો સહન કરવાં પડશે એવો ખ્યાલ નથી એવા અજ્ઞાની પ્રાણીયોની શબ્દાદિવિષયક ઇચ્છાઓ જોરદાર હોય તો તેમાં કોઈ આશ્ચર્યની વાત નથી. આવી ઇચ્છાઓને આધીન થયેલા જીવો 'આ તજી શકાય તેવું કાર્ય નથી' એવું તે અજ્ઞાનથી માની બેઠા હોય છે. જેનું છોડવું જેઓને માટે અશકય હોય છે તે વિષય તેઓને મનભારે કઠીન લાગતો હોય છે. અજ્ઞાની શબ્દાદિક વિષયોને નહીં તજવાજોગ સમજે છે, એટલા માટે અસંયમિત જીવી

समझते हैं, इस लिये असंयमित जीव बन वे उन २ वैषयिक इच्छाओं की पूर्ति करनेके लिये षट्कायके जीवों का उपमर्दन करते हुए पापों का उपार्जन और वर्धन करते रहते हैं। इस प्रवृत्ति से वे "मारान्तः" जन्म मरण के चक्करसे नहीं छूटते हैं। "मरणं-मारः-आयुषो विनाशः"। 'मार' शब्दका अर्थ आयुका अंत-मरण है। वे जीव इसके भीतर ही रहते हैं, इससे परे नहीं होते हैं। परे होनेके साधनों से वे रिक्त-रहित हैं। जन्म-मरण के साधनों में ही जुटे हुए हैं। हिंसादिक पाप कर्मों से अथवा अपनी वैषयिक इच्छाओं के अनुसार प्रवृत्ति करनेसे संसार में किसी भी प्राणीका जन्म-मरणरूप बंधन नहीं छूटा है; न छूटेगा और न छूटता ही है। जन्म-मरणका अभाव उसी जीवको होता है कि जिस का भवान्तरोपग्राहि कर्म नष्ट हो चुका है। इस कर्म को नष्ट करनेके लिये इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करनेकी एवं संयमित जीवनके आराधनकी आवश्यकता है। इससे विपरीत प्रवृत्ति में यह कर्म गुरुतर बंधता है, जो जीवको बारंबार जन्म-मरणके चक्करमें डालता रहता है "जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च" यह सिद्धांत है। जिसका जन्म है उसका मरण है जिसका मरण है उसका जन्म है। इसी समस्त अभि-

બની તેઓ તે તે વૈષયિક ઇચ્છાઓની પૂર્તિ કરવા માટે છ પ્રકારના જીવોની હિંસા કરે છે અને તેથી થતું પાપ ઉપાર્જન કરે છે અને તેમાં વધારો કરતા રહે છે. આવી પ્રવૃત્તિથી તેઓ "मारान्तः" જન્મ મરણનાં ચક્કરમાંથી છૂટી શકતા નથી. "मरणं-मारः=आयुषो विनाशः"। 'मार' શબ્દનો અર્થ આયુષ્યનો અંત--મરણ છે, તે જીવ એની અંદર જ રહે છે. એનાથી છૂટા પડી શકતા નથી, છુટા થવાના સાધનોથી તે ખૂબ દૂર છે, જન્મ-મરણના સાધનો સાથે જ સંકળાયેલા રહે છે, હિંસાદિક પાપપ્રવૃત્તિનાં કર્મોથી અથવા પોતાની વૈષયિક ઇચ્છાઓ અનુસાર પ્રવૃત્તિ કરવાથી સંસારમાં કોઈપણ પ્રાણી જન્મ-મરણના બંધનથી છૂટ્યા નથી, ન તો છૂટી શકશે, અને ન છૂટે છે. જન્મ-મરણનો અભાવ તે જીવને જ થાય છે કે જેના ભવાન્તરોપગ્રાહિ કર્મો નાશ થયેલાં હોય છે. આ કર્મોનો નાશ કરવા માટે ઈન્દ્રિયો ઉપર વિજય પ્રાપ્ત કરવાની અને સંયમિત જીવનનું આરાધન કરવાની આવશ્યકતા છે. આનાથી વિપરીત પ્રવૃત્તિમાં આ કર્મ ગુરૂતર બંધાય છે જે જીવને વારંવાર જન્મ-મરણના ચક્કરમાં લઈ જાય છે. "जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु-र्ध्रुवं जन्म मृतस्य च" એ સિદ્ધાંત છે. જેનો જન્મ છે તેનું મરણ છે જેનું મરણ છે તેનો જન્મ પણ છે. આ બધા અભિપ્રાયને હૃદયમાં રાખીને

आयुषो विनाशस्तस्य अन्तः=मध्य एव वरीवर्ति, मृतो हि पुनर्भवान्तरोपग्राहिकर्म-सद्भावादुत्पद्यत एव, जातोऽपि पुनर्भवान्तरकर्मसत्त्वान्म्रियत एवेति, संसारे मज्जनोन्मज्जनमासादयत्येवेत्यर्थः । यद्वा मारः=कर्म संसारो वा, तस्यान्तर्वर्ती स भूयो जन्ममरणादिकं लभत एवेति, उक्तं च–

"मां मारयते यस्मान्ममारिभूतश्च मारयति वाऽन्तः ।
अनुसमयं मरणादपि, कर्म भवो वा भवेन्मारः ॥" इति ।

प्राय को हृदयमें रखकर टीकाकार कहते हैं कि—"मृतो हि पुनर्भवान्तरोपग्राहिकर्मसद्भावात् उत्पद्यत एव, जातोऽपि पुनर्भवान्तरकर्मसत्त्वात् म्रियत एव"।

ठीक ही है, मृत आत्माकी भवान्तरोपग्राही कर्म के सद्भावसे पुनः उत्पत्ति, और उत्पन्न हुए का उसी कर्मके सद्भावसे मरण होता है। अथवा –'मार' शब्दका अर्थ सामान्य कर्म या संसार है। असंयमी जीव वैषयिक सुख के वशवर्ती हो कर कर्मों का आस्रव करते हैं और बारंबार जन्ममरणजन्य दुःखों को झीलते रहते हैं, कहाभी है–

"मां मारयते यस्मान्ममारिभूतश्च मारयति वान्तः ।
अनुसमयं मरणादपि, कर्म भवो वा भवेन्मारः" ॥१॥

मार शब्दकी व्युत्पत्तिप्रदर्शक इस पद्य से यही बात टीकाकारने प्रदर्शित की है। इसमें मार–शब्दका अर्थ कर्म या संसार बतलाया है। जो जिसकी हिंसा करता है वह उसका वैरी होता है, वैरभावसे संसारका

ટીકાકાર કહે છે કે—"मृतो हि पुनर्भवान्तरोपग्राहि–कर्मसद्भावात् उत्पद्यते एव, जातोऽपि पुनर्भवान्तरकर्मसत्त्वात् म्रियते"।

ઠીક જ છે, મૃત આત્માની ભવાન્તરોપગ્રાહિ કર્મના સદ્‌ભાવથી ફરીથી ઉત્પત્તિ, અને ઉત્પન્ન થયેલાનું તે જ કર્મના સદ્‌ભાવથી મરણ થાય છે. અથવા 'मार' શબ્દનો અર્થ સામાન્ય કર્મ અગર સંસાર છે, અસંયમી જીવો વૈષયિક સુખોને વશ બની કર્મોનો આસ્રવ કરે છે અને વારંવાર જન્મ–મરણનાં દુઃખોને ભોગવતા રહે છે. કહ્યું પણ છે—

"मां मारयते यस्मान्ममारिभूतश्च मारयति वान्तः ।
अनुसमयं मरणादपि, कर्म भवो वा भवेन्मारः ॥"

ટીકાકારે એ જ માર શબ્દની વ્યુત્પત્તિપ્રદર્શક વાત આ પદ્યથી પ્રદર્શિત કરી છે. આમાં 'मार' શબ્દનો અર્થ કર્મ અથવા સંસાર બતાવવામાં આવેલ છે.

मारान्तर्वर्तनेनापि किं तस्येत्याह–'यत.' इत्यादि, यतो=यस्मात् सः=कामगुरुको मारान्तः=मुहुर्मुहुर्भवोपग्राहिकर्मान्तर्वर्ती मरणान्तर्वर्ती वा ततः=तस्मात् हेतोः सः दूरे =रत्नत्रयात्तत्कार्यभूतमोक्षाच्चदूरवर्ती भवतीत्यर्थः। यद्वा–सुखमिच्छन् हि कामान् सेवते, तत्सेवनाच्च मारान्तर्वर्तते, मारान्तर्वर्तनाद् हि जन्मजरामरणरोगशोकव्याकुलो मोक्षसुखाद्दूर एव तिष्ठतीति तात्पर्यम्। यतोऽयं मारान्तर्वर्ती तस्मात् सः=गुरुकामसेवी नैव अन्तः=शब्दादिविषयसुखस्य मध्ये नैव वर्तते, अद्यापि तत्स्पृहासमुल्लासेनानवाप्तेष्ट-विषयस्य विषयसुखज्ञानयुक्तस्य तस्य तत्तृप्त्यनुभवाभावप्रायत्वात्, नैव स दूरे= तस्माद्विषयसुखाद्विरम्य दूरवर्ती नैव भवति, तदभिलाषस्यापरित्यागादिति।

वर्धन होता है और इस वृद्धिसे वे दोनों परस्पर हिंस्य-हिंसक बनते रहते हैं।

जो मारान्तर्वर्ती है अथवा वैषयिक इच्छाओं के पराधीन है वह असंयमी जीव रत्नत्रयरूप धर्मसे, अथवा उसके कार्यभूत मोक्षसे भी दूरवर्ती है। यही बात सूत्रकारने " यतः स मारान्तस्ततः स दूरे " इस वाक्यसे प्रदर्शित की है। तात्पर्य यह है कि रत्नत्रयरूप धर्म अथवा उसके कार्यभूत मोक्ष प्राप्त करनेके लिये वैषयिक इच्छाओं पर विजय प्राप्त करना होता है। जब तक प्राणी इच्छाओं के अधीन बना रहता है तब तक मुक्ति का मार्ग सदा उससे दूर रहता है। इच्छाओं का निरोध मोक्षाभिलाषीके लिये इस लिये बतलाया है कि इस प्रकारकी प्रवृत्ति से उसकी आत्मामें एक प्रकारकी अपूर्व शक्तिकी जागृति होती है, जो इसे कर्मक्षय करनेमें विशेष सहायक होती है। भीरु व्यक्ति कर्मों के साथ

વેરભાવથી સંસારનું વર્ધન થાય છે અને આથી તે બન્ને પરસ્પર હિંસ્ય અને હિંસક બનતા રહે છે.

જે મારાન્તર્વર્ત્તી છે અથવા વૈષયિક ઇચ્છાઓને આધીન છે તે અસંયમી જીવ રત્નત્રયરૂપ ધર્મથી અથવા તેના કાર્યભૂત મોક્ષથી પણ દૂર ને દૂર રહે છે. આ જ વાત સૂત્રકારે " यतः स मारान्तस्ततः स दूरे ' આ વાકયથી પ્રદર્શિત કરી છે, તાત્પર્ય એ છે કે–રત્નત્રયરૂપ ધર્મ અથવા તેના કાર્યભૂત મોક્ષ પ્રાપ્ત કરવા માટે વૈષયિક ઇચ્છાઓ ઉપર વિજય પ્રાપ્ત કરવો જોઇએ. જ્યાં સુધી પ્રાણી ઇચ્છાઓને આધીન બની રહે છે ત્યાં સુધી મુક્તિનો માર્ગ સદાને માટે તેનાથી દૂર રહે છે. ઇચ્છાઓનો નિરોધ મોક્ષાભિલાષી માટે આ કારણથી બતાવવામાં આવેલ છે કે—આવા પ્રકારની પ્રવૃત્તિથી તેના આત્મામાં એક પ્રકારની અપૂર્વ શક્તિની જાગૃતિ થાય છે, અને તે કર્મક્ષય કરવામાં વિશેષ સહાયક બને છે.

संग्राम नहीं कर सकते। जो इन्द्रियों के दास हैं वे ही मुक्तिमार्ग में भीरु हैं। आत्मामें जो समय २ पर विषयोंकी अप्राप्ति से अशान्तिरूप संताप हो जाता है उसका वैषयिक इच्छाओं के दमन से सर्वथा अभाव हो जाता है। इस अभावकी प्रकर्षता की वृद्धि से आत्मा मुक्तिमार्गका सच्चा आराधक बन जन्म मरणके दुःखों से सदाके लिये छुटकारा पा जाता है। इसी लिये सूत्रकारने यहां पर मुक्तिमार्गसे दूर रहने में असंयमीके लिये इसे कारण बतलाया है। अथवा-जीव जब इन्द्रियों के अधीन होता है तभी तो वह मारान्तर्वर्ती होता है। कभी भी उसकी इस प्रकारकी प्रवृत्ति से भवोपग्राही कर्म का, अथवा उसके संसार का अभाव नहीं होता; प्रत्युत उसे उनके अन्तवर्ती ही रहना पड़ता है, अतः मुक्तिका मार्ग और मुक्ति सदा उससे दूर रहती है।

भावार्थ—संसारी जीव सुख प्राप्त करनेकी अभिलाषासे विषयोंको भोगता है। उससे वह मारान्तर्वर्ती होता है। मारान्तर्वर्ती होनेसे वह जन्म, जरा, मरण, रोग और शोकसे व्याकुल होता रहता है फिर उसे मोक्षसुखकी प्राप्ति कैसे हो सकती है? ' मोक्षसुखकी प्राप्तिके लिये रत्नत्रय धर्म की आराधना आवश्यक है। इस आराधना से तो वह

ભીરૂ પ્રાણી કર્મોની સાથે લડી શકતો નથી. જે ઇન્દ્રિયોનો દાસ છે તે જ મુક્તિ માર્ગમાં ભીરૂ છે, આત્મામાં જે સમય સમય પર વિષયોની અપ્રાપ્તિથી અશાંતિ-રૂપ સંતાપ થઇ જાય છે તેનો વૈષયિક ઇચ્છાઓના દમનથી સર્વથા અભાવ થઈ જાય છે. આ અભાવની પ્રકર્ષતાની વૃદ્ધિથી આત્મા મુક્તિમાર્ગનો સાચો આરાધક બની જન્મ મરણનાં દુઃખોથી સદાને માટે છુટકારો મેળવે છે. તેટલા માટે સૂત્રકારે આ જગ્યોએ મુક્તિમાર્ગથી દૂર રહેવામાં અસંયમી જીવો માટે તેને કારણ બતાવેલ છે. અથવા જ્યારે જીવ ઈન્દ્રિઓને આધીન થાય છે ત્યારે તે મારાન્તર્વર્ત્તી થાય છે. ક્યારેય પણ તેની આવા પ્રકારની પ્રવૃત્તિથી ભવોપગ્રાહી કર્મનો અથવા તેને સંસારનો અભાવ થતો નથી, પરંતુ તેને તેના વશ રહેવું પડે છે, તેથી મુક્તિનો માર્ગ અને મુક્તિ સદા તેનાથી દૂર રહે છે.

ભાવાર્થ:—સંસારી જીવ સુખ પ્રાપ્ત કરવાની અભિલાષાથી વિષયનો ભોક્તા બને છે, એથી કરી તે મારાન્તર્વર્તી બની રહે છે. મારાન્તર્વર્તી બનવાથી તે જન્મ, જરા, મરણ, રોગ અને શોકથી વ્યાકુળ થતો રહે છે તો ફરી તેને મોક્ષસુખની પ્રાપ્તિ કેવી રીતે બને? મોક્ષસુખની પ્રાપ્તિને માટે રત્નત્રય ધર્મની આરાધના થવી આવશ્યક છે. આ આરાધનાથી તો તે હજુ પણ વંચિત બની રહેલ છે,

अभी तक भी वंचित बना हुआ है अत एव-' नैव सोऽन्तनैंव दूरे ' अर्थात्-यह जीव जिस वजहसे मारान्तर्वर्ती है इसी लिये गुरुकामसेवी है। जब ऐसी वस्तुस्थिति है तो वह गुरुकामसेवी असंयमी जीव शब्दादिकविषयजन्य सुखोंके मध्यवर्ती तक भी नहीं है, क्यों कि अभी तक भी विषयजन्य सुखका अनुभव करनेवाला उसका ज्ञान एक तरहसे अभावरूप ही है। मध्यवर्ती तो तब वह माना जाता जब कि वैषयिक सुखों का अनुभव करते २ वह उनकी तृप्तिरूप पूर्णताके अनुभवके कुछ निकट आ जाता। पूर्णता के निकट तक आया हुआ वह इस लिये नहीं कहा या माना जा सकता कि अभी तक उसे इष्ट वैषयिक सुखोंके भोगने की स्पृहा का समुल्लास जो हो रहा है। जब तक उसे इष्ट विषयकी प्राप्ति नहीं होती है तब तक वह महा आकुलित रहा करता है। आकुलता में वैषयिकतृप्तिजन्य सुखकी प्राप्ति भी उसे नहीं होती है, अतः उसका ज्ञान इष्ट विषयकी प्राप्तिके अभावसे वैषयिक सुखानुभव से शून्य जैसा ही बना हुआ रहता है। यह मानी हुई बात है कि विषयों से तृप्ति जीवों को कभी नहीं होती है, एक के बाद एक विषय को भोगने की लालसा प्रतिक्षण उत्पन्न होती रहती है। जब यह हालत है तो फिर उसको तृप्तिरूप विषयभोगजन्य सुखकी पूर्णता कैसे

માટે જ-" नैव सोऽन्तनैंव दूरे " અર્થાત્-આ જીવ જે માટે મારાન્તવર્તી છે તે માટે ગુરૂકામસેવી છે. જ્યારે આ પ્રકારની વસ્તુસ્થિતિ છે તો તે ગુરૂકામસેવી અસંયમી જીવ શબ્દાદિકવિષયજન્ય સુખોના મધ્યવર્ત્તી સુધી પણ નથી, કારણ કે હજુ સુધી વિષયજન્ય સુખનો અનુભવ કરવાવાળું તેનું જ્ઞાન એક પ્રકારે અભાવરૂપ જ છે. મધ્યવર્તી તો તેને ત્યારે માનવામાં આવે કે જ્યારે વૈષયિક સુખોનો અનુભવ કરતાં કરતાં તે તેની તૃપ્તિરૂપ પૂર્ણતાના અનુભવની જરા નજીક આવે. પૂર્ણતાની નજીક આવેલ છે એમ તેને ન કહી શકાય કે માની શકાય, કારણ કે તેને હજુ સુધી ઇષ્ટ વૈષયિક સુખોને ભોગવવાની સ્પૃહાનો સમુલ્લાસ રહે છે. જ્યાં સુધી તેને ઈષ્ટ વિષયની પ્રાપ્તિ નથી થતી ત્યાં સુધી તે પોતે મહા વ્યાકુલ રહે છે. વ્યાકુલતામાં તેને વૈષયિકતૃપ્તિજન્ય સુખની પ્રાપ્તિ પણ થતી નથી. આથી તેનું જ્ઞાન ઈષ્ટ વિષયની પ્રાપ્તિના અભાવથી વૈષયયિક સુખાનુભવથી શૂન્ય જેવું બની રહે છે. આ સિદ્ધ થયેલી વાત છે કે વિષયોથી જીવોને તૃપ્તિ કદી પણ થતી નથી, એક પછી એક વિષયને ભોગવવાની લાલસા ક્ષણે ક્ષણે ઉત્પન્ન થતી જ રહે છે. જ્યારે આ હાલત છે ત્યારે તેને તૃપ્તિરૂપી વિષયભોગ-

मिल सकती है? जब इस प्रकारकी पूर्णताका अनुभव जीवको नहीं होता है तो वह जीव विषयसुखोंको भोगते २ उनके मध्यदेश तक प्राप्त हो चुका है, यह कैसे माना जा सकता है? क्यों कि वह तो अभी तक भी अपने को विषयसुखों के भोगने का प्रारम्भक ही मानता है, अतः उसके ज्ञानमें वैषयिक तृप्तिके अनुभवका अभाव सा ही झलकता रहता है। उसका ज्ञान जब तृप्ति की पूर्णता से ही सर्वथा वंचित हो रहा है तो वह उस तृप्ति के मध्यतक पहुंचा हुआ कैसे माना जा सकता है। उसमें तो अभी वैषयिक सुखों को भोगनेकी प्रारंभक दशाका ही भान हो रहा है। यही बात टीकाकारने "अद्यापि तत्स्पृहासमुल्लासेन अनवाप्तेष्टविषयस्य विषयसुखज्ञानयुक्तस्य तस्य तत्तृप्त्यनुभवाभावप्रायत्वात्" इन पंक्तियों में प्रदर्शित की है। अर्थात् अभी तक विषयसुखों की इच्छाके समुल्लास से, इष्ट विषयकी प्राप्ति से रहित विषयसुखजन्य ज्ञानसे युक्त उस जीवको वैषयिक तृप्तिके अनुभव की शून्यता जैसी है, इस लिये वह वैषयिक सुखके मध्यवर्ती नहीं है। वह गुरुकामसेवी विषयसुखसे विरक्त हो कर उनसे दूर भी नहीं होता है, क्यों कि अभी तक भी जो उसके उनके सेवनकी अभिलाषा बनी हुई है।

જન્ય સુખની પૂર્ણતા કેવી રીતે મળી શકે? જ્યારે આ પ્રકારની પૂર્ણતાનો અનુભવ જીવને થતો નથી તો પછી તે જીવ વિષયસુખોને ભોગવતાં ભોગવતાં તેના મધ્ય ભાગ સુધી પહોંચી ચુકેલ છે એ કેમ માની શકાય? કારણ કે તે તો હજુ સુધી પોતાને વિષયસુખો ભોગવવાનો પ્રારંભક જ માને છે, માટે તેના જ્ઞાનમાં વૈષયિક તૃપ્તિના અનુભવનો અભાવ જ જોવામાં આવે છે. એનું જ્ઞાન જ્યારે તૃપ્તિની પૂર્ણતાના અનુભવથી જ વંચિત રહેલ છે ત્યારે એને તૃપ્તિના મધ્ય સુધી પહોંચેલ છે એવું કઇ રીતે માનવામાં આવે, તેમાં તો હજુ વૈષયિક સુખો ભોગવવાની પ્રારંભક દશા ભાસી રહેલ છે. આ વાત ટીકાકારે "अद्यापि तत्स्पृहासमुल्लासेन अनवाप्तेष्टविषयस्य विषयसुखज्ञानयुक्तस्य तस्य तत्तृप्त्यनुभवाभावप्रायत्वात्" આ પંક્તિઓમાં પ્રદર્શિત કરેલ છે, અર્થાત્ હજુ સુધી વૈષયિક સુખોની ઇચ્છાના ઉલ્લાસથી ઇષ્ટ વિષયની પ્રાપ્તિથી રહિત વિષયસુખજન્ય જ્ઞાનથી યુક્ત તે જીવને વૈષયિક તૃપ્તિના અનુભવની ખામી દેખાઇ આવે છે, આ કારણે તે વૈષયિક સુખનો મધ્યવર્તી નથી, અને તે ગુરૂકામસેવી વિષયસુખથી વિરક્ત બની તેનાથી દૂર પણ થઇ શકતો નથી, કારણ કે હજુ તેના દિલમાં વિષયસેવનની અભિલાષા ભરી પડી છે.

अथवा यश्चापूर्वकरणेन भिन्नग्रन्थिको गुरुकामी स किं कर्मणो मध्ये वर्तते बहिर्वेति शिष्यजिज्ञासायामाह–'नैवे'त्यादि। सः नैव अन्तः=कर्मणो मध्ये न वर्तते तस्य ग्रन्थिभेदेन कर्मक्षयोपपत्तेरवश्यम्भावित्वात्, नैव=नापि दूरे–देशोनकोटिकोटीकर्मस्थितिकत्वात्।

अथवा—"नैव सोऽन्तर्नैव दूरे" इसका यह भी अर्थ होता है–अपूर्वकरण से जिसने रागद्वेषरूपी ग्रन्थि (गांठ) का भेद कर दिया है वह अविरतसम्यग्दृष्टि जीव भी गुरुकामसेवी है, क्यों कि अभी तक भी उसके किसी भी प्रकारका संयम नहीं है, अतः इस अवस्थामें शिष्य गुरुदेवसे प्रश्न करता है कि उस सम्यग्दृष्टि जीवको कर्म के मध्य में स्थित मानना चाहिये या कर्मसे बाहिर रहनेवाला मानना चाहिये?। इस प्रकारकी शिष्यकी आशंका का समाधान इन पंक्तियों में सूत्रकारने किया है, वे कहते हैं–उसे कर्मके मध्यवर्ती इस लिये नहीं मानना चाहिये कि उसके ग्रन्थिका भेद हो चुका है और ग्रन्थिभेद होनेसे उसके कर्मोंका क्षय आगे अवश्यंभावी है। मध्यवर्ती तो वह जब माना जा सकता था कि वह जीव यदि वहीं रहता; परन्तु ऐसा तो है नहीं, क्यों कि उसके कर्मोंका क्षय नियमसे होगा। कर्मों से दूर उसे इस लिये अभी नहीं माना जा सकता है कि उसके कुछ कम अन्तःकोटाकोटीसागरोपम कर्मों की स्थितिका सद्भाव है।

અથવા—"नैव सोऽन्तर्नैव दूरे" એનો એ પણ અર્થ થાય છે કે–અપૂર્વકરણથી જેણે રાગદ્વેષરૂપી ગાંઠને ભેદી નાખેલ છે તે અવિરતસમ્યગ્દષ્ટિ જીવ પણ ગુરૂકામસેવી છે, કારણ કે હજુ સુધી તેનામાં કોઈ પણ પ્રકારનો સંયમ નથી. આથી આ અવસ્થામાં શિષ્ય ગુરૂદેવથી પ્રશ્ન કરે છે કેઃ—આ સમ્યગ્દષ્ટિ જીવને કર્મના મધ્યમાં સ્થિત માનવો કે, કર્મથી બહાર રહેવાવાળો માનવો જોઈએ ? આ પ્રકારની શિષ્યની આશંકાનું સમાધાન એ પંક્તિઓમાં સૂત્રકારે કરેલ છે, તે કહે છે કે–તેને કર્મનો મધ્યવર્તી એટલા માટે નહિ માનવો જોઈએ કે તેની ગ્રંથિનો ભેદ થઈ ચુકેલ છે, અને ગ્રંથિભેદ થવાથી એના કર્મોનો ક્ષય આગળ અવશ્ય થવાનો છે. મધ્યવર્તી તો એ ત્યારે મનાતો કે તે જીવ ત્યાં ને ત્યાં સ્થિર રહેતો, પરંતુ એવું તો છે જ નહિ; કારણ કે તેના કર્મનો ક્ષય નિયમથી થવાનો જ. કર્મથી દૂર તેને એ ખાતર નથી માનવામાં આવતો કે તેને થોડાં ઓછાં અંતઃકોટાકોટી સાગરોપમ કર્મોની સ્થિતિનો સદ્ભાવ રહેલ છે.

यदि वा लब्धचारित्रोऽपि सः नैव अन्तः=कर्मणः संसारस्य वा मध्ये न वर्तते द्वादशकषायदूरवर्तित्वात्, नैव च दूरे, उत्कर्षतो मोक्षगमनस्य सप्ताष्टभव-ग्रहणानतिक्रमणात्।

यद्वा-य इमां द्वादशाङ्गीमर्थरूपेण यदा प्ररूपितवान् स किं तदा संसारस्यान्तर्बहिर्वाऽऽसीदितिजम्बूस्वामिप्रश्नमुत्तरयति-'नैवे'-त्यादि। स तदा नैव अन्तः=संसारमध्ये वर्तते स्म, तदानीं क्षीणघातिकर्मचतुष्टय-त्वात्, नापि दूरे=तदानीमपि अघातिकर्मणां चरमसमयापेक्षितत्वात् ॥ सू० १ ॥

अथवा-लब्धचारित्र भी वह सम्यग्दृष्टि जीव कर्म और संसार के मध्यवर्ती नहीं है, क्यों कि उसके अनंतानुबंधी आदि बारह प्रकारकी कषायों का अभाव हो चुका है। मोक्षसे दूरवर्ती इसलिये नहीं है कि वह उत्कृष्ट से सात आठ भवमें मुक्ति की प्राप्ति कर लेगा।

अथवा-जिन्होंने इस द्वादशांगरूप आगमकी अर्थरूपसे प्ररूपणा की है वे उस समय संसार के अन्तर्वर्ती थे या बहिर्वर्ती? इस प्रकार के श्री जम्बूस्वामीके प्रश्नका उत्तर श्रीसुधर्मास्वामी देते हुए कहते हैं-इस द्वादशांगरूप आगमकी अर्थरूपसे प्ररूपणा करनेवाले तीर्थङ्करादि परमात्मा न तो संसारके मध्यवर्ती थे और न संसार से दूर ही थे, क्यों कि उनके उस समय चार घातिया कर्मों का अभाव हो चुका था, इस लिये वे संसारके अन्तर्वर्त्ती नहीं थे, और बाकीके चार अघातिया कर्मों का सद्भाव था इसलिये उस समय वे संसार से बहिर्वर्ती भी नहीं थे ॥सू०१॥

અથવા—લબ્ધચારિત્ર પણ તે સમ્યગ્દૃષ્ટિ જીવ કર્મ તેમજ સંસારનો મધ્યવર્તી નથી, કેમકે તેને અનંતાનુબંધી આદિ બાર પ્રકારના કષાયોનો અભાવ થઈ ચુકેલ છે. મોક્ષથી દૂરવર્તી એ માટે નથી કે તે ઉત્કૃષ્ટથી સાત આઠ ભવમાં મુક્તિની પ્રાપ્તિ મેળવી લેશે.

અથવા-જેઓએ આ દ્વાદશાંગરૂપ આગમની અર્થરૂપથી પ્રરૂપણા કરેલ છે તેઓ તે સમયે સંસારને અન્તર્વર્તી હતા કે બહિર્વર્તી? આ પ્રકારના શ્રી જમ્બૂ-સ્વામીજીના પ્રશ્નનો ઉત્તર શ્રી સુધર્માસ્વામી આપતાં કહે છે કે—આ દ્વાદશાંગરૂપ આગમની અર્થરૂપથી પ્રરૂપણા કરવાવાળા તીર્થંકરાદિ પરમાત્મા ન તો સંસારના મધ્યવર્તી હતા તેમ સંસારથી દૂર પણ ન હતા. કેમ કે તેમને તે વખતે ચાર ઘાતી કર્મોનો અભાવ થઇ ચુકેલ હતો તેથી તેઓ સંસારના અન્તર્વર્તી ન હતા. અને બાકીના ચાર અઘાતીયા કર્મોનો સદ્‌ભાવ હતો, આ કારણે તે સમયે તેઓ સંસારથી બહિર્વર્તી પણ ન હતા. (સૂ૦ ૧)

यश्च प्राप्तसम्यक्त्वः संसारसागरतीरवर्त्ती स किं निश्चिनोति? इति दर्शयितुमाह –'से पासइ' इत्यादि ।

मूलम्–से पासइ फुसियमिव कुसग्गे पणुन्नं निवइयं वाएरियं, एवं बालस्स जीवियं मंदस्स अवियाणओ, कूराइं कम्माइं बाले पकुव्वमाणे तेण दुक्खेण मूढे विप्परियासमुवेइ, मोहेण गब्भं मरणाइ एइ, एत्थ मोहे पुणो पुणो ॥सू० २॥

छाया–स पश्यति पृषदिव कुशाग्रे प्रणुन्नं निपतितं वातेरितम्, एवं बालस्य जीवितं मन्दस्याविजानतः, क्रूराणि कर्माणि बालः प्रकुर्वाणस्तेन दुःखेन मूढो विपर्यासमुपैति, मोहेन गर्भं मरणाद्येति, अत्र मोहे पुनः पुनः ॥ सू० २ ॥

टीका–'स पश्यति' इत्यादि । सः=सम्यक्त्वमहिम्ना परिज्ञातसंसारासारोऽपनीतमिथ्यात्वजवनिकः प्रणुन्नं=सन्ततपूर्वापरपुद्गलोपचयात् प्रेरितं वातेरितं–वातेन=वायुना ईरितं=कम्पितं सत् कुशाग्रे=दर्भाग्रे निपतितं नि=नियतमधिकं वा पतितं पृषदिव=बिन्दुं यथा पश्यति, तस्यातिस्तोकसमयमात्रस्थितिकत्वात्, एवं=तथैव

जिस जीवको सम्यक्त्व प्राप्त हो चुका है ऐसा जीव नियम से इस संसाररूपी सागरके तीरवर्ती ही माना गया है। इसकी विचारधारा कैसी होती है? इस विषयको प्रकट करनेके लिये सूत्रकार सूत्र कहते हैं— 'से पासइ' इत्यादि ।

मिथ्यात्वरूपी जवनिका (पड़दा) के अभाव से प्राप्त हुए सम्यक्त्व के प्रभावसे जिसने संसारकी असारता अच्छी तरहसे जान ली है ऐसा वह सम्यग्दृष्टि जीव अज्ञानी प्राणीके जीवन को दर्भ की अनीपर पड़ी हुई ओसकी बिन्दुके समान जानता है। जिस प्रकार दर्भ की अनीपर ठहरी ओसकी बिन्दु अति चञ्चल होती है, जरा सा भी पवन का झोंका

જે જીવોને સમ્યક્ત્વ પ્રાપ્ત થઈ ચુકેલ છે તે જીવોને નિયમથી આ સંસારરૂપી સાગરનો તીરવર્તી માનવામાં આવેલ છે, તેની વિચારધારા કેવી હોય છે એ વિષયને પ્રગટ કરવા માટે સૂત્રકાર કહે છે–"से पासइ" ઈત્યાદિ.

મિથ્યાત્વરૂપી જવનિકા (પડદા) ના અભાવથી પ્રાપ્ત થયેલ સમ્યક્ત્વના પ્રભાવથી જેણે સંસારની અસારતા સારી રીતે જાણેલી છે, એવા તે સમ્યગ્દૃષ્ટિ જીવ અજ્ઞાની પ્રાણીના જીવનને દર્ભની અણી ઉપર પડેલા ઝાકળના બિંદુ સમાન માને છે. જે પ્રકારે દર્ભની અણી ઉપર પડેલા ઝાકળના બિંદુ અતિ ચંચળ હોય છે,

मन्दस्य=अल्पज्ञस्य मूढस्येति यावत् अविजानतः=नरकनिगोदादिकं कटुकफलं सोपक्रमायुर्वाऽनवबुध्यमानस्यात एव बालस्य=हिताहितप्राप्तिपरिहारानभिज्ञस्य जीवितं=जीवनं सोपक्रमायुर्वाऽतिचञ्चलं पश्यति=जानाति । परमार्थानभिज्ञः किं कुर्यादित्याह–'क्रूराणी'–ति क्रूराणि=घातुकानि कर्माणि गलकर्तनादीनि प्राणातिपातादीन्यष्टादशप्रकाराणि वा मनोवाक्कायैः प्रकुर्वाणः=समाचरन् बालः, तेन=प्राणातिपातादिजनितकटुकफलोत्पादकेन दुःखेन=शारीरमानसेन, दुःखजनकेन कर्मणा वा विविधयोनिषु भ्रामं भ्रामं मूढः=तत्तद्भवोपग्राहिकर्मजन्यकटुकफलान-

---

उसे क्षणमात्रमें भूमि पर गिरा देता है, वह बहुत समय तक वहां स्थिर नहीं रह सकती, वह तो बहुत ही थोडे समय तक वहां ठहरती है। उसी प्रकार अज्ञानी का जीवन भी वायु के तुल्य पूर्व और अपर काल सम्बन्धी कर्मपुद्गलोंसे सदा प्रेरित बना रहता है। ज्यों ही हवाके हल्के झोंके से दर्भ के अग्र भाग पर स्थित ओसबिन्दुके समान आयु-कर्म का अन्त आ जाता है, या किसी शस्त्रघातादिक का निमित्त मिल जाता है तो इसे भी विनष्ट होते देर नहीं लगती। यह भी अस्थिर और क्षणिक है। अज्ञानी के जीवनको दर्भ की अनी पर पड़ी हुई ओस की बिन्दुकी उपमा इस लिये दी है कि जिस प्रकार वह अति चञ्चल–अस्थिर है उसी प्रकार इसका जीवन भी, चाहे यह किसी भी गतिमें रहे; स्थिर नहीं है। सर्वत्र क्षणिकता का एकच्छत्र राज्य छाया हुआ है। चाहे यह नरकगति में रहे, चाहे निगोद में रहे, चाहे कहीं भी रहे; यह स्थिर नहीं।

પવનનો જરા સરખો પણ ઝપાટો લાગતાં તે ક્ષણમાત્રમાં જમીન ઉપર ફેંકાઈ જાય છે, તે ત્યાં લાંબા સમય સુધી સ્થિર રહી શકતું નથી, માત્ર થોડા સમય સુધી જ તે ત્યાં ટકે છે. તે જ પ્રકારે અજ્ઞાનીનું જીવન પણ પવનસદૃશ પૂર્વ અને અપર–કાલ સંબંધી કર્મપુદ્ગલોથી સદા ચંચળ રહે છે, જ્યારે પવનના સાધારણ ઝપાટાથી દર્ભની અણી ઉપર પડેલા ઝાકળના બિંદુની જેમ આયુ-કર્મનો અંત આવી જાય છે, અથવા તો કોઈ શસ્ત્રઘાત આદિ નિમિત્ત મળી જાય છે ત્યારે તેનો પણ નાશ થતાં વાર લાગતી નથી, આ પણ અસ્થિર અને ક્ષણિક છે. અજ્ઞાનીના જીવનને દર્ભની અણી ઉપર પડેલા ઝાકળબિંદુ સાથે ઉપમા એ માટે આપવામાં આવેલ છે કે જે પ્રકારે એ અતિચંચલ અને અસ્થિર છે એ જ પ્રકારે અજ્ઞાનીનું જીવન ગમે તે સ્થિતિમાં હોય છતાં સ્થિર રહેતું નથી. ક્ષણિકતાનું એકછત્ર રાજ્ય ચારે તરફ વ્યાપક છે, ગમે એ નરકગતિમાં રહે અગર નિગોદમાં રહે, ગમે તે સ્થળે રહે છતાં સ્થિર નથી.

शङ्का—सम्यग्दृष्टि जीव भी अपनी पूर्वपर्यायों में अनेक गतियोंमें परिभ्रमण करते हैं, तथा जब तक उन्हें मुक्ति का लाभ नहीं हुआ तब तक उनका जीवन भी तो इस तरहसे अस्थिर ही है; फिर यहां बाल-जीवन को ही क्यों अस्थिर बतलाया ?

समाधान—यद्यपि यह शङ्का ठीक है, फिर भी यहां पर जो अज्ञानी के जीवन को ही अस्थिर बतलाया है उसका खास मतलब है, और वह यह है कि अज्ञानी का जीवन समकित के अभाव के कारण स्थिर नहीं हो सकता, सम्यग्दृष्टि का जीवन तो समकित के सद्भावके कारण स्थिर हो जाता है। समकित के होने पर यदि वह अबद्धायुष्क है तो नियमसे वह वैमानिक देवों में उत्पन्न होता है और वहां से च्यव कर महाविदेहादिक क्षेत्रमें जन्म ले कर मुक्ति का लाभ प्राप्त करता है। इस तरहसे द्रव्य की अपेक्षा से उसका जीवन अस्थिर नहीं है, किंतु स्थिर ही है। परन्तु अज्ञानी का जीवन इस तरह का न होनेसे क्षणिक-अस्थिर है। अज्ञानी नरकनिगोदादिक के कटुक फल को जानता नहीं है। अपनी क्षण २ में व्यतीत होती हुई आयु का भी उसे कुछ भी ख्याल नहीं होता है। जैसा असमकिती जीव होता है समकिती जीव वैसा नहीं होता, वह तो शास्त्रादिकों के परिशीलन से या गुर्वादिक के निमित्त से

શંકા—સમ્યગ્દૃષ્ટિ જીવ પણ પોતાની પૂર્વ પર્યાયોમાં અનેક ગતિયોમાં પરિભ્રમણ કરે છે તથા જ્યાં સુધી તેને મુક્તિનો લાભ નથી થયો ત્યાં સુધી તેનું જીવન પણ તેવા પ્રકારે અસ્થિર છે ત્યારે અહિં બાલજીવનને જ શા માટે અસ્થિર બતાવ્યું ?

સમાધાન—જો કે આ શંકા ઠીક છે છતાં પણ આ સ્થળે જે અજ્ઞાનીના જીવનને અસ્થિર રૂપમાં બતાવેલ છે એનો ખાસ મતલબ છે, અને તે એ છે કે અજ્ઞાનીનું જીવન સમકિતના અભાવના કારણે સ્થિર બની શકતું નથી, સમ્યગ્દષ્ટિનું જીવન તો સમકિતના સદ્‌ભાવના કારણે સ્થિર બની જાય છે. સમકિત થવાથી જો તે અબદ્ધાયુષ્ક છે તો નિયમથી તે વૈમાનિક દેવોમાં ઉત્પન્ન થાય છે, અને ત્યાંથી ચ્યવીને તે મહાવિદેહાદિક ક્ષેત્રમાં જન્મ લઈ ને મુક્તિનો લાભ પ્રાપ્ત કરે છે. આ પ્રકારે દ્રવ્યની અપેક્ષાથી તેનું જીવન અસ્થિર નથી, બલ્કે સ્થિર જ છે. પરંતુ અજ્ઞાનીનું જીવન આ પ્રકારનું ન હોવાથી ક્ષણિક-અસ્થિર છે. અજ્ઞાની નરક-નિગોદાદિકના કડવાં ફળને જાણતો નથી, પોતાના ક્ષણે ક્ષણે વ્યતીત થતાં આયુષ્યનું પણ તેને ભાન હોતું નથી. જેમ અસમિકતી જીવ હોય છે તેમ સમકિતી જીવ હોતો નથી. તે તો શાસ્ત્રાદિકના પરિશીલનથી

नरकनिगोदादिक के दुःखों का ज्ञाता होता है, क्षण २ में व्यतीत होनेवाली अपनी आयु की एक २ घड़ी भी व्यर्थ नहीं खोता, समकित के सद्भावसे उसकी सफलता करता रहता है। इसी समस्त अभिप्राय को हृदयमें रख कर सूत्रकार ने "एवं बालस्स जीवियं मंदस्स अवियाणओ" यह सूत्रांश कहा है। बालका विशेषण "मन्द"को जो लिखा है, उसका तात्पर्य यही है कि जब वह मन्द नरकनिगोदादिक के कटुक फल को अथवा क्षण२ में बीतनेवाली अपनी आयुको नहीं जानता है तो फिर वह अपने हित और अहित की प्राप्ति एवं परिहारका ज्ञाता भी कैसे हो सकता है?। यहां पर यह शङ्का कोई कर सकता है कि मन्द प्राणी नरकनिगोदादिक एवं अपनी व्यतीत होती हुई आयु को नहीं जानता है, इसलिये वह यह भी नहीं समझता है कि मेरा हित किसमें है और अहित किसमें ? परन्तु सम्यग्दृष्टि भी तो ऐसा ही है तो फिर वह हितप्राप्ति और अहितके परिहार करनेमें समर्थ कैसे हुआ? सो ऐसी शङ्का करना ठीक नहीं; क्यों कि यह अभी बतला दिया गया है कि सम्यग्दृष्टि जीव शास्त्र के अनुशीलन से अथवा गुरुआदिक के उपदेश के निमित्त से नरकनिगोदादिक के दुःखों का तथा अपनी व्यतीत होती हुई आयुका ज्ञाता

અથવા ગુરૂ આદિના નિમિત્તથી નરક–નિગોદાદિકના દુઃખોનો જાણકાર બને છે, અને ક્ષણે ક્ષણે ઘટતા જતા પોતાના આયુષ્યની એકેક ઘડી પણ તે વ્યર્થ જવા દેતો નથી, સમકિતના સદ્‌ભાવથી એની સફળતા કરતો રહે છે. આ સમસ્ત અભિપ્રાયને હૃદયમાં રાખી સૂત્રકારે "एवं बालस्स जीवियं मंदस्स अवियाणओ" આ સૂત્રાંશ કહેલ છે. મન્દ આ વિશેષણ "बाल"ને ઉદ્દેશીને જે લખેલ છે એનો મતલબ એ છે કે જ્યારે તે મંદપ્રાણી નરકનિગોદાદિકનાં કડવાં ફળને અથવા તો ક્ષણ ક્ષણમાં ઘટતી જતી પોતાની આયુષ્યને નથી સમજતો તો ફરી તે પોતાના હિત અને અહિતની પ્રાપ્તિ તેમજ પરિહારનો જાણકાર કઇ રીતે બની શકે ? આ સ્થળે કોઈ એવી શંકા કરી શકે કે મંદપ્રાણી નરક–નિગોદાદિકને અને પોતાના વ્યતીત થતા જતા આયુષ્યને જાણતો નથી, માટે તે આ પણ નથી સમજી શકતો કે મારૂં હિત અને અહિત શામાં છે ? પરંતુ સમ્યગ્દૃષ્ટિ જીવ પણ તો એવો જ છે, ત્યારે તે હિતની પ્રાપ્તિ અને અહિતનો પરિહાર કરવામાં સમર્થ કેવી રીતે થાય છે ? એવી શંકા કરવી ઠીક નથી; કારણ કે હમણાં જ સમજાવવામાં આવ્યું છે કે–સમ્યગ્દૃષ્ટિ જીવ શાસ્ત્રના અનુશીલનથી અથવા ગુરૂ આદિકના ઉપદેશના નિમિત્તથી નરક–નિગોદાદિકનાં દુઃખોનો જ્ઞાતા થાય છે અને પોતાના વ્યતીત થતા આયુષ્યનો પણ જ્ઞાતા થાય છે. આ માટે તે

होता है। इसीलिये तो वह " समयं गोयम मा पमायए " इस प्रभुके वाक्यानुसार प्रमाद में अपना एक भी क्षण व्यर्थ नहीं जाने देता। सावधान हो कर ही प्रत्येक क्रियाओं को करता है जिससे उसकी आयुका एक २ क्षण सफल बने। वह जानता है-यह जीवन क्षणभंगुर है, इसकी सफलता जैसे भी हो सके वैसे कर लेने में ही बुद्धिमानी है।

परमार्थसे अनभिज्ञ बने हुए वे बालजीव गलकर्तनादि जैसी घातक क्रियाओं अथवा अठारह प्रकारके पापस्थानकरूप प्राणातिपातादिकों को मन, वचन एवं काय से आचरते हुए प्राणातिपातादिजनित और कटुक फलके उत्पादक शारीरिक और मानसिक दुःखों से, अथवा दुःखोंको देनेवाले कर्मों से अनेक योनियों में बारंबार जन्म-मरण रूप परिभ्रमण करते रहते हैं।

भावार्थ—जिन्हें हित और अहित का कुछ भी भान नहीं होता है ऐसे अज्ञानी जीव क्रूर कार्यों को करने में जरा भी नहीं हिचकते। इन्हें इस बात का कुछ भी ख्याल नहीं होता कि इन कार्यों के करने का अन्तिम परिणाम क्या होगा?। मानसिक, वाचिक और कायिक प्रवृत्ति उनकी ऐसे ही अधम गलकर्तनादि (गर्दन काटना आदि) रूप कार्यों के करनेमें लालसावाली बनी रहती है, इससे वे ऐसे २ अशुभ कर्मों का उपार्जन

" समयं गोयम मा पमायए " આ પ્રભુનાં વાકયાનુસાર પ્રમાદમાં પોતાનું એક પણ ક્ષણ નિરર્થક જવા દેતો નથી. સાવધાન બનીને દરેક ક્રિયાઓ કરે છે. જેથી તેના આયુષ્યનો એકેક ક્ષણ પણ સફળ બને, તે જાણે છે કે-આ જીવન ક્ષણ-ભંગુર છે તેની સફળતા જેટલી બને તેટલી સત્વર કરી લેવી તે બુદ્ધિમાનનું કામ છે.

પરમાર્થથી અજ્ઞાત એવો બાલજીવ ગલકર્તનાદિ જેવી ઘાતક ક્રિયાઓ અને અઢાર પ્રકારના પાપસ્થાનકરૂપ પ્રાણાતિપાતાદિકોને મન, વચન અને કાયાથી આચરીને પ્રાણાતિપાતાદિજનિત અને કટુકફળોના ઉત્પાદક શારીરિક તેમજ માનસિક દુઃખોથી અથવા દુઃખને દેવાવાળા કર્મોથી અનેક યોનિયોમાં વારંવાર જન્મ-મરણરૂપ પરિભ્રમણ કરતો રહે છે.

ભાવાર્થ—જેને હિત અને અહિતનું કંઈ પણ ભાન નથી એવો અજ્ઞાની જીવ ઘાતકી કાર્ય કરવામાં જરા પણ ડરતો નથી. તેને એ વાતનો કોઇ એવો ખ્યાલ નથી આવતો કે આ કાર્યનું અંતિમ પરિણામ કેવું આવશે. તેની માનસિક, વાચિક અને કાયિક પ્રવૃત્તિ ગર્દન કાપવા આદિ અધમ કાર્યો કરવામાં લાલ-સાયુક્ત બની રહે છે, એથી તે આવા આવા અશુભ કર્મોનું ઉપાર્જન અને વર્ધન

और वर्धन करते हैं कि जिनका परिणाम भविष्यमें उन्हें महादुःख दायक होता है। नरकनिगोदादिरूप अनेक योनियों में बार २ भ्रमण कर वे वहांकी अनन्त वेदनाओं को सहते २ अपने अमूल्य जीवन को बिलकुल नष्ट करते रहते हैं। अनेक प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक दुःखों की प्राप्ति जीवों को ऐसे ही कार्यों के फल स्वरूप होती है।

वे मूढ बालजीव अनेक योनियों में दुःखप्रद कर्म के कटुकफल से अनभिज्ञ होते हुए जिससे आत्मा का कल्याण होता है जो अनेक दुःखों का नाशक है और साक्षात् या परम्परारूप से जो इस जीव को मुक्तिमें ले जाता है ऐसे सुखजनक उस धर्मको दुःखरूप जानते हैं।

भावार्थ—जिस प्रकार कामला (पीलिया) रोग से दूषितदृष्टिवाला प्राणी अन्य शुभ्र (सफेद) पदार्थों को भी पीतरूप से ग्रहण करता है-जानता है, ठीक उसी प्रकार जो जीव अनादि मिथ्यात्वकर्म की वासना से ओतप्रोत होते हैं वे प्राणी भी सुखदायी धर्म को दुःखदायी रूपसे जानते हैं। यह उनकी मलिन आत्मा का ही दोष है।

अज्ञान से अन्धे हुए वे प्राणी दुःखजनक सावद्य व्यापारों को अपने दुःखको दूर करने के लिये करते हैं।

કરે છે કે જેનું પરિણામ ભવિષ્યમાં તેને મહાદુઃખદાયી થાય છે. નરક–નિગોદાદિરૂપ અનેક યોનિયોમાં વારંવાર ભ્રમણ કરી તે ત્યાંની અનંત વેદનાઓ સહન કરી પોતાનું અમૂલ્ય જીવનનો નાશ કરે છે, અનેક પ્રકારના શારીરિક અને માનસિક દુઃખોની પ્રાપ્તિ જીવોને એવાં કાર્યોના ફળસ્વરૂપ જ થાય છે.

તે મૂઢબાલજીવ અનેક યોનિયોમાં દુઃખપ્રદ કર્મોના કડવા ફળોનો અનભિજ્ઞ હોઈ જેનાથી આત્માનું કલ્યાણ થાય છે, જે અનેક દુઃખોનો નાશક છે અને સાક્ષાત્ અથવા પરંપરારૂપથી જે આ જીવને મુક્તિમાં લઇ જાય છે એવા સુખ–જનક તે ધર્મને દુઃખરૂપ જાણે છે.

ભાવાર્થ—જે પ્રકારે કમળાના રોગથી દૂષિત દૃષ્ટિવાળા પ્રાણી બીજા શુભ્ર પદાર્થોને પણ પીળારૂપે જુએ છે, એવા પ્રકારે જે જીવ અનાદિ મિથ્યાત્વ કર્મની વાસનાથી ઓતપ્રોત હોય છે તે પ્રાણી પણ સુખદાયી ધર્મને દુઃખદાયી જાણે છે, તે તેના મલિન આત્માનો દોષ છે.

અજ્ઞાનથી આંધળો બનેલો તે પ્રાણી દુઃખ આપવાવાળા સાવદ્ય–પાપકારી વ્યાપારોનો પોતાનાં દુઃખને દૂર કરવા માટે ઉપયોગ કરે છે.

भिज्ञो विपर्यासं=वैपरीत्यं सुखजनकधर्मादेर्दुखजनकादिरूपम् उपैति=प्राप्नोति, अज्ञानान्धो हि दुःखजनकसावद्यव्यापारं तदुपशमाय विदधातीत्यर्थः। अपि च मोहेन=तत्त्वविपर्यासरूपेणाविवेकेन, अत्रान्तर्भूतमोहस्य ग्रहणादादिमध्यवर्तिनो राग-द्वेषयोरपि ग्रहणं, तेन रागेण द्वेषेण वा, यद्वा–मिथ्यात्वकषायविषयाभिलाषमयेण मोहनीयेन कर्मणा, गर्भं=जननीजठरनिवासरूपं, तेन च मरणादि एति=गच्छति। मरणादीत्यत्रादिग्रहणात्—

भावार्थ—वे यह नहीं जानते हैं कि जिस प्रकार रक्त से दूषित वस्त्रकी शुद्धि रक्तसे नहीं होती है उसी प्रकार से सावद्य व्यापार जो स्वयं दुःखरूप या जीवों को दुःखदायी है, भला! उनके करने से दुःखों का उपशम कैसे हो सकता है। ऐसा बोध उन्हें हो भी कहां से; क्यों कि ये तो अज्ञानसे अंधे जो हो रहे हैं। इनके चर्मचक्षु भले ही निर्दोष हों, परन्तु जिनसे भले–बुरे का बोध होता है इनके उन ज्ञानचक्षुओं पर अज्ञान का आवरण पड़ा हुआ है।

तत्त्वों में विपरीताभिनिवेश का कारण जो अविवेकरूप मोह है उससे, अथवा राग और द्वेषसे, या मिथ्यात्व–कषाय–विषयाभिलाष–स्वरूप मोहनीय कर्म से वे बालजीव जननी के जठरमें रहनेरूप गर्भा-वस्था एवं मरणदशा को प्राप्त करते हैं। यहां पर अन्तर्भूत मोह के ग्रहणसे उसके आदि और मध्यवर्ती राग और द्वेष का भी ग्रहण हुआ है। मरणमें गृहीत आदिपदसे–

ભાવાર્થઃ—તે એમ નથી જાણતો કે જેવી રીતે લોહીથી દૂષિત થયેલા વસ્ત્રની શુદ્ધિ લોહીથી બનતી નથી તેવી રીતે પાપકારી વ્યાપાર જે સ્વયં દુઃખરૂપ અને જીવને દુઃખદાયી છે તેનો ઉપયોગ કરવાથી દુઃખોનું નિવારણ શી રીતે થઇ શકે, એવો ઉપદેશ એને લાગે પણ ક્યાંથી, કારણ કે એ તો અજ્ઞાનથી આંધળો જ થઇ રહેલ છે. એનાં ચર્મચક્ષુ ભલે નિર્દોષ છે પરંતુ જેનાથી ભલા–બુરાનો બોધ થાય તે જ્ઞાનચક્ષુઓ ઉપર અજ્ઞાનનો પડદો પડેલો છે.

તત્ત્વોમાં વિપરીત આગ્રહનું કારણ જે અવિવેકરૂપ મોહ છે તેનાથી, અથવા રાગ અને દ્વેષથી, અથવા મિથ્યાત્વ–કષાય–વિષયાભિલાષ–સ્વરૂપ મોહનીય કર્મથી તે બાલજીવ માતાના ઉદરમાં સ્થિતિરૂપ ગર્ભાવસ્થા એવં મરણ દશાને પ્રાપ્ત થાય છે. આ સ્થળે અન્તર્ભૂત મોહના ગ્રહણથી તેને આદિ અને મધ્યવર્તી રાગ અને દ્વેષનું પણ ગ્રહણ થયેલ છે. મરણમાં ગૃહીત આદિ પદથી–

" पुनरपि जननं पुनरपि मरणं, पुनरपि कर्मोपार्जनकरणम् ।
पुनरपि नरकनिगोदनिपातः, पुनरपि जननीजठरे पातः ॥१॥" इति।

पूर्वं मरणं पुनर्गर्भगमनं, ततो जन्म, ततः पापवृद्धिस्ततो भृशं हिंसादिक्रूर-कर्मप्रवृत्तिस्ततः कर्मणो भरस्तेन च नरकनिगोदादिपात इति मज्जनोन्मज्जनक्रमेण भूयो भूयो गर्भस्य मरणादेरेव प्राप्तिस्तस्य भवतीति तात्पर्यम् , अत एव-अत्र= अस्मिन् मोहे=अज्ञाने मोहनीये-मोहजन्ये गर्भजन्मजरामरणादिके कर्मभरे वा पुनः पुनः परिभ्रमति, स तेभ्यो न बहिर्निःसर्तुं प्रभवतीति भावः ।

" पुनरपि जननं पुनरपि मरणं, पुनरपि कर्मोपार्जनकरणम् ।
पुनरपि नरकनिगोदनिपातः, पुनरपि जननीजठरे पातः॥"

इस पद्योक्त जन्ममरणादि की परम्परा का ग्रहण किया गया है। अर्थात्—मरण, पुनः गर्भमें गमन, फिर जन्म, फिर पापों का वर्धन, उससे हिंसादिक क्रूर कर्मों में प्रवर्तन, उससे फिर कर्मों का उपार्जन, पश्चात् पुनः नरकनिगोदादिकमें पतन; इस प्रकार की जन्म मरणादि की परंपरासे इस बाल अज्ञानी जीव का कभी भी छुटकारा नहीं होता है। जिस प्रकार समुद्रादि जलाशयमें पड़ा प्राणी उसीमें उतराता (ऊपरआता) और डूबता है उसी प्रकार जीव को भी वार २ गर्भ, जन्म और मरणकी प्राप्ति होती रहती है । इसी आशय की पुष्टि सूत्रकारने "अत्र मोहे पुनः पुनः" इस सूत्रांश से की है ।

" पुनरवि जननं पुनरपि मरणं, पुनरपि कर्मोपार्जनकरणम् ।
पुनरपि नरकनिगोदनिपातः, पुनरपि जननीजठरे पातः ॥ "

આ પદ્યોક્ત જન્મમરણાદિની પરંપરાનું ગ્રહણ કરેલ છે. અર્થાત્—મરણ, પુનઃ ગર્ભમાં આવવું, ફરી જન્મ, ફરી પાપોનું વર્ધન, એથી હિંસાદિક ક્રૂર કર્મોમાં પ્રવર્તન, એથી ફરી કર્મોનું ઉપાર્જન, પછી પુનઃ નરકનિગોદાદિકમાં પતન, આ પ્રકારની જન્મમરણાદિ પરંપરાથી આ બાલ અજ્ઞાની જીવ ક્યારેય છુટકારો મેળવી શકતો નથી. જે રીતે સમુદ્ર આદિ જળાશયોમાં પડેલો પ્રાણી એમાં જ ઉપર આવે છે અને ડુબે છે આ રીતે આ જીવને પણ વારંવાર ગર્ભ, જન્મ અને મરણની પ્રાપ્તિ થતી રહે છે. આ આશયની પુષ્ટિ સૂત્રકારે "अत्र मोहे पुनः पुनः" એ સૂત્રાંશ દ્વારા કરી છે.

भावार्थ—संसारमें राग, द्वेष, अज्ञान और मोह आदि मलिन भाव इस जीवके सबसे प्रबल शत्रु हैं। बाह्य शत्रु तो इसके लिये एक ही भवमें दुःखदायी होते हैं; परन्तु ये तो इसे भव २ में अनन्त कष्टों को देते रहते हैं। इसके ज्ञानादि गुणों के निधान को लूट कर इसे नरक निगोदादिका अधिकारी बनाते रहते हैं। यह इन कारणों से जन्म मरणादिकी परम्परा से कभी छुटकारा नहीं पा सकता है। जिस प्रकार असहाय प्राणी समुद्रादि जलाशयमें पड़ने पर वहीं डूबता और उतराता है, वह जिस प्रकार वहां से बाहर नहीं निकल पाता, अन्तमें बेचारेका वहीं पर प्राणान्त हो जाता है। ठीक यही दशा इस अज्ञानी जीव की हो रही है। इस संसाररूपी समुद्रमें पड़ कर यह भी उसीमें डूबता रहता है और मरता रहता है। तप और संयमका प्रवहण प्राप्त किये विना इसका इससे उद्धार नहीं हो सकता है, अतः मोक्षाभिलाषीका कर्तव्य है कि वह इस रागद्वेषादिरूप शत्रुओं पर विजय प्राप्त करे। तभी यह अज्ञान-मोह-जन्य गर्भ, जन्म, मरणादिसे अथवा कर्मके भारसे रहित हो सकता है, अन्यथा-" अत्र मोहे पुनः पुनः " इन मोहादिरूप मलिन भावों में ही इसका जन्मजन्मान्तर का समय व्यतीत होता रहेगा।

ભાવાર્થ:—સંસારમાં રાગદ્વેષ અજ્ઞાન અને મોહ આદિ મલિન ભાવો આ જીવના બધાથી પ્રબળ શત્રુ છે, બાહ્ય શત્રુ તો તેને માટે એક જ ભવમાં દુઃખ-દાયી થાય છે, પરંતુ આ તો ભવોભવમાં અનંત કષ્ટોને દેતા રહે છે, તેના જ્ઞાનાદિ ગુણોના ભંડારને લુંટીને તેને નરક-નિગોદાદિના અધિકારી બનાવે છે, આ કારણોને લઈ જન્મ-મરણાદિની પરંપરામાંથી છુટકારો મેળવી શકતો નથી. જેવી રીતે અસહાય પ્રાણી સમુદ્ર આદિ જળાશયોમાં પડવાથી ત્યાં ડુબે છે અને ઉપર આવે છે, તે ત્યાંથી જેમ બહાર નીકળવા અસમર્થ હોય છે અને અંતે તેનો ત્યાંજ દેહાંત થાય છે, આવી જ દશા આવા અજ્ઞાની જીવોની થતી રહે છે. આ સંસારરૂપી સમુદ્રમાં પડી તે આજ રીતે તેમાં ડુબે છે અને મરે છે, તપ અને સંયમનો જહાજ ગ્રહણ કર્યા સિવાય તેનો ઉદ્ધાર થઈ શકતો નથી, આથી મોક્ષાભિલાષીનું કર્તવ્ય છે કે આવા રાગદ્વેષાદિરૂપ શત્રુઓ ઉપર વિજય પ્રાપ્ત કરે. ત્યારે જ તે અજ્ઞાનમોહજન્ય ગર્ભ જન્મ મરણાદિથી અથવા કર્મના ભારથી રહિત બની શકે છે; અન્યથા " अत्र मोहे पुनः पुनः " એ મોહાદિરૂપ મલિન વિચારોમાંજ તેનો જન્મજન્માન્તરનો સમય વ્યતીત થતો રહેશે.

यद्वा-अत्र=संसारे तत्तद्गतिषु बम्भ्रम्यमाणस्य पुनः पुनः कर्मबन्धस्तेन सांसारिकदुःखं, तेन मोहे=पूर्वोक्तस्वरूपे समुत्पद्यते, इति ॥ सू० २ ॥

ननु संसारपरिभ्रमणाभावश्च मोहाभावात्, स च विशिष्टज्ञानाविर्भावात्, सोऽपि च मोहाभावात्, ततश्चान्योन्याश्रयो दुर्वारः, मोहाभावाद्विशिष्टज्ञानाविर्भावः, तस्माच्च मोहाभावः, एवं च यावन्न विशिष्टज्ञानाविर्भावो जातो न तावत्कर्मोपशान्तये पुरुषस्य प्रवृत्तिः स्यादित्याकाङ्क्षायामर्थसंशयादपि प्रवृत्तिर्भवतीति दर्शयति—'संसयं' इत्यादि ।

"अत्र मोहे पुनः पुनः" इस वाक्यांशका टीकाकार इस प्रकारसे भी अर्थ करते हैं—इस संसारमें उन २ गतियोंमें भटकनेवाले इस अज्ञानी जीवको पुनः पुनः कर्मबन्ध, उससे सांसारिक दुःखोंकी प्राप्ति, उससे पुनः मोह में पतन; इस प्रकारके भ्रमणमें पड़ा ही रहना पड़ता है। सू. २।

मोहके अभाव से इस जीवका संसारमें परिभ्रमण नहीं होता है, परन्तु जब तक सम्यग्ज्ञान का आविर्भाव इस जीवके नहीं होता है तब तक मोहका अभाव नहीं हो सकता है, और सम्यग्ज्ञान का आविर्भाव भी जब तक मोहका अभाव नहीं होता है तब तक नहीं हो सकता। इस प्रकार तो यहां पर अन्योऽन्याश्रय दोष दुर्वार होगा; क्यों कि मोहाभावसे सम्यग्ज्ञानाविर्भाव होता है, और सम्यग्ज्ञानाविर्भाव से मोहाभाव, तब तो जब तक सम्यग्ज्ञानका आविर्भाव नहीं हुआ है तब तक कर्मोपशमनके लिये पुरुष की प्रवृत्ति नहीं हो सकती। इस प्रकारकी

"अत्र मोहे पुनः पुनः" આ વાક્યાંશનો ટીકાકાર આ પ્રકારે પણ અર્થ કરે છે-આ સંસારમાં તે તે ગતિઓમાં ભટકનાર તે અજ્ઞાની જીવને પુનઃ પુનઃ કર્મબંધ, તેનાથી સાંસારિક દુઃખોની પ્રાપ્તિ, પુનઃ મોહમાં પતન; આવા પ્રકારના ભ્રમણમાં જ પડયું જ રહેવું પડે છે. ॥ સૂ૦ ૨ ॥

મોહના અભાવથી આ જીવનનું સંસારમાં પરિભ્રમણ થતું નથી. પરંતુ જ્યાં સુધી સમ્યગ્જ્ઞાનનો આવિર્ભાવ આ જીવને થતો નથી ત્યાં સુધી મોહનો અભાવ થઇ શકતો નથી, અને સમ્યગ્જ્ઞાનનો આવિર્ભાવ પણ જ્યાં સુધી મોહનો અભાવ નથી થતો ત્યાં સુધી થતો નથી. આ પ્રકારે તો આ સ્થળે 'अन्योन्याश्रय' દોષ અવશ્ય થશે; કેમ કે મોહના અભાવથી સમ્યગ્જ્ઞાનનો આવિર્ભાવ થાય છે, અને સમ્યગ્જ્ઞાનના આવિર્ભાવથી મોહનો અભાવ થાય છે ત્યારે તો જ્યાં સુધી સમ્યગ્જ્ઞાનનો આવિર્ભાવ થતો નથી ત્યાં સુધી કર્મોપશમનને માટે પુરૂષની પ્રવૃત્તિ

मूलम्—संसयं परियाणओ संसारे परिन्नाए भवइ; संसयं अपरियाणओ संसारे अपरिन्नाए भवइ ॥ सू० ३ ॥

छाया—संशयं परिजानतः संसारः परिज्ञातो भवति, संशयमपरिजानतः संसारोऽपरिज्ञातो भवति ॥ ३ ॥

टीका—'संशय'-मित्यादिः संशयमुभयकोटिविषयकं ज्ञानमित्यर्थः, परिजानतः=अवबुध्यमानस्य संसारः=संशयविषयीभूतः परिज्ञातः=ज्ञपरिज्ञया स्वरूपेण फलेन च ज्ञातः सन् प्रत्याख्यानपरिज्ञया परित्यक्तो भवति, तथैव संशयम् अपरिजानतः संसारोऽपरिज्ञातः=ज्ञप्रत्याख्यानपरिज्ञयोरविषयो भवति। स चात्र संश-

---

आशङ्का होने पर सूत्रकार "अर्थ में संशय होनेसे भी प्रवृत्ति होती है" इस प्रकार उत्तररूप सूत्र कहते हैं—"संसयं" इत्यादि।

उभयकोटि को स्पर्श करनेवाले ज्ञानका नाम संशय है। तात्पर्य यह है कि—सामान्य धर्मका प्रत्यक्ष होने पर और विशेष धर्म का अप्रत्यक्ष होने पर ही संशयज्ञान होता है, जैसे-यह स्थाणु है या पुरुष? यहां पर पुरुष और स्थाणु का सामान्य धर्म उंचाई आदि है। विशेष धर्म पुरुष के-शिर, हाथ, पैर आदि हैं, तथा स्थाणु के वक्रता कोटर आदि हैं। देखनेवाले को उभयपदार्थगत सामान्य धर्म प्रत्यक्ष है और तद्गत विशेष धर्म अप्रत्यक्ष है, तभी उसका ज्ञान परस्परविरुद्ध उभय कोटि को स्पर्श करता है, और इसलिये वह ज्ञान संशय-स्वरूप होता है। इस प्रकार संशयके स्वरूप को जानने वाले व्यक्ति के लिये संशयज्ञान का विषयभूत यह संसार परिज्ञात होता है-ज्ञपरिज्ञाद्वारा स्वरूप एवं

થઇ શકતી નથી. આ પ્રકારની આશંકા થવાથી સૂત્રકાર "અર્થમાં સંશય હોવાથી પણ પ્રવૃત્તિ થાય છે." આ પ્રકારે ઉત્તરરૂપ સૂત્ર કહે છે–"संसयं" ઇત્યાદિ

ઉભય કોટિને સ્પર્શ કરવાવાળા જ્ઞાનનું નામ સંશય છે. તાત્પર્ય કે—સામાન્ય ધર્મ પ્રત્યક્ષ હોય વિશેષ ધર્મ અપ્રત્યક્ષ હોય ત્યારે સંશય જ્ઞાન થાય છે, જેમ–આ સ્થાણુ છે અગર પુરૂષ? આ જગ્યોએ પુરૂષ અને સ્થાણુનો સામાન્ય ધર્મ ઉંચાઇ આદિ છે, વિશેષ ધર્મ પુરૂષને માથું હાથ અને પગ આદિ છે. જ્યારે સ્થાણુ ને વાંકાપણું અને પોલાપણું આદિ છે. જોનારને બન્ને પદાર્થોના સામાન્ય ધર્મ પ્રત્યક્ષ છે અને તદ્‌ગત વિશેષ ધર્મ અપ્રત્યક્ષ છે ત્યારે જ તેનું જ્ઞાન પરસ્પરવિરૂદ્ધ અનેક કોટિને સ્પર્શ કરે છે, અને એથી જ તે જ્ઞાન સંશયસ્વરૂપ થાય છે. આ પ્રકારે સંશયના સ્વરૂપને જાણનાર વ્યક્તિ માટે સંશયજ્ઞાનનો વિષયભૂત આ સંસાર પરિજ્ઞાત થાય છે—જ્ઞ-પરિજ્ઞા

योऽर्थानर्थोभयकोटिकविचार एव गृह्यते, तत्रार्थो मोक्षस्तत्साधनं च रत्नत्रयम्। मोक्षे संशयासम्भवः, तस्य परमपदत्वेन सकलतैर्थिकैरभ्युपगमात्। मोक्षसाधने तु संशये सत्यपि प्रवृत्तिर्भवति, तत्संशयस्य प्रवृत्त्यङ्गत्वात्। तथाहि—'चारित्रं मोक्ष-साधनं भवति न वा?' इति संशये सति तन्निवारणार्थं सद्गुरूपदेशश्रवणे प्रवृत्ति-र्लोके दृश्यते।

एवमनर्थः संसारस्तत्कारणं च, तत्र संसारस्य तत्कारणस्य च संशय-

फलसे जाना गया यह संसार प्रत्याख्यानपरिज्ञा से परित्यक्त होता है। इसी प्रकार संशय को नहीं जाननेवाले व्यक्तिके लिये यह संसार अपरिज्ञात होता है–ज्ञ और प्रत्याख्यान–परिज्ञा का विषयभूत नहीं होता है। यहां अर्थ और अनर्थ इन उभयकोटिका विचारस्वरूप ही संशय ग्रहण किया है। यहां अर्थ–शब्दसे मोक्ष और उसके साधनभूत रत्नत्रयका ग्रहण हुआ है। मोक्षमें संशय का अभाव है; क्यों कि उसे परमपदरूप से अन्यमतानुयायियोंने भी स्वीकार किया है, परन्तु मोक्षके कारण–साधन में संशय है, तो भी यहां प्रवृत्ति होती है, क्योंकि तद्विषयक संशय उसमें प्रवृत्तिका कारण होता है। जैसे–" चारित्र मोक्षका साधन है या नहीं " इस प्रकार चारित्रमें मोक्ष साधनताविषय संशय होने पर उसे दूर करनेके लिये सद्गुरुके उपदेश का आश्रय करने की लोकमें प्रवृत्ति देखी जाती है।

इसी प्रकार अनर्थ अर्थात्—संसार और उसके कारण के विषय में

દ્વારા સ્વરૂપ એવં ફળથી જ્ઞાત આ સંસાર પ્રત્યાખ્યાન–પરિજ્ઞાથી પરિત્યક્ત થાય છે. આ પ્રકારે સંશયને નહિ જાણવાવાળી વ્યક્તિ માટે આ સંસાર અપરિજ્ઞાત થાય છે–જ્ઞ–પરિજ્ઞા અને પ્રત્યાખ્યાન–પરિજ્ઞાનો વિષયભૂત થતો નથી, આ સ્થળે અર્થ અને અનર્થ આ ઉભયકોટિના વિચારસ્વરૂપ જ સંશય માનવામાં આવ્યો છે. આ સ્થળે 'અર્થ' શબ્દથી મોક્ષ અને તેના સાધનભૂત રત્નત્રયનું ગ્રહણ કરવામાં આવેલ છે. મોક્ષમાં સંશયનો અભાવ છે, કારણ કે તેને પરમપદરૂપથી બીજા મતા-નુયાયિઓએ પણ સ્વીકાર કરેલ છે, પરંતુ મોક્ષના કારણો–સાધનોમાં સંશય છે, તો પણ પ્રવૃત્તિ થાય છે, કારણ કે તે વિષયનો સંશય તેમાં પ્રવૃત્તિનું કારણ બને છે. જેવી રીતે " ચારિત્ર મોક્ષનું સાધન છે કે નહિ ? " આ પ્રકારે ચારિત્રમાં, મોક્ષ–સાધનવિષયક સંશય થતાં તેને દૂર કરવા માટે સદ્દગુરૂના ઉપદેશનો આશ્રય કરવાની લોકમાં પ્રવૃત્તિ જોવામાં આવે છે.

આ જ પ્રકારે 'અનર્થ' અર્થાત્ સંસાર અને તેના કારણના વિષયમાં સંશય પણ

विषयत्वे सति ततो निवृत्तिरवश्यं भवति, अनर्थसंशयस्य निवृत्त्यङ्गत्वात्। 'संशयं परिजानतः' इत्यनेन परिज्ञानविषयीभूतस्य संशयस्य-अर्थोऽनर्थो वा विषयः, तत्र-अर्थविषयकसंशयस्यानर्थविषयकसंशयतो भेदात् संशयस्य प्रवृत्तिनिवृत्तिरूपं फलं भिन्नमेव भवति। विषयस्य ज्ञानभेदनियामकतया संशयपरिज्ञाने तदीयविष-

---

संशय भी उनकी निवृत्ति का कारण होता है, क्यों कि संसार और उसके कारणों में संशय होने पर ही उस ओर प्रवृत्ति होगी। प्रवृत्ति से उनके वास्तविक स्वरूप का बोध होगा। बोध होने पर उनसे निवृत्ति होगी। इस प्रकार परम्परारूपसे वह संशय निवृत्तिका कारण बनता है। यही बात "एवमनर्थः संसारस्तत्कारणं च" इत्यादि पंक्तियों में टीकाकारने स्पष्ट की है। अनर्थविषयक संशयके उसकी (अनर्थ की) निवृत्तिका कारण होने से, संसार और उसके कारणों के विषयमें संशय होने पर उनसे निवृत्ति अवश्य होती है।

"संसयं परियाणओ" इस पदसे सूत्रकार यह प्रकट करते हैं कि ज्ञानके विषयभूत संशय के अर्थ और अनर्थ, ये दो विषय हैं। वहां अर्थ-विषयक संशय का अनर्थविषयक संशय से भेद होनेसे उनके प्रवृत्ति रूप और निवृत्तिरूप फल परस्पर भिन्न ही हैं, क्यों कि विषयके ज्ञान-भेदका नियामक होनेसे संशय के विषयभूत पदार्थों का परिज्ञान अवश्यंभावी है।

તેની નિવૃત્તિનું કારણ બને છે, કારણ કે સંસાર અને તેના કારણોમાં સંશય થવાથી જ તે તરફ પ્રવૃત્તિ થવાની. પ્રવૃત્તિથી તેના વાસ્તવિક સ્વરૂપનો બોધ થશે. બોધ થવાથી તેનાથી નિવૃત્તિ થશે. આ પ્રકારે પરંપરારૂપથી સંશય, નિવૃત્તિનું કારણ બને છે, આ વાત "एवमनर्थः संसारस्तत्कारणं च" ઈત્યાદિ પંક્તિઓમાં ટીકાકારે સ્પષ્ટ કરી છે, અનર્થ-વિષયક સંશય (અનર્થની) નિવૃત્તિનું કારણ થાય છે, માટે સંસાર અને તેનાં કારણોના વિષયમાં સંશય થવાથી તેનાથી નિવૃત્તિ અવશ્ય થાય છે.

"संसयं परियाणओ" આ પદથી સૂત્રકાર એવું સમજાવે છે કે-જ્ઞાનના વિષયભૂત સંશયના અર્થ અને અનર્થ એ બે વિષયો છે. એનામાં અર્થ-વિષયક સંશયનો અનર્થવિષયક સંશયથી ભેદ હોવાથી એની પ્રવૃત્તિ-નિવૃત્તિ-રૂપ ફલ પરસ્પર જુદું જ છે, કેમકે વિષયજ્ઞાન ભેદનો નિયામક થાય છે, માટે સંશયનું પરિજ્ઞાન હોવાથી સંશયના વિષયભૂત પદાર્થોનું પરિજ્ઞાન અવશ્યંભાવી છે.

यकपरिज्ञानमवश्यम्भावि, ततश्च 'अयं संसारोऽनन्तदुःखकारणं भवति न वा?' इति संशयादनर्थभूतसंसारान्निवृत्तिर्भवति। संशयाऽपरिज्ञानं च सांशयिकविषयस्याऽपरिज्ञाने नैव भवति। एवं संसारोऽपरिज्ञातश्चेत्तर्हि न तस्मादनर्थभूतात्संसारान्निवृत्तिरिति समस्तसूत्रवर्तुलकार्थः॥ सू० ३॥

इससे "यह संसार अनंत दुःखों का कारण है अथवा नहीं?" इस प्रकारके संशय से अनर्थभूत संसारकी निवृत्ति होती है। संशय का अपरिज्ञान भी संशय के विषयभूत पदार्थों के अपरिज्ञानसे ही होता है। इस प्रकार यदि संसार अपरिज्ञात है तो उस अनर्थभूत संसार से निवृत्ति नहीं होती है। यह इस सूत्रका संक्षिप्त अर्थ है।

भावार्थ—शंकाकारने 'विशिष्ट ज्ञानके सद्भावसे मोहका अभाव और मोहके अभाव से विशिष्टज्ञान का सद्भाव होगा' इस प्रकार जो अन्योन्याश्रय दोष प्रकट कर 'कर्मोपशांतिके लिये पुरुषकी प्रवृत्ति जब विशिष्ट ज्ञानका उदय न होगा तब तक नहीं हो सकती' ऐसा कहा है, उसका प्रत्युत्तर ही इस सूत्रमें प्रकट किया है। वे कहते हैं कि अर्थसंशय से भी प्रवृत्ति होती है। मोक्षमें किसी को भी संशय नहीं है, क्यों कि समस्त कर्मोंका अत्यन्त अभावस्वरूपवाला मोक्ष प्रत्येक आस्तिक सिद्धान्तकारने स्वीकार किया है। संशय मोक्षके कारणों में हो सकता है; क्यों कि कोई ज्ञानसे, कोई अज्ञानके नाशसे और कोई परस्पर

આથી "આ સંસાર અનંત દુઃખોનું કારણ છે કે નહિ?" આ પ્રકારના સંશયથી અનર્થભૂત સંસારની નિવૃત્તિ થાય છે. સંશયનું અપરિજ્ઞાન સંશયના વિષયભૂત પદાર્થોના અપરિજ્ઞાનથી થાય છે. આ રીતે યદિ સંસાર અપરિજ્ઞાત છે તો તે અનર્થભૂત સંસારથી નિવૃત્તિ મળી શકતી નથી. એવો આ સૂત્રનો સંક્ષેપમાં અર્થ છે.

ભાવાર્થઃ—શંકાકારે "વિશિષ્ટ જ્ઞાનના સદ્‌ભાવથી મોહનો અભાવ અને મોહના અભાવથી વિશિષ્ટ જ્ઞાનનો સદ્‌ભાવ થશે" આ પ્રકારે 'अन्योन्याश्रय' દોષ પ્રગટ કરી કર્મોપશાન્તિને માટે પુરૂષની પ્રવૃત્તિ જ્યાં સુધી વિશિષ્ટ જ્ઞાનનો ઉદય ન થાય ત્યાં સુધી નથી થઈ શકતી, એવું કહ્યું છે, એનો પ્રત્યુત્તર જ આ સૂત્રમાં આપવામાં આવેલ છે. તેઓ કહે છે કે–અર્થસંશયથી પણ પ્રવૃત્તિ થાય છે. મોક્ષમાં કોઈને કશો પણ સંશય નથી; કેમ કે સમસ્ત કર્મોના અત્યંત–અભાવ–સ્વરૂપવાળા મોક્ષનો પ્રત્યેક આસ્તિક–સિદ્ધાંતકારે સ્વીકાર કરેલ છે. સંશય, મોક્ષના કારણોમાં થઈ શકે છે, કેમ કે કોઈ જ્ઞાનથી, કોઈ અજ્ઞાનના નાશથી અને કોઈ પરસ્પરનિરપેક્ષ જ્ઞાન અને ચારિત્રથી મુક્તિની

निरपेक्ष ज्ञान एवं चारित्र से मुक्ति की प्राप्ति होना बतलाते हैं, अतः कारणोंमें विवाद होने पर यह स्वाभाविक संशय होता है कि यह मान्यता ठीक है अथवा यह मान्यता ठीक है ?। इस प्रकार जब संशय होता है तो उसके निर्णयार्थ पुरुष की आकांक्षा उस ओर झुकती है। जिस प्रकार चना आदि बीजों के अंकुरोत्पादन करनेमें मनुष्य–किसान–को जब सन्देह होता है कि ये चने अंकुरोत्पादन कर सकते हैं या नहीं? तब यह उस उद्भूत संशय से प्रेरित हो कर उनकी परीक्षा करनेका उपक्रम करता है और उन्हें किसी वर्तन में पानी भर कर रख देता है। इस प्रकार संशय से प्रवृत्तिशील हो कर वह अपनी धारणा का निर्णय कर लेता है। इसी प्रकार मोक्षकारणक मान्यताएँ जब सन्देहके विषयभूत बनती हैं, तब मोक्षाभिलाषी जीव उससे प्रेरित होकर सद्गुरु आदि विशिष्ट ज्ञानियों के उपदेश आदिके श्रवण की ओर प्रवृत्ति करता है और उससे सत्यासत्यका निर्णय करता है।

पदार्थ में जब तक सन्देह नहीं होता है तब तक उसके निर्णय करने की ओर प्रवृत्ति नहीं होती है, अतः विशिष्ट ज्ञानके अभावमें भी प्रवृत्ति होती है, यह बात निश्चित है। "संसार और उसके कारण अनन्त दुःखदायी हैं अथवा नहीं" इस प्रकार जब मोक्षार्थी जीवको उनमें

પ્રાપ્તિ બતાવે છે, માટે કારણોમાં વિવાદ થવાથી આ સ્વાભાવિક સંશય થાય છે કે પહેલી માન્યતા ઠીક છે કે આ માન્યતા ઠીક છે. આવા પ્રકારનો સંશય જ્યારે થાય છે ત્યારે તેના નિર્ણય માટે પુરૂષની આકાંક્ષા તેની તરફ વળે છે. જેવી રીતે ચણા આદિ બીજોમાં અંકુરોત્પાદન કરવા વિષે મનુષ્ય–ખેડુત–ને સંદેહ ઉત્પન્ન થાય છે કે આ ચણા આદિ અંકુરોત્પાદન કરી શકશે કે નહિ ? ત્યારે તે ઉદ્ભવેલા તે સંશયના કારણે તેની પરીક્ષા કરવાના કામે લાગી જાય છે અને તેને જળ–પૂર્ણ કોઇ વાસણમાં રાખે છે. આ પ્રકારે સંશયથી પ્રવૃત્તિશીલ બની તે પોતાની ધારણાનો નિર્ણય કરી લે છે. એવી જ રીતે મોક્ષના કારણોની માન્યતાઓમાં જ્યારે સંદેહ ઉત્પન્ન થાય છે ત્યારે મોક્ષાર્થી જીવ તેનાથી પ્રેરિત થઇ સદ્ગુરૂ આદિ વિશિષ્ટ જ્ઞાનિઓના ઉપદેશ આદિના શ્રવણ કરવાની પ્રવૃત્તિ કરે છે અને એ દ્વારા સત્ય અને અસત્યનો નિર્ણય કરે છે.

પદાર્થમાં જ્યાં સુધી સંદેહ નથી થતો ત્યાં સુધી તેનો નિર્ણય કરવાની પ્રવૃત્તિ નથી થતી; માટે વિશિષ્ટ જ્ઞાનના અભાવમાં પણ પ્રવૃત્તિ થાય છે, એ વાત નિશ્ચિત છે. "સંસાર અને તેનું કારણ અનંત દુઃખદાયી છે કે નહિ" આવા

संशयवतः संसारः परिज्ञातो भवति, तत्परिज्ञानाच्च सर्वविरतिरिति तां निर्देष्टु-माह—'जे छेए' इत्यादि ।

मूलम्—जे छेए से सागारियं न सेवइ; कट्टु एवमवियाणओ बिइया मंदस्स बालया; लद्धा हुरत्था पडिलेहाए आगमित्ता आणविज्जा आणासेवणयाए-त्तिबेमि ॥ सू० ४ ॥

छाया—यश्छेकः स सागारिकं न सेवते, कृत्वा एवमविजानतो द्वितीया मन्दस्य बालता, लब्धानप्यर्थान् प्रत्युपेक्ष्याऽऽगम्याऽऽज्ञापयेदनासेवनतयेति ब्रवीमि ॥ सू० ४ ॥

सन्देह होता है तो वह उस सन्देहसे उसका निर्णय कर वहां से निवृत्त होता है, इस लिये विशिष्ट ज्ञानके अभावमें संशय से भी जीवकी जब पदार्थ के निर्णय करने की ओर प्रवृत्ति होती है तो इस प्रकारसे अन्योन्याश्रय दोष नहीं आता है; क्यों कि मोहके कारणभूत संसारादिक पदार्थों में 'ये सुखदायी हैं अथवा नहीं?' इस प्रकार के सन्देह के निर्णयार्थ उनमें प्रवृत्तिशील पुरुष के सन्देह दूर होते ही विरागपरिणति हो जायगी। इस परिणतिका नाम ही मोहका अभाव है, अतः सूत्रकार का यह कथन कि 'संशय को नहीं जाननेवाले के लिये संसार अपरिज्ञात है और उसे जाननेवाले के लिये वह परिज्ञात है' ठीक ही है ॥ सू० ३ ॥

संशयज्ञानवाले को संसार परिज्ञात होता है और उसके परिज्ञात होने पर उसे सर्वविरति का लाभ होता है, अतः उस विरति को सूत्रकार कहते हैं—'जे छेए' इत्यादि ।

પ્રકારે જ્યારે મોક્ષાર્થી જીવને તેમાં સંદેહ થાય છે તો તે એ સંદેહથી તેનો નિર્ણય કરી ત્યાંથી નિવૃત્ત થાય છે. આ કારણે વિશિષ્ટ જ્ઞાનના અભાવમાં સંશયથી પણ જ્યારે પદાર્થનો નિર્ણય કરવા તરફ જીવની પ્રવૃત્તિ થાય છે ત્યારે 'अन्यो-न्याश्रय' દોષ આવતો નથી. કારણ કે મોહના કારણભૂત સંસારાદિક પદાર્થોમાં 'એ સુખદાયી છે કે નહિ' એવા પ્રકારના નિર્ણય માટે તેનામાં પ્રવૃત્તિશીલ પુરૂષને સંદેહ દૂર થતાં જ વિરાગ-પરિણતિ થઈ જશે, આ પરિણતિનું નામ જ મોહનો અભાવ છે, માટે સૂત્રકારનું આ કથન કે 'સંશયને નહિ જાણનારા માટે સંસાર અપરિજ્ઞાત છે અને તેને જાણવાવાળા માટે તે પરિજ્ઞાત છે' ઠીક જ છે. ॥ સૂ. ૩ ॥

સંશયજ્ઞાનવાળાને સંસાર પરિજ્ઞાત થાય છે અને સંસાર પરિજ્ઞાત થવાથી તેને સર્વવિરતિનો લાભ થાય છે, માટે એ વિરતિને સૂત્રકાર કહે છે.—'જે છેએ' ઇત્યાદિ.

टीका—'यश्छेक' इत्यादि। यः कश्चित् छेकः=चतुरः परिज्ञातविषयकटुविपाक इत्यर्थः, स सागारिकं=मैथुनं देवमानुषतैरश्चरूपं न सेवते=न करोति, मनोवाकायैर्मैथुनपरायणो न भवतीत्यर्थः। यश्च मोहवशेन पुरुषवेदोदयान्मैथुनं सेवते स कृत्वा=विधाय गुर्वादिभिः पृष्टे सति एवं=मैथुनसेवनं, अविजानतः=अन्तर्भावितण्यर्थतया अविज्ञापयतः गुरवे चानिवेदयतस्तदपह्नुवानस्येत्यर्थः मन्दस्य=अज्ञस्य—अविदितमैथुनकटुकफलस्य द्वितीया=मैथुनसेवनादपरा मृषावादरूपा, यद्वा—द्वितीया =कृतपापापनोदार्थं पुनरकरणतयोत्थाय प्रायश्चित्तानाचरणरूपा, बालता=अज्ञानता भवति, उक्तञ्च—

जो कोई चतुर है, अर्थात् विषयों के कटुक विपाक का ज्ञाता है, वह देव, मनुष्य और तिर्यञ्चों के मैथुन का मन, वचन और काय से सेवन करने में परायण नहीं होता है। जो मोहके वशसे अथवा पुरुष वेद के उदयसे एकान्तमें कामसेवन करता है और गुरु आदिक के पूछने पर अपने कृत मैथुनको छिपाता है—नहीं प्रकट करता है, मैथुन के कटुक फलको नहीं जाननेवाले उस अज्ञके मैथुनसेवन से एक तो चतुर्थव्रत, भंगजन्य दोष लगता है, और पूछे जाने पर 'मैंने मैथुन सेवन नहीं किया है' इस प्रकार छिपाने से मृषावादरूप द्वितीय पापका भी वह पात्र होता है। अथवा कृत पाप को दूर करने के लिये 'मैं अब इस पाप का सेवन नहीं करूंगा' इस प्रकार के विचारसे युक्त होकर प्रायश्चित्त नहीं लेने से अज्ञानता का प्रसंग आता है। कहा भी है—

જે કોઈ ચતુર છે, એટલે વિષયોના કડવા વિપાકનો જાણકાર છે, તે દેવ, મનુષ્ય અને તિર્યંચોના મૈથુનને મન, વચન અને કાયાથી સેવન કરવામાં પરાયણ થતો નથી, જે મોહના વશથી અથવા પુરૂષ–વેદના ઉદયથી એકાંતમાં કામ–સેવન કરે છે અને ગુરૂ આદિના પુછવાથી પોતે કરેલ મૈથુન–પાપને તેનાથી છુપાવે છે–પ્રગટ કરતો નથી, મૈથુનના કડવાં ફળને ન જાણનાર તે અજ્ઞાની જીવને મૈથુન સેવનથી એક તો ચતુર્થવ્રત–ભંગજન્ય દોષ લાગે છે, અને જ્યારે તેને પુછવામાં આવે છે ત્યારે તે 'મેં મૈથુન સેવેલ નથી.' આ પ્રકારે છુપાવે છે, તેથી મૃષાવાદરૂપ બીજા પાપનો પાત્ર પણ તે થાય છે, અથવા કરેલા પાપને દૂર કરવા માટે 'હું હવે આવા પાપનું સેવન નહિ કરૂં' આ પ્રકારના સંકલ્પ કરીને પણ જો તેને માટે પ્રાયશ્ચિત્ત અંગીકાર કરતો નથી તો તેને અજ્ઞાનતાનો પ્રસંગ આવે છે. કહ્યું પણ છે—

" जे खलु विसए सेवइ, सेवित्ता वा णालोएइ, परेण वा पुट्ठो निण्हवइ, अहवा तं परं सएण दोसेण वा पाविट्ठयरेण वा दोसेण उवलिंपिज्जइ "-इति।

छाया---यः खलु विषयं सेवते, सेवित्वा वा नालोचयति, परेण वा पृष्टो निह्नुते, अथवा तं परं स स्वेन वा दोषेण पापिष्ठतरेण वा दोषेणोपलिम्पति, इति।

किमेतेनेत्याह-'लब्धा'-नित्यादि, लब्धानपि=प्राप्तानपि स्वाधीनानित्यर्थः, अर्थान्=शब्दादिविषयान्, अत्र द्वितीयार्थे प्रथमाऽऽर्षत्वात्।

यद्वा ' हुरत्था ' इति देशीभाषया ' बहिर्द्धा ' तेन लब्धान्=विषयान् चित्ताद्बहिर्विदध्यात्, अलब्धांश्च मनसाऽपि न चिन्तयेदिति भावः। प्रत्युपेक्ष्य=नरकनिगोदादिदुःखजनकत्वेन पर्यालोच्य, तानेव परत्रेह च कटुकफलप्रदतया आगम्य=

" जे खलु विसए सेवइ, सेवित्ता वा णालोएइ, परेण वा पुट्ठो निण्हवइ, अहवा तं परं सएण वा दोसेण पाविट्ठयरेण वा दोसेण उवलिंपिज्जइ " इति।

जो विषयसेवन करता है; सेवन करने पर उसकी आलोचना नहीं करता है; दूसरे-गुर्वादिकों के पूछने पर उसे छिपाता है, वह अपने पापिष्ठतर (गुरुतर) दोष से स्वयं उपलिप्त होता है।

इस लिये सूत्रकार कहते हैं कि मोक्षाभिलाषी का कर्तव्य है कि वह प्राप्त भी उन शब्दादिक विषयों का यह विचार कर त्याग करे कि-इन का विपाक जीव को नरकनिगोदादिकके दुःखों का जनक है, तथा इनके सेवनकर्ता, इस लोक और परलोक, दोनों लोकों में भयंकर दुःखों को भोगते हैं। जिस प्रकार यह स्वयं उनका कटुक विपाक जान कर उनसे

" जे खलु विसए सेवइ सेवित्ता वा णालोएइ, परेण वा पुट्ठो निण्हवइ, अहवा तं परं सएण दोसेण वा पाविट्ठयरेण वा दोसेण उवलिंपिज्जइ "-इति।

જે વિષયનું સેવન કરે છે, સેવન કરવા છતાં એની આલોચના કરતો નથી, બીજું ગુરૂ આદિના પુછવા છતાં છુપાવે છે તે પોતાના પાપિષ્ઠ તર (ગુરૂતર) દોષથી પોતે ઉપલિપ્ત થાય છે.

આ કારણે સૂત્રકાર કહે છે કે-મોક્ષાર્થીજનનું એ કર્તવ્ય છે કે તે પ્રાપ્ત પણ શબ્દાદિ વિષયોના આ પ્રકારે વિચાર કરી ત્યાગ કરે કે શબ્દાદિ વિષયોના વિપાક જીવને માટે નરક-નિગોદાદિક દુઃખોનું કારણ છે અને તેનું સેવન કરનાર આલોક અને પરલોકમાં ભયંકર દુઃખો ભોગવે છે. જે પ્રકારે તે પોતે તેના કડવા વિપાક જાણીને તેનાથી વિરક્ત થાય છે તેજ પ્રકારે તે બીજા

ज्ञात्वा अन्यान्=स्वातिरिक्तान् जनान् अनासेवनतया 'मैथुनमनासेवनीयम्' इत्यादिरूपेण आज्ञापयेत्=तीर्थंकराज्ञामवधार्योपदिशेत् । स्वयमपि तस्माद्विरमेदित्यर्थोऽपि । इति ब्रवीमीत्यधिकारसमाप्त्यर्थः ॥ सू० ४ ॥

अन्यदप्याह—'पासह' इत्यादि ।

मूलम्—पासह एगे रूवेसु गिद्धे परिणिज्जमाणे । इत्थ फासे पुणो पुणो, आवन्ती केयावन्ती लोयंसि आरंभजीवी, एएसु चेव आरंभजीवी। इत्थवि बाले परिपच्चमाणे रमइ पावेहिं कम्मेहिं, असरणे सरणंति मन्नमाणे, इहमेगेसिं एगचरिया भवइ । से बहुकोहे बहुमाणे बहुमाये बहुलोभे बहुरए बहुनडे बहुसढे बहुसंकप्पे आसवसक्की पलिउच्छन्ने उट्ठियवायं पवयमाणे, 'मा मे केइ अदक्खू' अन्नाणपमायदोसेणं सययं मूढे धम्मं नाभिजाणइ, अट्टा पया माणव! कम्मकोविआ जे अणुवरया अविज्जाए पलिमुक्खमाहु, आवट्टमेव अणुपरियट्टंति—त्तिबेमि ॥ सू० ५ ॥

छाया—पश्यत एकान् रूपेषु गृद्धान् परिणीयमानान् । अत्र स्पर्शान् पुनः पुनः, यावन्तः कियन्तो लोके आरम्भजीविनः, एतेष्वेव आरम्भजीविनः। अत्रापि बालः परिपच्यमानो रमते पापेषु कर्मसु, अशरणं शरणमिति मन्यमानः, इहैकेषामेकचर्या भवति । स बहुक्रोधो बहुमानो बहुमायो बहुलोभो बहुरजा (बहुरतो) बहुनटो बहुशठो बहुसंकल्प आस्रवसक्तिः पलितावच्छन्न उत्थितवादं प्रवदन्, 'मा मां केऽप्यद्राक्षुः' अज्ञानप्रमाददोषेण सततं मूढो धर्मं नाभिजानाति, आर्ताः प्रजा मानव! कर्मकोविदा येऽनुपरता अविद्यया परिमोक्षमाहुः, आवर्तमेवानुपरिवर्तन्ते, इति ब्रवीमि ॥ सू० ५ ॥

विरत होता है उसी प्रकार दूसरे जीवों को भी "ये मैथुनादि विषय सेवन करने योग्य नहीं हैं" इस प्रकार उनसे विरक्त होनेका उपदेश देता है। "इति ब्रवीमि" इस प्रकार यह विषय जैसा मैंने भगवान् के मुख से सुना है वैसा ही हे जम्बू! तुम से कहा है ॥ सू० ४ ॥

और भी कहते हैं-'पासह' इत्यादि—

જીવોને પણ "મૈથુનાદિ વિષયો સેવન કરવા યોગ્ય નથી" આ પ્રકારે તેનાથી વિરક્ત થવાનો ઉપદેશ આપે. "इति ब्रवीमि" આ પ્રકારે આ વિષય જે પ્રકારે મેં ભગવાનના મુખેથી સાંભળ્યો છે તે પ્રકારે જ હે જમ્બૂ! તમને કહેલ છે. ॥ સૂ० ૪ ॥

ફરીથી પણ કહે છે—'पासह' ઇત્યાદિ.

टीका—'पश्यत' इत्यादि। हे भव्यजीवाः ! यूयं रूपेषु=शुक्लादिषु चक्षुरिन्द्रियप्रत्यक्षविषयेषु, बहुवचननिर्देशेन शब्दादिषु=शब्द-गन्ध-रस-स्पर्शेषु कटुक-

हे भव्य ! देखो ये कितनेक संसारी जीव, चक्षु-इन्द्रियके विषयभूत शुक्लादि रूपों में, तथा अन्य इन्द्रियोंके विषयभूत शब्द, गन्ध, रस और स्पर्शरूप विषयों में कि जिनका सेवन इन जीवों को परिणाममें कटुक फल प्रदाता होता है उनमें कैसे मूर्च्छित हो रहे हैं। इन्द्रियों के विषयों में लुब्ध ये प्राणी उन २ विषयों को प्राप्त करने की ओर झुकी हुई इन्द्रियों द्वारा विषयों के सन्मुख और संसारके सन्मुख होते रहते हैं।

भावार्थ—इन्द्रियों में आसक्त प्राणी इन्द्रियों के विषयों में अधीन बन कर उनके सेवनजन्य परिणाम का कुछ भी विचार न करके निरन्तर उन्हीं में आसक्त होता रहता है। उसे इस बात का भान ही नहीं होता कि इन विषयों के सेवनसे इन्द्रियोंकी तृप्ति नहीं होगी। विषयाभिलाषा इन्द्रियों को अपने २ विषय की ओर ही अधिकाधिक रूपमें आकृष्ट करती रहती है। इस परिणति से वह अपने संसार की वृद्धि ही करता है। एक २ इन्द्रिय के विषय को सेवन करने वाले प्राणियों की वह दुर्दशा अपने नयनों से निहारता है फिर भी अपने को सुरक्षित मान रहा है, यही विषयों के सेवन की बलवत्ता है। वह

હે ભવ્ય ! જો તો ખરો; આ કેટલાક સંસારી જીવો ચક્ષુ ઇન્દ્રિયના વિષયભૂત શુકલાદિ રૂપોમાં તથા બીજા ઇન્દ્રિયોના વિષયભૂત શબ્દ, ગંધ, રસ, અને સ્પર્શાદિક વિષયોમાં કે જેનું સેવન તે જીવોને પરિણામમાં કડવા ફળ આપવાવાળું નિવડે છે એમાં કેવા મૂર્છિત થઈ રહેલ છે. ઇન્દ્રિયોના વિષયોમાં લુબ્ધ તે પ્રાણી તે તે વિષયોને પ્રાપ્ત કરવા તરફ ઢળતી ઈન્દ્રિયો દ્વારા વિષયોની સામે અને સંસારની તરફ ખેંચાઈ રહેલ છે.

ભાવાર્થઃ—ઈન્દ્રિયોમાં આસક્ત પ્રાણી ઈન્દ્રિયોના વિષયોને આધીન બની તેના સેવનના પરિણામનો કાંઇ પણ વિચાર કર્યા વગર હર-હંમેશ તેમાં આસકત બની રહે છે, તેને એ વાતનું ભાન થતું નથી કે તેવા વિષયોના સેવનથી ઈન્દ્રિયોની તૃપ્તિ થવાની નથી. વિષયોની અભિલાષા ઈન્દ્રિયોને પોતાના વિષય તરફ અધિકાધિક રૂપમાં ખેંચતી રહે છે. આ પરિણતિથી તે પોતાના સંસારની વૃદ્ધિ જ કરે છે. એક એક ઈન્દ્રિયના વિષયનું સેવન કરનાર પ્રાણીની દુર્દશા તે પોતાની આંખે જુએ છે છતાં પણ પોતાને સુરક્ષિત માને છે, એજ વિષયોના

तरविपाकजनकेषु एकान् कांश्चित् गृद्धान्=मूर्च्छितान् परिणीयमानान्-परि=सर्वतो नीयमानान्=इन्द्रियैर्विषयसम्मुखं संसारसम्मुखं परत्र नरकनिगोदादिषु वा प्राप्य-

देखता है कि (१) स्पर्शन-इन्द्रिय का मोही मत्त गजराज खड्डे में गिर कर अपने प्यारे जीवन का नाश कर देता है, (२) रसना-इन्द्रिय का कामी मत्स्य कांटेमें लगे हुए मांस की अभिलाषा में पड़ कर अपने प्राणों को खो देता है, (३) घ्राण-इन्द्रिय का वशीभूत बना बिचारा भ्रमर कालके गालमें पड़ जाता है। (४) चक्षुरिन्द्रिय का लोलुपी पतंग अपने प्राणों को दीपक की लौ में पड़ कर नष्ट कर देता है, (५) कर्ण-इन्द्रिय के विषय का लोभी मृग वधिकों द्वारा अपने भोले-भाले जीवन का उत्सर्ग कर देता है। परन्तु यह सब कुछ अपनी आंखों से देखते हुए भी पांचों इन्द्रियों के विषयोंमें मत्त हुआ यह प्राणी फिर भी नहीं चेतता, यही बड़ी विचित्रता है। विषयासक्त जीवों की विषयों की ओर प्रवृत्ति होनेसे संसारमें उनका पतन तो होता ही है, परन्तु वे परभवमें भी नरकनिगोदादिक में जा कर निवास करते हैं। यद्यपि "संसारसम्मुखं" इस पदसे ही नरक-निगोदादिक में उनका पतन सिद्ध होता है, फिर भी "परत्र नरकनिगोदादिषु" यह जो वाक्य पृथक् रूप से दिया है उसका अभिप्राय यह है कि अज्ञानी जीव अथवा चार्वाक (नास्तिक) जैसे भौतिकवादी प्रत्यक्ष

સેવનની બળવત્તા છે. તે જુએ છે કે-(૧) સ્પર્શન-ઇન્દ્રિયમાં મત્ત બનેલો **ગજરાજ** ખાડામાં પડી પોતાના પ્યારા જીવનનો નાશ કરી દે છે. (૨) રસના-ઈન્દ્રિયનું લોલુપી **માછલું** ગલ (કાંટા)માં લાગેલ માંસની અભિલાષામાં પડી પોતાના પ્રાણ ખોઈ બેસે છે. (૩) ઘ્રાણ-ઈન્દ્રિયને વશીભૂત બનેલ **ભમરો** કાળના ગાલમાં પડી જાય છે. (૪) ચક્ષુઇન્દ્રિયનો લોલુપ **પતંગીયો** દીપકશિખામાં પડી પોતાના પ્રાણ ન્યોછાવર કરી દે છે. (૫) કર્ણ-ઇન્દ્રિયના વિષયનો લોભી **મૃગ** શિકારીદ્વારા પોતાના ભોળા જીવનનો નાશ વહોરી લે છે. પરંતુ આ બધું પોતાની સગી આંખે જોતો થકો પણ પાંચો ઈન્દ્રિયોના વિષયોમાં મત્ત બનેલ આ માનવ પ્રાણી ચેતતો નથી, આ જ મહાન વિચિત્રતા છે. વિષયાસક્ત જીવોની વિષયો તરફ પ્રવૃત્તિ હોવાને લઈ સંસારમાં તેનું પતન થતું જ રહે છે, પરંતુ પરભવમાં પણ તેને નરક-નિગોદાદિકમાં નિવાસ કરવો પડે છે. જો કે "संसारसम्मुखं" આ પદથી જ નરક-નિગોદાદિકમાં તેનું પતન સિદ્ધ થાય છે, તો પણ "परत्र नरकनिगोदादिषु" આ જે વાક્ય પૃથક્રૂપે આપેલ છે તેનો અભિપ્રાય એ છે કે અજ્ઞાની જીવ અથવા ચાર્વાક (નાસ્તિક) જેવા ભૌતિકવાદી પ્રત્યક્ષ દૃશ્યમાન આ મનુષ્ય અને તિર્યંચ

माणान्, अस्मिन्नपि लोके महामोहान् पारदारिकादीन् आक्रोशवधवन्धनप्रहरणादिभिर्दुःखैर्वाह्यमानान्, अथवा—बाह्यरतिषु संसक्तान्, वध्यस्थाने वधार्थं परिणीयमानान्, यद्वा बुध्यमानान् रागद्वेषवद्धान् विषयस्रोतोभिस्तत्र तत्र परिणीयमानान्, अथवा

दृश्यमान इस मनुष्य और तिर्यञ्चगतिको ही संसार समझ रहे हैं और इनके दुःखों को ही दुःख मान रहे हैं, परन्तु हमें यह समझाना है कि तुम्हारी मान्यता से भी अधिक संसार और दुःखराशि है। अपने हाथ से सबको साढेतीन हाथ समझना जिस प्रकार गलत है उसी प्रकार अपनी मान्यतानुसार ही संसार एवं दुःख समझना भी गलत है। यहां पर दुःखों का वर्णन चल रहा है, अतः उन्हीं की प्रधानता प्रकट करने के लिये नरकनिगोदादिक गतियों का यहां पर निर्देश किया गया है। नरकों के दुःखों से भी बढ़कर निगोद गति के दुःख होते हैं, जिन्हें विषयासक्त जीव प्राप्त करते हैं—सहन करते हैं।

इस लोक में भी परदार—आसक्त महामोही जीव आक्रोश, वध, बन्धन, और प्रहरणादि—(शस्त्रादि)—जन्य दुःखों को तो प्राप्त करते हैं, साथमें उन्हें फांसी भी लटकना पड़ता है।

अथवा—जानकार भी विषयों में आसक्त प्राणी राग और द्वेष से बद्ध हो कर विषयस्रोतोंद्वारा उन२ विषयों की ओर झुकते रहते हैं। अथवा—वे

ગતિને જ સંસાર સમજે છે અને એનાં દુઃખોને જ દુઃખ માને છે, પરંતુ અમારૂં વક્તવ્ય એવું છે કે તેમની માન્યતાથી પણ અધિક સંસાર તથા દુઃખરાશિ છે. પોતાના હાથથી બધાને સાડાત્રણ (૩ા) હાથ સમજવા, એ જે રીતે ભૂલ-ભર્યું છે તેવા પ્રકારે પોતાની માન્યતાનુસાર જ સંસાર અને દુઃખ સમજવાં પણ ભૂલ ભરેલ છે, આ સ્થળે દુઃખોનું વર્ણન ચાલે છે માટે તેની પ્રધાનતા પ્રગટ કરવા નરકનિગોદાદિક ગતિઓનો આ જગ્યાએ નિર્દેશ કરેલ છે. નરકોનાં દુઃખોથી પણ વધારે નિગોદગતિનાં દુઃખો છે જેને વિષયાસક્ત જીવ પ્રાપ્ત કરે છે—સહન કરે છે.

આ લોકમાં પણ પરસ્ત્રી—આસક્ત જેવા મહામોહી જીવ દુઃખ, વધ, બંધન અને શસ્ત્રાદિજન્ય દુઃખોને તો પ્રાપ્ત કરે જ છે તેમ જ તેને ફાંસી પર પણ લટકવું પડે છે.

અથવા જાણકાર પણ વિષયોમાં આસક્ત પ્રાણી રાગ અને દ્વેષથી બંધાઈને વિષયસ્રોતોદ્વારા તે તે વિષયોની તરફ ખેંચાતો રહે છે. અથવા તે વિષયસેવનકર્મો

कर्मणा संसारसमुद्रे परिणीयमानान् पश्यत=प्रेक्षध्वम् । ते च विषयविषमूर्च्छिताः किमासादयन्तीत्याह–'अत्रे'–त्यादि, अत्र=इह संसारे इन्द्रियलोलुपाः स्पर्शान्=विषयासेवनजन्यदुःखानि पुनः पुनः लभन्त इत्यर्थः, आरम्भे वा प्रवर्तन्ते। के लभन्ते ? इत्याह–' यावन्त ' इत्यादि, लोके=सावद्यव्यापारप्रवृत्ते गृहस्थलोके यावन्तः कियन्तः आरम्भजीविनः=सावद्यव्यापारपरायणा गृहस्था नरकनिगोदादीनि पूर्वोक्तानि दुःखान्यनुभवेयुः । ये च गृहस्थाश्रिता द्रव्यलिङ्गिनस्तेऽपि दुःखभाजो भवन्तीत्याह—' एतेष्वि '–त्यादि, एतेष्वेव=सावद्यव्यापारतत्परेषु गृहस्थेष्वेव, आरम्भजीविनः=आरम्भेण=असंयमेन जीवितुं शीलं येषां ते आरम्भजीविनः=सेवार्थं

विषयसेवन–कर्मों द्वारा इस संसारसमुद्रमें धकेल दिये जाते हैं। विषयों में मूर्च्छित प्राणी क्या प्राप्त करते हैं ? इस विषयको प्रकट करने के लिये सूत्रकार कहते हैं–'अत्रे'–त्यादि, विषयलंपट मानव इस संसारमें विषय सेवनजन्य दुःखोंको बारंबार प्राप्त करते रहते हैं, अथवा आरंभादिकों में प्रवृत्ति करते रहते हैं। गृहस्थ–जीवन, विना सावद्य व्यापारोंमें प्रवृत्ति किये चल नहीं सकता, इस लिये सूत्रकार कहते हैं कि सावद्य व्यापारों में प्रवृत्तिशाली गृहस्थजन होते हैं, अतः इनमें जितने भी आरंभजीवी–सावद्य व्यापारों को करनेमें लगे हुए गृहस्थजन हैं वे पूर्वोक्त नरक निगोदादिकों के दुःखोंका अनुभव करनेवाले होते हैं। तथा गृहस्थों के आश्रित जो भी द्रव्यलिङ्गी साधु होते हैं वे भी दुःखों को प्राप्त करते हैं। यह बात " एतेष्वेव आरम्भजीविनः " इस सूत्रांश से प्रतिपादित किया है। आरंभ–असंयम से जीनेका जिनका स्वभाव होता है वे आरंभ-

---

દ્વારા આ સંસારસમુદ્રમાં ધકેલવામાં આવે છે. વિષયોમાં મુગ્ધ બનેલ પ્રાણી શું પ્રાપ્ત કરે છે? આ વિષયને પ્રગટ કરવા માટે સૂત્રકાર કહે છે—'अत्र' ઈત્યાદિ. વિષય–લંપટ મનુષ્ય આ સંસારમાં વિષય–સેવન–જન્ય દુઃખને વારંવાર પ્રાપ્ત કરતો રહે છે, અથવા આરંભ આદિમાં પ્રવૃત્તિ કરતો રહે છે. ગૃહસ્થ–જીવન, વગર સાવદ્ય વ્યાપારોમાં પ્રવૃત્તિ કર્યે ચાલતું નથી, આ માટે સૂત્રકાર કહે છે કે–સાવદ્ય વ્યાપારોમાં પ્રવૃત્તિશાળી ગૃહસ્થ માણસો હોય છે, માટે આમાં જેટલા પણ આરંભજીવી સાવદ્ય વ્યાપાર કરવામાં લાગેલ ગૃહસ્થ માણસો છે તેઓ પૂર્વોક્ત નરક–નિગોદાદિના દુઃખોના અનુભવ કરવાવાળા હોય છે, તેમજ ગૃહસ્થોના આશ્રિત જે દ્રવ્યલિંગી સાધુ હોય છે તેઓ પણ દુઃખોને પ્રાપ્ત કરે છે, આ વાત " एतेष्वेव आरम्भजीविनः " આ સૂત્રાંશથી પ્રતિપાદિત કરવામાં આવેલ છે. આરંભ–અસંયમથી જીવવાનો જેનો સ્વભાવ છે એ આરંભજીવી છે.

स्वेन सार्कं नीयमानगृहस्थैः सम्पादितेनाधाकर्मादिदोषदूषितेनाशनेनोपजीविनो दण्डिशाक्यादयो गृहस्थनिश्रया विहारिणोऽवसन्नपार्श्वस्थादयो वा मुनिवेषधारिणो द्रव्यलिङ्गिनो वा षड्जीवनिकायोपमर्दकाः समुत्पद्यन्ते।

यद्वा—एतेष्वेव=षड्जीवनिकायेष्वेव आरम्भजीविनो जायन्ते। यश्च सम्यग्दर्शनादिकमुपलभ्यापि विपरीतपरिणतेः साफल्यमनवाप्य चारित्रान्तरायोदयात्पुनरपि सावद्यानुष्ठायी भवतीति दर्शयति—

'अत्रापी'-त्यादि, अत्रापि=आर्हतसंयमाभ्युपगमेऽपि बालः=अविदिततत्कटुकफलः परिपच्यमानः=विषयतृष्णया परिपीड्यमानः, यद्वा 'परितप्यमानः'

जीवी हैं। सावद्य व्यापार में तत्पर इन गृहस्थों में ही ये षड्जीवनिकाय के उपमर्दक आरंभजीवी, अर्थात्-सेवाके लिये अपने साथ जो गृहस्थों को रखते हैं तथा उनके द्वारा निर्मापित और आधाकर्मादि दोषों से दूषित आहार से जो जीते हैं ऐसे दण्डिशाक्यादि साधु, अथवा गृहस्थों की निश्रा में विहार करनेवाले अवसन्न-पासत्थादिक, अथवा-मुनिवेषधारी द्रव्यलिङ्गी साधु उत्पन्न होते हैं। अथवा—ये आरंभजीवी दण्डिशाक्यादिक षड्जीवनिकायों में ही उत्पन्न होते हैं। जो सम्यग्दर्शनादिकको प्राप्त कर के भी अपनी विपरीत परिणति से उसकी सफलता को न पा कर पश्चात् चारित्र-अन्तराय (चारित्रमोहनीय) के उदय से पुनरपि सावद्य व्यापारों को करनेवाला होता है, उसको "अत्रापि बालः परिपच्यमानो रमते पापेषु कर्मसु अशरणं शरणमिति मन्यमानः" इस सूत्रांश से सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं कि—

સાવદ્ય વ્યાપારમાં તત્પર આ ગૃહસ્થોમાં જ ષડ્જીવનિકાયના ઉપમર્દક આરંભજીવી, અર્થાત્ સેવા માટે પોતાની સાથે જે ગૃહસ્થોને રાખે છે તથા એના દ્વારા નિર્માપિત અને આધાકર્માદિક દોષોથી દૂષિત આહારથી જે જીવે છે એવા દંડી શાકયાદિ સાધુ અથવા ગૃહસ્થોની નિશ્રામાં વિહાર કરવાવાળા અવસન્ન-પાસત્થાદિક અથવા મુનિવેષધારી દ્રવ્યલિંગી સાધુ ઉત્પન્ન થાય છે. અથવા— આ આરંભજીવી દંડી, શાકયાદિ ષડ્જીવનિકાયોમાં જ ઉત્પન્ન થાય છે.

જે સમ્યગ્દર્શનાદિકને પ્રાપ્ત કરીને પણ પોતાની વિપરીત પરિણતિથી તેની સફળતાને પ્રાપ્ત ન કરતાં પાછળથી ચારિત્રાંતરાય (ચારિત્રમોહનીય) ના ઉદયથી પુનઃ સાવદ્ય વ્યાપારના કરવાવાળા બને છે. સૂત્રકાર-" अत्रापि बालः परिपच्यमानो रमते पापेषु कर्मसु अशरणं मे शरणमिति मन्यमानः" આ સૂત્રાંશથી તેવા જીવોનું પ્રદર્શન કરે છે કે-દીક્ષાને અંગીકાર કરીને પણ જે સાવદ્ય

इतिच्छाया; परितप्यमानः=इष्टाप्राप्तावनिष्टाधिगमे चेष्टवियोगे वा तद्व्याकुलतया सर्वतोऽन्तर्बहिर्वा तप्यमानः, एवम् अशरणं=पचनपाचनादिसावद्याचरणमेव शरणं= श्रेयस्करमस्तीति मन्यमानः=बुध्यमानो, विषयस्पृहाजवनिकातिरोहितसम्यग्दर्शनः सन् तत्रैवासक्तो भवतीत्यर्थः, पापेषु=पापजनकेषु कर्मसु=सावद्यव्यापारेषु रमते= क्रीडति । 'पावेहिं कम्मेहिं' इत्यत्रार्षत्वात्सप्तम्यर्थे तृतीया । सावद्यव्यापारवतां गृहस्थादीनां का कथा? केचिन्मुनयोऽपि विषयविषघूर्णितान्तःकरणा अनाचार-माचरन्तीत्याह—'इहे'-त्यादि, इह=जिनशासने; एकेषां=शिथिलकर्मणां कुशील-पार्श्वस्थादीनाम् 'एकचर्या'-चरणं चर्यते वा चर्या, एकस्य चर्या एकचर्या-

दीक्षा स्वीकार करके भी जो सावद्य व्यापार के कटुक परिणाम से अप-रिचित है और विषयतृष्णा से सर्व प्रकार पीड़ित है, अथवा-इष्टकी अप्राप्ति और अनिष्टके सम्पर्क में, या इष्ट के वियोग होनेपर जो अत्यंत व्याकुल होने से सर्व प्रकार से अन्दर-बाहर सन्तप्त हो रहा है, तथा अशरण को ही अर्थात्-पचनपाचनादिकरूप सावद्य व्यापारों को ही 'ये शरण-श्रेयस्कर हैं' ऐसा मान रहा है, वह विषयरूपी जवनिका (पर्दा) से तिरोहित समकितवाला हो कर उन सावद्य व्यापारों में ही आसक्तचित्त होता है, और उन्हीं पापजनक कार्यों—सावद्य व्यापारों में क्रीडा करता रहता है—आनंद मानता रहता है । अरे सावद्य व्यापारमें लवलीन गृहस्थों की तो कथा ही क्या कहनी? परन्तु ऐसे भी कई मुनि होते हैं जो विषयरूपी विषसे घूर्णित-उद्भ्रान्त अन्तःकरण बन अनाचार सेवन करते हुए लजाते नहीं हैं । यही बात "इह एकेषाम् एकचर्या भवति"

વ્યાપારના કડવા પરિણામથી અપરિચિત છે અને વિષયતૃષ્ણાથી સર્વ પ્રકારે પીડિત છે, અથવા ઇષ્ટની અપ્રાપ્તિ અને અનિષ્ટના સંપર્કથી, અગર ઈષ્ટનો વિયોગ થવાથી જે અત્યંત વ્યાકુળ બનીને સર્વ પ્રકારથી અંદર અને બહાર સંતપ્ત બને છે, અને અશરણને જ અર્થાત્ પચન-પાચનાદિકરૂપ સાવદ્ય વ્યા-પારને જ આ 'શરણ-શ્રેયસ્કર-છે' એમ માને છે, તે વિષયરૂપી જવનિકા(પર્દા)થી તિરોહિત સમકિતવાળા બનીને તેવા સાવદ્ય વ્યાપારોમાં જ લવલીન બને છે, અને તેવાં જ પાપજનક કાર્યો-સાવદ્ય વ્યાપારોમાં રચ્યા-પચ્યા રહે છે-આનંદ માનતા રહે છે. અરે! સાવદ્ય વ્યાપારમાં તલ્લીન ગૃહસ્થોની તો વાત જ ક્યાં કરવી? પરંતુ એવા પણ કેટલાક દ્રવ્યલિંગી મુનિઓ હોય છે કે જે વિષયરૂપી વિષથી ઉદ્ભ્રાન્તચિત્ત બનીને અનાચારનું સેવન કરવામાં લજાતા નથી. આ વાત "इह एकेषाम् एकचर्या भवति" આ સૂત્રાંશથી સૂત્રકાર કહે છે—

एकाकिविहरणं भवति। एकचर्या प्रशस्ताप्रशस्ताभ्यां द्विधा, साऽपि पुनर्द्रव्यभाव-भेदात्प्रत्येकं द्विविधा। द्रव्यतः प्रशस्ता स्थविरकल्पिकस्य प्रतिमाप्रतिपन्नस्य श्रद्धा-द्यष्टगुणसम्पन्नस्य वा भवति, तदुक्तं स्थानाङ्गे—

"अट्ठहिं ठाणेहिं संपन्ने अणगारे अरिहइ एगल्लविहारपडिमं उपसंपज्जित्ताणं विहरित्तए, तंजहा–'सड्ढी पुरिसजाए (१), सच्चे पुरिसजाए (२), मेहावी पुरिसजाए (३), बहुस्सुए पुरिसजाए (४), सत्तिमं (५), अप्पहिगरणे (६), धितिमं (७), वीरियसंपन्ने (८)। (ठा. ८ सू.१)

इस सूत्रांश से सूत्रकार कहते हैं–इस जिनशासनमें शिथिल कर्मवाले कुशील पासत्थादिकों की एकचर्या होती है–एकाकी विहार होता है। आचरण करना या जो आचरित की जाती है वह चर्या है। एक की चर्या एकचर्या है। यह प्रशस्त और अप्रशस्त रूप से दो प्रकार की है। प्रशस्त और अप्रशस्त चर्या के भी द्रव्य और भावसे दो दो भेद हैं। बारह प्रकार की मुनिप्रतिमा को धारण करनेवाले, अथवा श्रद्धा आदि आठ गुण विशिष्ट स्थविरकल्पी साधुकी चर्या द्रव्यसे प्रशस्त चर्या है।

स्थानाङ्ग में यही विषय 'अट्ठहिं ठाणेहिं' इत्यादि सूत्र से कहा है। उसका अर्थ यह है–"आठ स्थानों से सम्पन्न अनगार एकाकिविहारप्रतिमा को धारण कर विहार करनेलायक है। वे आठ स्थान ये हैं—(१) श्रद्धी पुरुषजात, (२) सत्य पुरुषजात, (३) मेधावी पुरुषजात, (४) बहुश्रुत पुरुषजात, (५) शक्तिमान्, (६) अल्पाधिकरणवाला, (७) धृतिमान्, और (८) वीर्यसम्पन्न" [ठा. ८ सू० १]

આ જીનશાસનમાં શિથિલ કર્મવાળા કુશીલ પાસત્થાદિકોની એકચર્યા થાય છે—કુશીલ પાસત્થાદિકો એકલા વિહાર કરે છે. આચરણુ કરવું અગર જેનું આચરણુ કરવામાં આવે છે તે ચર્યા છે. એકની ચર્યા એકચર્યા છે. આ પ્રશસ્ત અને અપ્રશસ્ત રૂપથી બે પ્રકારની છે. પ્રશસ્ત અને અપ્રશસ્ત ચર્યાના પણુ દ્રવ્ય અને ભાવથી બે ભેદ છે. ૧૨–બાર પ્રકારની મુનિપ્રતિમાને ધારણુ કરવાવાળા અથવા શ્રદ્ધા આદિ આઠ ગુણુ સહિત સ્થવિરકલ્પી સાધુની ચર્યા દ્રવ્યથી પ્રશસ્ત ચર્યા છે. સ્થાનાંગમાં એ જ વિષય 'अट्ठहिं ठाणेहिं' ઈત્યાદિસૂત્રથી કહ્યો છે.

"આઠ સ્થાનોથી સંપન્ન અણુગાર એકાકિવિહારપ્રતિમાને ધારણુ કરી વિહાર કરવાને લાયક છે. એ આઠ સ્થાન આ છે—(૧) શ્રદ્ધી પુરૂષજાત, (૨) સત્ય પુરૂષજાત, (૩) મેધાવી પુરૂષજાત, (૪) બહુશ્રુત પુરૂષજાત, (૫) શક્તિમાન્, (૬) અલ્પાધિકરણુવાળા, (૭) ધૃતિમાન્, (૮) વીર્યસંપન્ન." (ઠા. ૮ સૂ. ૧)

छाया—अष्टभिः स्थानैः संपन्नोऽनगारोऽर्हति एकाकिविहारप्रतिमामुपसंपद्य विहर्तुं, तद्यथा-श्रद्धि पुरुषजातं (१), सत्यं पुरुषजातं (२), मेधावि पुरुषजातं (३), बहुश्रुतं पुरुषजातम् (४), शक्तिमत् (५), अल्पाधिकरणम् (६), धृतिमत् (७), वीर्य-सम्पन्नम् (८), इति ।

भावतः प्रशस्ता एकचर्या रागद्वेषरहितस्य भवति, भावतोऽप्रशस्तैकचर्या न भवति, सा च रागद्वेषसत्त्वेन स्यात्, भावस्त्वेकचर्यायां रागद्वेषासत्त्वम्, तयोरस-त्त्वे चाप्रशस्ताया अभावात्। द्रव्यतोऽप्रशस्तैकचर्या च गृहस्थपाखण्डिकादीनामव-सन्नपार्श्वस्थादीनां शिथिलकर्मणामनुपदवक्ष्यमाणक्रोधाद्यष्टदोषवतां भवति । प्रकृते

रागद्वेषरहित साधुकी चर्या भावसे प्रशस्त चर्या है। जिसका भाव अप्रशस्त है वह एकचर्या (एकाकिविहारिता) नहीं कर सकता, क्यों कि उसकी एकचर्या रागद्वेषके सद्भाव से होती है । भावभेदवाली एकचर्या में राग और द्वेषका सद्भाव नहीं होता है, इस लिये इनके असत्त्व में अप्रशस्तता नहीं आती है । तात्पर्य यह है कि अप्रशस्त-एक चर्या में "भावसे अप्रशस्त एकचर्या" यह भेद नहीं घटित होता है, क्यों कि भावों में अप्रशस्तता राग द्वेषके सद्भाव से ही आती है । जहां राग द्वेष के अभाव से एकचर्या होती है वह भाव से प्रशस्त एकचर्या है । राग द्वेष के निमित्त को ले कर जहां एकचर्या है वह भावसे एकचर्या नहीं है; किन्तु अप्रशस्त एकचर्या ही है । द्रव्यसे अप्रशस्त एकचर्या गृहस्थों, पाखंडियों एवं साधुसमाचारी से शिथिल पासत्थादिकों तथा अनुपद कहे जानेवाले क्रोधादिक आठ दोष वालों के होती है । प्रकृत (प्रकरण) में

રાગદ્વેષરહિત સાધુની ચર્યા ભાવથી પ્રશસ્ત ચર્યા છે. જેનો ભાવ અપ્રશસ્ત છે તે એકચર્યા. (એકાકિવિહારિતા) નથી કરી શકતો, કારણ કે તેની એકચર્યા રાગદ્વેષના સદ્‌ભાવથી થાય છે. ભાવભેદવાળી એકચર્યામાં રાગ અને દ્વેષનો સદ્‌ભાવ બનતો નથી, એ માટે તેના અસત્ત્વમાં અપ્રશસ્તતા આવતી નથી. તાત્પર્ય એ છે કે અપ્રશસ્ત એકચર્યામાં "ભાવથી અપ્રશસ્ત એકચર્યા" એ ભેદ બંધ બેસતો નથી; કારણ કે ભાવોમાં અપ્રશસ્તતા રાગદ્વેષના સદ્‌ભા-વથી જ આવે છે. જ્યાં રાગદ્વેષના અભાવથી એકચર્યા થાય છે તે ભાવથી પ્રશસ્ત એકચર્યા છે. રાગદ્વેષના નિમિત્તને લઇને જ્યાં એકચર્યા છે તે ભાવથી એકચર્યા નથી, પરંતુ અપ્રશસ્ત એકચર્યા જ છે. દ્રવ્યથી અપ્રશસ્ત એકચર્યા ગૃહસ્થો, પાંખડીઓ અને સાધુસામાચારીથી શિથિલ પાસત્થાદિક તથા અનુપદ કહેવામાં આવવાવાળા ક્રોધાદિક આઠ દોષોથી યુકત ને થાય છે. પ્રકૃત (પ્રકરણ) માં

चाप्रशस्तैकचर्याया एव प्रसङ्ग इति बोध्यम् । अप्रशस्तैकचर्याचारी कीदृशो भवतीत्याह—'स बहुक्रोधः' इत्यादि, सः=विषयसुखलोलुपोऽप्रशस्तैकचर्याचारी मुनिः बहुक्रोधः—बहवः क्रोधाः कोपा यस्य स बहुक्रोधः—अधिककोपवान्, बहुमानः=अतीवाभिमानी, बहुमायः=कुरुकुचादिभिरनल्पमायावान्, सर्वमिदमाहाराद्यर्थं विद्यते, अत एव बहुलोभः, अत एव बहुरजाः=अधिकपापी, यद्वा—'बहुरत'

अप्रशस्त एकचर्या का ही प्रसङ्ग है, अतः इस प्रकरण में अप्रशस्त एकचर्या का ही कथन समझना चाहिये। इस अप्रशस्त एकचर्यावाला व्यक्ति कैसा होता है? इसके लिये सूत्रकार "स बहुक्रोधः" इत्यादि पदों से उसका विवरण करते हैं–विषयसुखलोलुपी वह अप्रशस्त एकचर्याचारी मुनि बहुत क्रोधी होता है। बहुत है क्रोध जिसके वह बहुक्रोध है। यहां पर "बहवः क्रोधाः" ऐसा जो बहुवचन का प्रयोग किया है, वह क्रोध की अनेक जातियों का प्रदर्शक है। जघन्य मध्यम उत्कृष्ट भेदसे क्रोध तीन प्रकार का होता है। विषयसुखलोलुपी अप्रशस्त एकचर्याचारी मुनिके क्रोध का उत्कृष्ट प्रकार होता है। अथवा यह अल्पक्रोधी नहीं होता; किन्तु बहुत क्रोधी होता है। इस विवक्षा में भी क्रोधके तीन प्रकार होते हैं–अल्प क्रोध, मध्यम क्रोध और बहु क्रोध। यहां पर तीसरे प्रकार के क्रोधका ही ग्रहण किया गया है। इसी प्रकार–मान, माया और लोभादिकों में भी समझ लेना चाहिये। वह बहुतमानी होता है, बहुत मायावाला होता है, बहुत लोभी होता है।

અપ્રશસ્ત એકચર્યાનો પ્રસંગ જ છે. માટે આ પ્રકરણમાં અપ્રશસ્ત એકચર્યાનું જ કથન સમજવું જોઈએ. આ અપ્રશસ્ત એકચર્યાવાળી વ્યકિત કેવી હોય છે? તેને માટે સૂત્રકાર "स बहुक्रोधः" ઇત્યાદિ પદોથી તેનું વિવરણ કરે છે–વિષયસુખ લોલુપી તે અપ્રશસ્ત–એકચર્યાચારી મુનિ ઘણો ક્રોધી હોય છે. ઘણો ક્રોધ છે જેને તે बहुक्रोध છે. આ જગ્યાએ "बहवः क्रोधाः" એવો જે બહુવચનનો પ્રયોગ કરેલ છે તે ક્રોધની અનેક જાતીઓનું પ્રદર્શક છે. જઘન્ય, મધ્યમ અને ઉત્કૃષ્ટના ભેદથી ક્રોધ ત્રણ પ્રકારનો હોય છે. વિષય–સુખ–લોલુપી અપ્રસ્તએકચર્યાચારી મુનિને ક્રોધનો ઉત્કૃષ્ટ પ્રકાર થાય છે. અથવા તે અલ્પક્રોધી નથી હોતો; પરંતુ ઘણો ક્રોધી હોય છે. આ પ્રકારમાં પણ ક્રોધના ત્રણ પ્રકાર છે, અલ્પ ક્રોધ; મધ્યમ ક્રોધ, અને બહુ ક્રોધ. આ સ્થળે ત્રીજા પ્રકારના ક્રોધનો જ ગ્રહણ કરવામાં આવેલ છે. એ જ પ્રકારે માન, માયા અને લોભ આદિમાં પણ સમજી લેવું જોઈએ–તે ઘણો માની હોય છે, બહુ માયાવાળો હોય છે, ઘણો લોભી હોય છે. ઘણો લોભી થવાનું

इतिच्छाया; बहुरतः=आरम्भादिसंसक्तः, बहुनटः=मोहाय नट इव बहून् वेषान् विदधाति, तद्यथा-क्वचित्कूर्ची क्वचिज्जटी क्वचित् शिखी क्वचिच्च मुण्डी भूत्वा तत्र तत्र सम्मानादिसमासादनाय विविधवेषधारी तिष्ठतीत्याशयः। तथा बहुशठः बहुभिः प्रकारैः शाठ्ययुक्तः, किंच बहुसंकल्पः=बहून्-पूजां सत्कारमाहारादिकं च सततं संकल्पयति=प्रार्थयतीति बहुसंकल्पः, पुनः स कीदृशो भवतीत्याह-आस्रवे-

बहुलोभी होनेका कारण यह है कि वह यही समझता है कि यह सब कुछ खाने के लिये ही है। इस प्रकार से वह खाद्य वस्तुओं के संग्रह करने में अधिक लोलुपी होता है-अधिक पापी होता है। अथवा-बहुरत होता है-आरंभ-समारंभादिकों में आसक्त रहता है। जिस प्रकार अन्य प्राणियोंको मोहित करने के लिये नट अनेक प्रकारके वेषों को धरता है उसी प्रकार यह भी अन्य जीवों को अपने ऊपर मुग्ध करने के लिये अनेक प्रकार के वेषों को धारण करता है-कभी अपनी डाढी के बालों को बढ़ा लेता है, कभी अपने शिरकी जटाओं को बढा लेता है, कभी शिखा रखता है, कभी बालों का बिलकुल मुण्डन करा लेता है। इस प्रकार के अनेक वेषों को धर २ कर मान-सम्मान आदि प्राप्त करने का यह सदा अभिलाषी होता है। इसी दुर्वृत्ति से यह इस प्रकार के वेषों को समय २ धरता रहता है। यह बहुशठ होता है, अर्थात्-अनेक प्रकारों से अपनी शठता का उपयोग करता है। यह बहुसङ्कल्पी भी होता है-रात दिन यह यही विचार किया करता है कि मेरी प्रतिष्ठा

કારણ એ છે કે તે એવું સમજે છે કે આ બધું ખાવા માટે જ છે. આ રીતે તે ખાદ્ય વસ્તુઓનો સંગ્રહ કરવામાં અધિક લોલુપી બને છે માટે તે બહુરજ-અધિક પાપી હોય છે. અથવા બહુરત હોય છે-આરંભસમારંભાદિકોમાં આસક્ત રહે છે. બહુનટ હોય છે-જે પ્રકારે બીજા પ્રાણીઓને મોહિત કરવા માટે નટ અનેક પ્રકારના વેષો ધારણ કરે છે તેવી રીતે આ પણ બીજા જીવોને પોતાની તરફ મુગ્ધ કરવા માટે અનેક પ્રકારના વેષો ધારણ કરે છે-ક્યારેક એ પોતાની દાઢીના વાળ વધારે છે, ક્યારેક પોતાના શિરની જટાને વધારે છે, ક્યારેક માથામાં ચોટલી રાખે છે અને ક્યારેક માથાને ચોકખું સપાટ બનાવી દે છે, આ રીતે અનેક પ્રકારના વેષો ધારણ કરીને માન-સન્માનાદિ પ્રાપ્ત કરવા સદા અભિલાષી રહે છે. આ જ દુર્વૃત્તિથી એ સમય સમય પર આવા પ્રકારના વેષો ધારણ કરે છે. તે બહુશઠ હોય છે, એટલે-અનેક પ્રકારોથી પોતાની શઠતાનો ઉપયોગ કરે છે. તે બહુસંકલ્પી પણ હોય છે-રાત દિવસ તે એવો વિચાર કરે છે કે મારી

त्यादि, आस्रवसक्तिः=आस्रवेषु प्राणातिपातादिषु सक्तिः = सङ्गो यस्यास्ति स आस्रवसक्तिः=हिंसादिष्वसिसङ्गवान्, एवं पलितावच्छन्नः=पलितेन=आरम्भसमारम्भादिकर्मणा अवच्छन्नः=अवष्टब्धः-युक्त इत्यर्थः, अपि च उत्थितवादम्=उत्थितः= रत्नत्रयसमाराधनाय समुद्यतस्तस्य वाद इव वादस्तं लोकवञ्चनार्थं प्रवदन्, 'अहमपि भगवदुपदिष्टसंयमाचरणार्थं शासनोद्भासनाय च तत्परोऽस्मी'-त्येवं ब्रुवन् प्रतिषिद्धामप्येकाकिविहरणादिकामनुतिष्ठतीति भावः। स सावद्यव्यापारमाचरंश्चेतस्येवं

कैसे बढे, कैसे लोग मेरा सत्कार करें, किस विधि से मुझे उत्तम २ आहारादिक सामग्री का लाभ हो। यह आस्रवसक्ती-कर्मो के आस्रव के कारणभूत प्राणातिपातादिक कार्यों में आसक्तिवाला होता है। यह पलितावच्छन्न होता है। आरंभ-समारंभादिक कर्मोंका नाम पलित है। उससे युक्त होना सो पलितावच्छन्न है। यह उत्थितवाद का कथन करनेवाला होता है। रत्नत्रय की आराधना करनेके लिये उद्यत होनेका नाम उत्थित है। लोकों की वंचना के लिये इसका कहना सो उत्थितवाद है। इस उत्थितवाद को यह अपने में इस प्रकार से प्रकट करता है कि 'मैं भी भगवत्प्रतिपादित संयम की आराधना करने के लिये, और उस उस स्थान पर जिनशासन की प्रभावना के लिये कटिबद्ध हूं'। तात्पर्य यह है कि-इस प्रकार यह आगमनिषिद्ध एकाकिविहार करनेरूप मार्गका पथिक होता हुआ भी भगवत्प्रतिपादित संयममार्गके आराधक, और जिनशासन के प्रभावकरूप से अपनी ख्याति करता है। सावद्य

પ્રતિષ્ઠા કેવી રીતે વધે, કેવી રીતે લોકો મારૂં સન્માન કરે, કયા કાર્યથી મને ઉત્તમ ઉત્તમ આહારાદિ સામગ્રીનો લાભ મળે ? તે આ આસ્રવસક્તિ હોય છે-કર્મોના આસ્રવના કારણભૂત પ્રાણાતિપાતાદિક કાર્યોમાં આસકિત ધરાવનાર બને છે. તે પલિતાવચ્છન્ન હોય છે, આરંભસમારંભાદિક કર્મોનું નામ પલિત થાય છે. તેનાથી યુક્ત થવું તે પલિતાવચ્છન્ન છે. ઉત્થિતવાદનું કથન કરનાર બને છે, રત્નત્રયની આરાધના કરવા માટે ઉદ્યત થવું તેનું નામ ઉત્થિત છે, લોકોને છેતરવા માટે એનો ભાવ બતાવવો એ ઉત્થિતવાદ છે, આ ઉત્થિતવાદને તે પોતાનામાં એવા પ્રકારે પ્રગટ કરે છે કે 'હું પણ ભગવત્પ્રતિપાદિત સંયમની આરાધના કરવા માટે અને તે તે સ્થાન પર જીનશાસનની પ્રભાવના માટે કટિબદ્ધ છું.' તાત્પર્ય એ છે કે—આ પ્રકારે તે આગમનિષિદ્ધ એકાકીવિહાર કરવારૂપ માર્ગનો અનુગામી હોવા છતાં પણ ભગવત્પ્રતિપાદિત સંયમમાર્ગના આરાધક અને જીન શાસનના પ્રભાવકરૂપથી પોતાની ખ્યાતિ કરે છે. સાવદ્ય વ્યાપારો કરવા છતાં

चिन्तयति 'मा मा'-मित्यादि, केऽपि=अन्ये मां प्राणातिपातादिकारिणं प्रच्छन्नाधर्मविधायिनम् मदीयेन अज्ञानप्रमाददोषेण, अज्ञानं च प्रमादश्चाज्ञानप्रमादौ, तयोर्दोषस्तेन, 'अयं गुप्तपापमकार्यं करोति' इति मा अद्राक्षुः=नो पश्यन्तु-नो जानन्त्वित्यर्थः।

यद्वा—'अज्ञानप्रमाददोषेण' इति पदं 'मूढः' इत्यनेनापि मध्यमणिन्यायेन सम्बध्यते, अत्राज्ञानग्रहणेन दर्शनमोहनीयं च गृह्यते, ततो दर्शनमोहनीयेन चारित्रमोहनीयेन च मूढः=परमार्थानभिज्ञः सन् धर्मं=श्रुतचारित्रलक्षणं स्वीयधर्म-येन सकलकर्मक्षयो भवति तं नाभिजानाति=नावबुध्यते। एतेषां का दशा भवति? इत्याह—'आर्ताः' इत्यादि, हे मानव! हे भव्य! सदुपदेशार्हत्वात्तस्य, आर्ताः=विषयकषायैः पीडिताः प्रजाः-प्र=कर्षेण जायन्ते=चतुर्गतिषु कर्मणा समुत्पद्यन्त इति प्रजाः=

व्यापारों को करता हुआ भी यह अपने मनमें इस प्रकार से उस समय विचार करता है कि इस प्राणातिपातादिक अकार्य तथा गुप्तरूप से पाप करनेवाले मुझे और कोई न देख ले। इस प्रकार प्रमाद और अज्ञानके दोष से वह नहीं करने योग्य गुप्त पापों को करता है।

अथवा—"अज्ञानप्रमाददोषेण सततं मूढः" इस प्रकार से भी मध्यमणिन्याय से "अज्ञानप्रमाददोषेण" इस पदका सम्बन्ध "मूढ" पद के साथ करने से यह अर्थ होता है कि-यह दर्शनमोहनीय एवं चारित्रमोहनीय के उदय से निरन्तर परमार्थ से अनभिज्ञ हो कर समस्त कर्मोंका क्षय करनेवाले श्रुतचारित्ररूप अपने आत्मधर्म को नहीं जानता है। ऐसे व्यक्तियों की दशाका चित्रण करते हुए सूत्रकार कहते हैं— "आर्त्ताः" इत्यादि, हे भव्य! विषयकषायों से पीडित ऐसी प्रजा-

---

પણ એ પોતાના મનમાં તે વખતે એવા પ્રકારનો વિચાર કરે છે કે 'આવા પ્રાણાતિપાતાદિક અકાર્ય તથા ગુપ્તરૂપથી પાપ કરવાવાળા મને કોઇ જોઈ ન જાય?' આવી રીતે પ્રમાદ અને અજ્ઞાનના દોષથી તે નહિ કરવા યોગ્ય ગુપ્ત પાપો કરે છે.

અથવા—"अज्ञानप्रमाददोषेण सततं मूढः" આ પ્રકારે પણ મધ્યમણિન્યાયથી "अज्ञानप्रमाददोषेण" આ પદનો સંબંધ 'मूढ' પદની સાથે કરવાથી એવો અર્થ થાય છે કે તે દર્શનમોહનીય અને ચારિત્રમોહનીયના ઉદયથી નિરંતર પરમાર્થથી અનભિજ્ઞ બની સમસ્ત કર્મોના ક્ષય કરવાવાળા શ્રુત-ચારિત્રરૂપ પોતાના આત્મધર્મને જાણતો નથી. આવી વ્યક્તિઓની દશાનું વર્ણન કરતાં સૂત્રકાર કહે છે— "आर्त्ताः"—ઈત્યાદિ. હે ભવ્ય! વિષયકષાયોથી પીડિત એવી પ્રજા-પ્રાણી, કર્મકોવિદ-

प्राणिनः, कर्मकोविदाः-कर्मणि=आरम्भसमारम्भादौ कोविदाः=दक्षास्तत्परा इत्यर्थः, न तु धर्माचरणे, ये च अनुपरताः=सावद्यव्यापारेभ्योऽपराङ्मुखाः, अविद्यया= रत्नत्रयं विद्या, तद्विपरीता अविद्या, तया परिमोक्षं परि=सर्वतो मोक्षम्=आत्मनः कर्मापनयनम्, आहुः=कथयन्ति । ते धर्मानभिज्ञाः कर्मबन्धकोविदाश्च विषयव्याल-विषकवलिताः, आवर्तं=भावावर्तं संसारमेव अनुपरिवर्तन्ते-अनन्तभवजनकं कर्म समुपार्ज्य तत्रैव मुहुर्मुहुर्भ्राम्यन्तीत्यर्थः, चारित्रदोषेषु क्रोधाद्याधिक्येन चैकचर्या-

---

-प्राणी कर्मकोविद=आरम्भ समारम्भ आदि कर्मों में निपुण होती है, धर्म में नहीं । "प्रकर्षेण जायन्ते इति प्रजाः" इस व्युत्पत्ति के अनुसार समुपार्जित कर्मों के उदय से जो बार बार चतुर्गतिरूप संसार में जन्म धारण करते हैं उनका नाम प्रजा-प्राणी हैं ।

"ये अनुपरता अविद्यया परिमोक्षमाहुः" जो सावद्य व्यापारों से अपराङ्मुख हैं वे 'अविद्या से ही सर्व प्रकार से मुक्ति होती है' ऐसा कहते हैं । रत्नत्रयका नाम विद्या है । इस से जो विपरीत है वह अविद्या है । धर्म से अनभिज्ञ और कर्मबन्ध में कोविद प्राणी विषयरूपी सर्प के विष से कवलित हो भावावर्तरूप संसार में ही अनुपरिवर्तन करते रहते हैं-अनन्तभवजनक कर्मों का आस्रव और बन्ध कर के उसी संसारमें बारंबार जन्म-मरण करते रहते हैं । चारित्र के दोषों में क्रोधादिक की अधिकता से एकचर्यारूप दोष की प्रधानता है । इससे सावद्य-व्यापारों का आचरण होता है । इस आचरण से विरति का अभाव और उससे उसमें मुनित्व का अभाव होता है । मुनिधर्म का पालक न होने से वह

આરંભ સમારંભાદિ કર્મોમાં નિપુણ હોય છે, ધર્મમાં નહિ. "प्रकर्षेण जायन्ते इति प्रजाः" આ વ્યુત્પત્તિ અનુસાર સમુપાર્જિત કર્મોના ઉદયથી જે વારંવાર ચતુર્ગતિરૂપ સંસારમાં જન્મ ધારણ કરે છે તેનું નામ પ્રજા-પ્રાણી છે.

"ये अनुपरता अविद्यया परिमोक्षमाहुः" જે સાવદ્ય વ્યાપારોથી અનિવૃત્ત છે તે 'અવિદ્યાથી જ સર્વ પ્રકારની મુક્તિ થાય છે' તેવું કહે છે. રત્નત્રયનું નામ વિદ્યા છે, આનાથી જે વિપરીત તે અવિદ્યા છે. ધર્મથી અનભિજ્ઞ અને કર્મબંધમાં કોવિદ પ્રાણી વિષયરૂપી સર્પના વિષથી કવલિત થઈ ભાવાવર્તરૂપ સંસારમાં અનુપરિવર્તન કરતો રહે છે. અનંતભવજનક કર્મોનો આસ્રવ અને બંધ કરીને આ સંસારમાં વારંવાર જન્મ-મરણ કરતો રહે છે. ચારિત્રના દોષોમાં ક્રોધાદિકની અધિકતાથી એકચર્યારૂપ દોષની પ્રધાનતા છે. એનાથી સાવદ્યવ્યાપારોનું આચરણ થાય છે. આ આચરણથી વિરતિનો અભાવ અને તેનાથી તેનામાં મુનિત્વનો

दोषस्य प्राधान्यात्सावद्यव्यापाराचरणेन विरतेरभावादमुनिः सन् चिरकालं जन्म-मरणं कुर्वन्तीति भावः। इति ब्रवीमीत्यस्यार्थः पूर्ववत्।

॥ पञ्चमाध्ययनस्य प्रथमोद्देशः समाप्तः ॥ ५-१ ॥

प्राणी चिरकालतक जन्म-मरण करता रहता है। "इति ब्रवीमि" इन पदोंका अर्थ पहिले की तरह है ॥ सू० ९ ॥

॥ पांचवे अध्ययन का प्रथम उद्देश समाप्त ॥ ५-१ ॥

त्वनो अभाव आवे छे. मुनिधर्मनुं पालन न थवाथी ते प्राणी चिरकाल सुधी जन्म मरण करतो रहे छे. "इति ब्रवीमि" आ पदोनो अर्थ पहेलानी माफक छे.

पांचमा अध्ययननो पहेलो उद्देश समाप्त ॥ ५-१ ॥

पञ्चमाध्ययनस्य द्वितीय उद्देशः ।

अभिहितः प्रथमोद्देशः साम्प्रतं द्वितीयः प्रारभ्यते । अस्य चायमनन्तरोद्देश-सम्बन्धः, पूर्वत्रोद्देशे एकाकि–विहरणशीलः सावद्यव्यापारासक्ततया 'असंयतः' इत्य-भिहितम् । अत्र च यथा संयतः स्यात्तथा प्रतिपाद्यते—

अथ हिंसादिसावद्यव्यापारान्निवृत्त एव मुनिर्भवतीति दर्शयति–'आवंती' इत्यादि ।

मूलम्–आवंती केयावंती लोए अणारंभजीविणो तेसु । एत्थो-वरए तं झोसमाणे अयं संधीति अद्क्खू, जे इमस्स विग्गहस्स अयं खणेत्ति अन्नेसी । एस मग्गे आरिएहिं पवेइए । उट्ठिए नो पमायए, जाणित्तु दुक्खं पत्तेयं सायं । पुढोछंदा इह माणवा, पुढो दुक्खं पवेइयं । से अविहिंसमाणे अणवयमाणे पुट्ठो फासे विपणुन्नए ॥ सू० १ ॥

॥ पांचवें अध्ययनका दूसरा उद्देश ॥

प्रथम उद्देश कहा जा चुका है । अब द्वितीय उद्देश का प्रारम्भ करते हैं । इस उद्देश का अनन्तर उद्देश के साथ सम्बन्ध इस प्रकार से है– प्रथम उद्देश में "जो एकाकी विहार करता है वह सावद्य व्यापारमें आसक्त होने के कारण विरतिविहीन है, जो विरति से विहीन है वह मुनि नहीं है" यह प्रकट किया है, यहां पर जीव के मुनिपना जिस रीति से आसकता है वही रीति प्रतिपादित की जाती है । अथवा 'हिंसादिक सावद्य व्यापारोंसे निवृत्त ही मुनि होता है' यह बात दिखलाईजाती है— "आवंती केयावंती" इत्यादि

પાંચમા અધ્યયનનો બીજો ઉદ્દેશ.

પ્રથમ ઉદ્દેશ કહેવાઈ ગયો છે, હવે બીજા ઉદ્દેશનો પ્રારંભ થાય છે. આ ઉદ્દેશનો અનન્તર ઉદ્દેશની સાથે સંબંધ આ પ્રકારે છે— પ્રથમ ઉદ્દેશમાં "જે એકાકી વિહાર કરે છે તે સાવદ્ય વ્યાપારોમાં આસક્ત હોવાને કારણે વિરતિ વગરના છે, તે મુનિ નથી" એમ પ્રગટ કરેલ છે. આ સ્થળે જીવને મુનિપણું જે રીતિથી આવે છે તે જ રીતિ કહેવામાં આવે છે. અથવા 'હિંસાદિક સાવદ્ય વ્યાપારોથી નિવૃત્ત જ મુનિ હોય છે.' એ વાત દેખાડવામાં આવે છે— 'आवंती केयावंती' ઈત્યાદિ.

छाया—यावन्तः कियन्तो लोके अनारम्भजीविनस्तेषु। अत्रोपरतस्तज्झोषयन् अयं सन्धिरिति अद्राक्षीत्, योऽस्य विग्रहस्यायं क्षण इत्यन्वेषी। एष मार्ग आर्यैः प्रवेदितः। उत्थितो नो प्रमादयेत्, ज्ञात्वा दुःखं प्रत्येकं सातम्। पृथक्छन्दा इह मानवाः, पृथग् दुःखं प्रवेदितम्। सोऽविहिंसन्नपवदन् स्पृष्टः स्पर्शान् विप्रणोदयेत् ॥ सू० १ ॥

टीका—'यावन्तः' इत्यादि। लोके=मनुष्यलोके यावन्तः कियन्तश्च तेषु=षड्जीवनिकायेषु अनारम्भजीविनः—आरम्भः=सावद्याचरणं, तद्विपरीतस्त्वनारम्भः तेन जीवितुं शीलं येषां ते अनारम्भजीविनः=संयमिनः, यद्वेन्द्रियविषयकषायेषु प्रवृत्ता आरम्भजीविनस्तद्भिन्ना अनारम्भजीविनो मुनयः सन्ति। ते हि स्वनिमित्त-पचनपाचनादिसावद्यव्यापारतत्परादगृहस्थाच्छरीरयात्रामात्रनिर्वाहार्थमशनादि गृहीत्वा निरवद्यानुष्ठानप्रवृत्ताः सन्तो नलिनीदलमम्बुनेव निर्लेपा भवन्तीति

इस मनुष्यलोक में कितनेक मनुष्य अनारम्भजीवी हैं। सावद्य व्यापारों में प्रवृत्ति का नाम आरम्भ है। इससे विपरीत का नाम अनारम्भ है। इससे जीने का जिनका स्वभाव है वे अनारंभजीवी हैं। अनारम्भजीवी संयमी होते हैं।

अथवा—इन्द्रिय विषय एवं कषायों में जिनकी प्रवृत्ति है वे आरम्भजीवी हैं, उनसे भिन्न मुनिजन ही अनारम्भजीवी हैं। अपने निमित्त पचन-पाचनादि सावद्य व्यापारों में तत्पर गृहस्थजन से शरीरयात्रामात्र के निर्वाहार्थ आहारादि लेकर निरवद्य-निर्दोष अनुष्ठान में प्रवृत्तिशील होने के कारण ये मुनि पानीसे कमलपत्र की तरह निर्लेप होते हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि जो सावद्य व्यापारों में प्रवृत्तिशील हैं वे पूर्ण संयमाचरण से बाहर हैं, और जो इस हिंसादिक आरंभ से निवृत्त हैं वे

આ મનુષ્ય લોકમાં કેટલાક મનુષ્ય અનારંભજીવી છે. સાવદ્ય વ્યાપારોમાં પ્રવૃત્તિનું નામ આરંભ છે, તેનાથી વિપરીતનું નામ અનારંભ છે, તેનાથી જેનો જીવવાનો સ્વભાવ હોય તે અનારંભજીવી છે. અનારંભજીવી સંયમી હોય છે. અથવા ઈન્દ્રિય વિષય અને કષાયોમાં જેની પ્રવૃત્તિ છે તે આરંભજીવી છે, તેનાથી ભિન્ન મુનિજન જ અનારંભજીવી છે. પોતાના નિમિત્ત પચનપાચનાદિ સાવદ્ય વ્યાપારોમાં તત્પર ગૃહસ્થજનથી શરીરયાત્રામાત્રના નિર્વાહ માટે આહારાદિ લઈને નિરવદ્ય-નિર્દોષ અનુષ્ઠાનમાં પ્રવૃત્તિશીલ હોવાને કારણે પાણીથી કમળપત્રની માફક નિર્લેપ હોય છે. આથી એ ભાવાર્થ નિકળે છે કે-જે સાવદ્ય વ્યાપારોમાં પ્રવૃત્તિશીલ છે તે પૂર્ણ સંયમ આચરણથી બહાર છે અને જે આવા

तात्पर्यम् । एवं तर्हि किमेतेनेत्याह—अत्रेत्यादि, अत्र=इह जगति उपरतः= हिंसाद्यारम्भाद् निवृत्तः, यद्वा—अत्र=वीतरागोपदिष्टे धर्मे तत्परः सन् उपरतः= सावद्यव्यापारनिवृत्तः सः तत्=षड्जीवनिकायोपमर्दनात् समापतितं कर्म झोषयन्= क्षपयन् मुनिर्भवति । केनाशयेनात्रोपरतः? इत्याह—' अय 'मित्यादि, अयं=प्रत्यक्ष-

---

ही मुनि हैं—पूर्णसंयमाचरणमें लवलीन हैं। पूर्णसंयमाचरण में तत्परता ही वीतरागोपदिष्ट धर्माराधन में पूर्णतत्परता है, क्यों कि इसके हुए विना वीतरागोपदिष्ट धर्म की पूर्ण आराधकता जीवो में नहीं आ सकती। जब तक पूर्ण धर्माराधकता नहीं प्राप्त हो जाती तब तक कर्मों के विनाश करने का मार्ग भी जीवों को प्राप्त नहीं होता; अतः कर्मों को नाश करने के लिये सच्चे मुनि होनेकी आवश्यकता है। इन सब विचारों को हृदय में रख कर सूत्रकार "अत्रोपरतः तं झोषयन्" इस सूत्रांश का कथन करते हैं। इस में वे बतलाते हैं कि इस संसार में जो हिंसादिक आरम्भ कार्यों से निवृत्त—पराङ्मुख हो चुका है, अर्थात् सावद्य व्यापारों से जिसने अपने आप को हटा लिया है, या वीतरागप्रभुद्वारा प्रतिपादित धर्म में तत्पर हो कर जो सावद्य व्यापार से निवृत्त है, वह जीव षड्जीवनिकाय के उपमर्दन से आस्रवित कर्मों का विनाश करता हुआ मुनि होता है। इस आशय से वह षड्जीवनिकाय के हिंसादिक पापकर्मों से विरत होता है कि मुझे यह सन्धि मिली है, अर्थात्—यह महादुर्लभ नरपर्याय मुझे

હિંસાદિક આરંભથી નિવૃત્ત છે તે જ મુનિ છે—પૂર્ણ સંયમ આચરણમાં તલ્લીન છે. પૂર્ણ સંયમ આચરણમાં તત્પરતા જ વીતરાગોપદિષ્ટ ધર્મ આરાધનમાં પૂર્ણ તત્પરતા છે, કારણકે એના વગર વીતરાગોપદિષ્ટ ધર્મની પૂર્ણ આરાધકતા જીવોમાં આવતી નથી. જ્યાં સુધી પૂર્ણ ધર્મઆરાધકતા નથી પ્રાપ્ત થતી ત્યાં સુધી કર્મોનો વિનાશ કરવાનો માર્ગ પણ જીવોને પ્રાપ્ત થતો નથી. માટે કર્મોનો નાશ કરવાને માટે સાચા મુનિ બનવાની આવશ્યકતા છે. આ બધા વિચારોને હૃદયમાં રાખીને સૂત્રકાર "अत्रोपरतः तं झोषयन्" આ સૂત્રનો અર્થ કરે છે. તેમાં તે બતાવે છે કે જે હિંસાદિક આરંભ કાર્યોથી નિવૃત્ત થઇ ચુકેલ છે અર્થાત્ સાવદ્ય વ્યાપારોથી જેણે પોતે પોતાની જાતને હઠાવી લીધેલ છે અને વીતરાગપ્રભુદ્વારા પ્રતિપાદિત ધર્મમાં જે પોતાને તત્પર કરે છે તે જીવ ષડ્જીવનિકાયના ઉપમર્દનથી આસ્રવિત કર્મોનો વિનાશ કરીને મુનિ બને છે. આ આશયથી તે ષટ્જીવનિકાયના હિંસાદિક પાપકર્મોથી વિરક્ત થાય છે, કે મને આ સંધિ મળેલ છે,

निर्दिष्टः सन्धिः=मनुष्यजन्मा-ऽऽर्यक्षेत्र-शोभनकुलोत्पत्ति-सकलपूर्णेन्द्रियनिर्वृति-श्रद्धा-संवेगादिप्राप्तिलक्षणः कर्मक्षपणावसरः, यद्वा-शुभाध्यवसायसन्धानस्वरूपोऽस्ति, इति यः अद्राक्षीत्=दृष्टवान्, एतादृशो मुनिः क्षणमपि न पञ्चविधप्रमादपरायणो भवेदित्याशयः। कश्च न प्रमत्तः स्यात्? इत्याह-'जे इमस्स' इत्यादि। य उपलब्धतत्त्वो मुनिः अस्य=औदारिकस्य विग्रहस्य=शरीरस्य, तैजसं कार्मणं च शरीरमौदारिकान्तर्गतमेवेति ज्ञेयम्; अयं=विद्यमानः क्षणः=क्षेत्रकालसंयमकर्मक्षपणश्रेणिरूपोऽवसरोऽस्ति, इत्यन्वेषी-इति=एवमन्वेष्टुं शीलमस्येत्यन्वेषी-क्षणगवेषणपरायणो भवति।

मिली है। इस में भी आर्यक्षेत्र उत्तम कुल में मेरी उत्पत्ति हुई है। सकल इन्द्रियों की पूर्ण रचना, श्रद्धा संवेगादिक सद्गुणों की उपलब्धि मुझे हुई है। यही तो कर्मक्षय करने का अवसर है। अथवा मेरी आत्मा का यही निज स्वरूप है कि मैं सदा शुभ अध्यवसायों का सन्धान करता रहूं। इस प्रकार जो अपनी ओर निहारता है-अपने निज स्वरूप का विचार करता रहता है वह एक क्षण भी पांच प्रकार के प्रमादों का सेवन नहीं करता। इस प्रकार का मुनि कौन होता है? इस पर कहते हैं-'जे इमस्स' इत्यादि। जो तत्त्वज्ञ मुनि हैं वे सदा इस प्रकार का विचार करें कि ये जो औदारिक शरीर (तैजस और कार्मण शरीरों का इसी औदारिक शरीर में अन्तर्भाव कर लिया है) मुझे प्राप्त हुआ है उसका यह क्षण-क्षेत्र काल संयम कर्मक्षपणश्रेणिरूप अवसर है; इस प्रकार जो अन्वेषी-क्षणगवेषण में परायण होता है वह सदा

એટલે મને આ મહાદુર્લભ નરપર્યાય મળેલ છે. તેમાં પણ આર્યક્ષેત્ર ઉત્તમ કુળમાં મારી ઉત્પત્તિ થઈ છે, સકલ ઈન્દ્રિયોની પૂર્ણ રચના શ્રદ્ધા સંવેગાદિક સદ્ગુણોની ઉપલબ્ધિ મને થયેલ છે, હવે તો કર્મક્ષય કરવાનો અવસર છે, અને મારા આત્માનું એ જ નિજ સ્વરૂપ છે કે 'હું સદા શુભ અધ્યવસાયોનો સંધાન કરતો રહું.' આ પ્રકારે જે પોતાની તરફ નિહાળે છે, પોતાના નિજ સ્વરૂપનો વિચાર કરે છે તે એક ક્ષણ પણ પાંચ પ્રકારના પ્રમાદોનું સેવન કરતો નથી.

આવા પ્રકારનો મુનિ કોણ હોય છે? આ પ્રકારની શિષ્યની શંકાનું સમાધાન કરવા માટે સૂત્રકાર કહે છે—'जे इमस्स' ઈત્યાદિ. તત્વજ્ઞ મુનિ છે તે સદા એવા પ્રકારનો વિચાર કરે કે-જે આ ઔદારિક શરીર મને પ્રાપ્ત થયેલ છે તેનો આ ક્ષણ-ક્ષેત્ર કાલ સંયમ કર્મક્ષપણશ્રેણીરૂપ અવસર છે. આ પ્રકારે જે અન્વેષી-

एतत्कथनस्य स्वकल्पितत्वनिरासायाह—'एष' इत्यादि, एषः=पूर्वोक्तो वक्ष्यमाणो वा मार्गः=सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूपो मोक्षमार्गः, आर्यैः=तीर्थङ्करगणधरैः प्रवेदितः=सदेवमनुजपरिषदि कथितः। तेषां वचनमेवाह—उत्थितः=गृहादीनि परित्यज्य सन्धिमासाद्य रत्नत्रयाराधनाय समुद्युक्तः सन् नो प्रमादयेत्—क्षणमपि पञ्चविधं प्रमादं नैव कुर्यादित्यर्थः। आत्मौपम्येनान्येषामपि हिंसादीनि नैव विदध्यादित्याह–ज्ञात्वेत्यादि, प्रत्येकं=प्रत्येकप्राणिनां दुःखं=शारीरमानसिकं दुःखजनकं कर्म वा, तथा सातं=सुखं च ज्ञात्वा=बुद्ध्वा उत्थितो नो प्रमादयेदिति पूर्वेण

प्रमादरहित होता है।

भावार्थ—जो तत्त्वज्ञ मुनि होता है, वह यही सदा विचार करता है कि मुझे ऐसा कोई सा भी समय प्राप्त नहीं है जिसे मैं प्रमाद सेवन में व्यतीत कर सकूं। हां! यदि कोई समय अवशिष्ट होता तो मैं उसे प्रमादसेवन में व्यतीत कर देता, परन्तु इस प्राप्त औदारिक शरीर का एक २ क्षण भी क्षेत्र काल संयम कर्मक्षपणश्रेणिरूप है। इस प्रकार जो एक २ क्षणकी भी सदा सावधानी रखते हैं वे कभी प्रमादवश पतित नहीं बन सकते। यह पूर्वोक्त कथन अथवा आगे जहा जानेवाला विषय मैंने अपनी कल्पना से नहीं कहा है किन्तु यह सम्यग्–दर्शन ज्ञान चारित्र स्वरूप मार्ग तीर्थङ्कर और गणधरादिक महापुरुषों ने देवसहित मनुष्यों की परिषदा में कहा है। उन्हीं के वचनों को सूत्रकार कहते हैं–"उट्ठिए नो पमायए" इति। जो घर आदि को छोड़ कर, संधिको प्राप्त कर,

---

ક્ષણગવેષણમાં પરાયણ થાય છે તે સદા પ્રમાદરહિત બને છે.

ભાવાર્થ:—શિષ્યની પૂર્વોક્ત શંકાનું આ સ્થળે સૂત્રકારે સમાધાન કરેલ છે. તે કહે છે કે–જે તત્વજ્ઞ મુનિ હોય છે તે સદા એવો વિચાર કરે છે કે–મને એવો કોઈ પણ સમય પ્રાપ્ત થયો નથી જેને હું પ્રમાદસેવનમાં વ્યતીત કરી શકું, કદાચ કોઈ સમય અવશિષ્ટ હોત તો હું તેને પ્રમાદ સેવનમાં વ્યતીત કરી દેત, પરંતુ આ પ્રાપ્ત થયેલ ઔદારિક શરીરની એક એક ક્ષણ પણ ક્ષેત્ર કાલ સંયમ કર્મક્ષપણ શ્રેણીરૂપ છે, આ પ્રકારે જે એક એક ક્ષણની પણ સદા સાવધાની રાખે છે તે કદાપિ પ્રમાદવશ બની શકતા નથી. આ પૂર્વોક્ત કથન અથવા આગળ કહેવામાં આવનાર વિષય મેં મારી પોતાની કલ્પનાથી કહેલ નથી પરંતુ સમ્યગ્દર્શન–જ્ઞાન–ચારિત્ર–સ્વરૂપ માર્ગ તીર્થંકર અને ગણુધર આદિ મહાપુરૂષોએ દેવસહિત મનુષ્યોની પરિષદામાં કહેલ છે. એમના જ વચનોને સૂત્રકાર કહે છે કે–"उट्ठिए नो पमायए" જે ઘર વગેરે છોડીને અવસર

सम्बन्धः । सर्वेषां प्राणिनां सुखमभिलषणीयं, दुःखं च परिहरणीयं भवतीत्यालोच्य कस्यापि दुःखं नोत्पादयेदित्याशयः । सर्वेषां जन्तूनां दुःखजनकाऽध्यवसायोऽपि भिन्नो भवतीति दर्शयति-'पृथगि'-त्यादि, इह=मनुष्यलोके संज्ञिलोके वा, मानवाः= मनुष्याः पृथक्छन्दाः=पृथग् भिन्नं छन्दः=अभिप्रायो येषां ते पृथक्छन्दाः=भिन्नरुचयो भवन्ति, यथा क्षीरपानं कश्चित्सुखाकरोति कश्चिच्च दुःखाकरोतीत्यादि, तथैव

रत्नत्रयों की आराधना के लिये कटिबद्ध है वह अपना एक क्षण भी पञ्चविध प्रमाद के सेवन में व्यतीत न करे। समस्त जीवों को अपने समान मान कर कभी भी उनकी हिंसा आदि न करे। प्रत्येक प्राणी के शारीरिक मानसिक दुःखों को, तथा उनके कारणभूत कर्मों को, तथा सुख को जानकर उत्थित व्यक्ति कभी भी प्रमत्त न बने। तात्पर्य यह कि- समस्त प्राणियों को सुख अभिलषणीय है और दुःख परिहरणीय है, ऐसा विचार कर किसी भी प्राणी को दुःखित न करे।

संसार के समस्त प्राणियों के दुःखजनक अभिप्राय भी एकसे न हो कर भिन्न २ ही होते हैं; अतः सूत्रकार "पुढो" इत्यादि पदसे इसी बात को प्रदर्शित करते हुए कहते हैं कि इस मनुष्य लोक अथवा संज्ञिलोक में जितने भी मनुष्य और संज्ञि प्राणी हैं वे सब भिन्न २ अभिप्रायसंपन्न हैं। जैसे क्षीरपान किसी को सुखदायी होता है और किसी को दुःखदायी होता है, उसी प्रकार जो उपाय आदि किसी जीव को सुखप्रद होता है वही उपायादि अन्य जीव के लिये दुःखप्रद भी होता है। यह लो-

મેળવીને રત્નત્રયની આરાધના માટે તત્પર છે તે પોતાની એક પણ ક્ષણ પાંચ પ્રકારના પ્રમાદના સેવનમાં વ્યતીત ન કરે. સમસ્ત જીવોને પોતાના સમાન ગણીને કોઈ વખત પણ તેની હિંસા આદિ ન કરે. પ્રત્યેક પ્રાણીના શારિરીક માનસિક દુઃખોને તથા તેના કારણભૂત કર્મોને તથા સુખને જાણીને ઉત્થિત વ્યક્તિ કોઈ વખત પણ પ્રમત્ત ન બને. તાત્પર્ય એ કે-સમસ્ત પ્રાણીઓને સુખ અભિલષણીય છે અને દુઃખ પરિહરણીય છે. એવું સમજીને કોઈ પણ પ્રાણીને દુઃખી ન કરે.

સંસારના સમસ્ત પ્રાણીઓના દુઃખજનક અભિપ્રાય પણ એક પ્રકારના ન હોય-ભિન્ન ભિન્ન પ્રકારના હોય છે માટે સૂત્રકાર "पुढो" ઇત્યાદિ. પદથી આ વાતને સમજાવીને કહે છે કે-આ મનુષ્યલોક તથા સંજ્ઞિલોકમાં જેટલા પણ મનુષ્ય અને સંજ્ઞિ-પ્રાણી છે તે બધા ભિન્ન ભિન્ન અભિપ્રાયસંપન્ન છે. જેવી રીતે ખીરનું સેવન કોઈને સુખદાયી હોય છે અને કોઈને દુઃખદાયી હોય છે, એવા પ્રકારે જે ઉપાય વગેરે કોઈ જીવને સુખરૂપ હોય છે તે જ ઉપાય આદિ અન્ય જીવને માટે દુઃખદાયી હોય છે.

यदेव कस्यचित्सुखाय भवति तदेव परस्य दुःखाय चेति ‘ भिन्नरुचिर्हिलोकः ’ इति लोकोक्तेरिति । यद्वा—पृथक्छन्दाः=पृथक्संकल्पाः—अगणिताभिप्रायाः—इति यावत्, मानवा इत्युपलक्षणादन्येषामपि संज्ञिनां पृथक्छन्दत्वेन ग्रहणं ज्ञेयम् । यत एव प्राणिनः पृथक्छन्दास्तस्मादुपादेयं कर्मापि पृथक्, कर्मजनितं दुःखमपि पृथगेव, कारणभेदस्य कार्यभेदनियामकत्वात्, एतदेव—कथयति ‘ पृथगि ’—त्यादि, सर्वेषां जन्तूनां दुःखं पृथक्=भिन्नरूपं प्रवेदितम् । एतत्सर्वमालोच्यानारम्भजीवी किं विदध्यादिति दर्शयति—‘ स ’ इत्यादि । सः निखिलजीवसुखदुःखपरिज्ञाता

कोक्ति है कि “भिन्नरुचिर्हि लोकः” लोगों की रुचि भिन्न भिन्न हुआ करती है। अथवा—“पृथक्छन्दा इह मानवाः” इसका अभिप्राय यह भी है कि मनुष्य और अन्य संज्ञी प्राणी जितने भी हैं उन सबके छन्द—संकल्प अभिप्राय पृथक्—अगणित हैं। संसार में जितने भी संज्ञी प्राणी हैं वे सब अपनी अपनी अपेक्षा अगणितअभिप्रायविशिष्ट हैं। मानव—शब्द उपलक्षण है, इससे अन्य संज्ञी प्राणियों का भी यहां ग्रहण हो जाता है। जब यह माना गया है कि प्राणियों के संकल्प भिन्न २ या अगणित हैं तो यह भी इससे सिद्ध होता है कि उनके कर्तव्य कर्म तथा कर्मजनक दुःख भी भिन्न २ या अगणित हैं, क्यों कि कारणों में जब भेद है तब उसके कार्यों में भी भेद मानना पड़ता है, अतः यह निश्चित होता है कि समस्त जीवों का दुःख पृथक्—भिन्न २ रूपमें है। इस सब का विचार कर अनारंभजीवी क्या करे? इसकी प्ररूपणा सूत्रकार “ सोअहिंसमाणे अणवयमाणे ” इस

આ પ્રકારની લોક કહેવત છે કે—भिन्नरुचिर्हि लोकः’ લોકોની રૂચી ભિન્ન ભિન્ન પ્રકારની રહ્યા કરે છે, અથવા—“पृथक्छन्दा इह मानवाः” તેનો અભિપ્રાય એ છે કે મનુષ્યમાત્ર અને અન્ય સંજ્ઞિ–પ્રાણી જેટલા છે તે બધાના છન્દ — સંકલ્પ અભિપ્રાય અલગ અલગ છે. સંસારમાં જેટલા પણ સંજ્ઞિ–પ્રાણી છે તે બધા પોતપોતાની અપેક્ષા અગણિત અભિપ્રાય ધરાવનાર છે. માનવશબ્દ ઉપલક્ષણ છે જેનાથી બીજા સંજ્ઞિપ્રાણીઓનું પણ આ સ્થળે સમાવેશ થઇ રહે છે. જ્યારે આ માની લેવાયું છે કે પ્રાણીઓના સમસ્ત સંકલ્પ ભિન્ન ભિન્ન અને અગણિત છે તો આથી પણ એ સિદ્ધ થાય છે કે તેનું કર્તવ્ય કર્મ તથા કર્મજનક દુઃખ પણ ભિન્ન ભિન્ન અને અગણિત છે, કેમ કે કારણોમાં જ્યારે ભેદ છે ત્યારે એમના કાર્યોમાં પણ ભેદ માનવો પડે છે. આથી એ નિશ્ચિત થાય છે કે સમસ્ત જીવોનાં દુઃખો પણ ભિન્ન ભિન્ન રૂપનાં છે. આ બધાનો વિચાર કરી આરંભજીવી જીવ શું કરે ? આ અંગે “सोअविहिंसमाणे

जन्तून् अविहिंसन्–वि=विविधैरुपायैरहिंसन्=अविराधयन्, अपि च अनपवदन्–अपवदति=मृषावदति यः सोऽपवदन्, यश्च न तादृशः सः अनपवदन्=सत्यवादी, उपलक्षणादन्येषामपि अदत्तादानादिव्रतानां ग्रहणं, तेन–परधनान्यनाददत्, मैथुनमना-

सूत्रांश से करते हैं–जब वह अनारम्भजीवी अपने आप को इतना तयार कर लेता है कि जिससे वह अन्य समस्त प्राणियों के सुख और दुःख का भली भांति ज्ञाता हो जाता है, तब वह किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करता है, और न ऐसा कोई उपाय भी करता है कि जिससे अन्य प्राणियों को कष्ट पहुंचे। वह अपनी दैनिकचर्या को तथा अपनी प्रवृत्ति को इतनी सुरक्षित रखता है कि उसमें किसी भी प्राणी को लेश मात्र भी दुःख का अनुभव उसकी ओर से नहीं होने पाता है। झूठ नहीं बोलता, परके धनादिकका अपहरण नहीं करता, कुशील के सेवन से सर्वथा परे रहता है और परिग्रह का भी वह बिलकुल परित्याग कर देता है। इस प्रकार उसकी जब अच्छी तरह से तयारी हो जाती है तब वह वास्तविक मुनिपदकी शोभावाला होता है। सूत्रस्थ "अणवयमाणे" पद अन्य अदत्तादानादिक व्रतों का उपलक्षक है। तात्पर्य यह कि–हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह के सर्वथा परिवर्जन करने से ही मनुष्य मुनिपदको दीपानेवाला होता है। इन हिंसादि के त्याग से वास्तविक रूपमें पंच महाव्रतों का वह सच्चा आराधक होता है।

अणवयमाणे" આ સૂત્રની પ્રરૂપણા કરતાં સૂત્રકાર કહે છે કે જ્યારે એ અનારંભજીવી પોતાની જાતને એટલી હદે તૈયાર કરી લે છે કે જેનાથી તે અન્ય સમસ્ત પ્રાણીઓના સુખ અને દુઃખનો સારી રીતે જાણકાર બની જાય છે, અને કોઈ પણ પ્રાણીની એ હિંસા કરતો નથી, તેમજ મનમાં એવો વિચાર સરખો આવવા દેતો નથી કે જેથી કોઈ પ્રાણીઓને કષ્ટ પહોંચે. તે પોતાની દૈનિક ચર્યાને તથા પ્રવૃત્તિને એટલી સુરક્ષિત રાખે છે કે જેથી કોઈ પણ પ્રાણીને લેશમાત્ર પણ દુઃખનો અનુભવ એના તરફથી થવા ન પામે. જુઠું નથી બોલતો, પારકા ધનની ચોરી નથી કરતો, કુશીલસેવનથી એ સદા સર્વદા દૂર રહે છે, પરિગ્રહનો તે સર્વથા પરિત્યાગ કરી દે છે. આ પ્રકારે એની સંપૂર્ણ તૈયારી થઈ જાય છે ત્યારે તે વાસ્તવિક મુનિપદને શોભાવનાર બને છે. સૂત્રસ્થ "अणवयमाणे" પદ છે એ બીજાં અદત્તાદાનાદિક વ્રતોના ઉપલક્ષક છે. તાત્પર્ય એ કે-હિંસા, જુઠ, ચોરી, કુશીલ અને પરિગ્રહનું સર્વથા પરિવર્જન કરવાથી જ મનુષ્ય મુનિપદને શોભાવનાર બને છે. આહિંસાદિના ત્યાગથી વાસ્તવિક રૂપમાં પાંચ મહાવ્રતોના એ સાચો આરાધક બને છે.

सेवमानः, परिग्रहं च वर्जयन् मुनिर्भवति । अपरं तस्य कार्यमुपदिशति–'स्पृष्टः' इत्यादि, स पञ्चमहाव्रतनिर्वाहपरायणः स्पृष्टः=परीषहोपसर्गैरालिङ्गितः स्पर्शान् शीतोष्णादिरूपान् , स्पर्शग्रहणस्योपलक्षणत्वादन्यानपि शब्द–रूप-रसादीन् विप्रणोदयेत्–वि=विशेषेण विविधोपायैर्वा प्र=प्रकर्षेण जीवितस्य क्षणदृष्टनष्टतादिसमालोचनेन नोदयेत्=प्रेरयेत्–शब्दादिविषयालाभेन स्वात्मानं नावमन्येतेत्यर्थः । मनो-

---

मुनिजन के अन्य कार्यों को प्रकट करने के लिये सूत्रकार "पुट्ठो फासे विपणुन्नए" इस सूत्रांश से उनका दिग्दर्शन कराते हुए कहते हैं कि पांच महाव्रतों के निर्वाह करने में तत्पर वह मुनि परीषह और उपसर्गों से समन्वित होता हुआ भी शीतोष्णादिरूप स्पर्श तथा अन्य-शब्द, रूप और रसादिक विषय कि जिनका यहां पर "स्पर्श" इस उपलक्षणरूप पदसे ग्रहण हुआ है उन का सम्बन्ध विशेष रीति से, अथवा विविध उपायों द्वारा अपनी आत्मा से हटा देवे। "विप्रणोदयेत्" इस क्रिया में "प्र" शब्द इस बात का समर्थन करता है कि इन विषयादिकरूप स्पर्शों से संबंध विच्छेद करनेके लिये मुनि को इस बातका विचार करना चाहिये कि यह मेरा जीवन अत्यल्प है, कल के भरोसे पर मुझे नहीं रहना चाहिये, जो कुछ करना है उसे आज ही अब ही कर डालना चाहिये, क्या पता कल आवे या न आवे, इस प्रकार जीवनमें क्षणदृष्टनष्टतादिकी समालोचनासे इन स्पर्शादिक विषयों के सम्बन्ध से आत्मा स्वयं सचेत हो कर रहित हो जाता है, फिर उनकी अप्राप्तिमें आकुलता नहीं होती

મુનિજનનાં અન્ય કાર્યોને પ્રગટ કરવા માટે સૂત્રકાર " पुट्ठो फासे विपणुन्नए " આ સૂત્રદ્વારા સમજાવતાં કહે છે કે–પાંચ મહા વ્રતોથી નિર્વાહ કરવામાં તત્પર એવા મુનિ પરીષહ અને ઉપસર્ગોમાં ભાગ લેનાર અને શીતોષ્ણાદિરૂપ, સ્પર્શ તથા અન્ય શબ્દ, રૂપ, ગંધ અને રસાદિક વિષયો કે જેનો અહિં " સ્પર્શ " આ ઉપલક્ષણરૂપ પદથી સ્વીકાર કરાયો છે તે સંબંધ વિશેષ રીતિથી, અથવા વિવિધ ઉપાયોથી પોતાના આત્માથી દૂર કરે. " विप्रणोदयेत् " આ ક્રિયામાં " प्र " શબ્દ એ વાતનું સમર્થન કરે છે કે આ વિષયાદિક સ્પર્શોનો સંબંધ વિચ્છેદ કરવા માટે મુનિએ આ વાતનો વિચાર કરવો જોઇએ કે 'મારૂં આ જીવન અત્યંત અલ્પ છે. કાલના ભરોસે મારે ન રહેવું જોઇએ. જે કાંઇ કરવું છે તે આજે જ અને અત્યારે જ કરવું જોઈએ. કાલ થશે કે કેમ એનો ભરોસો શું ?' આ પ્રકારે ક્ષણ જીવન અને તેના નાશની મનમાં સમાલોચના કરી આ સ્પર્શાદિક વિષયોના સંબંધથી, આત્મા સ્વયં સચેત બનીને અલિપ્ત બની જાય છે. પછી એને અપ્રાપ્તિમાં આકુલતા થતી નથી તેમ

ज्ञशब्दादीनधिगम्य तेषु रागममनोज्ञान् प्राप्य तेषु च द्वेषं चापनयन् मध्यस्थभावेन तेषु वर्तमानो मुनिर्भवतीति सूत्रतात्पर्यम् ॥ सू० १ ॥

तादृशमुनेर्गुणानुपदर्शयति–' एस ' इत्यादि ।

मूलम्–एस समियापरियाए वियाहिए, जे असत्ता पावेहिं कम्मेहिं, उदाहु ते आयंका फुसंति, इति उदाहु धीरे ते फासे पुट्ठो अहियासइ । से पुव्विंपेयं पच्छापेयं भेउरधम्मं विद्धंसणधम्मं अधुवं अणिइयं असासयं चयावचइयं विप्परिणामधम्मं पासह एयं रूवसंधिं ॥ सू० २ ॥

छाया—एष शमितापर्यायो व्याख्यातः, येऽसक्ताः पापेषु कर्मसु, उदाह तान् आतङ्का स्पृशन्ति, इति उदाहुर्धीरस्तान् स्पृष्टोऽध्यासयेत् । स पूर्वमप्येतत् पश्चादप्येतद् भिदुरधर्मं विध्वंसनधर्ममध्रुवमनित्यमशाश्वतं चयापचयिकं विपरिणामधर्मं पश्यतैतं रूपसन्धिम् ॥ सू० २ ॥

टीका—' एष ' इत्यादि, एषः=परीषहप्रणोदकः शमितापर्यायः–शमोऽस्ति अस्येति शमी=शमवान्, तस्य भावः शमिता, तया पर्यायश्चारित्रग्रहणं यस्य स शमि-

---

और न आत्मग्लानि ही जगती है। इस सूत्रका भावार्थ यह है–" मनोज्ञ शब्दादिक विषयों की प्राप्ति में राग, और अमनोज्ञ–अरुचिकर की प्राप्ति में द्वेषको दूर कर मुनिका कर्तव्य है कि वह उनमें मध्यस्थभावसे वर्तन करे । तब ही वह सच्चा त्यागी–मुनि हो सकता है ॥ सू० १ ॥

इस प्रकार के मुनियों के गुणोंका प्रदर्शन सूत्रकार करते हैं–' एस ' इत्यादि ।

जो परीषह का जीतनेवाला होता है वही शमिता–पर्यायवाला होता है । शम जिसके होता है वह शमी–शमवान् है । शमी का भाव शमिता

આત્મગ્લાની પણ જાગતી નથી. આ સૂત્રનો ભાવાર્થ આ છે–કે મનોજ્ઞ શબ્દાદિક વિષયોની પ્રાપ્તિમાં રાગ અને અમનોજ્ઞ–અરૂચિકરની પ્રાપ્તિમાં દ્વેષને દૂર કરવો, એ મુનિનું કર્તવ્ય છે કે–તે મધ્યસ્થભાવથી વર્તન કરે. ત્યારે જ તે સાચો ત્યાગી એટલે મુનિ બને છે. ॥ સૂ૦ ૧ ॥

આ પ્રકારે મુનિઓના ગુણોનું વર્ણન કરતાં સૂત્રકાર કહે છે– 'एस' ઇત્યાદિ.

જે પરિષહોને જીતવાવાળો બને છે તે જ શમિતા–પર્યાયવાળો બને છે. શમ જેને થાય છે એ જ શમી – શમવાન્ છે, શમીનો ભાવ શમિતા છે. શમિતાથી

तापर्यायः, व्यधिकरणबहुव्रीहिः। यद्वा–सम्यक्पर्याय इतिच्छाया; 'सम्यक्पर्यायः =सम्यक्=प्रशस्तः पर्यायो यस्य स सम्यक्पर्यायः=प्रशस्तचारित्रवान् व्याख्यातः–वि=विविधप्रकारेण आख्यातः=कथितः। परीषहोपसर्गापनोदकस्य असातवेदनीयकर्मोदयाद्रोगसमुदये तस्यैव तत्सहनशीलतामाह—'येऽसक्ताः' इत्यादि, ये=अनिर्दिष्टनामानः पापेषु=पापजनकेषु चारित्रमोहनीयेषु वा कर्मसु असक्ताः=अनिभराः, यद्वा–पापेषु कर्मसु हिंसादिषु असक्ताः=अस्पृष्टाः सन्ति, मूले चार्षत्वात्सप्तम्यर्थे तृतीया; उदाह=कदाचित्तान् पापकर्मस्वसक्तान् मुनीन् आतङ्काः=शीघ्रप्राणघातिनः शूलादयो रोगविशेषाः स्पृशन्ति=आक्राम्यन्ति–अभिभवन्तीत्यर्थः, एवं चेत्किमेते-

है। शमिता से चारित्रका ग्रहण जिसके होता है वह शमितापर्यायवाला है। वह विविध प्रकारसे कहा गया है। अथवा–"समियापरियाए" इसकी संस्कृत छाया "सम्यक्पर्यायः" भी होती है। सम्यक् का अर्थ प्रशस्त, पर्याय का अर्थ चारित्र है। प्रशस्त है चारित्र जिसका वह सम्यक्पर्यायवाला–प्रशस्तचारित्रवाला विविध प्रकार से कहा है। अर्थात्–परीषहों का जीतनेवाला समताभाव से चारित्र का ग्रहण करनेवाला अथवा–प्रशस्तचारित्रवाला कहा गया है।

परीषह और उपसर्गों को जीतनेवाले साधु के असातावेदनीय कर्म के उदय से रोगसमुदय आने पर उसे उनको सहन ही करना चाहिये, यह बात सूत्रकार "जे असत्ता" इत्यादि सूत्रांश से प्रकट करते हैं। जो साधु पापजनक कर्मों में अथवा चारित्रमोहनीय कर्म में अनासक्त हैं उन्हें कदाचित् शीघ्र प्राणघातक शूलादिक रोगविशेषों का सामना भी

જે ચારિત્ર ગ્રહણ કરે છે તે શમિતા–પર્યાયવાળો બને છે.
"समियापरियाए" આની સંસ્કૃત છાયા "सम्यक्पर्यायः" પણ થાય છે. સમ્યક્નો અર્થ પ્રશસ્ત, પર્યાયનો અર્થ ચારિત્ર છે. જેનું ચારિત્ર મહાન છે–વખાણવા જેવું છે તે સમ્યક્પર્યાયવાળા – પ્રશસ્તચરિત્રવાળા વિવિધ પ્રકારે કહેવાય છે, અર્થાત્–પરિષહોને જીતનાર અને સમતાભાવથી ચારિત્રનું ગ્રહણ કરનાર અથવા–પ્રશસ્ત ચારિત્રવાળા કહેવાય છે.

પરિષહ અને ઉપસર્ગોને જીતનાર સાધુને અસાતા–વેદનીય કર્મના ઉદયથી રોગનો ઉપદ્રવ આવે તો એને તેણે સહન કરવો જોઇએ. આ વાત સૂત્રકાર "जे असत्ता" ઇત્યાદિ સૂત્રોથી પ્રગટ કરે છે – જે સાધુ પાપજનક કર્મોમાં અથવા ચારિત્રમોહનીય કર્મમાં અનાસકત છે તેને કદાચ શીઘ્ર પ્રાણઘાતક શૂલાદિક રોગ

नेत्याह-'इती'-त्यादि, इति=एतत् वक्ष्यमाणम्-उदाहुः=कथितवन्तस्तीर्थङ्करगण-धरादयः, किमाहुरित्याह-'धीर'-इत्यादि-शूलादिरोगविशेषैः स्पृष्टः=अभिभूतः धीरः=तत्सहने धैर्यवान् सन् तान् स्पर्शान्=रोगविशेषोत्पन्नाः वेदनाः अध्यासयेत्=सहेत-नोद्विजेतेत्यर्थः। चारित्रमोहनीयकर्मणः क्षयोपशमेन चारित्रं लभते, वेदनी-योदयेन च केवलिनोऽपि रोगा अभिभवन्ति, ततश्च ते रोगैः स्पृष्टो मनोग्लानिं न कुर्यादित्याशयः। किं चैतदपि चेतसि परिचिन्त्य वेदनां सहेतेत्याह-'स' इत्यादि, सः=रोगैरभिभूतः चिन्तयेत्-यत्-एतत् असातावेदनीयविपाकजनितं दुःखं पूर्वमपि

करना पड़ता है-उन पर प्राणघातक शूलादि रोगविशेष आक्रमण करते भी हैं। ऐसे मुनियों के लिये तीर्थङ्कर देवोंने या गणधरादिक महर्षियोंने यह (वक्ष्यमाण) बात कही है। क्या कही है? इस जिज्ञासा का 'धीरे' इत्यादि द्वारा समाधान करते हुए सूत्रकार कहते हैं "कि वह धीर-वीर साधु शूलादिक रोग विशेषों से आक्रान्त होता हुआ भी उन शूलादिक जनित वेदनाओंको सहे, उनसे उद्विग्नचित्त न बने। चारित्रमोहनीय कर्म के क्षयोपशमसे जीव चारित्रकी प्राप्ति करता है। वेदनीय कर्म के उदय से अनेक प्रकार की वेदनाएं उत्पन्न होती हैं; अतएव केवलियों तक को भी रोगों का सामना करना पड़ता है। वे भी जब वेदनीय के उदय से रोगों से आक्रान्त हो जाते हैं, तो साधारण मुनियों की तो बात ही क्या है? इस लिये ऐसी परिस्थिति में मुनि को कभी भी आत्मग्लानि नहीं करनी चाहिये। दूसरे-अपने मनमें यह भी विचार कर वेदनाओं को सहन करना चाहिये कि मैं इस समय जो रोगादिकों से अभिभूत

વગેરેનો સામનો કરવો પડે છે—એના ઉપર પ્રાણઘાતક શૂલાદિક રોગ એકાકી આક્રમણ કરે છે. એવા મુનિયોને માટે તીર્થંકર-દેવોએ તેમજ ગણધરાદિક મહર્ષિઓએ આ વાત કહી છે. શું કહ્યું છે? આ જીજ્ઞાસાનું સારાસારદ્વારા સમાધાન કરતાં સૂત્રકાર કહે છે કે-એ ધીર વીર સાધુ શૂલાદિક રોગથી આક્રાંત હોવા છતાં શૂલાદિક વેદનાઓ સહે, એનાથી એ ઉદ્વિગ્નચિત્ત ન બને. ચારિત્રમોહનીય કર્મના ક્ષયોપશમથી જીવ ચારિત્રની પ્રાપ્તિ કરે છે. વેદનીય કર્મના ઉદયથી અનેક પ્રકારની વેદનાઓ ઉત્પન્ન થાય છે. કેવળિયોને પણ રોગોનો સામનો કરવો પડે છે, તેઓ પણ જ્યારે વેદનીયના ઉદયથી રોગોથી ઘેરાઇ જાય છે તો પછી સાધારણ મુનિયોની તો વાત જ શી કરવી? માટે આવી પરિસ્થિતિમાં મુનિએ કદી પણ આત્મ-ગ્લાની કરવી જોઈએ નહીં. બીજું પોતાના મનમાં એવો પણ વિચાર કરી વેદનાઓને સહેવી જોઈએ કે હું આ સમય જે રોગ આદિથી પિડીત છું એ બધા

मयैव सहनीयम्, एतत्=एतदेव दुःखं पश्चादपि वर्तमानकालानन्तरं वार्द्धक्यादावपि मयैव सह्यं स्यात्, तीर्थङ्करादीनामपि तत्सम्भवादित्यवधार्य स्वात्मानं नावमानयेत्, उक्तंच—

हो रहा हूं, सो यह सब असातावेदनीय-कर्मजनित विलास है। इस जीव के साथ इसका सम्बन्ध पहिले से लगा आ रहा है। यह अभी नवीन तो बंधा नहीं है। तब जो कर्म बंधा है उसका उदय तो आवेगा ही। उसके उदयमें खेदखिन्न होना उस कर्म के नवीन बंध की दृढता का कारण है, समता से उसके फल को भोगना निर्जरा का हेतु है, अतः इसका उदयजन्य दुःख पूर्व में भी मैंने ही भोगा है और आगे भी वृद्धावस्था आदि में वही दुःख मुझे ही भोगना पडेगा। अरे! मेरी तो यहां पर क्या गिनती है? दुःख यह समझ कर मुझे थोडे ही छोड़ देगा कि 'यह साधु है'। अरे! मेरे जैसों की क्या बात? तीर्थंकरादिकों को भी तो कष्टों की संभावना रहती है।

भावार्थ—दुःखों के आने पर दुःखित प्राणी जब अपने समक्ष अन्य दूसरे व्यक्तियों के दुःखों का विचार करता है, तो उसे आगत दुःखों को सहने में प्रोत्साहन मिलता है, यही बात यहां पर टीकाकार ने प्रकट की है, तीर्थङ्करादिक जैसे महापुरुषों का उसके समक्ष उस अवस्था में आदर्श उपस्थित किया है, जिससे वह दुःखों के सहने में

અસાતા-વેદનીય કર્મોનો વિપાક છે. આ જીવનની સાથે તેનો સંબંધ પહેલાથી લાગેલો છે, આ આજે નવીન તો બંધાયેલ નથી, ત્યારે જે કર્મ બંધાયેલ છે તેનો ઉદય આવવાનો જ, આ ઉદયમાં અકળામણ અનુભવવી તે કર્મનો નવા બંધનું બંધન બાંધવા સમાન છે. સમતાથી તેના ફળને ભોગવવું તે નિર્જરાનો હેતુ છે, એટલે તેના ઉદયજન્ય દુઃખ પૂર્વમાં પણ મેં ભોગવ્યાં છે અને આગળ પણ વૃદ્ધાવસ્થા આદિમાં પણ દુઃખ મારે ભોગવવું પડશે. અરે! મારી તો શું ગણત્રી છે દુઃખ એવું સમજીને મને નહીં છોડી દે કે 'એ સાધુ છે.' તીર્થંકરાદિકને પણ કષ્ટની સંભાવના રહે છે.

ભાવાર્થ—દુઃખના આવવાથી દુઃખિત પ્રાણી પોતાની સામે બીજી વ્યક્તિઓના દુઃખનો વિચાર કરે છે તો તેને આગળ આવતાં દુઃખોને સહન કરવામાં પ્રોત્સાહન મળે છે. આ વાતને ટીકાકારે અહિં પ્રગટ કરેલ છે. તીર્થંકરાદિક જેવા મહાપુરૂષોના તેની સામે તેવી અવસ્થામાં આદર્શ ઉપસ્થિત કરેલ છે જેથી તે દુઃખો સહન કરવામાં ઢીલો-પોચો ન બની જાય. ચારિત્રની પ્રાપ્તિ અન્ય કર્મોના

"स्वकृतपरिणतानां, दुर्नयानां विपाकः,पुनरपि सहनीयो नान्यथा ते विमोक्षः ।
इति मनसि विचार्य प्राप्तदुःखं समस्तं, समपरिणतिभावात् सह्यते संयतैस्तत्॥१॥" इति।

मलिनपरिणामी न बन सके। चारित्रकी प्राप्ति अन्य कर्मके क्षयोपशमादिक का कार्य है और दुःखों का आना अन्य अन्य दूसरे कर्म के उदय का कार्य है। एक के क्षयोपशम में अन्य का भी क्षयोपशम हो जायगा यह तो कोई नियम नहीं है। अतः चारित्राराधन करनेवालों को कष्टों का सामना न करना पडे यह मान्यता कैसे युक्तियुक्त हो सकती है। इसलिये कष्टों को भोगते समय आत्मा में समताभाव धारण करना ही श्रेयस्कर मार्ग है। आत्मग्लानि करना कर्मबन्धकी दृढता का कारण बनता है; इसलिये मोक्षार्थीजनका यह कर्तव्य है कि वह वीर्योल्लास-शाली बन उनका सदा सामना करनेमें कटिबद्ध रहे। कहा भी है—

" स्वकृतपरिणतानां दुर्नयानां विपाकः,
पुनरपि सहनीयो नान्यथा ते विमोक्षः ।
इति मनसि विचार्य प्राप्तदुःखं समस्तं,
समपरिणतिभावात्सह्यते संयतैस्तत्" ॥१॥ इति,

इस प्रकार दुःखों के आने पर साधुजनका उनके सहन करने का यह विचार परम पवित्र है। वे यह सोच कर दुःखों को सहन करें कि मेरे कर्मों की निर्जरा का यही सुन्दर अवसर है।

ક્ષયોપશમાદિકનું કાર્ય છે અને દુઃખોનું આવવું બીજા કર્મોના ઉદયનું કાર્ય છે. 'એકના ક્ષયોપશમમાં બીજાનું પણ ક્ષયોપશમ બની રહે છે' એવો તો કોઇ નિયમ નથી, માટે આ ચારિત્રનું આરાધન કરવાવાળાને કષ્ટોનો સામનો ન કરવો પડે એ માન્યતા કેવી રીતે બંધબેસતી થઈ શકે? માટે કષ્ટોને ભોગવતી સમય આત્મામાં સમતાભાવ ધારણ કરવો એ શ્રેયસ્કર માર્ગ છે, આત્મગ્લાનિ કરવી એ કર્મબંધનની દૃઢતાનું કારણ બને છે, જેથી મોક્ષાર્થી જનનું એ કર્તવ્ય છે કે તે મક્કમ બની તેનો સદા સામનો કરવામાં કટિબદ્ધ રહે। કહ્યું પણ છે—

स्वकृतपरिताणतानां दुर्नयानां विपाकः, पुनरपि सहनीयो नान्यथा ते विमोक्षः ।
इति मनसि विचार्य प्राप्तदुखं समस्तं, समपरिणतिभावात्सह्यते संयतैस्तत् ॥१॥इति.

આ પ્રકારનાં દુઃખો આવવાથી સાધુજનનો તેને સહન કરવાનો તેવો વિચાર પરમ પવિત્ર છે. તે એવું વિચારી દુઃખોને સહન કરે કે મારા કર્મોની નિર્જરાનો આ સુંદરમાં સુંદર અવસર છે.

परमाव्सरोऽयं कर्मनिर्जराया इति क्षमेत वेदनामिति तात्पर्यम्। किंच-इदं शरीरं रसायनादिसेवनेन समुपजातोपचयमपि पार्थिवामकुम्भवदन्तःसारशून्यं क्षणदृष्टनष्टमस्तीत्याह-'भिदुरधर्म'-मित्यादि,-भिदुरधर्मं=भिदुरः क्षणभङ्गुरो धर्मः स्वभावो यस्य तत् भिदुरधर्मं=विनशनशीलं शरीरम्, औदारिकस्य सुपोषितस्यापि

तथा—रसायनादिक के सेवन से इस शरीरमें पुष्टि आती है तो भी जिस प्रकार मिट्टी का कच्चा घट भीतर में साररहित होता है-पानी के छींटे लगते ही जैसे वह देखतेर नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार से इस शरीर की भी यही परिस्थिति है। वेदना आदि बलवान् आयुः क्षयके कारणों के आ जाने पर सब रसायनादि अकिञ्चित्कर (रोग हटाने में असमर्थ) हो जाते हैं और यह शरीर भी देखतेर नष्ट हो जाता है, अपना किया-कराया सब निष्फल हो जाता है। मुनिको ऐसा विचार कर वेदनाओं के सहने में कायरता नहीं लानी चाहिये। इस प्रकार उसके उत्साह-वर्धनार्थ सूत्रकार "भिउरधम्मं विद्धंसणधम्मं" इत्यादि पदों से शरीर का स्वभाव प्रदर्शित करते हैं। क्षणभंगुर जिसका स्वभाव है वह भिदुरधर्म है। यह औदारिक शरीर विनशनशील है। अच्छी तरह से पोषित करने पर भी यह अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता है। कदाचित् वेदनीय का उदय हो जाता है तब शीघ्र इसके अंग-उपांगों में अनेक प्रकार के परिवर्तन होते देखे जाते हैं। इसीकी पुष्टि टीकाकार-

ફરી—અર્થાત્ રસાયણાદિકના સેવનથી શરીરમાં પુષ્ટિ આવે છે તો પણ જે પ્રકારે માટીનો કાચો ઘડો અંદરથી સારરહિત હોય છે, તેને પાણીનો થોડો માત્ર સ્પર્શ થતાં જોત-જોતામાં તે ગળી જઈ નાશ પામે છે, એ જ રીતે આ શરીરની પણ તેવી જ સ્થિતિ છે. વેદના આદિ બલવાન આયુ ક્ષયનાં કારણો ઉપસ્થિત બનતાં બધા રસાયનાદિક અકિંચિત્કર (રોગને નિર્મૂળ કરવામાં અસમર્થ) બની જાય છે, અને આ શરીરનો જોત-જોતામાં નાશ થઇ જાય છે, અને કર્યું કરાવ્યું બધું નિષ્ફળ બની જાય છે. મુનિએ આવો વિચાર કરી રોગની વેદના સહન કરવામાં કોઈ પ્રકારની કાયરતા બતાવવી ન જોઇએ. આ કારણે એમનામાં ઉત્સાહ દઢ બનાવવા સૂત્રકાર "भिउरधम्मं विद्धंसणधम्मं" ઇત્યાદિ પદોથી શરીરનો સ્વભાવ કેવો છે તેનું વર્ણન કરે છે-ક્ષણભંગુર એનો સ્વભાવ છે, એ ભિદુરધર્મ છે. સુંદર દેખાતો માનવદેહ વિનાશ માટે જ સર્જાયો છે. ગમે તેવું લાલન-પાલન કરો છતાં એ પોતાનો સ્વભાવ છોડતો નથી. કોઇ વખત વેદનીયનો ઉદય થાય છે ત્યારે તેના અંગ ઉપાંગોમાં શીઘ્ર અનેક પ્રકારનું

कदाचिद्वेदनीयोदयाच्छिरःकुक्षिनयनहृदयादिषु चावयवेषु स्वत एव शीघ्रं विशरारुत्वात्। अपि च–विध्वंसनधर्मं हस्तपादादेः कस्यचिदवयवविशेषस्योपघाताद्विध्वंसनम्=अधःपतनं धर्मो यस्य तद्विध्वंसनधर्मं जीर्णशीर्णपत्रादिवदधःपतनशी-

कुक्षिनयनहृदयादिषु चावयवेषु स्वत एव शीघ्रं विशरारुत्वात्" इस पंक्ति से करते हैं। मस्तक में, उदर में, आंखों में और हृदयादिक अवयवों में स्वत एव शीघ्र विनशनशीलता प्रतीत होती है। यह तो प्रसिद्ध ही है–कि जब मस्तक में असातावेदनीय के निमित्त से प्रबल पीड़ा होती है या उसमें कोई भयंकर चोट लगती है तो ऐसी अवस्था में देहान्त तक हो जाता है। यही हालत प्राणी की पेटकी प्रबल पीडासे भी होती है। आंखों में दर्द होने से जो पहिले बड़ी लुभावनी एवं सुन्दर मालूम देती थी वे ही आंखें कुछ ही कालान्तर में फूट जाने से घृणास्पद बन जाती हैं। यदि ऐसा न भी हो तो भी उनकी रोशनी कम हो जाती है। हृदय की गति बंद होने से हट्टा–कट्टा पट्ठा भी एक मिनिट में काल के गाल में समा जाता है। इससे यही प्रतीत होता है कि इस औदारिक शरीर का कोई विश्वास नहीं, न जानें कब नष्ट हो जाय। इसका क्षण २ में परिवर्तन होता रहता है। इसी अपेक्षा से इसे भिदुरधर्मात्मक कहा गया है। तथा–यह शरीर विध्वंसनधर्मस्वरूप है। इसके किसी

પરિવર્તન થતું દેખાય છે. આની પુષ્ટિમાં "शिरःकुक्षिनयनहृदयादिषु चावयवेषु स्वत एव शीघ्रं विशरारुत्वात्" આ પંક્તિથી કહે છે કે–માથામાં, પેટમાં, આંખોમાં તેમજ હૃદયાદિક અવયવોમાં સ્વત એવ તાત્કાલિક વિનાશ થાય તેવી પ્રતીતિ હોય છે. આ વાત તો પ્રસિદ્ધ જ છે કે જ્યારે માથામાં અસાતાવેદનીયના કારણે પ્રબળ પીડા થાય છે, અથવા તો એમાં કોઈ પ્રબળ ચોટ પહોંચી જાય છે. આ અવસ્થામાં પ્રાણીનો દેહાન્ત પણ આવી જાય છે, આવી જ હાલત પેટના દર્દથી પણ બને છે. આંખોમાં દર્દ થવાથી પહેલાં જે ખુબ જ લોભાવનારી સુંદર દેખાતી હતી તે આંખો થોડા જ વખતમાં ફુટી જવાથી ઘૃણાસ્પદ બની જાય છે, કદાચ એવું ન બને તો પણ એની રોશની ઓછી થઈ જાય છે. હૃદયની ગતિ બંધ પડવાથી સશક્ત અને તંદુરસ્ત માણસ એક જ મીનીટમાં કાળના વિકરાળ પંજામાં જઈ પડે છે. આથી એ સાબીત થાય છે કે આ ઔદારિક શરીરનો કોઇ વિશ્વાસ નહીં, કોણ જાણે ક્યારે અને કઈ ઘડીયે એનો નાશ થઈ જાય. ક્ષણ ક્ષણમાં એમાં પરિવર્તન થતું જ રહે છે. આજ કારણે ભિદુરધર્માત્મક કહેવામાં આવેલ છે. આ શરીર જે વિધ્વંસનધર્મસ્વરૂપ છે, એના હાથ પગ

लमित्यर्थः, एवम्-अध्रुवम्=अनिश्चितस्थितिकं चञ्चलस्वभावत्वात्, अनित्यम्-तत्त्वा-प्रच्युतानुत्पन्नस्थिरायोघनस्वभावं नित्यं, न नित्यम्-अनित्यम्=अस्थायिस्वभावम्,

भी हस्त-पादादिक अंगविशेष में उपघात-चोट आदि के लगने पर इस का अधःपात हो जाता है। जिस प्रकार जीर्ण-शीर्ण पत्तों का अधःपतन होता रहता है, ठीक यही दशा इस शरीर की होती रहती है। मर्मस्थानों में या हस्त-पादादिकों (हाथ-पग) में विशेष चोट लगने से मृत्यु हो जाती है, यह अनुभवसिद्ध बात है, इसलिये इसे अध्रुव भी कहा है। इसके रहने की कोई निश्चित स्थिति नहीं है। यद्यपि शास्त्रों में औदारिक शरीर की स्थिति उत्कृष्ट और जघन्य रीति से प्रदर्शित की गई है; परंतु उतनी ही स्थिति इसके उदय में आवेगी यह तो कोई निश्चित बात नहीं। अकाल में भी इसका पतन होता देखा जाता है। क्यों कि इस का स्वभाव ही चंचल है; स्थिर नहीं, अतः इस अपेक्षा से यह अनित्य है। यद्यपि द्रव्यदृष्टि से किसी भी वस्तु का समूल नाश नहीं होता है, तो भी पर्यायदृष्टि से प्रत्येक पदार्थ परिणमनशील है। जो वस्तु अपने स्वरूप से अप्रच्युत अनुत्पन्न स्थिर और अयोघन स्वभाववाली होती है उसका नाम नित्य है। इस प्रकार की नित्यता से जो रहित है, वह अनित्य है। इस शरीर में इस प्रकारकी नित्यता नहीं है; क्यों कि यह पूरण-गलन-

ઇત્યાદિ કોઈ ભાગ ઉપર ચોટ આદિ લાગી જતાં તેનો અધઃપાત થઈ જાય છે. જેવી રીતે ઝાડ ઉપરનાં જીર્ણ પાંદડાંને હવાનો સાધારણ સ્પર્શ લાગતાં જ તે ખરી પડે છે, ઠીક આવી દશા આ શરીરની થતી રહે છે. મર્મ સ્થાનોમાં અને હાથ પગોમાં વિશેષ ચોટ લાગવાથી મૃત્યુ થાય છે, એ અનુભવસિદ્ધ વાત છે. આ કારણે એને અસ્થિર કહેવામાં આવે છે. તેને રહેવાની કોઈ નિશ્ચિત સ્થિતિ નથી તો પણ શાસ્ત્રોમાં ઔદારિક શરીરની સ્થિતિ ઉત્કૃષ્ટ અને જઘન્ય રીતિથી પ્રદર્શિત કરેલ છે, પરંતુ એટલી જ સ્થિતિ તેના ઉદયમાં આવશે એવી તો કોઈ નિશ્ચિત વાત નથી. અકાલમાં પણ તેનું પતન થવું અસંભવ નથી, કારણ કે તેનો સ્વભાવ ચંચલ જ છે-સ્થિર નથી, એથી આ અપેક્ષાએ આ અનિત્ય છે, પરંતુ દ્રવ્ય-દૃષ્ટિથી કોઈ પણ વસ્તુનો સમુળો નાશ થતો નથી તો પણ પર્યાયદૃષ્ટિથી પ્રત્યેક પદાર્થ પરિણમનશીલ છે, જે વસ્તુ પોતાના સ્વરૂપથી અપ્રચ્યુત અનુત્પન્ન સ્થિર અને અયોઘન સ્વભાવ-વાળી હોય છે તેનું નામ નિત્ય છે, આવા પ્રકારની નિત્યતાથી જે રહિત છે તે અનિત્ય છે. આ શરીરમાં એવા પ્રકારની નિત્યતા છે નહિ, કારણ કે તે પૂરણ-ગળન-

अशाश्वतम्–शश्वत्=सर्वदा भवं शाश्वतं, न शाश्वतम्–अशाश्वतं–नित्यावस्थानरहितम्, एवं चयापचयिकम्–इष्टाहाराद्युपयोगादौदारिककायवर्गणापरमाणूनामुपचयाच्चयः, तद्विरुद्धोऽपचयः, चयश्चापचयश्च चयापचयौ, तावस्त्यस्येति चयापचयिकं=वृद्धिक्षयस्वभावम्; अत एव विपरिणामधर्मं वि=विविधैः गर्भकौमारयौवनवार्धकादिरूपैः परिणामः=दुग्धस्य दधिवदन्यथाभावो विपरिणामः, स एव धर्मः स्वभावो

स्वभाववाला है। इसलिये यह प्रच्युत उत्पन्न और अस्थिर है। जिस प्रकार कूटस्थ नित्य में कोई भी जात का परिणमन दृष्टिपथ नहीं होता है उस प्रकार का कूटस्थ नित्य अयोघनस्वरूप यह शरीर नहीं है, इसलिये यह अनित्य है–अस्थायिस्वभाववाला है। जो निरन्तर रहे उसका नाम शाश्वत है, जो शाश्वत नहीं है उसका नाम अशाश्वत है। यह शरीर अशाश्वत इसलिये है कि इसका अवस्थान नित्य नहीं है। इसी प्रकार यह शरीर चय और अपचय विशिष्ट है—इष्ट आहारादिक के उपयोग–सेवन से औदारिक कायवर्गणा के परमाणुओं की वृद्धि से इसमें चयस्वभावता, और इससे विपरीत आहारादिक के उपयोग से अपचयस्वभावता सिद्ध है। चय और अपचय में द्वन्द्व समास है। चय और अपचय से जो युक्त हो–अर्थात् चय और अपचय जिस में हों वह चयापचयिक है। वृद्धिक्षयस्वभावरूप यह शरीर है। समयानुसार घटती–बढती शरीर में होती हुई प्रत्यक्ष प्रतीत होती है, इसीलिये यह विपरिणामधर्मवाला है। जिस प्रकार दूध का परिणाम दही–आदि

સ્વભાવવાળું છે, આ કારણે તે પ્રચ્યુત ઉત્પન્ન અને અસ્થિર છે. જે પ્રકારે કૂટસ્થ નિત્યમાં કોઈ પણ જાતનું પરિણામ જોવામાં આવતું નથી તે પ્રકારનું અયોઘનસ્વરૂપ આ શરીર નથી માટે આ અનિત્ય છે– અસ્થાયી સ્વભાવવાળું છે. જે નિરંતર રહે તેનું નામ શાશ્વત છે, જે શાશ્વત નથી તેનું નામ અશાશ્વત છે. આ શરીર અશાશ્વત એટલા માટે છે કે એની અવસ્થા નિત્ય નથી. આ પ્રકારે આ શરીર ચય અને અપચય–વિશિષ્ટ છે. ઇસ્ટ આહારાદિકના ઉપયોગ–સેવન–થી ઔદારિકકાયવર્ગણાના પરમાણુઓની વૃદ્ધિથી તેમાં ચય–સ્વભાવતા– અને એનાથી વિપરીત આહારાદિકના ઉપયોગથી અપચય–સ્વભાવતા સિદ્ધ છે, ચય અને અપચયમાં સામસામો સ્વભાવ છે. ચય અને અપચય જેમાં હોય તે ચયાપચયિક છે. વૃદ્ધિ–ક્ષય–સ્વભાવરૂપ આ શરીર છે, સમયાનુસાર ઘટ–વધ શરીરમાં થાય છે તેમ પ્રત્યક્ષ દેખાઈ આવે છે. આ કારણે તે વિપરિણામધર્મવાળો છે. જેમ દુધનું પરિણામ દહીં આદિ અવસ્થારૂપ થાય છે તેવી રીતે આ

यस्य तद्विपरिणामधर्मम् एकस्मिन्नेव जन्मनि विविधावस्थाविशेषैरनेकविध-परिणामस्वभावं शरीरं वर्ततेऽतोः हे मुनयः! यूयम् एतं रूपसन्धिम्=भिदुरादिस्व-भावं शरीरं सुकुलजन्मबोधिलाभाद्यवसरं च पश्यत=प्रेक्षध्वं जानीतेत्यर्थो वा, तेन शरीरे ममत्वं विहाय तपःसंयमादेः साफल्यं विधेयमिति भावः ॥ सू० २ ॥

भिदुरधर्मादिस्वरूपं शरीरं विलोकयतो यद्भवेत्तद्दर्शयति-'समुप्पेह०'-इत्यादि।

मूलम्—समुप्पेहमाणस्स इक्कायणरयस्स इह विप्पमुक्कस्स नत्थि मग्गे विरयस्स-त्तिबेमि ॥ सू० ३ ॥

छाया—समुत्प्रेक्षमाणस्यैकायतनरतस्येह विप्रमुक्तस्य नास्ति मार्गो विरत-स्येति ब्रवीमि ॥ सू० ३ ॥

अवस्थारूप होता है उसी प्रकार इस शरीर के परिणामस्वरूप गर्भ-कौमार (बाल्य अवस्था) और यौवन एवं वृद्ध अवस्थाएं हैं। इस प्रकार एक ही जन्म में इन अनेक अवस्थाविशेषों से इस शरीर का भिन्न २ रूप में परिणमन होता हुआ देखा जाता है। इसलिये हे मुनियों! रूपसन्धि अर्थात् भिदुरादिस्वभाववाला रूप=शरीर को एवं उत्तमकुल में उत्पत्ति तथा बोधिलाभ आदि प्राप्त करने की संधि=अवसर को देखो। इसका अभिप्राय यह है कि-शारीरिकममता छोड़ कर तप संयम आदि का आराधन कर जीवन को सफल बनाओ ॥ सू० २ ॥

इन पूर्वोक्त विशेषणों से विशिष्ट शरीर को समझनेवाले मुमुक्षुजन को जो लाभ होता है, सूत्रकार उसे प्रकट करते हैं-'समुप्पेह'०इत्यादि।

શરીરનું પરિણામ-સ્વરૂપ ગર્ભ બાલ્યાવસ્થા અને યૌવન તેમજ વૃદ્ધ અવસ્થાઓ છે. આ રીતે એક જ જન્મમાં જુદી જુદી અનેક અવસ્થા ઉપલબ્ધ આ શરીરના ભિન્ન ભિન્ન રૂપમાં પરિણમે છે જે સમયાનુકૂલ દેખાઇ આવે છે. આ કારણે હે મુનિઓ! રૂપસન્ધિ અર્થાત્ ભિદુરાદિસ્વભાવવાળું રૂપ, શરીરની ઉત્તમ કુળમાં ઉત્પત્તિ, લાભ આદિ પ્રાપ્ત કરવાની સંધિ-અવસરને જુઓ. આનો અભિપ્રાય એ છે કે શારીરિક મમતાને છોડીને તપ સંયમ આદિનું આરાધન કરી જીવનને સફલ બનાવો ॥ સૂ૦ ૨ ॥

આ પૂર્વોક્ત વિશેષણોથી વિશિષ્ટ શરીરને સમજવાવાળા મોક્ષાર્થી જનને જે લાભ થાય છે તેને સૂત્રકાર પ્રગટ કરે છે- "समुप्पेह०" ઈત્યાદિ.

टीका—'समुत्प्रेक्षमाणस्ये'-त्यादि। समुत्प्रेक्षमाणस्य-सम्=सम्यक् उत्प्रेक्षमाणस्य=पश्यतः-भिदुरादिधर्ममिदं शरीरमित्येवं निश्चिन्वत इत्यर्थः, एकायतनरतस्य=सकलसावद्यव्यापारेभ्य आत्मा आयत्यते यस्मिन्, निपुणाचरणे वा यत्नवान् विधीयते इत्यायतनं=रत्नत्रयम्, एकम्=सजातीयद्वितीयरहितम् आयतनम् एकायतनं, तस्मिन् रतः=तत्परः=एकायतनरतस्तस्य-रत्नत्रयसमाराधनपरायणस्य

जिसे यह दृढ प्रतीति हो चुकी है कि पौद्गलिक होने से यह शरीर भिदुरादिधर्मात्मक है, इससे आत्मकल्याण का मार्ग साधा जा सकता है, अतः इसकी उपयोगिता अवश्य कर लेनी चाहिये; नहीं तो न मालूम कब इसका पतन हो जावे और मैं यों ही संसार में परिभ्रमण करता रहूँ। इस प्रकार की पवित्र भावना के वशवर्ती हो कर जो सकल सावद्य व्यापारों से निवृत्त होते रहते हैं वे रत्नत्रयरूप निज आत्मस्वभाव में रत बनते हैं। तथा संसार, शरीर एवं भोगों से सर्वथा छोड़ी हुई काँचली से सर्प की तरह जो अलिप्त रहते हैं, अपनी प्रवृत्ति को रातदिन वैराग्य की भावना रूपी पुटसे निर्मल बनाते रहते हैं, ऐसे विरत मुनि का नरकनिगोदादिक में गमन नहीं होता है। इन्हीं समस्त अभिप्रायों को चित्त में धारण कर सूत्रकार ने 'समुप्पेहमाणस्स' इस सूत्र का अवतरण किया है। वे कहते हैं-'समुत्प्रेक्षमाणस्य' यह शरीर भिदुरादिधर्मात्मक है, इस प्रकार से इस शरीरका अच्छी तरह से जिसे निश्चय हो चुका है, और इसीलिये जो "एकायतनरतस्य" एकायतनस्वरूप रत्नत्रय में रत बना हुआ है—सकल

જેનાથી આવી દૃઢ ખાત્રી થઈ ચુકી છે કે પૌદ્ગલિક હોવાથી આ શરીર ભિદુરાદિધર્માત્મક છે, એનાથી આત્મકલ્યાણનો માર્ગ સાધી શકાય છે, એટલે એનો ઉપયોગ જરૂરથી કરી લેવો જોઈએ, ન જાણે ક્યારે એનું પતન થઈ જાય, આ સંસારમાં હું આજ રીતે પરિભ્રમણ કરતો ન રહું, એવા પ્રકારની પવિત્ર ભાવનાને વશ થઈ જે સકલ સાવદ્ય વ્યાપારોથી નિવૃત્ત બને છે તે રત્નત્રય રૂપ પોતાના આત્મસ્વભાવમાં રત બને છે, અને સંસાર શરીર તથા ભોગોથી સર્પ જેમ ઉતારેલી કાંચળીથી સદા દૂર રહે છે તે રીતે અલિપ્ત રહી પોતાની પ્રવૃત્તિને અહોરાત્ર વૈરાગ્યની ભાવનારૂપી પુટથી નિર્મળ બનાવતો રહે છે. એવા વિરત મુનિનું નરક-નિગોદાદિકમાં ગમન થતું નથી. આ સઘળા અભિપ્રાયોને દિલમાં ધારણ કરી સૂત્રકારે 'समुप्पेहमाणस्स' આ સૂત્રનું અવતરણ કરેલ છે. તે કહે છે કે—'समुत्प्रेक्षमाणस्य' આ શરીર ભિદુરાદિધર્માત્મક છે, આ પ્રકારથી આ શરીરનો સારી રીતે જેને અનુભવ થઈ ગયો છે, અને તેથી જ જે "एकायतनरतस्य"-

इह=शरीरे जन्मनि संसारे वा विप्रमुक्तस्य—परिग्रहममत्वादिरहितत्वेन वि=विविध-प्रकारैः प्रकर्षेण च मुक्तस्य—वैराग्यभावनया शरीराद्यनुरागरहितस्य, विरतस्य=सावद्यव्यापाररहितस्य मुनेः मार्गः=नरकनिगोदादिगत्यागतिरूपः पन्थाः नास्ति=न विद्यते। विरतस्य मुनेः कर्मणः शरीरस्य चासत्त्वान्न नरकादिगतिषु गमनं भवत्यतस्तस्य स मार्गो नास्तीत्याशयः। इति ब्रवीमि=न मया स्वमत्या प्रोक्तम्, यद्भगवत्सकाशान्मया श्रुतं तत् सर्वं त्वां ब्रवीमि=कथयामि ॥ सू० ३ ॥

सावद्य व्यापारों से निवृत्त किया जाता है आत्मा जिसकी स्थिति में, अथवा निपुण आचरण में यत्नवाला किया जाता है आत्मा जिसके द्वारा उसका नाम आयतन है, वह रत्नत्रयस्वरूप है, यह आत्मा का निजधर्म है। इसके साथ दिया गया "एक" विशेषण यह बतलाता है कि इसकी जोड़का और कोई पदार्थ इस दुनिया में नहीं है। यह एक–असहाय–सर्वोत्कृष्ट धर्म है। एकायतन में जो रत–लवलीन है, अर्थात् रत्नत्रय की अच्छी तरह से आराधना करने में तत्पर है वह एकायतनरत है। तथा "इह" शरीर, जन्म अथवा संसार में "विप्रमुक्तस्य" परिग्रह एवं ममत्वादि से रहित होनेसे जो "वि" विविध प्रकारों से और "प्र" प्रकर्ष से "मुक्तस्य" वैराग्यभावना से शरीरादिक के अनुराग से रहित है ऐसे सावद्य व्यापारों से रहित मुनि का मार्ग–नरकनिगोदादिक का गति–आगतिरूप मार्ग नहीं होता है, कारण कि विरत मुनि के तज्जातीय कर्म एवं शरीर का असत्त्व होने से नरकादि गतियों में गमन नहीं होता है।

એકાયતનસ્વરૂપ રત્નત્રયમાં રત બનેલા છે બધા સાવદ્ય વ્યાપારોથી નિવૃત્ત કરાય છે આત્મા જેની સ્થિતિમાં, અથવા નિપુણ આચરણમાં યત્નવાળો બનાવી દેવામાં આવે છે આત્મા જેનાથી તેનું નામ આયતન છે. તે રત્નત્રયસ્વરૂપ છે. આ આત્માના નિજધર્મ છે. તેની સાથે આપવામાં આવેલ "एक" વિશેષણ એ બતાવે છે કે તેની જોડનો કોઇ પદાર્થ દુનિયામાં છે જ નહિ. તે એક અસહાય સર્વોત્કૃષ્ટ ધર્મ છે. એકાયતનમાં જે તત્પર છે. અર્થાત્ રત્નત્રયની સારી રીતે આરાધના કરવામાં તત્પર છે તે એકાયતનરત છે. તથા "इह" શરીર, જન્મ અથવા સંસારમાં "विप्रमुक्तस्य" પરિગ્રહ મમત્વાદિથી રહિત હોવાથી તે "वि" વિવિધ પ્રકારથી "प्र" પ્રકર્ષથી "मुक्तस्य" વૈરાગ્ય ભાવનાથી શરીરાદિ પ્રત્યેની મમતાથી રહિત છે એવા સાવદ્ય વ્યાપારોથી રહિત મુનિનો માર્ગ–નરક નિગોદાદિકની ગતિ–આગતિરૂપ માર્ગ–હોતો નથી, કારણ કે વિરત મુનિનાં તજ્જાતીય કર્મ અથવા શરીરમાં આસક્તપણું ન હોવાથી નરકાદિ ગતિયોમાં તેનું ગમન

सावद्यव्यापारविरतो मुनिर्भवतीत्यभिधायाधुना तद्विपरीताचारमाचरन् परिग्रहवानिति दर्शयितुमाह—' आवंती ' इत्यादि ।

मूलम्—आवंती केयावंती लोगंसि परिग्गहावंती, से अप्पं वा बहुं वा अणुं वा थूलं वा चित्तमंतं वा अचित्तमंतं वा, एएसु च्चेव परिग्गहावंती, एयमेव एगेसिं महब्भयं भवइ, लोगवित्तं च णं उवेहाए, एए संगे अवियाणओ ॥ सू० ४ ॥

छाया—यावन्तः कियन्तो लोके परिग्रहवन्तः, तदल्पं वा बहु वा अणु वा स्थूलं वा चित्तवद्वा अचित्तवद्वा, एतेषु चैव परिग्रहवन्तः । एतदेव एकेषां महाभयं भवति, लोकवित्तं च खलूत्प्रेक्ष्यैतान् सङ्गानविजानतः ॥ सू० ४ ॥

टीका—' यावन्तः ' इत्यादि, लोके=मनुष्यलोके यावन्तः=कियन्तः परिग्रहवन्तः-परिग्रहो येषामस्ति ते परिग्रहवन्तः=परिग्रहतत्पराः भवेयुः । यस्य द्रव्यस्य परिग्रहस्तद् द्रव्यम् अल्पं=स्तोकं-मूल्यतः कपर्दिकादिकं, प्रमाणतोऽर्कतूलादिकं,

---

इसलिये उसका वह मार्ग नहीं है । यह कथन मैंने अपनी बुद्धिसे कल्पित कर नहीं कहा है; परंतु जैसा मैंने भगवान् के मुख से सुना है वह सब वैसा तुमसे कहा है—इस प्रकार सुधर्मस्वामीने जम्बूस्वामीसे कहा ॥ सू० ३ ॥

'सावद्य व्यापारों से विरत मुनि होता है' इस बातको कह कर अब 'जो इससे विपरीत अपनी प्रवृत्ति करता है वह परिग्रही है ' इस विषय को प्रकट करनेके लिये सूत्रकार कहते हैं—' आवंती ' इत्यादि ।

इस मनुष्य लोक में कितनेक मानव परिग्रहशाली हैं। यह परिगृहीत द्रव्य, चाहे अल्प हो; चाहे बहुत हो, परिग्रह, चाहे अणुरूप में हो; चाहे स्थूलरूप में हो; चाहे सचित्त हो; चाहे अचित्त हो; इनमेंसे

થતું નથી, આ કારણે તેમનો તે માર્ગ નથી. આ કથન મેં પોતાની બુદ્ધિથી કલ્પેલું નથી; પરંતુ આ મેં ભગવાનના મુખેથી સાંભળ્યું છે એ બધું તમોને કહ્યું છે. આ પ્રકારે સુધર્મ સ્વામીએ જમ્બૂ સ્વામીને કહ્યું. ॥ સૂ૦ ૩ ॥

' સાવદ્ય વ્યાપારોથી વિરત મુનિ હોય છે,' આ વાત કહીને હવે ' જે એનાથી વિપરીત પોતાની પ્રવૃત્તિ કરે છે તે પરિગ્રહી છે,' આ વિષયને પ્રગટ કરવા માટે સૂત્રકાર કહે છે-" આવંતી " ઈત્યાદિ.

આ મનુષ્યલોકમાં કેટલાક માણસો પરિગ્રહી છે--પરિગ્રહ જેને છે તે. પરિગૃહીત દ્રવ્ય ભલે થોડું હોય, ભલે વધારે હોય, ભલે અણુરૂપ હોય, ભલે સ્થૂલરૂપમાં હોય, ભલે સચિત્તરૂપમાં હોય, ભલે અચિત્ત હોય, આમાંથી કંઈ

बहु=अधिकं वा-मूल्यतो रत्नादिकं, प्रमाणतः काष्ठादिकम्; अणु वा-मूल्यतो-लघुतृणादिकं, प्रमाणतो वज्रादिकं, स्थूलं वा-मूल्येन प्रमाणेन च गजादिकम्। तानि च द्रव्यभावभेदेन द्विविधानि बोध्यानि; तथा हि-किञ्चिद् वस्तु द्रव्यतोऽल्पं न भावतः-वज्रादिमणिः, अपरं च भावतोऽल्पं न द्रव्यतः-एरण्डकाष्ठादिकम्, अन्यच्च द्रव्यतो भावतोऽप्यल्पं कपर्दादिकम् ; उभयतो बहु स्थूलं च गोशीर्षकहरिचन्दनादिकम्। यद्वा-परिग्रहश्चतुर्विधो द्रव्यक्षेत्रकालभावभेदात्। एतच्च सर्वं चित्तवद् वा अचित्तवद् वा, उपलक्षणान्मिश्रस्यापि ग्रहणम्। सर्वेषामेतेषां योगेन

कुछ भी जिसके पास है वह परिग्रही है। यह परिग्रह ही अविरतियों और विरतियों को महान् भयस्वरूप होता है। इस प्रकार इस लोकवित्त को समझ कर जो इससे विरत हैं उनके परिग्रहजन्य भय नहीं होता है। परिग्रह में अल्पता और अधिकता मूल्य की एवं प्रमाण की अपेक्षा से बतलाई गई है। मूल्यकी अपेक्षा जिसके पास एक कोडी-मात्र अल्प परिग्रह है अर्थात् इतना भी जिसके परिग्रह है कि जिसकी कीमत एक कोडी है वह भी परिग्रही है। प्रमाण की अपेक्षा-अर्कतूलादि (आककी रूई) मात्र भी जिसके परिग्रह है वह भी उसमें ममत्वभावविशिष्ट होने से परिग्रहयुक्त है। इसीप्रकार मूल्यकी अपेक्षा रत्नादिक, प्रमाणकी अपेक्षा काष्ठादिक बहुत परिग्रह हैं। मूल्यकी अपेक्षा लघु-अणु तृणादिक, प्रमाण की अपेक्षा वज्रादिक, मूल्य और प्रमाण से स्थूल हाथी घोडे आदि परिग्रह हैं। सचित्त और अचित्त परिग्रहके ग्रहण से मिश्र परिग्रहका भी यहां ग्रहण हुआ है। इन समस्त के ग्रहण से अथवा कुछ २ के

પણ જેની પાસે છે તેને પરિગ્રહી કહે છે. આ પરિગ્રહ જ અવિરતિયો અને વિરતિયોને મહાભયસ્વરૂપ છે. આ પ્રકારે આ લોક પરિગ્રહને સમજીને જે તેનાથી વિરત છે તેને પરિગ્રહજન્ય ભય હોતો નથી. પરિગ્રહમાં અલ્પતા અને અધિકતા મૂલ્યની અને પ્રમાણની અપેક્ષાથી બતાવવામાં આવી છે. કિંમતની અપેક્ષા જેની પાસે એક કોડી માત્ર અલ્પ પરિગ્રહ છે અર્થાત્ એટલો પણ પરિગ્રહ છે કે જેની કિંમત એક કોડી છે તે પણ પરિગ્રહી છે. પ્રમાણની અપેક્ષા આકડાનું રૂ માત્ર પણ જેને પરિગ્રહ છે તે પણ તેનામાં મમત્વભાવવિશિષ્ટ હોવાથી પરિગ્રહયુક્ત છે. તેવી રીતે મૂલ્યની અપેક્ષા રત્નાદિક, પ્રમાણની અપેક્ષા કાષ્ઠ આદિક ઘણોજ પરિગ્રહ છે. મૂલ્યની અપેક્ષા લઘુ-અણુ-તૃણાદિક, પ્રમાણની અપેક્ષા વજ્રાદિક, મૂલ્ય અને પ્રમાણથી સ્થૂલ હાથી ઘોડા આદિ પરિગ્રહ છે. સચિત્ત અને અચિત્ત પરિગ્રહના ગ્રહણથી મિશ્ર પરિગ્રહનો પણ અહિં ગ્રહણ થયેલ છે.

परिग्रहिणो भवन्ति, तदेवाह—एतेष्वित्यादि, एतेषु चैव=षड्जीवनिकायेष्वल्प-बहुस्थूललघ्वादिषु चैव प्राणिनः परिग्रहवन्तः=ममत्ववन्तो जायन्ते। यः कोऽपि विरतोऽविरतो वाऽल्पादिवस्तुजातेन परिग्रहवान् भवति, ततश्च पञ्च-महाव्रतेष्वेक-व्रतविराधनात् सर्वव्रतविराधको भवति, अनिवारितास्रवत्वादिति भावः। एतेषां परिग्रहात्तत्सेविनामपरिग्रहाभिमानिनां शरीरमनर्थायैवेत्याह—'एतदेवे'त्यादि।

ग्रहण से जीव परिग्रही होते हैं। इन षड्जीवनिकायरूप अल्प, बहु, स्थूल और लघुरूप परिग्रहमें मूर्च्छाशाली होने से जीव ममत्वपरिणामी होते हैं। जो कोई अविरत प्राणी अपने को विरतरूप से घोषित करता हुआ भी 'ममेदं'-भावसे अल्प परिग्रहरूप वस्तु का भी ग्रहण करता है वह परिग्रही ही है। इसी प्रकार से पंचमहाव्रतों में से जो एक भी व्रतकी विराधना करता है वह अपने समस्त व्रतोंका विराधक होता है। कहीं किसी एक अंश में भी जिसके अपराध का सद्भाव हुआ है उसके समस्त अंशों में भी अपराधीपना आता है; क्यों कि ऐसी हालतमें उसके आस्रव का द्वार बंद नहीं होता। उत्तर गुणों में अतिचार भी ऐसा ही होता है यदि मूलगुणों का विध्वंसक न हो।

शङ्का—अल्पादिवस्तुरूप परिग्रह के ग्रहण से यदि परिग्रहवत्ता मानी जावे तो फिर जो अल्पादिरूप परिग्रहका सेवन करते हुए भी अपने को अपरिग्रही कहते हैं उनके आहार एवं शरीरादिक भी

આ બધાના ગ્રહણુથી અથવા કોઈ કોઈના ગ્રહણુથી જીવ પરિગ્રહી બને છે. આ ષડ્જીવનિકાયરૂપ અલ્પ, બહુ, સ્થૂળ તેમજ લઘુરૂપ પરિગ્રહમાં મૂર્ચ્છાશાળી હોવાથી જીવ મમત્વપરિણામી બને છે. જો કોઇ અવિરત પ્રાણી પોતાને વિરતરૂપથી જાહેર કરી 'મમેદં'-ભાવથી અલ્પપરિગ્રહરૂપ વસ્તુ પણ ગ્રહણ કરે તો તે પરિગ્રહી જ છે. આ પ્રકારે પાંચ મહાવ્રતમાંના એક વ્રતની વિરાધના કરે છે તે પોતાનાં સમસ્ત વ્રતોનો વિરાધક બને છે. ક્યાંક કોઈ એક અંશમાં પણ જેનામાં અપરાધનો સદ્ભાવ થયો પછી તેના સમસ્ત અંશોમાં અપરાધીપણું આવી જાય છે, કેમકે એવી હાલતમાં એના આસ્રવના દ્વાર બંધ નથી થતાં. જો મૂળગુણોનો વિધ્વંસક નહિ હોય તો ઉત્તરગુણોમાં પણ અતિચાર એમજ હોય છે.

શંકાઃ—અલ્પાદિવસ્તુરૂપ પરિગ્રહના ગ્રહણુથી જો પરિગ્રહવત્તા માનવામાં આવે તો પછી અલ્પાદિરૂપ પરિગ્રહનું સેવન કરવા છતાં પોતાને અપરિગ્રહી કહે એના આહાર અને શરીરાદિક પણ અનર્થનાં કારણ બનશે ? આ

एकेषां=केषांचिद् विरतानामविरतानां वा परिग्रहिणाम् एतदेव शरीरं महाभयं=कारणे कार्योपचारात्प्राणातिपातादिकरणेन नरकनिगोदादिकटुकफलरूपमहाभयजनकत्वान्महाभयमेव भवति ।

यद्वा-यथा-पाणिपुटभोजिनां शरीराहारादेरन्यस्याप्यल्पस्य पात्रवस्त्रादेरसत्त्वाद् गृहस्थसद्मनि चाधःकर्मादिदोषदुष्टमाहारादिकमश्नतां हि महता कर्मबन्धेन पोषणाच्छरीरं महाभयहेतुत्वान्महाभयं, तथा तच्छरीरं गुह्यस्थानेऽनाच्छादनेन

अनर्थ के लिये होंगे ? इस शंकाका समाधान करने के लिये सूत्रकार " एतदेव एकेषां महाभयं भवति " इस सूत्रांश का कथन करते हैं। वे कहते हैं—चाहे विरतिसंपन्न हो, चाहे उससे रहित अव्रती हो उसके अल्पादिरूप परिग्रह की सत्ता में भी ' ममेदं '—भावसे अवश्य परिग्रहपना है । यह परिग्रहवत्ता ही उनके लिये नरकनिगोदादिक के भयंकर फलरूप महाभय का कारण होने से महाभयस्वरूप होता है ।

अथवा—परिग्रहयुक्त प्राणियों के " एतदेव " यह शरीर और आहारादिक महाभयस्वरूप हैं, जैसे-जो पाणिपुट (करपात्र) में भोजन करनेवाले हैं, जिनके पास पात्र और वस्त्रादिक कुछ भी नहीं हैं; परन्तु वे गृहस्थों के यहां आधाकर्मादिक दोषों से दूषित आहारादिक के लेने से महान् कर्मों का बंध करनेवाले होते हैं, इससे उनका शरीरादिक उन्हें महाभय का हेतु होने से महाभयस्वरूप हैं । तथा-उनका शरीर, वस्त्र से रहित होने से गुह्यस्थान निरावरण रहताहै,

શંકાનું સમાધાન કરવા માટે સૂત્રકાર "एतदेव एकेषां महाभयं भवति" આ સૂત્રનું કથન કરે છે. તે કહે છે કે-ભલે વિરતિસંપન્ન હોય ચાહે એનાથી રહિત અવ્રતી હોય છતાં અલ્પાદિરૂપ પરિગ્રહની સત્તામાં પણ મમેદંભાવથી અવશ્ય પરિગ્રહપણું છે. આ પરિગ્રહવત્તા જ એને માટે નરકનિગોદાદિકના ભયંકર ફળરૂપ મહાભયનું કારણ હોવાથી મહાભયસ્વરૂપ બને છે. અથવા-પરિગ્રહયુક્ત પ્રાણીઓને "एतदेव" શરીર તેમજ આહારાદિક મહાભય સ્વરૂપ છે. જેમકે-જે પાણિ-પુટ (કરપાત્ર)થી જ ભોજન કરવાવાળા છે, જેની પાસે પાત્ર તેમજ વસ્ત્રાદિક કાંઇ પણ નથી પરંતુ જે ગૃહસ્થોને ત્યાં આધાકર્માદિક દોષોથી દૂષિત આહારાદિક લેવાથી મહાન કર્મોના બંધ કરવાવાળા હોય છે. આથી તેના શરીરાદિક તેને મહાભયનો હેતુ હોવાથી મહાભયસ્વરૂપ છે. તથા તેનું શરીર વસ્ત્રથી રહિત હોવાથી ગુપ્ત અંગ ખુલ્લું રહે છે, આ કારણે એવી

लज्जाया असत्त्वाल्लोकनिन्द्यत्वेन जिनशासनलाघवोत्पादनाच्च स्वपरयोर्महाभयकारि भवति । भगवताऽपि संयमे लज्जायाः प्राथम्यमभिहितं, तथाहि-"लज्जा-दया-संजम-बंभचेरं" इत्यादि । यस्मात्परिग्रहोऽनर्थाय भवतीत्यत उपदिशति-'लोकवित्त'-मित्यादि । विरतो मुनिः लोकवित्तं लोकस्य=असंयतलोकस्य वित्तं=धनम् अल्पादिरूपम् , यद्वा-' लोकवृत्त 'मितिच्छाया, तेन-लोकस्य वृत्तमाचरणम्=आहार-भय-मैथुन-परिग्रहसंज्ञारूपं महते भयाय भवतीति, च=पुनः, खलु=वाक्यालङ्कारे उत्प्रेक्ष्य=ज्ञात्वा ज्ञपरिज्ञया, प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरेत् । तादृशस्य यत्स्यात्तदाह-' एतान् ' इत्यादि । एतान्-पूर्वोक्तान् संगान्=द्रव्यपरिग्रहसम्बन्धान् अविजानतः =अविदधतः-परिग्रहसम्बन्धरहितस्य मुनेः परिग्रहोत्पन्नं महाभयं न भवति॥सू०४॥

इसलिये ऐसी हालत में उनका शरीर लज्जारहित होने से लोकनिंदा का पात्र होता है, इससे जिनशासनकी अवलेहना होती है; इसलिये उनका वह शरीर स्व-पर के लिये महाभयकारी होता है। संयममें भगवान्ने "लज्जा-दया-संजम-बंभचेरं" इत्यादिवाक्यानुसार लज्जाके लिये प्रथम स्थान दिया है । जिस कारण से परिग्रह अनर्थकारी बतलाया गया है इसी लिये सूत्रकार कहते हैं-'लोकवित्त'-मित्यादि। असंयतलोकका धन, अथवा-असंयत लोककी आहार, भय, मैथुन और परिग्रह-संज्ञारूप लोकवृत्त (' लोकवित्तं ' की ' लोकवित्तं ' या ' लोकवृत्तं ' संस्कृतच्छाया होती है) उन्हें बडे भारी भय के लिये होता है। सूत्र में "खलु" शब्द वाक्यालंकार में प्रयुक्त हुआ है । इसलिये मोक्षार्थी जन लोकवित्त अथवा लोकवृत्त को महाभयकारी ज्ञपरिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यानपरिज्ञा से उसका परित्याग करे । परिग्रह के परिवर्जन से त्यागी के जो लाभ होता है उसे सूत्रकार " एतान् संगान् अविजानतः " इस सूत्रांश से कहते हैं ।

હાલતમાં તેનું શરીર લજ્જારહિત હોવાથી લોકનિંદાને પાત્ર બને છે. તેનાથી જીનશાશનની અવહેલના થાય છે, માટે તેનું તે શરીર સ્વ અને પરને માટે મહાભયકારી બને છે. સંયમમાં ભગવાને " लज्जा-दया-संजम-बंभचेरं " ઈત્યાદિ વાકય અનુસાર લજ્જાને માટે પ્રથમ સ્થાન આપેલ છે. જે કારણથી પરિગ્રહ અનર્થકારી બતાવેલ છે તેને માટે સૂત્રકાર કહે છે-'लोकवित्त'-ઇત્યાદિ. અસંયત લોકનું ધન અથવા અસંયત લોકના આહાર,ભય,મૈથુન અને પરિગ્રહ સંજ્ઞારૂપ લોકવૃત્ત તેના માટે ભારે ભયજનક હોય છે. આ માટે મોક્ષાર્થી જન લોકવિત્ત અથવા લોકવૃત્તને મહાભયકારી જ્ઞ-પરિજ્ઞાથી જાણીને પ્રત્યાખ્યાન-પરિજ્ઞાથી તેનો ત્યાગ કરે. પરિગ્રહના પરિવર્જનથી ત્યાગીને જે લાભ થાય છે તેને સૂત્રકાર " एतान् संगान् अविजानतः " આ સૂત્રથી કહે છે કે આ દ્રવ્ય-પરિગ્રહની સાથે પોતાનો સંબંધ

अपि चान्यदप्याह—' से सुपडिबुद्धं ' इत्यादि ।

मूलम्—से सुपडिबुद्धं सूवणीयंति नच्चा पुरिसा ! परम-चक्खू विपरक्कमा । एएसु चेव बंभचेरं तिबेमि । से सुयं च मे, अज्झत्थयं च मे, बंधपमुक्खो अज्झत्थेव। एत्थ विरए अणगारे दीहरायं तितिक्खए। पमत्ते बाहिया पास, अप्पमत्तो परिव्वए। एणं मोणं सम्मं अणुवासिज्जासि—त्तिबेमि ॥ सू० ५ ॥

छाया—तस्य सुप्रतिबुद्धं सूपनीतमिति ज्ञात्वा पुरुष ! परमचक्षुर्विपराक्रमस्व । एतेषु चैव ब्रह्मचर्यमिति ब्रवीमि । तच्छ्रुतं च मयाऽध्यात्मकं च मे बन्धप्रमोक्षोऽध्यात्मे एव । अत्र विरतोऽनगारो दीर्घरात्रं तितिक्षेत । प्रमत्तान् बहिः पश्य, अप्रमत्तः परिव्रजेत् । एतन्मौनं सम्यक् अनुवासयेः, इति ब्रवीमि ॥ सू० ५ ॥

टीका—' तस्ये–' त्यादि, तस्य=परिग्रहरहितस्य, सुप्रतिबुद्धं–सु=शोभनं प्रतिबुद्धं=जागरितं, सूपनीतं=शोभनं दर्शितं ज्ञानादित्रिकं सुदृष्टिकैः प्रत्यक्षज्ञानिभिः

इस द्रव्य परिग्रह के साथ अपना संबंध नहीं रखनेवाले अर्थात् परिग्रह के संबंध से रहित मुनिको परिग्रहजन्य महाभय नहीं होता है ॥ सू० ४ ॥

और भी बात सूत्रकार प्रकट करते हैं–' से सुपडिबुद्धं ' इत्यादि ।

जो मनुष्य परिग्रह से रहित हैं उनका ही अपने मार्ग में सच्चा जागरण है और उनके ही ज्ञानादिकत्रिक निर्दोष हैं, अथवा—उनका अपने कर्तव्यपथ में जो जागरण है वह सूपनीत है–तीर्थङ्करादिक प्रत्यक्ष-ज्ञानियों ने अच्छी तरह से प्रकट किया है, और इसी मार्ग की उन्हों ने अपने शिष्यों को ज्ञानादिकत्रय की प्राप्तिके निमित्त युक्ति और दृष्टान्त

નહિ રાખવાવાળા અર્થાત્ પરિગ્રહના સંબંધથી રહિત મુનિને પરિગ્રહજન્ય મહાભય હોતો નથી. ॥ સૂ૦ ૪ ॥

ફરી એક બીજી પણ વાત સૂત્રકાર પ્રગટ કરે છે—"से सुपडिबुद्धं" ઇત્યાદિ.

જે મનુષ્ય પરિગ્રહથી રહિત છે તેનું જ પોતાના માર્ગમાં સાચું જાગરણ છે, અને તેના જ્ઞાન આદિ નિર્દોષ છે, અથવા તેનું પોતાના કર્તવ્યપથમાં જે જાગરણ છે તે સૂપનીત છે—તીર્થંકરાદિક પ્રત્યક્ષ જ્ઞાનીઓએ સારી રીતે પ્રગટ કરેલ છે, અને તે માર્ગ તેમણે પોતાના શિષ્યોને જ્ઞાનાદિકત્રયની પ્રાપ્તિ

हेतुदृष्टान्तैः शिष्याणां प्रापितमित्यर्थः । इति=एवं ज्ञात्वा=विचार्य हे पुरुष !=हे भव्य ! परमचक्षुः=परमं-ज्ञानं तपः संयमो वा चक्षुः=नेत्रं यस्य स परमचक्षुः=

से पुष्टि की है । यद्वा-इसी मार्गद्वारा उन्होंने अपने शिष्यों को ज्ञानादिकों की प्राप्ति कराई है ।

भावार्थ—यह राजमार्ग है कि परिग्रह के त्याग किये विना साधु को अपने कर्तव्य पथ में सच्ची आराधकता की जागृति नहीं हो सकती है। कारण कि इसके सद्भाव में सदा आत्मा में आकुलता रहती है। आकुलता में स्वधर्माराधन हो नहीं सकता। परिग्रह के सद्भावमें ही सावद्यप्रवृत्ति एवं अनेक अनर्थों की परंपरा बढती है। परिग्रह के त्याग से आत्मा में अपूर्व शांति और स्वरमणता आती है। अतः यही मार्ग सर्वोत्तम है। इस मार्ग का जो पथिक है वही सच्चे रूपमें अपने कर्तव्य पथ का निभानेवाला और सम्यग्दर्शनादिकरूप मोक्षमार्गका अनुयायी है। इसी मार्गद्वारा तीर्थङ्करादिक प्रत्यक्षज्ञानियों ने अपने ध्येय की प्राप्ति की है और अपने शिष्यों को भी इसी मार्गके अनुसरण करने का उपदेश दिया है। हेतु और दृष्टान्तों से इसी मार्ग की उन्होंने पुष्टि की है।

" इति ज्ञात्वा " इसलिये हे भव्य पुरुष! ऐसा समझ कर इसी मार्ग पर चल कर तुम ज्ञान अथवा संयम या तपरूपी चक्षुओं की प्राप्ति

નિમિત્તે યુક્તિ અને દૃષ્ટાંતથી સમજાવેલ છે, તેમજ આ માર્ગદ્વારા તેઓએ પોતાના શિષ્યોને જ્ઞાનાદિકની પ્રાપ્તિ કરાવી છે.

ભાવાર્થ:—આ રાજમાર્ગ છે કે પરિગ્રહનો ત્યાગ કર્યા વગર સાધુને પોતાના કર્તવ્ય પંથમાં સાચી આરાધકતાની જાગૃતી મળી શકતી નથી, કારણ કે પરિગ્રહના સદ્ભાવમાં આત્માની સદા આકુલતા રહે છે. આકુલતામાં ધર્મનું આરાધન નથી થઈ શકતું. પરિગ્રહના સદ્ભાવમાં જ સાવદ્ય પ્રવૃત્તિ તેમજ અનેક અનર્થોની પરંપરા વધે છે. પરિગ્રહના ત્યાગથી આત્મામાં અપૂર્વ શાંતિ તેમજ સ્વરમણતા આવે છે. આ માર્ગજ સર્વોત્તમ છે. આ માર્ગનો જે પથિક છે તે જ સાચા રૂપમાં પોતાના કર્તવ્યપથને નિભાવનાર તેમજ સમ્યગ્દર્શનાદિકરૂપ મોક્ષમાર્ગનો અનુયાયી છે. આ જ માર્ગ દ્વારા તીર્થંકરાદિક પ્રત્યક્ષજ્ઞાનિઓએ પોતાના ધ્યેયની પ્રાપ્તિ કરી છે, અને પોતાના શિષ્યોને પણ આ જ માર્ગનું અનુસરણ કરવાનો ઉપદેશ આપેલ છે, હેતુ અને દૃષ્ટાન્તોથી આ માર્ગનો તેમણે સ્વીકાર કર્યો છે.

" इति ज्ञात्वा " એટલા માટે હે ભવ્ય પુરૂષ ! આ સમજીને આ જ માર્ગ ઉપર ચાલી તમો જ્ઞાન અથવા સંયમ અથવા તપરૂપી ચક્ષુઓની પ્રાપ્તિ કરી શકશો–

मोक्षैकदर्शनः सन् विपराक्रमस्व=संयमे ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मक्षपणनिरवद्यानुष्ठानस्य तपसश्चाचरणेन वि=विशेषेण पराक्रमस्व=पराक्रमं कुरुष्व, तपोवीरो धर्मवीरश्च भवेत्यर्थः, किमर्थं संयमे पराक्रमोपदेशः? इत्यत आह—' एतेषु ' इत्यादि, एतेषु चैव=परिग्रहाग्रहपराङ्मुखेष्वेव वस्तुतो ब्रह्मचर्य्यं मैथुननिवृत्त्यादिनवविधरूपं विद्यते नेतरेषु सपरिग्रहेषु, तेषु नवविधब्रह्मचर्यगुप्त्यसम्भवात्। यद्वा—एतेषु=षड्जीवनिकायेषु तदुपमर्दनविरतिरूपसंयमाचरणमेव ब्रह्मचर्य्यं,नान्यत्।

कर सकते हो—मुक्ति मार्ग के दर्शक बन सकते हो। जब अपरिग्रहता तुम्हें प्राप्त हो जायगी, तब ही तुम ज्ञानावरणीयादिक अष्ट प्रकार के कर्मों को समुन्मूलन करनेवाले निरवद्य अनुष्ठानरूप तप की आराधनामें विशेष पराक्रम करोगे और इस तरह से तुम तपवीर और धर्मवीर बन सकोगे। संयम अथवा तप में पराक्रमशाली होने का उपदेश इसीलिये दिया जाता है कि जो परिग्रह के ग्रहणमें पराङ्मुख हैं उन में ही वस्तुतः नौ प्रकार के मैथुन की निवृत्तिरूप ब्रह्मचर्यव्रतकी सम्यक् रीतिसे रक्षकता आती है, अन्यों में नहीं; कारण कि वे परिग्रहके ग्रहण करने में आसक्त होनेसे नौ प्रकार से उस ब्रह्मचर्यकी रक्षा नहीं कर सकते हैं। अथवा—" एतेषु चैव ब्रह्मचर्यम् "—इस वाक्य का यह भी अर्थ होता है, कि इन षड्जीवनिकायों के घात करनेकी विरतिरूप जो संयम है इसका आचरण करना ही ब्रह्मचर्य है, अन्य ब्रह्मचर्य नहीं है।

મુક્તિ માર્ગના દર્શક બની શકશો. જ્યારે આ અપરિગ્રહતા તમો પ્રાપ્ત કરી શકશો ત્યારે જ તમે જ્ઞાનાવરણીયાદિક આઠ પ્રકારના કર્મોના નાશ કરવાવાળા નિરવદ્ય અનુષ્ઠાનરૂપ તપની આરાધનામાં વિશેષ પરાક્રમ કરશો, અને આવી રીતે તમે તપવીર અને ધર્મવીર બની શકશો. સંયમ અને તપમાં પરાક્રમશાળી હોવાનો ઉપદેશ એ માટે આપવામાં આવેલ છે કે જે પરિગ્રહના ગ્રહણમાં પરાઙ્મુખ છે તેમનામાં ખરી રીતે નવ પ્રકારના મૈથુનની નિવૃત્તિરૂપ બ્રહ્મચર્ય વ્રતની સમ્યક્ રીતિથી રક્ષકતા આવે છે, બીજામાં નહીં. કારણ કે તેઓ પરિગ્રહના ગ્રહણ કરવામાં આસક્ત હોવાથી નવ પ્રકારના તેવા બ્રહ્મચર્યની રક્ષા કરી શકતા નથી, અને " एतेषु चैव ब्रह्मचर्यम् " આ વાકયનો એ પણ અર્થ થાય છે કે ષડ્જીવનિકાયોની ઘાત કરવાની વિરતિરૂપ જે સંયમ છે તેનું આચરણ કરવું એ જ બ્રહ્મચર્ય છે, બીજું બ્રહ્મચર્ય નથી.

इति=अधिकारसमाप्तौ; ब्रवीमि=कथितं वक्ष्यमाणं वा अभिदधामि । एतत् सर्वं भगवदुपदेशादेव मया ज्ञातमित्येवाह–'तदित्यादि'। यन्मया प्रोक्तं वक्ष्यमाणं वा तत् सर्वं मया श्रुतं तीर्थङ्करसकाशात्, तथा तत्सर्वमध्यात्मकम्–आत्मनि इत्यध्यात्मं तदेवाध्यात्मकं मे=ममान्तःकरणस्थितं, किं तत्सर्वमिति जिज्ञासायामाह–'बन्धे'त्यादि, अध्यात्मे एव=ब्रह्मचर्ये एव व्यवस्थितस्य बन्धप्रमोक्षः=बन्धात्=कर्मबन्धात् प्रमोक्षो भवति ।

यद्वा—'बन्धप्रमोक्षौ' इतिच्छाया, ततो बन्धः=ज्ञानावरणीयाद्यष्टविध-कर्मसम्बन्धः, प्रमोक्षः तस्मात्पृथग्भवनं च बन्धप्रमोक्षौ, उभावपि अध्यात्मे एव=

"इति ब्रवीमि"–इति पद अधिकार की समाप्तिका सूचक है, अर्थात् इस उद्देशमें यहां तक अथवा इस सूत्रमें जो कहा है और आगे भी जो कुछ कहता हूं वह मैंने भगवान् के उपदेश से ही जाना है। इसी लिये सूत्रकार ने "तच्च श्रुतं मया" यह कहा है। यह कथित अथवा आगे प्रतिपाद्य समस्त विषय जिसे मैंने तीर्थङ्कर प्रभु से सुना है वह मेरी आत्मा में–अन्तःकरणमें स्थित है। उन्होंने यह कहा है कि–"अध्यात्मे एव" ब्रह्मचर्य में व्यवस्थित साधु की ही बन्धसे मुक्ति होती है–अर्थात् वह जीव प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेश-बन्ध–इन चार प्रकार के कर्मबन्ध से रहित होता है। सो यही बात मैंने भी यहां पर कही है।

अथवा—"बंधपमुक्खो"की "बंधप्रमोक्षौ" यह भी संस्कृत छाया होती है। ज्ञानावरणीयादिक आठ प्रकारके कर्मोंका सम्बन्ध तो बंध है और उससे आत्मा का पृथक् होना प्रमोक्ष है। ये दोनों

"इति ब्रवीमि" ઇતિ પદ અધિકારની સમાપ્તિનું સૂચક છે, અર્થાત્ આ ઉદ્દેશમાં અહીં સુધી અથવા આ સૂત્રમાં જે કહ્યું છે અને આગળ પણ જે કાંઇ કહું છું તે બધા મેં ભગવાનના ઉપદેશથી જ જાણેલ છે. માટે સૂત્રકારે "तत् श्रुतं च मया" આ કહેલ છે. આ કહેલ અથવા આગળ જે કહેવામાં આવશે તે સમસ્ત વિષય, જેને મેં તીર્થંકર પ્રભુથી સાંભળ્યું છે તે મારા આત્મામાં–અંતઃકરણમાં સ્થિત છે. તેમણે એ કહ્યું છે કે "अध्यात्मे एव" બ્રહ્મચર્યમાં વ્યવસ્થિત સાધુની જ બંધથી મુક્તિ થાય છે, અર્થાત્ એ જીવ પ્રકૃતિબંધ, સ્થિતિબંધ, અનુભાગબંધ, અને પ્રદેશબંધ, આવા ચાર પ્રકારના કર્મબંધથી રહિત બને છે. તે જ વાત મેં પણ અહિં કહી છે.

અથવા "बंधपमुक्खो"ની "बन्धप्रमोक्षौ" આ પણ સંસ્કૃત છાયા બને છે. તથા જ્ઞાનાવરણીયાદિક આઠ પ્રકારના કર્મોનો સંબંધ બંધ છે તેનાથી આત્માનું

आत्मन्येव स्तः, रागद्वेषयोरात्मन्येव सद्भावात् । अपि च-अत्र=आरम्भपरिग्रहे अप्रशस्ताध्यात्मे वा विरतः=उपरतः, अनगारः=मुनिः दीर्घरात्रं=यावज्जीवं परिग्रहासत्त्वाद् यत् क्षुत्पिपासादिकम् आतङ्कादिकं वा समापतेत् तत्सर्वं तितिक्षेत=सहेत। अन्यमप्युपदेशमाह-'प्रमत्तान्'-इत्यादि, प्रमत्तान्=असंयतान् आरम्भपरिगृहीतान् कुलिङ्गिनः परतीर्थिकान् बहिः=भगवदाज्ञारूपाद् धर्माद्बहिर्भूतान् पश्य। अतो भगवदाज्ञावर्ती मुनिः अप्रमत्तः=संयमानुपालनार्थं प्रयत्नवान्, यद्वा-अप्रमत्तः= पञ्चविधप्रमादरहितः सन् परिव्रजेत्=प्रव्रज्यां परिपालयेत्-विहरेदित्यर्थः । किंच-

---

बंध और प्रमोक्ष "अध्यात्मे एव" आत्मा में ही हैं। क्यों कि राग और द्वेष आत्मा में ही होते हैं। जहां बंध है वहीं मुक्ति है। तथा-आरंभ और परिग्रह में अथवा अप्रशस्त अध्यात्म-रागद्वेष विशिष्ट आत्मामें जो लीन नहीं है-उनसे विरक्त है, उस मुनिको दीर्घरात्र= जीवनपर्यन्त परिग्रह के असत्त्व से जो क्षुधा तृषा आदि परीषह अथवा किसी भी प्रकार का रोग उपद्रव आवे तो उन सब का उसे सहन करना चाहिये। तथा जो असंयत हैं, आरंभ-परिग्रहमें आसक्त हैं, द्रव्यलिङ्गी हैं ऐसे पासत्थादिकों और परतीर्थिकों को वीतराग प्रभुकी आज्ञारूप धर्ममार्ग से बाहर समझना चाहिये। जो वीतरागप्रभुकी आज्ञानुसार प्रवृत्ति करनेवाले हैं और संयममार्गकी परिपालना करनेमें प्रयत्नशील हैं वे अनगार मुनि हैं। इसलिये भगवान्की आज्ञावर्ती मुनि अप्रमत्त होकर अपने संयम के पालन करनेके लिये प्रयत्नशील बन "परिव्रजेत्" प्रव्रज्या-भागवती दीक्षा का भले प्रकार पालन करे।

પૃથક્ થવું તેનું નામ પ્રમોક્ષ છે. આ બન્ને બંધ અને પ્રમોક્ષ "अध्यात्मे एव" આત્મામાં જ છે, કારણ કે રાગ અને દ્વેષ આત્મામાં જ હોય છે, જ્યાં બંધ છે ત્યાં મોક્ષ છે. તથા આરંભ અને પરિગ્રહમાં અથવા અપ્રશસ્ત અધ્યાત્મ-રાગ-દ્વેષવિશિષ્ટ આત્મા-માં જે લીન નથી એટલે તેનાથી વિરક્ત છે તે મુનિને દીર્ઘરાત્ર-જીવનપર્યન્ત પરિગ્રહના અસત્ત્વથી જે ક્ષુધા તૃષા આદિ પરિષહ અથવા કોઈ પણ પ્રકારના રોગનો ઉપદ્રવ આવે તો એ બધાને સહન કરવું જોઈએ. તથા જે અસંયત છે, આરંભ પરિગ્રહમાં આસક્ત છે, દ્રવ્યલિંગી છે, એવા પાસત્થાદિક અને પરતીર્થિકોને વીતરાગ પ્રભુની આજ્ઞારૂપ ધર્મમાર્ગથી બહાર સમજવા જોઈએ. જે વીતરાગ પ્રભુની આજ્ઞા-અનુસાર પ્રવૃત્તિ કરવાવાળા છે, અપ્રમત્ત છે, અને સંયમ માર્ગની પરિપાલના કરવામાં પ્રયત્નશીલ છે તે અનગાર-મુનિ છે. આ કારણે ભગવાનના આજ્ઞાવર્તી મુનિ અપ્રમત્ત બનીને પોતાના સંયમનું પાલન કરવા માટે

एतत् मौनं–भगवदावेदितं चारित्रं हे शिष्य! त्वं समनुवासयेः–सम्=सम्यक्=पूर्वोक्त-यथार्थरूपेण अनुवासयेः=परिपालय। इति ब्रवीमीत्यस्यार्थस्तूक्त एव ॥ सू० ५ ॥

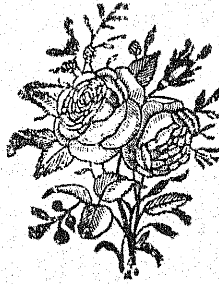
॥ इति पञ्चमाध्ययनस्य द्वितीय उद्देशः समाप्तः ॥५–२॥

यह मुनिसंबंधी कर्तव्य–चारित्र भगवान्ने कहा है, सो हे शिष्य! पूर्व में प्रतिपादित यथार्थरूप से तुम इसका पालन करो! "इति ब्रवीमि" इस प्रकार श्री सुधर्मास्वामी ने श्री जम्बूस्वामी से कहा॥

॥ पंचम अध्ययन का द्वितीय उद्देश समाप्त ५–२॥

પ્રયત્નશીલ બની "परिव्रजेत्" પ્રવ્રજ્યા–ભાગવતી દીક્ષાને ભલી પ્રકારે પાલન કરે. આ મુનિસંબંધી કર્તવ્ય એટલે ચારિત્ર ભગવાને કહેલ છે; માટે હે શિષ્ય! પહેલાં કહેવામાં આવેલ યથાર્થ રૂપથી તમે તેનું પાલન કરો. "इति ब्रवीमि" આ પ્રકારે શ્રી સુધર્મા સ્વામીએ શ્રી જમ્બૂસ્વામીને કહ્યો.

પાંચમા અધ્યયનનો બીજો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૫–૨ ॥



अथ पञ्चमाध्ययनस्य तृतीय उद्देशः ।

उक्तो द्वितीयोद्देशोऽधुना तृतीयः समारभ्यते । एष चानन्तरोद्देशेन सम्बन्धः, पूर्वत्र चाविरतिमान् अल्पादिद्रव्यैः परिग्रहवान् भवतीत्युपदर्शितम् । अत्र च मुनेः परिग्रहप्रतिपक्षभूतोऽपरिग्रहो व्याख्यातव्यो येन मुनित्वं न व्याहन्येतेति ।

मुनेः परिग्रहप्रतिषेधं प्रदर्शयति-' आवंती ' इत्यादि ।

मूलम्—आवंती केयावंती लोयंसि अपरिग्गहावंती एएसु चेव अपरिग्गहावंती, सोच्चा वई मेहावी पंडियाण निसामिया समियाए धम्मे आरिएहिं पवेइए जहित्थ मए संधी झोसिए एवमन्नत्थ संधी दुज्झोसए भवइ, तम्हा बेमि नो निहणिज्ज वीरियं ॥ सू० १ ॥

छाया——यावन्तः कियन्तो लोकेऽपरिग्रहवन्त एतेषु चैवापरिग्रहवन्तः, श्रुत्वा वाचं मेधावी पण्डितानां निशम्य समतया धर्म आर्यैः प्रवेदितो यथाऽत्र मया सन्धिर्झोषित एवमन्यत्र सन्धिर्दुर्झोषितो भवति, तस्माद्ब्रवीमि नो निहन्याद्वीर्यम् ॥१॥

पांचवे अध्ययनका तीसरा उद्देश ।

द्वितीय उद्देशका कथन हो चुका। अब तृतीय उद्देशका प्रारम्भ होता है । इसका संबंध अनंतर उद्देश के साथ इस प्रकारसे है–द्वितीय उद्देश में यह प्रकट किया है कि अविरतिसम्पन्न प्राणी अल्प आदि वस्तुओं से सम्बन्धित होने पर परिग्रही होता है । इस उद्देश में उसके प्रतिपक्ष-भूत अपरिग्रहवादका सिद्धान्त प्रतिपादित करना है, क्यों कि निष्परि-ग्रहता से ही मुनिमें मुनिता आती है, अन्यथा नहीं ! इसलिये सर्वप्रथम मुनिके परिग्रह का प्रतिषेध करने के लिये कहते हैं "आवंती" इत्यादि ।

પાંચમા અધ્યયનનો ત્રીજો ઉદ્દેશ.

બીજા ઉદ્દેશનું વક્તવ્ય પૂરૂં થયું, હવે ત્રીજો ઉદ્દેશ શરૂ થાય છે. જેનો સંબંધ અનંતર ઉદ્દેશની સાથે આ પ્રકારે છે–બીજા ઉદ્દેશમાં એમ કહેવામાં આવેલ છે કે અવિરતિસંપન્ન પ્રાણી અલ્પ આદિ વસ્તુઓથી સંબંધિત હોવાથી પરિગ્રહી બને છે. આ ઉદ્દેશમાં તેના પ્રતિપક્ષભૂત અપરિગ્રહવાદનો સિદ્ધાંત સમજાવે છે, કારણ કે નિષ્પરિગ્રહતાથી જ મુનિમાં મુનિતા આવે છે, બીજાથી નહિ. એટલા માટે સર્વ પ્રથમ મુનિને પરિગ્રહનો પ્રતિષેધ કરવાને કહે છે–"આવંતી" ઈત્યાદિ.

टीका—'यावन्तः' इत्यादि, लोके=मनुष्यलोके यावन्तः कियन्तः=यावत्प्रमाणाः केचन अपरिग्रहवन्तः=अल्पस्थूलादिद्रव्यपरिग्रहरहिताः मुनयो भवन्ति, ते सर्वे संयमिनो हि एतेषु चैव=अल्पस्थूलादिष्वेव वस्तुषु ममत्वाभावाद् अपरिग्रहवन्तः=निष्परिग्रहाः अनगारा उच्यन्ते।

इस मनुष्यलोक में कितनेक अल्प और स्थूल द्रव्य परिग्रहसे रहित मुनि होते हैं। वे समस्त संयमी इन अल्प स्थूलादि द्रव्यों में ममत्वरहित होने से अपरिग्रही कहे जाते हैं।

भावार्थ—"अल्पस्थूलादिक द्रव्यों के परिग्रहसे रहित कितनेक मुनि हैं" इस कथनसे कोई यह न समझ लेवे कि और भी कोई मुनि अल्पस्थूलादि द्रव्यवाले भी होते होंगे। सूत्रकार का अभिप्राय यह है कि संसार में जितने भी प्राणी हैं वे सब प्रायः परिग्रहाधीन हैं। इस परिग्रहका विवेचन अल्पस्थूलादिक के भेदसे द्वितीय उद्देश के चौथे सूत्र में किया जा चुका है। समस्त प्राणियों में विरले ही मुनि होते हैं और वे परिग्रह के त्यागी ही होते हैं। अथवा-सूत्रकार को यहां पर मुनिधर्म का प्रतिपादन करना अभीष्ट है। द्रव्यलिङ्गी पासत्थादिक भी नाम से मुनिसंज्ञावाले हैं। दण्डिशाक्यादिक भी लोकमें त्यागी मुनि कहलाते हैं, परन्तु इनमें वास्तविक मुनिपना नहीं है। क्यों कि जो परिग्रह से रिक्त होते हैं वे ही वास्तविक मुनि माने गये हैं। यद्यपि इन पासत्था-

આ મનુષ્ય લોકમાં કેટલાક અલ્પ અને સ્થૂલ દ્રવ્યપરિગ્રહથી રહિત મુનિઓ હોય છે તે સર્વવિરત સંયમી આવા અલ્પ સ્થૂલાદિ દ્રવ્યોમાં મમત્વરહિત હોવાથી અપરિગ્રહી કહેવાય છે.

ભાવાર્થ:—"અલ્પ સ્થૂલાદિ દ્રવ્યોના પરિગ્રહથી રહિત કેટલાક મુનિ હોય છે" આ કથનથી કોઈ એમ ન સમજી લે કે બીજા કોઇ મુનિ અલ્પ સ્થૂલાદિ દ્રવ્યવાળા હશે. સૂત્રકારનો અભિપ્રાય એ છે કે-સંસારમાં જેટલા પ્રાણી છે તે સઘળા ઘણું કરી પરિગ્રહને આધીન છે. આ પરિગ્રહનું વિવેચન અલ્પ સ્થૂલાદિકના ભેદથી બીજા ઉદ્દેશના ચોથા સૂત્રમાં કહેવામાં આવેલ છે. સમસ્ત પ્રાણીઓમાં વિરલા જ મુનિ બને છે અને તે પરિગ્રહના ત્યાગી જ હોય છે. અથવા સૂત્રકારે આ સ્થળે મુનિધર્મનું પ્રતિપાદન કરવું ઉચિત સમજે છે. દ્રવ્યલિંગી પાસત્થાદિક પણ નામથી મુનિસંજ્ઞાવાળા છે. દંડી શાક્યાદિક પણ લોકમાં ત્યાગી-મુનિ કહેવાય છે, પરંતુ તેઓમાં વાસ્તવિક મુનિપણું નથી, કારણ કે જે પરિગ્રહથી દૂર રહે છે તે જ વાસ્તવિકપણે મુનિ માની શકાય. જો કે આવા પાસત્થાદિકમાં પણ બાહ્ય

परिग्रहः परिवर्जनीय इति कथं जानातीत्याह—श्रुत्वेत्यादि, मेधावी=साधुमर्यादाज्ञानकुशलः पण्डितानां=तीर्थङ्करगणधरादीनां "वई" वाचं=परिग्रहजनितनरकनिगोदादिपरिभ्रमणककटुकफलस्वरूपां वाणीं श्रुत्वा=समाकर्ण्य, अत्र 'वई' इति मूले द्वितीयार्थे प्रथमाऽऽर्षत्वात्; एवं निशम्य भगवद्वचनमेव धर्म इत्यवधार्य सचित्ताचित्तमिश्रपरिग्रहपरित्यागान्निष्परिग्रहो भवतीति सम्बन्धः। स च धर्मः कीदृशो भवतीत्याह—'समतये'-त्यादि, धर्मः=तीर्थङ्कराद्युपदिष्टः 'समतया' समस्य भावः समता तया—शत्रुमित्रेषु तुल्यस्वभावेन वर्तनरूपो धर्म आर्यैः=तीर्थकृद्भिः प्रवे-

दिकों में भी बाह्यरूप से मुनि की आकृति वगैरह होती है; परन्तु इस आकृतिमात्र से मुनिता उनमें नहीं मानी गई है, ममेदं (ममत्व) भाव का अल्पस्थूलादिक द्रव्यों में परित्याग ही वास्तविक मुनिपने का द्योतक माना गया है। इसलिये मुनि होकर भी सब मुनि नहीं हैं। किन्तु परिग्रह के परित्यागी ही मुनि हैं।

"परिग्रह छोड़ने योग्य है" यह मुनिजन कैसे जानते हैं? इसके प्रत्युत्तर में सूत्रकार कहते हैं कि—"जो परिग्रही होता है वह नरकनिगोदादिगतियों में परिभ्रमणरूप कटुक फलको प्राप्त करता है" इस प्रकार तीर्थङ्कर गणधर आदि विशिष्ट ज्ञानियों की बात सुन कर साधु की मर्यादा के ज्ञानमें कुशल अर्थात्-मेधावी साधु यह जान लेते हैं कि परिग्रह छोड़ने योग्य है। तब वे मुनिजन सचित्त अचित्त और मिश्र परिग्रहके त्यागसे निष्पग्रही होते हैं। तीर्थङ्करादिद्वारा प्रतिपादित धर्म कैसा होता है? ऐसी शिष्यकी जिज्ञासा के समाधानार्थ सूत्रकार कहते हैं—

રૂપથી મુનિની આકૃતિ વગેરે હોય છે પરંતુ એ આકૃતિ પરથી મુનિપણું તેમનામાં માનવામાં આવતું નથી. મમત્વભાવનો અલ્પસ્થૂલાદિક દ્રવ્યોમાં પરિત્યાગ જ વાસ્તવિક મુનિપણાનો દ્યોતક માનવામાં આવેલ છે. માટે મુનિ બનીને પણ બધા મુનિ નથી, પરંતુ પરિગ્રહના પરિત્યાગી જ મુનિ છે.

'પરિગ્રહ છોડવા યોગ્ય છે'-તે મુનિજન કેવી રીતે જાણે છે? તેના પ્રત્યુત્તરમાં સૂત્રકાર કહે છે કે જે પરિગ્રહી છે, તે નરક-નિગોદાદિ ગતિઓમાં પરિભ્રમણરૂપ કડવા ફળને પ્રાપ્ત કરે છે, આવા પ્રકારની તીર્થંકર ગણધર આદિ વિશિષ્ટ જ્ઞાનીઓની વાણી સાંભળીને સાધુની મર્યાદાના જ્ઞાનમાં કુશલ મેધાવી મુનિ જાણી લે છે કે પરિગ્રહ છોડવા યોગ્ય છે, ત્યારે તે મુનિજન સચિત્ત અચિત્ત અને મિશ્ર પરિગ્રહના ત્યાગથી નિષ્પરિગ્રહી થાય છે. તીર્થંકરાદિદ્વારા સમજાવેલ ધર્મ કેવો હોય છે? એવી શિષ્યની જીજ્ઞાસાનું સમાધાન કરવા માટે સૂત્રકાર કહે છે-તીર્થંકરાદિએ જે ધર્મનો ઉપદેશ આપ્યો છે, તે ધર્મ એ છે કે શત્રુ અને

दितः=कथितः, स्तुतिनिन्दादिषु सर्वत्र समभाववर्ती निष्परिग्रहो मुनिर्भवति, उक्तञ्च-

" जे चंदणेण बाहुं आलिंपइ, वासिणा वा तच्छेति ।
संथुणइ जो य णिंदति, महेसिणो तत्थ समभावो " ॥ १ ॥ इति ।

छाया--यश्चन्दनेन बाहुमुपलिम्पति, वास्या वा तक्ष्णोति ।
संस्तौति यश्च निन्दति महर्षेस्तत्र समभावः ॥ १ ॥ इति ।

तीर्थङ्करादिने जिस धर्मका उपदेश दिया है वह धर्म यही है कि शत्रु और मित्र में मुनिजन समभावी रहें । शत्रु-मित्र में समभावसे वर्तनेवाला मुनि ही निष्परिग्रही होता है ।

भावार्थ—शत्रु मित्र में राग द्वेष रखनेवाले में निष्परिग्रहता नहीं आ सकती, कारण कि परिग्रह का लक्षण मूर्च्छा-ममत्व-भाव बतलाया गया है । राग होना ही ममत्वभाव है, अथवा ममत्वभावका कार्य राग है । कार्य के सद्भाव में कारण का सद्भाव माना ही जाता है । अतः राग के सद्भाव में सचित्तादिपरिग्रहता रागीमें आती है । इस हेतु निष्परिग्रह होनेके लिये शत्रु-मित्रमें समभावसे प्रवर्तन करने रूप धर्मका उपदेश तीर्थङ्करादिक आर्य पुरुषों ने दिया है ।

कहा भी है—

" जे चंदणेण बाहुं आलिंपइ वासिणा वा तच्छेति ।
संथुणइ जो य णिंदति, महेसिणो तत्थ समभावो " ॥१॥ इति—

મિત્રમાં મુનિજન સમભાવી રહે. શત્રુ-મિત્રમાં સમભાવથી વર્તવાવાળા મુનિ જ નિષ્પરિગ્રહી હોય છે.

ભાવાર્થ:—શત્રુ-મિત્રમાં રાગદ્વેષ રાખવાવાળામાં નિષ્પરિગ્રહિતા આવતી નથી, કારણ કે પરિગ્રહનું લક્ષણ મમત્વભાવ બતાવેલ છે, રાગ થવો એ મમત્વભાવ છે, મમત્વભાવનું કાર્ય રાગ છે, કાર્યના સદ્‌ભાવમાં કારણનો સદ્‌ભાવ માનવામાં આવે છે, માટે રાગના સદ્‌ભાવમાં સચિત્તાદિપરિગ્રહતા રાગીમાં આવે છે. આ કારણે નિષ્પરિગ્રહ હોવાને માટે શત્રુ-મિત્રમાં સમભાવથી પ્રવર્તન કરવારૂપ ધર્મનો ઉપદેશ તીર્થંકરાદિક આર્ય પુરૂષોએ કહેલ છે. કહ્યું પણ છે—

' जे चंदणेण बाहुं, आलिंपइ वासिणा वा तच्छेति ।
संथुणइ जोय णिंदति, महेसिणो तत्थ समभावो " ॥ १ ॥ ઇતિ.

यद्वा-'आरिएहिं' इति मूले सप्तम्यर्थे तृतीया, तेनाऽऽर्येष्वितिच्छाया; आर्येषु=देशभाषाचारित्रार्येषु, उपलक्षणादनार्येषु च धर्मः वीतरागेण समतया=समभावेन प्रवेदितः-सकलजीवोपकाराय सदृशतया प्रवर्तकत्वात्तेषाम्, "जहा पुण्णस्स कत्थइ तहा तुच्छस्स कत्थइ" इत्यादिवचनात्, अथवा-'समियाए' इति मूलस्य शमितयेतिच्छाया, ततश्च 'शमितया शमी=इन्द्रियनो-

उनका यह कथन है कि चाहे कोई भुजाओं में चंदनका लेप करे अथवा तलवार या कुल्हाडी से काटे, कोई उनकी स्तुति करे या निंदा करे; तो भी महर्षि वहां पर समभाववाले ही होते हैं।

अथवा--मूल सूत्र में "आरिएहिं" ऐसा पद है। जिसकी संस्कृत-छाया-पहिले "आर्यैः" ऐसी की है। परन्तु जब "आरिएहिं" इस पद में सप्तमी विभक्ति के अर्थमें तृतीया विभक्ति मानेंगे तब इसकी छाया "आर्येषु" होगी। उस अवस्था में ऐसा इसका अर्थ होगा कि देशार्य, भाषार्य और चारित्रार्यों में तथा उपलक्षण से अनार्यों में भी वीतरागप्रभुने समभावसे धर्मका उपदेश दिया है। क्यों कि वीतराग प्रभुकी प्रवृत्ति समस्त जीवोंपर उपकार करने के लिये एकसी होती है। "जहा पुण्णस्स कत्थइ तहा तुच्छस्स कत्थइ" ऐसा आगम का वचन है।

'समियाए' इस मूल पदकी संस्कृत-छाया 'शमितया' होती है। इन्द्रिय और मनका जो निग्रह करता है वह शमी है, शमीका भाव

આનો ભાવ છે કે ભલે કોઇ ભુજાઓમાં ચંદનનો લેપ કરે અથવા તલવાર અથવા કુહાડીથી તેને કાપે, કોઇ એની સ્તુતિ કરે અથવા નિંદા કરે, તો પણ મહર્ષિ આમાં સમભાવ દાખવનાર જ રહે છે.

અથવા—મૂળ સૂત્રમાં "आरिएहिं" એવો પદ છે. જેની સંસ્કૃત છાયા પહેલાં "आर्यैः" એમ કરી છે.

પરંતુ જ્યારે 'आरिएहिं' આ પદમાં સપ્તમી વિભક્તિના અર્થમાં તૃતીયા વિભક્તિ માનવામાં આવશે, ત્યારે તેની છાયા "आर्येषु" એવી થશે. આવી અવસ્થામાં આવો એનો અર્થ થશે કે-દેશાર્ય, ભાષાર્ય અને ચારિત્રાર્યોમાં, તથા ઉપલક્ષણથી અનાર્યોમાં પણ વીતરાગ પ્રભુએ સમભાવથી ધર્મનો ઉપદેશ આપ્યો છે. કારણ કે વીતરાગ પ્રભુની પ્રવૃત્તિ સમસ્ત જીવો ઉપર ઉપકાર કરવા માટે એકધારી હોય છે. આગમનું વચન છે કે-"जहा पुण्णस्स कत्थइ तहा तुच्छस्स कत्थइ"

"समियाए" આ મૂલની સંસ્કૃત છાયા "शमितया" થાય છે. ઇન્દ્રિય અને મન ઉપર જે કાબુ મેળવે છે એ શમી છે, શમીનો ભાવ શમિતા છે.

इन्द्रियोपशमी, तस्य भावः शमिता तया आर्यैः=तीर्थङ्करैः धर्मः प्रवेदितः, भगवान् मिथ्यादृष्टिप्ररूपितोपदेशस्य हेयतामुपदर्शयति-'जहित्थ' इत्यादि; अत्र=अस्मिन्नर्हच्छासनोक्ते रत्नत्रयात्मके मोक्षमार्गे मया घातिकर्म मोक्तुकामेन यथा=येन प्रकारेण सन्धिः=सन्धानं सन्धिः कर्मपरम्परा, सन्धीयते वा सन्धिः=ज्ञानावरणीयादिकर्मसन्ततिः, स कृत्स्नो झोषितः=अपनीतो दूरीकृतः, एवं=तथा अन्यत्र=कुतीर्थिकप्रतिपादितशासने सन्धिः=पूर्वोक्तो दुर्झोषितः=दुःखेनापनीतोऽपनेतुमशक्य इत्यर्थः, भवति, दोषराहित्येन वीतरागप्रतिपादित एव मोक्षमार्गः साधीयान्नतु सर्वसमारम्भशीलेन सचित्तभोजिना रागद्वेषाग्रहवता परेण प्रतिपादितो मार्गो मोक्षाय भवतीत्यभिप्रायः,

शमिता है। शमिता से आर्य तीर्थङ्करादिकों ने धर्म की प्ररूपणा की है —ऐसा समझना चाहिये।

वीतराग से अन्य अवीतराग मिथ्यादृष्टिका उपदेश हेय है—छोड़ने योग्य है—इस बात को प्रदर्शित करने के लिये स्वयं भगवान् कहते हैं- 'जहित्थ'—इत्यादि। इस आर्हत—शासनमें प्रतिपादित रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्ग में घातिकर्मों को नाश करनेकी कामनावाले मैंने जिस प्रकार से कर्मपरंपरा—ज्ञानावरणीयादिक कर्मों की सन्तति सम्पूर्ण रूपसे दूर की है उस तरह से वह कर्मपरम्परारूप संधिका अन्यत्र—मिथ्यादृष्टियों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त में दुर्झोषित—अपनयन—दूर करना अशक्य है। अर्थात् मिथ्यादृष्टियों के सिद्धान्त के सहारे यह कर्मपरम्परा नष्ट नहीं हो सकती है। अभिप्राय इसका यही होता है कि दोषरहित होने से वीतराग द्वारा प्रतिपादित ही मोक्षमार्ग सर्वोत्कृष्ट है, सर्वसमारम्भ-

શમિતાથી આર્ય તીર્થંકરાદિકોએ ધર્મની પ્રરૂપણા કરી છે એમ સમજવું જોઈએ.

વીતરાગથી અન્ય અવીતરાગ—મિથ્યાદૃષ્ટિનો ઉપદેશ બરોબર નથી—છોડવા યોગ્ય છે—આ વાત સ્પષ્ટ કરતાં સ્વયં ભગવાન કહે છે કે—"जहित्थ" ઈત્યાદિ. આ આર્હત શાસનમાં પ્રતિપાદિત રત્નત્રયાત્મક મોક્ષમાર્ગમાં ઘાતિકર્મોનો નાશ કરવાની કામનાવાળા મેં જે પ્રકારથી કર્મપરંપરા—જ્ઞાનવરણીયાદિક કર્મોની સંતતિ સંપૂર્ણ રૂપથી દૂર કરેલ છે તે રીતે એ કર્મપરંપરારૂપ સંધીનો અન્યત્ર—મિથ્યાદૃષ્ટિઓદ્વારા પ્રતિપાદિત સિદ્ધાંતોમાં દુર્ઝોષિત—દૂર કરવું અશક્ય છે. અર્થાત્ મિથ્યાદૃષ્ટિઓના સિદ્ધાંતને સહારે આ કર્મપરંપરા દૂર થઈ શકનાર નથી. અભિપ્રાય આનો એ છે કે—દોષરહિત થવાથી વીતરાગદ્વારા પ્રતિપાદિત જ મોક્ષમાર્ગ સર્વોત્કૃષ્ટ છે.

तस्मात्कारणात् ब्रवीमि=कथयामि, यत एतदार्हते मार्गे सम्यग्व्यवस्थितेन मया कर्मापनीतम् ततो ब्रवीमि अन्योऽपि संयतो वीर्यसंयमाचरणे तपसि वा सामर्थ्यं नो निहन्यात्=नो गोपयेत् अनिगूहितबलवीर्येण मुनिना भाव्यमिति भावः, इति सुधर्मा स्वामी स्वशिष्याय वीरप्रोक्तं ब्रवीतीत्याशयः ॥ सू० १ ॥

अपि च स कथम्भूतो भवेत्? इत्याह–' जे पुव्वुट्ठाई ' इत्यादि ।

मूलम्–जे पुव्वुट्ठाई नो पच्छानिवाई, जे पुव्वुट्ठाई पच्छा-निवाई, जे नो पुव्वुट्ठाई नो पच्छानिवाई, सेऽवि तारिसए सिया, जे परिन्नाय लोगमणुस्सिया ॥ सू० २ ॥

छाया—यः पूर्वोत्थायी नो पश्चान्निपाती, यः पूर्वोत्थायी पश्चान्निपाती, यो नो पूर्वोत्थायी नो पश्चान्निपाती, सोऽपि तादृशः स्यात्, ये परिज्ञाय लोकमन्वाश्रिताः ॥ सू० २ ॥

स्वभाववाले सचित्तभोजन करनेवाले और राग एवं द्वेषमें आग्रहवाले अन्य मिथ्यादृष्टि अवीतराग द्वारा प्रतिपादित मार्ग मोक्षप्राप्ति के लिये योग्य नहीं है । इसी कारण से मैं कहता हूं कि इस आर्हत मार्ग में अच्छी तरह से रहते हुए मैंने कर्मोंका नाश किया है, तो और अन्य संयतों से भी मेरा यही कहना है कि वे भी संयम के आचरण में अथवा तपकी आराधनामें अपनी शक्ति को नहीं छुपावें। जो अपने बल और वीर्य को छुपाता है वह सच्चा मुनि नहीं है । इस हेतु सच्चे मुनि होने के लिये अपने बल वीर्य को नहीं छुपाना चाहिये, तभी जा कर वह सच्चा मुनि हो सकता है । इस प्रकार सुधर्मास्वामीजी वीर भगवानद्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तको अपने शिष्य जम्बूस्वामीके प्रति कह रहे हैं ॥ सू०१॥

સર્વસમારંભસ્વભાવવાળા અને સચિત્ત ભોજન કરવાવાળા તેમજ રાગ અને દ્વેષમાં આગ્રહ રાખવાવાળા અન્ય મિથ્યાદૃષ્ટિ અવીતરાગદ્વારા પ્રતિપાદિત માર્ગ મોક્ષ પ્રાપ્તિ માટે યોગ્ય નથી, આ કારણે હું કહું છું કે આ આર્હત માર્ગમાં રહીને મેં કર્મોનો નાશ કરેલ છે, અન્યને પણ મારૂં આ કહેવું છે કે તેઓ પણ સંયમના આચરણમાં અથવા તપની આરાધનામાં પોતાની શક્તિને ન છુપાવે. જે પોતાનું બળ અને વીર્ય છુપાવે છે એ સાચો મુનિ નથી. આથી સાચા મુનિ થવા માટે પોતાના બળ વીર્યને ન છુપાવવું જોઈએ. આથી જ એ સાચો મુનિ બની શકશે. આ પ્રમાણે સુધર્માસ્વામીએ વીર ભગવાન પાસેથી જાણેલ સિદ્ધાંત પોતાના શિષ્ય જમ્બૂસ્વામીને કહેલ છે. ॥ સૂ૦ ૧ ॥

टीका—'य' इत्यादि, यः=विचारितसंसारासारो धर्मानुष्ठानपरायणः पूर्वोत्थायी पूर्वं-चारित्रग्रहणावसरे चारित्राचरणेनोत्थातुं शीलं यस्य स पूर्वोत्थायी, नोपश्चान्निपाती-पश्चात्=चारित्रग्रहणानन्तरं निपतितुं शीलं यस्य नास्ति स नो-पश्चान्निपाती भवति। सिंहवन्निष्क्रान्तः सिंह इव एकान्तविहरणशीलः गणधरादि-तुल्यः, इति प्रथमो भङ्गः, स चात्युत्तमः।

तथा-मुनिजन को कैसा होना चाहिये? इस बात को प्रकट करने के लिये कहते है—"जे पुव्वुट्ठाई" इत्यादि।

'पूर्वं—चारित्रग्रहणावसरे चारित्राचरणेन उत्थातुं शीलं यस्य स पूर्वोत्थायी'-चारित्र ग्रहण करने के अवसर में चारित्र के आचरण से अपनी वृद्धि करने का जिसका स्वभाव है वह पूर्वोत्थायी है। अर्थात्-चारित्र को अंगीकार कर के जो अपने चारित्रमय आचरण से अपने जीवनकी उन्नति करता है उसका नाम पूर्वोत्थायी है। वह पूर्वोत्थायी "नोपश्चान्निपाती" चारित्र ग्रहण के अनन्तर अपने गृहीत चारित्र से कभी पतित नहीं होता है, क्यों कि इसका स्वभाव गृहीत चारित्र से निपतनशील नहीं होता है, प्रत्युत इसके परिणाम चारित्र ग्रहण के अवसरसे लगा कर सदा वर्धमान रहते हैं। इसीलिये वह पश्चान्नि-पाती नहीं होता है। सिंह की तरह एकान्त विहरणशील होने से यह गणधरादि के समान माना गया है। यह प्रथम भंग है। इस भंगवाला मुनि अति उत्तम है।

ફરી—મુનિજને કેવું થવું જોઈએ? આ વાતને પ્રગટ કરતાં કહે છે- "जे पुव्वुट्ठाई" ઈત્યાદિ.

पूर्वं—चारित्र-ग्रहणावसे चारित्राचरणेन उत्थातुं शीलं यस्य स पूर्वोत्थायी-ચારિત્ર ગ્રહણ કરવાના સમયે ચારિત્ર આચરણથી પોતાની વૃદ્ધિ કરવાનો જેનો સ્વભાવ છે તે "पूर्वोत्थायी" છે. એટલે-ચારિત્રનો અંગીકાર કરી જે પોતાના ચારિત્રમય આચરણથી પોતાના જીવનની ઉન્નતિ કરે છે એનું નામ પૂર્વોત્થાયી છે. એ પૂર્વોત્થાયી "नो पश्चान्निपाती" ચારિત્ર ગ્રહણ કર્યા પછી પોતે જેનો સ્વીકાર કરેલ છે એનાથી ચલિત થતો નથી. કેમ કે એનો સ્વભાવ ગ્રહણ કરેલા ચારિત્રના પાલનમાં ખૂબ જ મક્કમ બનેલો હોય છે એથી એ ચારિત્ર ગ્રહણ કર્યા પછીથી ઉત્તરોત્તર એમાં જ રત બની રહે છે. આથી તે "पश्चान्निपाती" થતો નથી. સિંહની માફક એ એકાંત વિહરણશીલ હોવાથી તેને ગણધરાદિ સમાન માનવામાં આવેલ છે. આ પ્રથમ ભંગ છે. આ ભંગ-વાળા મુનિ અતિ ઉત્તમ છે.

द्वितीयभङ्गमाह—'य' इत्यादि, यः कश्चित् पूर्वोत्थायी चारित्रं गृहीत्वा पश्चान्निपाती=चारित्रान्तरायोदयात् पश्चान्निपतनशीलः। आचारात्पतितः शैलकः, लिङ्गात्पतितो नन्दिषेणकुमारः, दर्शनतः पतितो जमालिः, आचारतो लिङ्गतश्च पतितः पश्चात्कृतः, कश्चित्त्रिभिरपि पतितो भवतीत्यभिप्रायः, अयं च द्वितीयो भङ्गः।

यो नो पूर्वोत्थायी पश्चान्निपाती—इति तृतीयभङ्गस्याभावादप्रतिपादनं मूले, उत्तिष्ठतो हि निपातो जायते, उत्थानप्रतिषेधे च कुतस्तरां निपातचिन्तेति बोध्यम्।

जो पूर्वोत्थायी तो है; परन्तु चारित्र ग्रहण कर के भी जो अपने गृहीत चारित्र से, पीछे चारित्र–अन्तराय के उदय से निपतनशील है–वह 'पूर्वोत्थायी पश्चान्निपाती' ऐसा द्वितीय भंग है। जैसे आचार से पतित शैलक राजऋषि हुए, लिङ्ग से पतित नन्दिषेण हुए, दर्शन से पतित जमालि हुए। आचार और लिङ्ग इन दोनों से पतित पश्चात्कृत हैं; जैसे कण्डरीकादि। कोई २ आचार, लिङ्ग और दर्शन इन तीनों से भी पतित हुए हैं।

जो पूर्वोत्थायी तो नहीं है परन्तु पश्चान्निपाती है। यह तृतीय भंग है। परन्तु इस भंग की संभावना ही नहीं हो सकती है; कारण कि जो पूर्वोत्थायी होगा उसी में निपात का विचार लागू होता है। जब वहां उत्थान का ही प्रतिषेध है तो फिर निपात की विचारणा वहां कैसे हो सकती है? अर्थात्–चारित्र जिसने ग्रहण किया है उसीमें पीछे यह उत्थानशील है या अनुत्थानशील है–इस प्रकार का विचार किया जा

જે પૂર્વોત્થાયી તો છે પરંતુ ચારિત્ર ગ્રહણ કરવા પછી પોતે ગ્રહણ કરેલ ચારિત્રથી આગળ વધી શકતો નથી અને અન્તરાયના ઉદયના કારણે નિપતન-શીલ છે–તે " पूर्वोत्थायी पश्चान्निपाती " એમ દ્વિતીય ભંગ છે, જેમ કે આચારથી પતિત શૈલક રાજઋષિ થયા, લિંગથી પતિત નન્દિષેણ થયા, દર્શનથી પતિત જમાલી થયા, આચાર અને લિંગ, આ બન્નેથી પતિત પશ્ચાત્કૃત છે, જેમ–કન્ડરીક આદિ. કોઇ કોઈ આચાર, લિઙ્ગ અને દર્શન આ ત્રણેથી પણ પતિત થયેલ છે.

જે પૂર્વોત્થાયી તો નથી પરંતુ પશ્ચાન્નિપાતી છે. આ તૃતીય ભંગ છે. પરંતુ આ ભંગની સંભાવના જ નથી, કારણ કે જે પૂર્વોત્થાયી હોય છે એમાં જ નિપાતનો વિચાર લાગુ થાય છે. જ્યારે ત્યાં ઉત્થાનનો જ પ્રતિષેધ છે ત્યાં પછી નિપાત અને અનિપાતની વિચારણા જ કઈ રીતે થઇ શકે? અર્થાત્–ચારિત્ર જેણે ગ્રહણ કરેલ છે તેના વિષયમાં જ એ આગળ વધી રહેલ છે કે

चतुर्थमाह—यः गृहस्थतुल्यः नोपूर्वोत्थायी विरतेरसद्भावात्, अत एव नो-पश्चान्निपाती, उत्तिष्ठत एव निपातो नानुत्तिष्ठतो भवतीत्याशयः। सोऽपि=दण्डि-शाक्यादिरपि तादृशः=चतुर्थभङ्गान्तर्गतः सावद्याचरणतया नोपूर्वोत्थायी, यत एव नोपूर्वोत्थायी तत एव नोपश्चान्निपाती, गृहस्थसदृशः स्यात्, उभयोरप्यसंवृतास्रव-द्वारत्वात्। येऽप्यसमारम्भिणस्तेऽपि तादृशा एवेत्याह-'येऽपी'त्यादि, येऽपि

सकता है। परन्तु जब मूलमें ही वह चीज उसके पास नहीं है तब उस विषय को लेकर उत्थान और पतन का विचार कैसे हो सकता है? इसीलिये सूत्रकारने सूत्रमें इस तृतीय भंगका प्रतिपादन नहीं किया है।

जो गृहस्थ के समान हैं, वे न पूर्वोत्थायी हैं और न पश्चान्निपाती हैं। पूर्वोत्थायी इसलिये नहीं है कि उनमें चारित्रका सद्भाव नहीं है, और इसीलिये वे पश्चान्निपाती भी नहीं हैं। चारित्र के सद्भाववाले में ही पश्चान्निपातित्व संभवित होता है, इसके अभाववाले में नहीं। ऐसे दण्डिशाक्यादिक हैं। ये चतुर्थभङ्ग के अन्तर्गत ही हैं। कारण कि ये सावद्य व्यापारों में प्रवृत्तिशील होते हैं; अतः इनका आचार सावद्य-विशिष्ट होने से इनमें विरति नहीं है। विरति के अभाव से ये पूर्वोत्थायी नहीं हैं। जब ये पूर्वोत्थायी नहीं हैं तो पश्चान्निपाती भी नहीं हैं। अतः ये गृहस्थ ही हैं। क्यों कि जिस प्रकार गृहस्थजन कर्मों के आस्रव के द्वार से असंवृत होते हैं, अर्थात् अविरति आदि

અટકી પડેલ છે એવો વિચાર કરવાનો રહે છે, પરંતુ જ્યાં મૂળમાં જ જેની પાસે એ ચીજ નથી ત્યાં ઉત્થાન અને પતનનો વિચાર જ કઈ રીતે થઈ શકે. આ જ કારણે સૂત્રકારે સૂત્રમાં આ તૃતીય ભંગનો સ્વીકાર કરેલ નથી.

જે ગૃહસ્થની રીતે રહેવાવાળા છે તે ન તો પૂર્વોત્થાયી છે કે ન તો પશ્ચા-ન્નિપાતી છે. પૂર્વોત્થાયી આ માટે નથી કે એમને ચારિત્રનો સદ્‌ભાવ નથી. આ જ કારણે પશ્ચાત્-નિપાતી પણ નથી. ચારિત્રસદ્‌ભાવવાળામાં જ પશ્ચાત્-નિપા-તિત્વ સંભવિત હોય છે. આના અભાવવાળામાં નહીં. એવા દંડી શાકયાદિક છે. જે ચતુર્થભઙ્ગના અન્તર્ગત હોય છે. કારણ કે એ સાવદ્ય વ્યાપારોમાં પ્રવૃત્તિ-શીલ રહેતા હોય છે એટલે એમનો આચાર સાવદ્યવિશિષ્ટ હોવાથી એનામાં વિરતિરૂપતા નથી. વિરતિરૂપતાના અભાવથી એ પૂર્વોત્થાયી નથી. જ્યારે એ પૂર્વોત્થાયી જ નથી તો પશ્ચાન્નિપાતી પણ નથી, આથી એ ગૃહસ્થ જ છે, કારણ કે ગૃહસ્થજન કર્મોના આસ્રવના દ્વારથી અસંવૃત હોય છે. અર્થાત્-

द्रव्यलिङ्गिनो दण्डिशाक्यादयः लोकम्=अविरतलोकं परिज्ञाय=द्विविधपरिज्ञया ज्ञात्वा परिहृत्य च पुनस्तमेव लोकं सावद्यव्यापारिणम् अन्वाश्रिताः=तादृशलोकस्यैवानुसरणं कृतवन्तः। पचनपाचनादिव्यापारेभ्यः पूर्वमुपरम्य पश्चाच्चारित्रान्तरायोदयात्पुनरपि तमेव समारम्भवन्तं लोकमनुसरन्तः पाचनानुमोदनाभ्यां गृहस्थसदृशा एव भवन्तीत्याशयः ॥ सू० २ ॥

कर्मों के आनेके द्वार हैं, गृहस्थजनका कर्मों के आगमन का यह द्वार बंद नहीं होता है उसी प्रकार अविरति आदि से युक्त होने के कारण से दण्डि-शाक्यादिकों के भी कर्मों के आगमनके द्वार खुले ही रहते हैं। ये कर्मों के आस्रव से रहित उस अवस्था में नहीं हो सकते हैं। इसी तरह जो असमारंभी तो हैं, परन्तु पचन-पाचनादि कार्यों की अनुमोदनादि करते हैं वे भी गृहस्थतुल्य ही हैं, और चतुर्थ भंगमें उनका अंतर्भाव होता है, यह सूत्रकार प्रकट करते हैं-द्रव्यलिङ्गी मुनि दण्डिशाक्यादिक वगैरह ज्ञपरिज्ञासे अविरत लोक को जानकर और प्रत्याख्यान परिज्ञासे उसका परिहार कर फिर उसी सावद्य व्यापारी लोकका जो अनुसरण करते देखे जाते हैं, अर्थात्-ये प्रथम पचन-पाचनादि व्यापारोंसे अपने को निवृत्त करके भी पश्चात् चारित्र-अन्तरायके उदयसे उसी समारम्भशील लोकका अनुसरण करते हुए पाचन और अनुमोदन से गृहस्थतुल्य ही हो जाते हैं ॥सू०२॥

અવિરતિ આદિ કર્મોને આવવાનું એ દ્વાર છે. ગૃહસ્થજનને કર્મોના આગમનનું આ દ્વાર બંધ થતું નથી. એ પ્રકારે અવિરતિ આદિથી યુક્ત હોવાના કારણથી દંડી શાકયાદિકોને પણ કર્મોના આગમનનાં દ્વાર ખુલ્લાં જ રહે છે. એ કર્મોના આસ્રવથી રહિત તે અવસ્થામાં બની શકતાં નથી. આ રીતે એ અસમારંભી તો છે, પરંતુ પચન-પાચનાદિ કાર્યોની અનુમોદના કરે છે, એ પણ ગૃહસ્થતુલ્ય જ છે. આથી ચતુર્થ ભંગમાં એમનો સમાવેશ થાય છે. આમ સૂત્રકાર પ્રગટ કરે છે. આથી દ્રવ્યલિંગી મુનિ દંડી-શાકયાદિક વિગેરે જ્ઞ-પરિજ્ઞાથી અવિરત લોકોને જાણીને અને પ્રત્યાખ્યાન-પરિજ્ઞાથી તેનો પરિહાર કરીને ફરી-તે સાવદ્ય વ્યાપારી લોકોનું જ તે અનુસરણ કરતા દેખવામાં આવે છે, અર્થાત્-તે પચન પાચનાદિરૂપ વ્યાપારોથી પોતે નિવૃત્ત હોવા છતાં પણ પાછળથી ચારિત્ર-અંતરાયના ઉદયથી તે સમારંભશીલ લોકનું અનુસરણ કરતાં કરતાં પાચન અને અનુમોદનથી ગૃહસ્થતુલ્ય બની રહે છે ॥ સૂ૦ ૨ ॥

सर्वमिदं न मया स्वबुद्ध्या प्रोक्तमित्याह-' एयं ' इत्यादि ।

मूलम्—एयं नियाय मुणिणा पवेइयं, इह आणाकंखी पंडिए अणिहे, पुव्वावररायं जयमाणे, सया सीलं संपेहाए सुणिया भवे अकामे अझंझे, इमेण चेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण बज्झओ ॥ सू० ३ ॥

छाया—एतज्ज्ञात्वा मुनिना प्रवेदितम्, इहाऽऽज्ञाकाङ्क्षी पण्डितोऽस्निहः, पूर्वापररात्रं यतमानः, सदा शीलं संप्रेक्ष्य श्रुत्वा भवेदकामोऽझञ्झः, अनेन चैव युध्यस्व, किंते युद्धेन बाह्यतः ॥सू० ३ ॥

टीका—' एत '-दित्यादि, मुनिना = तीर्थङ्करेण एतत् = पूर्वोक्तम् उत्थाननिपतनादिकं वक्ष्यमाणं वा ज्ञात्वा=विमलकेवलालोकेन बुद्ध्वा प्रवेदितम्= अभिहितम् ।

यह सब मैंने अपनी बुद्धिसे नहीं कहा है—ऐसा कहते हैं–'एयं'इत्यादि

तीर्थङ्कर भगवान् ने यह पूर्वोक्त उत्थान निपतनादिक अथवा वक्ष्यमाण विषय अपने निर्मल केवलज्ञानरूपी आलोक से जान कर ही कहा है ।

भावार्थ—सूत्रकार पूर्वोक्त कथन में अथवा आगे कहे जानेवाले विषयमें अपनी कल्पना से कथनका निषध करते हुए उसमें वे तीर्थङ्कर -प्रणीतता प्रकट करते हैं । यह इसलिये प्रकट की गई है कि " वक्तुः प्रामाण्यात् वचसि प्रामाण्यं " वक्ता की प्रमाणता से ही वचनमें प्रमाणता आती है । अन्यथा रथ्या-पुरुषादिक (भटकते फिरते बजारू) की तरह उसमें अप्रमाणता होनेसे वह अग्राह्य हो जाता है ।

આ સઘળું મેં મારી બુદ્ધિથી કહેલ નથી, એમ કહે છે–" एयं " ઈત્યાદિ.

તીર્થંકર ભગવાને આ પૂર્વોક્ત ઉત્થાન નિપતનાદિક અને વક્ષ્યમાણ વિષય પોતાના નિર્મળ કેવળજ્ઞાનરૂપી આલોકથી જાણીને કહ્યું છે.

ભાવાર્થ—સૂત્રકાર પૂર્વોક્ત કથનમાં અને આગળ કહેવાતા વિષયમાં પોતાની કલ્પનાથી કથનનો નિષેધ કરીને તેમાં તે તીર્થંકર પ્રણીતતા પ્રગટ કરે છે. આ એ માટે પ્રગટ કરેલ છે કે "वक्तुः प्रामाण्याद् वचसि प्रामाण्यम्" એટલે વક્તાની પ્રમાણુતાથી જ વચનમાં પ્રમાણુતા આવે છે. તે સિવાય રથ્યા પુરુષાદિક (ભટકતા ફરતા બજારૂ)ની માફક તેમાં અપ્રમાણુતા હોવાથી તે અગ્રાહ્ય બની જાય છે.

तदेवाह–'इहे'–त्यादि. इह=अस्मिन् मौनीन्द्रप्रवचने व्यवस्थितः सन् "आज्ञाकाङ्क्षी' आज्ञां=तीर्थकृदुपदेशमाकाङ्क्षितुं शीलं यस्यास्ति स आज्ञाऽऽकाङ्क्षी =अर्हच्छासनोक्तानुष्ठायी, अस्निहः=मातापित्रादौ शब्दादिविषये शरीरादौ वा स्नेहवर्जितः पण्डितः=तीर्थङ्कराज्ञापरिज्ञानकुशलः पापभीरुर्भवति, मातापितृपुत्रकलत्रादिस्नेहवर्जितः शकटरक्षार्थमक्षे तैलदानवद्देहस्थित्यर्थमेवाहारमश्नन् रागद्वेषशून्यस्तीर्थङ्कराज्ञाराधको मुनिः पण्डितो भवतीति तात्पर्यम् । अपि च–'पूर्वे'त्यादि, पूर्वा-

"इहेत्यादि" पदों से तीर्थङ्कर–प्रणीत वक्ष्यमाण विषय को प्रकट करते हुए सूत्रकार कहते हैं—इस मौनीन्द्र (वीतराग) प्रवचनमें व्यवस्थित मुनि को तीर्थङ्कर भगवानने जो कुछ भी मुनिधर्मके विषय में अपने उपदेश में कहा है उसका अनुष्ठान करना चाहिये। "आज्ञां–तीर्थकृदुपदेशम् आकाङ्क्षितुं शीलं यस्यास्ति स आज्ञाकाङ्क्षी" क्यों कि यह आज्ञाकाङ्क्षी है–तीर्थङ्कर भगवान् के उपदेशकी आकाङ्क्षा (वांछा) करने का जिसका स्वभाव होता है वही आज्ञाकांक्षी है। अर्थात् जो जिसके शासन में रहता है वह उसके शासनोक्त नियमोंका अनुष्ठायक होता है। स्वेच्छानुसार प्रवृत्ति करनेवाला जिस प्रकार उस शासन से बहिर्भूत समझा जाता है उसी प्रकार जिनप्रणीत मुनिशासनको छोडकर अपनी इच्छानुसार चलनेवाला मुनि भी शासनसे बहिर्भूत होता हुआ आज्ञाकाङ्क्षी (आज्ञा–आराधक) नहीं माना जाता है।

आज्ञाकाङ्क्षी होने के लिये उसे मुनिधर्म के इन नियमों का पालन आवश्यक है–अस्निहः—अपने माता और पिता आदि में, शब्दादिक

"इह" ઈત્યાદિ પદોથી તીર્થંકરે કહેલ વક્ષ્યમાણ વિષયને પ્રગટ કરતાં સૂત્રકાર કહે છે–આ વીતરાગ પ્રવચનમાં વ્યવસ્થિત મુનિને તીર્થંકર ભગવાને જે કાંઈ પણ મુનિધર્મના વિષયમાં પોતાના ઉપદેશમાં કહ્યું છે તેનું અનુષ્ઠાન કરવું જોઇએ. કારણ કે તે "आणाकंखी–आज्ञाकाङ्क्षी" આજ્ઞાને અનુસરનાર છે. તીર્થંકર ભગવાનના ઉપદેશની આકાંક્ષા કરવાનો જેનો સ્વભાવ છે તે આજ્ઞાકાંક્ષી છે. અર્થાત્ જે જેના શાસનમાં રહે છે તે તેના શાસનધર્મનો પાલક બને છે. સ્વેચ્છાનુસાર પ્રવૃત્તિ કરવાવાળા જે પ્રકારે તે શાસનથી વિમુખ ગણવામાં આવે છે તે પ્રકારે જીનપ્રણીત મુનિશાસનથી વિમુખ પોતાની ઈચ્છાનુસાર ચાલવાવાળા મુનિ પણ શાસનથી બહિર્ભૂત બનીને આજ્ઞાના આરાધક બનતા નથી.

આજ્ઞાકાંક્ષી થવા માટે તેણે મુનિધર્મનાં એવા નિયમોનું પાલન કરવું આવશ્યક છે–अस्निहः—પોતાના માતા પિતા આદિમાં, શબ્દાદિક વિષયોમાં, અને

विषयों में, अथवा शरीरादिकों में स्नेह-ममता-रहित होना। पण्डितः- तीर्थङ्कर प्रभुकी आज्ञा समझने में कुशलमति होना।

भावार्थः—नियमों का अच्छी तरह से परिशीलन करनेवाला और उनका द्रव्य, क्षेत्र कालादि की व्यवस्था के अनुसार पालन करनेवाला व्यक्ति जिस प्रकार अन्धश्रद्धालु न हो कर अपने प्रत्येक कार्यको उपयोगपूर्वक करता है और तज्जन्य सुफल से लोक में प्रशंसनीय एवं कुशलमति माना जाता है उसी प्रकार से जो मुनि धर्म के प्रत्येक नियमोंका अच्छी तरहसे परिशीलन कर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे व्यवस्थानुसार उनका पालन करता है-उनका उचित रीतिसे हार्दिक लगन से सेवन करता है वह मेधावी मुनि कभी भी अपने कर्तव्यपथ से विचलित नहीं होता है, और मुनिधर्मपालनजन्य कर्मों की अनन्तगुणी निर्जरारूप सुफल से शोभित होता हुआ क्रमशः मुक्तिका लाभ करता है। इसलिये आवश्यकता है कि मुनिजन मौनीन्द्र (वीतराग) प्रवचनमें स्थित हो कर उसके प्रत्येक नियमों और उपनियमों के सच्चे ज्ञाता बनें। मुनिधर्म में दक्ष मुनि पापभीरु होता है। माता-पितादिकमें स्नेहरिक्त मुनि शकट-गाडीकी रक्षा के लिये अक्ष (धुरी) में तैलदान की तरह देहकी स्थिति के निमित्त ही विना किसी राग-द्वेषके आहार करता हुआ तीर्थङ्कर प्रभुकी आज्ञा का पालक बन मुनिधर्म का सच्चा आराधक होता है।

શરીર આદિકમાં સ્નેહ મમતા રહિત થવું, पण्डितः-એટલે તીર્થંકર પ્રભુની આજ્ઞામાં કુશળતા પ્રાપ્ત કરવી.

ભાવાર્થ:—નિયમોને સારી રીતે પાળવાવાળી અને તેને દ્રવ્ય ક્ષેત્ર કાળ આદિની વ્યવસ્થા અનુસાર પાલન કરવાવાળી વ્યક્તિ જેવી રીતે અંધશ્રદ્ધાળુ ન બનીને પોતાના પ્રત્યેક કાર્યને ઉપયોગપૂર્વક કરે છે, અને તેથી લોકમાં પ્રશંસનીય તેમજ કુશળ મનાય છે આ જ રીતે જે મુનિધર્મના પ્રત્યેક નિયમને સારી રીતે કુશળતાપૂર્વક પાળે છે, દ્રવ્ય ક્ષેત્ર કાળ અને ભાવથી વ્યવસ્થાનુસાર પાલન કરે છે તેવો મેધાવી મુનિ કોઈ પણ વખતે પોતાના કર્તવ્ય-પથથી ચલિત થતો નથી, અને મુનિ ધર્મપાલનજન્ય કર્મોની અનંતગુણી નિર્જરારૂપ સુફળથી શોભિત બનીને ક્રમથી મુક્તિનો લાભ કરે છે, આ કારણે આવશ્યક છે કે મુનિજન વીતરાગ પ્રવચનમાં સ્થિત બનીને તેના પ્રત્યેક નિયમો અને ઉપનિયમોનો સાચા જાણકાર બને. મુનિધર્મમાં દક્ષ મુનિ પાપભીરૂ હોય છે. માતાપિતાદિકમાં સ્નેહરહિત મુનિ ગાડીના ધરામાં પુરાતા તેલની માફક દેહની સ્થિતિ માટે જ

पररात्रं=रात्रेः पूर्वापरौ भागौ पूर्वापररात्रं, पूर्वरात्रस्य यामद्वयात्मकस्य मध्ये प्रथमो यामः, एवमपररात्रस्य पश्चिमो यामः, तत्र प्रहरद्वये जागरितः सन् यतमानः=प्रतिक्रमणस्वाध्यायध्यानादिकमनुतिष्ठन्, उपलक्षणान्मध्यवर्तिन्या रात्रेर्यामद्वये यथाविधि शयानः, रात्रौ यत्नकथनेन दिनेऽपि तत्कथनं स्पष्टमेव। शक्तिसत्त्वे स्थविरकल्पिका मध्यवर्त्तियाममध्येऽपि जाग्रति। जिनकल्पिकाश्चैकं प्रहरं स्वपन्ति, सप्तसु प्रहरेषु जाग्रति। एवं निष्क्रमणप्रवेशादौ मुनिर्दिवसे चक्षुर्वि

पूर्वापररात्रं यतमानः—रात्रि के पूर्व और अपर भागों का नाम पूर्वापररात्र है। रात्रि के ४ प्रहर होते हैं। एक प्रहर रात्रि के चौथे हिस्से को कहते हैं। पूर्वरात्र के दो प्रहरों में से प्रथम प्रहर में, पश्चिमरात्र के दो प्रहरों में से अन्तिम प्रहर में (अर्थात् रात्रिके ४ प्रहरों में से पहले चौथे प्रहरों में) जाग्रत रह कर प्रतिक्रमण, स्वाध्याय और ध्यानादिक करना। बाकी के दूसरे तीसरे प्रहरोंमें यथाविधि निद्रा लेना। "यतमानः" पदसे दिन में भी यथाविधि स्वाध्यायादिक का करना स्पष्ट सूचित होता है। जब रात्रिमें भी प्रतिक्रमणादिककी विधि प्रकट की गई है तो दिन में भी यथावसर स्वाध्याय करना यह बात स्वतः स्पष्ट है। शक्ति के सद्भाव में स्थविरकल्पी मुनि रात्रिके मध्यवर्ती दो प्रहरों में भी जागरित रहते हैं। जिनकल्पी साधु एक प्रहर ही निद्रा लेते हैं। बाकी दिन-रात के प्रहरों में जागते रहते हैं। इसीतरह निष्क्रमण–प्रवेशादिक में

કોઈ પણ રાગ–દ્વેષ વગર આહાર ગ્રહણ કરીને તીર્થંકર ભગવાનની આજ્ઞાના પાલક બની મુનિધર્મના સાચા આરાધક બને છે.

पूर्वापररात्रं यतमानः—રાત્રીના પૂર્વ અને અપર ભાગનું નામ પૂર્વાપર-રાત્ર છે, રાત્રીના ચાર પ્રહર છે, એક પ્રહરને રાત્રીનો ચોથો ભાગ કહે છે. પૂર્વ રાત્રના બે પ્રહરમાંથી પ્રથમ પ્રહરમાં, પશ્ચિમ રાતના બે પ્રહરમાંથી અંતિમ પ્રહરમાં (અર્થાત્–રાત્રીના ચાર પ્રહરમાંથી પહેલા ચોથા પ્રહરમાં) જાગૃત રહીને પ્રતિક્રમણ, સ્વાધ્યાય તેમજ ધ્યાનાદિક કરવું. બાકીના બીજા અને ત્રીજા પ્રહરમાં યથાવિધિ નિદ્રા લેવી. "यतमानः" પદથી દિવસે પણ યથાવિધિ સ્વાધ્યાયાદિક કરવું તેવું સ્પષ્ટ સૂચિત થાય છે. જ્યારે રાત્રીમાં પણ પ્રતિક્રમણાદિકની વિધિ આપેલ છે, તો દિવસમાં પણ યથાવસર સ્વાધ્યાય કરવું, એ વાત સાવ સ્પષ્ટ છે. શક્તિના સદ્ભાવમાં સ્થવિરકલ્પી મુનિ રાત્રીના મધ્યવર્તી બે પ્રહરોમાં પણ જાગ્રત રહે છે, જીનકલ્પી સાધુ એક પ્રહર જ નિદ્રા લે છે, બાકી દિન-રાતના પ્રહરોમાં જાગતા રહે છે. આ પ્રમાણે નિષ્ક્રમણ–પ્રવેશાદિકમાં મુનિ દિવસે

षयेऽपि यत्नं विदधाति किं पुनश्चक्षुर्विषयरात्रावित्याशयः। एतदेव प्रकटयति-'सदा शील'-मित्यादि, सदा=सर्वकालं शीलम्=अष्टादशसहस्रशीलाङ्गरथं चारित्रं वा, अथवा शीलं=पञ्चमहाव्रतसाधनभूतं गुप्तित्रयं सकलेन्द्रियदमनं कषायनिग्रहं वा संप्रेक्ष्य=ज्ञात्वा तमेव यावज्जीवमनुपालयेत्। उक्तञ्च—

मुनि दिन में भी देख-भाल कर समितिपूर्वक प्रवृत्ति करता है। दिनमें भी जब वह यतनापूर्वक अपनी प्रत्येक क्रियाओंको करता है तो रात्रि में भी कि जिसमें चक्षुरिन्द्रिय का विषय कोई भी पदार्थ स्पष्ट रूपसे नहीं होता है, उसे अपने प्रत्येक प्रवृत्ति में यतना रखनी ही चाहिये। अतः रात्रि में विहारादि नहीं करना यह बात भी स्वतः सिद्ध हो जाती है। "सदा शीलं संप्रेक्ष्य श्रुत्वा भवेदकामोऽझञ्झः"-सर्वकाल १८ हजार शीलों के भेदों का, या चारित्र का अथवा पांच महाव्रतों के साधनभूत गुप्तित्रय, सकलेन्द्रियोंका दमन और कषायों का निग्रहरूप शीलका अच्छी तरह ज्ञाता बन उसका यावज्जीवन पालन करे। गुरुके निकट शीलके पालने का और उसके नहीं पालने का परिणाम जानकर वैषयिक इच्छाओं से रहित होकर माया, तृष्णा अथवा क्रोध से रहित होवे।

भावार्थ—१८ हजार शील के भेद जो आगमों में प्रकट किये गये हैं, मुनिका कर्तव्य है कि उनका भली प्रकार पालन करे। ५ महाव्रत, ५ समिति और ३ गुप्ति, इस १३ प्रकार के चारित्र की आरा-

પણ જાણી જોઇને સમિતિપૂર્વક પ્રવૃત્તિ કરે છે. દિવસે પણ જ્યારે તે યત્નાપૂર્વક પોતાની પ્રત્યેક ક્રિયાઓ કરે છે તો રાત્રીમાં પણ કે જેમાં ચક્ષુરિન્દ્રિયનો વિષય કોઇ પણ પદાર્થ સ્પષ્ટ રૂપથી થતો નથી તેને પોતાની પ્રત્યેક પ્રવૃત્તિમાં યત્ના રાખવી જોઇએ. એટલે રાત્રીમાં વિહાર આદિ ન કરવા એ વાત આથી સ્પષ્ટ રીતે સિદ્ધ થાય છે.

"सदा शीलं संप्रेक्ष्य श्रुत्वा भवेदकामोऽझञ्झः"-સર્વકાલ અઢાર હજાર શીલોના ભેદને, અથવા ચારિત્રના અને પાંચ મહાવ્રતોના સાધનભૂત ગુપ્તિત્રય, સકલ ઇન્દ્રિયોનું દમન અને કષાયોના નિગ્રહરૂપ શીલના સારી રીતે જ્ઞાતા બની તેનું જીંદગી પર્યન્ત પાલન કરવું. ગુરૂની પાસેથી શીલના પાલનના અને નહિ પાળવાના પરિણામને જાણીને વૈષયિક ઇચ્છાઓથી રહિત બની માયા, તૃષ્ણા અને ક્રોધથી રહિત થવું.

ભાવાર્થ:—અઢાર હજાર શીલના ભેદ જે આગમોમાં પ્રગટ કરાયા છે તે માટે મુનિનું કર્તવ્ય છે કે તેનું સારી રીતે પાલન કરે. પાંચ મહાવ્રત, પાંચ સમિતિ, અને ત્રણ ગુપ્તિ, એવા તેર પ્રકારના ચારિત્રની આરાધના કરે. પાંચ મહાવ્રતોના

" महाव्रतसमाधानं, तथैवेन्द्रियसंवरः ।
त्रिदण्डविरतित्वं च, कषायाणां च निग्रहः" ॥ १ ॥

तच्च शीलमिति ब्रुवे" तत्र क्षणमपि नो प्रमादयेदिति भावः । शीलवतो गुणमाह–श्रुत्वेत्यादि, यः श्रुत्वा=शीलपरिज्ञानं तदनुपालनफलं तद्विपरीत-कर्तॄणां नरकनिगोदादिपरिभ्रमणं च गुरुसकाशादागमाद्वाऽऽकर्ण्य, अकामः=इच्छादि-

धना करे । ५ महाव्रतों के साधनभूत ३ गुप्तिका पालन और पांच इन्द्रिय और एक मनका दमन करना, कषायों का निग्रह करना ये सब बातें शील के ही अन्तर्गत हैं । मुनिजन को " शील का पालन करना चाहिये " इस की वक्तव्यता में इन समस्त बातों का अवश्य पालन उचित है । इन सबका पालन मुनिधर्म से संबंध रखता है । कहा भी है—

" महाव्रतसमाधानं, तथैवेन्द्रियसंवरः ।
त्रिदण्डविरतित्वं च, कषायाणां च निग्रहः "॥ १ ॥

अर्थात्—महाव्रतादिकों का आराधन शीलरूप से कहा गया है, ऐसा समझ कर इनके पालने में एक क्षण भी प्रमाद नहीं करना चाहिये।

'श्रुत्वा'-इत्यादि पदोंद्वारा शीलवानके गुणको सूत्रकार कहते हैं—

जो मुनि शीलके परिज्ञान, एवं उसके पालनजन्य फलको तथा शीलके सेवन से रहित मानवों के नरकनिगोदादिमें परिभ्रमण को गुरु से अथवा आगम से सुन कर इच्छादिकामसे रहित हो जाता है वह

આધારભૂત ત્રણ ગુપ્તિનું પાલન અને પાંચ ઇન્દ્રિય અને એક મનનું દમન કરવું, કષાયોનો નિગ્રહ કરવો એ સઘળી વાતો શીલની અન્તર્ગત છે. " મુનિજનને શીલનું પાલન કરવું જોઈએ " આ પ્રકારની રીતોમાં આ સઘળી વાતોનું અવશ્ય પાલન કરવું જોઈએ. આ બધાનું પાલન મુનિધર્મ સાથે સંબંધ રાખે છે. કહ્યું પણ છે—

" महाव्रतसमाधानं, तथैवेन्द्रियसंवरः ।
त्रिदण्ड–विरतित्वं च, कषायाणां च निग्रहः " ॥ १ ॥

અર્થાત્ મહાવ્રતાદિકોનું આરાધન શીલરૂપથી કહેલ છે; એવું સમજીને તેના પાલનમાં એક ક્ષણનો પણ પ્રમાદ કરવો જોઈએ નહીં.

શીલવાનના ગુણને સૂત્રકાર કહે છે—' श्रुत्वा ' ઇત્યાદિ.

જે મુનિ શીલના પરિજ્ઞાનને, અને તેના પાલનજન્ય ફળને, તથા શીલના સેવનથી રહીત માનવના નરકનિગોદાદિમાં પરિભ્રમણને ગુરૂ અને આગમથી સાંભળીને ઇચ્છાદિ કામથી રહિત બની જાય છે તે માયા, ક્રોધ અને તૃષ્ણાથી

कामवर्जितः, एवम् अझञ्झः=अविद्यमाना झञ्झा=माया क्रोधस्तृष्णा वाऽस्य सोऽझञ्झो भवेत् कामझञ्झयोर्निषेधेन मोहनीयोदयोऽपि निषिध्यते; तन्निषेधादेव शीलसम्पन्नो भवेन्नान्यथेत्यभिप्रायः, अयमत्र सारः-धर्मश्रवणानन्तरं कामझञ्झादिरहितो भवेदिति प्रतिपादनेनोत्तरगुणानां ग्रहणमुपलक्षणत्वेन मूलगुणग्रहणं च सिद्धम्। ततश्चाहिंसादिमहाव्रतधारी भवेदिति।

ननु चानिह्नतबलवीर्यस्य शीलशालिनो भवदुपदेशानुष्ठायिनो मम साम्प्रतमपि न निखिलकर्मापनयो जातोऽतस्तदुपायं मह्यं ब्रूहि येन शीघ्रं सकलकर्मक्षयो भवेत्।

क्रोध, माया अथवा तृष्णा से भी रहित हो जाता है। काम और झंझा —माया, क्रोध, अथवा तृष्णा के निषेध से मोहनीय के उदयका भी वहां निषेध हुआ समझना चाहिये, क्यों कि उसके निषेधसे ही वह शीलसंपन्न होता है; अन्यथा नहीं।

भावार्थ—धर्मश्रवण के बाद "काम और झंझा से वह रहित होवे" इस प्रकार के प्रतिपादन से उत्तरगुणोंका ग्रहण सिद्ध हो जाता है, साथ में उपलक्षण से मूल गुणोंका भी। इस से यह बात सिद्ध होती है कि वह अहिंसादिक-महाव्रतधारी होवे। "अणेण चेव जुज्झाहि किं ते जुज्झेण बज्झओ" इस शेष सूत्रांश का खुलासा करने के लिये टीकाकार इसका अर्थ यों करते हैं-शिष्य गुरुदेवसे अरज करता है-"मैं अपने बल और वीर्य को नहीं छिपा कर शील के अनुष्ठानमें प्रवृत्त होता हुवा आपके उपदेशानुसार प्रवृत्ति कर रहा हूं, फिर भी मेरे समस्त कर्मोंका विनाश अभी तक भी नहीं हुआ, अतः उसका उपाय आप कहें कि जिससे मेरे समस्त कर्म शीघ्र नष्ट हो जावें, मुझे आपके वचनों में पूर्ण विश्वास है,

---

પણ રહીત થઇ જાય છે. કામ, માયા, ક્રોધ અને તૃષ્ણાના નિષેધથી મોહનીયના ઉદયનો પણ ત્યાં નિષેધ થયો સમજવો જોઈએ, કારણ કે તેના નિષેધથી જ શીલસંપન્ન બને છે બીજાથી નહીં, તાત્પર્ય કે-ધર્મના શ્રવણ પછી "કામ અને માયાથી પર બને" આપ્રકારના પ્રતિપાદનથી ઉત્તરગુણોનું ગ્રહણ સિદ્ધ થાય છે. સાથો સાથ ઉપલક્ષણથી મૂળગુણનો પણ ગ્રહણ થાય છે. આથી એ વાત સિદ્ધ થાય છે અહિંસાદિક-મહાવ્રતધારી બને.

"अणेण चेव जुज्झाहि किंते जुज्झेण बज्झओ આ શેષ સૂત્રાંશનો ખુલાસો કરવા માટે ટીકાકાર આનો અર્થ આ પ્રકારે કરે છે—

શિષ્ય ગુરૂને અરજ કરે છે-" મારૂં પોતાનું બળ અને વીર્યને નહિ છુપાવીને શીલના અનુષ્ઠાનમાં પ્રવૃત્તિ કરતો હું આપના ઉપદેશ અનુસાર પ્રવૃત્તિ કરૂં છું છતાં મારા સમસ્ત કર્મોનો વિનાશ હજુ સુધી થયો નથી, માટે આપ એનો ઉપાય મને બતાવો કે જેથી મારાં સમસ્ત કર્મ શીઘ્ર નાશ પામે, મને આપના

भवद्वाक्येन चाहं सिंहेनापि योद्धुं समर्थोऽस्मि कर्मक्षयार्थनिष्क्रान्तस्य न किमप्यशक्यमस्तीति तदुपायो वक्तव्यः? इति पृष्टवन्तं शिष्यं गुरुराह–'अनेने'त्यादि, अनेन चैव=औदारिकशरीरद्वारा ज्ञानावरणीयादिकर्मशत्रुणा सह रत्नत्रयाराधनपताकाग्रहणाय मुक्तये वा प्राणपरित्यागेनापि त्वं युध्यस्व=कर्मरिपुं पराजयस्व, बाह्यतः =आत्मनो बहिस्थितेन सिंहादिना सह ते=तव युद्धेन=संग्रामेण किम्=वृथेत्यर्थः, कर्मशत्रुविजयादेव तव सकलकर्मापनयो भावीत्यवधार्य तत्रैव यतस्वेति हृदयम्॥सू० ३॥

मैं आपकी आज्ञा से सिंह के साथ भी युद्ध करनेमें समर्थ हूं, हे गुरुदेव! मैं तो कर्मों के नाश करने के लिये ही घरसे निकला हूं, मेरे लिये अशक्य काम कुछ भी नहीं है, इसलिये कर्मक्षय जितना जल्दी से जल्दी हो सके आप ऐसा उपाय शीघ्र कहें" इस प्रकार पूछनेवाले शिष्यजन के प्रति गुरुदेव कहते हैं–हे शिष्य! तुम इस औदारिक शरीर से ही ज्ञानावरणीयादि कर्मशत्रुओं के साथ रत्नत्रय की आराधनारूप पताकाको ग्रहण करने के लिये, अथवा मुक्ति पाने के लिये प्राणपण से (प्राणों की परवाह किये विना) युद्ध करो, कर्मशत्रुओं पर विजय प्राप्त करो, अपने से बाह्य सिंहादिक के साथ युद्ध करने से तुम्हें क्या लाभ हो सकता है? मोहनीय कर्मके जीतने से ही तुम्हारे समस्त कर्मों का विनाश हो जायगा, ऐसा निश्चय कर उसके ही साथ युद्ध करने का प्रयत्न करो ॥सू० ३॥

વચનોમાં સંપૂર્ણ વિશ્વાસ છે. આપની આજ્ઞાથી હું સિંહની સાથે પણ યુદ્ધ કરવા સમર્થ છું. હે ગુરૂદેવ! હું તો કર્મોનો નાશ કરવા માટે જ ઘેરથી નીકળ્યો છું. મારે માટે અશકય એવું કોઈ કામ નથી. આ માટે મારા કર્મોનો જલ્દીમાં જલ્દી ક્ષય થાય એવો ઉપાય તાત્કાલિક બતાવો." આ પ્રકારે ગુરૂ પાસે પૂછનારા શિષ્યજનને ગુરૂદેવ કહે છે કે—હે શિષ્ય! તું આ ઔદારિક શરીરથી જ જ્ઞાનાવરણીયાદિક કર્મશત્રુઓની સાથે રત્નત્રયની આરાધનારૂપ પતાકાને ગ્રહણ કરવા માટે અથવા મુક્તિ મેળવવા પ્રાણ પણ (પ્રાણની પરવા કર્યા વગર) યુદ્ધ કર–કર્મશત્રુઓ ઉપર વિજય પ્રાપ્ત કર, બાહરના–તારાથી દૂર એવા સિંહાદિકની સાથે યુદ્ધ કરવાથી તને કયો લાભ મળવાનો છે? મોહનીય કર્મને જીતવાથી જ તારા સમસ્ત કર્મોનો વિનાશ થશે, એવો નિશ્ચય કરી એની સાથે યુદ્ધ કરવાનો પ્રયત્ન કર મોહનીયના વિનાશથી તારા શેષ કર્મોનો તાત્કાલિક નાશ થઈ જશે।। સૂ૦ ૩ ॥

दुष्पारसंसारपारावारे मज्जतो जनस्य तर्तुमिदं सुसाधनमनेकभवेषु प्राप्तुमशक्यमिति दर्शयति-' जुद्धारिहं ' इत्यादि ।

मूलम्—जुद्धारिहं खलु दुल्लहं, जहित्थ कुसलेहिं परिन्नाविवेगे भासिए, चुए हु बाले गब्भाइसु रज्जइ, अस्सिं चेयं पवुच्चइ, रूवंसि वा छणंसि वा, से हु एगे संविद्धपहे मुणी अन्नहा लोगमुवेहमाणे, इय कम्म परिण्णाय सव्वसो से न हिंसइ, संजमइ, नो पगब्भइ, उवेहमाणो पत्तेयं सायं, वण्णाएसी नारभे कंचणं सव्वलोए एगप्पमुहे विदिसप्पइन्ने निव्विण्णचारी अरए पयासु॥ सू० ४ ॥

छाया—युद्धार्हं खलु दुर्लभं, यथाऽत्र कुशलैः परिज्ञाविवेको भाषितः, च्युतो हु बालो गर्भादिषु रज्यते; अस्मिश्चैतत्प्रोच्यते, रूपे वा क्षणे वा, स हु संविद्धपथो मुनिः, अन्यथा लोकमुत्प्रेक्षमाणः, इति कर्म परिज्ञाय सर्वतः स न हिनस्ति, संयमयति, नो प्रगल्भते, उत्प्रेक्षमाणः प्रत्येकं सातं, वर्णादेशी नारभते कंचन सर्वलोके एकप्रमुखो विदिक्प्रतीर्णो निर्विण्णचारी अरतः प्रजासु ॥ सू० ४ ॥

टीका—' युद्धार्ह '-मित्यादि, इदमौदारिकशरीरं युद्धार्हं—परीषहादिभिः सह भावसंग्रामयोग्यं खलु=अवधारणे तस्य दुर्लभमित्यनेन सम्बन्धस्तेन दुर्लभं खलु=

दुष्पार इस संसाररूपी समुद्र में परिभ्रमण करनेवाले प्राणी के लिये यह सुसाधन अनेक भवों में भी दुर्लभ है—इस बात को सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं—" जुद्धारिहं " इत्यादि ।

मनुष्यों के शरीर को औदारिक शरीर कहते हैं। इस औदारिक शरीर से ही समस्त कर्मों का नाश होता है । यद्यपि औदारिक शरीर तिर्यञ्च और मनुष्यों का होता है तो भी तिर्यञ्च के औदारिक शरीर की यहां विवक्षा नहीं है । कर्मों के क्षय का कारण होने से मनुष्य के ही औदारिक शरीर की विवक्षा है । इसलिये सूत्रकार कहते हैं कि

દુષ્પાર આ સંસારરૂપી સમુદ્રમાં પરિભ્રમણ કરવાવાળા પ્રાણી માટે આ સુસાધન અનેક ભવોમાં પણ દુર્લભ છે—આ વાતને સૂત્રકાર પ્રદર્શિત કરે છે—" जुद्धारिहं " ઇત્યાદિ.

મનુષ્યના શરીરને ઔદારિક શરીર કહે છે આ ઔદારિક (મનુષ્ય શરીર) થી જ સમસ્ત કર્મોનો નાશ થાય છે. ઔદારિક શરીર તિર્યંચ અને મનુષ્યોનું હોય છે; પરન્તુ તિર્યંચના ઔદારિક શરીરની વિવક્ષા અહિં નથી. મનુષ્યના જ ઔદારિક શરીર કર્મોના ક્ષયનું કારણ હોવાથી એની વિવક્ષા છે. સૂત્રકાર કહે

दुर्लभमेव=दुःखेनैव लभ्यम् कर्मयुद्धार्हमनुष्यशरीरलाभेन तव सर्वकर्मक्षयोऽवश्यं शीघ्रमेव भावीति शिष्यकृतपूर्वप्रश्नस्योत्तरमभिहितम्। कश्चन मरुदेवीवत् तेनैव भवेन कर्मक्षयमासादयति, कश्चिच्च सुबाहुकुमारवत्सप्ताष्टभवैः, अपरः कश्चिद् देशोनार्द्धपुद्गलपरावर्तेनेति, तेन किमायातमित्याह-' यथे '-त्यादि, यथा=येन

यह मनुष्य का औदारिक शरीर परिषहादिकों के साथ भावयुद्ध के योग्य है, यह शरीर ही उनसे युद्ध कर सकता है; अन्य वैक्रियादिक नहीं! इस शरीर की प्राप्ति दुर्लभ है, बडे पुण्यानुबंधी पुण्य से ही यह मनुष्य तन मिलता है। इसलिये शिष्य को आश्वासन देते हुए गुरु महाराज कहते हैं कि " कर्मयुद्धार्हमनुष्यशरीरलाभेन तव सर्वकर्मक्षयोऽवश्यं शीघ्रमेव भावीति " तुम घबराओ नहीं, यदि हमारे वचनानुसार तुम प्रवृत्तिशील रहोगे तो विश्वास रखो इस प्राप्त हुए शरीर से तुम कर्मों का शीघ्र विनाश कर सकोगे, कारण कि कर्मों के साथ युद्ध करने योग्य यह औदारिक शरीर तुम्हें प्राप्त हुआ है। इस प्रकार पहिले शिष्यद्वारा किये गये प्रश्न का यह उत्तररूप समाधान है। इस शरीरद्वारा कोई २ जीव मरुदेवी जैसे उसी भवसे कर्मक्षय कर देते हैं। कोई २ सुबाहुकुमार की तरह सात आठ भव में, और कोई २ देशोन अर्ध-पुद्गलपरावर्तन कालमें कर्मों के क्षपक होते हैं। इसलिये जिस प्रकारसे

છે—મનુષ્યનું આ ઔદારિક શરીર પરીષહાદિકોની સામે યુદ્ધ કરવા યોગ્ય છે. આ શરીર જ એની સામે યુદ્ધ કરી શકે છે, અન્ય વૈક્રિયાદિક શરીર નહિ ! આ શરીરની પ્રાપ્તિ દુર્લભ છે – મહા પુણ્યાનુબંધથી જ આ મહામૂલ્ય મનુષ્ય દેહ પ્રાપ્ત થાય છે.

આ માટે શિષ્યને આશ્વાસન આપતા ગુરૂ મહારાજ કહે છે કે–" कर्मयुद्धार्हमनुष्यशरीरलाभेन तव सर्वकर्मक्षयोऽवश्यं शीघ्रमेव भावीति " તમે ગભરાઓ નહિ અમારા વચન અનુસાર તમે પ્રવૃત્તિશીલ રહેશે તો વિશ્વાસ રાખો આ પ્રાપ્ત થયેલ શરીરથી તમો કર્મોનો શીઘ્ર વિનાશ કરી શકશો, કારણ કે કર્મોની સાથે યુદ્ધ કરવાને માટે ઔદારિક શરીર તમોને પ્રાપ્ત થયેલ છે. આ પ્રકારે પહેલાં શિષ્યદ્વારા કરાએલા પ્રશ્નનો આ ઉત્તરરૂપ સમાધાન છે. આ શરીરદ્વારા કોઇ કોઈ જીવ મરૂદેવી જેવા આ ભવમાં જ કર્મક્ષય કરી દે છે. કોઈ કોઈ સુબાહુકુમારની માફક સાત આઠ ભવમાં, કોઇ કોઈ દેશોન અર્ધપુદ્ગલપરાવર્તનકાળમાં કર્મોનો ક્ષપક થાય

प्रकारेण अत्र=अस्मिन् संसारे कुशलैः=भावकुशलैः=तीर्थंकरगणधरादिकैः परिज्ञा-विवेकः=परिज्ञायाः=ज्ञप्रत्याख्यानभेदेन द्विविधायाः विवेकः=द्रव्यतो भावतश्च विचारः भाषितः=कथितः, तत्र द्रव्यतो विवेकः कलत्रपुत्रमित्राणां स्वशरीरस्य चासारतया चिन्तनम्, भावतो विवेको ममत्ववर्जनम्, तपःसंयमाभ्यां कर्मनिर्जरा भवतीति विवेको जायते। परिज्ञाभेदमेवाह—यश्च पूर्वोत्थायी चारित्रान्तरायोदयात् पश्चान्निपाती स च्युतः=धर्मात् मनुष्यजन्मतो वा पतितः परिभ्रष्ट इत्यर्थः, हु= वितर्के; बालः=धर्मपतनजनितनरकनिगोदादिभ्रमणप्रतीकारज्ञानकलाविकलः गर्भा-

---

इस संसारमें कुशल तीर्थङ्करादि द्वारा परिज्ञाविवेक कहा गया है। उस के अनुसार प्रवृत्ति करनेवाला मुनि उसी भव से या परंपरा रूप से कुछेक भवों में कर्मों का विनाश कर मुक्ति का लाभ प्राप्त करता है। परिज्ञा दो प्रकार की कही है। १ ज्ञपरिज्ञा २ प्रत्याख्यानपरिज्ञा। परिज्ञा का विवेक भी द्रव्य और भावसे दो प्रकारका है। स्त्री, पुत्र, मित्र और अपने शरीर का असारतारूप से चिन्तवन करना द्रव्यविवेक है। ममत्व का त्याग करना यह भावविवेक है। अर्थात्–'तप और संयम से कर्मोंकी निर्जरा होती है' इस प्रकार का विवेक उत्पन्न होना भावविवेक है। "चुए हु बाले गब्भाइसु रज्जइ" यहां सूत्रकार–परिज्ञा के भेदों को कहते हैं—जो पूर्वोत्थायी है, परन्तु चारित्रान्तराय के उदय से पश्चान्निपाती है वह च्युत है–धर्म से अथवा मनुष्यजन्मसे पतित है–भ्रष्ट है। "हु" वितर्क में हैं। धर्मसे पतित होनेपर मेरा भ्रमण नरकनिगोदादिक गतियों

છે. આ માટે જે પ્રકારથી આ સંસારમાં કુશલ તીર્થંકરાદિદ્વારા પરિજ્ઞાવિવેક કહેવાયેલ છે તે અનુસાર પ્રવૃત્તિ કરવાવાળા મુનિ તે જ ભવમાં અથવા પરંપરા રૂપથી થોડાક ભવોમાં કર્મોનો વિનાશ કરી મુક્તિનો લાભ મેળવે છે. પરિજ્ઞા બે પ્રકારની કહી છે. ૧ જ્ઞ–પરિજ્ઞા, ૨ પ્રત્યાખ્યાન–પરિજ્ઞા. પરિજ્ઞાનો વિવેક પણ દ્રવ્ય અને ભાવથી બે પ્રકારનો છે. સ્ત્રી, પુત્ર, મિત્ર અને પોતાના શરીરની અસારતા રૂપથી ચિંતન કરવું દ્રવ્ય–વિવેક છે. મમત્વનો ત્યાગ કરવો ભાવવિવેક છે. તપ અને સંયમદ્વારા કર્મોની નિર્જરા થાય છે–આ પ્રકારનો વિવેક ઉત્પન્ન થવો ભાવ-વિવેક છે." "चुए हु बाले गब्भाइसु रज्जइ" અહિં સૂત્રકાર પરિજ્ઞાના ભેદો કહે છે. જે પૂર્વોત્થાયી છે, પરંતુ ચારિત્રના અંતરાયથી પશ્ચાન્નિપાતી છે, તે ચ્યુત છે–ધર્મથી અથવા મનુષ્યજન્મથી પતિત છે–ભ્રષ્ટ છે. "હુ" શબ્દ વિતર્કમાં છે. ધર્મથી પતિત થવાથી મારૂં ભ્રમણ નરક નિગોદાદિક ગતિઓમાં થશે, આ પ્રકારનું

दिषु=गर्भादिजन्यदुःखविशेषेषु, आदिपदेन जन्म-कौमार–यौवन–जरा–मरण–नरक-निगोदादिरूपदुःखेषु, यद्वा–गर्भादिषु=देहविकल्पेषु संसारविकल्पेषु वा रज्यते=आसक्तो भवति तत्रैव पच्यते दह्यते चेत्यर्थः । यद्वा 'रज्जइ' इत्यस्य 'रीयते'

में होगा–इस प्रकार के तत्प्रतीकार स्वरूप ज्ञान से जो रहित है वह बाल है । बाल जीव गर्भादिकों (गर्भादिजन्य दुःखविशेषों) में आसक्त होता है । वहीं पर पचता रहता है वहीं पर तड़पता रहता है । "गर्भादि" के आदि पद से जन्म, कुमार, यौवन, जरा, मरण, नरक और निगोदादिक के दुःखों का ग्रहण हुआ है इन दुःखों में अथवा शरीरके विकल्पों या संसारविकल्पों में आसक्त बना है । यद्वा–"रज्जइ" इसकी छाया "रीयते" भी होती है । जिसका यह भाव है कि बालजीव गर्भादिकों में बारंबार जन्म मरण धारण करता रहता है ।

भावार्थ—परिज्ञा के भेदों को प्रकट करने के लिये सूत्रकार कहते हैं कि जो चारित्र को ले कर भी पश्चात् चारित्रान्तराय के उदय से उससे पतित हो जाते हैं वे बालजीव हैं उनका छुटकारा इस संसार से नहीं होता –नरकनिगोदादिकके कष्टोंका और जन्म, बाल्यादिक अवस्था जन्य अनेक कष्टों का उन्हें समय २ पर सामना करना पड़ता है । चारित्र जैसी सुन्दर

તત્પ્રતીકાર સ્વરૂપ જ્ઞાનથી જે રહિત છે તે બાલ છે. બાલ જીવ ગર્ભાદિક (ગર્ભાદિજન્ય દુઃખ વિશેષો) માં આસક્ત હોય છે. અર્થાત્ તડપતો રહે છે. "ગર્ભાદિ"ના આદિ પદથી જન્મ, કુમાર, યૌવન, વૃદ્ધાવસ્થા, મરણ, નરક અને નિગોદાદિકનાં દુઃખોનું ગ્રહણ થયેલ છે. આ દુઃખોમાં અથવા શરીરના વિકલ્પોમાં અથવા સંસારવિકલ્પોમાં જ વાળ-જીવ આસક્ત બની રહે છે. અથવા–"रज्जइ" એની છાયા "रीयते" પણ બને છે. જેનો આ અર્થ છે કે–બાળ-જીવ ગર્ભાદિકમાં વારંવાર જન્મ મરણના ફેરા કરતો રહે છે.

ભાવાર્થ:—પરિજ્ઞાના ભેદને પ્રગટ કરવા માટે સૂત્રકાર કહે છે કે–ચારિત્ર ગ્રહણ કરવા છતાં પણ ચારિત્રાન્તરાયના ઉદયથી જે પતિત બની જાય છે એ બાલજીવ છે. એનો છુટકારો આ સંસારથી થતો નથી. નરક નિગોદાદિકના તેમજ જન્મ, બાલ્યાવસ્થા આદિના અનેક દુઃખોનો એણે સમય સમય પર સામનો કરવો પડે છે. ચારિત્ર જેવી સુંદર વસ્તુ હાથમાં આવવા છતાં જે તેને

इतिच्छाया; तेन गर्भादिषु रीयते=गच्छति । कुत्रेति कथितमिति प्रश्ने गुरुराह—' अस्मि 'न्नित्यादि, अस्मिन=आर्हतप्रवचने, एतत्=पूर्वकथितं वक्ष्यमाणं च प्रोच्यते=प्रकर्षेण कथ्यते तीर्थंकरगणधरैः, वक्ष्यमाणमाह—' रूपे '–इत्यादि, रूपे=रूपवद्विषये, वा–ग्रहणात् शब्दादौ गृद्धः, ' क्षणे ' क्षणनं=क्षणः=हिंसा तत्र, वा–शब्दादनृतचौर्यादौ, प्रवृत्तिं विदधाति । अत्र रूपग्रहणेन विषयेषु रूपस्य प्रधानतया, एवमास्रवेषु हिंसायाः प्राधान्येन च तयोर्ग्रहणादन्येषामपि शब्दादीनामास्रवाणां च ग्रहणं भवति । रूपवद्विषयलाभाय धर्मात्परिभ्रष्टो गर्भादौ रज्यते । इदमत्र प्रोच्यते इत्यनेन सम्बन्धः, यश्चैतद्विपरीताचारधारी स कीदृशो भवतीत्याह–' स ' इत्यादि,

---

वस्तु हाथमें आ जाने पर जो उसे खो देता है वह मनुष्य जन्म के लाभसे वंचित हो जाता है और उसे तिर्यञ्चादि गतिमें परिभ्रमण करना पडता है।

इसलिये इस आर्हत प्रवचनमें जीवों को समझाने के लिये ही यह पूर्वोक्त कथन तथा आगे कहा जानेवाला विषय प्रतिपादित किया है। वक्ष्यमाण विषयमें सूत्रकार यही कह रहे हैं कि भगवान् तीर्थंकर गणधरादिक का यह आदेश है कि जो मनुष्य या मुनि रूपयुक्त विषयों में और शब्दादिक पदार्थों में गृद्ध बना हुआ है वह, हिंसा में और शेष झूठ, चोरी आदिकों में प्रवृत्तिशील है। यहां विषयों में रूप की प्रधानता होने से रूप के ग्रहणसे शब्दादिकों का, आस्रवों में हिंसा की प्रधानता होने से उसके ग्रहण से अन्य झूठ, चोरी आदि अन्य आस्रवों का ग्रहण हो जाता है इस प्रकार " अस्मिंश्चैतत् प्रोच्यते " यहां तक इन पदों का संबंध है । जो पूर्वोक्त से विपरीत अपनी प्रवृत्ति रखता है

ખોઇ બેસે છે તે મનુષ્ય જન્મના લાભથી વંચિત જ બની જાય છે. અને તેણે તિર્યંચ આદિ ગતિમાં પરિભ્રમણ કરવું પડે છે.

આ માટે આ આર્હત પ્રવચનમાં જીવોને સમજાવવા માટે આ પૂર્વોક્ત કથન અને આગળ કહેવામાં આવનાર વિષય પ્રતિપાદિત કર્યો છે. વક્ષ્યમાણ વિષયમાં સૂત્રકાર એમ કહે છે કે–ભગવાન તીર્થંકર ગણધરાદિકનો આ આદેશ છે કે, જે મનુષ્ય અથવા મુનિ રૂપયુક્ત વિષયોમાં અને શબ્દાદિક પદાર્થોમાં લુબ્ધ બનેલ છે તે, હિંસા તેમજ ચોરી, જુઠ આદિમાં પ્રવૃત્તિશીલ છે. અહિં વિષયોમાં રૂપની પ્રધાનતા હોવાથી રૂપના ગ્રહણથી શબ્દાદિકોના, આસ્રવોમાં હિંસાની પ્રધાનતા હોવાથી હિંસાના ગ્રહણથી બીજાં ચોરી જુઠ આદિ અન્ય આસ્રવોનું ગ્રહણ થઈ જાય છે. આ પ્રકારે " अस्मिंश्चैतत् प्रोच्यते " અહિં સુધી આ પદોનો સંબંધ છે. જે પૂર્વોક્તથી વિપરીત પોતાની પ્રવૃત્તિ રાખે છે

सः=गर्भादिप्राप्तिनिदानविषयकषायाभिष्वङ्गज्ञानवान् धर्मादपतित आस्रवनिवृत्तः, हुरवधारणे, तेन स एव नान्यः मुनिः=संयतः, संविद्धपथः=अभ्यस्तरत्नत्रयो मुनिर्भवेत्, अपि च अन्यथा भिन्नप्रकारेण लोकं=विषयकषायमध्यमध्यासीनं हिंसादिपरायणमसंयतलोकम्, उत्प्रेक्षमाणः=बुध्यमानः, ततः किमित्याह-'इती'-त्यादि,

वह कैसा होता है? इसके समाधानार्थ सूत्रकार "स हु संविद्धपथो मुनिः" इस शेषांशका कथन करते हैं-गर्भादिककी प्राप्ति के कारणभूत जो विषयकषाय हैं उनमें जो अनभिलाषी है, जो यह समझ चुका है इस जीवका गर्भादिक में पतन विषयकषायों के सेवन से ही होता है वह धर्म से अपतित होता हुआ कर्मास्रवों से जुदा रहता है। यहां "हु" अवधारण अर्थ में है। इससे यह अभिप्राय निकलता है; कि जो विषयादिकसे निवृत्त है वही धर्म से अपतित और आस्रवों से रहित है, अन्य नहीं; वही वास्तविक मुनि है, अन्य नहीं; वही संविद्धपथ है—अभ्यस्त रत्नत्रयवाला है और अभ्यस्त रत्नत्रयवाला ही सच्चा मुनि हो सकता है, अन्य नहीं; यही मुनिरत्न असंयत लोकको विषयकषायोंके मध्यमें पड़ा हुआ जानकर तथा हिंसादिक पापों से अनिवृत्त समझ कर उससे निवृत्त हो मन, वचन और काय से प्राणियों की हिंसा से निवृत्त हो जाता है, दूसरों को भी इस कार्य में प्रवृत्त नहीं करता है और न इस कार्य में लगे हुए व्यक्तियों की वह अनुमोदना ही करता है; क्यों

એ કેવો હોય છે? આના સમાધાનમાં સૂત્રકાર "से हु संविद्धपहो मुणी" આ શેષાંશનું કથન કરતાં કહે છે કે – ગર્ભાદિકની પ્રાપ્તિના કારણરૂપ જે વિષય કષાય છે એમાં જે અભિલાષ વગરનો બની આ સમજી ચુકેલ છે કે આ જીવનું વિષયાદિકના સેવનથી જ ગર્ભાદિકમાં પતન થતું રહે છે અને એ ધર્મથી પતિત ન બનતાં કર્માસ્રવોથી જુદો રહે છે. અહિં "हु" શબ્દ અવધારણ અર્થમાં છે. આથી એ અભિપ્રાય નિકળે છે કે જે વિષયાદિકથી નિવૃત્ત છે એ ધર્મથી અપતિત અને આસ્રવોથી રહિત છે, બીજા નહિ. એ જ વાસ્તવિક મુનિ છે, બીજા નહિ. એ જ સાચા પથ ઉપર છે. અભ્યસ્ત–રત્નત્રયવાળા છે. અભ્યસ્ત–રત્નત્રયવાળા જ સાચા મુનિ બની શકે છે, બીજા નહિ. આવા મુનિરત્ન અસંયત લોકોને વિષયકષાયોના મધ્યમાં પડેલા જોઈ અને હિંસાદિક પાપોથી અનિવૃત્ત જોઈને એનાથી નિવૃત્ત થઈ મન, વચન અને કાયાથી પ્રાણીઓની હિંસાથી નિવૃત્ત બની જાય છે અને બીજાઓને આવા કાર્યોથી રોકે છે, કેમ કે એ જાણે

इति=पूर्वोक्तकारणैः यद् बद्धं कर्म=ज्ञानावरणीयादिकं तत्कारणं च सावद्यव्यापाररूपं सर्वशः=सर्वप्रकारेण परिज्ञाय=द्विविधपरिज्ञया ज्ञात्वा परिहृत्य च सः=कर्मपरिज्ञायी न हिनस्ति=मनोवाक्काययोगैः प्राणिनो न हन्ति, उपलक्षणान्न घातयति, नानुमोदयतीत्यर्थोऽपि। अपि च किं करोतीत्याह-संयमयति-पचनपाचनादिनवकोटिभ्यः स्वात्मानं निवर्तयति। यद्वा-संयमयति=सप्तदशविधं संयमं करोति, किन्तु नो प्रगल्भते=न धाष्टर्यं विदधाति-' किं संयमक्रियया प्रतिलेखनादिक्रियया च' इत्यादिरूपमौद्धत्यं नाचरति। उपलक्षणतया स न क्रुध्यति, नापि जातिकुलादिमानमावहति,

कि वह जानता है कि हिंसादिक पापों से अथवा पूर्वोक्त कारणों से जीवों के ज्ञानावरणीयादिक कर्मों का बंध होता है, इसलिये ज्ञानावरणीयादिक कर्मों को तथा उनके कारणरूप सावद्य व्यापारों को वह भली प्रकार ज्ञ-परिज्ञासे जान कर प्रत्याख्यान परिज्ञा से उनका त्याग करता है। इस प्रकार वह कर्मपरिज्ञायी मुनि मन, वचन और काय से तथा कृत कारित और अनुमोदनसे उन सबका परित्यागी होता है। तथा -पचनपाचनादिकसे अपने आपको नवकोटिसे विशुद्ध रखता है, अथवा १७ प्रकार के संयम का आचरण करता है, इतने पर भी उसके अन्तःकरणमें मानकी मात्रा भी नहीं आती है, अथवा-संयम क्रिया या प्रतिलेखनादि क्रिया के आचरण से क्या हो सकता है ? इस प्रकार की वह धृष्टता नहीं करता है। उपलक्षण से यह यह बात भी जानी जाती है कि वह मुनि इतना सब कुछ करता हुआ भी न कभी क्रोध करता है और न कुलादिक का गर्व ही करता है, न कहीं लुभाता है और न किसी की

છે કે-હિંસાદિક પાપોથી અથવા પૂર્વોકત કારણોથી જીવોને જ્ઞાનાવરણીયાદિક કર્મોનો બંધ થાય છે. આ માટે જ્ઞાનાવરણીયાદિક કર્મોને, તથા એના કારણરૂપ સાવદ્ય વ્યાપારોને એ સારી રીતે જ્ઞ-પરિજ્ઞાથી જાણી પ્રત્યાખ્યાન-પરિજ્ઞાથી એનો ત્યાગ કરે છે. આ પ્રકારે એ કર્મપરિજ્ઞાયી મુનિ મન, વચન અને કાયાથી તેમજ કૃત, કારિત અને અનુમોદનથી આ બધાનો ત્યાગ કરનાર હોય છે, તેમજ પચન પાચનાદિકથી પોતાની જાતને નવ કોટિથી વિશુદ્ધ રાખે છે. અથવા ૧૭ સત્તર પ્રકારના સંયમનું આચરણ કરે છે. આમ છતાં એના દિલમાં માનનો લેશમાત્ર મોહ જાગતો નથી, અથવા સંયમક્રિયા અથવા પ્રતિલેખનાદિ ક્રિયાના આચરણથી શું થઈ શકે છે ? આવી ધૃષ્ટતા પણ તેના મનમાં જાગતી નથી. ઉપલક્ષણથી એ વાત પણ માનવામાં આવી છે કે એ મુનિ આટલું કરવા છતાં પણ ન તો ક્યારે ક્રોધ કરે છે કે ન તો જાતિ અને કુળ આદિનો ગર્વ કરે છે. ન તો ક્યાંય

न लुभ्यति, न प्रतारणां करोति, इत्याद्यपि ज्ञेयम् , असंयमपरायणोऽकर्तव्याचरणे मनागपि न त्रपत इत्याशयः। मुनिः किमवधार्य प्रगल्भादिकं न विदधीतेत्याह— 'उत्प्रेक्षमाण' इत्यादि, प्रत्येकम्=एकैकस्य प्राणिनः सातं=सुखमसातं च उत्प्रे-

प्रतारणा (ठगना) ही करता है। परन्तु जो असंयमसेवी हैं-असंयम में परायण हैं, वे इन अकर्तव्यों के करने में जरा भी संकोच नहीं करते हैं। मुनिजन धृष्टता आदि जो नहीं करते हैं उसका कारण यह है कि वे विचारते हैं कि इस संसारमें प्रत्येक प्राणी सुखाभिलाषी है।

भावार्थः—उद्धतता के करनेसे जीवों को संक्लेश होता है, संक्लेश दुःख का एक प्रकार है। मुनिजन ऐसा कोई सा भी व्यवहार नहीं कर सकते हैं जो अन्य जीवों को दुःखकारक हो। उनकी सदा यही धारणा होती है कि दुनियां के जितने भी जीव हैं वे सब मेरे तुल्य सुखाभिलाषी हैं। जिस प्रकार अप्रतिकूल आचरण से मुझे कष्ट का अनुभव होता है उसी प्रकार से मेरे भी अनिष्ट आचरण से इन्हें कष्ट का अनुभव होगा; अतः वह समस्त जीवों में आत्मोपमता (आत्मतुल्यता) मानता है। इसलिये वह किसी भी प्राणी का स्वप्न में भी घात करने का विचार तक नहीं करता है। जो अन्य जीवों के घात करने तक के विचार को निन्दित समझता है वह भला-दूसरों के लिये उस अनिष्ट

લોભાય છે, અથવા ન તો કોઈને ઠગે છે, પરંતુ જે અસંયમસેવી છે—અસંયમમાં પરાયણ છે તેવો આવાં અકર્તવ્યો કરવામાં જરા પણ સંકોચ કરતો નથી. મુનિજન ધૃષ્ટતા આદિ નથી કરતા તેનું કારણ એ છે કે તેઓ એ વિચારતા હોય છે કે આ સંસારના પ્રત્યેક પ્રાણી સુખાભિલાષી છે.

ભાવાર્થ:—ઉદ્ધતતા કરવાથી જીવોને સંકલેશ થાય છે, સંકલેશ એ દુઃખનો એક પ્રકાર છે, મુનિજન આવો કોઈ પણ વ્યવહાર કરી શકતા નથી કે જે અન્ય જીવોને દુઃખકારક હોય. એની સદા એક જ ધારણા રહે છે કે દુનિયાના જેટલા પણ જીવ છે એ બધા મારા સમાન સુખાભિલાષી છે. જે પ્રકારે અપ્રતિકૂલ આચરણથી મને દુઃખનો અનુભવ થાય છે, આ જ પ્રકારે મારા અનિષ્ટ આચરણથી એમને પણ કષ્ટ થવાનું. એટલે તે સમસ્ત જીવોમાં આત્મોપમતા (આત્મતુલ્યતા) માનતા હોય છે. આ કારણે તેઓ કોઇ પણ પ્રાણીનો સ્વપ્નમાં પણ ઘાત કરવાનો વિચાર સરખોએ કરતા નથી. જે અન્ય જીવોનો ઘાત કરવાના વિચારને નિન્દિત સમજે છે એવા બીજાઓને આવી અનિષ્ટ ક્રિયા કરવામાં

क्रिया करने में प्रवृत्त होने की प्रेरणा या उपदेश भी कैसे दे सकता है। जब यह बात है तो फिर जीवोंका घात करनेवाले प्राणियों के कृत्यों की वह अनुमोदना भी नहीं कर सकता है। इसीलिये वह हिंसादिक पापों से नवकोटि से निवृत्त होता है। यह बात " उत्प्रेक्षमाणः प्रत्येकं सातम् " इस सूत्रांशसे ध्वनित होती है। अथवा इसका यह भी आशय निकलता है कि मुनि प्रत्येक संसारी जीवों के सुख और दुःख जानते हैं, अर्थात् जिन जीवों के जितना सुख और दुःख उदयमें होगा-उतना उन्हें भोगना ही पडेगा, उनके उसमें न तो कोई कमी करनेवाला है और न कोई वृद्धि करनेवाला है-इस प्रकार से वे समस्त जीवों के सुख और दुःख के ज्ञाता हैं, तो भी वे ऐसा समझ कर अपनी प्रवृत्ति को स्वच्छन्द नहीं बनाते। वे ऐसा विचार नहीं करते हैं कि मेरी अच्छी प्रवृत्ति से किसी भी जीव के सुख दुःखमें परिवर्तन तो हो नहीं सकता, फिर क्या जरूरत है कि मैं अपनी प्रवृत्ति को संयमित रखूं, सुख दुःख का भोग प्रत्येक जीवों के कर्माधीन है, मैं अपनी शुभ प्रवृत्ति से किसी भी जीव के कर्मोदय को थोडे ही टाल सकता हूं। इस प्रकार का विचार करना मुनिजन के लिये योग्य नहीं है ऐसा वे जानते हैं। यद्यपि कोई भी जीव किसी भी जीव के कर्मोदय को टाल नहीं सकता है। जिस

પ્રવૃત્ત થવાની પ્રેરણા કે ઉપદેશ પણ કઇ રીતે દઇ શકે ? જ્યારે આવી વાત છે તો પછી જીવોનો ઘાત કરવાવાળા પ્રાણીઓના કૃત્યોની તે અનુમોદના પણ કરી શકતા નથી, એટલા માટે તેઓ હિંસાદિક પાપોથી નવકોટીથી નિવૃત્ત થાય છે. આ વાત " उत्प्रेक्षमाणः प्रत्येकं सातम् " આ સૂત્રાંશથી ધ્વનિત થાય છે, અથવા એનો એ પણ અર્થ નિકળે છે કે મુનિ પ્રત્યેક સંસારી જીવોનાં સુખ અને દુઃખ જાણે છે. અર્થાત્ જે જીવોનાં જેટલાં સુખ અને દુઃખનો ઉદય આવશે એટલું એણે ભોગવવું જ પડશે. તેને ન કોઇ ઓછું કરી શકે છે ન કોઈ વધારી શકે છે. આ પ્રકારથી તેઓ સમસ્ત જીવોના સુખ અને દુઃખના જાણકાર હોય છે, તો પણ તેઓ એ સમજીને પોતાની પ્રવૃત્તિને સ્વચ્છંદી બનાવતા નથી. તેઓ એવો પણ વિચાર કરતા નથી કે મારી સારી પ્રવૃત્તિથી કોઇ પણ જીવના સુખ દુઃખમાં પરિવર્તન થઈ શકતું નથી; તો પછી હું મારી પ્રવૃત્તિને આવા કામોમાં શું કરવા લગાડું ? સુખ દુઃખનું ભોગવવું એ પ્રત્યેક જીવોને કર્માધીન છે. હું મારી સારી પ્રવૃત્તિથી કોઈ પણ જીવનો કર્મોદય થોડોજ ટાળી શકું છું ? આ પ્રકારનો વિચાર કરવો મુનિજન માટે યોગ્ય નથી તેવું તે જાણે છે. જો કે કોઈ પણ જીવ કોઈ પણ જીવના કર્મોદયને ટાળી શકતો નથી જે જીવનું જે

क्षमाणः=जानानः, प्रगल्भादिकं न विदधीत। अत्र आत्मौपम्येन परं न हन्यान्न घातयेन्नानुमोदयेदित्यर्थोऽपि व्यञ्जितः। क्वचिच्चान्यस्य सुखदुःखे अन्यस्यापि भवतः, यथा–पुत्रकलत्रादिसुखदुःखाभ्यां पितृ–पत्यादेः सुखदुःखे जायेते, परन्तु तत्र पुत्रकलत्रयोः शारीरे मानसे अपि सुखदुःखे, अपरस्य च मानसे एव सुखदुःखे इति विवेकः।

जीव के जो होनहार है वह हो कर ही रहेगा, इसमें थोड़ा सा भी संदेह नहीं, हमारे उनके प्रति शुभ करने से उनका शुभ नहीं हो सकता है, यह निश्चित सिद्धान्त है। तो भी मुनिजन सब जीवों प्रति शुभ प्रवृत्ति ही करते हैं, किसी भी जीवमात्रके प्रति कष्टकारक प्रवृत्ति नहीं करते हैं। उसका कारण यही है कि वे समस्त जीवों को अपने समान देखते हैं, जानते हैं। वे यह अच्छी तरहसे अनुभव करते हैं कि जिस प्रकार हमें दूसरों की अशुभ प्रवृत्ति से कष्ट होता है उसी प्रकार हमारी अशुभ प्रवृत्ति से भी दूसरे जीवों को कष्ट होगा। बस यही सोच समझ कर वे अपने आचार विचार को पवित्र और दूसरों को हितकारी हो ऐसा ही करते हैं। यह माना कि वे दूसरों के कर्मोंको टाल नहीं सकते, परन्तु इतना तो कर सकते हैं कि उनके अशुभ में निमित्त न बन कर अशुभ कर्मोपार्जन से बच सकते हैं। इसीलिये मुनि समस्त जीवों को अपने समान जान कर उनकी न स्वयं हिंसा करते हैं, न दूसरोंसे कराते हैं और न हिंसा करनेवाले की अनुमोदना ही करते हैं।

થનાર હોય છે તે થઈને જ રહે છે, આમાં થોડો પણ સન્દેહ નથી. મારા એના પ્રત્યે શુભ કરવાના પ્રયાસથી પણ એનું શુભ થઈ શકવાનું નથી આ નિશ્ચિત સિદ્ધાંત છે, તો પણ મુનિજન આ બધા જીવો તરફ શુભ પ્રવૃત્તિ જ કરે છે. કોઈ પણ જીવમાત્ર તરફ કષ્ટકારક પ્રવૃત્તિ કરતા નથી. એનું કારણ એ છે કે તેઓ સમસ્ત જીવોને પોતાની માફક જ જુએ છે–જાણે છે, તેઓ સારી રીતે અનુભવ કરે છે કે જે પ્રકારે બીજાઓની અશુભ પ્રવૃત્તિથી મને દુઃખ થાય છે એ જ રીતે મારી અશુભ પ્રવૃત્તિથી બીજાને દુઃખ થશે, આ સમજી વિચારી તેઓ પોતાના આચાર–વિચારો પવિત્ર તથા બીજાઓને હિતકારી બને તેમ જ કરે છે. એ માને છે કે તેઓ બીજાના કર્મોને ટાળી શકતા નથી, પરંતુ એટલું તો કરી શકે છે કે તેના અશુભ કર્મોપાર્જનથી બચી શકે છે. આ માટે મુનિ સમસ્ત જીવોને પોતાના સમાન જાણી એની ન પોતે હિંસા કરે છે ન બીજાથી કરાવે છે કે ન તો હિંસા કરવાવાળાને અનુમોદન આપે છે.

क्वचिच्चान्यस्य सुखदुःखे परेण तद्विपरीतरूपेणानुभूयेते, यथा शत्रुप्रभृतेः सुखेनाऽपरो दुःखं, दुःखेन च सुखमनुभवति, तत्रापि चैकस्य शारीरे मानसे अपि, परस्य मानसे एवेति हृदयम् ।

मध्यस्थभावापन्नस्य परप्राणिसुखेन सुखं दुःखेन च दुःखं जायते "समः शत्रौ च मित्रे च" इत्यत्रोक्तत्वादिति तत्त्वम्, तेन किं प्रकृते ? इत्याह— 'वर्णादेशी '-त्यादि, सर्वलोके=ऊर्ध्वादिलोके वर्णादेशी=वर्ण्यते=प्रशस्यते येन स वर्णः=साधुकारस्तमादेष्टुं शीलं यस्य स वर्णादेशी=यशःकीर्त्यभिलाषी, यद्वा

संसारी जीवों में यह प्रवृत्ति देखी जाती है कि वे अपने स्वजनको इष्ट पदार्थों की प्राप्ति होने में अपने को सुखी तथा अप्राप्ति होने में दुःखी मानते हैं; जैसे पुत्र कलत्रादिकों के शारीरिक एवं मानसिक सुखदुःख में सुखी दुःखी हुआ करते हैं। कहीं इससे विपरीत भी प्रवृत्ति देखी जाती है; जैसे–शत्रुके सुखी होने पर किसी को मानसिक कष्ट होता है और उसके दुःखित होने से उसे मानसिक सुख होता है। परन्तु जो माध्यस्थ्यप्रवृत्तिसंपन्न होते हैं उन्हें समस्त प्राणियोंको चाहे वह अपना हित हो चाहे वह शत्रु हो उसे–सुखी देख कर सुख होता है और उसके दुःख से उन्हें दुःख होता है, उनमें पक्षपात की वृत्ति नहीं होती है। क्यों कि "समः शत्रौ च मित्रे च" समभावी सदा शत्रु और मित्रमें समभाव रखते हैं। इससे प्रस्तुत प्रकरण में यह बात आई कि मुनि-जन जो सदा समभावी होते हैं वे समस्त लोक–उर्ध्व, मध्य और अधःलोक में वर्णादेशी होते हैं। यश कीर्त्ति, स्वपर–कल्याण तथा

સંસારી જીવોમાં આ પ્રવૃત્તિ દેખાઇ આવે છે કે તેઓ પોતાના સ્વજનને ઇષ્ટ પદાર્થોની પ્રાપ્તિ થવામાં પોતાને સુખી તથા અપ્રાપ્તિ થવામાં દુઃખી માને છે. જેમ કે પુત્ર કલત્રાદિનાં શારીરિક અને માનસિક સુખ દુઃખમાં સુખી દુઃખી બન્યા કરે છે. કોઈ સ્થળે આનાથી વિપરીત પ્રવૃત્તિ પણ દેખવામાં આવે છે, જેમકે શત્રુના સુખી થવાથી કોઈને માનસિક કષ્ટ થાય છે અને તેના દુઃખી થવાથી તેને માનસિક સુખ થાય છે. પરંતુ જે માધ્યસ્થ્યવૃત્તિસંપન્ન છે તેને સમસ્ત પ્રાણીઓને–ભલે તે પોતાનો શત્રુ હોય કે હિતેચ્છુ હોય એને–સુખી દેખી સુખ થાય છે અને તેના દુઃખથી દુઃખ થાય છે, તેનામાં પક્ષપાતની દૃષ્ટિ હોતી નથી; કારણ કે "समः शत्रौ च मित्रे च"—સમભાવી સદા શત્રુ અને મિત્રમાં સમભાવ રાખે છે. આથી ચાલુ પ્રકરણમાં આ વાત આવી કે મુનિજન સદા સમ-ભાવી હોય છે તે સમસ્ત લોક–ઉર્ધ્વ, મધ્ય અને અધઃ લોકમાં વર્ણાદેશી હોય છે. યશ,

वर्णः=शुभं तदादेशी=स्वपरकल्याणाभिलाषी, अथवा-'वर्णादेशी' वर्णः शरीरकान्तिः, तदादेशी=तदभिकाङ्क्षी, अपि च सः 'एकप्रमुखः' एकस्मिन् मोक्षे संयमे वा प्रगतं मुखं यस्य वा एकप्रमुखः=मोक्षे तत्कारणे च निवेशितान्तःकरणः, एवं विदिक्प्रतीर्णः=मोक्ष-तत्साधनाभिमुखी प्रवृत्तिर्दिक्, तद्विपरीता विदिक् सावद्याचरणरूपा संसाराभिमुखी प्रवृत्तिः तां प्रतीर्णः प्र=प्रकर्षेण तीर्णः=रागद्वेषमूलकागाध-

---

शरीरकान्तिकी इच्छा रखनेवाले को वर्णादेशी कहते हैं। अर्थात्-समस्त जीवों को अपने समान समझने की कामनावाला वर्णादेशी है। मुनिजन समस्त जीवों को आत्मसदृश जानते हैं। तथा मुनिजन-'एगप्पमुहे' एकप्रमुख होते हैं, एक केवल मोक्षमें या मोक्षके कारण संयममें उनका अन्तःकरण लगा हुवा रहता है। वे विदिक्प्रतीर्ण होते हैं, मोक्ष अथवा उनके साधनों की ओर झुकी हुई प्रवृत्तिका नाम दिक् है उससे विपरीत प्रवृत्ति विदिक् है, सावद्य आचरणरूप संसाराभिमुखी विदिक्प्रवृत्ति को जिन्होंने अच्छी तरहसे पार कर दिया है, छोड़ दिया है, रागद्वेष जिसके मूल हैं ऐसे अगाध संसाररूपी पारावारसे जो पार हो चुके हैं वे विदिक्प्रतीर्ण हैं। बाहिरी पदार्थ पुत्र-कलत्रादिकों में एवं आभ्यन्तर में क्रोधादिकों में उन्हें सदा निर्वेद (वैराग्य) होता है। मुनिजन ऐसा ही अपना आचार विचार रखते हैं कि जिससे संसारावस्था के स्त्रीपुत्रादिकों में ममता न हो सके तथा क्रोधादिक के कारण उपस्थित होने पर

કીર્તિ, સ્વપર કલ્યાણ તથા શરીર કાન્તિની ઇચ્છા રાખવાવાળાને વર્ણાદેશી કહે છે, અર્થાત્- સમસ્ત જીવોને પોતાના સમાન સમજવાની કામનાવાળા વર્ણાદેશી છે. મુનિજન સમસ્ત જીવોને એક આત્મારૂપ માને છે અને મુનિજન "एगप्पमुहे" એકપ્રમુખ હોય છે. એક કેવળ મોક્ષમાં અથવા મોક્ષના કારણ સંયમમાં તેનું અંતઃકરણ લાગ્યું રહે છે, તેઓ વિદિક્પ્રતીર્ણ હોય છે. મોક્ષ અથવા તેનાં સાધનોની તરફ ઢળેલી પ્રવૃત્તિનું નામ દિક્ છે, એનાથી વિપરીત પ્રવૃત્તિ વિદિક્ છે. સાવદ્ય આચરણરૂપ સંસારાભિમુખી વિદિક્પ્રવૃત્તિને જેને ભલીભાંતિ પોતે પાર કરેલ છે-છોડી દીધી છે. રાગદ્વેષ જેના મૂળ છે એવા અગાધ સંસારરૂપી સાગરને જેઓ તરી ચૂકયા છે તેઓ વિદિક્પ્રતીર્ણ છે. બાહ્ય પદાર્થ પુત્ર કલત્રાદિકમાં તેમજ આભ્યન્તરમાં ક્રોધાદિકમાં જેમને સદા વૈરાગ્ય થાય છે. મુનિજન એવા જ પોતાના આચાર વિચાર રાખે છે કે જેનાથી સંસાર અવસ્થાના સ્ત્રી પુત્રાદિકમાં મમતા ન થઇ શકે તેમ જ ક્રોધાદિકના

संसारपारावारतीर्णः, एवं 'निर्विण्णाचारी' निर्विण्णः निर्वेदो बाह्ये पुत्रकलत्रादौ आभ्यन्तरे क्रोधादौ च तिरस्कारः, परित्याग इत्यर्थः, तद्वान्=निर्विण्णः=बाह्याभ्यन्तराभिष्वङ्गरहितः,तस्य चारः=आचरणमनुष्ठानमिति यावत्,सोऽस्यास्तीति निर्विण्णाचारी=तीर्थंकरगणधराद्युपदिष्टमार्गानुष्ठायी, किञ्च 'प्रजासु अरतः' प्रजायन्त इति प्रजाः=जीवास्तासु अरतः=अनासक्तः समारम्भनिवृत्त इत्यर्थः, तत्र ममत्वविवर्जितो वा, यद्वा–प्रकर्षेण जनयन्ति पुत्रादिकं यास्ताः प्रजा योषितस्तासु अरतः अनासक्तः, स्त्रियो हि पुरुषं स्वासक्तं नानाप्रकारेण नर्तयन्ति, उक्तञ्च—

भी उन्हें क्रोधी न होना पडे। इस प्रकार बाह्य और अन्तरंग परिग्रहसे रहित आचरण इनका होता है, इसीका नाम निर्विण्णाचारी है। अर्थात् तीर्थङ्कर एवं गणधरादिकोंने जिस प्रकार से मुनिमार्गका उपदेश दिया है उसीके अनुसार वे उस मार्गके अनुष्ठायक होते हैं। "प्रजासु अरतः" प्रजा शब्दका अर्थ जो पैदा होते हैं ऐसे जीव है। उनमें अरत–अनासक्त मुनिजन होते हैं, ऐसा समारंभ वे नहीं करते कि जिससे जीवोंका अकल्याण, या घातादिक हों। जीवों में ममत्वरहित होना भी प्रजामें अरत होना है। अथवा पुत्रादिकों को उत्पन्न करनेवाली स्त्रियों का नाम भी प्रजा है। मुनिजन स्त्रीवर्ग में आसक्तिसे रिक्त होते हैं, कारण कि वे जानते हैं कि स्त्रियां अपने में आसक्त पुरुष को अनेक प्रकार के नाच नचाती हैं, कहा भी है—

કારણ ઉપસ્થિત થતાં પણ તેને ક્રોધી ન થવું પડે. આ પ્રકારે બાહ્ય અને અન્તરંગ પરિગ્રહથી રહિત આચરણ તેમનું હોય છે. આનું જ નામ નિર્વિણ્ણાચારી છે. અર્થાત્—તીર્થંકર અને ગણધરાદિકોએ જે પ્રકારથી મુનિમાર્ગનો ઉપદેશ આપ્યો છે એ અનુસાર તે માર્ગ પર ચાલનારા તેઓ હોય છે. "प्रजासु अरतः" પ્રજા શબ્દનો અર્થ જે પેદા થાય છે એવો જે જીવ તે છે. એમાં અરત–અનાસક્ત મુનિજન હોય છે. એવો સમારંભ એ નથી કરતા કે જેનાથી જીવોનું અકલ્યાણ થાય અથવા ઘાત આદિ હોય. જીવોમાં મમત્વરહિત રહેવું એ પણ પ્રજામાં અરત થવું છે. અથવા પુત્રાદિકોને ઉત્પન્ન કરવાવાળી સ્ત્રીઓનું નામ પણ પ્રજા છે. મુનિજન સ્ત્રીવર્ગની આસક્તિથી વિરક્ત હોય છે. કારણ કે તેઓ જાણતા હોય છે કે સ્ત્રીઓ પોતાનામાં આસક્ત થનાર પુરૂષને અનેક પ્રકારના નાચ નચાવે છે. કહ્યું પણ છે.

" एता हसन्ति च रुदन्ति च वित्तहेतो–र्विश्वासयन्ति च नरं न च विश्वसन्ति ।
तस्मान्नरेण कुलशीलसमन्वितेन, नार्यः श्मशानघटिका इव वर्जनीयाः ॥ १ ॥
आनन्दयन्ति रमयन्ति विडम्बयन्ति, निर्भत्सयन्ति रमयन्ति विषादयन्ति ।
एताः प्रविश्य सदयं हृदयं नराणां, किं नाम वामनयना न समाचरन्ति " ॥२॥इति।

" एता हसन्ति च रुदन्ति च वित्तहेतोः,
विश्वासयन्ति च नरं न च विश्वसन्ति ।
तस्मान्नरेण कुल–शीलसमन्वितेन,
नार्यः स्मशानघटिका इव वर्जनीयाः ॥ १ ॥
आनन्दयन्ति मदयन्ति विडम्बयन्ति,
निर्भत्सयन्ति रमयन्ति विषादयन्ति ।
एताः प्रविश्य सदयं हृदयं नराणां,
किं नाम वामनयना न समाचरन्ति "॥ २ ॥

ये धनके लिये हंसती और रोती रहती हैं । दूसरों को विश्वास करा देती हैं पर स्वयं दूसरोंका विश्वास नहीं करतीं । इसलिये कुलीन पुरुषों का कर्तव्य है कि वे इनका श्मशानके घटके समान परिहार कर देवें।

ये पुरुषों के चित्तमें प्रवेश कर उसे कभी आनन्दित करती हैं तो कभी उसे मदोन्मत्त बना देती हैं। कभी उसकी नाना प्रकारसे विडम्बना करती हैं, तो कभी विचारे का अपमान करती हैं। कभी उससे रमती हैं तो कभी कभी उसे विषादयुक्त कर देती हैं । ऐसी कौनसी क्रियाएं बचती हैं जो ये न करती हों।

" एता हसन्ति च रुदन्ति च वित्तहेतोः, विश्वासयन्ति च नरं न च विश्वसन्ति ।
तस्मान्नरेण कुलशीलसमन्वितेन, नार्यः श्मशानघटिका इव वर्जनीयाः " ॥ १ ॥
" आनन्दयन्ति मदयन्ति विडम्बयन्ति, निर्भर्त्सयन्ति रमयन्ति विषादयन्ति ।
एताः प्रविश्य सदयं हृदयं नराणां, किं नाम वामनयना न समाचरन्ति "॥२॥

એ ધનને માટે હસતી અને રોતી રહે છે. બીજાને પોતાનો વિશ્વાસ કરાવી દે છે પરંતુ પોતે બીજાનો વિશ્વાસ કરતી નથી. આ માટે કુલીન પુરૂષોનું એ કર્તવ્ય છે કે તેઓ એનો શ્મશાનની ઘટીની માફક પરિહાર કરી દે. એ પુરૂષોના ચિત્તમાં પ્રવેશ કરી ક્યારેક આનંદિત બનાવે છે તો ક્યારેક મદોન્મત બનાવી દે છે. ક્યારેક એની નાના પ્રકારે મશ્કરી કરે છે તો ક્યારેક બીચારાનું અપમાન કરે છે. ક્યારેક રમાડે છે તો ક્યારેક ખિન્ન બનાવી દે છે. એવી કોઈ ક્રિયા નથી કે જે એ ન કરતી હોય.

एतादृशः कंचन=कमपि प्राणातिपातादिसावद्यव्यापारं नारभते=न कुरुते, वर्णादेशीत्यादिसकलविशेषणैर्मुनेः सकलाचारपरिशीलनशीलत्वमवगम्यत इति हृदयम् ॥ सू० ४ ॥

यः पुनरेतादृशः स कीदृशो भवतीति दर्शयति-' से वसुमं ' इत्यादि ।

मूलम्—से वसुमं सव्वं समन्नागयपन्नाणेणं अप्पाणेणं अकरणिज्जं पावकम्मं तं नो अन्नेसी, जं सम्मंति पासह तं मोणंति पासह, जं मोणंति पासह तं सम्मंति पासह, न इमं सक्कं सिढिलेहिं अद्दिज्जमाणेहिं गुणासाएहिं वंकसमायारेहिं पमत्तेहिं अगारमावसंतेहिं, मुणी मोणं समायाए धुणे कम्मसरीरगं, पंतं लूहं सेवंति वीरा सम्मत्तदंसिणो, एस ओहंतरे मुणी तिण्णे मुत्ते विरए वियाहिए-त्तिबेमि ॥ सू० ५ ॥

छाया—स वसुमान् सर्वसमन्वागतप्रज्ञानेनात्मनाऽकरणीयं पापं कर्म तन्नो अन्वेषी, यत्सम्यक् पश्यत तन्मौनमिति पश्यत, यन्मौनं पश्यत तत्सम्यगिति पश्यत; नैतच्छक्यं शिथिलैरार्द्र्यमाणैर्गुणास्वादैर्वक्रसमाचारैः प्रमत्तैरगारमावसद्भिः, मुनिर्मौनं समादाय धुनीयात् कर्मशरीरकं, प्रान्तं रूक्षं सेवन्ते वीराः सम्यक्त्वदर्शिनः, एष ओघन्तरो मुनिः, तीर्णो मुक्तो विरतो व्याख्यात इति ब्रवीमि ॥ सू० ५ ॥

इस प्रकारके इन समस्त विशेषणोंवाले वे मुनिजन " नारभते कंचन " कोई भी सावद्य व्यापार नहीं करते हैं । इन वर्णादेशी आदि समस्त विशेषणों से मुनि में अपने सकल आचारों की परिशीलनशीलनता जानी जाती है ॥सू० ४॥

जो मुनि ऐसा होता है वह कैसा होता है ?-इस बात को कहते हैं ' से वसुमं ' इत्यादि—

આ પૂર્વોકત પ્રકારનાં સમસ્ત વિશેષણવાળા એ મુનિજન " नारभते कंचन " કોઈપણ સાવદ્ય વ્યાપાર કરતા નથી. વર્ણાદેશી આદિ સમસ્ત વિશેષણોથી મુનિજનની સકલ આચારના પરિશીલનતા જાણી શકાય છે.

જે મુનિ આવા હોય છે તે કેવા હોય છે? આ વાતમાં સૂત્રકાર કહે છે —' से वसुमं ' ઈત્યાદિ.

टीका—'स वसुमान्'-इत्यादि, वसु=द्रव्यं भावतः संयमरूपं, तदस्यास्तीति वसुमान्=तपः संयमादिमान् निवृत्तपचनपाचनादिसावद्यव्यापार इत्यर्थः, स मुनिः सर्वसमन्वागतप्रज्ञानेन सम्=सम्यक् अनु=साम्यादागतं=प्राप्तं=समन्वागतं सर्वं च तत्समन्वागतं सर्वसमन्वागतं, तादृशं प्रज्ञानं पदार्थसार्थाविर्भावकमाचार्यपरम्पराऽऽगतं यस्य स सर्वसमन्वागतप्रज्ञानस्तेन सर्वसमन्वागतप्रज्ञानेन-तादृश-

---

वसु शब्दका अर्थ द्रव्य है। द्रव्य दो प्रकार का है। १-द्रव्यद्रव्य (बाह्य द्रव्य), २-भावद्रव्य। द्रव्यद्रव्य हिरण्य सुवर्ण धनादिक हैं। तप संयमादिरूप भावद्रव्य है। यह भावद्रव्य जिनके होता है वे वसुमान कहे जाते हैं। मुनिजन भावद्रव्यवाले ही होते हैं। तप और संयमरूप ही द्रव्य इनके पास रहता है। इस द्रव्यका अस्तित्व ही पचनपाचनादिरूप सावद्य व्यापारकी निवृत्ति स्वरूप है-अर्थात् जहां ये द्रव्य हैं वहां पर सावद्यव्यापार नहीं होता है। ऐसा वह वसुमान मुनि सर्वसमन्वागत-विज्ञानयुक्त आत्मा से यह समझकर कि पापकर्म अकरणीय है उसे नहीं गवेषता है-अभिलाषा नहीं करताहै। "सर्वसमन्वागत" इस पदमें सर्व, सम्, अनु, आगत ऐसे चार शब्द हैं। सम् शब्द का अर्थ-सम्यक्, अनु शब्दका अर्थ-साम्यभावसे, आगतका अर्थ है-प्राप्त हुआ, अर्थात् निर्दोष समताभावसे प्राप्त हुआ, सर्व पदके साथ समन्वागतका कर्मधारय समास हुआ है। सर्व समस्त जो समन्वागत वह सर्वसमन्वागत है। सर्वसमन्वागत प्रज्ञान है जिसे वह सर्वसमन्वागतप्रज्ञान है।

વસુ શબ્દનો અર્થ દ્રવ્ય છે. દ્રવ્ય બે પ્રકારનું હોય છે. ૧ બાહ્યદ્રવ્ય, ૨ ભાવદ્રવ્ય. બાહ્ય દ્રવ્ય હીરા, મોતી, સુવર્ણ અને ધન આદિ છે, અને ભાવદ્રવ્ય તપ, સંયમ આદિ હોય છે. આ ભાવદ્રવ્ય જેની પાસે હોય છે તે વસુમાન કહેવાય છે. મુનિજન ભાવ દ્રવ્યવાળા જ હોય છે, તપ અને સંયમરૂપી દ્રવ્ય જ તેમની પાસે હોય છે. આ દ્રવ્યનું અસ્તિત્વ જ પચન-પાચનાદિરૂપ સાવદ્ય વ્યાપારની નિવૃત્તિ સ્વરૂપ છે. અર્થાત્—જ્યાં આ દ્રવ્ય છે ત્યાં સાવદ્ય વ્યાપાર હોતો નથી. એવા એ વસુમાન મુનિ સર્વસમન્વાગતવિજ્ઞાન-યુક્ત આત્માથી એ સમજીને કે પાપકર્મ અકરણીય છે. એને નથી ગવેષતો, એની અભિલાષા નથી કરતો "सर्वसमन्वागत" આ પદમાં સર્વ, સમ્, અનુ, આગત એવા ચાર શબ્દો છે. સમ્ શબ્દનો અર્થ - સમ્યક્. અનુ શબ્દનો અર્થ - સામ્યભાવ. આગતનો અર્થ પ્રાપ્ત થવું. અર્થાત્ નિર્દોષ સમતા ભાવથી પ્રાપ્ત થવું તે સમન્વાગત છે, સર્વ પદની સાથે સમન્વાગતનો કર્મધારય સમાસ થયો છે. સર્વ સમસ્ત જે સમન્વાગત તે સર્વસમન્વાગત છે.

रूपपरिगतेन आत्मना अकरणीयं=विधातुमयोग्यं यत् पापं=पापजनकं कर्म प्राणातिपातादिरूपं तत् पापं कर्म नो अन्वेषी तत् अन्वेष्टुं=गवेषयितुं शीलं यस्य सोऽन्वेषी नो भवेत्, परिज्ञातपरमार्थेनात्मना पापकर्म नो विधेयमित्याशयः। पापकर्मपरित्यागेन सम्यग्ज्ञानं, तेन च पापकर्मपरित्याग इति दर्शयति—

'यत्सम्यगि'–त्यादि–हे शिष्याः! यूयं यत् सम्यक्=सम्यग्ज्ञानं सम्यक्त्वं वा इति पश्यत" तन्मौनं=मुनेः कर्म मौनं=संयमाचरणमस्ति; इति पश्यत, एवं

भावार्थ—समताभाव से मुनिजन जितना भी सम्यग्ज्ञान प्राप्त करते हैं वह सर्वसमन्वागतप्रज्ञान है। अथवा गुरुपरंपरा से जो ज्ञान प्राप्त होता आ रहा है वह भी सर्वसमन्वागतप्रज्ञान है। छठवें गुणस्थानवर्ती मुनिको इस गुणस्थानमें जितना ज्ञान होना चाहिये उसकी अपेक्षा से ही उस ज्ञान में सर्व विशेषणकी सार्थकता समझनी चाहिये, पदार्थों के स्वरूपका आविर्भावक तथा आचार्यपरंपरा से आगत यह सर्वसमन्वागतज्ञान जिस आत्मा में होता है वह सर्वसमन्वागतप्रज्ञान आत्मा है।

इस ज्ञानविशिष्ट आत्मा से मुनिजन यह जानते हैं कि पाप–पापजनक प्राणातिपातादिरूप कर्म करनेके अयोग्य हैं। इसलिये वे उनके अन्वेषी–गवेषणा करनेके स्वभाववाले नहीं होते हैं–अर्थात् पापगवेषी नहीं होते हैं। तात्पर्य यह है कि मुनिजनों की आत्मा परमार्थ की ज्ञाता है; अतः वे उस आत्मा से पापकर्म विधेय (करने योग्य) नहीं है–ऐसा समझते हैं।

"यत् सम्यक् पश्यत तन्मौनमिति पश्यत, यन्मौनं पश्यत तत्स-

ભાવાર્થ—સમતા ભાવથી મુનિજન જેટલું પણ સમ્યક્ જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરે છે તે સર્વસમન્વાગતપ્રજ્ઞાન છે. અથવા ગુરૂ પરંપરાથી જે જ્ઞાન પ્રાપ્ત થતું આવ્યું છે એ પણ સર્વસમન્વાગતપ્રજ્ઞાન છે. છઠ્ઠા ગુણસ્થાનવર્તી મુનિને આ ગુણસ્થાનમાં જેટલું જ્ઞાન થવું જોઈએ એની અપેક્ષાથી જ એ જ્ઞાનમાં સર્વ વિશેષણની સાર્થકતા સમજવી જોઈએ. પદાર્થોના સ્વરૂપના આવિર્ભાવક તથા આચાર્ય પરંપરાથી આગત આ સર્વસમન્વાગત જ્ઞાન જે આત્મામાં પ્રગટે છે તે સર્વસમન્વાગતપ્રજ્ઞાન આત્મા છે, આ જ્ઞાનવિશિષ્ટ આત્માથી મુનિજન એ જાણે છે કે પાપ–પાપજનક પ્રાણાતિપાતાદિરૂપ કર્મ કરવાં યોગ્ય નથી, આ માટે તે એના અન્વેષી–ગવેષણા કરવાના સ્વભાવવાળા થતા નથી. અર્થાત્ પાપગવેષી બનતા નથી. મુનિજનોનો આત્મા પરમાર્થનો જ્ઞાતા છે. આથી એ આત્માદ્વારા પાપકર્મ કરવાયોગ્ય નથી એમ એ સમજે છે.

यन्मौनमिति पश्यत तत्सम्यगिति पश्यत, उभयोरेकत्वमित्यभिव्यञ्जनायोभयत्रा-प्युद्देश्यविधेययोर्विपर्यासेन कथनमिति बोध्यम्, ज्ञानस्य फलं विरतिः सम्यक्त्वा-भिव्यञ्जनं च, कैरेतत्समाचरितुं न शक्यत इत्याह—'नैतच्छक्य'-मित्यादि। शिथिलैः=मन्दपरिणामत्वाद् ईषद्वीर्यैः संयमे तपसि वा धृतिदृढतावर्जितैरवसन्न-

म्यगिति पश्यत "—पापकर्मके परित्याग से सम्यग्ज्ञान, उससे पापकर्म का परित्याग होता है, यह बात इस सूत्रांश से सूत्रकार प्रकट करते हुए कहते हैं—

हे शिष्यवृन्द! तुम जिसे सम्यग्ज्ञान समझते हो वह मुनिका कर्म –संयमाचरणरूप है और जो मुनिका कर्म है वह सम्यग्ज्ञान है–ऐसा समझो। इन दोनों में एकता है इस बातको प्रकट करनेके लिये दोनों जगह इन दोनों उद्देश्य और विधेयोंका विपर्यास–हेरफेर से कथन किया गया है–ऐसा समझना चाहिये। ज्ञानका फल विरति और सम्यक्त्व का अभिव्यंजन–प्रकट करना–है।

भावार्थ—प्रथम कथनमें सम्यग्ज्ञान उद्देश्य और मौन–मुनिकर्म–संयमाचरण विधेय है, द्वितीय कथनमें मुनिकर्म उद्देश्य और सम्यग्ज्ञान विधेय है। चारित्रका निर्माण करना और सम्यक्त्वका प्रादुर्भाव करना ये उस ज्ञानके फल हैं।

नैतच्छक्यमित्यादि–यह सम्यग्ज्ञानरूप मुनि–कर्म शिथिल आर्द्रयमाण, गुणास्वादी, वक्रसमाचारवाले, प्रमत्त, गृहस्थ पुरुषों

"यत् सम्यक् पश्यत तन्मौनमिति पश्यत, यन्मौनं पश्यत तत्सम्यगिति पश्यत।"

પાપકર્મના પરિત્યાગથી સમ્યગ્જ્ઞાન, એનાથી પાપકર્મનો પરિત્યાગ થાય છે. આ વાત આ સૂત્રાંશથી સૂત્રકાર પ્રગટ કરતા કહે છે—

હે શિષ્યવૃન્દ! તમે જેને સમ્યગ્જ્ઞાન સમજો છો તે મુનિના કર્મ–સંય-માચરણરૂપ છે અને જે મુનિનું કર્મ છે તે સમ્યગ્જ્ઞાન છે એમ સમજો. આ બન્નેમાં એકતા છે આ વાત પ્રગટ કરવા માટે બન્ને સ્થળે બન્ને ઉદ્દેશ્ય અને વિધેયોના વિપર્યાસ–હેરફેરથી કથન કરેલ છે–એમ સમજવું જોઈએ. જ્ઞાનનું ફળ વિરતિ અને સમ્યકૃત્વનું અભિવ્યંજન–પ્રગટ કરવું તે છે.

ભાવાર્થ—પ્રથમ કથનમાં સમ્યગ્જ્ઞાન ઉદ્દેશ્ય અને મૌન–મુનિકર્મ–સંયમા-ચરણ વિધેય, બીજા કથનમાં મુનિકર્મ ઉદ્દેશ્ય અને સમ્યગ્જ્ઞાન વિધેય છે. ચારિ-ત્રનું નિર્માણ કરવું અને સમ્યકૃત્વનો પ્રાદુર્ભાવ કરવો તે એ જ્ઞાનનું ફળ છે.

નૈતચ્છક્યમિત્યાદિ—આ સમ્યગ્જ્ઞાનરૂપ મુનિકર્મ શિથિલ, આર્દ્રયમાણ, ગુણાસ્વાદિક, વક્ર સમાચારવાળા, પ્રમત્ત, ગૃહસ્થ પુરૂષોથી સમાચરિત બની શકાતું

पार्श्वस्थादिभिः आर्द्रयमाणैः=पुत्राद्यभिष्वङ्गप्रेम्णा आर्द्रीक्रियमाणैः; अपरं च गुणास्वादैः गुणेषु=शब्दादिषु आस्वादः=अभिरुचिर्येषां ते गुणास्वादास्तैः, एवं वक्रसमाचारैः-वक्रः=कुटिलः समाचारः=अनुष्ठानं वर्तनमिति वा येषां ते वक्रसमाचारास्तैः-मायानिकृतिमद्भिः, किञ्च प्रमत्तैः=निद्रादिपञ्चविधप्रमादवद्भिः 'अगारमावसद्भिः', अगारं=गृहम् 'आवसद्भिः'-आ=समन्तादतिगृद्ध्या वसद्भिः-गृहवासिभिः, एतादृशैः पुरुषैरेतत्सम्यग्ज्ञानरूपमौनानुष्ठानं विधातुं न शक्यं भवति। केनेदं मौनानुष्ठानं कर्तुं शक्यमित्याह-'मुनिः' इत्यादि। मुनिः=शिथिलादिपूर्वोक्तविशेषणवर्जितः संयमी मौनं=सर्वसावद्यव्यापारपरित्यागरूपं मुनिभावं समादाय=सम्य-

से नहीं समाचारित हो सकता है। जो शिथिल हैं-मन्दपरिणामी होनेसे कमजोर-संयम या तप आराधनमें धैर्य एवं दृढता से रहित हैं ऐसे अवसन्न पार्श्वस्थ-आदिकों से, पुत्रादिकों में जिनके ममत्व परिणाम जाग्रत है अतएव उससे जिनका अंतःकरण भींजा-अतिशय मुग्ध बना हुआ है ऐसे आर्द्रीक्रियमाण-अत्यन्तमोही मानवोंसे, शब्दादिक विषयों में जिनकी रुचि लवलीन है, वे गुणस्वादी हैं ऐसे गुणस्वादियों से, वक्र-समाचारवालों-जिनका अनुष्ठान अथवा वर्तन कुटिल है ऐसे मायावी मनुष्यों से, निद्रादिक पंचप्रमाद सेवन करनेवालों से, और जो गृहमें अत्यंत गृद्धता से रहते हैं ऐसे गृहवासी गृहस्थों से कभी भी यह मुनि-कर्म सेवित नहीं हो सकता है। इस मौनको कौन आचर सकता है? इसके लिये "मुनिर्मौनं समादाय धुनीयात् कर्मशरीरकम्" सूत्रकार यह कहते हैं अर्थात्-उपर्युक्त इन शिथिलादिक विशेषणोंसे जो रहित हैं ऐसे संयमी मनुष्य ही सर्वसावद्यव्यापार का परित्यागरूप मुनिभाव-मौन का अच्छी

નથી. જે શિથિલ છે-મંદપરિણામી હોવાથી કમજોર-સંયમ યા તપ આરાધનામાં ધૈર્ય તેમજ દૃઢતાથી રહિત છે એવા અવસન્ન પાર્શ્વસ્થ-આદિકોથી, પુત્રાદિકોમાં જેનું મમત્વ પરિણામ જાગ્રત છે માટે તેનાથી જેનું અન્તઃકરણ ભીંજાએલું-અતિશય મુગ્ધ બનેલું છે એવા આર્દ્રીક્રિયમાણ-અત્યંત મોહી માનવોથી, શબ્દાદિક વિષયોમાં જેની રૂચી લવલીન છે તે ગુણસ્વાદી છે એવા ગુણસ્વાદીઓથી, વક્ર સમાચારવાળા-જેનું અનુષ્ઠાન અને વર્તન કુટીલ છે એવા માયાવી મનુષ્યોથી, નિદ્રાદિક પાંચ પ્રમાદ સેવન કરવાવાળાથી, અને જે ઘરમાં ઘણી આસક્તિથી રહે છે એવા ઘરવાસી ગૃહસ્થોથી ક્યારેય પણ આ મુનિ-કર્મ સેવિત થઈ શકતું નથી. આ મૌનને કોણ આચરી શકે છે? આ માટે "मुनिर्मौनं" ઇત્યાદિ સૂત્રકાર કહે છે, અર્થાત્-ઉપર મુજબના એ શિથિલાદિક વિશેષણોથી જે રહિત છે એવા સંયમી મનુષ્ય જ સર્વ સાવદ્ય વ્યાપારના પરિત્યાગરૂપ મુનિભાવ-મૌનને સારી

गृहीत्वा कर्मशरीरकं=कार्मणं शरीरमुपलक्षणादौदारिकमपि धुनीयात्=कम्पयेत् कर्माणि दूरीकुर्यादित्यर्थः, धूननप्रकारमेवाह-'प्रान्त' मित्यादि, सम्यक्त्वदर्शिनः समत्वदर्शिनो वा वीराः=कर्मविदारणकुशलाः प्रान्तं=निस्सारं पुराणकुलत्थादिकं पर्युषितं वल्लचणकादिनिष्पन्नं तक्रमिश्रितमन्नादिकं वा रूक्षं=घृतादिविकृतिवर्जितम् अशनं तदपि विगताङ्गारधूमं सेवन्ते=भुञ्जते, स कीदृशो भवती ? त्याह 'एषः= प्रान्तरूक्षाहारी मुनिः=संयमी ओघन्तरो भवति, स एप तीर्णो विमुक्तो विरतो

तरह ग्रहण करके कर्मशरीर–कार्मणशरीर, एवं उपलक्षण से इस औदारिक शरीर का भी कम्पन–विनाश कर देते हैं। विनाशप्रकारको सूत्रकार–" प्रान्तं रूक्षं सेवन्ते वीराः सम्यक्त्वदर्शिनः " इस सूत्रांश में प्रकट करते हैं—सम्यक्त्व अथवा समत्त्व को देखनेका जिनका स्वभाव है वे सम्यक्त्वदर्शी हैं, ऐसे मनुष्य ही कर्मों के विनाश करने में कुशल होते हैं, इसलिये वे वीर कहलाते हैं। ये वीर प्रान्त—निःसार पुरानी कुलथी आदिका, पर्युषित–शीतल बल्ल–बालचना आदिसे तैयार हुआ, अथवा छाछ आदिसे मिश्रित बालचना आदिका, तथा रूक्ष–घृतादिक विकृतिसे रहित ऐसे भोजनका अंगार धूमादि दोषों से रहित होने पर ही सेवन करते हैं आहाररूपमें ग्रहण करते हैं। प्रान्त एवं रूक्ष आहार लेनेवाले ये मुनिजन ओघन्तर होते हैं। भाव ओघरूप संसार से पार हो जाते हैं। "तीर्णो मुक्तो विरतो व्याख्यातः" इसलिये ये ओघन्तर मुनि तीर्ण मुक्त और विरत तीर्थङ्कर प्रभुद्वारा कहे गये है।

રીતે ગ્રહણ કરી કર્મશરીર–કાર્મણશરીર એવં ઉપલક્ષણથી આ ઔદારિક શરીરને પણ વિનાશ કરી દે છે. વિનાશના પ્રકારને સૂત્રકાર "प्रान्तं रूक्षं" ઇત્યાદિ સૂત્રાંશથી પ્રગટ કરે છે. સમ્યક્ત્વ અથવા સમત્વ જોવાનો જેનો સ્વભાવ છે તેઓ સમ્યક્ત્વદર્શી છે. એવા મનુષ્ય જ કર્મોનો વિનાશ કરવામાં કુશળ હોય છે. માટે તે વીર કહેવાય છે. એ વીર પ્રાન્ત નિઃસાર પુરાની કુળથી આદિના, પર્યુષિત–શીતલ બલ્લ–બાલચણા આદિથી તૈયાર થયેલ અથવા છાસ આદિથી મિશ્રિત બાલચણા આદિ, તથા રૂક્ષ–ઘૃતાદિક વિકૃતિથી રહિત એવા ભોજનના અંગાર ધૂમાદિક દોષોથી રહિત હોવાથી તે સેવન કરે છે–આહારરૂપમાં ગ્રહણ કરે છે. રૂક્ષ આહાર લેવાવાળા આ મુનિજન ઓઘન્તર બને છે, ભાવ ઓઘરૂપ સંસારથી પાર થઇ જાય છે." तीर्णो मुक्तो विरतो व्याख्यातः " આ માટે એ ઓઘન્તર મુનિ તીર્ણ, મુકત અને વિરત તીર્થંકર પ્રભુદ્વારા કહેવાયા છે.

भवतीति व्याख्यातः=तीर्थकृद्भिः कथितः, सकलसमारम्भवर्जितो रागद्वेषरहितो मुनिर्जीवन्नपि मुक्त एव घातिकर्मचतुष्टयाभावादित्याशयः। इति ब्रवीमि-इत्यस्यार्थस्तूक्त एव ॥ सू० ५ ॥

॥ पञ्चमाध्ययनस्य तृतीय उद्देशः समाप्तः ॥ ५-३ ॥

भावार्थ--सकल समारंभों से रहित, राग और द्वेषसे वर्जित मुनि चार घातिया कर्मोंके अभाव से जीते हुए भी मुक्त ही हैं। "इति ब्रवीमि" इन पदों का अर्थ पहिले कहा जा चुका है ॥

॥ पंचम अध्ययनका तृतीय उद्देश समाप्त॥ ५-३ ॥

ભાવાર્થ—સકલ સમારંભોથી રહિત રાગ અને દ્વેષથી વર્જીત મુનિ ચાર ઘાતિયા કર્મોના અભાવથી જીવતા હોવા છતાં પણ તે મુક્ત જ છે. "इति ब्रवीमि" આ પદોનો અર્થ આગળ કહેવાઈ ગયો છે.

પાંચમા અધ્યયનનો ત્રીજો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૫-૩ ॥



अथ पञ्चमाध्ययनस्य चतुर्थ उद्देशः ।

गतस्तृतीयोद्देश इदानीं तुरीयः प्रारभ्यते । पूर्वत्र परिग्रहवतो दोषमुद्घाट्य तन्निरासेनैव विरतः संयमी भवतीति वर्णितम् । अत्राव्यक्तस्यैकचरस्य मुनित्वं प्रणश्यतीति प्रदर्शनाय तस्य प्रत्यवायाः प्रतिपादनीयाः सन्तीति सम्प्रति तस्य दोषोद्भावनायाह—' गामाणु ' इत्यादि ।

मूलम्—गामाणुगामं दूइज्जमाणस्स दुज्जायं दुप्परक्कंतं भवइ अवियत्तस्स भिक्खुणो ॥ सू० १ ॥

छाया—ग्रामानुग्रामं द्रवतो (विहरतः) दुर्यातं दुष्पराक्रान्तं भवत्यव्यक्तस्य भिक्षोः ॥ सू० १ ॥

' ग्रामानुग्राम ' मित्यादि, **' ग्रामानुग्रामं '** ग्रसति बुद्ध्यादिगुणं यः स

॥ पांचवें अध्ययनका चतुर्थ उद्देश ॥

तृतीय उद्देशका वर्णन किया अब चतुर्थ उद्देशका सूत्रकार वर्णन करते हैं ।

पूर्व उद्देशमें परिग्रहीके दोषोंका कथन कर यह बतलाया गया है कि परिग्रहके त्यागसे ही व्रती संयमी होता है । इस उद्देशमें अव्यक्त-अनभिज्ञ एकलविहारी से मुनिपना नहीं सध सकता है-इस विषयको दिखानेके लिये उसके प्रत्यवाय-विघ्नसमूह प्रतिपादनीय-कथन करनेके योग्य हैं । इसलिये सूत्रकार सर्वप्रथम उसके दोषों के प्रकट करनेके लिये कहते हैं " गामाणु० " इत्यादि—

बुद्धि आदि गुणोंका जो ग्रास करता है-अर्थात् बुद्ध्यादिक गुण

પાંચમા અધ્યયનનો ચોથો ઉદ્દેશ.

ત્રીજા ઉદ્દેશનું વર્ણન કર્યું, હવે સૂત્રકાર ચોથા ઉદ્દેશનું વર્ણન કરે છે.

પૂર્વ ઉદ્દેશમાં પરિગ્રહીના દોષોનું વર્ણન કરી એ બતાવવામાં આવ્યું છે કે પરિગ્રહના ત્યાગથી જ વ્રતી સંયમી બને છે. આ ઉદ્દેશમાં અવ્યક્ત-અનભિજ્ઞ એકલવિહારીથી મુનિપણું સધાઈ શકતું નથી-આ વિષય સમજાવવા માટે એના પ્રત્યવાય-વિઘ્નસમૂહ પ્રતિપાદનીય-કથન કરવા યોગ્ય છે. આ માટે સૂત્રકાર સર્વ પ્રથમ તેના દોષોને પ્રગટ કરવા માટે કહે છે " गामाणु० " ઇત્યાદિ—

બુદ્ધિ આદિ ગુણોનો જે નાશ કરે છે અર્થાત્ બુદ્ધિ આદિના ગુણ જ્યાં

ग्रामस्तस्माद्ग्रामाद् अनु=पश्चादितरो ग्रामो ग्रामानुग्रामः, यतश्चलति स ग्रामस्तद्भिन्नो गम्यमानोऽनुग्रामस्तं द्रवतः=एकचर्यया विहरतः-अव्यक्तस्य=श्रुतेनावस्थया वोभयेन वा बालस्य भिक्षोः=भिक्षाशीलस्य मुनेः दुर्यातं-दुष्टं गमनं, तस्य विहरणं निन्द्यमित्यर्थः, दुष्पराक्रान्तं=दुष्टं पराक्रान्तं=पराक्रमणं तस्य पराक्रमणस्फोरणं निन्द्यं भवति, अव्यक्तस्यैकचर्यया चारित्रान्तरायोदयेन ब्रह्मचर्यस्खलनादेरवश्यम्भावात् ।

जहां पर निवास करने से प्रायः शिथिल होते हैं उसका नाम ग्राम है। उससे दूसरा गम्यमान ग्राम-जहां जाया जाता है-वह अनुग्राम है। एकचर्या से-एकाकी ग्रामानुग्राम विहार करनेवाले, जो आगम से अव्यक्त-अनभिज्ञ है, या वयसे अव्यक्त है, अथवा आगम वय दोनोंसे अव्यक्त है, उस मुनिका विहार निंद्य है। एकाकी विहार करनेका उसका पराक्रम निंदायोग्य है-प्रशंसनीय नहीं है-आगमानुकूल नहीं है। कारण कि इस प्रकारके मुनिको उस एकाकी विहारमें चारित्र अन्तरायके उदयसे ब्रह्मचर्यव्रतकी स्खलना अवश्यंभावी है।

भावार्थ—आगमादि से जो अव्यक्त है ऐसे मुनिका एकाकी ग्रामानुग्राम विहार करना उचित नहीं है। जो मुनिजन एकाकी विहार करनेके अपने पराक्रमकी प्रशंसा करते हैं। उनका इस प्रकारका कथन निंद्य है। कारण कि श्रुतादि से अव्यक्त मुनिका वह एकाकी विहार उसके ब्रह्मचर्यव्रतकी क्षतिका कारण अवश्य बन जाता है।

નિવાસ કરવાથી ખરેખર શિથિલ બને છે. એનું નામ ગ્રામ છે. એનાથી બીજું ગમ્યમાન ગ્રામ-જ્યાં જવાય છે તે અનુગ્રામ છે. એકચર્યાથી એકાકી ગ્રામાનુગ્રામ વિહાર કરવાવાળા જે આગમથી અવ્યક્ત-અનભિજ્ઞ છે. અથવા ઉંમરથી અવ્યક્ત છે અથવા આગમ અને વય બન્નેથી અવ્યક્ત છે એવા મુનિનો વિહાર નિંદ્ય છે. એકાકી વિહાર કરવાનું તેનું પરાક્રમ નિંદા યોગ્ય છે-પ્રશંસનીય નથી-આગમ અનુકૂળ નથી, કારણ કે આ પ્રકારના મુનિના તેવા એકાકી વિહારથી ચારિત્ર અંતરાયના ઉદયથી બ્રહ્મચર્ય વ્રતની સ્ખલના નિશ્ચિત બની રહે છે.

ભાવાર્થ—આગમથી જે અવ્યક્ત છે એવા મુનિનો એકાકી ગ્રામાનુગ્રામ વિહાર કરવો ઉચિત નથી. જે મુનિજન એકાકી વિહાર કરીને પોતાના પરાક્રમની પ્રશંસા કરે છે તેનું આવા પ્રકારનું કથન નિંદ્ય છે. કારણ કે શ્રુતાદિથી અવ્યક્ત મુનિનો તે એકાકી વિહાર તેના બ્રહ્મચર્ય વ્રતની ક્ષતિ (નાશ)નું કારણ બની જાય છે.

व्यक्ताव्यक्तभेदेन मुनिर्द्विविधः, तत्र चतुर्भङ्गी यथा–श्रुतेनाऽव्यक्तो वयसाप्य-व्यक्तः (१) श्रुतेनाऽव्यक्तो वयसा व्यक्तः (२) श्रुतेन व्यक्तो वयसा चाव्यक्तः (३) श्रुतेन व्यक्तो वयसाऽपि व्यक्तः (४)।

तत्र श्रुतेन वयसा चाव्यक्तः–श्रुतेनाव्यक्तः=आगमानभिज्ञः, वयसा चाऽव्यक्तोऽल्पवयस्कः अष्टवर्षादारभ्य पञ्चविंशतिवर्षपर्यन्तः, एवं चोभयथाऽप्यव्यक्तस्य संयमात्मविराधनयोः सम्भवान्नैकचर्या कल्पते, एष प्रथमो भङ्गः (१)।

श्रुतेनाव्यक्तस्य वयसा च व्यक्तस्यापि सा न कल्पते, श्रुतस्यानवगमेनोभय-विराधनासम्भवात् इति द्वितीयो भङ्गः (२)।

व्यक्त और अव्यक्त के भेदसे मुनि दो प्रकारके हैं। यहां पर यह चतुर्भंगी बनती है, जैसे–(१) जो श्रुतसे भी अव्यक्त है और वयसे भी अव्यक्त है, (२) श्रुतसे अव्यक्त है, वयसे व्यक्त है, (३) श्रुतसे जो व्यक्त है, वयसे अव्यक्त है, (४) श्रुतसे भी व्यक्त है और वयसे भी व्यक्त है।

इनमें "श्रुत और वयसे अव्यक्त है" इस प्रथम भंगका खुलासा अर्थ इस प्रकार है, श्रुतसे अव्यक्तका मतलब आगमानभिज्ञसे है–जो आगमका ज्ञाता नहीं है। वयसे अव्यक्तका अर्थ अल्पवयस्कसे है। आठ वर्षसे लेकर २५ वर्ष तकका साधु अल्पवयस्क माना गया है। इस तरह दोनों प्रकारसे जो अव्यक्त है उसके संयमकी और आत्माकी विराधना संभवित है। इससे एकाकी विहार इसका कल्पित नहीं है। यह प्रथम भंग है।

श्रुतसे अव्यक्त और वयसे व्यक्त मुनिकी भी एकचर्या कल्प्य नहीं

વ્યક્ત અને અવ્યક્તના ભેદથી મુનિ બે પ્રકારના છે. અહિંયા એ ચતુ-ર્ભંગી બને છે. જેમ (૧) જે શ્રુતથી પણ અવ્યક્ત છે, અને વયથી પણ અવ્યક્ત છે. (૨) શ્રુતથી અવ્યક્ત છે, વયથી વ્યક્ત છે, (૩) શ્રુતથી જે વ્યક્ત છે વયથી અવ્યક્ત છે, (૪) શ્રુતથી પણ વ્યક્ત છે અને વયથી પણ વ્યક્ત છે.

આમાં "શ્રુત અને વયથી અવ્યક્ત છે" આ પ્રથમ ભંગનો ખુલાસો આ પ્રકારે છે. શ્રુતથી અવ્યક્તનો મતલબ જે આગમનો જ્ઞાતા નથી. વયથી નાની ઉંમરનો છે. આઠ વર્ષથી માંડી ૨૫ વર્ષ સુધીનો સાધુ અલ્પ વયસ્ક માનવામાં આવેલ છે, આ રીતે બન્ને પ્રકારથી જે અવ્યક્ત છે તેના સંયમની અને આત્માની વિરાધના સંભવિત છે. એથી એકાકી વિહાર તેનો કલ્પ નથી. આ પ્રથમ ભંગ છે. શ્રુતથી અવ્યક્ત અને વયથી વ્યક્ત મુનિની પણ એકચર્યા કલ્પિત

श्रुतेन व्यक्तस्य वयसा चाव्यक्तस्यापि सा न कल्पते; अल्पवयस्कस्य स्वभावचापल्यादिना सकलजनतोपहासपात्रत्वात् । परिषहोपसर्गादिसहनासम्भवाच्च । एष तृतीयो भङ्गः (३) ।

उभयथा व्यक्तानामष्टगुणसम्पन्नानां प्रतिमाप्रतिपन्नानां स्थविरकल्पिकानां वा कारणवशादेकचर्या कल्पते । कारणाभावे च तेषामपि प्रतिषिद्धैकचर्या, अष्टगुणाः– श्रद्धा-सत्य-मेधा-बहुश्रुतत्व-शक्त्य-क्लेशित्व-धृति–वीर्यात्मकाः स्थानाङ्गाष्टमस्थानो-

---

है । कारण कि शास्त्र–आगमसे अनभिज्ञ होने के कारण उसके उभय–संयम और आत्माकी विराधना संभवित है । यह द्वितीय भंग है ।

श्रुतसे व्यक्त और वयसे अव्यक्त मुनिकी भी एकचर्या कल्पित नहीं है । कारण कि अल्पवयस्क होनेसे वह मुनि स्वाभाविक चपलता की वजहसे सकल जनता की हंसीका पात्र हो जाता है । तथा वह परीषह और उपसर्गादिकको भी सहन नहीं कर सकता है । यह तृतीय भंग है ।

जो मुनि दोनों प्रकारसे व्यक्त हैं और आठ गुणोंसे संपन्न हैं उनके लिये, और जो प्रतिमाओंके धारक हैं उनके लिये, तथा जो स्थविरकल्पी हैं कारणवश उनके लिये एकचर्या कल्पित है, परन्तु कारण के अभावमें स्थविरकल्पीकी एकचर्या प्रतिषिद्ध है । श्रद्धा, सत्य, मेधा, बहुश्रुतत्व, शक्ति, अक्लेशित्व, धृति और वीर्य ये ८ आठ गुण स्थानाङ्गके आठवें स्थान में कहे हुए हैं । एकचर्या में गुप्ति समिति आदि जो साधु के गुण हैं उनमें दोषबाहुल्य की संभावना रहती है; जैसे कि पूर्वोक्त परिस्थिति-

---

નથી, કારણ કે શાસ્ત્ર–આગમથી અનભિજ્ઞ હોવાથી તેના બન્ને સંયમ અને આત્માની વિરાધના સંભવિત છે. આ બીજો ભંગ છે.

શ્રુતથી વ્યક્ત અને વયથી અવ્યક્ત મુનિની પણ એકચર્યા કલ્પિત નથી. કારણ કે નાની ઉંમર હોવાથી તે મુનિ સ્વાભાવિક ચપળતાના કારણે સકળ જનતાની હાંસીને પાત્ર બની જાય છે તથા એ પરિષહ અને ઉપસર્ગાદિકને પણ સહન કરી શકતો નથી. આ ત્રીજો ભંગ છે.

જે મુનિ બન્ને પ્રકારથી વ્યક્ત છે અને આઠ ગુણોથી સંપન્ન છે તેના માટે અને જે પ્રતિમાઓના ધારક છે તેના માટે, તથા જે સ્થવિરકલ્પી છે કારણવશ તેના માટે એકચર્યા કલ્પિત છે. પરંતુ કારણના અભાવમાં સ્થવિરકલ્પીને એકચર્યા પ્રતિષિદ્ધ છે. શ્રદ્ધા, સત્ય, મેધા, બહુશ્રુતત્વ, શક્તિ, અક્લેશિત્વ, ધૃતિ અને વીર્ય આઠ ગુણ સ્થાનાંગના આઠમા સ્થાનમાં કહેલ છે. એકચર્યામાં, ગુપ્તિ સમિતિ આદિ જે સાધુના ગુણ છે તેમાં દોષ અને ભૂલની સંભાવના રહે છે. તો પણ

क्ता विज्ञेयाः, एकचर्यायां समितिगुप्त्यादिसाधुगुणेषु दोषबाहुल्यसम्भवात् ,तथाहि मुनेरेकाकिनो विहरतः स्त्री–कुक्कुर–परतीर्थिककृतपराभवाविशुद्धभिक्षाद्यशनदोषनिकरो जागर्ति। रोगाद्यवस्थायां वैयावृत्त्याद्यसम्भवेनात्मसंयमविराधनायाश्च सम्भवः, राग–द्वेषादिवशे नैकाकी विचरन् सुखकामी मुनिः सागरतरङ्गव्याकुलो बहिर्निर्गतो मीन इव नश्यति ।

गच्छगतस्य मुनेर्बहुगुणाधिगमो जायते, तथाहि–सामाचार्याः सम्यक्पालनं, श्रुताध्ययनादिना ज्ञानाद्युपार्जनं, तन्निश्रयाऽन्येषां गच्छगतबालवृद्धादीनां सम्यग्निर्वाहः, संयमे सीदतां स्थिरीकरणादिना जिनप्रवचनप्रभावकत्वात्स्वपरतारकत्वं च भवतीति भावः ॥ सू० १ ॥

पूर्वोक्तमेवार्थं प्रकटयति—' वयसा वि ' इत्यादि ।

संपन्न कोई मुनि एकाकी विहार करते समय स्त्री, कुक्कुर, परतीर्थिकजनद्वारा पराभवित हो सकता है। तथा अविशुद्ध–अकल्पित भिक्षादिक से प्राप्त भोजनके ग्रहण करनेसे आहार संबंधी दोषोंसे भी वह नहीं बच सकता है। यदि कभी किसी रोगादिकका आक्रमण इसके ऊपर हो जाता है तो ऐसी दशा में उसकी कोई दूसरा सजातीय मुनि न होनेसे वैयावृत्ति भी ठीक २ नहीं हो सकती है, ऐसी अवस्थामें वह अपनी आत्मा एवं संयमका विराधक भी हो सकता है। रागद्वेषादिके वशसे अकेला विहार करता हुआ सुखाभिलाषी मुनि समुद्रकी तरङ्गसे व्याकुल होकर उस बाहिर निकले हुए मत्स्यकी तरह नष्ट हो जाता है।

अपने समुदाय–गच्छमें रहनेवाले मुनिके लिये अनेक गुणोंका लाभ होता है, जैसे—मुनिसामाचारीका अच्छी तरहसे पालन होता है।

કોઈ પૂર્વોકત પરિસ્થિતિ સંપન્ન મુનિ એકાકી વિહાર કરતી વખતે સ્ત્રી, કૂતરા, પરતીર્થિક જન વિગેરે દ્વારા પરાભવિત થઇ શકે છે. તથા અકલ્પિત–અવિશુદ્ધ ભિક્ષાદિકથી પ્રાપ્ત ભોજનનું ગ્રહણ કરવાથી આહાર--સંબંધી દોષોથી પણ તે બચી શકતો નથી, જો કોઇ વખત કોઈ રોગાદિકનું આક્રમણ જ્યારે તેના ઉપર થાય તો એવી દશામાં તેની કોઈ બીજા સજાતીય મુનિ ન હોવાથી સારવાર પણ ઠીક ઠીક બની શકતી નથી. આવી અવસ્થામાં તે પોતાનો આત્મા તેમજ સંયમનો વિરાધક પણ બને છે. રાગદ્વેષ આદિના વશથી એકલા વિહાર કરનાર સુખાભિલાષી મુનિ સમુદ્રના તરંગથી વ્યાકુળ બનીને તેમાંથી બહાર નીકળેલા માછલા માફક વિનાશ પામે છે.

પોતાના સમુદાય–ગચ્છમાં રહેવાવાળા મુનિ માટે અનેક ગુણોનો લાભ થાય

मूलम्—वयसा वि एगे बुइया कुप्पंति माणवा, उन्नयमाणे य नरे महया मोहेण मुज्झइ, संबाहा बहवे भुज्जो भुज्जो दुरइक्कमा अजाणओ अपासओ, एयं ते मा होउ, एयं कुसलस्स दंसणं, तद्दिट्ठीए तम्मुत्तीए तप्पुरक्कारे, तस्सन्नी तन्निवेसणे, जयं विहारी चित्तनिवाई पंथनिज्झाई पलिबाहिरे पासिय पाणे गच्छिज्जा॥सू०२।

छाया—वयसाऽप्येक उक्ताः कुप्यन्ति मानवाः, उन्नतमानश्च नरो महता मोहेन मुह्यति, संबाधा बहवो भूयो भूयो दुरतिक्रमा अजानतोऽपश्यतः, एतत्ते मा भवतु, एतत्कुशलस्य दर्शनम् , तद्दृष्ट्या तन्मुक्त्या तत्पुरस्कारः, तत्संज्ञी तन्निवेशनः, यतमानविहारी चित्तनिपाती पथिनिर्ध्यायी पर्यबाह्यो दृष्ट्वा प्राणिनो गच्छेत् ।॥सू०२॥

टीका—'वयसे'त्यादि, एके=केचन मानवाः तपःसंयमाचरणविरताः एकाकिविहारिणःसाधवः, गृहस्थादिभिर्वचसाऽपि=शिक्षावचनेनापि उक्ताः=कथिताः

शास्त्रादिकके अध्ययनसे ज्ञानादिकका उपार्जन होता है। उसकी निश्रा से गच्छमें रहनेवाले अन्य बाल वृद्ध मुनिजनोंका अच्छी रीतिसे निर्वाह होता है। संयममें शिथिल बने हुए अन्य मुनिजनोंको उसमें स्थिर करने आदिसे वह जिनप्रवचनका प्रभावक होता है, इससे उसमें स्व और परकी तारकता भी आती है ॥सू०१॥

सूत्रकार "वयसा वि" इत्यादि सूत्रद्वारा पूर्वोक्त अर्थका ही प्रदर्शन करते हैं।

सच्चे तप और संयमके आचरणसे रहित कितनेक एकाकी विहार करनेवाले मानव–साधु गृहस्थजनों के ऊपर उनके द्वारा शिक्षावचनोंसे समझाये जाने पर क्रोध करते हैं। यहां सूत्रकारने जो साधुजन के अर्थ

છે. જેમ કે મુનિસામાચારીનું સારી રીતે પાલન થાય છે શાસ્ત્રાદિકના અધ્યયનથી જ્ઞાનાદિકનું ઉપાર્જન થાય છે તેના આધારે ગચ્છમાં રહેવાવાળા અન્ય બાળ વૃદ્ધ મુનિજનોનો સારી રીતે નિર્વાહ થાય છે. સંયમમાં શિથિલ બનેલા અન્ય મુનિજનોને તેમાં સ્થિર બનાવવા આદિથી તે જીનપ્રવચનનો પ્રભાવક બને છે. તેનાથી તેનામાં સ્વ અને પરની તારકતા પણ આવે છે. ॥ સૂ૦ ૧ ॥

સૂત્રકાર "વયસાવિ" ઈત્યાદિ સૂત્રદ્વારા પૂર્વોક્ત અર્થનું જ પ્રદર્શન કરે છે.

સાચા તપ અને સંયમના આચરણથી રહિત કેટલાક એકાકી વિહાર કરવાવાળા માનવ–સાધુ ગૃહસ્થજનોની ઉપર તેઓના દ્વારા શિક્ષાવચનોથી સમજણ અપાતાં ક્રોધ કરે છે. અહિં સૂત્રકારે જે સાધુજનના અર્થમાં મુનિ શબ્દનો પ્રયોગ ન કરી

सन्तः कुप्यन्ति=क्रुध्यन्ति, अत्र मुनिवाचकशब्दं विहाय मानवशब्देन कथनमेकाकि-विहारिणो निन्दास्पदत्वसूचनार्थम्; भाषन्ते चाहमनेन कथमपमानितः इत्यादि।

यद्वैवं कथयन्ति–किं परेऽप्यनुचिताचारचारिणो न सन्ति यदस्मानेवाधिक्षिपन्ति भवन्त इत्यादि ब्रुवन्तः संतप्यन्ते। अथवा–वचसाऽप्युक्ता एते व्यर्थजीविनः कुक्षिम्भरा भवन्ति–इत्यादिवाक्यैरभिहिताः कुप्यन्ति, अपि–शब्दो भिन्नक्रमस्तेन कुप्यन्तीत्यनेनान्वयस्ततः अभिशपन्ति वा। कथं पुनरिमे नरकनिगोदादिपातजन-

में मुनि शब्दका प्रयोग न कर सामान्य मानव शब्दका प्रयोग किया है उससे यह सूचित होता है कि एकाकी विहार करनेवाला साधु निन्दा का पात्र है। एकाकी विहार करनेवाले साधुको जब कोई गृहस्थ-जन समझाता है तो उससे अपना अपमान समझते हैं और कहते हैं कि मैं इससे क्यों अपमानित किया जाता हूं, इस बातको विचार कर वे उस समझानेवाले पर कुपित हो उठते हैं। अथवा अपने को समझानेवाले गृहस्थजनसे वे यह कह दिया करते हैं कि इस प्रकार के अनुचित आचारका आचरण करनेवाले क्या और दूसरे नहीं हैं जो आप हमारा ही तिरस्कार कर रहे हैं, हमें ही समझा रहे हैं, इस प्रकार से भी वे संतप्त हो उठते हैं। अथवा इनका जीवन ही व्यर्थ है ये तो अपने उदर निर्वाह के लिये ही साधु हुए हैं" इस प्रकार के वचनमात्रसे कहे जाने पर भी ये उन पर क्रोधित हो उठते हैं। "अपि" शब्द भिन्न-क्रमवाला है "कुप्यन्ति" इस क्रियाके साथ उसका संबंध होने से कुप्यन्ति अपि" क्रोध भी करते हैं और "अभिशपन्ति" शाप भी देते

સામાન્ય માનવ શબ્દનો પ્રયોગ કરેલ છે એથી એ સૂચિત થાય છે કે એકાકી વિહાર કરવાવાળા સાધુ નિંદાને પાત્ર છે. એકાકી વિહાર કરવાવાળા સાધુને જો કોઈ ગૃહસ્થજન સમજાવે છે તો તેનાથી તે પોતાનું અપમાન સમજે છે અને કહે છે કે આ શા માટે મારો અપમાન કરે છે. આ વાતનો વિચાર કરીને તે સમજાવવા-વાળા ઉપર ક્રોધિત બને છે, અથવા તેને સમજાવનાર ગૃહસ્થજનને તે એવું સંભળાવે છે કે આવા પ્રકારના અનુચિત આચારનું આચરણ કરવાવાળા શું કોઇ બીજા નથી? જે આપ અમારો જ તિરસ્કાર કરતા રહો છો. અમને જ સમજાવો છો. આ પ્રકારથી પણ તે સંતપ્ત બને છે. અથવા 'એમનું જીવન વ્યર્થ છે, એ તો પોતાના ઉદર નિર્વાહ માટે જ સાધુ થયેલ છે'- આ પ્રકારના વચન માત્ર કહેતાં જ તે ક્રોધિત બની જાય છે. 'अपि' શબ્દ ભિન્નક્રમવાળો છે. "कुप्यन्ति" આ ક્રિયાની સાથ તેનો સંબંધ હોવાથી "कुप्यन्ति अपि" ક્રોધ પણ કરે છે અને "अभिशपन्ति" શ્રાપ પણ દે છે. નરકનિગોદાદિ ગતિયોમાં

कक्रोधकारिणो भवन्तीत्याह—'उन्नतमान' इत्यादि 'उन्नतमानश्च' उन्नतो मानो गर्वो यस्य स उन्नतमानः जात्यादिमानसम्पन्नः नरः=मनुष्यो महता मोहेन=प्रबल-कषायोदयेन मुह्यति=विवेकरहितो भवति ।

ततस्तस्य किं भवतीत्याह—'संबाधा' इत्यादि । अजानतः=एकचर्याजनित-कुगतिफलमबुध्यमानस्य, अपश्यतः=अज्ञानान्धत्वेन तपःसंयमाराधनशिवसुखफल-मप्रेक्षमाणस्य तस्य बह्वयः=अधिकाः संबाधाः संबाधयन्ति यास्ताः संबाधाः= वेदनाः परीषहोपसर्गजन्याः भूयो भूयः पुनः पुनः दुरतिक्रमाः=दुःखेन लङ्घनीयाः

हैं । नरकनिगोदादि गतियोंमें जीवका पतन करानेवाले क्रोधके वशीभूत क्यों होते हैं ? इसके लिये सूत्रकार "उन्नतमानश्च नरो महता मोहेन मुह्यति" कहते हैं अर्थात्-जिसे उन्नत मान होता है, जात्यादि मदसे जो संपन्न होता है, ऐसा मनुष्य बडे भारी मोहसे-प्रबल कषायसे विवेकरहित हो जाता है । विवेकसे विहीन होने पर वह 'साधुमानव एकचर्यासे कुगतिरूप फलकी प्राप्ति करता है'-इस सिद्धान्तसे अनभिज्ञ हो जाता है और साथमें उसे यह भी नहीं मालूम रहता है कि तप और संयम की आराधनासे शिव-सुखरूप फलकी प्राप्ति होती है । इस अपनी मनमानी हालतमें उसे परीषह और उपसर्गजन्य अनेक वेदनाओंका पुनः पुनः भयंकर सामना करना पड़ता है । अर्थात् ऐसे एकलविहारी परीषह उपसर्गजन्य ऐसी २ वेदनाओंके जालमें फँस जाते हैं कि जिनसे रक्षण पाना उन्हें बहुत भारी हो जाता है । इसलिये शिष्यजनों की इन वेद-

---

જીવનું પતન કરવાવાળા ક્રોધને વશીભૂત કેમ બને છે ? આને માટે સૂત્રકાર "उन्नत"-ઈત્યાદિ કહે છે એટલે કે જેને ઉન્નત માન થાય છે, જાતિ આદિના મદથી જે સંપન્ન હોય છે એવો મનુષ્ય ઘણા ભારી મોહથી-પ્રબલ કષાયના ઉદયથી વિવેકરહિત બની જાય છે. વિવેક વગરના બનવાથી તે 'સાધુ-માનવ એકચર્યાથી કુગતિરૂપ ફળની પ્રાપ્તિ કરે છે'-આ સિદ્ધાંતથી અનભિજ્ઞ બની જાય છે. સાથો-સાથ તેને એ પણ માલુમ નથી રહેતું કે તપ અને સંયમની આરાધનાથી શિવ-સુખરૂપ ફળની પ્રાપ્તિ થાય છે. આ પોતાની મનમાની હાલતમાં પરિષહ અને ઉપસર્ગજન્ય અનેક વેદનાઓનો તેણે વારંવાર ભયંકર સામનો કરવો પડે છે. અર્થાત્-આવા એકલવિહારી પરિષહ ઉપસર્ગજન્ય એવી એવી વેદનાઓની જાળમાં ફસી જાય છે કે જેનાથી રક્ષણ મેળવવું ઘણું અઘરૂં બની જાય છે. આ કારણે શિષ્યજનોની આ વેદનાઓથી સદા રક્ષણ બની રહે આ અભિપ્રાયથી

भवन्ति, सर्वमुपपाद्य शिष्यं प्राह-'एत'दित्यादि। हे शिष्य! ते=तव एकाकिविहारपीडाया दुर्लङ्घनीयत्वमजानतोऽपश्यतो गुर्वाज्ञापरिज्ञापालकस्य च एतत्=पूर्वोक्तबाधाया दुरतिक्रमणीयत्वं मा भवतु। त्वया कदाऽप्येकचर्याप्रतिपन्नेन न भवितव्यमित्युपदेशः। सुधर्मास्वामी प्राह—'कुशलस्ये'त्यादि, कुशलस्य=भगवतो महावीरस्य एतत्=पूर्वकथितं दर्शनं गुरुसन्निहितमधिवसतो गुणा एकाकिविहारिणो दोषाश्च भवन्तीत्यादिरूपोऽभिप्रायोऽस्ति।

नाओंसे सदा रक्षण बना रहे इस अभिप्रायसे सूत्रकार कहते हैं कि-"एतत्ते मा भवतु" हे शिष्य! तुम कभी भी एकाकी विहार करनेवाले मत बनना, नहीं तो तुम्हें भी परीषह और उपसर्गादिकोंसे उद्भूत अनेक प्राणान्तकारी कष्टोंका सामना करना पडेगा। तुम इन कष्टों से अनभिज्ञ हो, तुम क्या जानो कि एकाकी विहार करनेसे कैसे २ कष्टों और उपद्रवों को झेलना पड़ता है, हे शिष्य! तुम गुरुकी आज्ञाके पालक हो, इसलिये तुम से हमारा यही कहना है कि तुम कभी भी एकाकी विहारी न होना। ऐसे वर्तन से ही तुम पूर्वोक्त बाधाओं से सदासुरक्षित रहोगे। श्रीसुधर्मा स्वामी कहते हैं, कुशल उपदेशक भगवान महावीरका यह पूर्वकथित दर्शन -अर्थात् सिद्धान्त है। इसका अभिप्राय यह है कि गुरुके निकट रहनेवाले शिष्योंको अनेक प्रकारसे लाभ होता है, तथा इससे विपरीत-एकाकी विहार करनेवालों में अनेक दोष उत्पन्न होते हैं।

સૂત્રકાર કહે છે કે—"एतत्ते मा भवतु" હે શિષ્ય! તમે કદાપિ પણ એકાકી વિહાર કરવાવાળા બનશો નહિ, નહિ તો તમારે પણ પરીષહ અને ઉપસર્ગાદિકોથી ઉત્પન્ન અનેક પ્રાણાંતકારી કષ્ટોનો સામનો કરવો પડશે. તમે આ કષ્ટના જાણકાર ન હોવાથી તમોને શું ખબર પડે કે એકાકી વિહાર કરવાથી કંઈ કંઈ જાતનાં દુઃખો અને ઉપદ્રવો ભોગવવા પડે છે. હે શિષ્ય! તમે ગુરૂની આજ્ઞાના પાલક છો. આ કારણે તમને મારૂં એ કહેવાનું છે કે તમે કદિ પણ એકલવિહારી બનશો નહિ. આવા વર્તનથી જ તમે પૂર્વોક્ત ઉપદ્રવોથી સદા સુરક્ષિત રહેશો, શ્રી સુધર્માસ્વામી કહે છે કુશળ ઉપદેશક ભગવાન મહાવીરનું આ પૂર્વકથિત દર્શન એટલે સિદ્ધાંત છે. આનો અભિપ્રાય એ છે કે-ગુરૂની પાસે રહેવાવાળા શિષ્યોને અનેક પ્રકારનો લાભ થાય છે અને તેનાથી વિપરીત એકાકી વિહાર કરવાવાળામાં અનેક દોષ ઉત્પન્ન થાય છે.

एकचरस्य दोषानभिधाय सम्प्रति गुरुनिकटस्थितस्य मुनेः कर्तव्यं दर्शयति– 'तद्दृष्ट्ये 'त्यादि । 'तत्संज्ञी' संज्ञानं संज्ञा तस्य=गुरोः संज्ञा तत्संज्ञा, सा अस्यास्तीति तत्संज्ञी गुरोरिङ्गित–चेष्टितज्ञः, तन्निवेशनः=गुरुकुलनिवासी, 'तत्पुरस्कारः' तस्य=गुरोः पुरस्कारः=विनयवैयावृत्त्यादिनिखिलकार्यकरणेऽग्रेसरो मुनिः, 'तद्दृष्ट्या' तस्य=गुरोर्दृष्टिरभिप्रायस्तया ।

यद्वा—'तद्दृष्ट्या' तस्मिन्=निरवद्यानुष्ठाने दृष्टिस्तया । 'तन्मुक्त्या' तेन=गुरुणा कथिता मुक्तिः–सर्वविषयविरतिस्तन्मुक्तिस्तया विचरेत् । सर्वदा गुरु-

---

एकाकी विहार करनेवालों के दोषोंका कथन कर अब सूत्रकार गुरुके निकट वसनेवाले मुनिके कर्तव्योंको बतलाते हैं—

तद्दृष्टया इत्यादि–गुरुकी संज्ञा जिसके है वह तत्संज्ञी है अर्थात् गुरुके अभिप्रायों एवं चेष्टाओंको जो जाननेवाला है । जो तन्निवेशन–गुरुका निवेशनवाला–गुरुकुलमें रहनेवाला है । तत्पुरस्कार–गुरुकी विनय वैयावृत्ति आदि समस्त कार्यों के करनेमें जो अग्रेसर रहता है ऐसा मुनि गुरुके अभिप्रायसे अथवा निरवद्य अनुष्ठानमें दृष्टिसे और तन्मुक्ति–गुरुसे प्रतिपादित सर्वविषयविरतिरूप मुक्तिसे विचरण करे ।

भावार्थ—गुरुसमीप में वर्तमान शिष्य ही उनकी आज्ञानुसार संयमकी आराधनाशील बन कर सम्यग्ज्ञानादिकके लाभसे युक्त होता है; अन्य एकलविहारी नहीं । गुरुजनके निकट निवास करनेवाला शिष्य यतमानविहारी–यतनाको करते हुए विहार करनेका स्वभाववाला होता है । चित्तनिपाती–गुरुकी रुचिसे चलनेके स्वभाववाला–आचार्य महा-

---

એકાકી વિહાર કરવાવાળાના દોષોનું કથન કરી હવે સૂત્રકાર ગુરૂની નિકટ વસવાવાળા મુનિનાં કર્તવ્યોને બતાવે છે.

તદ્દૃષ્ટ્યા ઈત્યાદિ. ગુરૂની સંજ્ઞા જેને છે તે તત્સંજ્ઞી છે, અર્થાત્ ગુરૂના અભિપ્રાયો અને ચેષ્ટાઓને જે જાણવાવાળા છે. જે તન્નિવેશન-ગુરૂકુળમાં રહેવાવાળા છે, ગુરૂનો વિનય વૈયાવૃત્તિ આદિ સમસ્ત કાર્યો કરવામાં જે અગ્રેસર રહે છે એવા મુનિ ગુરૂના અભિપ્રાયથી અથવા નિરવદ્ય અનુષ્ઠાનમાં દૃષ્ટિથી અને તન્મુક્તિ–ગુરૂવડે પ્રતિપાદિત સર્વવિષયવિરતિરૂપ મુક્તિથી વિચરણ કરે.

ભાવાર્થ—ગુરૂસમીપ રહેનાર શિષ્ય જ તેની આજ્ઞાનુસાર સંયમનો આરાધનાશીલ બનીને સમ્યગ્જ્ઞાનાદિકના લાભથી યુક્ત બને છે. પણ એકલ-વિહારી નહીં, ગુરૂજનની નિકટ નિવાસ કરનાર શિષ્ય યત્નાઓ કરતાં કરતાં વિહાર કરવાના સ્વભાવવાળો બને છે.

समीपे वर्तमानस्तदाज्ञानुसारी संयमी सम्यग्ज्ञानादिकं लभते नैकाकिविहारीति हृदयम्, स च कीदृशो भवेदित्याह–'यतमानविहारी'–त्यादि। यतमानविहारी यतमानः=यतनां कुर्वाणः सन् विहर्तुं शीलं यस्य स यतमानविहारी, अपि च 'चित्तनिपाती' चित्तं गुरोरभिरुचिस्तेन निपतितुं शीलं यस्य स चित्तनिपाती= आचार्याभिप्रायानुगमनशीलः, एवं च 'पथिनिर्ध्यायी' कुत्रापि निर्गतस्य गुरोः पन्थानं=मार्गं निर्ध्यातुं शीलं यस्य स पथिनिर्ध्यायी=गुरुमार्गानुगामी, उपलक्षणं शय्यादिप्रलोकी चाहारगवेषीत्यादेरपि बोध्यम्। अन्यच्च–'पर्यबाह्यः' परि=सर्वत आचार्यस्याग्रतः पृष्ठतः स्थित्वा अबाह्यः=अदूरवर्ती गुरोरवग्रहावस्थायी, प्राणान्= एकेन्द्रियादिजीवान् दृष्ट्वा=वीक्ष्य तदुपमर्दनं परिहरन् गच्छेत्=गुर्वाज्ञायां विचरेत्॥२॥

राजके अभिप्राय अनुसार प्रवृत्तिशील होता है। पथिनिर्ध्यायी–कहीं भी बाहर गये हुए गुरु महाराज के ध्यान–अवलोकन करनेके शीलवाला- उनके आगमनकी प्रतीक्षावाला–गुरुके मार्गपर चलनेवाला, उपलक्षणसे उनकी शय्या–आसन आदि का निरीक्षण करनेवाला, उनके लिये आहा- रादिककी गवेषणा करनेवाला इत्यादि बातोंका भी संग्रह कर लेना चाहिये। तथा–पर्यबाह्यः–आचार्य महाराजके आगे और पीछे स्थित हो कर भी जो दूरवर्ती न हो–गुरुप्रदत्त नियमादिकोंका पालक हो अर्थात् गुरुदेव जो भी पचक्खाण देवें उसे प्रसन्नचित्तसे ग्रहण करनेवाला हो। ऐसा मुनि ही एकेन्द्रियादिक जीवों को आत्मौपम्येन देखकर–जान कर उनके उपमर्दनसे विरक्त हो गुरुकी आज्ञामें रहनेयोग्य है। उनकी आज्ञानुसार अपनी प्रत्येक चर्या करनेवाला मुनि ही उनके निकट रह सकता है॥ सू० २॥

ગુરૂની રૂચિથી ચાલવાના સ્વભાવવાળા આચાર્ય મહારાજના અભિપ્રાય અનુસાર પ્રવૃત્તિશીલ બને છે. કોઈ પણ સ્થળે બહાર ગયેલા ગુરૂના આગમનનું ધ્યાન, અવલોકન કરવાની વૃત્તિવાળા તેના આગમનની પ્રતીક્ષાવાળા, ગુરૂના માર્ગ પર ચાલવાવાળા, ઉપલક્ષણથી તેની શૈયા–આસન આદિનું નિરીક્ષણ કરવાવાળા ગુરૂ માટે આહારાદિકની ગવેષણા કરવાવાળા ઈત્યાદિ વાતોનો પણ સંગ્રહ કરી લેવો જોઈએ. તથા પર્યબાહ્યઃ—આચાર્ય મહારાજની આગળ અને પાછળ સ્થિત બનીને પણ દૂરવર્તી ન હોય અને ગુરૂ–પ્રદત્ત–નિયમાદિકોના પાલક હોય અર્થાત્ ગુરૂદેવ જે પણ પચ્ચખાણ દે તેને પ્રસન્નચિત્તથી ગ્રહણ કરવાવાળા હોય એવા મુનિ જ એકેન્દ્રિયાદિક જીવોને આત્મૌપમ્યથી દેખીને—અર્થાત્ આત્મસમાન જાણીને તેના ઉપમર્દનથી વિરકત હોય ગુરૂની આજ્ઞામાં રહેવાયોગ્ય હોય છે. એમની આજ્ઞાનુસાર પોતાની પ્રત્યેક ચર્યા કરવાવાળા મુનિ જ તેમની સમીપ રહી શકે છે. ॥ સૂ૦ ૨ ॥

अपि चान्यदपि दर्शयति—' से अभिक्कममाणे ' इत्यादि ।

मूलम्—से अभिक्कममाणे पडिक्कममाणे संकुचमाणे पसारेमाणे विणिवट्टमाणे संपलिमज्जमाणे, एगया गुणसमियस्स रीयओ कायसंफासं समणुचिन्ना एगतिया पाणा उद्दायंति, इहलोगवेयणविज्जावडियं जं आउट्टीकयं कम्मं तं परिन्नाय विवेगमेइ, एवं से अप्पमाएण विवेगं किट्टइ वेयवी ॥ सू० ३ ॥

छाया—सोऽभिक्रामन् प्रतिक्रामन् संकुचन् प्रसारयन् विनिवर्तमानः संपरिमृजन्, एकदा गुणसमितस्य रीयमाणस्य कायसंस्पर्शमनुचीर्णा एके प्राणिनोऽपद्रान्ति, इहलोकवेदनवेद्यापतितं यद् आकुट्टीकृतं कर्म तत्परिज्ञाय विवेकमेति, एवं तस्याप्रमादेन विवेकं कीर्तयति वेदवित् ॥ सू०३ ॥

टीका—' सोऽभिक्राम 'न्नित्यादि, सः=पूर्वोक्त आचार्यादेशकारी मुनिः, 'अभिक्रामन्'=अभि=साम्मुख्येन क्रामन्=व्रजन्, प्रतिक्रामन्=प्रत्यागच्छन्, संकुचन्=पाणिपादादीनां संकोचं कुर्वन् प्रसारयन्=तानेव संकुचितानवयवान् विस्तारयन्, विनिवर्तमानः=सकलसावद्यक्रियाभ्यो वि=विशेषेण निवर्तमानः=परावर्तमानः संपरिमृजन्=सं=सम्यक्तया परि=सर्वतःमृजन्=पाण्याद्यवयवान् देहन्यासस्थानं च रजोहरणादिना परिशोधयन् गुरुकुले संवसेत् । एतेषां विशेषणानामुपलक्षणतयो-

---

इसी विषयसे लगती हुई और भी बात कहते हैं " से अभिक्कमाणे " इत्यादि ।

पूर्वोक्त रीतिसे आचार्य के आदेशका पालन करनेवाला मुनि जाते समय, आते समय, हस्त और पादादिकों के फैलाते एवं उनका संकोच करते समय सकल–सावद्य क्रियाओं से अच्छी तरह रहित होता हुआ तथा हस्त–पादादिक अवयवोंका एवं अपने उठने बैठने आदिके स्थानका रजोहरणादिकसे परिमार्जन करता हुआ गुरुकुलमें रहनेके लायक होता है। अर्थात्–गुरुकुलमें निवास वही मुनि कर सकता है जो

આ વિષયને લગતી બીજી પણ વાત કહે છે " से अभिक्कममाणे " ઇત્યાદિ.

પૂર્વોક્ત રીતિથી આચાર્યના આદેશનું પાલન કરવાવાળા મુનિ જાવાના સમયે આવવાના સમયે, હાથ અને પગ ફેલાવતાં અને એનો સંકોચ કરતાં સમયે સકલ સાવદ્ય ક્રિયાઓથી સારી રીતે રહિત બની તેમજ હાથ પગ આદિ અવયવોનું અને પોતાના બેસવા ઉઠવાના સ્થાનનું રજોહરણાદિકથી પરિમાર્જન કરતાં ગુરુકુળમાં રહેવાને લાયક બને છે. અર્થાત્–ગુરુકુળમાં નિવાસ તે મુનિ કરી શકે છે

पवेशनपार्श्वपरिवर्तनादिकमपि मुनीनां यथाविधि करणीयत्वेन बोध्यम्। तत्रोपवेशनं गुरोरग्रे उत्कटासनादिनाऽवस्थानम्, चिरावस्थानाक्षमत्वे पृथिवीप्रत्युपेक्षण-परिमार्जनपूर्वकं कुक्कुटाचरणोदाहरणेनावयवसंकोचप्रसारादिकं कुर्वन् मयूरवज्जीवोपमर्दनशङ्कित एकपार्श्वस्थायी सुप्तोऽपि जाग्रदिव प्रमार्जनपूर्वकपार्श्वपरिवर्तन-विधायी विहरेत्। एवं च सदा सर्वथाऽप्रमत्तो मुनिः सकलां क्रियां विदधीतेति

अपने आचार्यके आदेशका पालन करनेवाला हो, तथा यत्नपूर्वक प्रत्येक गमनागमनादिक एवं हस्तप्रसारणादिक क्रियाओंका कर्त्ता हो। यत्नसे प्रवृत्तिशील साधु सकल सावद्यव्यापारोंसे रहित होता है।

ये सूत्रस्थ विशेषण मुनियोंकी अन्य उपवेशन–बैठना, शयन–सोना तथा पार्श्वपरिवर्तन–करवट बदलना आदि क्रियाओंके उपलक्षक हैं। मुनिजनोंको ये क्रियाएं भी यथाविधि ही करना चाहिये–ऐसा समझना चाहिये। गुरुके आगे उत्कटादिक आसनसे बैठना उपवेशन है। इस आसनसे यदि वह बहुत समय तक न बैठ सके तो पृथिवीको–बैठनेके स्थानको देखभाल कर और रजोहरण से उसे परिमार्जित कर कुक्कुटा-चरणके उदाहरणसे शारीरिक अवयवोंकी संकोच अथवा विस्तार–पसारना आदि क्रियाको करता हुआ वह मयूरकी तरह जीवोंकी विराधनासे डरता हुआ एक करवटसे सोया हुआ होने पर भी जगे हुए की तरह दूसरी करवट लेनेके स्थान को रजोहरणादिकसे प्रमार्जन–पूँज कर फिर करवट लेवे। अप्रमत्त मुनि इसी प्रकार निरन्तर अपनी समस्त क्रियाओंको करे।

જે પોતાના આચાર્યના આદેશનું પાલન કરનાર હોય તથા યત્નપૂર્વક પ્રત્યેક ગમનાગમનાદિક અને હસ્તપ્રસારણાદિ ક્રિયાઓના કરવાવાળા હોય. યત્નથી પ્રવૃત્તિશીલ સાધુ સકલસાવદ્ય વ્યાપારોથી રહિત હોય છે.

આ સૂત્રમાં મુનિઓની અન્ય ક્રિયાઓ કે જેમનું તેમણે યથાવિધિ પાલન કરવાનું હોય છે તે બતાવવામાં આવેલ છે. ઉપવેશન–બેસવું, શયન–સુવું તથા પાર્શ્વપરિવર્તન–પડખું બદલવું આ ક્રિયાઓ મુનિજનોએ યથાવિધિ કરવી જોઈએ. ગુરૂની સામે ઉકડૂ–આદિ આસનથી બેસવું જોઈએ. એ આસનથી જો તે વધારે સમય બેસી ન શકે તો પૃથ્વીપર–બેસવાના સ્થાનને રૂડી રીતે જોઈ રજોહરણથી સાફ કરી શારીરિક અવયવોની કુકડાની માફક સંકોચ અથવા વિસ્તાર ઈત્યાદિ અર્થાત્ પ્રસારવા આદિ ક્રિયાઓ નિયમસર કરતો થકો મોરની માફક જીવોની વિરાધનાથીડરતો રહે. એક પડખે સુતેલ હોય અને બીજું પડખું ફેરવતાં સચેત બની

भावः। अप्रमादपूर्वक-सकलकार्यकारिणोऽन्तरायोदयात् यद्भवेत्तद्दर्शयति-'एकदे'-त्यादि, एकदा=कदाचित्, 'गुणसमितस्य' गुणेन=मुनिगुणेन अप्रमादादिना समितः=संयुतो गुणसमितस्तस्य, रीयमाणस्य=सम्यग्गच्छतः पूर्वोक्ताभिक्रमणादि-विशेषणविशिष्टस्य मुनेः 'कायसंस्पर्शं' कायस्य=शरीरस्य संस्पर्शः=कायसंस्पर्शस्तम् समनुचीर्णाः=संप्राप्ताः सम्पातिमादय एके=केचन प्राणाः=द्वीन्द्रियादयः अपद्रावन्ति=म्रियन्ते। अत्र मरणरूपपश्चिमावस्थाया ग्रहणात् पूर्वावस्थाया अपि ग्रहणं भवतिः तथाहि-केचन हस्ताद्याघातेन संघात्यन्ते, अपरे म्लायन्ति, अन्ये परितप्यन्ते। अत्र च कर्मबन्धस्य वैचित्र्यं वर्तते, तद्यथा शैलेशीमुपगतस्य पाण्याद्य-

---

अप्रमादपूर्वक अपनी सकल क्रियाओंको करनेवाले मुनिजनके अन्तरायके उदयसे जो हो जाता है उसे सूत्रकार "एकदा गुणसमितस्य" इत्यादि सूत्रांशसे प्रकट करते हैं। मुनिगुण-अप्रमादसे युक्त उस मुनिके कदाचित् चलते समयमें, अर्थात्-जाते उठते बैठते समयमें शारीरिक स्पर्शको प्राप्तकर द्वीन्द्रियादिक जीव विराधित हो जाते हैं अथवा यहां पर मरणरूप पश्चिम-अन्तिम अवस्थाके ग्रहणसे उससे पूर्व अवस्था का भी ग्रहण होता है, इससे यह बात इतनी और समझ लेना चाहिये कि कोई २ कुन्थ्वादिक जीव उसके हस्तादिकके आघातसे विराधित हो जाते हैं, कोई कोई म्लान हो जाते हैं और कोई कोई संताप पाते हैं।

यहां पर कर्मबन्धकी विचित्रता है, जैसे—शैलेशी अवस्थासंपन्नके

રજોહરણાદિકથી એ સ્થાન પુંજીને પડખું બદલે. આ રીતે મુનિએ નિરન્તર પોતાની બધી ક્રિયાઓ કરવી જોઇએ.

પ્રમાદરહિત પોતાની બધી ક્રિયાઓ કરનાર મુનિજનને કોઇ કોઇ વખત અન્તરાયના ઉદયથી જે થાય છે તે સૂત્રકાર "एकदा गुणसमितस्य" ઇત્યાદિ સૂત્રાંશથી પ્રગટ કરે છે—મુનિગુણ અપ્રમાદથી યુકત એવા મુનિનો કદાચ ચાલતા સમયે અર્થાત્ આવતાં-જતાં, ઉઠતાં બેસતાંના સમયે શારીરિક સ્પર્શ પ્રાપ્ત કરી દ્વીન્દ્રિયાદિક જીવ વિરાધિત બની જાય છે. અથવા અહિં પર મરણરૂપ પશ્ચિમ-અંતિમ અવસ્થાના ગ્રહણથી એને એની પૂર્વ અવસ્થાનું પણ ગ્રહણ થાય છે. આથી એ વાત સમજી લેવી જોઈએ કે કોઇ કોઈ કુન્થ્વાદિક જીવોની તેના હસ્તાદિકના અડવાથી વિરાધના થઇ જાય છે. કોઈ કોઈ જીવ ગ્લાન થઈ જાય છે, કોઈ કોઈ સંતાપ કરે છે.

અહિંયાં કર્મબંધનની વિચિત્રતા છે. જેમ કે-શૈલેશી-અવસ્થા-સંપન્નના

वयवस्पर्शजनिते मशकादिसत्त्वघातेऽपि बन्धहेतुभूतात्मविपरिणामाभावान्नैव कर्मबन्धो भवितुमर्हति, उपशान्तक्षीणमोहसयोगिकेवलिनश्च सामयिकः कर्मबन्धो जायते, स्थितिहेतुककषायाभावात्। अत्रायं विवेकः—

प्रथमसमये बन्धो द्वितीयसमये वेदनं तृतीये च निर्जरणं जायते, इति तृतीयसमयस्य निर्जरसामायिकत्वात् सामायिकत्वेन प्रतिपादनम्।

अप्रमत्तसंयतेः कर्मबन्धो जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तस्थितिकः, उत्कृष्टतश्चान्तःकोटिकोटिस्थितिकः। प्रमत्तसंयतेरप्यनाकुट्टिकया प्रवर्त्तमानस्य क्वचित्कदाचित् करचर-

---

हस्तादिक अवयवके स्पर्शसे मशकादिक प्राणियोंकी विराधना भी हो जाती है तो भी बन्धके कारणभूत आत्माके प्रमादादिरूप परिणामका अभाव होनेसे उनके कर्मबन्ध नहीं होता है। उपशान्त मोह, क्षीणमोह और सयोगी केवलीके योगका सद्भाव होनेसे एकसमयस्थितिक सातावेदनीय कर्मका बन्ध होता है; क्यों कि उनमें स्थितिका कारणभूत कषाय का अभाव है। यहां यह समझना चाहिये—

प्रथम समयमें बन्ध, द्वितीय समयमें वेदन, और तृतीयमें उस बंधे हुए कर्मकी निर्जरा होती है। इस प्रकार तृतीय समयको निर्जरसामायिक होनेसे सामायिकरूपसे कहा है।

अप्रमत्तसंयतिमुनिका कर्मबन्ध जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अन्तःकोटिकोटिस्थितिवाला होता है। अनाकुट्टिका (अजानपने)से प्रवृत्त प्रमत्तसंयति साधुके हाथ पैर आदिके संघट्टनसे कदाचित् कहीं किसी प्राणीकी विराधना हो जाय तो उससे उनका कर्मबन्ध जघन्य

હસ્તાદિક અવયવના સ્પર્શથી મશકાદિક પ્રાણીઓની વિરાધના પણ થઈ જાય છે તો પણ બન્ધના કારણભૂત આત્માના પ્રમાદાદિરૂપ પરિણામનો અભાવ હોવાથી એને કર્મબંધન થતું નથી. ઉપશાન્તમોહ, ક્ષીણમોહ અને સયોગી કેવલીને યોગનો સદ્ભાવ હોવાથી એકસમયસ્થિતિક સાતાવેદનીય કર્મનો બન્ધ થાય છે. કેમકે આમાં સ્થિતિના કારણભૂત કષાયનો અભાવ છે. અહિં એ સમજવું જોઈએ—

પ્રથમ સમયે બન્ધ, બીજે સમયે વેદન, અને ત્રીજે સમયે એના બંધાયેલા કર્મની નિર્જરા બને છે. આ રીતે ત્રીજા સમયને નિર્જર સામાયિક હોવાથી સામાયિક રૂપથી કહ્યો છે.

અપ્રમત્ત સંયતિ મુનિના કર્મબન્ધ જઘન્ય અન્તર્મુહૂર્ત અને ઉત્કૃષ્ટ અન્તઃ–કોટીકોટીસ્થિતિવાળો હોય છે. અજાણપણાથી પ્રવૃત્ત પ્રમત્તસંયતિ સાધુના હાથ પગ આદિના અડવાથી કદાચ કોઈ સ્થળે કોઈ પ્રાણીની વિરાધના થઈ

णाद्यवयवसंस्पर्शात् प्राण्युपघातादौ जघन्यत उत्कृष्टतश्च कर्मबन्धः पूर्वोक्त एव विशेषिततरः। अयं कर्मबन्धस्तस्मिन्नेव भवे क्षीयते इति सूत्रेण दर्शयति-'इह०'-इत्यादि-एतेषां यत् कर्म तदिहलोकवेदनवेद्यापतितम्-इह=अस्मिन्नेव लोके=भवे वेदनं=भोगः इहलोकवेदनम्, तत्र-वेद्यम्-प्रकरणानुरोधात् प्रतिकूलवेदनीयं दुःखम् =इहलोकवेदनवेद्यम् तत्र आपतितं=तत्कारणत्वेन समायातम्=इहलोकवेदनवेद्यापतितं वर्तमानभवीयभोगानुबन्धि भवतीत्यर्थः। आकुट्टीकृतकर्मणि यत्कर्त्तव्यं तद्दर्शयति-'जं' इत्यादि, मुनिः यत्कर्म आकुट्टीकृतम् आकुट्टया=आभोगेन इच्छयेत्यर्थः, कृतं=विहितं कर्म आकुट्टीकृतम्, प्राणिघातेन तदिच्छया कायसंघट्टनादिना च जातं यत्कर्म ज्ञानावरणीयादि तज्जनकं वा प्राणातिपातादिरूपकर्म तत् सर्वं परिज्ञाय=ज्ञपरिज्ञया ज्ञात्वा प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहृत्य च विवेकं=दशप्रकारप्रायश्चित्तान्यतमग्रहणरूपं यद्वा विवेकं पृथग्भावं पुनरकरणरूपम् एति=प्राप्नोति, आकुट्टीकृतकर्मणोऽपि तपसा छेदेन पुनर्व्रतारोपणेन तथा घोरतरतपः संयमवैयावृत्त्यादिसमाराधनेन च तस्मिन्नेव भवे कर्मबन्धापनयनं भवतीति भावः। विवेकवान् मुनिस्तथा समाचरति येन कर्मबन्धो न भवतीति तात्पर्यम्।

और उत्कृष्ट पूर्वोक्त स्थितिवाला होता है। परन्तु अप्रमत्त मुनिसे प्रमत्त मुनिके विशेषतर होता है। इस कर्मबन्धका इसी भवमें क्षय हो सकता है। इसीको सूत्रसे दिखलाते हैं-'इह०' इत्यादि—

इनका जो पूर्वोक्त कर्मबन्ध है, वह इहलोकवेदनवेद्यापतित है। अर्थात्-इसी भवमें भोगमें आकर नष्ट होनेवाला होता है। आकुट्टिकासे किये गये कर्ममें क्या करना चाहिये, वह 'जं' इत्यादिसे दिखलाते हैं। प्राणिघातसे, प्राणिघातकी इच्छासे तथा कायसंघट्टन आदिसे जो ज्ञानावरणीयादि कर्म उत्पन्न हुए तथा उनके जनक प्राणातिपातादि कर्म उत्पन्न हुए तथा उनके जनक प्राणातिपातादि कर्म आचरित हुए, उनको ज्ञपरि-

જાય તો એથી એનાં કર્મબંધ જઘન્ય અને ઉત્કૃષ્ટ પૂર્વોક્ત સ્થિતિવાળા બને છે. પરંતુ અપ્રમત્ત મુનિ કરતાં પ્રમત્ત મુનિને વિશેષતર કર્મબંધ થાય છે. આ કર્મબન્ધનો આ જ ભવમાં ક્ષય થઈ શકે છે. એને સૂત્રથી બતાવેલ છે. "इह" ઇત્યાદિ.

આનો જે પૂર્વોક્ત કર્મબન્ધ છે તે ઇહલોકવેદનવેદ્યા-પતિત છે. અર્થાત આ જ ભવમાં ભોગવવા અને નષ્ટ થવાવાળો હોય છે. આકુટ્ટિકાથી કરાયેલા કર્મ માં શું કરવું જોઇએ, આ "जं" ઇત્યાદિથી બતાવેલું છે-પ્રાણિઘાતથી, પ્રાણિઘાતની ઇચ્છાથી, તથા કાયસંઘટ્ટન વગેરેથી જે જ્ઞાનવરણીયાદિ કર્મ ઉત્પન્ન

कर्मविवेकमाह—' एवमित्यादि, वेदवित् स्वसमयपरसमयज्ञस्तीर्थंकरो गणधरश्चतुर्दशधरो वा एवं=पूर्वोक्तप्रकारेण वक्ष्यमाणप्रकारेण वा अप्रमादेन=प्रमादवर्जनेन दशप्रकारप्रायश्चित्तेषु कस्यचन सम्यगाचरणेनेत्यर्थः, तस्य कर्मणो विवेकं पृथग्भावमभावं वा कीर्त्तयति=कथयति ॥ सू० ३ ॥

ज्ञासे जानकर और प्रत्याख्यान परिज्ञासे परिहार कर मुनि विवेकको अर्थात् दशविध प्रायश्चित्तोंमें किसी एकको ग्रहण करके अथवा पूर्वोक्त आचरण फिर कभी न करना, इस प्रकार विवेकको प्राप्त करता है।

जान बूझ कर जिन्होंने प्राणिघात आदि किया, ऐसे मुनिका भी कर्मबन्ध तपसे, छेदसे, दुबारा दीक्षा देनेसे तथा घोरतर तप संयम वेयावच्च आदिके समाराधनसे उसी भवमें नष्ट हो जाता है। सभीका तात्पर्य यह है कि विवेकवान् मुनिको वैसा आचरण करना चाहिये, जिससे कर्मबन्ध न हो, प्राणियों की हिंसासे, इच्छासे और शारीरिक संघट्टन आदिसे उत्पन्न हुआ जो ज्ञानावरणीयादिक कर्म है, अथवा इस कर्मका उत्पादक जो प्राणातिपातादिकरूप कर्म हैं, उन सबका ज्ञपरिज्ञासे जान कर और प्रत्याख्यान परिज्ञासे परित्याग कर दश प्रकारके प्रायश्चित्तों में से एक प्रायश्चित्तरूप जो विवेक नामका प्रायश्चित्त है उसका जो पालन करता है वह विवेकवान है। अथवा-विवेक शब्दका अर्थ-पृथग्भाव भी है। पृथग्भावका अर्थ है-जिस कार्यका त्याग कर दिया है उसका

થાય તથા તેના જનક પ્રાણાતિપાતાદિ કર્મ આચરિત અને તેને જ્ઞ-પરિજ્ઞાથી વિચારી અને પ્રત્યાખ્યાન પરિજ્ઞાથી પરિહાર કરી મુનિ વિવેકને અર્થાત્ દશવિધ પ્રાયશ્ચિત્તમાંના કોઈ એકને ગ્રહણ કરી અથવા પૂર્વોક્ત આચરણ ફરી કદિ ન કરવાનું આ પ્રકારના વિવેકને પ્રાપ્ત કરે છે.

સમજવા છતાં જેણે પ્રાણઘાત ઇત્યાદિ કર્યું એવા મુનિનાં કર્મબન્ધ, તપથી, છેદથી, બીજી વખત દીક્ષા દેવાથી તથા ઘોરતર તપ, સંયમ, વેયાવચ્ચ આદિના સમારાધનથી એ જ ભવમાં નાશ પામે છે. આનું તાત્પર્ય એ છે કે વિવેકવાન મુનિએ એવું આચરણ કરવું જોઈએ જેથી કર્મબન્ધ ન થાય. પ્રાણીઓની હિંસાથી, પ્રાણિઘાતની ઇચ્છાથી અને શારીરિક સંઘટ્ટન આદિથી ઉત્પન્ન થયેલ જે જ્ઞાનાવરણીયાદિક કર્મ છે અથવા આ કર્મના ઉત્પાદક જે પ્રાણાતિપાતાદિકરૂપ કર્મ છે, એ બધાને જ્ઞ-પરિજ્ઞાથી જાણી અને પ્રત્યાખ્યાન પરિજ્ઞાથી પરિત્યાગ કરી દસ પ્રકારના પ્રાયશ્ચિત્તમાંથી એક પ્રાયશ્ચિત્તરૂપ જે વિવેક નામનું પ્રાયશ્ચિત્ત છે એનું જે પાલન કરે છે તે વિવેકવાન છે. અથવા વિવેક શબ્દનો અર્થ-પૃથક્ભાવ પણ છે. "પૃથગ્ભાવ"નો અર્થ છે-જે કાર્યનો ત્યાગ કર્યો છે તે ફરીથી ન કરવું.

कीदृशः पुनरप्रमादी भवतीति दर्शयति ' से पभूयदंसी ' इत्यादि ।

मूलम्—से पभूयदंसी पभूयपरिन्नाणे उवसंते समिए सहिए सयाजए दट्ठुं विप्पडिवेएइ अप्पाणं—किमेस जणो करिस्सइ, एस से परमारामो जाओ लोगंसि इत्थीओ, मुणिणो हु एयं पवेइयं, उब्बाहिज्जमाणे गामधम्मेहिं, अवि निब्बलासए, अवि ओमोयरियं कुज्जा, अवि उड्ढं ठाणं ठाइज्जा, अवि गामाणुगामं दूइज्जा, अवि आहारं वुच्छिदिज्जा, अवि चए इत्थीसु मणं, पुव्वं दंडा पच्छा फासा पुव्वं फासा पच्छा दंडा, इच्चेए कळहासंगकरा भवंति, पडिलेहाए आगमित्ता आणविज्जा अणासेवणाए त्तिबेमि, से नो काहिए नो पासणिए नो मामए णो कयकिरिए वइगुत्ते अज्झप्पसंवुडे परिवज्जए सया पावं, एयं मोणं समणुवासिज्जासि—त्तिबेमि ॥ सू० ४ ॥

छाया—स प्रभूतदर्शी प्रभूतपरिज्ञान उपशान्तः समितः सहितः सदा यतः दृष्ट्वा विप्रतिवेदयत्यात्मानं—किमेष जनः करिष्यति, एष तस्य परमारामो जातो लोके स्त्रियः, मुनिना हु एतत्प्रवेदितम् , उद्बाध्यमानो ग्रामधर्मैः, अपि निर्बलाशकः, अप्यवमौदर्यं कुर्यात् , अप्यूर्ध्वं स्थानं तिष्ठेत् , अपि ग्रामानुग्रामं द्रवेत् , अप्याहारं व्यवच्छिन्द्यात् , अपि त्यजेत् स्त्रीषु मनः, पूर्वं दण्डाः पश्चात्स्पर्शाः पूर्वं स्पर्शाः पश्चाद्दण्डाः,

---

फिर नहीं करना । इस विवेक प्राप्त मुनि अपनी प्रवृत्ति इस प्रकारकी रखता है कि जिससे उसे नवीन कर्मका बन्ध नहीं होता है । इस प्रकार स्व-पर सिद्धान्तवेदी तीर्थङ्कर, गणधर, अथवा चतुर्दशपूर्वके पाठी श्रुतकेवली भगवान पूर्वोक्त प्रकारसे अथवा वक्ष्यमाण प्रकारसे यही कहते हैं कि जो मुनि दश प्रकारके प्रायश्चित्तका भी सम्यक् रीतिसे सेवन करता है वह अपने कर्मोंके अभावका–इन्हें अपनी आत्मासे भिन्न करने का कर्त्ता होता है ॥सू० ३॥

આ વિવેક પ્રાપ્ત મુનિ પોતાની પ્રવૃત્તિ એવા પ્રકારની રાખે છે કે જેથી એને નવીન કર્મનો બન્ધ થતો નથી. આ રીતે સ્વ-પર સિદ્ધાંતવેદી તીર્થંકર, ગણધર અને ચતુર્દશ પૂર્વના પાઠી શ્રુતકેવલી ભગવાન પૂર્વોક્ત પ્રકારથી અને વક્ષ્યમાણ પ્રકારથી એ જ કહે છે કે જે મુનિ દસ પ્રકારના પ્રાયશ્ચિત્તોમાંથી કોઈ એક પ્રાયશ્ચિત્તનું પણ સમ્યક્ રીતિથી સેવન કરે છે તે પોતાના કર્મના અભાવનો એટલે તેને પોતાના આત્માથી જુદા કરવાનો કર્તા બને છે. ॥ સૂ૦૩ ॥

इत्येते कलहासङ्करा भवन्ति; प्रत्युपेक्ष्याऽऽगम्याऽऽज्ञापयेदनासेवनयेति ब्रवीमि, स नो कथकः नो प्राश्निकः नो कृतक्रियो वाग्गुप्तोऽध्यात्मसंवृतः परिवर्जयेत् सदा पापम्, एतन्मौनं समनुवासयेदिति ब्रवीमि ॥ सू० ४ ॥

टीका—' स प्रभूतदर्शी 'त्यादि, सः=संयमी ' प्रभूतदर्शी ' प्रभूतं=भूत-भविष्यद्वर्तमानकालीनं प्रमादविषयकं द्रष्टुं शीलं यस्य स प्रभूतदर्शी—उपार्जितकर्मणः कालत्रयेऽप्यवश्योपभोग्यत्वेन दर्शनशील इत्यर्थः, किंच ' प्रभूतपरिज्ञानः' प्रभूतं= प्रचुरं परिज्ञानं प्राणिपरिपालनोपायस्य संसारापवर्गहेतोश्च सम्यग्ज्ञानं यस्य स प्रभूतपरिज्ञानः—हेयोपादेयपरिज्ञानकुशलः, किंच उपशान्तः=इन्द्रियनोइन्द्रियोप-शमेन कषायोपशमेन च शान्तिमुपयातः, समितः=ईर्यादिपञ्चसमितिभिः संयुक्तः, यद्वा—' समितः ' सम्=सम्यग् रत्नत्रयम्—इतः=प्राप्तः। सहितः=ज्ञानादि-

मुनि किस प्रकार अप्रमादी होता है, इस बातको कहते हैं " से पभूयदंसी " इत्यादि—

भूत, भविष्यत् और वर्तमानकाल सम्बन्धी प्रमादके विषयको देखने का जिसका स्वभाव होता है वह प्रभूतदर्शी है—अर्थात्—उपार्जित कर्म कालत्रयमें भी अन्यथा नहीं होता है, उसका फल अवश्य भोगना पड़ता है—इस प्रकारकी निस्संदेह दृष्टिसे युक्त है, प्रभूतज्ञानी है—अर्थात्—प्राणि-गणकी रक्षाके उपाय, संसार एवं अपवर्गके कारणों का जिसे सम्यक्ज्ञान है, हेय और उपादेय तत्त्वका जिसे वास्तविक भान है, वह प्रभूतज्ञानी है। जो उपशान्त है, इन्द्रिय और नोइन्द्रिय—मनके उपशम तथा कषाय के उपशमसे जो शान्तिको प्राप्त हो चुका है, ईर्या आदिक पांच समितियों से जो युक्त है, अथवा—सम्—सम्यक् रत्नत्रयकी जिसे प्राप्ति है, सहित—

કેવા પ્રકારનો મુનિ અપ્રમાદી હોય છે આ વાતને કહે છે. " से पभूयदंसी " ઇત્યાદિ.

ભૂત ભવિષ્ય અને વર્તમાનકાળ સંબંધી પ્રમાદના વિષયને દેખવાનો જેનો સ્વભાવ છે તે પ્રભૂતદર્શી છે. અર્થાત્ ઉપાર્જીત કર્મ કાલત્રયમાં પણ નિષ્ફળ બનતું નથી તેથી તેનું ફળ અવશ્ય ભોગવવું પડે છે. આ પ્રકારની અસંદિગ્ધ દૃષ્ટિથી યુકત છે. પ્રભૂતજ્ઞાની છે—પ્રાણિગણની રક્ષાનો ઉપાય, સંસાર અને મોક્ષનાં કારણોનું જેને સમ્યક્ જ્ઞાન છે, હેય અને ઉપાદેય તત્ત્વનું જેને વાસ્તવિક ભાન છે તે પ્રભૂતજ્ઞાની છે. જે ઉપશાન્ત છે—ઈન્દ્રિય અને નોઈન્દ્રિય—મનના ઉપશમથી તથા કષાયના ઉપશમથી જે શાન્તિને પ્રાપ્ત કરી શકેલ છે, ઇર્યા આદિક પાંચ સમિતિઓથી જે યુકત છે, અથવા સમ્—સમ્યક્ રત્નત્રયની જેને પ્રાપ્તિ છે, જ્ઞાના-

पञ्चाचारैः संपन्नः, एवं 'सदायतः' सदा=सर्वदा यतः=यतनावान् प्रमादरहितः। एतादृशो मुनिर्गुरुसमीपस्थितः कर्मणोऽपनयनं करोति ।

तस्य योषिदादिपरीषहोपनिपाते यद्विधेयं तद्दर्शयति-'दृष्ट्वा'-इत्यादि, पूर्वोक्तविशेषणविशिष्टः प्रमादवर्जितो मुनिः आत्मानं=स्वं दृष्ट्वा उपसर्गविधान-तत्परं स्त्रीजनं विप्रतिवेदयति=समालोचयति, किं समालोचयतीत्याह-'किमेष' इत्यादि, एष जनः=स्त्रीजनः ममापकारं किं करिष्यति? न किमपीत्यर्थः, यद्वा-रोगाभिभवादौ एष स्त्रीजनो मम तस्यामवस्थायां न त्राणाय वा शरणाय वा स्यादतः किं करिष्यति=न किमपीत्यर्थः। स्वीकृतपञ्चमहाव्रतस्य विमलकुलललाम-

---

ज्ञानादिक पांच आचारों से जो संपन्न है, तथा सदा जो यतनावान् है, प्रमादरहित है, ऐसा मुनि गुरुके समीप रह कर कर्मोंका नाश करता है।

इस मुनिके स्त्री आदि द्वारा परीषह तथा उपसर्ग उपस्थित किये जाने पर इसे जो विधेय है, वह 'सूत्रकार "दृष्ट्वा-इत्यादि" पदोंद्वारा स्पष्ट करते हैं-वे कहते हैं कि इन पूर्वोक्त विशेषणोंसे युक्त एवं अप्रमादी वह मुनि जब इसके उपर स्त्री आदिकों के द्वारा उपसर्ग आदि किये जाते हैं-अथवा उपसर्ग करने में तत्पर यह जब उन्हें देखता है, तो विचारता है कि यह स्त्री मेरा क्या अपकार करेगी, कुछ भी नहीं। अथवा जिस समय मेरे कोई रोग वगैरहका उपद्रव होगा उस अवस्था में भी यह उस रोगसे न मुझे बचा सकती है और न मुझे कोई सहारा ही दे सकती है। मैं पंचमहाव्रतों का धारी हूं। मैं इस मुनिकुलका तिल-

---

દિક પાંચ આચારોથી જે સહિત છે. તથા જે યત્નાવાન છે-પ્રમાદરહિત છે. એવો મુનિ ગુરૂના સમીપ રહીને કર્મોનો નાશ કરે છે.

સ્ત્રી આદિ દ્વારા પરીષહ તથા ઉપસર્ગ થતાં, આ મુનિનું જે કર્તવ્ય છે, તેને સૂત્રકાર "दृष्ट्वा-इत्यादि" પદોદ્વારા સ્પષ્ટ કરે છે. તે કહે છે કે—આવા પૂર્વોકત વિશેષણોથી યુકત અને અપ્રમાદી તે મુનિ જ્યારે તેના ઉપર સ્ત્રી વિગેરે આદિ દ્વારા ઉપસર્ગ વગેરે કરવામાં આવે છે, અથવા ઉપસર્ગ કરવામાં તત્પર તે જ્યારે તેને દેખે છે, તો તે વિચારે છે કે આ સ્ત્રીજન મારો શું અપકાર કરશે? કાંઇ પણ નહીં. અને જે સમય મને રોગ વગેરેનો ઉપદ્રવ થશે એ અવસ્થામાં પણ તે સ્ત્રી એ રોગથી બચાવી શકશે નહિ અને મને સાથ પણ આપી શકશે નહિ. હું પાંચ-મહાવ્રતધારી છું, હું આ મુનિકુળનો તિલક-

भूतस्य तिरस्कृतविषयसुखस्पृहस्यावधूतजीवनमनोरथस्य मम किमेष स्त्रीजनः करिष्यतीति सततं समालोचयतीत्यर्थः। एषः=स्त्रीजनस्तु तस्य प्रमादिनः परमारामः परमानन्दस्थानं जातोऽस्ति, किन्तु न ममाप्रमादिनः, यतो हि स्त्रियः=नार्यः लोके =विषयिलोके मोहोत्पादिन्यो भवन्ति, न संयतलोके।

एतत्कथनं न स्वमतिकल्पितमिति दर्शयति-'मुनिने 'त्यादि. एतत्=सर्वं पूर्वोक्तं वक्ष्यमाणमुपदेशवचनं च ' हु ' अवधारणे, मुनिना=तीर्थङ्करादिना प्रवेदितं =द्वादशविधपर्षदि प्ररूपितम्।

कभूत हूं। वैषयिक स्पृहाका मैं अन्तकर चुका हूं, अपने जीवनके पहिले अव्रत अवस्थाके समस्त मनोरथों को त्याग चुका हूं, मैं जब इस परि-स्थितिमें उपस्थित हूं तो अब इस स्त्रीद्वारा कृत उपसर्गोंकी मैं अपेक्षा ही क्या करूं। इसमें क्या शक्ति है जो मुझे लाख उपसर्ग करने पर भी अपने पथसे विचलित कर सके ? हां ! यह तो उन्हें ही हर तरहसे अपने लक्ष्यसे भ्रष्ट कर सकती है जो प्रमादमय आनंदके इच्छुक हैं-प्रमादी हैं, मुझ अप्रमादी को नहीं। क्यों कि स्त्रियोंका वश विषयीलोकमें कार्य कारी होता है, संयमीलोकमें नहीं।

इस कथनमें स्वमतिकी कल्पनाका निषेध करते हुए सूत्रकार कहते हैं " मुनिना " इत्यादि। यह समस्त पूर्वोक्त कथन तथा आगे और भी जो कुछ कहा जानेवाला है वह सब तीर्थङ्कर गणधरादि द्वारा ही उपदिष्ट है। यहां " हु " शब्द अवधारण अर्थमें है। उन्हों ने यह सब

भूत छुं, वैषयिक स्पृहानो में त्याग करेल छे- पोताना जीवनना पहेलाना अव्रत अवस्थाना समस्त मनोरथोनो त्याग करी चुक्यो छुं, हुं ज्यारे आ परिस्थितिमां उपस्थित छुं तो हवे आ स्त्रीजनद्वारा अपाता उपसर्गोनी हुं अपेक्षा केम राखी शकुं ? तेनामां शुं शकित छे जे मने लाख उपसर्ग करवा छतां पण मारा पोताना पथथी विचलित करी शके? हां ! ए तो एने ज लक्षथी भ्रष्ट करी शके छे के जे प्रमादमय आनंदनो इच्छिनार - प्रमादी छे. मारा जेवा अप्रमादीने नहीं. केम के स्त्रीओने वश विषयी लोको ज बनता होय छे. संयमी एने वश बनता नथी.

आ वातमां स्वमतिनी कल्पनानो निषेध करीने सूत्रकार कहे छे "मुनिना" इत्यादि. आ आखुंये पूर्वोकत कथन अने हवे पछी कहेवामां आवनार कथन आ बधुं तीर्थंकर गणुधर आदि द्वारा ज उपदिष्ट छे. अहिं " हु " शब्द

तमेव वक्ष्यमाणोपदेशमाह—'उद्बाध्यमान' इत्यादि, हे शिष्य ! यदि मुनिः 'ग्रामधर्मैः' ग्रामाणाम्=इन्द्रियसमूहानां धर्माः=स्वभावाः=ग्रामधर्मास्तैर्ग्रामधर्मैः स्वस्वविषयसमासक्तस्वभावैः 'उद्बाध्यमानः' उत्=प्राबल्येन बाध्यमानः=परिपीड्यमानो भवेत्तदा निर्बलाशकः' 'निर्बलं=प्रणीतरसबलरहितपुराणकुलत्थादिकम् अम्लतक्रमिश्रितं वल्लचणकादिनिष्पादितपर्युषितकरपट्टिकादिकं वा अश्नाति=भुङ्क्ते यः स निर्बलाशकः, नीरसाशनेन ग्रामधर्मस्यावश्योपशमसम्भवात्, 'अपि' शब्दः सम्भावनायाम् । निर्बलाशनेऽपि यदि न मोहोपशमस्ततः किं कुर्यादित्याह—'अप्यवमौदर्य'-मित्यादि, जीवनयात्रानिर्वाहार्थं केवलम् अवमौदर्यम्=ऊनोदरिकतपो-

विषय १२ प्रकारकी परिषद् में प्रतिपादित किया है। वक्ष्यमाण विषयको स्पष्ट करनेके लिये सूत्रकार कहते हैं "उद्बाध्यमानः" इत्यादि। हे शिष्य ! यदि कदाचित् मुनि ग्रामधर्म-अपने २ विषयों में समासक्तस्वभाववाली इन्द्रियोंसे-प्रबलरूपसे बाधित किया जाय तो उस समय उसे चाहिये कि वह निर्बल-इन्द्रियों को उत्तेजित नहीं करनेवाले रसबलरहित ऐसे पुरानी कुलथी आदि अन्नका तथा खट्टीछाछसे मिश्रित बालचणा आदिसे निष्पादित ऐसे पर्युषित (ठण्ढावासी) करपट्टिका (रोटी) आदिका भोजन करे। नीरस भोजनके करनेसे ग्राम धर्मका अवश्य ही उपशमन होता है। "अपि" शब्द संभावनामें है। नीरस भोजन करने पर भी यदि ग्रामधर्मका उपशमन न हो-मोहकी शांति न हो तो क्या क्या करे ? इस प्रकारकी आशंका का समाधान करनेके निमित्त सूत्रकार "अप्यवमौदर्यं कुर्यात्" कहते हैं। जीवनयात्राके

અવધારણ અર્થમાં છે. તેઓએ આ સઘળો વિષય ૧૨ પ્રકારની પરિષદમાં પ્રતિપાદિત કરેલ છે. વક્ષ્યમાણ વિષયને સ્પષ્ટ કરવા માટે સૂત્રકાર કહે છે "उद्बाध्यमानः" ઈત્યાદિ. હે શિષ્ય ! કદાચ કોઈ મુનિ ગ્રામધર્મ-પોતપોતાના વિષયોમાં સમાસકત સ્વભાવવાળી ઈન્દ્રિયોથી પ્રબળ રીતે બાધિત કરવામાં આવે તો એ સમયે એણે જોઈએ કે તે નિર્બળ ઈન્દ્રિયોને ઉત્તેજીત નહિ કરવાવાળા રસબળરહિત એવા પુરાતન કળથી આદિ અન્નનું તથા ખાટી છાશથી મિશ્રિત બાલચણા વગેરેથી નિષ્પાદિત એવા ઠંડી-વાસી રોટલી આદિનું ભોજન કરે. નીરસ ભોજન કરવાથી જો ગ્રામધર્મનું ઉપશમ ન બને—મોહની શાન્તિ ન થાય તો શું શું કરે ? આ પ્રકારની શંકાનું સમાધાન કરવા નિમિત્તે સૂત્રકાર "अप्यवमौदर्यं कुर्यात्" કહે છે અર્થાત્-જીવનયાત્રાના નિર્વાહ માટે સાધુજન એવી હાલતમાં

विशेषं कुर्यात्, ततोऽपीन्द्रियग्रामाणामनुपशमे ऊर्ध्वं स्थानं तिष्ठेत्=बाहू ऊर्ध्वीकृत्य कायोत्सर्गेण शीतोष्णादिरूपामातापनां कुर्यादित्यर्थः। रात्रौ दिवसेऽपि चैकद्वित्रिचतुर्यामक्रमेण तत्र तिष्ठेदित्याशयः, तेनाप्यनुपशमे 'ग्रामानुग्रामं' ग्रामो यतो विहरति, अनुग्रामो यत्र विहरति तं=ग्रामानुग्रामं ग्रामाद्ग्रामान्तरं द्रवेत्=विहरेत्-तदा न तत्र तिष्ठेत्, एवं करणेऽप्यनुपशमे आहारमपि व्युच्छिन्द्यात्। किंबहुना येन केनोपायेन मरणमपि कुर्यात् किन्तु स्त्रीषु मनो न निदध्यात्। तदेवाह-"अवि चए इत्थीसु मणं" अपि त्यजेत् स्त्रीषु मनः, स्त्रीविषये गतं मनो निवारयेत्। न तत्र मनो निदध्यादित्यर्थः। स्त्रीसङ्गिनां यद् भवति तदाह-'पूर्वं'मित्यादि, पूर्वं=

निर्वाह के लिये साधुजन ऐसी हालतमें ऊनोदरी-भूखसे कम अल्प आहार लेवे। यह बाह्यतप है। इतना करने पर भी यदि ग्रामधर्मकी शांति न हो तो ऐसी परिस्थितिमें "उर्ध्वं स्थानं तिष्ठेत्" हाथोंको ऊंचा करके कायोत्सर्गपूर्वक शीत और उष्णादिरूप आतापनयोग धारण करे। रात्रिमें भी एक दो तीन और चार प्रहर क्रमसे कायोत्सर्ग करे। इतने पर भी ग्रामधर्म शान्त न हो तो ग्रामानुग्राम विचरण करे। जहां ठहरा हुआ है वह ग्राम, जहां जाना होता है वह अनुग्राम है। उस समय वहां न ठहरे। फिर भी ग्रामधर्म शांत न हो तो ऐसी दशामें आहार का त्याग कर देवे।

अधिक क्या कहा जाय, जिस उपायसे वैषयिक अभिलाषा उत्पन्न न हो सके, मोहका उपशमन हो ऐसा ही उपाय करते रहना चाहिये। परन्तु स्त्रियों की ओर मनको नहीं लगाना चाहिये। स्त्रीसंग करनेवालों के

ઉનોદરી-ભૂખથી ઓછો અલ્પ આહાર લે. આ બાહ્ય તપ છે. આટલું કરવા છતાં પણ જો ગ્રામધર્મની શાન્તિ ન થાય તો એવી પરિસ્થિતિમાં "ऊर्ध्वं स्थानं तिष्ठेत्" હાથોને ઉંચા કરી કાયોત્સર્ગપૂર્વક શીતળ અને ગરમીરૂપ આતાપન યોગ ધારણ કરે રાત્રિના તથા દિવસના પણ એક બે ત્રણ અને ચાર પ્રહર ક્રમથી કાયોત્સર્ગ કરે. આટલું કરવા છતાં પણ જો ગ્રામધર્મ શાન્ત ન બને તો ગામેગામ વિચરતા રહે. જ્યાં પોતે રોકાયેલ છે તે ગ્રામ છે જ્યાં જવું છે તે અનુગ્રામ છે. ત્યાં એ રોકાય નહિ. છતાં પણ જો ગ્રામધર્મ શાન્ત ન થાય તો એવી દશામાં આહારનો ત્યાગ કરી દે. વધુ શું કહેવાનું હોય! જે ઉપાયથી વૈષયિક અભિલાષા ઉત્પન્ન ન થાય-મોહનું ઉપશમ બને એવોજ ઉપાય કરતા રહેવું જોઈએ. પરંતુ સ્ત્રીઓ તરફ મનને લાગવા દેવું ન જોઈએ. સ્ત્રીસંગ કરવાવાળા માટે જે દુઃખો ભોગવવાં પડે છે સૂત્રકાર

सङ्गात्पूर्वं दण्डाः=तदासङ्गस्य चिरसुपुष्टीकरणायार्थार्जनतत्परस्य कृष्यादिसावद्यव्यापारपरस्य तिरस्कृतक्षुत्पिपासादेरप्यत्र लोके दुःखविशेषरूपाः, पश्चात्=उपभोगानन्तरं स्पर्शाः=तदासेवनजन्यकर्मविपाकेन नरकादियातनाकारका दुःखविशेषा भवन्ति, यद्वा–पूर्वं तत्प्राप्तये दण्डाः=यष्ट्यादिप्रहाररूपाः पश्चात्=तदनन्तरं राजदण्डादिजनितावयवादिच्छेदनसमुत्पन्नदुःखविशेषाः, एवं पूर्वं स्पर्शाः=आश्लेषादिना स्पर्शाः=आपातसुखविशेषाः पश्चाच्च दण्डाः=परत्र नरकपातादिरूपा इह च

लिये जिन कष्टों को भोगना पड़ता है सूत्रकार उनका वर्णन "पूर्वंदण्डाः" इत्यादि पदोंसे करते हैं—स्त्रीसंगको चिरकाल तक पुरिपुष्ट करनेके लिये कामीजन अर्थके उपार्जन करनेमें तत्पर होते हैं-अर्थ संग्रहशील होते हैं-कृषी आदि सावद्यव्यापारों में लगते हैं। भूख प्यास आदिकी बाधाएं सहन करते हैं। मतलब-सावद्य व्यापारजन्य और भूख प्यास आदि जन्य अनेक "दण्ड" दुःखविशेषोंको वे भोगते हैं। पश्चात्-स्त्रीसेवन से उद्भूत कर्मके विपाकसे नरकादिकों की यातनाप्रदायक दुःखविशेषोंका उन्हें सामना करना पड़ता है।

अथवा- प्रथम स्त्रीप्राप्तिके लिये लकड़ी आदिके अनेक प्रहाररूप दण्डोंको और पीछे राजाकी तरफसे दण्डरूपमें प्राप्त अवयव आदिका जो छेदन है उस जन्य अनेक कष्ट कामियोंको भोगना पड़ता है। इसी प्रकार प्रथम स्त्री आदिके आलिङ्गनसे "स्पर्शाः" आपातसुखविशेष-काल्पनिक आनंद, पश्चात् परभवमें नरकादि गतियोंमें गमनरूप एवं

એનું વર્ણન "पूर्वदण्डाः" ઇત્યાદિ પદોથી કરે છે. સ્ત્રીસંગને લાંબા સમય સુધી પરિપુષ્ટ કરવા માટે કામીજન ધન મેળવવામાં તત્પર રહે છે–અર્થસંગ્રહશીલ બને છે. ખેતી આદિ સાવદ્ય વ્યાપારોમાં લાગે છે, ભૂખ તરસ આદિની વિટંબણાઓ સહન કરે છે.મતલબ સાવદ્યવ્યાપારજન્ય અને ભૂખ તરસ આદિ જન્ય અનેક "दण्ड" દુઃખ વગેરેને એ ભોગવે છે. પછી સ્ત્રીસેવનથી ઉદ્ભૂત કર્મના વિપાકથી નરકાદિકોની યાતનાવાળું દુઃખવિશેષોને તેણે સામનો કરવો પડે છે. અને પ્રથમ સ્ત્રીપ્રાપ્તિ માટે લાકડીઓ તેમજ તેના જેવા બીજા પ્રહારો તેમજ પાછળથી રાજ્યના તરફથી દંડરૂપમાં મળનાર બન્ધન કારાગાર ઇત્યાદિ અનેક પ્રકારનાં દુઃખ કામીઓએ ભોગવવાં પડે છે. આ પ્રકારે પ્રથમ સ્ત્રી આદિનાં આલિંગનથી "स्पर्शाः" કાલ્પનિક આનંદ અને પછી પરભવમાં નરકાદિગતિઓમાં ગમનરૂપ, એ લોકમાં હાથ, જીભ, વગેરેનું છેદન જેવા અનેક દંડ કામીઓએ

हस्तजिह्वाच्छेदादिरूपा दण्डविशेषा जायन्ते। अन्यदप्याह-'इत्येत' इत्यादि, इति=पूर्वोक्तदण्डस्पर्शादिप्राप्त्या एते=स्त्रीसङ्गसम्भवाः कामाः कलहाऽऽसङ्गकरा भवन्ति। स्त्रीहेतोर्बहूनां नृपादीनां युद्धादिना विनाशस्य सर्वजनवेद्यत्वात्। यद्वा-स्त्रीनिमित्तं क्रोध-रागयोः सद्भावस्य सर्वजनप्रसिद्धत्वात्। उपलक्षणान्मान-मायादिकारकत्वमपि बोध्यम्। ततः किं विधेयमित्याह-प्रत्युपेक्ष्येत्यादि, प्रत्युपेक्ष्य=स्त्रीप्रसङ्गस्य सर्वथाऽत्र परत्र च दण्डस्पर्शादिकारकत्वं कलहाऽऽसङ्गकार-कत्वमपि विचार्य आगम्य=तत्सर्वं बुद्ध्वा अनासेवनया=तदासेवनपरिवर्जनेन स्वात्मानं परं वा आज्ञापयेत्=तत्त्यागे नियोजयेत् इति भगवद्वाक्यमनुसृत्य तदा-

इस लोकमें हाथ, जीभ आदिका छेदन आदि स्वरूप अनेक-दण्ड-विशेष कामियों को सहना पड़ता है। इस प्रकार पूर्वोक्त दण्ड और स्पर्श आदिकी प्राप्तिसे स्त्रीप्रसंगसे समुद्भूत ये काम कलहके आसंगके उत्पन्न करनेवाले होते हैं। यह बात सर्वजन को मालूम ही है कि स्त्रीके निमित्तसे परस्पर अनेक राजाओं में युद्ध छिडे हैं और वे उनके विनाश के हेतु हुए हैं।

अथवा-स्त्रीप्राप्तिके लिये क्रोध और रागका सद्भाव भी प्राणियोंमें सर्व-जन प्रसिद्ध ही है। उपलक्षणसे यह बात भी समझ लेनी चाहिये कि वे स्त्रीसंगसे उत्पन्न काम, मान और माया आदि कषायोंके भी उत्पादक होते हैं। इसलिये इस स्त्रीप्रसंगको इस लोक और परलोकमें सर्व प्रकारसे दण्ड एवं स्पर्श आदिका करनेवाला तथा कलहके आसंगका उत्पादक विचार कर और इस सबको जानकर मुनिको चाहिये कि वह अपनी आत्माको उसके सेवन करनेके सर्वथा त्यागसे युक्त करे, तथा परको

સહન કરવા પડે છે. આ પ્રકારે પૂર્વોકત દંડ સ્પર્શ આદિની પ્રાપ્તિથી સ્ત્રીપ્રસંગથી ઉત્પન્ન આ કામ, કલહના આસંગને ઉત્પન્ન કરનાર બને છે. આ વાત સર્વ જનને માલુમ છે. સ્ત્રીના નિમિત્તથી પરસ્પર અનેક રાજાઓમાં યુદ્ધ થયાં છે અને તેઓ એના વિનાશના હેતુ બન્યા છે. અથવા સ્ત્રી પ્રાપ્તિ માટે ક્રોધ અને રાગનો સદ્ભાવ પણ પ્રાણીઓમાં સર્વજનપ્રસિદ્ધ છે. ઉપલક્ષણથી આ વાત પણ સમજી લેવી જોઈએ કે સ્ત્રીસંગથી કામ માન અને માયા ઈત્યાદિ કષાયો પણ ઉદ્ભવે છે. આ માટે આ સ્ત્રીપ્રસંગને આ લોક અને પરલોકમાં સર્વ પ્રકારથી દંડ અને સ્પર્શ આદિના કરવાવાળા તેમજ કલહના આસંગનો ઉત્પાદક છે એવો વિચાર કરી આ બધાને જાણીને મુનિએ જોઈએ કે પોતાના આત્માને તેના

सङ्गा दुःखकराः कलहाऽऽसङ्गकराश्चेति तत्परिहारं च सर्वं कथयामि। अन्यदपि परित्यागसाधनमाह 'स' इत्यादि, सः=स्त्रीसङ्गजनितनरकनिगोदादिकटुकफलाभिज्ञत्वेन तत्परिहारी मुनिर्नो कथकः स्त्रीणां जातिकुलनेपथ्यशृङ्गारादिकथाकारको न भवेद्रहसि तस्यै धर्मादिकमपि न कथयेदिति भावः। एवं नो प्राश्निकः प्रश्नं करोतीति प्राश्निकः=स्त्रियं न किमपि पृच्छेत्, तथा हि–कीदृशस्ते पतिः? त्वां सम्मानयति न वा? कथं त्वं खिन्नेव प्रतिभासि? तव का सन्ततिः पुत्रो वा पुत्री? परिणीता पुत्री न वा? कस्मै दत्ता? दास्यसि न वा? स कीदृशः? धार्मिको धनि-

---

भी उसके सेवनका सर्वथा त्याग करावे। इस प्रकार भगवानके वचन अनुसार स्त्रीप्रसंगको दुःखप्रद एवं कलहासंगकारक जान कर मैंने ये सब उसके परित्याग का प्रकार कहा है। मुनिको इतना और भी करना चाहिये कि वह कभी भी उसकी जातिकी, उसके कुलकी, उसके वेष–भूषाकी तथा शृङ्गार आदिकी चर्चा नहीं करे और न उसके लिए एकान्तमें धर्मादिक का उपदेश ही दे। न स्त्रीसे उसके विषयकी कोई बात करे अर्थात्–" तुम्हारा पति कैसा है? तुम्हारा वह आदर करता है या नहीं? आज तुम उदास सी क्यों मालूम देती हो? तुम्हारे क्या संतान है पुत्र है या पुत्री? तुमने पुत्रीका विवाह कर दिया है कि नहीं? यदि कर दिया है तो किसके साथ किया है? यदि नहीं किया है तो क्यों नहीं किया? तुम्हारा जमाई कैसा है–धर्मात्मा है? धनिक है? या नहीं?" इत्यादि रूपसे पूछनेसे मुनिको अपने चारित्रमें दूषण

સેવનથી સદા દૂર રાખે. અને બીજાઓને પણ એના ત્યાગ માર્ગે દોરે. અને સર્વથા એનો ત્યાગ કરાવે. આ પ્રકારે ભગવાનના વચન અનુસાર સ્ત્રી–પ્રસંગને દુઃખપ્રદ એવં કલહ આસંગકારક જાણીને મેં આના પરિત્યાગનો પ્રકાર કહેલ છે. મુનિએ એટલું એ પણ કરવું જોઈએ કે તે કયારેય તેની જાતિની, એના કુળની તેમજ શૃંગારાદિકની ચર્ચા ન કરે. અને તેને એકાન્તમાં કદી ધર્માદિક ઉપદેશ પણ ન આપે. તેમજ સ્ત્રી સાથે તેના વિષયની કોઇ વાત ન કરે. અર્થાત્— તમારો પતિ કેવો છે? તમારો એ આદર કરે છે કે નહિ? આજે તમે ઉદાસ કેમ દેખાવ છો? તમારે શું સંતાન છે, પુત્ર છે કે પુત્રી ? તમે પુત્રીનો વિવાહ કરી દીધો છે કે નહિ? કર્યો છે તો કોની સાથે કર્યો છે? નથી કર્યો તો કેમ નથી કર્યો? તમારો જમાઈ અને તેનું કુટુંબ કેમ છે? ધર્માત્મા છે? ધનિક છે? કે કેમ. ઈત્યાદિ રીતે પુછવાથી મુનિને પોતાના ચારિત્રમાં દૂષણ આવે છે.

कश्चास्ति न वा ? इत्यादिवाक्यैः प्रश्नकरणे चारित्रदोषः सम्भवतीति नैवं कदाचिदपि प्रश्नं कुर्यादिति भावः। अन्यच्च नो मामकः=संसारावस्थापरिणीतायामपि तस्यां न ममत्वं कुर्यात् किं पुनरन्यस्याम् । एवं नो कृतक्रियः – कृता=विहिता क्रिया=स्त्रीसङ्गप्राप्त्यर्थमङ्गोपाङ्गादिचेष्टारूपा येन स कृतक्रियो न भवेत् । अनेन काययोगो निरुध्यते । एवं वाग्गुप्तः वाचा गुप्तो वाग्गुप्तः=वाचंयमः, स्त्रिया सह रहसि वार्तालापादिकं न कुर्यादित्यर्थः, किञ्च–अध्यात्मसंवृतः–आत्मनि=अन्तःकरणे इत्यध्यात्मं तेन संवृतः=संवरयुक्तः निवृत्त इत्यर्थः, अनेन मनोनिरोधो दर्शितः,

---

आता है । इसलिये ऐसे प्रश्न मुनिजनको स्त्रियोंसे करनेका निषेध है ।

इसी तरह मुनिको चाहिये कि यह अपनी संसारदशामें विवाही हुई स्त्रीमें भी ममत्व न रखे–करे । जब उसे निज स्त्रीमें भी ममत्व करने के त्यागका आदेश है तो फिर भला ! वह अन्य स्त्रीमें ममत्व भी कैसे कर सकता है, अर्थात्–नहीं कर सकता । मुनिको कृतक्रिय भी नहीं होना चाहिये–स्त्रीप्रसंगकी प्राप्तिके निमित्त उसे अंग और उपाङ्गादिककी चेष्टाका सर्वथा त्यागी होना चाहिये । इस कथनसे उसे काययोगके निरोध करनेका आदेश दिया गया है । अर्थात् इस प्रकारकी प्रवृत्तिसे काययोगका निरोध होता है । मुनिको वाग्गुप्त–वाचंयम होना चाहिये, एकान्तमें स्त्रीके साथ वार्तालाप आदि नहीं करना चाहिये । इससे वचनयोगका निरोध होता है । इसी प्रकार मुनिको अध्यात्मसंवृत होना चाहिये–मनोयोगका निरोध करना चाहिये । इस प्रकारसे अपनी प्रवृत्ति

આ માટે આવા પ્રશ્નો સ્ત્રીઓ સાથે કરવા મુનિજન માટે નિષેધ છે. એ જ પ્રકારે મુનિજને જોઈએ કે તે પોતાની સંસારી દશામાં વિવાહિત થયેલી સ્ત્રીમાં પણ મમત્વ ન રાખે. જ્યારે તેને પોતાની સ્ત્રીથી પણ મમત્વ ન રાખવાનો આદેશ છે ત્યારે બીજી સ્ત્રીઓમાં તે મમત્વ કઈ રીતે કરી શકે ? અર્થાત્ નહિ કરી શકે. મુનિએ કૃતક્રિય પણ ન બનવું જોઈએ. સ્ત્રીપ્રસંગની પ્રાપ્તિના નિમિત્ત તેને અંગ તેમજ ઉપાંગાદિકની ચેષ્ટાના ત્યાગી બનવું જોઈએ. આ કથનથી તેને કાયયોગના નિરોધ કરવાનો આદેશ અપાયેલ છે. અર્થાત્ આ પ્રકારની પ્રવૃત્તિથી કાયયોગનો નિરોધ થાય છે. મુનિએ વાગ્ગુપ્ત–વાચંયમ બનવું જોઈએ. એકાંતમાં સ્ત્રીની સાથે વાર્તાલાપાદિ નહિ કરવો જોઈએ. આનાથી વચનયોગનો નિરોધ થાય છે. આ રીતે મુનિએ અધ્યાત્મસંવૃત બનવું જોઈએ, એટલે મનોયોગનો નિરોધક બનવું જોઈએ. આ પ્રકારની પોતાની પ્રવૃત્તિ રાખનાર

एतादृशः सन् मुनिः सदा=सर्वकालं पापं=स्त्रीसङ्गजनितं दुष्कृतं पापजनकं कर्म वा मैथुनादिकं परिवर्जयेत्, उपलक्षणं प्राणातिपातादिपरित्यागस्यापि। उपसंहरन्नाह–'एत' दित्यादि–एतत्=उद्देशारम्भतो यदुक्तं तत् सर्वं "मौनं"=मुनेः=संयतस्याऽयं मौनस्तं संयमं समनुवासयेत्=परिपालयेत् इति। ब्रवीमीत्यस्यार्थस्तूक्त एव ॥सू०४॥

॥ पञ्चमाध्ययनस्य चतुर्थोद्देशः समाप्तः ॥ ५–४ ॥

रखनेवाला मुनि सदा स्त्रीप्रसंगजनित दुष्कृत अथवा पापजनक मैथुनादिक कर्मसे निवृत्त होता है। प्राणातिपातादिक पापकर्मका भी यह उपलक्षक है, इससे निवृत्त होनेसे मुनि हिंसादिक पापकर्मों से भी निवृत्त हो जाता है ऐसा समझ लेना चाहिये! इस प्रकारका उपसंहार करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि मुनि इस मौन–संयम का सदा पालन करे। "ब्रवीमि" इस पदका अर्थ पहिले कह ही दिया गया है॥

॥ पांचवें अध्ययनका चौथा उद्देश समाप्त ॥ ५–४ ॥

મુનિ સદા સ્ત્રીપ્રસંગથી બનતા દુષ્કૃત અને પાપજનક મૈથુનાદિક કર્મથી નિવૃત્ત થાય છે. પ્રાણાતિપાતાદિક પાપકર્મનો પણ એ ઉપલક્ષક છે. આનાથી નિવૃત્ત થવાથી મુનિ હિંસાદિક પાપકર્મોથી પણ નિવૃત્ત બની જાય છે. એવો અર્થ સમજી લેવો જોઈએ. આ પ્રકારે ઉપસંહાર કરતાં સૂત્રકાર કહે છે કે, મુનિ આ મૌન–સંયમનું સદા પાલન કરે. "ब्रवीमि" આ પદનો અર્થ અગાઉ કહી દેવામાં આવેલ છે.

પાંચમા અધ્યયનનો ચોથો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૫–૪ ॥



पञ्चमाध्ययनस्य पञ्चम उद्देशः ।

गतश्चतुर्थ उद्देशोऽधुना पञ्चमः समारभ्यते । एष चानन्तरसम्बन्धः – पूर्वोद्देशे च एकचरस्याव्यक्तस्य बहवोऽपाया जायन्ते तत्परिहाराय ज्ञानादिप्राप्तये च ह्रदसदृशस्य पञ्चाचारसेविन आचार्यस्य समीपे वसता कायवाङ्मनोगुप्तिमता स्त्र्यादिसङ्गरहितेन शिष्येण विचरणीयमित्याचारः प्रदर्शितः । स एवात्राचारो लोके सार-

---

पांचवें अध्ययनका पांचवां उद्देश ।

चतुर्थ उद्देश समाप्त हुआ, अब पंचम उद्देशका प्रारंभ होता है। इस उद्देशका चतुर्थ उद्देशके साथ संबंध है और वह इस प्रकारसे है, चतुर्थ उद्देशमें सूत्रकारने यह प्रदर्शित किया है कि जो एकचर्या करनेवाले अव्यक्त मुनि हैं उन्हें उस चर्यामें अनेक दोष लगते हैं, इसलिये उन दोषोंके परिहारके लिये तथा ज्ञानादिक गुणोंकी प्राप्तिके हेतु मुनिको चाहिये कि वह द्रह तुल्य एवं पंच आचारोंमें निरत अपने आचार्य गुरुदेवकी निश्रामें ही रहें। मनोगुप्ति, वचनगुप्ति एवं कायगुप्तिका पालन करें। स्त्री आदिके प्रसंगसे सदा दूर रहें। आचार्य गुरुदेवकी छत्रच्छाया के सहारे ही विहार करें। ऐसा ही मुनिका आचार है। और यही लोकमें सारभूत–उत्तम माना गया है। इसी आचारका मोक्षके सारथीभूत तीर्थङ्कर आदिकोंने सेवन किया है। अतः इसी आचारका सूत्र-

---

પાંચમા અધ્યયનનો પાંચમો ઉદ્દેશ

ચોથો ઉદ્દેશ સમાપ્ત થયો હવે પાંચમા ઉદ્દેશનો પ્રારંભ થાય છે. આ ઉદ્દેશનો ચોથા ઉદ્દેશ સાથે સંબંધ છે અને તે એ પ્રકારે કે–ચોથા ઉદ્દેશમાં સૂત્રકારે આ રજુ કરેલ છે જે એકચર્યા કરવાવાળા અવ્યક્ત મુનિ છે, એને એ ચર્યામાં અનેક દોષ લાગે છે. આથી આ દોષોના નિવારણ માટે તેમજ જ્ઞાનાદિક ગુણોની પ્રાપ્તિના હેતુથી મુનિએ દ્રહતુલ્ય એટલે પાંચ આચારોમાં નિરત પોતાના આચાર્ય ગુરૂદેવની છાયામાં જ રહેવું જોઈએ. મનોગુપ્તિ વચન–ગુપ્તિ અને કાયગુપ્તિનું પાલન કરે, સ્ત્રી આદિના પ્રસંગથી સદા દૂર રહે, આચાર્ય ગુરૂદેવની છત્રછાયાના નેસરાય વિહાર કરે. એવો જ મુનિનો આચાર છે અને એ જ લોકમાં સારભૂત–ઉત્તમ માનવામાં આવેલ છે. આ આચારનું મોક્ષના સારથી એવા તીર્થંકરાદિકોએ સેવન કર્યું છે. એટલે આ જ આચારનું સૂત્ર-

भूतो निर्वाणसारथिभिस्तीर्थकृद्भिः सेवित इति स एवात्र प्रतिपादयितव्योऽस्ति।
सम्प्रति दृष्टान्तेनाऽऽचारस्य सारत्वप्रकटनायाह-'से बेमि' इत्यादि।

मूलम्-से बेमि तं जहा-अवि हरए पडिपुण्णे समंसि भोमे चिट्ठइ उवसंतरए सारक्खमाणे, से चिट्ठइ सोयमज्झगए से पास सव्वओ गुत्ते, पास लोए महेसिणो जे य पन्नाणमंता पबुद्धा अरंभोवरया सम्ममेयंति पासह, कालस्स कंखाए परिव्वयंति त्तिबेमि ॥ सू० १ ॥

छाया--तद् ब्रवीमि तद्यथा-अपि ह्रदः प्रतिपूर्णः समे भौमे तिष्ठति उपशान्तरजाः समारक्षन्, स तिष्ठति स्रोतोमध्यगतस्तत् पश्य सर्वतो गुप्तः, पश्य लोके महर्षयो ये च प्रज्ञानवन्तः प्रबुद्धा आरम्भोपरताः सम्यगेतदिति पश्यत, कालस्य काङ्क्षया परिव्रजन्ति इति ब्रवीमि ॥ सू० १ ॥

टीका—'तद् ब्रवीमि' इत्यादि, अहं यादृशगुणगणसमुदित आचार्यो भवेत्तादृशं तीर्थङ्कराज्ञया तत्सर्वं ब्रवीमि=त्वां कथयामि, तदेव प्रतिपादयितुमाह-'तद्यथे'-त्यादि, तद्यथा=वाक्यप्रतिपादनार्थम्, अपि शब्दो भङ्गचतुष्टयसंग्राहकः। प्रतिपूर्णः =स्वच्छजलैः सार्वकालिकपुष्पादिभिरन्तश्चरजलजन्तुभिश्च समन्तात्पूर्णः शोभितो वा,

---

कार उसे प्रतिपादन योग्य समझकर इस उद्देशमें प्रतिपादन करते हैं। सर्व प्रथम वे दृष्टान्तसे आचारमें सारभूतता प्रदर्शित करनेके लिये कहते हैं "से बेमि" इत्यादि—

शिष्य को लक्ष्यकर सूत्रकार कहते हैं कि हे शिष्य! आचार्य महाराज कैसे २ गुणोंसे युक्त होते हैं, मैं तुम्हें यह कहता हूं। यहां आचार्य महाराजको जो जलाशयकी उपमा दी गई है उसका मतलब यह है- जिस प्रकार-सम भूमिभागमें स्थित जलाशय कभी शुष्क-पानीसे रिक्त नहीं होता है, न कभी वह विकृतिको ही प्राप्त करता है, सदा पानीसे

કારે પ્રતિપાદન યોગ્ય સમજી આ ઉદ્દેશમાં પ્રતિપાદન કર્યું છે. સહુ પ્રથમ દૃષ્ટાંતથી આચારમાં સારભૂતતા પ્રદર્શિત કરવાનું કહે છે. "से बेमि" ઇત્યાદિ.

શિષ્યને લક્ષ્યબિન્દુ બનાવી સૂત્રકાર કહે છે કે હે શિષ્ય! આચાર્ય મહારાજ કેવા કેવા ગુણોથી યુક્ત હોય છે તે હું તમને સમજાવું છું. અહિં આચાર્ય મહારાજને જળાશયની ઉપમા આપવામાં આવી છે. એનો મતલબ આ છે કે જે પ્રકારે-સમભૂમિ ભાગમાં સ્થિત જળાશય કોઈ વખત પાણી વિનાનું હોતું નથી તેમ ન તો કદી તે વિકૃતિને પ્રાપ્ત કરે છે. સદા સર્વદા પાણીથી

'उपशान्तरजाः'=उपशान्तं=नष्टं रजो धूलिर्यत्र स उपशान्तरजाः, यतो वर्षतौ जलादिप्रपाते जलं रजसः सम्पर्कात्कलुषं वर्षापगमे च रजसोऽपगमाच्छरदादावतिनिर्मलं जायते । समारक्षन्=अन्तःस्थितजलजन्तून् सम्यक् परिपालयन् ह्रदः=अगाधजलाशयः, समे=उच्चावचरहिते-भौमे=भूमेः=पृथिव्या अयं भौमो-भूभागस्तस्मिन् समे भूभागे यथा तिष्ठति कदाचिदपि न शुष्यति नापि वैकृत्यमुपगच्छति, तथैवाचार्योऽपि ह्रदवत् अनुप्रदर्श्यमानभङ्गचतुष्टयान्तर्गतप्रथमभङ्गावस्थितो ज्ञानादिसमन्वितः षटत्रिंशद्गुणभूषितः पञ्चाचायुक्तोऽष्टविधसम्पत्तिशाली भवेत्, ताश्चाष्टसंपदो यथा—

लबालब भरा रहता है, समस्त ऋतुओंके पत्र पुष्पादिकों और जलचर जन्तुओंसे वह चारों ओरसे व्याप्त-पूर्ण रहा करता है, शोभित रहता है, तथा उपशान्तरज होता है-धूलि आदि जिसमें उपशान्त रहती हैं, यद्यपि वर्षाऋतुमें वृष्टिके होने पर जल धूलिके सम्पर्क से कलुषित हो जाता है तो भी वर्षाके नष्ट होने पर धूलिके अपगम होनेसे शरदकाल में वही जल अत्यंत निर्मल हो जाता है। तथा अपने भीतर रहे हुए जलचर जीवोंका वह सदा पालक है। इसी प्रकार ज्ञानादि युक्त, छत्तीस गुणोंसे विभूषित तथा पंच आचार विशिष्ट आचार्य भी नीचे कहे गये-निम्नलिखित चार भंगोंमेंसे १ प्रथम भंगमें सम्मिलित होनेसे जलाशय के तुल्य माने गये हैं। तथा आठ प्रकारकी संपदाओंसे भी सुशोभित होते हैं। वे आठ प्रकार की संपदायें ये हैं—

ભરેલું રહે છે. બધી ઋતુઓમાં પુષ્પ પાંદડાં અને જળચર જંતુઓથી ચારે તરફ એ હર્યું ભર્યું રહે છે-શોભી રહે છે. અને સદા શાન્તિ આપનાર રહે છે. ધૂળ વગેરે તેનામાં પડી શાન્ત બને છે. વર્ષાઋતુમાં વૃષ્ટિના કારણે જળ ધૂળના સંપર્કથી ડહોળું બને છે પરંતુ વર્ષાકાળ બાદ ધૂળ નીચે બેસી જવાથી શરદકાળમાં એ જળ અત્યંત નિર્મળ બની જાય છે. અને પોતાનામાં રહેલા જળચર જીવોનું સદા પાલન કરે છે. એ પ્રકારે જ્ઞાનાદિયુક્ત, છત્રીસગુણભૂષિત અને પાંચ આચાર વિશિષ્ટ આચાર્ય પણ નીચે જણાવવામાં આવેલ ચાર ભંગોમાંથી પહેલા ભંગમાં સમ્મિલિત હોવાથી જળાશય તુલ્ય માન્યા ગયા છે. તેમજ આઠ પ્રકારની સંપદાઓથી પણ એ સુશોભિત હોય છે. તે આઠ પ્રકારની સંપદાઓ-આચાર, શ્રુત, શરીર, વચન, વાચના, મતિ, પ્રયોગમતિ અને સંગ્રહપરિજ્ઞા છે.

" आयार सुअ सरीरे, वयणे वायण मई पओगमई ।
एस सुसंपया खलु, अट्ठमिया संगहपरिन्ना ॥ "

छाया—आचारः श्रुतं शरीरं वचनं वाचना मतिः प्रयोगमतिः । एताः सुसम्पदः खलु अष्टमी संग्रहपरिज्ञा ॥ " इति । निर्मलज्ञानादिभिः प्रतिपूर्णः, उपशान्तरजाः–उपशान्तमोहनीयः, समारक्षन्=षड्जीवनिकायं चतुर्विधसङ्घं गच्छगतसाधून् स्वात्मानं च सम्यक् रक्षन् समे भौमे=स्त्रीपशुपण्डकादिपरिवर्जिते शोभने स्थाने तिष्ठति । अत्र ह्रदोपमानेन ह्रदादेश्चतुर्विधतयाऽऽचार्योऽपि तादृश एव भवति, तत्र चतुर्भङ्गी यथा—

(१) एकः सीतासीतोदाप्रवाहह्रदादिवत्परिगलत्स्रोताः पर्यागलत्स्रोताश्च ।

" आयार सुय सरीरे वयणे वायण मई पओगमई । एस सुसंपया खलु अट्ठमिया संगहपरिन्ना " ॥ आचार, श्रुत, शरीर, वचन, वाचना, मति, प्रयोगमति, और संग्रहपरिज्ञा । (द. श्रु. स्कं. अ. ४)

निर्मल ज्ञानादिकोंसे प्रतिपूर्ण होते हैं । मोहनीयकर्मके उपशमन से ये उपशान्तरज होते हैं । षड्जीवनिकाय, चतुर्विधसंघ तथा गच्छमें रहनेवाले साधुओंके एवं अपनी आत्माके अच्छी रीतिसे रक्षक होते हैं । स्त्री, पशु, पण्डक–नपुंसक आदिसे वर्जित स्थानमें ये रहते हैं; इसलिये जलाशयके समस्त विशेषण इनमें घटित होते हैं । ह्रद–जलाशयकी उपमा देनेसे यह बात ज्ञात होती है कि जिस प्रकार जलाशय चार प्रकारके होते हैं, उसी प्रकार आचार्य भी चार तरहके होते हैं। वह चतुः–प्रकारता इस चतुर्भङ्गीसे जानी जाती है । जैसे—

(१) कोई एक आचार्य, सीता सीतोदा नदीके प्रवाहका ह्रद कि जिससें दूसरा प्रवाह निकलता है और बाहरसे दूसरा प्रवाह भी जिसमें आकर

निर्मળ જ્ઞાનાદિકોથી તે પ્રતિપૂર્ણ છે, મોહનીય કર્મના ઉપશમનથી તે ઉપશાન્તરજ હોય છે.ષડ્જીવનિકાય, ચતુર્વિધસંઘ તથા ગચ્છમાં રહેવાવાળા સાધુઓના અને પોતાના આત્માના સારી રીતે રક્ષક હોય છે. સ્ત્રી, પશુ, નપુંસક આદિથી વર્જીત સ્થાનમાં એ રહે છે. આ માટે જળાશયના સમસ્ત વિશેષણ તેમનામાં બંધબેસતાં છે. હ્રદ–જળાશયની ઉપમા દેવાથી આ વાત જાણી શકાય છે કે જેવી રીતે જળાશય ચાર પ્રકારનાં હોય છે એ જ રીતે આચાર્ય પણ ચાર પ્રકારના હોય છે. તે ચાર પ્રકાર ચાર ભંગથી જાણી શકાય છે. જેમ (૧) કોઇ એક આચાર્ય સીતા સીતોદા નદીના પ્રવાહની તરહ–જેમાંથી બીજો પ્રવાહ ફુટતો હોય છે અને બહા-

(२) द्वितीयो हि पद्महृदादिवत्परिगलत्स्रोता नो पर्यागलत्स्रोताः।

(३) तृतीयो लवणसमुद्रवद् नो परिगलत्स्रोताः पर्यागलत्स्रोताः।

(४) चतुर्थो मनुष्यलोकबाह्यसमुद्रवन्नोपरिगलत्स्रोता नो पर्यागलत्स्रोताश्चेति।

प्रथमभङ्गान्तर्गत आचार्यः शास्त्रमधीतेऽध्यापयति च जलस्य प्रवेश–निर्गमवत् ज्ञानप्रदानादानयोः सम्भवात्, स चायं स्थविरकल्पिकः। द्वितीयभङ्गस्थस्तीर्थङ्करादिस्तस्य निर्गमस्थानीयार्थागमसद्भावात्, कषायोदयासम्भवेन प्रवेशस्थानीय-

मिलता है वैसे होते हैं।

(२) दूसरे कोई एक आचार्य पद्महृद आदिके समान होते हैं कि जिससे प्रवाह तो निकलता है, परंतु दूसरा प्रवाह जिसमें आकर नहीं मिलता है।

(३) तृतीय कोई एक आचार्य लवणसमुद्रके तुल्य होते हैं कि जिससे और कोई दूसरा प्रवाह तो नहीं निकलता है परन्तु जिसमें दूसरा प्रवाह आकर मिलता है।

(४) चतुर्थ–कोई २ ऐसे भी आचार्य होते हैं जो मनुष्यलोकसे बाहर रहे हुए समुद्रकी तरह न उससे दूसरा कोई प्रवाह निकलता है और न जिसमें और कोई प्रवाह ही आकर मिलता है।

इनमेंसे प्रथम भंगके अन्तर्गत आचार्य शास्त्र पढ़ते हैं और अन्यको पढ़ाते हैं। जलके आनेजानेकी तरह इनमें ज्ञानका आदान–प्रदान होता रहता है। इस भंगके अन्तर्गत आचार्य स्थविरकल्पी होते हैं। दूसरे भंग के अन्तर्गत तीर्थङ्करादि होते हैं। क्यों कि इनसे जलप्रवाहके निर्गमके

રથી બીજો પ્રવાહ પણ એમાં આવીને મળતો હોય છે. (૨) બીજા કોઈ એક આચાર્ય પદ્મહૃદ આદિ સમાન-જેમાંથી પ્રવાહ નિકળે છે પરંતુ બીજો પ્રવાહ આવી તેમાં મળી શકતો નથી તેવા–હોય છે. (૩) કોઈ એક આચાર્ય ખારા સાગર જેવા જેમાંથી કોઈ પ્રવાહ તો નીકળતો નથી પરંતુ જેનામાં બીજા પ્રવાહો આવી મળે છે આવા હોય છે. (૪) કોઈ કોઇ એવા પણ આચાર્ય હોય છે જે મનુષ્ય લોકથી બહાર એવા સમુદ્રની પેઠે ન એમાંથી બીજો કોઈ પ્રવાહ નિકળે છે અને ન તો એમાં કોઇ પ્રવાહ આવીને મળતો હોય છે. આમાં પ્રથમ ભંગના અંતર્ગત આચાર્ય શાસ્ત્ર શીખે છે અને શીખડાવે છે. જળના આવવા જવાની માફક તેમનામાં જ્ઞાનનું આવવું–જવું બનતું રહે છે. આ ભંગના અન્તર્ગત આચાર્ય સ્થવિરકલ્પી હોય છે. બીજા ભંગના અન્તર્ગત તીર્થંકરાદિ હોય છે. કારણ કે તેમનાથી જળપ્રવાહના નિર્ગમ સમાન અર્થરૂપથી આગમનું

श्रुताध्ययनादेरसत्त्वात्, तपःसंयमादिना कर्मक्षपणं सुतरां जायते तेनापि च निर्गमस्थानीयत्वं सिद्ध्यति, घातिकर्मक्षयेण नूतनकर्मणामागमनासम्भवेन प्रवेशस्याभावात्। तृतीयभङ्गपतितो लवणोदधितुल्यो याथालन्दिकः। तथा हि–उदकार्द्रकरेखा यावता कालेन शुष्यति तत आरभ्य पञ्चरात्रिन्दिवलक्षणः कालो 'लन्द' शब्देनात्र गृह्यते, लन्दमनतिक्रम्य यथालन्दं, तेन चरतीति याथालन्दिक उक्तपरिमितकालविशेषाचारीत्यर्थः, स चोत्कृष्टतः एकस्थाने पञ्चरात्रिन्दिवं यावत्तिष्ठति,

---

सामान अर्थरूपसे आगमका निर्गम होता है। कषायके उदयकी असंभवता होनेसे इनमें जलप्रवाहके प्रवेश के तुल्य दूसरोंसे श्रुतके अध्ययन आदिके प्रवेशका संभव नहीं होता है। तप और संयमादिकद्वारा कर्मका अभाव स्वतः हो जाता है, इससे भी इनमें निर्गमस्थानीयता सिद्ध होती है। घातियाकर्मोंके क्षयसे नूतन कर्मोंके आगमनकी असंभवतासे वहां पर उनके प्रवेशका अभाव है। तृतीय भंगवर्ती लवणोदधि के तुल्य याथालन्दिक साधु हैं। जितने समयमें गीले हाथकी रेखा शुष्क होती है इतने समयसे लगाकर पांच रात और दिनके समयका नाम यहां लन्द माना गया है। इस लन्दकालका उल्लंघन नहीं करना यथालन्द है। इस कालके अनुसार जो चलता है–अपनी चर्या करनेवाला है वह याथालंदिक साधु है। यह साधु उत्कृष्ट रीतिसे एक जगह पांच रातदिन तक ठहर सकता है। इस यथालंदकल्पको पांच मुनियोंका समुदायरूप गण

નિર્ગમ થાય છે. કષાયના ઉદયની અસંભવતા હોવાથી તેમનામાં જળ પ્રવાહના પ્રવેશતુલ્ય બીજાઓથી શ્રુત અને અધ્યયન આદિનો પ્રવેશનો સંભવ નથી હોતો. તપ અને સંયમ આદિ દ્વારા કર્મનો અભાવ સ્વતઃ બની રહે છે. આથી તેમનામાં નિર્ગમસ્થાનીયતા સિદ્ધ બને છે, ઘાતિયા કર્મોના ક્ષયથી, નવા કર્મોના આગમનની અસંભવતાથી એમનામાં એના પ્રવેશનો અભાવ છે. ત્રીજા ભંગ મુજબ લવણસમુદ્રતુલ્ય યાથાલન્દિક સાધુ છે, જેટલા સમયમાં ભીના હાથની રેખા શુષ્ક હોય છે એટલા સમયથી લગાડી પાંચ રાત અને દિવસના સમયનું નામ અહિં લન્દ માન્યું છે. આ લન્દ કાળનું ઉલંઘન નહિ કરવું તે યથાલન્દ છે, આ કાળને અનુસાર જે ચાલે છે–પોતાની ચર્યા કરવાવાળા છે તે याथालन्दिक સાધુ છે. આ સાધુ ઉત્કૃષ્ટ રીતે પાંચ રાત દિવસ સુધી એક ગામમાં રહી શકે છે. આ

पञ्चमुनिसंख्यको गणो भवति, स एव गणोऽमुं कल्पं प्रतिपद्यते, एते प्रायो जिनकल्पिकल्पकल्पं परिपालयन्ति, अयं चाचार्यादेः श्रुतादिकं गृह्णाति किन्तु न कस्मैचित् प्रददाति, अत एव लवणोदधिसादृश्यं प्रवेशसत्त्वेऽपि निर्गमासत्त्वात्। चतुर्थभङ्गस्थः प्रत्येकबुद्धः, स च न कस्मै चिद् ददाति नापि प्रतिगृह्णाति मनुष्यक्षेत्रबहिर्वर्त्तिसमुद्रवत् प्रवेश–निर्गमोभयाभावात्।

तस्य प्रथमभङ्गस्थस्थविरकल्पिकस्य श्रुतदानग्रहणसम्भवेन स्वरूपमाह—'स' इत्यादि, हे शिष्य! स्रोतोमध्यगतः प्रवेशनिर्गमप्रवाहान्तर्वर्ती स ह्रदो यथा चाक्षो-

ही पालता है। ये मुनि जिनकल्पी के तुल्य आचारका पालन करते हैं। यह गण आचार्य आदिसे श्रुत आदिका अध्ययन तो करता है, परन्तु अन्यके लिये वह उसे प्रदान नहीं करता है। इसीलिये इसको लवणोदधि के तुल्य कहा है। क्यों कि इसमें ज्ञानादिकका प्रवेश होनेपर भी फिर उससे उसका बाहिर निकलना–अन्यके लिये उसका प्रदान करना नहीं होता है।

चतुर्थ भंगके अन्तर्भूत प्रत्येक बुद्ध हैं। वे न किसीसे ज्ञानादिकको ग्रहण करते हैं और न किसीके लिये उसका प्रदान ही करते हैं। मनुष्यक्षेत्रके बाहर रहे हुए समुद्रकी तरह उनमें प्रवेश और निर्गम दोनोंका सर्वथा अभाव रहता है।

प्रथम भंगके अन्तर्गत स्थविरकल्पीके श्रुतके आदानप्रदानका संभव होनेसे सूत्रकार उसके स्वरूपको प्रकट करते हैं–"स" इत्यादि–वे शिष्य

યથાલન્દ કલ્પને પાંચ મુનિઓના સમુદાયરૂપ ગણ પાળે છે. આ મુનિ જિનકલ્પીની તુલ્ય આચારનું પાલન કરે છે. આ ગણ આચાર્ય આદિથી શ્રુત આદિનું અધ્યયન તો કરે છે, પરંતુ બીજાને માટે તે તેનું પ્રદાન કરતા નથી. આ માટે તેમને લવણ-સાગરની તુલ્ય ગણ્યા છે. કારણ કે તેમાં જ્ઞાનાદિકનો પ્રવેશ હોવા છતાં પણ તેમાંથી બહાર નીકળતું –અન્યને માટે તેનું પ્રદાન થતું નથી.

ચોથા ભંગના અન્તર્ભૂત પ્રત્યેક બુદ્ધ છે. એ ન તો કોઈનાથી જ્ઞાનાદિક ગ્રહણ કરે છે ન કોઈને એ તેનું પ્રદાન કરે છે. મનુષ્યક્ષેત્રથી બહાર રહેતા સમુદ્રની તરહ એનામાં પ્રવેશ અને નિર્ગમ બન્નેનો સર્વથા અભાવ રહે છે.

પ્રથમ ભંગના અન્તર્ગત સ્થવિરકલ્પીમાં શ્રુતના આવવા–જવાનો સંભવ હોવાથી સૂત્રકાર એના સ્વરૂપને પ્રગટ કરે છે. "स" ઈત્યાદિ. એ શિષ્યને

भ्यस्तथैव सः=आचार्यः सर्वतः=सर्वप्रकारेण इन्द्रियनोइन्द्रियोपशमरूपया गुप्त्या गुप्तस्तिष्ठतीति पश्याआचार्य इवान्येऽपि मुनयस्तादृशगुणसम्पन्ना भवन्तीति निर्दिशति –'पश्ये' त्यादि, महर्षयः=महान्तश्च ते ऋषयो महर्षयो महासंयमिनः। किञ्च ते के ह्रदोपमा महामुनयः? ये च प्रज्ञानवन्तः–प्रकर्षेण ज्ञायते बुद्धयतेऽनेनेदं वेति प्रज्ञानं, परस्य स्वस्य चालोकादिवदवभासकत्वात् प्रज्ञानम्=आगमस्तदेषामस्तीति प्रज्ञानवन्तः =आगमतत्त्वपरिज्ञानकुशलाः।

को संबोधित करते हुए कहते हैं कि हे शिष्य! जिस प्रकार प्रवाहके मध्यवर्ती–जिससे दूसरा प्रवाह निकलता है और जिसमें दूसरा प्रवाह आकर मिलता है ऐसा ह्रद अक्षोभ्य होता है उसी प्रकार वह आचार्य भी सर्व प्रकारसे इन्द्रिय और नोइन्द्रियोंके उपशमरूप गुप्तिसे सदा रक्षित रहा करते हैं। आचार्यके समान अन्य मुनिजन भी जो इसी प्रकारके गुणोंसे सम्पन्न होते हैं उन्हें इसी भंगके अन्तर्गत ही समझना चाहिये। इसी बातको "पश्ये"त्यादि सूत्रांशसे प्रकट करते हैं– विशिष्ट संयमका जो आराधन करते हैं वे महर्षि कहलाते हैं। ये महर्षि ह्रदके तुल्य होते हैं। ये प्रज्ञानसंपन्न होते हैं। प्रज्ञान शब्दका अर्थ यहां आगम है। क्यों कि प्रकाश आदिकी तरह इसीके द्वारा स्व और परका यथार्थ–रीतिसे बोध होता है। यह आगम जिनके होता है–अर्थात् जो इस आगम तत्त्वके ज्ञाता होते हैं वे प्रज्ञानवान् हैं।

સંબોધન કરીને કહે છે કે–હે શિષ્ય! જેમ પ્રવાહની વચમાં રહેલો હ્રદ કે જેમાંથી બીજો પ્રવાહ નીકળે છે અને જેમાં બીજો પ્રવાહ આવીને મળે છે અક્ષોભ્ય હોય છે, એજ રીતે એ આચાર્ય પણ સર્વ પ્રકારથી ઈન્દ્રિય અને નોઈન્દ્રિયના ઉપશમરૂપ ગુપ્તિથી સદા રક્ષિત રહ્યા કરે છે. આચાર્યની સમાન બીજા મુનિજન પણ જે આ પ્રકારના ગુણોથી સંપન્ન હોય તે બધા આ ભંગના અન્તર્ગતજ સમજવા. આ વાતને "पश्य" ઈત્યાદિ સૂત્રાંશથી પ્રગટ કરે છે–વિશિષ્ટ સંયમનું જે આરાધન કરે છે તે મહર્ષિ કહેવાય છે. એ મહર્ષિ હ્રદના સમાન હોય છે. એ પ્રજ્ઞાનસંપન્ન હોય છે. પ્રજ્ઞાન શબ્દનો અર્થ અહિં આગમ છે. કેમ કે પ્રકાશ આદિની માફક એમના દ્વારા સ્વ અને પરનો યથાર્થ રીતથી બોધ થાય છે. આ આગમ જેનામાં હોય છે અર્થાત્ જે આગમ તત્ત્વના જાણકાર છે તે પ્રજ્ઞાનવાન છે.

केचित्तादृशा अपि मुनयो बोध्यार्थस्य दुरवगाहित्वेन च क्वचिद् हेतूदाहरणादीनां सम्यग्ज्ञानासम्भवात्संशेरते न सम्यक्त्वमाप्नुवन्तीति तन्निरासायाह- ' प्रबुद्धाः ' इत्यादि, प्रबुद्धाः=प्रकर्षेण बुद्धाः=तीर्थङ्कराज्ञानुसारेण सम्यक्परिशीलिततत्त्वाः, तादृशा अपि कर्मणो गुरुत्वाद्यदि सावद्याचरणान्नोपरमेरन् तद्व्युदासायाह

शङ्का—प्रज्ञानसम्पन्न मुनि भी बोध्य–समझने योग्य पदार्थ जब दुरवगाह होता है–बड़ी मुश्किलसे जाननेमें आता है, या कहीं २ पर हेतु उदाहरणादिकके स्वरूपका वास्तविक भान उन्हें नहीं होता है, उस पदार्थ के स्वरूपमें संदेहशील हो जाते हैं ऐसी हालतमें तो वे समकित के लाभ से ही वंचित रहते होंगे ?

समाधान–यह बात नहीं है। इसीका स्पष्टीकरण सूत्रकारने "प्रबुद्धा" इस पदसे किया है। बोध्य अर्थ दुरवगाह होने पर भी या हेतु और उदाहरणादिक का सम्यग् परिज्ञान न होने पर भी वे उस पदार्थमें संदेहशील नहीं होते हैं। क्यों कि ये तीर्थङ्कर भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार ही अपनी प्रवृत्ति रखते हैं। जो बात समझमें नहीं आती है, उस पर ये अविश्वासी नहीं होते हैं। उनकी आज्ञाके माफिक ही ये तत्त्वोंका परिशीलन करते हैं। उन पर सदा दृढ विश्वास रखते हैं। इसीका नाम समकित है।

શંકા:—પ્રજ્ઞાનસંપન્ન મુનિ પણ, બોધ્ય–સમજવો યોગ્ય પદાર્થ જ્યારે દૂર હોય છે અને ઘણી મુશ્કેલીથી જાણવામાં આવે છે અથવા ક્યાંક ક્યાંક હેતુ ઉદાહરણાદિકના સ્વરૂપનું વાસ્તવિક ભાન તેને હોતું નથી. એ સમય એ પદાર્થના સ્વરૂપમાં સંદેહશીલ બને છે, એવી હાલતમાં તેઓ સમકિતના લાભથી વંચિત રહેતા હશે ?

ઉત્તર—આ વાત નથી, આનું સ્પષ્ટીકરણ સૂત્રકારે " प्रबुद्धा " આ પદથી કરેલ છે. બોધ્ય અર્થ છેટ હોવા છતાં પણ અથવા હેતુ અને ઉદાહરણનું સમ્યગ્ પરિજ્ઞાન ન હોવાથી પણ તેઓ એ પદાર્થમાં સંદેહશીલ બનતા નથી, કારણ કે તેઓ તીર્થંકર ભગવાનની આજ્ઞા અનુસાર જ પોતાની પ્રવૃત્તિ કરે છે. જે વાત સમજવામાં નથી આવતી એના પર એ અવિશ્વાસી નથી બનતા. તેમની આજ્ઞાની માફક જ તેઓ તત્ત્વોનું પરિશીલન કરે છે. એના પર સદા દૃઢ વિશ્વાસ રાખે છે. તેનું નામ જ સમકિત છે.

–'आरम्भे'त्यादि, आरम्भोपरताः-आरम्भेभ्यः=पचन-पाचनादिसावद्यव्यापारेभ्यः उपरताः=विरताः त्यक्तारम्भा भवन्ति, एतत्=यत्पूर्वमुक्तं मया वक्ष्यमाणं वा एतत्सर्वं सम्यक्=समीचीनमस्तीति यूयं पश्यत। वक्ष्यमाणमेवाह—'कालस्ये'त्यादि, ते पूर्वोक्ता महर्षयः कालस्य=समाधिमरणस्य काङ्क्षया=स्पृहया परिव्रजन्ति=रत्नत्रयरूपे मोक्षमार्गे सर्वत उद्यमयन्ति। आचार्या मुनयो वा निर्भया अक्षोभ्या ह्रदोपमाः सन्तो विचरन्तीत्याशयः। 'इति'–अधिकारसमाप्तौ, ब्रवीमीत्यस्यार्थस्तूक्त एव॥सू०१॥

शङ्का—ऐसे होने पर भी कर्मकी दुर्निवारता से यदि ये सावद्यव्यापारों के आचरणसे निवृत्त न हों तो इसका क्या उत्तर है ?

समाधान—यह शङ्का ठीक नहीं है, कारण कि ये पचनपाचनादिरूप सावद्य व्यापारोंसे सदा विरक्त ही रहते हैं। माना कि कर्मोंका उदय दुर्निवार है, तो भी ये पचनपाचनादिरूप सावद्य व्यापारोंमें कण्ठगत प्राण होने पर भी प्रवृत्तिशील नहीं होते हैं–इस कथनपर आपको विश्वास रखना चाहिये। ये पूर्वोक्त महर्षिजन समाधिमरणरूप कालकी चाहना से तथा आगे भी जो विषय कहा जानेवाला है उस पर यह सत्य है, ऐसा मान कर रत्नत्रयरूप मुक्तिके मार्गमें सर्व प्रकारसे उद्यमशील रहते हैं।

भावार्थ—आचार्य अथवा मुनिजन मोक्षमार्गमें निर्भय और अक्षोभ्य हो कर विचरण करते हैं इसी लिये पूर्वोक्त प्रकारसे इन्हें ह्रदकी उपमा दी गई है। सूत्रस्थ इति शब्द अधिकारके समाप्ति के सूचनार्थ है।

શંકાઃ—આમ હોવા છતાં પણ કર્મના દોષોને લઈ કદાચ સાવદ્યવ્યાપારોના આચરણથી નિવૃત્ત ન થાય તો આનો કયો ઉત્તર છે ?

ઉત્તર—આ શંકા ઠીક નથી, કારણ કે એ પચનપાચન આદિ સાવદ્ય વ્યાપારોથી સદા વિરકત રહે છે. કર્મોના ઉદયનું કારણ નિવારી શકાતું નથી. તો પણ એ પચન પાચનાદિરૂપ સાવદ્ય વ્યાપારોમાં પ્રાણ જવાની છેલ્લી ઘડી સુધી પણ પ્રવૃત્તિશીલ થતા નથી. આ કથન ઉપર વિશ્વાસ રાખવો જોઈએ. આ પૂર્વોક્ત મહર્ષિજન સમાધિ મરણરૂપ કાળની ચાહનાથી તથા આગળ પણ જે વિષય કહેવામાં આવનાર છે એ રીતે આ સત્ય છે એમ માની રત્નત્રયરૂપ મુકિત માર્ગમાં સર્વ પ્રકારે ઉદ્યમશીલ રહે છે.

ભાવાર્થઃ—આચાર્ય અથવા મુનિજન મોક્ષમાર્ગમાં નિર્ભય અને ઇચ્છા વગરના બની વિચરણ કરે છે. આથી જ પૂર્વોક્ત પ્રકારથી એમને હ્રદની ઉપમા

आचार्याधिकारमभिधाय शिष्यकर्तव्यमधुना दर्शयति–'वितिगिच्छ' इत्यादि।

मूलम्–वितिगिच्छसमावन्नेणं अप्पाणेणं नो लहइ समाहिं, सिया वेगे अणुगच्छंति असिया वेगे अनुगच्छंति,अणुगच्छमाणेहिं अणणुगच्छमाणे कहं न निव्विज्जे ॥ सू० २ ॥

छाया—विचिकित्सासमापन्नेनाऽऽत्मना न लभते समाधिं, सिता वैकेऽनुगच्छन्त्यसिता वैकेऽनुगच्छन्ति, अनुगच्छद्भिरननुगच्छन् कथं न निर्विद्येत ॥सू०२॥

टीका—'विचिकित्से'त्यादि, 'मुनिः' विचिकित्सासमापन्नेन–विचिकित्सा=शङ्का तां समापन्नः=सम्=सम्यग्देशतः सर्वतश्चापन्नः=प्राप्तः=विचिकित्सासमापन्नस्तेन आत्मना समाधिम्=अन्तःकरणशान्तिं न लभते=न प्राप्नोति, संशयात्मानो हि मोहनी-

"ब्रवीमि" पद्का अर्थ पहिले कई उद्देशोंमें प्रकट किया जा चुका है।सू०१।

आचार्य महाराज का अधिकार कह कर अब सूत्रकार शिष्यजनके कर्तव्यका कथन करते हैं–"वितिगिच्छ" इत्यादि।

मुनिको जिनेन्द्र उपदिष्ट तत्त्वमें शङ्काशील नहीं होना चाहिये, क्यों कि शंकावृत्ति रखनेसे चित्तमें शांति नहीं आ सकती है। इसी बातको सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं। विचिकित्सा शब्दका अर्थ संशय है। यह संशय मुनिके चित्त में किसी भी तत्त्वमें चाहे देशरूपसे हो चाहे सर्वरूपसे हो तो वह उसके चित्तमें कभी चैन नहीं लेने देता है।

क्यों कि संशयका स्वभाव भी इसी प्रकारका है, जो उदित होने पर आत्माको इतस्ततः परस्पर विरुद्ध अनेक विषयोंकी ओर दौड़ाता

આપવામાં આવી છે. સૂત્રસ્થ ઈતિ શબ્દ અધિકારની સમાપ્તિની સૂચનારૂપ છે.

"ब्रवीमि" પદનો અર્થ પહેલા ઘણા ઉદ્દેશોમાં પ્રગટ કરવામાં આવી ગએલ છે ॥ સૂ૦ ૧ ॥

આચાર્ય મહારાજના અધિકારને કહી સૂત્રકાર હવે શિષ્યજનના કર્તવ્યનું વર્ણન કરે છે. "वितिगिच्छ" ઈત્યાદિ.

મુનિએ જીનેન્દ્ર ઉપદિષ્ટ તત્ત્વમાં શંકાશીલ બનવું ન જોઈએ. કેમ કે શંકિતવૃત્તિ રાખવાથી ચિત્તમાં શાન્તિ આવી શકતી નથી. આજ વાત સૂત્રકાર પ્રગટ કરે છે. વિચિકિત્સા શબ્દનો અર્થ સંશય છે. આ સંશય મુનિના ચિત્તમાં કોઈપણ તત્ત્વમાં ચાહે દેશરૂપમાં હોય ચાહે સર્વરૂપથી હોય. સંશય તેના ચિત્તને ક્યારેય ચેન લેવા દે નહિ. કેમ કે સંશયનો સ્વભાવ એ પ્રકારનો હોય છે કે તેનો ઉદય થતાં આત્માને–इतस्ततः પરસ્પર વિરૂદ્ધ અનેક વિષયોની તરફ દોર્યા કરે

योदयाद्युक्तिसिद्धेऽप्यर्थे मोहमुपगच्छन्ति, तथाहि—दर्शने धर्मास्तिकायाऽधर्मास्तिकायादौ वीतरागोक्ते तपसि संयमे च संशयाना दृश्यन्ते, एवमनेकत्र जीवादिविषये संशयो भवितुमर्हति। अर्थस्य सुखाधिगम-दुरधिगमानधिगमभेदेन त्रैविध्यम्, सुखाधिगमः शब्दादेः प्रत्यक्षः श्रवणनिपुणस्य भवति, दुरधिगमस्त्वकुशलस्य भवति, अनधिगमस्तु बधिरादेः। तत्रानधिगमस्तु न वस्तु। सुखाधिगमविषये विचि-

---

रहता है। संशयात्मा प्राणी मोहनीयके उदयसे युक्तिसिद्ध भी पदार्थमें मुग्ध बन जाया करता है। धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकायादि पदार्थ युक्तिसिद्ध एवं वीतरागप्रभुद्वारा प्रतिपादित हैं, तप और संयम भी जिनेन्द्रदेवद्वारा ही कहे हैं तो भी संदेहशील मनुष्य इनमें संदेह करते हुए देखे जाते हैं। अधिक क्या कहें? संदेहशील मनुष्य जीवादिक पदार्थोंके अस्तित्व तकमें भी सदा संदेह किया करते हैं। सुखाधिगम, दुरधिगम और अनधिगमके भेदसे अर्थ ३ प्रकारका है। जिनकी श्रोत्रादि इन्द्रियां अपने विषयभूत पदार्थके विषय करनेमें अनुपहत हैं ऐसे मनुष्यादिकोंको शब्दादिक अर्थका प्रत्यक्ष सुखपूर्वक-विना किसी रुकावटके अच्छी तरहसे होता है। जिनकी इन्द्रियों-श्रोत्रादिकोंमें कोई दोष है उन्हें इसका प्रत्यक्ष दुरधिगम-बडे कष्टसे होता है। जो बहिरे आदि हैं उन्हें शब्दादिक पदार्थों का अनधिगम होता है। अनधिगम कोई वस्तु नहीं है, इसलिये इसमें तो संदेह होता नहीं है, सन्देह वस्तु में हुआ करता है।

છે, સંશયાત્મા પ્રાણી મોહનીયના ઉદયથી યુક્તિસિદ્ધ પદાર્થમાં પણ મુગ્ધ બની જાય છે. ધર્માસ્તિકાય અધર્માસ્તિકાયાદિ પદાર્થ યુક્તિસિદ્ધ એટલે વીતરાગ પ્રભુદ્વારા પ્રતિપાદિત છે, તપ અને સંયમ પણ જીનેન્દ્રદેવે જ બતાવેલ છે તો પણ સંદેહશીલ મનુષ્ય આમાં પણ સંદેહ કરતા દેખાય છે. અધિક શું કહેવું? સંદેહશીલ મનુષ્ય જીવાદિક પદાર્થોના અસ્તિત્વમાં પણ સદા સંદેહ કર્યા કરે છે. સુખાધિગમ, દુરધિગમ, અને અનધિગમનો ભેદથી ત્રણ પ્રકારે અર્થ થાય છે, જેની શ્રોત્રાદિ ઈન્દ્રિયો પોતાના વિષયભૂત પદાર્થના વિષય કરવામાં અનુપહત (અખંડ) છે. એવા મનુષ્ય-આદિને શબ્દાદિક અર્થનો પ્રત્યક્ષ સુખપૂર્વક-કોઈપણ જાતની રૂકાવટ વગર સારી રીતે થાય છે. જેની ઈન્દ્રિયો-શ્રોત્રાદિકોમાં કોઈ દોષ છે એને એનો પ્રત્યક્ષ દુરધિગમ-ભારે કષ્ટથી થાય છે. જે બહેરા આદિ છે તેને શબ્દાદિક પદાર્થોનો અનધિગમ થાય છે, અનધિગમ કોઈ વસ્તુ નથી આ માટે એમાં તો સંદેહ થતો જ નથી. સંદેહ વસ્તુમાં થાય છે જે

कित्साया न सम्भवः, स एव देशकालस्वभावव्यवहितस्तु संशयविषयो भवति। देशतो विप्रकृष्टमेर्वादिविषये, कालतो विप्रकृष्टे ऋषभदेवादौ, स्वभावतो विप्रकृष्टे परमाण्वादिविषये च सन्देहो जायते। संशयात्मा गुरुणोपदिष्टोऽपि सम्यक्त्वरूपां बोधिं न कदापि प्राप्नोतीत्यालोच्य पूर्वोक्तविषये मुनिः कदाचिदपि संशयं न कुर्यादित्याशयः।

जिस पदार्थका बोध अनायाससे होता है, उसमें भी संदेहके लिये जगह नहीं है; परन्तु यही सुखाधिगम पदार्थ जब स्वभाव, देश और कालसे विप्रकृष्ट (दूर) हो जाता है तब इसमें भी संदेहशील प्राणियोंको संदेह होने लगता है। देशसे विप्रकृष्ट मेरु आदि पदार्थ हैं, कालसे विप्रकृष्ट ऋषभदेवादि तीर्थङ्कर हैं। स्वभाव अपेक्षा दूरवर्ती परमाणु आदि पदार्थ हैं। इनमें अज्ञ–संदेहशील व्यक्तियोंको संदेह होनेमें कोई आश्चर्य जैसी बात नहीं है। संशयात्मा व्यक्ति गुरुके द्वारा उपदिष्ट होनेपर भी सम्यक्त्वरूप बोधिके लाभसे वंचित बना रहता है। गुरुदेव उसे हर तरहसे प्रत्येक पदार्थका स्वरूप अच्छी रीतिसे समझाते भी हैं तो भी उनके ऊपर उसकी सच्ची श्रद्धा सजग नहीं होती है, इस प्रकार विचार करके मुनिका कर्तव्य है कि वह वीतराग प्रभु द्वारा प्रतिपादित धर्म अधर्मादि द्रव्यों में तथा तप और संयमादिक आत्महित साधक विषयोंमें संदेह कभी भी न करे।

પદાર્થનો બોધ અનાયાસે થાય છે તેમાં પણ સંદેહને માટે સ્થાન નથી, પરંતુ આ સુખાધિગમ પદાર્થ જ્યારે સ્વભાવ, દેશ અને કાળથી દૂર થાય છે ત્યારે આમાં પણ સંદેહશીલ પ્રાણીઓને સંદેહ થવા લાગે છે. દેશથી દૂર મેરૂ આદિ પદાર્થ છે અને કાળથી દૂર ઋષભાદિ તીર્થંકર છે. સ્વભાવ અપેક્ષા દૂર વર્તી પરમાણુ આદિ પદાર્થ છે. આમાં સંદેહશીલ વ્યક્તિઓને સંદેહ થવામાં કોઈ આશ્ચર્ય જેવી વાત નથી. સંશય આત્મા વ્યક્તિ કે જેને ગુરૂદ્વારા ઉપદેશ મળ્યો હોય છે છતાં પણ સમ્યક્ત્વરૂપ બોધિના લાભથી વંચિત રહે છે. ગુરૂદેવ તેને હરેક પ્રકારે પ્રત્યેક પદાર્થનું સ્વરૂપ સારી રીતે સમજાવે છે તો પણ તેના ઉપર સાચી શ્રદ્ધા જાગતી નથી. આ પ્રકારે વિચાર કરીને મુનિનું કર્તવ્ય છે કે તે વીતરાગ પ્રભુદ્વારા પ્રતિપાદિત ધર્મ અધર્માદિ દ્રવ્યોમાં તથા તપ અને સંયમાદિક આત્મહિત સાધક વિષયોમાં સંદેહ કદી પણ ન કરે.

यद्वा—'वितिगिच्छे'त्यस्य 'विद्वज्जुगुप्सा' इतिच्छाया। तेन विद्वज्जुगुप्सासमापन्नेन विदुषां=मुनीनां परिज्ञातसंसारासारभावानां जुगुप्सा=अनादरः विद्वज्जुगुप्सा=स्नानाद्यकरणेन गात्रस्य मलोपहतत्वदुर्गन्धत्वादिकथनेन साधूनां निन्दा तां समापन्नेन=संप्राप्तेन=अनगारतिरस्कारपरायणेन आत्मना=अन्तःकरणेन परतैर्थिकः समाधिं=रत्नत्रयरूपं न लभते।

कश्च समाधिं लभते? इति प्रश्ने तं दर्शयति--'सिता' इत्यादि, एके=केचन लघुकर्माणः सिताः शब्दादिविषयानुरागेण पुत्रादिस्नेहेन च बद्धा अपि संसारिणः, 'वा' शब्दोऽत्राप्यर्थकः, अनुगच्छन्ति लघुकर्मत्वात्तीर्थङ्करगणधरादिप्ररूपि-

---

अथवा–"वितिगिच्छ" इसकी संस्कृत छाया "विद्वज्जुगुप्सा" ऐसी भी होती है। इसका यह अर्थ होता है कि विद्वान् मुनि कि जिन्होंने भले प्रकारसे सांसारिक प्रत्येक पदार्थका वास्तविक स्वरूप जान लिया है, जो संसारकी असारतासे अच्छी तरहसे परिचित हो चुके हैं ऐसे मुनिके निन्दा, घृणा आदि करनेवाले अन्यमती जन नीच गोत्रादिकके बंधक होते हैं और रत्नत्रयरूप समाधिकी प्राप्तिके लाभसे सदा वंचित बने रहते हैं।

रत्नत्रयरूप समाधिके प्रापक (प्राप्त करनेवाले) कौन जीव होते हैं, इसे प्रकट करनेके लिये टीकाकार "सिता" इत्यादि सूत्रांशकी व्याख्या करते हैं, कोई एक लघुकर्मी संसारी जीव यद्यपि शब्दादिक विषयोंके अनुरागसे अथवा पुत्रादिकोंके स्नेहसे उनमें मोहित बने रहते हैं–उनके ममत्वमें फंसे रहते हैं, तो भी लघुकर्मी–कर्म अल्प होनेसे तीर्थङ्कर और गणधरादि प्रदत्त उपदेशका अनुसरण करते हैं।

અથવાઃ—"वितिगिच्छ"–એની સંસ્કૃત છાયા 'विद्वज्जुगुप्सा' પણ થાય છે. જેનો અર્થ એવો થાય છે કે વિદ્વાન મુનિઓ કે જેઓ સંસારની અસારતાથી સારી રીતે પરિચિત બની ચૂકયા છે, જેઓએ સારી રીતે સાંસારિક પ્રત્યેક પદાર્થનું વાસ્તવિક સ્વરૂપ જાણી લીધું છે, તેઓની નિંદા ઘૃણા કરવાવાળા અન્યમતી નીચ ગોત્રાદિકના બંધક થાય છે અને રત્નત્રયરૂપ સમાધિની પ્રાપ્તિના લાભથી તે સદા વંચિત બની રહે છે.

રત્નત્રયરૂપ સમાધિને પ્રાપ્ત કરવાવાળા કેવા જીવ હોય છે–આ પ્રગટ કરવા માટે ટીકાકાર "सिता" ઇત્યાદિ સૂત્રાંશની વ્યાખ્યા કરે છે. કોઇ એક લઘુકર્મી સંસારી જીવ જો કે શબ્દાદિક વિષયોના અનુરાગથી અને પુત્રાદિકોના સ્નેહથી તેમાં મોહિત બની રહે છે, તેના મમત્વમાં ફસી રહે છે તો પણ લઘુકર્મી –કર્મ અલ્પ–હોવાથી તે તીર્થંકર અને ગણધરાદિ એ કહેલ ઉપદેશનું

तमुपदेशमनुसरन्ति। एवं वा=अथवा एके=संशयवर्जिता असिताः=विषय-पुत्र-दाराद्यनुरागैरबद्धा अनगारा अनुगच्छन्ति, अत्र वा शब्दः पक्षान्तरद्योतकः।

आचार्यमार्गानुगामिनः पुरुषस्य भवति सम्यक्त्वाधिगम इत्याह-'अनुगच्छद्भि'रित्यादि, अनुगच्छद्भिः=आचार्यप्रतिपादितोपदेशानुगामिभिः सितैरसितैर्वा प्रेरितः सः अननुगच्छन्=सावद्याचारचारिणमननुसरन् सावद्यव्यापारमकुर्वन्नित्यर्थः, कथं न निर्विद्येत=सर्वविषयविरतिरूपवैराग्यं कथं न प्राप्नुयात्? अपि तु प्राप्नुयादेव।

इसी तरह जो कोई एक संशयविहीन होते हैं वे असित-पंचेन्द्रियों के विषयों एवं पुत्र पत्नीके अनुराग से विमुख हो कर अनगार अवस्था-संपन्न होते हैं और तीर्थङ्करादिप्रणीत उपदेशके अनुसार अपनी प्रवृत्ति चालू रखते हैं। यहां सूत्रस्थ "वा" शब्द दूसरे पक्षका द्योतक है।

जो आचार्य के बताये हुए मार्गके अनुसार प्रवृत्ति करते हैं उन्हें सम्यक्त्वका लाभ होता है-इस बातको "अनुगच्छद्भिः" इत्यादि सूत्रांश द्वारा सूत्रकार प्रकट करते हैं। चाहे सित हों, चाहे असित हों, जो आचार्यद्वारा प्रदत्त उपदेश के अनुरूप चलते हैं, उन्हें रत्नत्रयरूप समाधिका लाभ होता है और इनके द्वारा उस ओर प्रवृत्ति करनेके लिये प्रेरित किया गया अन्य-दूसरा व्यक्ति भी, जो सावद्य व्यापारमें प्रवृत्तिशील व्यक्तियों का न अनुसरण करता है और न उसे स्वयं भी करता है, सर्व विषयोंकी विरतिरूप वैराग्यको धारण क्यों नहीं कर सकता है? अर्थात् अवश्य धारण कर सकता है। आचार्यप्रदर्शित मार्ग पर चल-

---

અનુસરણ કરે છે; એ જ રીતે જે કોઈ એક સંશયવિહીન હોય છે તે પંચેન્દ્રિયોના વિષયો અને પુત્ર અને પત્નિના અનુરાગથી વિમુખ બની અણગાર અવસ્થા-સંપન્ન બને છે અને તીર્થંકરાદિપ્રણીત ઉપદેશ-અનુસાર પોતાની પ્રવૃત્તિ ચાલુ રાખે છે.

આચાર્યે બતાવેલ માર્ગ અનુસાર જે પ્રવૃત્તિ કરે છે એને સમ્યક્ત્વનો લાભ થાય છે. આ વાતને "अनुगच्छद्भिः" ઈત્યાદિ સૂત્રદ્વારા સૂત્રકાર પ્રગટ કરે છે. આચાર્યદ્વારા અપાયેલા ઉપદેશને અનુરૂપ ચાલે છે તેને રત્નત્રયરૂપ સમાધિનો લાભ થાય છે. અને તેના દ્વારા એ તરફ પ્રવૃત્તિ કરવા માટે પ્રેરિત કરાયેલ બીજી વ્યક્તિ પણ જે સાવદ્ય વ્યાપારમાં પ્રવૃત્તિશીલ વ્યક્તિઓનું અનુસરણ કરતા નથી અને પોતે પણ કરતા નથી, તે સર્વ વિષયોની વિરતિરૂપ વૈરાગ્યને ધારણ કેમ કરી શકતા નથી? અર્થાત્-અવશ્ય ધારણ કરી શકે છે.

आचार्यमार्गानुयायी शङ्काकाङ्क्षादिरूपमिथ्यात्वं विहाय सम्यक्त्वं प्राप्नुयादेवेत्यर्थः।

यद्वा—अनुगच्छद्भिः=आचार्योक्तं जानद्भिः कैश्चित्संयमरीतिपालनविषये चोपदिष्टो मुनिः, ज्ञानानुदयाद्बुद्धिमान्द्येन च अननुगच्छन् मनस्यनवधारयन् कथं न निर्विद्येत; अपि तु निर्विद्येत=पश्चात्तापं प्राप्नुयादेवेत्यर्थः। प्राप्तनिर्वेदश्च चेतसि परिचिन्तयति यदहमभव्योऽस्मि, न संयमो मे वर्तते। अत एव सम्यगुपदिष्टमपि कर्तुं न शक्यमित्यादि। एवंविधपश्चात्तापप्रतिपन्नं सितमसितं वाऽऽचार्य आश्वा-

नेवाला प्राणी शङ्का, कांक्षा आदिरूप मिथ्यात्व का वमन कर–उसे छोड़ कर सम्यक्त्वको प्राप्त कर ही लेता है।

अथवा—आचार्यप्रतिपादित सिद्धान्त को जाननेवाले कितनेक मनुष्यों या मुनियोंद्वारा संयमकी रीतिके पालनेके विषयमें उपदिष्ट मुनि ज्ञानके अनुदय से अथवा बुद्धिकी मंदतासे आचार्य प्रतिपादित सिद्धान्तका यथावत् पालक न होनेसे क्या खिन्न नहीं होता है ? अर्थात् अवश्य खिन्न होता है।

भावार्थ—प्रेरित होने पर भी जब यह यथावत् संयम अथवा तपका आराधक नहीं हो पाता है उस समय इसे एक प्रकारकी आत्मग्लानि होती है। उस अवस्थामें यह विचारता है कि मैं अभव्य हूं, संयमका पालक मैं नहीं हो सकता; यही कारण है कि यह विषय मुझे बार २ समझाया जाता है, आचार्य मुझे समझानेमें जरा सी भी करकसर नहीं रखते हैं फिर भी मैं यथावत् रीतिसे उनके कहे अनुसार चलनेमें अस-

આચાર્યે સૂચવેલા માર્ગ ઉપર ચાલવાવાળા પ્રાણી શંકા, આકાંક્ષા આદિરૂપ મિથ્યાત્વને દૂર કરી–એને છોડી સમ્યક્ત્વને પ્રાપ્ત કરી લે છે.

અથવા—આચાર્ય પ્રતિપાદિત સિદ્ધાંતને જાણવાવાળા કેટલાક મનુષ્યો અને મુનિઓદ્વારા સંયમની રીતના પાલનના વિષયમાં ઉપદિષ્ટ મુનિ જ્ઞાનના અનુદયથી અને બુદ્ધિની મંદતાથી આચાર્ય પ્રતિપાદિત સિદ્ધાંતનો યથાવત્ પાલક ન હોવાથી શું ખિન્ન નથી થતો ? અર્થાત્ અવશ્ય ખિન્ન થાય છે.

ભાવાર્થઃ—પ્રેરિત હોવા છતાં પણ જ્યારે તે યથાવત્ સંયમ અને તપનો આરાધક બની શકતો નથી ત્યારે તેને એક પ્રકારની આત્મગ્લાનિ થાય છે, આ અવસ્થામાં એ વિચારે છે કે હું અભવ્ય છું, સંયમનો પાળક હું બની શકતો નથી, એ જ કારણ છે કે આ વિષય મને વારંવાર સમજાવવામાં આવે છે, આચાર્ય મને સમજાવવામાં જરા પણ કસર રાખતા નથી છતાં પણ હું યથાવત્ રીતથી

सयति–भो भव्य ! निर्वेदं मा गमः, सम्यक्त्वप्राप्त्या भव्यस्त्वं, तत्प्राप्तिश्च ग्रन्थिभेदेन, ग्रन्थिभेदश्च भव्यस्यैव जायते, अभव्यस्य 'नाहं भव्य' इत्यादिबुद्धेरप्यनुदयात्–इति विचार्य त्वं मा विषीदेति तात्पर्यम् ॥ सू० २ ॥

एष च विषयविरतिरूपो निर्वेदो द्वादशकषायक्षयोपशमाद्यन्यतमस्य सत्त्वे जायते, स त्वयाऽधिगतस्तर्हि तव दर्शन–चारित्रमोहनीययोः क्षयोपशमप्राप्तौ साम्प्रतं

मर्थ ही बना रहता हूं। इस प्रकार पश्चात्तापको करनेवाले सितजन अथवा असित जनको आचार्य आश्वासन देते हुए कहते हैं कि "हे भव्य ! तू उदास न बन–आत्मग्लानि मत कर। तू भव्य है, तुझे समकितका लाभ हुआ है, समकितका लाभ ग्रन्थिभेदसे ही होता है, ग्रन्थिभेद तो भव्यको ही होता है, अभव्यको नहीं अभव्यके तो "मैं अभव्य हूं" ऐसा ख्याल तक भी नहीं होता है"। ऐसा विचार कर तुम खेदखिन्न मत हो ॥ सू० २॥

यह विषयोंसे विरतिरूप निर्वेद १२ कषायोंके क्षयोपशममेंसे किसी एकके सत्त्व होने पर होता है। वह विषयविरतिरूप निवद यदि तुझे प्राप्त हो चुका है तो तुझे दर्शनमोहनीय एवं चारित्रमोहनीयके क्षयोपशमकी प्राप्ति हो चुकने पर भी इस समय ज्ञानावरणीय कर्मका सद्भाव होनेसे ही प्रतिपादित तत्त्वार्थमें सकल वस्तुके बोधक ज्ञानकी

તેમના કહેવા મુજબ ચાલવામાં અસમર્થ જ બની રહું છું. આ પ્રકારનો પશ્ચાતાપ કરવાવાળા સિતજન અને અસિતજનને આચાર્ય આશ્વાસન આપીને કહે છે કે "હે ભવ્ય ! તું ઉદાસ બની આત્મગ્લાનિ ન કર. તું ભવ્ય છે, તને સમકિતનો લાભ થયો છે, સમકિતનો ગ્રંથિભેદથી જ થાય છે, ગ્રન્થિભેદ તો ભવ્યને જ થાય છે, અભવ્યને નહિ અભવ્યને તો "હું અભવ્ય છું" એવો ખ્યાલ પણ નથી આવતો" એવો વિચાર કરી તમે નિરાશ ન બનો ॥ સૂ૦૨ ॥

આ વિષયોથી વિરતિરૂપ નિર્વેદ ૧૨ કષાયોના ક્ષયોપશમમાંથી કોઈ એકનો સત્વ હોવાથી બને છે. તે વિષયવિરતિરૂપ નિર્વેદ જે તને પ્રાપ્ત થઇ ચૂક્યું છે તો તને દર્શનમોહનીય અને ચારિત્રમોહનીયના ક્ષયોપશમની પ્રાપ્તિ થઇ જવા છતાં પણ આ સમય જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો સદ્ભાવ હોવાથી જ પ્રતિપાદિત તત્વાર્થમાં સકલ વસ્તુના બોધક જ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થયેલ નથી. માટે તમે

ज्ञानावरणीयसत्त्वात्प्रतिपादितेऽपि तत्त्वार्थे सकलवस्तुनो न ज्ञानं भवति, तदधिगमार्थं जिनोक्तवचनश्रद्धानरूपं सम्यक्त्वमवलम्बनीयमिति दर्शयति–' तमेव ' इत्यादि।

मूलम्–तमेव सच्चं नीसंकं जं जिणेहिं पवेइयं ॥ सू० ३ ॥

छाया—तदेव सत्यं निःशङ्कं यज्जिनैः प्रवेदितम्॥ सू० ३ ॥

टीका—' तदेवे 'त्यादि, यत् धर्माधर्माकाश–काल–पुद्गलादिकं जिनैः= वीतरागैः प्रवेदितं द्वादशपर्षदि प्ररूपितं, तदेव वस्तुजातं सत्यं=वास्तविकम्, एवकारान्नान्यतैर्थिकादिप्ररूपितम्, किञ्च निःशङ्कं भगवदभिहितेषु परमसूक्ष्मेषु

प्राप्ति नहीं हुई है, सो तुम उस अधिगम–ज्ञानकी प्राप्तिके लिये जिन-प्रतिपादित वचनोंमें श्रद्धानरूप सम्यक्त्वका अवलम्बन करो। इसी बातको सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं–' तमेव ' इत्यादि।

जिस धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य और पुद्गलद्रव्य का वर्णन वीतरागप्रभुने १२ प्रकारकी सभामें किया है, वही भगवत्–प्ररूपित द्रव्य वास्तविक–सत्य है। सूत्रमें ' एव ' पद अन्यतीर्थिकप्ररू-पित तत्त्व वास्तविक नहीं है इस बातका बोधक है। निःशंक शब्द यह प्रकट करता है कि भगवानने जिन सूक्ष्म, अन्तरित तथा दूर रहे हुए पदार्थों की प्ररूपणा की है और जो केवल शास्त्रों से ही जाने जाते हैं ऐसे परमाणु आदि पदार्थों में " ये हैं या नहीं हैं " इस प्रकारके संदेहका नाम शंका है–ऐसी शंका जिनमें नहीं है वे निःशंक हैं।

ते અધિગમ–જ્ઞાનની પ્રાપ્તિ માટે જીનપ્રતિપાદિત વચનોમાં શ્રદ્ધાનરૂપ સમ્યકૃત્વનું અવલંબન કરો આ વાતને સૂત્રકાર સમજાવે છે. " तमेव " ઈત્યાદિ.

વીતરાગ પ્રભુએ ૧૨ પ્રકારની સભાઓમાં ધર્મદ્રવ્ય, અધર્મદ્રવ્ય, આકા-શદ્રવ્ય, કાલદ્રવ્ય અને પુદ્ગલદ્રવ્યનું જે વર્ણન કરેલ છે. તે ભગવત્–પ્રરૂપિત દ્રવ્ય વાસ્તવિક સત્ય છે. સૂત્રમાં " एव " પદ અન્ય તીર્થિકપ્રરૂપિત તત્વ વાસ્તવિક નથી. આ વાતનો બોધક છે. નિઃશંક શબ્દ એ પ્રગટ કરે છે કે ભગવાને જે સૂક્ષ્મ અન્તરિત તથા દૂર રહેલા પદાર્થોની પ્રરૂપણા કરી છે અને જે કેવળ શાસ્ત્રોથી જ જાણી શકાય છે એવા પરમાણુ આદિ પદાર્થોમાં " આ છે કે નથી " આ પ્રકારના સંદેહનું નામ શંકા છે. આવી શંકા જેનામાં નથી એ નિઃશંક છે.

शास्त्रमात्रज्ञेयेषु परमाण्वादिषु चार्थेषु अस्ति वा नास्ति इत्येवमाकारः सन्देहः शङ्का सा निर्गता=अपगता यस्मात् तन्निःशङ्कं=संशयरहितमस्ति स्वसमय-परसमयपरिज्ञाकुशलाचार्याणामप्राप्त्या देश-काल-स्वभावविप्रकृष्टेषु सूक्ष्मातीन्द्रियपदार्थसार्थेषु तत्साधकहेतुदृष्टान्ताद्यभावाच्च ज्ञानावरणीयोदयेन सम्यग्ज्ञानासत्त्वेऽपि जिनप्रवचने संशयादिरहितेन भाव्यमित्याशयः। अतस्तथ्यभूतार्थप्रतिपादके वीतरागवचने श्रद्धा कार्या। उक्तञ्च—

"वीतरागा हि सर्वज्ञा, मिथ्या न ब्रुवते क्वचित्।
यस्मात्तस्माद्वचस्तेषां, तथ्यं भूतार्थदर्शनम् ॥ १ ॥ इति ॥

भावार्थ—स्वसमय और परसमयके ज्ञाता आचार्योंकी अप्राप्तिसे देश, काल और स्वभाव विप्रकृष्ट ऐसे सूक्ष्म, अतीन्द्रिय पदार्थों में उनके साधक हेतु दृष्टान्तोंके अभावसे तथा ज्ञानावरणीय कर्मके उदयसे सम्यग्ज्ञान छद्मस्थ जीवोंके नहीं हो सकता है तो भी मुनियोंको जिनप्रवचनमें संशयरहित ही होना चाहिये। कभी उनके विषयमें संशय नहीं करें। कारण कि तथ्य (सत्य) और भूतार्थ (विद्यमान) प्रतिपादक ही वीतराग प्रभुके वचन होते हैं। इसलिये उनमें श्रद्धा ही करणीय है। कहा भी है—

वीतरागा हि सर्वज्ञा मिथ्या न ब्रुवते क्वचित्।
यस्मात्तस्माद्वचस्तेषां तथ्यं भूतार्थदर्शकम् ॥ १ ॥

वीतराग ही सर्वज्ञ होते हैं। वे कहीं पर भी किसी भी अवस्थामें

ભાવાર્થ—સ્વ સમય અને પર સમયના જ્ઞાતા આચાર્યોની અપ્રાપ્તિથી દેશકાળ અને સ્વભાવ વિપ્રકૃષ્ટ એવા સૂક્ષ્મ, અતીન્દ્રિય પદાર્થોમાં એના સાધક હેતુ દૃષ્ટાંતોના અભાવથી અને જ્ઞાનાવરણીય કર્મના ઉદયથી સમ્યગ્જ્ઞાન છદ્મસ્થ જીવોને થતો નથી. તો પણ મુનિયોએ જીન પ્રવચનમાં સંશય રહિત રહેવું જોઈએ. કદી એમના વિષયમાં સંશય ન કરે. કારણ કે સત્ય અને વિદ્યમાન પ્રતિપાદક જ વીતરાગ પ્રભુનાં વચન બને છે. આ માટે એમાં શ્રદ્ધા જ રાખવી જોઈએ. કહ્યું પણ છે—

वीतरागा हि सर्वज्ञा मिथ्या न ब्रुवते क्वचित्।
यस्मात्तस्माद् वचस्तेषां तथ्यं भूतार्थदर्शकम् ॥ १ ॥

વીતરાગ જ સર્વજ્ઞ હોય છે, એ કોઈ પણ સ્થળે કોઈ પણ અવસ્થામાં

किं गृहस्थस्यैव शङ्का भवत्युत गृहीतचारित्रस्य मुनेरपीत्याशङ्कायामिदमुत्तरम्—उभयोरपि शङ्का मोहनीयोदयप्राबल्येन भवति, तत्प्राबल्यस्योभयत्र संभवात् ॥सू०३॥

संशयो हि प्रव्रजितुमिच्छोर्भवति तत्र यद्विचारणीयं तदाह–'सड्ढिस्स' इत्यादि।

मूलम्—सड्ढिस्स णं समणुन्नस्स संपव्वयमाणस्स समियंति-मन्नमाणस्स एगया समिया होइ (१), समियंति मन्नमाणस्स एगया असमिया होइ(२), असमियंति मन्नमाणस्स एगया समिया होइ (३), असमियंति मन्नमाणस्स एगया असमिया होइ (४), समियंति मन्नमाणस्स समिया वा असमिया वा समिया होइ उवेहाए (५), असमियंति मन्नमाणस्स समिया वा असमिया वा असमिया होइ उवेहाए (६), उवेहमाणो अणुवेहमाणं बूया उवेहाहि समियाए, इच्चेवं तत्थ संधी झोसिओ भवइ, से उट्ठियस्स ठियस्स गइं समणुपासह, एत्थवि बालभावे अप्पाणं नो उवदंसिज्जा ॥ सू० ४ ॥

छाया—श्रद्धिनः खलु समनुज्ञस्य संप्रव्रजतः सम्यगिति मन्यमानस्यैकदा सम्यग् भवति (१), सम्यगिति मन्यमानस्यैकदा असम्यग् भवति (२), असम्यगिति मन्यमास्यैकदा सम्यग् भवति (३), असम्यगिति मन्यमानस्यैकदा असम्यग्

मिथ्याभाषण नहीं करते हैं। इसलिये उनके वचन ही तथ्य और भूतार्थ–प्रतिपादक होते हैं।

शङ्का—क्या शङ्का गृहस्थोंके ही होती है अथवा संयमीजनोंके भी?

उत्तर—शङ्का दोनोंके होती है, कारण कि शङ्काका कारण मोहनीय कर्मके उदयकी प्रबलता है। यह कर्म दोनोंके संभवित है ॥ ३ ॥

जो दीक्षा ग्रहण करनेका अभिलाषी है उसके शङ्का होती है। इस विषयमें जो विचारणीय बात है वह सूत्रकार कहते हैं "सड्ढिस्स" इत्यादि।

મિથ્યા ભાષણ કરતા નથી, આથી તેમનું વચન જ સત્ય અને વિદ્યમાન–પ્રતિપાદક બને છે.

શંકા—શંકા શું ગૃહસ્થોને જ થાય છે કે સંયમી જનોને પણ થાય છે?

ઉત્તર—શંકા બન્નેને થાય છે. શંકાનું કારણ મોહનીય કર્મના ઉદયની પ્રબળતા છે. આ કર્મ બન્નેમાં સંભવિત છે.

જે શિક્ષા ગ્રહણ કરવાના અભિલાષી છે તેને શંકા થાય છે આ વિષયમાં જે વિચારવાની વાત છે તે સૂત્રકાર કહે છે–" सड्ढिस्स " ઇત્યાદિ.

भवति (४), सम्यगिति मन्यमानस्य सम्यग् वा असम्यग् वा सम्यग् भवत्युत्प्रेक्षया (५), असम्यगिति मन्यमानस्यैकदा सम्यग् वा असम्यग् भवत्युत्प्रेक्षया (६)। उत्प्रेक्षमाणोऽनुत्प्रेक्षमाणं ब्रूयादुत्प्रेक्षस्व सम्यक्तया, इत्येवं तत्र सन्धिर्झोषितो भवति, तस्योत्थितस्य गतिं समनुपश्यत, अत्रापि बालभावे आत्मानं नोपदर्शयेत् ॥सू० ४॥

टीका—'श्रद्धिन' इत्यादि–श्रद्धिनः=श्रद्धावतः, श्रद्धा–हि वीतरागस्य गुरोश्च वचने विश्वासः सा यस्यास्ति स श्रद्धी तस्य श्रद्धिनः=आर्हतमार्गाऽऽस्थावतः समनुज्ञस्य मोक्षमार्गविहारिभिर्मुनिभिर्भावितस्य संयमार्हस्य संप्रव्रजतः=वैराग्येण प्रव्रज्यां स्वीकुर्वाणस्य जीवादिस्वरूपे संशयो यदि भवेत्तदा तदेव सत्यं निःशङ्कं यज्जिनैः प्रवेदितम् इत्यादि सम्यगुपदेशेन तत्र प्रवृत्तस्य प्रवृद्धकण्डकस्योत्तरसमये सम्यक्त्वस्याधिक्यं साम्यं न्यूनत्वमभावो वा जायेतेत्याशयः। तादृशीमेव विचित्रा-

---

वीतराग वचनोंमें विश्वासका होना श्रद्धा है। इस श्रद्धाविशिष्ट व्यक्तिका नाम श्रद्धी है। मोक्षमार्गमें विचरण करनेवाले मुनियोंके द्वारा संयमके योग्य बनाये गये–संयम धारण करनेकी ओर प्रवृत्त किये का नाम समनुज्ञ है। संयमको धारण जिसने कर लिया है–अर्थात् वैराग्य–पूर्वक भागवती दीक्षा जिसने स्वीकृत कर ली है वह संप्रव्रजत् है। ऐसे व्यक्तिको यदि कदाचित् जीवादिक तत्त्वोंके स्वरूपमें संदेह हो जाता है तो वह इस अटल श्रद्धा पर कि "जिनेन्द्रदेवने जो कुछ कहा है वही सत्य निःशङ्क तत्त्व है" अपनी संदेहशील प्रवृत्तिका उन्मूलन कर देता है। इससे वह उत्तरकालमें समकितके लाभकी अधिकता की प्राप्ति कर लेता है। अथवा जीवादिक तत्त्वों में संदेहशील होने पर मिथ्यात्व

વીતરાગ વચનોમાં વિશ્વાસ હોવો એ જ શ્રદ્ધા છે. આ શ્રદ્ધાવિશિષ્ટ વ્યક્તિનું નામ શ્રદ્ધી છે. મોક્ષમાર્ગમાં વિચરણ કરવાવાળા મુનિયોદ્વારા સંયમને યોગ્ય બનાવેલા–સંયમ ધારણ કરવાની તરફ પ્રવૃત્ત બનેલનું નામ સમનુજ્ઞ છે. સંયમ જેણે ધારણ કરી લીધેલ છે અર્થાત્ વૈરાગ્યપૂર્વક ભાગવતી દીક્ષા જેણે સ્વીકારી છે તે સંપ્રવ્રજત્ છે. આવી વ્યક્તિને કદાચિત્ જીવાદિક તત્ત્વોના સ્વરૂપમાં સન્દેહ થઈ જાય છે તો તે આ અટલ શ્રદ્ધાપર કે "જીનેન્દ્રદેવે જે કાંઈ કહ્યું છે એ નિઃશંક સત્ય તત્ત્વ છે." પોતાની સન્દેહશીલ પ્રવૃત્તિને દૂર કરે છે, આથી તે ઉત્તરકાળમાં સમકિતના લાભને અધિકતાથી પ્રાપ્ત કરી લે છે. અને

त्मपरिणतिं दर्शयति ' सम्यगि 'त्यादि—तस्य शङ्कारहितस्य=पूर्वोक्तविशेषणविशिष्टस्य सम्यगिति=जिनप्रवेदिततत्त्वमेव सम्यग् इति=एवं मन्यमानस्य=अवबुध्यमानस्य एकदा=पश्चात्समये सम्यग् भवति संशयाभावेन जिनोक्ते शङ्काद्युत्पादासम्भवात् ॥१॥

तस्य संप्रव्रजतः श्रद्धावतः पूर्वं सम्यगिति मन्यमानस्य एकदा=तदुत्तरकाले परतीर्थिकशास्त्रपरिशीलनेन छद्मस्थविनिर्मितैकान्तनिश्चयनयप्रतिपादकग्रन्थावलो-

---

प्रकृतिके उदयमें वह समकित लाभसे वंचित हो जाता है। यदि उत्तरकालमें समकित प्राप्तिकी अधिकता उसे न हो तो समकितका लाभ जितने रूपमें उसे पूर्व अवस्थामें हुआ है उसी रूपमें बना रहता है, अथवा उसकी अपेक्षा न्यून भी हो जाता है।

भावार्थ—आत्मा उपशम समकितको पा कर अन्तर्मुहूर्तकालके बाद नियमसे या तो समकितके अभावसे मिथ्यात्वदशासम्पन्न हो जायगा या क्षायोपशमिक समकितवाला हो जावेगा। क्षायोपशमिकसे वृद्धि कर वही आगे क्षायिकसम्यग्दृष्टि हो जाता है। इस प्रकारकी विचित्र आत्मपरिणतिका प्रदर्शन कराते हुए सूत्रकार कहते हैं कि जिनवचनमें शंकारहित हो कर प्रवृत्तिशील उस प्राणीको उस समय "जिनोक्त तत्त्व ही सत्य है" इस प्रकारके विश्वाससे समकितका लाभ होता है; कारण कि समकितको नहीं होने देनेवाले जो शङ्कादिक दोष हैं वे उस समय उस आत्मासे पृथक् हो जाते हैं १। "सम्यगिति मन्यमानस्यैकदा असम्यग् भवति" जिनप्रवचनमें श्रद्धासम्पन्न उसी मानवका ज्ञान जो पहिले

જીવાદિક તત્વોમાં સન્દેહશીલ હોવાથી મિથ્યાત્વપ્રકૃતિના ઉદયમાં તે સમકિત-લાભથી વંચિત બને છે. કદાચ ઉત્તરકાળમાં સમકિત પ્રાપ્તિની અધિકતા એને ન મળે તો સમકિત લાભ જેટલા રૂપમાં એને પૂર્વ અવસ્થામાં મળ્યો છે એ રૂપમાં બન્યો રહે છે, અથવા એની અપેક્ષા ઓછી થઈ જાય છે.

ભાવાર્થ—આત્મા ઉપશમ-સમકિતના કારણે અન્તરમુહૂર્ત પછી નિયમથી અથવા સમકિતના અભાવથી મિથ્યાત્વદશાસંપન્ન બની જશે અથવા ક્ષાયોપશમિક સમકિતવાળા થઇ જશે. ક્ષાયોપશમિકથી આગળ વધી તે ક્ષાયિકસમ્યગ્દષ્ટિ થઇ જાય છે. આ પ્રકારની વિચિત્ર આત્મપરિણતિનું પ્રદર્શન કરાવતાં સૂત્રકાર કહે છે કે, જીનવચનમાં શંકારહિત રહી પ્રવૃત્તિશીલ એ પ્રાણીને એ સમય "જિનોક્ત તત્વ જ સત્ય છે" આ પ્રકારના વિશ્વાસથી સમકિતનો લાભ થાય છે. કારણ કે સમકિતને રોકવાવાળા જે શંકાદિક દોષ છે તે એ સમયે એના આત્માથી દૂર થઇ જાય છે. (૧) "सम्यगिति मन्यमानस्यैकदा असम्यग् भवति" જીન પ્રવચનમાં શ્રદ્ધાસંપન્ન એ માનવનું જ્ઞાન જે પહેલાં સમકિત રૂપમાં હતું.

कनेन च व्यामोहितमतेर्मिथ्यात्वपरिगृहीततया हेत्वाभासदृष्टान्ताभासादीन् राग-द्वेषादिना हेतुदृष्टान्तानभिजानतः सम्यक्त्ववञ्चितान्तःकरणस्य विपरीतश्रद्धासमुत्था-नानन्तरम् असम्यग् भवति, जिनोक्तं यत् सम्यक् तत्तस्याऽसम्यगिति चेतसि प्रति-भाति स्याद्वादसिद्धान्तरहस्यविस्मृतत्वात् । आक्षिपति चानेकान्तवादम्, तथा हि यत्सत् न तदसत् यच्चासत्तत्कथमपि न सद् भवितुमर्हति, एवं यन्नित्यं न तदनित्यं

समकितरूपमें था उत्तरकालमें परतीर्थिक शास्त्रोंके परिशीलनसे अथवा छद्मस्थजनोंने जिन ग्रन्थोंमें एकान्तरूपसे निश्चयनयका वर्णन किया है उन ग्रन्थोंके अवलोकन से मतिमें व्यामोह उत्पन्न हो जानेके कारण हेत्वाभास एवं दृष्टान्ताभासोंको भी सच्चे हेतु और सच्चे दृष्टान्तरूप मान लेता है। जिससे वह मिथ्यात्वसे युक्त हो जानेके कारण समकित से वंचित अन्तःकरणवाला हो जाता है । क्यों कि इसके हृदयमें विपरीत श्रद्धाका निवास होता है। इस कारण यह स्याद्वाद सिद्धान्तके रहस्यको भूल जानेसे फिर जिनोक्त सम्यक् तत्त्वोंको भी असम्यक्रूपसे मानने लग जाता है, अनेकान्तवादका फिर तो वह खंडन करने लग जाता है, अचनाक ही कह उठता है कि वाहरे! स्याद्वाद सिद्धान्त ! तूं तो एक विलक्षण ही सिद्धान्त है सत् असत्, नित्य अनित्य आदि अनेक पर-स्परविरोधी धर्मोंको जो तूं एक ही जगह स्वीकार करता है, भला ! यह भी कोई बात है । अरे ! जो सत् होगा वह असत् नहीं होगा और

ઉત્તર કાળમાં બીજા ધર્મનાં શાસ્ત્રોના સાંભળવાથી અથવા તો ધુતારા માણસો કે જેણે જીન ગ્રંથોમાં એકાન્ત રૂપથી નિશ્ચયનયનું વર્ણન કર્યું છે એવા ગ્રંથોના અવલોકનથી મતિમાં ભ્રમણા ઉત્પન્ન થઈ જવાના કારણે હેત્વા-ભાસ અને દૃષ્ટાન્તાભાસોને પણ સાચા હેતુરૂપ અને સાચા દૃષ્ટાન્તરૂપ માની લે છે, આથી તે મિથ્યાત્વથી યુક્ત બની જવાના કારણે સમકિતથી વંચિત અંતઃકરણવાળો બની જાય છે. કેમકે એના હૃદયમાં વિપરીત શ્રદ્ધાનો નિવાસ થવા પામ્યો હોય છે. આ કારણે એ સ્યાદ્વાદસિદ્ધાંતના રહસ્યને ભૂલી જવાથી જિનોકત સમ્યક્તત્વોને પણ અસમ્યક્રૂપથી માનવા લાગી જાય છે. અનેકા-ન્તવાદને પછી તો એ ખંડન કરવા માંડે છે, અચાનક જ કહી ઉઠે છે કે વાહરે ! સ્યાદ્વાદ સિદ્ધાંત ! તું તો એક વિલક્ષણ જ સિદ્ધાંત છે. સત્ અસત્, નિત્ય અનિત્ય આદિ અનેક પરસ્પર વિરોધી ધર્મોનો જે તું એક જ સાથે સ્વીકાર કરે છે, ભલા આ પણ કોઈ વાત છે, અરે ! જે સત્ છે તે અસત્ ન થઇ શકે

यच्चानित्यं न तन्नित्यं भवितुमर्हति, विरुद्धयोर्धर्मयोरेकत्रावस्थाने जगति विरोध एव विलयं गच्छेत्, तेन न युक्तोऽयमनेकान्तवादः, एकस्मिन् बहुधर्मसाधकहेतो-स्तादृशदृष्टान्तस्य चासम्भवात् ॥ २ ॥

कस्य चिच्चैतद्वैपरीत्यमाह-'असम्यगि'त्यादि-मिथ्यात्वानुबन्धिनः कस्य चित् असम्यक्='पौद्गलिकः शब्दः' इत्यादि वीतरागोक्तं तत्त्वं न साधीय इति

जो असत् होगा-वह सत् नहीं होगा। इसी प्रकार जो वस्तु नित्य है वह अनित्य कैसे हो सकती है और जो अनित्य होगी वह नित्य कैसे हो सकती है। यदि परस्पर विरुद्ध धर्मोंका भी एकत्र अवस्थान माना जायगा तो फिर जगतमें विरोध नामक कोई वस्तु ही नहीं रहेगी, समस्त वस्तुओं में परस्पर संकरता ही हो जायगी, परन्तु ऐसा तो है नहीं; अतः अनेकान्तवाद सिद्धान्त युक्तियुक्त सिद्धान्त नहीं है तथा ऐसा कोई हेतु या दृष्टान्त भी नहीं है कि जिसके बलपर एकही वस्तुमें परस्पर विरोधी धर्मोंकी सत्ता साधी जा सके २। "असम्यगिति मन्यमानस्यैकदा सम्यग् भवति" मिथ्यात्वका अनुबन्ध जिसकी आत्मामें लगा हुआ है ऐसा मनुष्य वीतरागप्रतिपादित तत्त्वको पहिले असम्यक् समझता है, मिथ्यात्व के आवेशमें वह विचारता है कि जैनसिद्धान्तमें शब्द को जो पुद्गल की पर्याय माना गया है वह ठीक नहीं है, इसी प्रकार आत्माको व्यापक न मानकर उसे जो स्वदेह प्रमाण माना है सो यह भी मान्यता

અને અસત્ સત્ થઈ શકે નહિ. આ પ્રકારે જે વસ્તુ નિત્ય છે તે અનિત્ય કઈ રીતે થઇ શકે અને જે અનિત્ય હોય તે નિત્ય કેમ થઈ શકે. જો પરસ્પર વિરૂદ્ધ ધર્મોને પણ એકત્ર અવસ્થાન માનવામાં આવે તો પછી જગતમાં વિરોધ નામની કોઈ વસ્તુ જ નહીં રહે—સમસ્ત વસ્તુઓમાં પરસ્પર એકતા જ બની જવાની; પરંતુ આવું તો નથી, આથી એ અનેકાન્તવાદ યુકિતયુકત સિદ્ધાંત નથી. તેમ એવો કોઈ હેતુ કે દષ્ટાંત પણ નથી કે જેના જોર ઉપર એક જ વસ્તુમાં પરસ્પર વિરોધી ધર્મોની સત્તા એકરૂપ બની શકે. (૨) असम्यगिति मन्य-मानस्यैकदा सम्यग् भवति" મિથ્યાત્વનો અનુબંધ જેમના આત્મામાં લાગેલ છે એવા મનુષ્ય વીતરાગ પ્રતિપાદિત તત્વને અસમ્યક્ સમજે છે. મિથ્યાત્વના આવેશમાં એ વિચારે છે કે "જૈન સિદ્ધાંતમાં શબ્દને જે પુદ્ગલની પર્યાય માનવામાં આવેલ છે તે સાચું નથી" આજ પ્રકારે આત્માને વ્યાપક ન માની એને સ્વદેહ પ્રમાણ માનેલ છે એ માન્યતા પણ ઉચિત નથી, ઇત્યાદિ રૂપથી

=एवं मन्यमानस्य मिथ्यात्वोदयप्राबल्येनाऽनर्थकं बहु विप्रलपतस्तस्य एकदा=कदाचित् परिणामवैचित्र्यान्मिथ्यात्वोपशमेन आचार्योपदेशात्सम्यक्त्वनिश्चयेन च संशयादिके दूरीभूते सति यज्जिनोक्तं तत्त्वं तत्सम्यगिति भवति। संशयापनयस्तस्य कथमिति चेच्छृणु, एवं यदि शब्दो न पौद्गलिको भवेत्तर्हि तद्विहितावनुग्रहोपघातौ

उचित नहीं है-इत्यादिरूपमें वह आत्मा वीतराग प्रतिपादित तत्त्वमें असम्यक्पना देखता है। इस प्रकार उसकी मान्यताका कारण प्रबल मिथ्यात्वका उदय है। इसकी प्रबलतामें वह और भी अनेक अनर्थक मान्यताओंकी कल्पनाको सम्यक् माना करता है, जगत्को ईश्वरकर्तृक माननेका भी यही कारण है। इस प्रकार उसके मिथ्यात्वकी वासनासे प्रभुकथित मार्ग-उल्टा-अयथार्थ प्रतिभासित होता है। परन्तु जब उसकी निष्पक्ष आचार्यादिक के सम्यग् उपदेशसे अथवा परिणामकी विचित्रता से या मिथ्यात्वके उपशमसे आखें खुलती हैं, तत्त्वका वास्तविक भान-निश्चय उसे होता है तो उसकी पूर्वमान्यता में सहसा परिवर्तन हो जाता है, संशय दूर होते ही फिर उसे यही निश्चय होता है कि जो वीतरागने तत्त्वोंके स्वरूपका प्रतिपादन किया है वही वास्तविक है। शब्द आकाश का गुण न होकर पुद्गलकी ही एक पर्याय है, यदि वह पौद्गलिक न होता तो उसके द्वारा जो कर्ण-इन्द्रियका उपघात देखनेमें आता है वह आकाशके अमूर्तिक होने पर उसके गुण को भी अमूर्तिक होनेसे कैसे हो

તે આત્મા વીતરાગ પ્રતિપાદિત તત્વમાં અસમ્યક્‌પણું જુએ છે. આ પ્રકારની એની માન્યતાનું કારણ પ્રબલ મિથ્યાત્વનો ઉદય છે. એની પ્રબળતામાં એ બીજી પણ અનેક અનર્થક માન્યતાઓની કલ્પનાને સમ્યક્ માન્યા કરે છે. જગતને ઇશ્વર કર્તૃક માનવાનું પણ આ કારણ છે. આ પ્રકારે એને મિથ્યાત્વની વાસનાથી પ્રભુ કથિત માર્ગ ઉલ્ટો-અયથાર્થ પ્રતિભાસિત બને છે. પરન્તુ જ્યારે એની નિષ્પક્ષ આચાર્યાદિકના સમ્યગ્ ઉપદેશથી અથવા પરિણામની વિચિત્રતાથી અથવા મિથ્યાત્વના ઉપશમથી આંખો ખુલે છે-તત્વનું વાસ્તવિક ભાન એને થવા પામે છે ત્યારે એની પૂર્વ માન્યતામાં સહસા પરિવર્તન થઇ જાય છે. સંશય દૂર થતાં જ ફરી એને એ નિશ્ચય બંધાઈ જાય છે કે વીતરાગે તત્વોના સ્વરૂપને જે રીતે કહેલ છે તેજ વાસ્તવિક છે. શબ્દ આકાશના ગુણ નથી પણ પુદ્‌ગલની જ એક પર્યાય છે. કદાચ એ પૌદ્‌ગલિક ન હોત તો એના દ્વારા કર્ણ ઇન્દ્રિયનો જે ઉપઘાત જોવામાં આવે છે તે આકાશ અમૂર્તિક હોવાથી એના

कर्णेन्द्रियस्य न स्याताम्, अमूर्तत्वाद् गगनवत्, न चायं तथेत्यादि न्यायावतारेण तस्य बाधकतर्कापनयो जायते ॥ ३ ॥

मिथ्यात्ववासनावासितान्तःकरणस्यार्हतशासनापरिशीलकस्य कस्य चिद् असम्यक्=स्याद्वादतत्त्वं न शोभनं कथमेकेनैव समयेन परमाणुः सप्तमपृथिवीतलतः समुत्थाय लोकान्तं यावद्गच्छति ? इति=एवं मन्यमानस्य कुतर्कग्रहिलस्य एकदा=कुतर्कनिकरप्रसरावसरे असम्यग् भवति। इत्थं हि कुतर्कोद्भावितार्थास्ते विवदन्ते—चतु-

सकता है? इसी प्रकार अनुग्रह भी जो शब्दसे उसका होता है वह भी नहीं हो सकता। भला! अमूर्तिक आकाशसे भी कहीं अनुग्रह और उपघात होते हैं। अतः अनुग्रह और उपघातकारक होनेसे शब्द मूर्तिक ही है। इस प्रकारसे वह युक्तिवादके बलपर अपने पूर्वबाधक तर्कका अपनयन कर (छोड़) देता है, इसलिये उसका वही ज्ञान सम्यक् ज्ञान हो जाता है ३।

"असम्यगिति मन्यमानस्यैकदा असम्यक् भवति" मिथ्यात्वकी वासनासे जिसका अन्तःकरण वासित हो जाता है तथा जिनेन्द्र प्रतिपादित सिद्धान्तका जिसने परिशीलन भी नहीं किया है ऐसे मनुष्यके चित्तमें "स्याद्वादतत्त्व सुन्दर नहीं हैं" इस प्रकारका असम्यक् उद्भूत होता है। उस कारणसे वह स्याद्वाद-सिद्धान्त-प्रतिपादित कथन को असम्यक् मानता है और कहता है कि जो जिनशास्त्रमें यह लिखा है कि एक पुद्गलका परमाणु एक समयमें १४ राजू प्रमाण गमन करता

ગુણને પણ અમૂર્તિક હોવાથી કઇ રીતે થઇ શકે? એ પ્રકારે અનુગ્રહ પણ જે શબ્દથી એનો થાય છે એ પણ ન થઈ શકે. ભલા! અમૂર્તિક આકાશથી પણ કદી અનુગ્રહ અને ઉપઘાત થઇ શકે? અનુગ્રહ અને ઉપઘાતકારક હોવાથી શબ્દ મૂર્તિક જ છે, આ પ્રકારથી તે યુક્તિવાદના બળ ઉપર પોતાના પૂર્વબાધક તર્કને છોડી દે છે. આથી એનું એ જ્ઞાન સમ્યક્ બની જાય છે (૩)

"असम्यगिति मन्यमानस्यैकदा असम्यक् भवति" મિથ્યાત્વની વાસનાથી જેનું અન્તઃકરણ વાસનાવાળું બને છે તથા જીનેન્દ્ર પ્રતિપાદિત સિદ્ધાંતનું જેણે પરિશીલન પણ કર્યું નથી, એવા મનુષ્યના ચિત્તમાં સ્યાદ્વાદ તત્વ બરોબર નથી" આ પ્રકારનો અસમ્યક્ ઉદ્ભૂત થાય છે, એ કારણથી એ સ્યાદ્વાદ સિદ્ધાન્ત પ્રતિપાદિત કથનને અસમ્યક્ માને છે. અને કહે છે કે જીન શાસ્ત્રમાં એવું લખ્યું છે કે એક પુદ્ગલના પરમાણુ એક સમયમાં

र्दशरज्जुस्वरूपलोकस्य प्रथमचरमाकाशप्रदेशयोर्यौगपद्यसम्बन्धात् परमाणोस्ताव-त्प्रमाणत्वं दुर्वारमेव जायेत, लोकान्तद्वयगतप्रदेशयोश्चैक्यमापद्येत इत्यादियुक्तिभि-स्तस्यासम्यक्त्वमिति, परन्तु ते देवानां प्रिया अनवगाहितवीतरागागमा न जानन्ति यथा विस्रसापरिणामेन परमाणोराशुगतिकतयैकसमयेनासङ्ख्येयप्रदेशातिक्रमणं भवतीति ॥ ४ ॥

है सो यह बात समझमें नहीं आती है, कारण कि एक समयमें ही सप्तम नरकसे उठ कर कैसे लोकके अन्ततक वह जा सकता है। इस प्रकारकी मान्यतावालेका ज्ञान कुतर्कसे युक्त होता है, और इस ही कुतर्कके बलपर इस पूर्वोक्त मान्यताका निषेध करता है। निषेधमें वह यह कुयुक्ति देता है कि एक ही समयमें जब परमाणु चौदह राजू गमन करता है तो उसका लोकके आदि और अंतके प्रदेशके साथ युगपत् संबंध होने पर परमाणुमें भी चौदह-राजू-प्रमाणता आ जायगी। अन्यथा युगपत् आदि अंतके प्रदेशके साथ उसका संबंध नहीं हो सकता है; तथा उसका युगपत् संबंध मानने पर लोकके आदि अंत प्रदेशोंकी भी एकता आवेगी। ऐसा कहनेवाले अज्ञानी वीतरागोपदिष्ट आगमके ज्ञाता न होनेसे इस बातको नहीं समझते हैं कि स्वाभाविक परिणामसे एक परमाणु शीघ्र गतिवाला होनेसे एक समयमें असंख्यात प्रदेशोंका उल्लं-घन कर जाता है ४।

---

૧૪ રાજૂપ્રમાણુ ગમન કરે છે. તેથી આ વાત સમજમાં બેસતી નથી. કારણ કે એક સમયમાં જ સપ્તમ નરકથી ઉઠી કઈ રીતે લોકના અન્ત સુધી એ પહોંચી શકે. આ પ્રકારની માન્યતાવાળા જ્ઞાન કુતર્કથી ભરેલા હોય છે, અને એ જ કુતર્કના બળ ઉપર તેઓ આ પૂર્વોક્ત માન્યતાનો નિષેધ કરે છે. નિષેધમાં તે એવી કુયુકિત રજુ કરે છે કે એક જ સમયમાં જ્યારે પરમાણુ ૧૪ રાજુ ફરી શકે છે તો તેનો લોકના આદિ અને અન્તના પ્રદેશની સાથે યુગપત્ સંબંધ હોવાથી પરમાણુમાં પણ ૧૪ રાજૂ પ્રમાણુતા આવી જાય. આ સિવાય યુગપત્ આદિ અન્તના પ્રદેશની સાથે એનો સંબંધ હોઇ શકે નહીં. અને જો એનો યુગપત્ સંબંધ માનવામાં આવે તો લોકના આદિ અંત પ્રદેશોની પણ એકતા આવવાની, આવું કહેવાવાળા અજ્ઞાની વીતરાગના ઉપદેશેલ આગમથી જાણકાર ન હોવાથી આ વાતને સમજી શકતા નથી કે સ્વાભાવિક પરિણામથી એક પરમાણુ ત્વરિત ગતિવાળા હોવાથી એક સમયમાં અસંખ્ય પ્રદેશોનું ઉલંઘન કરી શકે છે.(૪)

परमार्थप्रकटनपूर्वकं भङ्गानुपसंहरन्नाह–'सम्यगि'त्यादि, सम्यगित्येवं मन्यमानस्य शङ्कादिवर्जितस्य सम्यग् उपादेयं वस्तूपादेयत्वेनैव जानतः, यत् सर्वज्ञोपदिष्टत्वेन सम्यक् यच्चासर्वज्ञोपदिष्टत्वेनासम्यक् तद्द्वयमपि तस्य उत्प्रेक्षया=नयाभिप्रायसमालोचनया सम्यक्त्वपरिगृहीततया सम्यग् भवति ॥ ५ ॥

पूर्ववैपरीत्येनाह–'असम्य'गित्यादि, असम्यगिति मन्यमानस्य स्याद्वादनयोक्तजीवाजीवादितत्त्वं यद्यपि सम्यगेव तथाऽप्यसम्यगिति जानतश्छद्मस्थस्यार्वा-

---

"सम्यगिति मन्यमानस्य सम्यक् वा असम्यक् वा सम्यक् भवति उत्प्रेक्षया" उपादेय वस्तुको उपादेयरूपसे और हेय वस्तुको हेयरूपसे माननेवाले तथा ज्ञात विषयको निःशंकरूपसे मानने और जाननेवाले सम्यग्दृष्टिका ज्ञान सम्यक् होता है। "सर्वज्ञके द्वारा कथित विषय सम्यक् और असर्वज्ञद्वारा प्रतिपादित विषय असम्यक् है" इस प्रकार इन दोनों बातोंका सम्यक्नयकी अपेक्षासे विचार करनेवाले सम्यग्दृष्टि मनुष्यका ज्ञान सच्चा ही माना गया है ५। "असम्यगिति मन्यमानस्य सम्यग् वा असम्यग् वा सम्यग्भवति उत्प्रेक्षया" स्याद्वादनयकी अपेक्षा से ही जीव और अजीवादि तत्त्वोंका स्वरूप कहा गया है, इसलिये उस स्वरूप विशिष्ट वे जीवादिक तत्त्व सम्यक् ही हैं, परन्तु छद्मस्थोंकी दृष्टिमें यह नयविचारणा ठीक २ समझमें नहीं आ सकनेके कारण और ऊपरी रूपसे ही वस्तुको जाननेके कारणसे उनका ज्ञान अधूरा रहता है, अतः

"सम्यगिति मन्यमानस्य सम्यक् वा असम्यक् वा सम्यक् भवति उत्प्रेक्षया" ઉપાદેય વસ્તુને ઉપાદેય રૂપથી અને હેય વસ્તુને હેયપણાથી માનવાવાળા તથા જ્ઞાત વિષયને નિઃશંકરૂપથી માનવા અને જાણવાવાળા સમ્યગ્દષ્ટિનું જ્ઞાન સમ્યક્ હોય છે. "સર્વજ્ઞ તરફથી કહેવામાં આવેલ વિષય સમ્યક્ અને અસર્વજ્ઞ દ્વારા પ્રતિપાદિત વિષય અસમ્યક્ છે" આ પ્રકારે આ બન્ને વાતોનો સમ્યક્નયની અપેક્ષાથી વિચાર કરવાવાળા સમ્યગ્દષ્ટિ મનુષ્યનું જ્ઞાન સાચું જ માન્યું ગયેલ છે. (૫) "असम्यगिति मन्यमानस्य सम्यग् वा असम्यग् असम्यग् भवति उत्प्रेक्षया" સ્યાદ્વાદનયની અપેક્ષાથી જ જીવ અને અજીવાદિ તત્વોનું સ્વરૂપ કહેવામાં આવેલ છે. આ માટે એ સ્વરૂપવિશિષ્ટ તે જીવાદિક તત્વ સમ્યક્ જ છે. પરંતુ છદ્મસ્થોની દૃષ્ટિમાં આ તથ્ય વિચારણા ઠીક ઠીક સમજવામાં નહિ આવવાના કારણે તેનું જ્ઞાન અધૂરૂં રહે છે. એટલે તે વસ્તુના વાસ્તવિક સ્વરૂપથી અનભિજ્ઞ બની

ग्दर्शित्वेन यत् सम्यग् वा असम्यग् वा सर्वं तस्य उत्प्रेक्षया=असम्यक्पर्यालोचनयाऽ-परिशुद्धाध्यवसायत्वेन च मिथ्यात्वपरिगृहीततया असम्यग् भवति, यथैव संशयादिः पूर्वमङ्कुरितस्तथैव फलित इत्यर्थः ॥ ६ ॥

इत्थं सम्यगुत्प्रेक्षापरः परोपदेशदाने समर्थो भवतीत्याह—'उत्प्रेक्षमाण' इत्यादि—उत्प्रेक्षमाणः=जिनशासनपरिकर्मितबुद्धितया सकलहेयोपादेयपदार्थसार्था-वगतिपूर्वकं सम्यगसम्यक् च सततं समालोचयन् अनुत्प्रेक्षमाणं लोकानुगमनशीलं

वे वस्तुके वास्तविक स्वरूपसे अनभिज्ञ बन एकान्त-मत-प्रतिपादित वस्तुके अयथार्थ स्वरूपको यथार्थ-सम्यक् और यथार्थ स्वरूपको असम्यक् मान बैठते हैं। इसलिये यथार्थ स्वरूप जाननेवालों की दृष्टिमें यह उनकी मान्यता अयथार्थरूप ही है; क्यों कि जैसी प्रतीति होती है वैसा ही ज्ञान इन्हें होता है। असम्यक् प्रतीतिका कारण असम्यक् पर्यालोचना या अप-रिशुद्ध अध्यवसाय है। इसका भी कारण निशंकरूपसे भानका अभाव है। इसलिये जिस रूपसे संशयादिक इन्हें वस्तुके विषयमें उत्पन्न होते हैं उसी रूपसे वे वहां फलित भी होते हैं ६।

इस प्रकार वास्तविक वस्तुतत्त्वमें यथार्थ अयार्थपनेका कारण समझ कर जो इस विषयका विचार करनेमें चतुर हैं वे परको इस विषयकी दृढता संपादनार्थ समझाते हैं कि हे भव्य! 'उत्प्रेक्षमाणोऽनुत्प्रेक्षमाणं ब्रूयादुत्प्रेक्षस्व सम्यक्तया" मैंने इस पदार्थकी अच्छी तरहसे पर्यालोचना कर ली है-जिनशासनमें जिस तत्त्वका वर्णन जिसरूपसे किया गया है

એકાન્તમત-પ્રતિપાદિત વસ્તુના અયથાર્થ સ્વરૂપને યથાર્થ-સમ્યક્ અને યથાર્થ સ્વરૂપને અસમ્યક્ માની બેઠા છે. આ માટે યથાર્થ સ્વરૂપ જાણવાવાળાની દૃષ્ટિમાં આ તેની માન્યતા અયથાર્થ રૂપ જ છે. કેમ કે જેવી પ્રતીતિ થાય છે તેવું જ્ઞાન તેને થાય છે. અસમ્યક્ પ્રતીતિનું કારણ અસમ્યક્ પર્યાલોચના અને અપ-રિશુદ્ધ અધ્યવસાય છે. આનું પણ કારણ નિઃશંકરૂપથી ભાનનો અભાવ છે. આ માટે જે રૂપથી તેને સંશયાદિક વિષય વસ્તુમાં ઉત્પન્ન થાય છે, એવા રૂપમાં તેનું ફળ મળે છે. (૬)

આ પ્રકારે વાસ્તવિક વસ્તુતત્વમાં યથાર્થ અયથાર્થનું કારણ સમજીને જે આ વિષયનો વિચાર કરવામાં ચતુર છે તે બીજાને આ વિષયની દૃઢતા સંપાદન માટે સમજાવે છે કે હે ભવ્ય! "उत्प्रेक्षमाणो"-ઈત્યાદિ.

મેં આ પદાર્થની સારી રીતે પર્યાલોચના કરેલ છે. જીનશાસનમાં જે તત્વનું

सम्यगसम्यगादिसमालोचनारहितं संशयितमतिं जनं ब्रूयात्=कथयेत् हे-भव्य ! सम्यक्तया=आर्हतशासनोक्तरीत्या समभावनया उत्प्रेक्षस्व=समालोचय पक्षपातराहित्येन जीवाजीवादितत्त्वमार्हतशासनोक्तं साधीयोऽथ वा परतैर्थिकोद्भावितमिति नेत्रे निमील्य स्वान्तःकरणे तत्त्वं विभावयेत्यर्थः ।

यद्वा ' उत्प्रेक्षमाणः '-उत्=प्राबल्येन प्रेक्षमाणः संयमे समुद्योगपरः, अनु-

---

वह असंदिग्ध है, उसमें सन्देहके लिये थोड़ासा भी स्थान नहीं है। इतने तत्त्व हेय हैं, इतने उपादेय हैं, इतने ज्ञेय हैं। वीतराग प्रतिपादित वस्तुस्वरूप ही यथार्थ है; अन्य छद्मस्थ कथित नहीं। इस प्रकार जिन-शासनसे परिकर्मित बुद्धि होनेसे हेय और उपादेय पदार्थोंकी अवगति-पूर्वक उनमें सम्यक् असम्यक्पनेकी समालोचना करनेवाला विद्वान् मुनि-जन, लोकानुगमनशील एवं सम्यक् असम्यक्की आलोचनासे रहित ऐसे संशयित मतिवाले जनके प्रति संबोधनार्थ कहते हैं कि हे भव्य ! कम से कम तूं आंखोंको मींचकर अपने चित्तमें पक्षपातसे रहित होकर इतना तो विचार कर कि जिस प्रकारसे वस्तुस्वरूपका प्रतिपादन जिन भगवान्ने किया है वह ठीक है या परतीर्थिकजनोंने जिस वस्तुतत्त्वका प्रतिपादन किया है वह ठीक है।

अथवा—जो संयमके परिपालन करनेमें पूर्ण उद्योगशील हैं वे उसमें अनुत्साहित हुए अथवा संदेहशील हुए मनुष्यको समझावें कि

वर्णन જેવા રૂપમાં આપેલ છે તે અસંદિગ્ધ છે, તેમાં સન્દેહ કરવાનું જરા પણ સ્થાન નથી. આટલું તત્વ હેય છે, આટલાં ઉપાદેય છે, આટલાં જ્ઞેય છે. વીતરાગ પ્રતિપાદિત વસ્તુસ્વરૂપ જ યથાર્થ છે, બીજા છદ્મસ્થથી પ્રતિપાદિત વસ્તુસ્વરૂપ યથાર્થ નથી. આ પ્રકારે જીનશાસમાં પરિકર્મિત બુદ્ધિ હોવાથી હેય અને ઉપાદેય પદાર્થોની અવગતિપૂર્વક તેમાં સમ્યક્-અસમ્યક્પણાની સમાલોચના કરવાવાળા વિદ્વાન મુનિજન, લોકાનુગમનશીલ અને સમ્યક્ અસમ્યક્ની આલોચનાથી રહિત એવા સંશય મતિવાળા માણસને સંબોધન કરી કહે છે કે હે ભવ્ય ! તું તારી આંખોને બન્ધ કરીને પક્ષપાતરહિત થઈ મનમાં થોડો તો વિચાર કર કે જે પ્રકારે વસ્તુસ્વરૂપનું પ્રતિપાદન જીન ભગવાને કરેલ છે તે ઠીક છે કે પરધર્મીઓએ જે વસ્તુતત્વનું પ્રતિપાદન કરેલ છે તે ઠીક છે ?

અથવા—જે સંયમનું પરિપાલન કરવામાં પૂર્ણ ઉદ્યોગશીલ છે તેઓ આનાથી ઉત્સાહ વગરના બનેલા અથવા સંદેહ વૃત્તિવાળા બન્યા હોય એવા

त्प्रेक्षमाणं=तत्रोद्यमरहितं संशयारूढं जनं ब्रूयात्, सम्यक्त्वे=संयमे उत्प्रेक्षस्व=समुद्योगं विधेहि–तत्र पराक्रमस्वेत्यर्थः, किमाश्रित्येदमुक्तमित्याह–'इत्येव'मित्यादि, इत्येवं=पूर्ववर्णितरूपेण तत्र=संयमे सन्धिः=ज्ञानावरणीयादिकर्मणां परम्परा झोषितः=क्षपितः–दूरीकृतो भवति।

तादृशोत्प्रेक्षणशीलस्य यद्भवति तदाह–'तस्ये'त्यादि, हे शिष्याः! तस्य=श्रद्धावतः उत्थितस्य प्रव्रजितुमुद्यतस्य सम्यक्त्वे संशयरहितस्य स्थितस्य=आचार्यस्यादेशे तदन्तिके च वर्तमानस्य गतिं=तदाचरणरूपां पद्धतिं यूयं समनुपश्यत =सम्यक् प्रेक्षध्वम्, पूर्वोक्तस्य श्रद्धावतः सर्वजनप्रशंसापात्रत्वं ज्ञाने दर्शने च दृढत्वं

हे भव्य! तूं इस संयमकी परिपालनानिमित्त पूर्ण प्रयत्नशील रह। क्यों कि इस संयमकी आराधनामें ही ज्ञानावरणीयादिक द्रव्य–भाव-कर्मोंकी परंपरा के नाश करनेकी शक्ति रही हुई है। इस प्रकार प्रयत्न-शील व्यक्तिके लाभ को प्रकट करनेके लिये सूत्रकार "तस्योत्थितस्य गतिं समनुपश्यत" कहते हैं। उस श्रद्धासम्पन्न एवं भागवती दीक्षा ग्रहण करनेके लिये उद्यमशील मनुष्यको यह एक बड़ा भारी लाभ होता है कि जब वह शङ्कारहित होकर आचार्यके निकट वसता या उनकी आज्ञा में रहता हुआ संयमकी आराधना करनेमें तल्लीन होता है तब उसे सम्य-क्त्वके परिज्ञानपूर्वक रत्नत्रयकी आराधनासे मुक्तिका लाभ होता है। इस प्रकार शिष्योंको सम्बोधन करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि देखो; श्रद्धा-सम्पन्न व्यक्ति सर्वजनकी प्रशंसाका पात्र बन कर, ज्ञान और दर्शनमें दृढ़ताकी प्राप्तिसे चारित्रमें निश्चलता धारण करता हुआ रत्नत्रयकी

મનુષ્યને સમજાવે કે હે ભવ્ય! તું આ સંયમને પાળવામાં પૂર્ણપણે પ્રયત્ન-શીલ રહે, કેમ કે આ સંયમની આરાધનામાં જ જ્ઞાનાવરણીયાદિક દ્રવ્યભાવ કર્મોની પરંપરાનો નાશ કરવાની શક્તિ છે. આવા પ્રયત્નશીલ વ્યક્તિના લાભને પ્રગટ કરતાં સૂત્રકાર "तस्योत्थितस्य गतिं समनुपश्यत" કહે છે–આવા શ્રદ્ધાસંપન્ન અને ભાગવતી દીક્ષા ગ્રહણ કરવામાં ઉદ્યમશીલ મનુષ્યને આ એક મોટો લાભ થાય છે કે જ્યારે તે શંકારહિત બની આચાર્યની પાસે રહી અથવા એમની આજ્ઞામાં રહી સંયમની આરાધના કરવામાં તલ્લીન બને છે ત્યારે તેને સમ્યક્ત્વના પરિજ્ઞાનપૂર્વક રત્નત્રયની આરાધનાથી મુક્તિનો લાભ થાય છે. આ પ્રકારે શિષ્યોને સંબોધન કરતાં સૂત્રકાર કહે છે કે જુઓ શ્રદ્ધાસંપન્ન વ્યક્તિ સર્વજનની પ્રશંસાને પાત્ર બની જ્ઞાન અને દર્શનમાં દૃઢતાની પ્રાપ્તિથી ચારિત્રમાં

चारित्रे निश्चलत्वं सम्यक्त्वपरिज्ञानपूर्वकरत्नत्रयाराधनेन मोक्षाधिगमश्च भवतीति सम्यक् पश्यतेति तात्पर्यम् ।

यद्वा–तस्य=संयमोद्योगवतः उत्थितस्य तदुद्योगे सततं जाग्रतः गतिं=मोक्षप्राप्तिरूपां तत्साधिकां रत्नत्रयसमाराधनरूपां वा तथा स्थितस्य संयमसमुद्योगवैपरीत्येन वर्तमानस्य सावद्यव्यापारनिरतस्य दण्डिशाक्यादेः गतिं=तदाचरणरूपां पद्धतिं सर्वजननिन्दारूपां नरक–निगोदादिगमनं च समनुपश्यत=सम्यग् विचारयध्वम्, उभयोर्गतिं समवधार्य संयमे तपसि च पराक्रमध्वमित्यर्थः । संयमसमुद्योगवर्जितस्याधमा गतिर्भवतीति किं तेन प्रकृते समायातमित्याह–'अत्रापीति। अत्र संयमानुद्योगरूपे बालभावे–बालस्य–अविदित–संयमानाचरणजनितनरक-

---

आराधनासे मोक्षका पात्र बन जाता है। जो संयममें उद्योगशाली हैं, एवं उस उद्योगमें जो निरन्तर जागृतिसम्पन्न हैं ऐसे मनुष्यको मुक्तिका लाभ या मोक्षप्राप्तिके कारणभूत रत्नत्रयकी आराधनाकी प्राप्ति होती है; परन्तु जो इससे विपरीत–दशासंपन्न हैं ऐसे दण्डिशाक्यादिकोंकी इस लोकमें निंदा होती है और परलोकमें उन्हें नरकनिगोदादिककी गति प्राप्त होती है। इस प्रकार विचारकर हे शिष्यो ! तुम संयम तपमें सदा प्रयत्नशील रहो ! इस कथनसे यह प्रकृतमें बात सिद्ध होती है कि जो संयममें समीचीन उद्योगसे रिक्त हैं उनकी अधम गति होती है, और जो उसमें उद्योगवाले हैं उनकी उर्ध्वगति–उत्तम गति होती है। इसलिये "अत्रापि बालभावे आत्मानं नोपदर्शयेत्" इस संयमके अनुद्योगरूप बालभावमें कि जिसमें संयमके अनाचरणजन्य नरकनिगोदादिक गतियोंके कटुक फलका

નિશ્ચળતા ધારણ કરી રત્નત્રયની આરાધનાથી મોક્ષને પાત્ર બની જાય છે. જે સંયમમાં ઉદ્યોગશાળી છે અને એ ઉદ્યોગમાં જે નિરંતર જાગૃતિસંપન્ન છે એવા મનુષ્યને મુક્તિનો લાભ અથવા મોક્ષપ્રાપ્તિના કારણભૂત રત્નત્રયની આરાધનાની પ્રાપ્તિ થાય છે, પરંતુ જે એનાથી વિપરીતદશાસંપન્ન છે–સાવદ્ય વ્યાપારમાં ખુંચેલ છે એવા દણ્ડિશાક્યાદિકોની આ લોકમાં નિંદા થાય છે અને પરલોકમાં તેને નરકનિગોદાદિકની ગતિ પ્રાપ્ત થાય છે. આ રીતે બન્નેની ગતિનો વિચાર કરી હે શિષ્યો ! તમે સંયમ અને તપમાં સદા પ્રયત્નશીલ રહો. આ કથનથી એ વાત સિદ્ધ થાય છે કે જે સંયમના પાલનમાં શિથિલતા બતાવે છે તેની અધમ ગતિ થાય છે. અને જે એના પાલનમાં ઉદ્યોગશીલ રહે છે તે ઉર્ધ્વ (ઉત્તમ) ગતિ પ્રાપ્ત કરે છે. આ માટે " अत्रापि बालभावे आत्मानं नोपदर्शयेत् " આ સંયમના અનુદ્યોગરૂપ બાલભાવમાં કે જેમાં સંયમ અનાચરણજન્ય

निगोदादिकटुकफलस्य भावः=अभिप्रायः आचरणमित्यर्थः बालभावस्तस्मिन् कुमार्गप्रवृत्तलोकाचरित इत्यर्थः । आत्मानं=सर्वश्रेयःस्थानं निजं नोपदर्शयेत्= नोपस्थापयेत्-न तत्र स्वात्मानं पातयेदित्यर्थः । यथा केचित् ' नित्यत्वादमूर्तत्वाच्च नास्त्यात्मनः प्राणातिपातादिर्गगनस्येवेति प्रतिपादयन्ति बालभावमाचरन्ति च तथा मुनयो न कुर्युरित्याशयः । अपिशब्दोऽत्र भिन्नक्रमस्तेन अबालभावे स्वात्मानमुपदर्शयेदित्यर्थः ॥ सू० ४ ॥

आत्मनो हननं न भवतीति मत्वा प्राणिहननादौ प्रवृत्तं पुरुषं तस्मान्निवर्तयितुं हन्यमानस्य हन्तुश्चैक्यमापादयन्नाह-' तुमंसि ' इत्यादि ।

मूलम्-तुमंसि नाम सच्चेव जं हंतव्वंति मन्नसि, तुमंसि नाम सच्चेव जं अज्जावेयव्वंति मन्नसि, तुमंसि नाम सच्चेव जं परियावेयव्वंति मन्नसि, एवं जं परिघित्तव्वंति मन्नसि, जं उद्द-

भान नहीं होता है, कुमार्गप्रवृत्त लोकोंके द्वारा सेवित ऐसे आचरणमें सर्व कल्याणके पात्रस्वरूप अपनी आत्माको संलग्न न करो, उस आचारमें अपनी आत्माका पतन न करो। सारांश इसका यह है कि जैसे कोई अन्यमति-' आकाशकी तरह नित्य और अमूर्त्त होनेसे जीवका घात नहीं होता है ' इस प्रकार मानते हैं और बालभावका आचरण करते हैं, उस प्रकार साधुको नहीं करना चाहिये ॥ सू० ४ ॥

आत्माका हनन नहीं होता है ऐसा समझकर जो प्राणियोंके हिंसादिक कार्य में प्रवृत्त हैं उन पुरुषोंकी उस कार्यसे निवृत्ति करानेके लिये तथा हन्यमान और हन्तामें एकता है इस बातको प्रकट करनेके लिये सूत्रकार कहते हैं-' तुमंसि ' इत्यादि।

નરકનિગોદાદિ ગતિઓના કડવા ફળનું ભાન હોતું નથી, કુમાર્ગ પ્રવૃત્ત લોકોથી સેવિત એવા આચરણમાં સર્વકલ્યાણના પાત્રસ્વરૂપ પોતાના આત્માને ન જવા દો-એ આચારથી પોતાના આત્માનું પતન ન કરો. સારાંશ આનો એ છે કે-

જેમ કોઈ અન્ય મતિ ' આકાશની માફક નિત્ય અને અમૂર્ત હોવાથી આત્મા (જીવ)ની ઘાત થતી નથી ' આ પ્રકારે માને છે, અને બાળભાવનું આચરણ કરે છે, આ રીતે મુનિએ કરવું જોઈએ નહિ ॥ સૂ૦ ૪ ॥

આત્મા હણાઈ શકતો નથી, એવું સમજીને જે પ્રાણીઓના હિંસાદિક કાર્યમાં પ્રવૃત્ત છે એવા પુરૂષોની એ કાર્યથી નિવૃત્તિ કરાવવા માટે ' હન્યમાન અને હન્તામાં એકતા છે, આ વાત પ્રગટ કરતાં સૂત્રકાર કહે છે-" તુમંસિ " ઇત્યાદિ.

वेयव्वंति मन्नसि, अंजु चेयं पडिबुद्धजीवी, तम्हा न हन्ता नवि घायए, अणुसंवेयणमप्पाणेणं जं हंतव्वं नाभिपत्थए ॥ सू०५॥

छाया—त्वमसि नाम स एव यं हन्तव्यमिति मन्यसे, त्वमसि नाम स एव यमाज्ञापयितव्यमिति मन्यसे, त्वमसि नाम स एव यं परितापयितव्यमिति मन्यसे, एवं यं परिग्रहीतव्यमिति मन्यसे, यम् अपद्रावयितव्यमिति मन्यसे, ऋजुश्चैतत्प्रतिबुद्धजीवी, तस्मान्न हन्ता नापि घातयेत्, अनुसंवेदनमात्मना यद् हन्तव्यं नाभिप्रार्थयेत् ॥ सू० ५ ॥

टीका—'त्वमसी'त्यादि–त्वं यं प्राणिनं हन्तव्यं=दण्डकशा–शस्त्रादिभिर्हिंसनीयम् इति=एवं मन्यसे=जानासि स एव प्राणी त्वमसि सकलात्मनश्चेतनादिसमानलक्षणत्वात्, नामेति सम्भावनायाम्; इदमत्र तत्त्वम्–हननेन गगनवदमूर्त्तस्यात्मनो हिंसा न भवति किन्तु शरीरस्यैव, तच्च शरीरं जीवस्याश्रयभूतमतीवप्रिय-

---

सूत्रकार दूसरोंका घात करनेवालोंको उपदेश देते हुए कहते हैं कि तुम जिनको मारनेयोग्य–दण्ड–चाबुक शस्त्र आदिकोंसे यह मारनेलायक है, ऐसा समझते हो वही तुम हो; क्यों कि उसमें और तुममें कोई अंतर नहीं है। शास्त्रकारोंने जीवका लक्षण चेतना बतलाया है। यह लक्षण ऐसा कोईसा भी जीव नहीं है कि जिसमें न पाया जाता हो। अतः इस जीवके सामान्य लक्षणसे युक्त होनेसे समस्त जीव लक्षणकी अपेक्षासे एक हैं।

भावार्थ—यद्यपि आत्मा अमूर्त्त है, जो अमूर्त्त होता है उसका आकाशकी तरह हनन–विनाश–घात नहीं हो सकता है, घात मूर्त्त शरीरका ही होता है। परंतु फिर भी जो हिंसा मानी जाती है उसका कारण यह है कि हिंसकद्वारा जीव उसका आश्रयभूत शरीरसे वियुक्त कर

સૂત્રકાર બીજાની ઘાત કરવાવાળાને ઉપદેશ આપતાં કહે છે કે તમે જેને મારવા યોગ્ય–દણ્ડ, ચાબુક શસ્ત્ર વગેરેથી એ મારવાલાયક છે એવું સમજો છો એ તમે છો, કેમ કે એનામાં અને તમારામાં કોઈ અન્તર નથી. શાસ્ત્રકારોએ જીવનું લક્ષણ ચેતના બતાવેલ છે. આ લક્ષણ એવો કોઈ પણ જીવ નથી કે જેનામાં ન હોય. એથી આ જીવના સામાન્ય લક્ષણથી નક્કી છે કે સમસ્ત જીવ લક્ષણની અપેક્ષાથી એક છે.

ભાવાર્થ—આત્મા અમૂર્ત્ત છે, જે અમૂર્ત્ત હોય છે તેને આકાશની માફક હનન–વિનાશ–ઘાત નથી થઈ શકતો. ઘાત મૂર્ત્ત શરીરનો જ થાય છે; છતાં પણ તેમાં હિંસા માનવામાં આવે છે, તેનું કારણ એ છે કે હિંસા કરનાર

मतस्तच्छरीरात्तस्य वियोजनमेव हिंसा, तथाहि—

" पञ्चेन्द्रियाणि त्रिविधं बलं च,
उच्छ्वास-निःश्वासमथान्यदायुः ।
प्राणा दशैते भगवद्भिरुक्ता,—
स्तेषां वियोगीकरणं तु हिंसा ॥ १ ॥

इति वचनात्। किञ्च जीवस्य सर्वथा नामूर्तत्वादिसमधिगमो यतो गगनस्येव हननादिरूपविकारो नापद्येत किन्तु स कथञ्चिन्मूर्तोऽपि शरीराधिष्ठितत्वादिति तस्य

दिया जाता है । इस क्रियाका नाम हिंसा है । क्यों कि जीवका आश्रयभूत होनेसे वह शरीर उसे अत्यन्त प्रिय था, हिंसक उसे अपने हिंसारूप कर्मद्वारा विनष्ट कर दिया। हिंसाका लक्षण भी यही किया है। श्लोक–पञ्चेन्द्रियाणि त्रिविधं बलं च, उच्छ्वास–निःश्वासमथान्यदायुः। प्राणा दशैते भगवद्भिरुक्ता,–स्तेषां वियोगीकरणं तु हिंसा ॥१॥

अर्थ—पांच इन्द्रिय, तीन बल, उच्छ्वास निश्वास और आयु इन १० प्राणोंका वियोग करना हिंसा है।

दूसरी बात यह है—कि आत्मा सर्वथा अमूर्त भी नहीं है, क्यों कि कर्मबन्धकी अपेक्षा वह कथंचित् मूर्त माना गया है। सर्वथा अमूर्त मानने पर ही गगनादिककी तरह उसमें हननादिरूप विकार

દ્વારા આશ્રયભૂત શરીરથી જીવને વિયુક્ત કરી દેવામાં આવે છે. આ ક્રિયાનું નામ હિંસા છે; કેમ કે જીવના આશ્રયભૂત હોવાથી જે શરીર તેને અત્યંત પ્રિય હતું, હિંસક પોતાના હિંસારૂપ કર્મદ્વારા તેનો નાશ કરી નાખ્યો. હિંસાનું લક્ષણ પણ આમ કહેલ છે.

" पञ्चेन्द्रियाणि त्रिविधं बलं च,
उच्छ्वासनिःश्वासमथान्यदायुः ।
प्राणा दशैते भगवद्भिरुक्ता,-
स्तेषां वियोगीकरणं तु हिंसा ॥ १ ॥ "

અર્થ–પાંચ ઇન્દ્રિય, ત્રણ બળ, ઉચ્છ્વાસ, નિશ્વાસ અને આયુષ્ય આ દસ પ્રાણોનો વિયોગ કરવો તે હિંસા છે. બીજી વાત એ છે કે આત્મા સર્વથા અમૂર્ત્ત પણ નથી, કેમ કે કર્મબંધની અપેક્ષા તે કથંચિત્ મૂર્ત્ત મનાએલ છે. સદા અમૂર્ત્ત માનવાથી ગગનાદિકની માફક તેમાં હનનાદિરૂપ વિકાર થઇ શકતો નથી, પરન્તુ એવી માન્યતા એકાન્ત રૂપથી જૈન ધર્મની નથી, જ્યારે

हननादिकमुपपद्यत एव। एवं सर्वत्रैवात्मौपम्यं विभावनीयमिति दर्शयति-'त्वमसी' त्यादि-त्वं यं=जीवम् आज्ञापयितव्यं=दुष्करानभिमतकार्ये नियोजनीयमिति मन्यसे त्वं स एवासि। एवमपरेष्वपि योज्यम्। तत्र परितापयितव्यं=शारीर-मानस-पीडया उपतापयितव्यं परिग्रहीतव्यं=स्वायत्तीकरणीयम्। अपद्रावयितव्यं प्राणैर्व्य-

---

नहीं हो सकता है। परंतु ऐसी मान्यता एकान्तरूपसे जैनधर्मकी नहीं है। जब वह शरीरमें अधिष्ठित प्रत्यक्षरूपसे प्रतीत होता है तो फिर उसके विघात होने पर उसका भी विघात माना जाता है। इसी प्रकार आत्मोपमता सर्वत्र-वक्ष्यमाण पदोंके अर्थके साथ भी समन्वित कर लेनी चाहिये; यही बात "त्वमसि नाम स एव यमाज्ञापयितव्यमिति मन्यसे" इत्यादि पदोंमें प्रकट की गई है-तुम जिस दुष्कर एवं अन-भिमत कार्यमें अन्य जीवोंको "ये वहां नियुक्त करनेयोग्य हैं" ऐसा समझकर नियुक्त करते हो सो ऐसा व्यवहार तुम्हारा उन जीवोंके साथ नहीं है, किन्तु यह व्यवहार तुम स्वयं अपने ही साथ करते हो ऐसा समझना चाहिये; क्यों कि उनमें और तुममें जीवके सामान्य लक्षण की अपेक्षा कोई अंतर नहीं है। इसी प्रकार जिन जीवोंको तुम शारी-रिक एवं मानसिक पीडा पहुंचाने योग्य मानकर उन्हें उस तरहकी पीडा पहुंचाते हो, प्राणोंसे उन्हें वियुक्त करते हो, परिग्रहण योग्य मानकर तुम जिन जीवोंका दास-दासी आदिरूपमें परिग्रह करते हो, यह सब

એ શરીરમાં અધિષ્ઠિત પ્રત્યક્ષ રૂપથી પ્રતીત થાય છે તો પછી એનો વિઘાત થવાથી તેનો પણ વિઘાત માની લેવાય છે. આ પ્રકારે આત્મોપમતા સર્વત્ર-વક્ષ્યમાણ પદોના અર્થની સાથે પણ સમન્વિત કરી લેવી જોઈએ. આ વાત "તુમંસિ" ઈત્યાદિ! પદોમાં પ્રગટ કરેલ છે. તમે જે દુષ્કર એવાં અનભિમત કાર્યમાં અન્ય જીવોને "આ ત્યાં નિયુક્ત કરવા યોગ્ય છે" એવું સમજીને નિયુક્ત કરો છો, એવો વ્યવહાર તમારો એ જીવોની સાથે નથી; પરંતુ આ વ્યવહાર તમે ફક્ત પોતાની જ સાથે કરો છો, એમ સમજવું જોઈએ. કેમકે એનામાં અને તમા-રામાં જીવસામાન્યલક્ષણની અપેક્ષા કોઈ અંતર નથી. આ રીતે જે જીવોને તમે શારીરિક અને માનસિક પીડા પહોંચાડવા યોગ્ય માનીને એને એવી જાતની પીડા પહોંચાડો છો, પ્રાણોથી તેને છુટા પાડવા યોગ્ય માનીને તમે તેને પ્રાણોથી વિયુક્ત કરો છો, પરિગ્રહણ યોગ્ય માનીને તમે જે જીવોનું દાસ-દાસી આદિ રૂપમાં પરિગ્રહ કરો છો, આ સઘળો વ્યવહાર તમારો તે જીવો સાથેનો ઉચિત

परोपयितव्यमिति, एतानि च वाक्यानि हिंसाविशेषप्रतिपादकान्येव सन्ति । स्वस्य हननाज्ञापनपरितापनपरिग्रहापद्रावणादिकार्यकारिणं कंचिद्विलोक्य यथा दुःखं जायते तथैवापरस्यापि; हननादिकारी चेत्त्वं भवेस्तदाऽऽत्मौपम्येन तत्तत्कार्यादौ दुःखानि भवन्तीत्यालोच्य कस्य चिन्न हननादौ प्रवर्त्तितव्यमित्याशयः । एतदा-

व्यवहार तुम्हारा उन जीवोंके साथ उचित नहीं है; क्यों कि जिस प्रकार अपनी हिंसा करनेवालेको देखकर तुम्हें दुःख होता है, अपनेको अनुचित एवं दुष्कर कार्यमें नियुक्त करानेवालेको जानकर जैसे तुम्हें कष्ट का अनुभव होता है, अपनेको परिताप पहुंचाने योग्य जाननेवाले व्यक्ति को देखकर जैसे स्वयंको संताप होता है, अपनेको दास-दासीरूपमें समझनेवालेके प्रति जैसे तुम्हें तिरस्कार जाग्रत होता है और जैसे अपने को प्राणोंसे वियुक्त करनेयोग्य माननेवालोंके ऊपर तुम्हें क्रोध होता है उसी प्रकार यदि तुम भी इस प्रकारका व्यवहार दूसरोंके प्रति करते हो तो तुम्हारा यह व्यवहार आत्मोपमतासे तुम्हें स्वयं दुःखप्रद होगा। कारण कि हिंसनीय, आज्ञापनीय, परितापनीय, परिग्रहणीय और अपद्रावणीय तुम स्वयं हो जाते हो। अतः अन्यको उस २ व्यवहार के योग्य मानना ही स्वयं अपनेको उस २ व्यवहारके योग्य मानना है। ये पूर्वोक्त समस्त वाक्य हिंसाके प्रकारों के ही प्रतिपादक हैं ऐसा समझना चाहिये। अतः आत्मज्ञानी मुनिका कर्तव्य है कि वह कभी भी किसी भी जीवके हिंसादिक कार्योंमें

નથી. જે રીતે તમારી હિંસા કરવાવાળાને જોઈને જેટલું દુઃખ તમને થાય છે, પોતાને અનુચિત એવા દુષ્કર કાર્યમાં નિયુકત કરનારને સામે જોઈ જેમ તમને દુઃખનો અનુભવ થાય છે, તમને પરિતાપ પહોંચાડનાર વ્યકિતને જાણી જે રીતે તમોને સંતાપ થાય છે, તમને દાસ-દાસી રૂપે સમજનાર તરફ જેવો તમને તિરસ્કાર જાગૃત થાય છે અને જેમ તમને પ્રાણથી વિયુકત કરવા યોગ્ય માનવાવાળા ઉપર તમને ક્રોધ થાય છે, આજ રીતે તમે પણ આવા પ્રકારનો વ્યવહાર બીજાઓના તરફ કરો તો તમારો આ વ્યવહાર આત્મોપમતાથી તમને દુઃખદાયક થશે, કારણ કે હિંસનીય, આજ્ઞાપનીય, પરિતાપનીય, પરિગ્રહણીય, અને અપદ્રાવણીય તમે સ્વયં બની જાવ છો. માટે બીજાને તેને વ્યવહારને યોગ્ય માનવું તે સ્વયં પોતાને જ તે તે વ્યવહારને યોગ્ય માનવા બરોબર છે. આ પૂર્વોકત સમસ્ત વાકય હિંસાના પ્રકારોનું જ પ્રતિપાદક છે, એવું સમજવું જોઈએ. એથી આત્મજ્ઞાની મુનિનું કર્તવ્ય

शयेनैव स एव त्वमसीति सर्वत्रैक्यप्रतिपादनमिति तवानिष्टप्राप्तौ यथा दुःखं जायते तथैवान्यस्येति सम्यक् समालोचयेति भावः। उपलक्षणमेतन्मृषावादादीनामपि। हन्तृ–हन्यमानयोरैक्यकथनेन किमायातमित्याह–' ऋजु 'रित्यादि–एतत्प्रतिबुद्धजीवी–एतस्य=हन्तृ–हननीयैक्यस्य यत्प्रतिबुद्धं=प्रतिबोधः परिज्ञानं तद् एतत्प्रतिबुद्धम् तेन जीवितुं शीलं यस्य स एतत्प्रतिबुद्धजीवी हननादिव्यापारनिवृत्तश्च ऋजुः=सरलः–प्रगुणः आत्मसमसकलप्राणिगणदुःखदर्शी भवति। ततः किमि-

प्रवृत्ति न करे। इसी आशयसे सूत्रकारने "स एव त्वमसि" इस वाक्यसे सर्वत्र हन्यमान–हन्ता आदिमें एकता का कथन किया है। जिस प्रकार अनिष्टकी प्राप्तिमें तुम्हें दुःख होता है उसी प्रकार अन्यके साथ कृत यह अनिष्ट व्यवहार इन्हें भी दुःखप्रद होता है, इस प्रकार मोक्षाभिलाषी मुनिको सदा विचार करते रहना चाहिये, यही सूत्रकारका आशय है। "त्वमसि नाम स एव यं हन्तव्यमिति मन्यसे" यह सूत्रांश मृषावाद आदिका उपलक्षक है। हन्ता और हन्यमानमें जो एकताका कथन किया है उसका यह अभिप्राय है–जो एतत्प्रतिबुद्धजीवी है–हन्ता और हन्यमानमें एकताका प्रतिबोधसे ही जिसका जीनेका स्वभाव है, अर्थात् दूसरोंके घातादिक व्यापारसे निवृत्त जिसका जीवन है ऐसा ऋजु जीव अपने तुल्य समस्त जीवोंको मानकर उनके दुःखका दर्शी होता है। इससे उसे इस बातका बोध होता रहता है कि जिस प्रकार मेरी हिंसा होने पर मुझे

છે કે તે કદિ પણ કોઈપણ જીવની હિંસાના કાર્યમાં પ્રવૃત્તિ ન કરે. આ આશયથી સૂત્રકારે " स एव त्वमसि " આ વાકયથી સર્વત્ર હન્યમાન–હન્તા આદિમાં એકતાનું કથન કરેલ છે. જે પ્રકારે અનિષ્ટની પ્રાપ્તિથી તમોને દુઃખ થાય છે એ જ પ્રકારે અન્યની સાથે અનિષ્ટ વ્યવહાર એને પણ દુઃખપ્રદ થતો હોય છે. આ વાતનો મોક્ષાભિલાષી મુનિએ સદા વિચાર કરતા રહેવું જોઈએ, આવો સૂત્રકારનો આશય છે. त्वमसि नाम स एव यं हन्तव्यमिति मन्यसे " આ સૂત્રાંશ મૃષાવાદ આદિનું ઉપલક્ષક છે. હન્તા અને હન્યમાનમાં જે એકતાનું કથન કરેલ છે એનો આ અભિપ્રાય છે કે જે એતત્પ્રતિબુદ્ધજીવી છે–હન્તા અને હન્યમાનમાં એકતાના પ્રતિબોધથી જ જેનો જીવવાનો સ્વભાવ છે, અર્થાત્ બીજાના ઘાતાદિક વ્યાપારથી નિવૃત્ત જેમનું જીવન છે; એવા દયાવાન જીવ પોતાની તુલ્ય સમસ્ત જીવોને માની એના દુઃખમાં સહભાગી બને છે. આથી એને એ વાતનું જ્ઞાન થતું રહે છે કે જે પ્રકારે મારી હિંસા થવાથી મને દુઃખ થાય એ જ પ્રકારે અન્ય

त्याह-' तस्मा 'दित्यादि-यस्माद् हन्यमानस्य दुःखं स्वात्मन इव जायते तस्मात् कारणात् स्वौपम्येन न हन्ता परप्राणिप्राणविराधको न भवेत्, तथैव नापि घातयेत्, अपि शब्दाद् घ्नन्तं नानुमोदयेदिति। अपि च आत्मना यदितरस्य अनु=पश्चात् संवेदनम्=अनुभावनम्-मोहनीयोदयेन यद् हननादिना दुःखमुत्पादितं तत्पाश्चादात्मनाऽनुभवनीयं भवति, इत्यवधार्य यं कंचिद् हन्तव्यमिति मन्यमानस्तं नाभिप्रार्थयेत्=कदाचिदपि हन्तव्यतया नेच्छेत्, कस्यचिदपि घातं मनसाऽपि नो कामयेत, किंपुनः कायेन वचसेति हृदयम्॥ सू० ५ ॥

दुःख होता है उसी प्रकार अन्य प्राणीको भी हिंसा होते समय दुःख होता है। इसलिये स्वात्मोपमताके ध्यानसे परप्राणीके प्राणोंका विराधक कभी भी मुनिजनको नहीं होना चाहिये। जिस प्रकार यह स्वयं हिंसासे विरक्त होता है, उसी प्रकार उससे वह अन्य जनको भी निवृत्त कराता है। "अपि" शब्दसे हिंसामें प्रवृत्त अन्यजन की वह अनुमोदना भी नहीं करता है यह बोध होता है। "अनुसंवेदनमात्मना यद् हन्तव्यं प्रार्थयेत्" अनु शब्दका अर्थ पश्चात् और संवेदन शब्दका अर्थ अनुभावन है। मोहनीय कर्मके उदयसे जो हननादिक व्यापारोंद्वारा अन्य जीवोंको दुःख पहुंचाया जाता है वह दुःख पश्चात्-पीछे मारनेवालोंके द्वारा भोगनेयोग्य होता है, ऐसा विचार कर-निश्चय कर "यह हन्तव्य है" इस प्रकारकी परिणतिसे कभी भी किसी भी जीवको मारनेयोग्य नहीं समझना चाहिये। जब मनसे भी इस प्रकारकी घात करनेरूप परिणतिके चिन्तन

પ્રાણીઓને પણ હિંસા થતે સમયે દુઃખ થાય છે. આ માટે સ્વ આત્માના પ્રમાણના ધ્યાનથી બીજા પ્રાણીના પ્રાણના નાશકર્તા મુનિજને કદી પણ ન બનવું જોઈએ. જે રીતે જે પોતાના મનથી જ હિંસાથી વિરક્ત થાય છે, તેવી જ રીતે બીજાને પણ હિંસાથી નિવૃત્ત બનાવે છે.

"अपि" શબ્દથી હિંસામાં પ્રવૃત્ત બીજા માણસને પણ એ અનુમોદન આપતા નથી, એવો અર્થ થાય છે. "अनुसंवेदन" ઇત્યાદિ! અનુ શબ્દનો અર્થ પશ્ચાત્ અને સંવેદન શબ્દનો અર્થ અનુભાવન છે. મોહનીય કર્મના ઉદયથી જે જીવ હિંસાદિક વ્યાપારોદ્વારા બીજા જીવોને જેવું દુઃખ પહોંચાડે છે તેવું દુઃખ પાછળથી મારનારાઓ પોતે જ ભોગવે છે, એવો વિચાર કરી-નિશ્ચય કરી "આ હન્તવ્ય છે" આ પ્રકારની પરિણતિથી કદિ પણ જીવને મારવા યોગ્ય સમજવું ન જોઈએ. જ્યારે મનમાં પણ આ પ્રકારનો ઘાત કરવારૂપ વિચારનું

आत्मनाऽनुसंवेदनं कृतमित्यभिहितं, तत्र संवेदनस्य सुख–दुःखरूपतया कणाद –गौतमानुयायिनेवात्मनो गुणभूतेन विशेषगुणेन ज्ञानेन भेदोऽथवा चाभेद एवात्र शिष्यप्रश्ने सुधर्मास्वामी प्राह–' जे आया ' इत्यादि ।

मूलम्–जे आया से विन्नाया, जे विण्णाया से आया जेण वियाणइ से आया, तं पडुच्च पडिसंखाए, एस आयावाई समियाए परियाए वियाहिये त्तिबेमि ॥ सू० ६॥

तकका विचार मुनिजन या सामान्य जनके लिये निषिद्ध है तो काय और वचनसे तो इस प्रकारकी परिणतिका निषेध स्वतः ही हो जाता है। मुनिजनके लिये सर्वथा मन, वचन और कायसे परजीवोंकी हिंसा आदिका सर्वथा त्याग करना चाहिये यही इसका भावार्थ है ॥सू०५॥

" आत्माको दूसरे जीवोंकी हिंसा आदि नहीं करना चाहिये; क्यों कि हिंसाजन्य पापकर्मका फल उसे भोगना पड़ता है ऐसा निश्चय कर वह सर्वथा हिंसा आदिका त्याग करे " ऐसा जो आपने कहा है सो इस प्रकारका निश्चय आत्मा ज्ञानसे ही करता है । तब हम पूछते हैं कि जिस प्रकार कणाद और गौतमके अनुयायियोंने आत्मासे ज्ञानगुणको सर्वथा भिन्न माना है, उसी प्रकार क्या आत्मासे ज्ञान गुणका सर्वथा भेद या अभेद आप भी मानते हैं? इस प्रकार जम्बूस्वामीके प्रश्नका उत्तर देते हुए श्रीसुधर्मास्वामी महाराज कहते हैं—" जे आया " इत्यादि—

ચિંતન કરવું મુનિજન અને સામાન્ય જનને માટે નિષિદ્ધ છે, તો કાયા અને વચનથી તો આ પ્રકારની પરિણતિનો નિષેધ સ્વતઃ જ બની જાય છે. મુનિજનને માટે સદા મન વચન અને કાયાથી પરજીવોની હિંસા આદિનો સર્વથા ત્યાગ છે–એ આનો ભાવાર્થ છે ॥ સૂ૦ ૫ ॥

" આત્માએ બીજા જીવોની હિંસા આદિ ન કરવું જોઈએ; કેમ કે હિંસા-જન્ય પાપકર્મનું ફળ એણે ભોગવવું પડે છે, એવો નિશ્ચય કરી તે હિંસા આદિનો ત્યાગ કરે." એવું આપે કહ્યું છે. પણ આ પ્રકારનો નિશ્ચય તે આત્મા જ્ઞાનથી જ કરે છે, ત્યારે અમે આપને આ પૂછીએ છીયે કે જે પ્રકારે કણાદ અને ગૌતમના અનુયાયીઓએ આત્માથી જ્ઞાન ગુણને સર્વથા ભિન્ન માનેલ છે, એ પ્રકારે આપ પણ શું આત્માથી જ્ઞાન ગુણને સર્વથા ભેદ યા અભેદ માનો છો ? આ પ્રકારના જમ્બૂસ્વામીના પ્રશ્નનો ઉત્તર દેતાં શ્રી સુધર્માસ્વામી મહારાજ કહે છે—" जे आया." ઇત્યાદિ.

छाया—य आत्मा स विज्ञाता, यो विज्ञाता स आत्मा, येन विजानाति स आत्मा, तं प्रतीत्य प्रतिसंख्यायते, एष आत्मवादी सम्यक्पर्यायो व्याहृत इति ब्रवीमि ॥ सू० ६ ॥

टीका—'य आत्मे'त्यादि–य आत्मा=नित्य उपयोगलक्षणो जीवः स विज्ञाता=विज्ञानकर्ताऽपि स एव प्रख्यातः, न पुनरात्मनः पदार्थसार्थबोधकं ज्ञानं पृथक्; यो विज्ञाता=पदार्थपरिच्छेदक उपयोगः स एव आत्मा=जीव उपयोगलक्षणः, उपयोगस्य च ज्ञानस्वरूपत्वेन ज्ञानात्मनोरभेदसिद्धिरित्यर्थः ।

नित्य और उपयोगलक्षणवाला जीव ही आत्मा है और वही विज्ञान क्रियाका कर्त्ता है। इस आत्मासे पदार्थोंका बोधक ज्ञानगुण सर्वथा भिन्न नहीं है। इसी प्रकार जो पदार्थपरिच्छेदक उपयोग है वही आत्मा है, क्यों कि आत्मा स्वयं उपयोगलक्षणवाला है। यह उपयोग ही–ज्ञानस्वरूप है। इसलिये ज्ञान और आत्मामें अभेद है।

भावार्थ—शिष्यने जो यह प्रश्न किया था कि आत्मासे ज्ञानगुण सर्वथा भिन्न है क्या? इसका उत्तर सूत्रकारने यहां दिया है, वे कहते हैं कि आत्मा और ज्ञानगुणमें परस्परमें सर्वथा भेद नहीं है, क्यों कि आत्मा का लक्षण उपयोग है, और यह उपयोग त्रिकालमें भी आत्मासे सर्वथा भिन्न नहीं होता है, इसी प्रकार उपयोग स्वरूपसे परिणत ही आत्मा है। उपयोग दो प्रकारका है–१ ज्ञानोपयोग, और दूसरा दर्शनोपयोग। दर्शनोपयोगमें पदार्थका सामान्य प्रतिभास होता है, ज्ञानोपयोगमें पदार्थ

નિત્ય અને ઉપયોગલક્ષણવાળા જીવ જ આત્મા છે અને એ જ વિજ્ઞાન ક્રિયાના કર્તા છે. આ આત્માથી પદાર્થોનું બોધક જ્ઞાનગુણ સર્વથા ભિન્ન નથી, આમ જે પદાર્થ–પરિચ્છેદક ઉપયોગ છે એ જ આત્મા છે; કેમકે આત્મા સ્વયં ઉપયોગલક્ષણવાળો છે. આ ઉપયોગ જ જ્ઞાનસ્વરૂપ છે. આ માટે જ્ઞાન અને આત્મામાં અભેદ છે.

ભાવાર્થ—શિષ્યે જે એવો પ્રશ્ન કર્યો હતો કે આત્માથી જ્ઞાનગુણ સર્વથા ભિન્ન છે? એનો ઉત્તર સૂત્રકારે અહિં આપેલ છે, એ કહે છે કે આત્મા અને જ્ઞાનગુણમાં પરસ્પરમાં સર્વથા ભેદ નથી; કેમ કે આત્માનું લક્ષણ ઉપયોગ છે, અને એ ઉપયોગ ત્રણ કાળમાં પણ આત્માથી સર્વથા ભિન્ન થઈ શકતો નથી. આ રીતે ઉપયોગસ્વરૂપથી પરિણત જ આત્મા છે. ઉપયોગ બે પ્રકારનો છે, (૧) જ્ઞાનોપયોગ, (૨) દર્શનોપયોગ. દર્શનોપયોગમાં પદાર્થનો સામાન્ય પ્રતિભાસ થાય

नन्वत्राभेदप्रतिपादनेन सौगतमतप्रवेशस्ते हि-ज्ञानात्मनो रैक्यं प्रतिपादयन्तीति चेन्न, अभेदो हि-यथा-'नीलो घट' इत्यादौ नीलघटयोरेकत्र स्थितावपि न तयो रैक्यमपि तु नीलघटयोरभेद एव। अन्यथा-नीलगुणनाशे घटनाशप्रसङ्गस्य दुर्वारत्वं समापद्येत। तथैव प्रकृते ज्ञानात्मनोरभेदेन तद्धर्मयोरेकत्र स्थितावपि तयोर्ज्ञानात्मनोर्नैक्यमपि त्वभेद एवेत्यदोषात्।

का भिन्न २ रूपसे विशेष बोध होता है। ऐसा कोई सा भी क्षण नहीं है जब आत्मा अपने इस स्वभावसे रहित हो तथा यह स्वभाव आत्माको छोड़ कर निराधार कहीं प्रतीत होता हो। आत्मा ही तत्तदुपयोगस्वरूप परिणमित होता रहता है। इससे यह बात प्रतीतिकोटिमें स्थिर होती है कि आत्मासे ज्ञानगुण और ज्ञानगुणसे आत्मा स्वतन्त्र-भिन्न नहीं है।

शङ्का—ज्ञान और आत्माका अभेद माननेपर अपसिद्धान्त नामक निग्रहस्थान आता है; क्यों कि यह मान्यता जैन सिद्धान्तकी मान्यता पुष्ट न कर उल्टी सौगत (बौद्ध) मान्यताका ही समर्थन करती है। यह ज्ञान और आत्माका अभेद वाद बौद्धोंका है न कि जैनियोंका।

उत्तर—जिस प्रकार "नीलो घटः" "नीला घट" इस वाक्यमें नील और घट इन दोनोंकी एकत्र स्थिति होने पर भी इन दोनों में एकता नहीं मानी जाती है, किन्तु अभेद ही माना जाता है। अन्यथा दोनोंमें एकता मानने पर नीलगुणके नाश होने पर घटके नाशका भी

છે. જ્ઞાનોપયોગમાં પદાર્થના ભિન્ન ભિન્ન રૂપથી વિશેષ બોધ થાય છે. એવી કોઈ પણ ક્ષણ નથી હોતી કે આત્મા પોતાના આ સ્વભાવથી રહિત બને. આ સ્વભાવ આત્માને છોડી શકતો નથી, આત્માથી જ્ઞાનગુણ અને જ્ઞાનગુણથી આત્મા સ્વતંત્ર-જુદા નથી.

શંકા—જ્ઞાન અને આત્માનો અભેદ માનવાથી અપસિદ્ધાંત નામક નિગ્રહ-સ્થાન આવે છે; કેમ કે આ માન્યતા જૈન સિદ્ધાંતની માન્યતાથી વિરૂદ્ધ બૌદ્ધ માન્યતાનું સમર્થન કરે છે. જ્ઞાન અને આત્માનો અભેદવાદ બૌદ્ધોનો છે, જૈનોનો નથી.

ઉત્તર—જે પ્રકારે "नीलो घटः" નીલો ઘડો-આ વાક્યમાં નીલ અને ઘટ આ બન્નેની એકત્ર સ્થિતિ હોવા છતાં પણ આ બન્નેમાં એકતા મનાતી નથી; પણ અભેદ જ માનવામાં આવે છે. અન્યથા-બન્નેમાં એકતા માનવાથી

प्रसंग होगा उसी प्रकार प्रकृतमें ज्ञान और आत्मामें भी एकता नहीं है किन्तु अभेद ही है, इस प्रकार पूर्वोक्त दोष नहीं आता है।

भावार्थ—शङ्काकारने जो ज्ञान और आत्माके अभेदमें बौद्धवादका समर्थन करना प्रकट किया है उसका यहां पर प्रत्युत्तर दिया गया है– एकतामें और अभेदमें अन्तर है। बौद्ध सिद्धान्त आत्मामें अभेद नहीं मानता है किन्तु वह दोनोंमें एकता मानता है। इससे ज्ञानकी अथवा आत्माकी स्वतन्त्र सत्ता सिद्ध नहीं होती है, किन्तु दोनोंमें एकता ही सिद्ध होती है। इस एकतामें या तो आत्माहीका अस्तित्व सिद्ध होता है या ज्ञानका। दोनोंका नहीं। अभेद पक्षमें ऐसा नहीं है। वहां पर "नीलो घटः" की तरह अभेद होने पर भी दोनोंकी सत्ताका विलोप नहीं होता है। गुण और गुणी में एकता मानने पर गुण गुणीका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं बनता है। गुण गुणीरूप और गुणी गुणरूपमें परिवर्त्तित हो जाते हैं। परन्तु अभेद पक्षमें यह बात नहीं आती, दोनोंकी स्वतन्त्र स्वरूपसे सत्ता रहती है–इस पक्षमें इतना होता है कि गुण गुणीको छोड़कर और गुणी गुणको छोड़ कर परस्पर निरपेक्षरूपमें नहीं रहते हैं; किन्तु परस्पर सापेक्षरूपमें ही इनकी वृत्ति बनी रहती है। नील और घट

નીલગુણનો નાશ થવાથી ઘટના નાશનો પણ પ્રસંગ બને. આ જ રીતે પ્રકૃતમાં જ્ઞાન અને આત્મામાં પણ એકતા નથી છતાં અભેદ છે, આ પ્રકારે પૂર્વોક્ત દોષ આવતો નથી.

ભાવાર્થ—શંકાકારે જે જ્ઞાન અને આત્માના અભેદમાં બૌદ્ધવાદનું સમર્થન પ્રગટ કરેલ છે તેનો આ સ્થળે પ્રત્યુત્તર અપાયેલ છે. એકતામાં અને અભેદમાં અંતર છે. બૌદ્ધ સિદ્ધાંત જ્ઞાન અને આત્મામાં અભેદ નથી માનતો, પરંતુ તે બન્નેમાં એકતા માને છે. એનાથી જ્ઞાનની અને આત્માની સ્વતંત્ર સત્તા સિદ્ધ થતી નથી. પરંતુ બન્નેમાં એકતા જ સિદ્ધ થાય છે. આ એકતામાં યા તો આત્માનું અસ્તિત્વ સિદ્ધ થાય છે યા તો જ્ઞાનનું. બન્નેનું નહિ. અભેદ પક્ષમાં એવું નથી, ત્યાં "નીલો ઘટઃ"ની માફક અભેદ હોવા છતાં પણ બન્નેની સત્તાનો વિલોપ થતો નથી, ગુણ અને ગુણીમાં એકતા માનવાથી ગુણ ગુણીનું સ્વતંત્ર અસ્તિત્વ બનતું નથી. ગુણ ગુણીરૂપ અને ગુણી ગુણરૂપમાં પરિવર્તિત બને છે, પરંતુ અભેદ પક્ષમાં આ વાત આવતી નથી, બન્નેની સ્વતંત્ર સ્વરૂપથી સત્તા રહે છે. આ પક્ષમાં એટલું હોય છે કે ગુણ ગુણીને છોડીને અને ગુણી ગુણને છોડીને પરસ્પર નિરપેક્ષ રૂપમાં રહેતા નથી, પરંતુ પરસ્પર–સાપેક્ષ–

न च नीलनाशे घटोऽपि नीलात्मना नष्ट एवेति दृष्टान्तासिद्धिरिति वाच्यम्;

इन दोनोंमें परस्परमें एकता नहीं है किन्तु अभेद सम्बन्ध ही है। ऐसा नहीं है कि नीलस्वरूप घट और घट स्वरूप नील है। किन्तु घटको छोड़कर नीलकी और नीलको छोड़कर घटकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। यदि इन दोनोंकी एकता मानी जावे तो नीलके नाश होने पर घटका नाश होना चाहिये। परन्तु ऐसा नहीं होता है।

शङ्का—नीलके नाश होने पर नीलात्मना घटका भी तो नाश हो जाता है-इसलिये दृष्टांतकी असिद्धि है।

भावार्थ—यह जो अभी कहा गया है कि नील और घटकी एकता मानने पर नीलस्वरूप के नष्ट होने पर घटका भी नाश होना चाहिये, परन्तु ऐसा नहीं होता-अतः दोनोंमें एकता न मान कर अभेद ही मानना चाहिये, इस पर प्रतिवादीका यह आक्षेप है कि नीलके नाश होने पर नीलस्वरूपसे घटका भी नाश हो जाता है इसलिये यह दृष्टान्त सिद्ध नहीं है; किन्तु असिद्ध ही है। दृष्टान्त वादी और प्रतिवादी दोनों को सिद्ध हुआ करता है; इसीलिये दृष्टान्तके बलसे वादी अपने साध्यकी सिद्धि करता है। असिद्ध दृष्टान्तसे नहीं।

રૂપમાં એમની પ્રવૃત્તિ બની રહે છે, નીલ અને ઘટ આ બન્નેમાં પરસ્પરમાં એકતા નથી, પરંતુ અભેદ સંબંધ જ છે. એવું નથી કે નીલ સ્વરૂપ ઘટ અને ઘટ સ્વરૂપ નીલ છે, પરંતુ ઘટને છોડીને નીલની અને નીલને છોડીને ઘટની સ્વતંત્ર સત્તા નથી. જો આ બન્નેની એકતા માનવામાં આવે તો નીલના નાશથી ઘટનો પણ નાશ થવો જોઈએ, પરંતુ એવું બનતું નથી.

શંકા—નીલનો નાશ થવાથી નીલાત્મના ઘટનો પણ નાશ થઈ જાય છે. આ માટે દૃષ્ટાન્તની અસિદ્ધિ છે.

ભાવાર્થ—અહિં જે કહેવાયું છે કે નીલ અને ઘટની એકતા માનવાથી નીલ સ્વરૂપનો નાશ થવાથી ઘટનો પણ નાશ થવો જોઈએ. પરન્તુ એવું બનતું નથી. માટે બન્નેમાં એકતા ન માનીને અભેદ જ માનવા જોઈએ. આ ઉપર પ્રતિવાદીનો એ આક્ષેપ છે કે નીલનો નાશ થવાથી નીલ સ્વરૂપથી ઘટનો પણ નાશ થાય છે, આ કારણે આ દૃષ્ટાન્ત સિદ્ધ નથી; પરંતુ અસિદ્ધ જ છે. સિદ્ધ દૃષ્ટાન્તજ વાદી અને પ્રતિવાદી બન્નેને માન્ય હોય છે; માટે જ દૃષ્ટાંતના બળથી વાદી પોતાના સાધ્યની સિદ્ધિ કરે છે. અસિદ્ધ દૃષ્ટાંતથી નહીં.

अनेकान्तवादिनामस्माकं मतेन पदार्थस्यानन्तधर्मात्मकतयैकधर्मविनाशेऽप्यन्यधर्मसत्त्वान्नष्ट इति व्यवहारासम्भवेन दृष्टान्तस्य सिद्धेः। तथैव दार्ष्टान्तिकेऽपि ज्ञानविशेषस्य नाशेऽपि नात्मनो नाशस्तस्यापरामूर्तत्वासंख्येयप्रादेशिकत्वाऽगुरुलघुत्वादिधर्माणां सत्त्वेन नष्ट आत्मेति व्यवहारासम्भवात्कुत्राप्यनुपपत्तिर्नास्ति किमधिकेनेत्यलम्।

उत्तर—ऐसा नहीं कहना चाहिये। क्यों कि दृष्टान्त सिद्ध ही है असिद्ध नहीं है। हम अनेकान्तवादी जैन स्याद्वाद सिद्धान्तानुसार प्रत्येक पदार्थको अनन्त धर्मात्मक मानते हैं। इसलिये किसी एक विवक्षित धर्म का विनाश होने पर भी उसमें अन्य धर्मोंका सद्भाव होनेसे विवक्षित रूपके नष्ट होने पर भी वह सर्वथा नष्ट हो गया ऐसी मान्यता घटित नहीं हो सकती है। अतः दृष्टान्त सिद्ध ही है असिद्ध नहीं। इसी प्रकार दार्ष्टान्तिक (आत्मा और ज्ञान)में भी ज्ञान विशेष (विवक्षित घट आदि ज्ञान)के नाश–परिवर्तन होनेपर भी आत्मा का नाश नहीं होता है; क्यों कि आत्मामें अन्य अमूर्तत्व, असंख्यात प्रदेशित्व और अगुरुलघुत्व आदि अनेक धर्मोंका अस्तित्व रहता है। इसलिये विवक्षित धर्मके अभावमें आत्मा नष्ट हो गई ऐसा व्यवहार वहां संभवित नहीं हो सकता। अतः इस कथनमें कोई भी विरोध नहीं है। अधिक क्या कहा जाय।

ઉત્તર—એવું ન કહેવું જોઈએ; કેમ કે દૃષ્ટાંત સિદ્ધ જ છે અસિદ્ધ નથી. અમે અનેકાન્તવાદી જૈનો સ્યાદ્વાદ–સિદ્ધાંત અનુસાર પ્રત્યેક પદાર્થને અનન્ત ધર્માત્મક માનીએ છીએ. આ કારણે કોઇ એક વિવક્ષિત ધર્મનો વિનાશ થવા છતાં પણ એનામાં અન્ય ધર્મોનો સદ્‌ભાવ હોવાથી વિવક્ષિત રૂપથી નષ્ટ થવા છતાં પણ એનો સર્વથા નાશ થઇ ગયો એ માન્યતા બરોબર નથી. આથી દૃષ્ટાંત સિદ્ધજ છે અસિદ્ધ નથી. આ રીતે દાર્ષ્ટાન્તિક–આત્મા અને જ્ઞાન–માં પણ જ્ઞાન વિશેષ ઘટ આદિ જ્ઞાન–માં નાશ–પરિવર્તન થવા છતાં પણ આત્માનો નાશ થતો નથી, કેમ કે આત્મામાં બીજા અમૂર્તત્વ, અસંખ્યાત પ્રદેશિત્વ અને અગુરૂલઘુત્વ આદિ અનેક ધર્મોનું અસ્તિત્વ રહે છે. આથી વિવક્ષિત ધર્મના અભાવથી આત્માનો નાશ થઈ ગયો એ કહેવું સંભવિત નથી, એટલે આ કથનમાં કોઇ પણ વિરોધ નથી. વધુ શું કહું જાય.

ज्ञानात्मनोरभेदमुपपाद्य करणभूतेन ज्ञानेनाभेदप्रतिपादनायाह-'येने'त्यादि, येन=मत्यादिना ज्ञानेन करणभूतेन क्रियारूपेण वा पदार्थं विजानाति=वि=विशेषेण सामान्यविशेषादिरूपेणेत्यर्थः, जानाति=ज्ञानविषयीकरोति सः=कारणभूतः क्रियाभूतो वा आत्मा, आत्मनः परिणामित्वात्, अत एव 'स्व आत्मानमात्मना जानाती'त्यादावेकस्यापि कथञ्चिद्भेदमादाय तथा प्रतीतिः कर्तृ-कर्म-करण-क्रियादीनामैक्यादुपपद्यते ।

ज्ञान और आत्माका अभेद कह कर करणभूत ज्ञानके साथ भी आत्माका अभेद है-इस बातको प्रतिपादन करनेके निमित्त सूत्रकार कहते हैं-"येन विजानाति स आत्मा" कि जिस मति आदि करणभूत अथवा क्रियारूप ज्ञानसे आत्मा पदार्थोंको सामान्य और विशेष आदि रूपसे जानता है उस करणरूप या क्रियारूपमें वह आत्मा ही परिणत हुआ है। क्यों कि आत्माका स्वभाव परिणमनशील है, कूटस्थ नित्य नहीं। अतः आत्मा ही उस करणज्ञान अथवा जाननेरूप क्रियासे परिणत हुआ है। "स्व आत्मानम् आत्मना जानाति"-आत्मा आत्माको आत्मासे जानता है-इस वाक्यप्रयोगमें एक आत्मा ही कथंचित् भेददृष्टिकी अपेक्षासे कर्त्ता, कर्म, क्रिया और करणरूपसे परिणत होता है, आत्मा कर्ता, आत्मानं कर्म, आत्मना करण और जानाति यह क्रिया है। यहां आत्मा ही एक पदार्थ कथंचित् भेदकी अपेक्षासे नानाकारक रूपमें परिणत होता हुआ प्रकट किया गया है। ऐसा होने पर भी आत्मारूप पदार्थमें अनेकता-परस्परमें कर्ता कर्म आदिमें भिन्नता सिद्ध नहीं होती है।

જ્ઞાન અને આત્માનો અભેદ કહી કરણભૂત જ્ઞાનની સાથે આત્માનો અભેદ છે આ વાતને પ્રતિપાદન કરતાં સૂત્રકાર કહે છે કે "येन विजानाति स आत्मा" જે મતિ આદિ કરણભૂત અથવા ક્રિયારૂપ જ્ઞાનથી આત્મા પદાર્થોને સામાન્ય અને વિશેષ આદિ રૂપથી જાણે છે તે કરણરૂપ અથવા ક્રિયારૂપમાં તે આત્મા જ પરિણત થયેલ છે. કેમકે આત્માનો સ્વભાવ પરિણમનશીલ છે, કૂટસ્થ નિત્ય નથી. માટે આત્મા એ જ કરણ જ્ઞાન અને જાણવારૂપ ક્રિયાથી પરિણત થયેલ છે. "स्व आत्मानम् आत्मना जानाति" આત્મા આત્માને આત્માથી જાણે છે, આ વાક્યપ્રયોગમાં એક આત્મા જ કહેલા ભેદદૃષ્ટિની અપેક્ષાથી કર્તા, કર્મ, ક્રિયા અને કરણરૂપથી પરિણત બને છે. आत्मा કર્તા, आत्मानम् કર્મ, आत्मना કરણ અને जानाति આ ક્રિયા છે. અહિં આત્મા જ એક પદાર્થ કહેવાયેલા ભેદની અપેક્ષાથી નાના

ननु मुनिस्तपसा कर्म धुनोतीत्यादौ कर्तृ–कर्म–करण–क्रियाणां भेदस्याऽऽपामरसाधारणतया कथमैक्याभिधानमिति चेन्न—आत्मनस्तु परिणामित्वेन कर्म–करण–क्रियारूपेणापि परिणामादेकत्वस्य सौलभ्यात्, कर्तृ–कर्म–करण–क्रियाणा-

"मुनिस्तपसा कर्म धुनोति" इस वाक्यमें कर्त्ता, कर्म, करण और क्रियामें परस्पर भिन्नता साधारण से साधारण प्राणी तकको भी प्रतीत होती है? फिर आप कर्त्ता, कर्म आदि कारकों में परस्परमें अभिन्नता कैसे कहते हैं, सो ऐसा नहीं कहना चाहिये, क्यों कि हमारा तो सिर्फ इतना ही कहना है कि परिणामी होनेसे एक ही आत्म पदार्थ कर्त्ता, कर्म, करण और क्रियारूपमें परिणत होता देखा जाता है, हम यह तो कहते नहीं हैं कि अभेदमें ही कर्त्ता–करणादि रूपकी प्रतीति होती है! यह प्रतीति तो अभेदमें भी होती है और भेदमें भी होती है। "आत्मा ज्ञानसे आत्माको जानता है" यहां पर अभेद है इसमें भी कर्त्तादि रूपकी प्रतीति होती है। "मुनि तपसे कर्मको नष्ट करता है" यहां पर भेदमें कर्त्ता कर्म आदिकी प्रतीति होती है, और करणरूप ज्ञानसे आत्माका अभेद संबंध है ऐसा मानना चाहिये। कर्त्ता, कर्म, करण और क्रियाओंकी प्रतीति अभेदमें भी कथंचित् भेद विवक्षाके वशसे बन जाती है। इस व्यवहारमें कोई विरोध नहीं है

પ્રકારના રૂપમાં પરિણત થતો બતાવવામાં આવેલ છે. આવું હોવા છતાં પણ આત્મારૂપ પદાર્થમાં અનેકતા—પરસ્પરમાં કર્તા કર્મ આદિમાં ભિન્નતા—સિદ્ધ થતી નથી.

" मुनिस्तपसा कर्म धुनोति " આ વાકચમાં કર્તા, કર્મ, કરણ અને ક્રિયામાં પરસ્પર ભિન્નતા સાધારણમાં સાધારણ પ્રાણીને પણ પ્રતીત થાય છે. તો આ કર્તા કર્મ આદિમાં પરસ્પર અભિન્નતા કેમ કહો છો, તેમ કહેવું ન જોઈએ. કેમ કે અમારૂં તો ફક્ત એટલું જ કહેવું છે કે પરિણામી હોવાથી એકજ આત્મા પદાર્થ કર્તા, કર્મ, કરણ અને ક્રિયારૂપથી પરિણત થતો જોવામાં આવે છે. અમો તો એમ કહેતા નથી કે અભેદમાં જ કર્તા કરણાદિરૂપની પ્રતીતિ થાય છે. આ પ્રતીતિ અભેદમાં પણ થાય છે અને ભેદમાં પણ થાય છે. આત્મા જ્ઞાનથી આત્માને જાણે છે" આ સ્થળે અભેદ છે, એમાં પણ કર્તા આદિ રૂપની પ્રતીતિ થાય છે. " મુનિ તપથી કર્મને નષ્ટ કરે છે " અહિં ભેદમાં કર્તા કર્મ આદિની પ્રતીતિ થાય છે, અને કરણરૂપ જ્ઞાનથી આત્માનો અભેદ સંબંધ છે એવું માનવું જોઈએ. કર્તા, કર્મ, કરણ અને ક્રિયાઓની પ્રતીતિ અભેદમાં પણ કોઈ રીતે ભેદ વિવક્ષાના વશથી બની રહે છે. આ વ્યવહારમાં કોઇ વિરોધ નથી, અને એથી

मैक्येऽपि कथं चिद्भेदमादाय तथा व्यवहारः। उक्तञ्च—

" भूतिर्येषां क्रिया सैव, कारकं सैव चोच्यते। " इति।

प्रकृते ज्ञानात्मनोरेकत्वे किमायातमित्याह—' तमित्यादि '—तं ज्ञानस्वरूप-

और इसलिये इस प्रकारका व्यवहार होता है। कहा भी है।

" भूतिर्येषां क्रिया सैव कारकं सैव चोच्यते। " इति।

शङ्का—प्रकृतमें ज्ञान और आत्माका अभेद संबंध मानने से आप क्या सिद्ध करना चाहते हैं?

उत्तर—तमित्यादि-ज्ञान स्वरूप आत्माकी प्रतीतिसे उसी स्वरूपसे आत्माका कथन किया जाता है।

भावार्थ—ज्ञान और आत्माका अभेद मानने पर यह लाभ होता है कि आत्मा ज्ञानस्वरूप सिद्ध होता है। अन्यथा आत्मामें जडत्वका प्रसंग होगा; क्यों कि भेद संबंधमें आत्मा अज्ञस्वभाव ठहरता है। समवायादि संबंध से आत्मामें ज्ञानका संबंध मान लेने पर भी उसमें ज्ञत्व धर्म नहीं आ सकता; कारण कि समवाय एक और नित्य होनेसे ज्ञानका संबंध आत्मासे ही करायेगा, अन्य आकाशादिकके साथ नहीं; इसमें कोई नियामक तर्क नहीं है। अतः अभेद पक्षमें आत्मामें तत्स्व-रूपताकी सिद्धि होती है यह एक बड़ा भारी लाभ है। दूसरे-ज्ञान और

આ પ્રકારનો વ્યવહાર હોય છે. કહ્યું પણ છે—" भूतिर्येषां क्रिया सैव कारकं सैव चोच्यते " ઇત્યાદિ.

શંકા—વાસ્તવમાં જ્ઞાન અને આત્માનો અભેદ સંબંધ માનવાથી આપ શું સિદ્ધ કરવા માગો છો?

ઉત્તર—तमित्यादि-જ્ઞાનસ્વરૂપ આત્માની પ્રતીતિથી એ જ સ્વરૂપમાં આત્માનું કથન કહેવામાં આવે છે.

ભાવાર્થ—જ્ઞાન અને આત્માનો અભેદ માનવાથી આ લાભ થાય છે કે આત્મા જ્ઞાનસ્વરૂપ સિદ્ધ થાય છે, એ સિવાય આત્મામાં જડત્વનો પ્રસંગ બને, કેમ કે ભેદ સંબંધમાં આત્મા અજ્ઞ સ્વભાવ ઠરે છે, સમવાયાદિ સંબંધથી આત્મામાં જ્ઞાનનો સંબંધ માની લેવાથી પણ એમાં જ્ઞત્વ ધર્મ આવી શકતો નથી, કારણ કે સમવાય એક અને નિત્ય હોવાથી જ્ઞાનનો સંબંધ આત્માથી જ કરાશે. અન્ય આકાશાદિકની સાથે નહીં. આમાં કોઈ નિયામક તર્ક નથી. આથી અભેદ પક્ષમાં આત્મામાં તત્સ્વરૂપતાની સિદ્ધિ થાય છે, આ એક ઘણો મોટો લાભ છે. બીજું

मात्मानं प्रतीत्य=अवलम्ब्य प्रतिसंख्यायते=ते नैवात्मना कथ्यते। ज्ञानात्मनोरेकत्व-स्वीकर्ता कं गुणमासादयतीत्याह ' एष ' इत्यादि-एषः=आत्मवादी ज्ञानात्मैकत्व-वादी 'सम्यक्पर्यायः' समीचा=सम्यग्भावेन पर्यायः संयमाचरणं यस्येति स सम्यक्पर्यायः-सम्यगनगाराचारचारी,

यद्वा—'शमितापर्याय' इतिच्छाया। शमितापर्यायः=शमोऽस्यास्तीति शमी तस्य भावः शमिता तया पर्यायो यस्य स शमितापर्यायः=उपशान्तकषायः व्याख्यातः=तीर्थकृद्भिः कथितः ॥ सू० ६ ॥ इति ब्रवीमि '-इत्यस्यार्थस्तूक्त एव।

॥ पञ्चमाध्ययनस्य पञ्चम उद्देशः समाप्तः ॥ ५-५ ॥

आत्माका अभेद संबंध माननेवाला आत्मवादी सम्यग्भावसे संयम-मुनियोंके आचारका आचरण करनेवाला होता है। इस कथनमें सांख्य-मतका खण्डन किया है। सांख्यसिद्धान्तमें ज्ञान प्रकृतिका धर्म माना गया है, आत्माको कमलपत्रकी तरह निर्लेप बतलाया है; अतः मुनियों के सम्यक् आचारके आचरण करनेका बोध प्रकृतिको ही होगा, आत्माको नहीं। फिर आत्माको इस प्रकार के कष्टोंमें पड़नेसे लाभ ही क्या है ? प्रकृतिके संबंध विच्छेद होते ही ज्ञानके अभावमें आत्मा अज्ञ बन जाने से जड़स्वरूप हो जायगा। परन्तु ऐसा तो है नहीं; क्यों कि स्वानुभवसे आत्मा स्वरूपसे चेतन है और इसीलिये वह अपनी मलिन परिणतिको छोड़नेके लिये मुनियोंके निर्मल आचारका पालनके लिये प्रयत्नशील होता है। अथवा "समियाए परियाए"की संस्कृत छाया "शमितापर्यायः" भी होती है, तब इस प्रकारसे अर्थकी संगति होती है कि ज्ञान और

જ્ઞાન અને આત્માનો અભેદ સંબંધ માનવાવાળા આત્મવાદી સમ્યગ્ભાવથી સંયમ-મુનિયોના આચારનું આચરણ કરવાવાળા બને છે, આ વાતમાં સાંખ્ય-મતનું ખંડન કરેલ છે. સાંખ્ય-સિદ્ધાંતમાં જ્ઞાન પ્રકૃતિનો ધર્મ માનેલ છે. આત્માને તો કમલપત્રની માફક નિર્લેપ બતાવેલ છે. આથી મુનિયોના સમ્યક્ આચારનું આચરણ કરવાનો બોધ પ્રકૃતિને જ છે આત્માને નહીં. પછી આત્માને આ પ્રકારના દુઃખોમાં પડવાથી લાભ શું છે. પ્રકૃતિનો સંબંધ વિચ્છેદ થવાથી જ્ઞાનના અભાવમાં આત્મા અજ્ઞ થઈ જવાથી જડસ્વરૂપ બની જશે. પરંતુ એવું તો છે નહિ; કેમ કે સ્વાનુભવથી આત્મા સ્વરૂપથી ચેતન છે અને એ માટે એ પોતાની મલિન પરિણતિને છોડવા માટે મુનિઓના નિર્મલ આચારનું પાલન કરવા માટે પ્રયત્નશીલ બને છે. અથવા "समियाए परियाए"ની સંસ્કૃત છાયા शमितापर्यायः પણ હોય છે, તો આ પ્રકારે અર્થની સંગતિ થાય છે કે જ્ઞાન અને

आत्माके अभेद सम्बन्धमें यह शमितापर्यायवाला–उपशान्तकषायवाला होता है। ऐसा तीर्थङ्कर प्रभुने कहा है।

भावार्थ—ज्ञान और आत्माका अभेद सम्बन्ध है जब इस प्रकारकी प्रतीति होगी तभी तो जाकर मनुष्य उस अपनी निर्मल ज्ञान अवस्था को, जो कषायोंने मलिन कर रखी है; प्राप्त करनेके लिये, उन कषायों को दमन करनेके लिये या उन्हें उपशमित करनेके लिये प्रयत्नशील बनेगा। नहीं तो भूलमें अज्ञ होनेसे उन कषायोंको दमन करने या उपशमित करनेका उपायोंका बोध उसे कैसे ही सकेगा। इसलिये आत्मा और ज्ञानमें अभेद ही मानना श्रेयस्कर है। भेद नहीं। "इति ब्रवीमि" इन पदोंका अर्थ पहिले ही कहा जा चुका है॥

॥ पंचम अध्ययनका पंचम उद्देश समाप्त॥ ५–५ ॥

આત્માના અભેદ સંબંધમાં આ શમિતાપર્યાયવાળા–ઉપશાન્તકષાયવાળા બને છે. એવું તીર્થંકર પ્રભુએ કહ્યું છે.

ભાવાર્થઃ—જ્ઞાન અને આત્માનો અભેદ સંબંધ છે. જ્યારે આ પ્રકારની પ્રતીતિ થશે ત્યારે મનુષ્ય પોતાના નિર્મળ જ્ઞાનની અવસ્થાઓને, કષાયોએ જે મલીન કરી રાખી છે, પ્રાપ્ત કરવા માટે, તે તે કષાયોનું દમન કરવા માટે અથવા તેઓને ઉપશમિક કરવા માટે પ્રયત્નશીલ બનશે. નહિ તો ભૂલમાં અજ્ઞ હોવાથી એ કષાયોનું દમન અને ઉપશમિત કરવાના ઉપાયનો બોધ એને કેવી રીતે થશે. આ માટે આત્મા અને જ્ઞાનમાં અભેદ માનવો શ્રેયસ્કર છે. ભેદ નહિ. "इति ब्रवीमि" આ પદનો અર્થ અગાઉ કહેવાયેલ છે.

પાંચમા અધ્યયનનો પાંચમો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૫–૫ ॥



। अथ पञ्चमाध्ययनस्य षष्ठ उद्देशः ।

गतः पञ्चमोद्देश इदानीं षष्ठः प्रारभ्यते । अस्य च पूर्वोद्देशेन सहायमभिसम्बन्धः । पूर्वत्र ह्रदसदृश आचार्यो भवेदिति कथितम् । अत्रोद्देशे-' तादृशाचार्यसंसर्गत आचार्यशुश्रूषणरतेन मुनिना त्रिषष्ट्यधिकत्रिशतपाषण्डिकमतानां गृहस्थानां

॥ पांचवें अध्ययनका छट्ठा उद्देश ॥

पंचम उद्देशका व्याख्यान हो चुका, अब इस समय छट्ठे उद्देशका व्याख्यान प्रारंभ होता है । इस उद्देशका पूर्व उद्देशके साथ सम्बन्ध है और वह इस प्रकार है-पूर्व पंचम उद्देशमें आचार्य महाराजको ह्रद (द्रह) की उपमा दी है । उस ह्रद उपमित आचार्यके पास शिष्यको रहना चाहिये, यह भी अच्छी तरह खुलासा किया जा चुका है । उनके निकट निवास करनेसे शिष्य किस २ संसर्गसे परे रहता है इस बातका इस उद्देशमें प्रदर्शन करना सूत्रकारको अभीष्ट है; अतः सर्व प्रथम यहां इस विषयका विवेचन करनेके लिये सूत्रकार, इस अभिप्रायसे प्रेरित हो कि ह्रदोपमित आचार्यके संसर्गसे उनकी सेवा वैयावृत्ति करनेमें रत चित्तवाला साधु ३६३ पाखण्डियोंके मतके संसर्गसे, गृहस्थोंके अधिक सम्पर्कसे एवं परतीर्थिकोंके संगसे पृथक् हो जाता है, "अणाणाए एगे" इत्यादि सूत्र

પાંચમા અધ્યયનનો છઠ્ઠો ઉદ્દેશ.

પાંચમો ઉદ્દેશ કહેવાઈ ચૂકયો છે, હવે છઠ્ઠા ઉદ્દેશનો પ્રારંભ થાય છે. આ ઉદ્દેશનો પૂર્વ ઉદ્દેશ સાથે સંબંધ છે, અને તે એ પ્રકારે છે કે-પૂર્વ પાંચમા ઉદ્દેશમાં ગુરૂ મહારાજને હ્રદની ઉપમા દેવામાં આવી છે. હ્રદ ઉપમિત આચાર્ય મહારાજની પાસે શિષ્યે રહેવું જોઈએ એનો પણ સારી રીતે ખુલાસો કરવામાં આવ્યો છે. એમની પાસે રહેવાથી શિષ્ય કયા કયા સંસર્ગથી દૂર રહે છે. એ વાતનું સ્પષ્ટીકરણ આ ઉદ્દેશમાં સૂત્રકારને કરવું ઈષ્ટ છે, માટે સહુ પ્રથમ અહીં આ વિષયનું વિવેચન કરવા માટે સૂત્રકાર હ્રદોપમિત આચાર્યના સંસર્ગથી તેની સેવા વૈયાવૃત્તિ કરવામાં રતચિત્તવાળાસાધુ ૩૬૩ પાખંડીઓના મતના સંસર્ગથી અને પરતિર્થીયોના સંગથી નિરાળો બને છે. આ અભિપ્રાયથી પ્રેરિત બની "अणाणाए एगे ઇત્યાદિ સૂત્રનો પ્રારંભ કરે છે. આમાં એ સર્વ પ્રથમ

परतीर्थिकानां च संसर्गपरित्यागो विधेयः' इति प्रतिपादयिष्यते । तत्रादौ पाषण्डिकमार्गपरित्यागमेव दर्शयति-'अणाणाए' इत्यादि—

मूलम्—अणाणाए एगे सोवट्ठाणा आणाए एगे निरुवट्ठाणा, एयं ते मा होउ, एयं कुसलस्स दंसणं, तद्दिट्ठीए तम्मुत्तीए तप्पुरक्कारे तस्सन्नी तन्निवेसणे ॥ सू० १ ॥

छाया—अनाज्ञायामेके सोपस्थाना आज्ञायामेके निरुपस्थानाः, एतत्ते मा भवतु,एतत्कुशलस्य दर्शनम् ,तद्दृष्ट्या तन्मुक्त्या तत्पुरस्कारस्तत्संज्ञी तन्निवेशनः॥सू०१॥

टीका—'अनाज्ञाया'मित्यादि-एके=केचन सदसद्विवेकविकला इन्द्रियविषयपाशबद्धाः, अनाज्ञायां=तीर्थङ्करानुपदिष्टे स्वच्छन्दमार्गे 'सोपस्थानाः' सह उपस्थानेन=संयमाभासोद्योगेन ये स्थितास्ते सोपस्थानाः=सावद्याचरणप्रवृत्ताः वीतरागोपदिष्टधर्मरहिताः सन्ति, ते हि-'वयमपि संयमिनः' इति सगर्वं वदन्तो लोकान् वञ्चयन्तीत्यर्थः। किञ्च एके=केचन निन्दितमार्गानुगामितया दूषितान्तः-

---

का प्रारम्भ करते हैं। इसमें वे सर्व प्रथम ३६३ पाखण्डियोंके मार्गके परित्याग करनेका उपदेश देते हैं—

कोई एक सत् और असत्के विवेकसे विकल हुए प्राणी इन्द्रियोंके विषयरूपी पाशसे बद्ध हो कर तीर्थङ्करद्वारा अनुपदिष्ट स्वच्छन्दमार्गमें प्रवृत्ति कर संयमाभासके आराधनके प्रयत्नमें उद्यमशील रहते हैं। स्वच्छन्द-प्रवृत्ति-विशिष्ट होनेसे ऐसे जीव सावद्य आचारी होते हैं और इसीलिये वे वीतरागद्वारा उपदिष्ट मार्गसे बहिर्भूत माने जाते हैं। ये संयमाभासी जीव "हम भी संयमी हैं" इस प्रकार गर्व करके संयमी होनेका लोगोंके समक्ष भाव प्रगट करते हैं और भोलेभाले प्राणियोंको अपने जालमें फसाते रहते हैं। कोई एक ऐसे भी हैं जो तीर्थङ्कर प्रभुकी

---

૩૬૩ પાખંડીઓના માર્ગનો પરિત્યાગ કરવાનો ઉપદેશ આપે છે.

કોઇ એક સત્ અને અસત્‌ના વિવેકથી વિકલ બનેલ પ્રાણી ઇન્દ્રિયોના વિષયરૂપી પાસથી બંધાઈને તીર્થંકરદ્વારા પ્રતિપાદિત થયેલા રસ્તે પ્રવૃત્તિ કરી સંયમાભાસના આરાધનનો પ્રયત્ન કરવામાં ઉદ્યમશીલ રહે છે. સ્વચ્છંદ-પ્રવૃત્તિ-વિશિષ્ટ હોવાથી એવો જીવ સાવદ્ય આચારી બને છે અને એથી એ જીવ વીતરાગદ્વારા ઉપદિષ્ટ માર્ગથી દૂર રહે છે એવા, સંયમાભાસી (દ્રવ્યલિંગી) જીવ "અમે પણ સંયમી છીયે" આ પ્રકારનો ગર્વ કરીને સંયમી હોવાનો લોકો સમક્ષ ભાવ પ્રગટ કરે છે, અને ભોળાભાળા માણસોને પોતાની જાળમાં ફસાવતા રહે છે. કોઇ એવા પણ હોય છેકે જે તીર્થંકર પ્રભુની આજ્ઞાનું

करणाः प्रमादिनः, आज्ञायां=भगवदुक्तमोक्षमार्गे निरुपस्थानाः=निर्गतमुपस्थानमुद्योगो येषां ते निरुपस्थाना वीतरागप्ररूपिताचारचरणवर्जिताः सन्ति। एतत्=पूर्वोक्तं

आज्ञाकी आराधना करनेके उद्योगसे ही रहित हैं। ऐसे जीव निन्दित मार्गके अनुसरण करनेवाले होनेकी वजहसे दूषित अन्तःकरणवाले एवं प्रमादशील रहा करते हैं। ये भगवत्कथित मोक्षमार्गमें निरुद्यमी होते हैं। भगवानने जिस आचारके पालन करनेका उपदेश दिया है वे इस आचारके पालन करनेमें वे विमुख रहा करते हैं।

भावार्थ—संसारमें कितनेक ऐसे मनुष्य हैं जो तीर्थङ्कर अप्रतिपादित मार्गमें उद्योग करते रहते हैं। स्वेच्छानुसार अपनी निरर्गल प्रवृत्ति बनाये हुए हैं। समझाये जाने पर भी ऐसे जीव आत्मकल्याणके मार्ग की तरफ ऋजु नहीं होते। कुछ ऐसे भी जीव हैं जो प्रभुप्रतिपादित मार्गमें उद्यमसे वर्जित हैं।

प्रथम कोटिके जीव लोकोंको प्रतारणा करने (ठगने)के निमित्त द्रव्यलिङ्गी साधुका वेष पहिनकर अपनेको वास्तविक संयमी घोषित करते हैं, तब दूसरी कोटिके मनुष्य मूलमें ही तीर्थङ्कर भगवान्की आज्ञाके आराधक नहीं होते हैं। यदि उन्हें समझाया जाय तो ये समझ सकते हैं और यथार्थ आचारकी ओर ऋजु हो सकते हैं, शिष्यको संबोधित करते हुए सूत्रकार आशीर्वाद वचनरूपमें उससे कहते हैं कि हे शिष्य!

આરાધન કરવામાં ઉદ્યોગરહિત છે. આવા મનુષ્ય નિન્દિતમાર્ગનું અનુસરણ કરવાવાળા હોવાને કારણે દૂષિત અંતઃકરણવાળા અને પ્રમાદશીલ રહ્યા કરે છે. એવા જીવો ભગવત્કથિત મોક્ષમાર્ગમાં નિરૂદ્યમી હોય છે. ભગવાને જે આચારનું પાલન કરવાનો ઉપદેશ આપ્યો છે એ આચારનું પાલન કરવાથી વિમુખ રહ્યા કરે છે.

ભાવાર્થ—સંસારમાં કેટલાક એવા મનુષ્ય છે જે તીર્થંકર અપ્રતિપાદિત માર્ગમાં ઉદ્યોગશીલ રહે છે અને સ્વેચ્છાનુસાર પોતાની ભિન્ન પ્રવૃત્તિ કર્યે જાય છે, અને સમજાવવા છતાં પણ આવા મનુષ્યો આત્મકલ્યાણના માર્ગ તરફ વળતા નથી. કોઈ એવા પણ જીવ છે જે પ્રભુપ્રતિપાદિત માર્ગમાં ઉદ્યમથી દૂર છે. પ્રથમ કોટિના જીવ લોકોને ઠગવા નિમિત્તે દ્રવ્યલિંગી સાધુનો વેશ પહેરી પોતાને સાચા સંયમી જાહેર કરે છે. એનાથી બીજી કોટિના જીવ મૂળમાં જ તીર્થંકર ભગવાનની આજ્ઞાના આરાધક નથી હોતા, એમને જો સમજાવવામાં આવે તો સમજી શકે છે અને યથાર્થ આચારની તરફ એ વળી શકે છે. શિષ્યને સંબોધન કરતાં સૂત્રકાર આશીર્વાદ વચનરૂપમાં એમને કહે છે કે હે શિષ્ય!

निन्दितमार्गाचरणं श्रेयोमार्गानाचरणं चैतद्द्वयं ते=तव गुरुवाक्यानुयायिनः, मा भवतु। ताभ्यां नरक-निगोदादिदुर्गतिरवश्यम्भाविनीत्यवधार्य ततो निवर्तितव्यमित्याशयः। एतस्य स्वमतिकल्पितत्वं परिहर्तुमाह-'एत' दित्यादि-एतत्=पूर्वोक्तं कुमार्गाचरणं सन्मार्गस्खलनं च दुर्गतिनिदानमिति कुशलस्य=सर्वज्ञस्य दर्शनम्=अभिमतम् आशय इत्यर्थः।

यद्वा—पूर्वोक्तवैपरीत्येन एतत् अनाज्ञायां निरुपस्थानत्वमाज्ञायां च सोपस्थानत्वमित्युभयं कुशलस्य दर्शनमस्ति।

"एतत्ते मा भवतु" ये पूर्वोक्त प्रथम कोटिवालेका निन्दित आचरण और द्वितीय कोटिवालेका श्रेयोमार्गका अनाचरण यह दोनों प्रकारकी प्रवृत्ति गुरुवाक्यके अनुसार प्रवृत्तिशील तुझमें नहीं होवे। क्यों कि इस प्रकारकी प्रवृत्तिसे जीव नरक निगोदादिकके दुःखोंका अवश्य भोगनेवाला होता है, इस प्रकार अपनी आत्मामें दृढ़ विश्वाससम्पन्न बन इस दुष्प्रवृत्तिसे सदा अपनी रक्षा कर-उस ओरसे अपने को सदा बचाता रह! हे जम्बू! सर्वज्ञ भगवान् की यही आज्ञा है। यह मैं अपनी बुद्धिसे नहीं कहता हूं। "एतत्कुशलस्य दर्शनम्" इस सूत्रांशका यह भी भाव होता है कि पूर्व में जो यह कहा है कि अनाज्ञामें सोपस्थानता और आज्ञामें निरुपस्थानता तुझमें नहीं होवे-सो इन दोनोंसे विपरीत तू अपनी प्रवृत्ति बना, अर्थात्-अनाज्ञामें निरुद्यमी और आज्ञामें सोद्यमी बन-यही सर्वज्ञकी आज्ञा है, अथवा-अनाज्ञामें सोपस्थानता और आज्ञा

"एतत्ते मा भवतु" આ પૂર્વોક્ત પ્રથમ કોટીવાળાનું નિંદિત આચરણ અને બીજી કોટિવાળાનું શ્રેયમાર્ગમાં અનાચરણ આ બન્ને પ્રકારની પ્રવૃત્તિ ગુરૂવાકયના અનુસાર પ્રવૃત્તિશીલ તારામાં ન બને; કેમ કે આ પ્રકારની પ્રવૃત્તિથી જીવ નરકનિગોદાદિકના દુઃખોને ભોગવનાર અવશ્ય બને છે. આ પ્રકારે પોતાના આત્મામાં દૃઢવિશ્વાસસંપન્ન બની ખરાબ પ્રવૃત્તિથી સદા તારી રક્ષા કર. એ તરફથી સદા પોતાની જાતને બચાવ. હે જમ્બૂ! સર્વજ્ઞ ભગવાનની આ આજ્ઞા છે. આ હું મારી બુદ્ધિથી કહેતો નથી. "एतत्कुशलस्य दर्शनम्" આ સૂત્રાંશનો એ પણ ભાવાર્થ થાય છે કે પૂર્વે જે કહેવામાં આવ્યું છે કે અનાજ્ઞામાં સોપસ્થાનતા અને આજ્ઞામાં નિરૂપસ્થાનતા તારામાં ન થાય, માટે આવા દોષોથી વિપરીત તું તારી પ્રવૃત્તિ બનાવ. અર્થાત્ અનાજ્ઞામાં નિરૂદ્યમી અને આજ્ઞામાં સોદ્યમી બન. એવી સર્વજ્ઞની આજ્ઞા છે. અથવા-અનાજ્ઞામાં

अथवा—पूर्वोक्तमेतद्द्वयं विहाय निरन्तरं गुरुकुलनिवासिना त्वया भाव्यम्, एतत्=शिष्यं प्रत्युपदेशवचनं कुशलस्य दर्शनम् । एतस्यैवार्थस्य प्रकटनायाह–'तद्दृष्ट्ये'त्यादि–'तद्दृष्ट्या तन्मुक्त्या तत्पुरस्कारस्तत्संज्ञी तन्निवेशनः' इत्यादेर्व्याख्याऽत्राध्ययने चतुर्थोद्देशे प्रोक्ता । आचार्यदृष्ट्या वर्तमानस्तदुक्ताचारचरणशीलस्तदिङ्गिताकारपरिज्ञस्तज्ज्ञानोपयुक्तो मुनिर्नित्यं गुरुकुलवासी भवेदित्यर्थः । कुमार्गाऽऽसेवनं सन्मार्गाऽसेवनं च कल्याणमार्गविघातकं भवतीति तयोर्गुरुसमीपाव-

में निरुपस्थानताको छोड़ कर हे शिष्य ! तू निरन्तर गुरुकुलका निवासी बन–इस प्रकार शिष्यको समझानेके लिये सूत्रकारने सर्वज्ञके आज्ञावचन का यह प्रदर्शन किया है–" तद्दृष्टया तन्मुक्त्या तत्पुरस्कारस्तत्संगी तन्निवेशनः "। इसी अर्थको पुष्ट या प्रकटन करनेके लिये सूत्रकारके इन पदों का व्याख्यान टीकाकारने पहिले इसी अध्ययनके चतुर्थ उद्देशके दूसरे सूत्रमें कर दिया है। इसका भावार्थ यही है कि आचार्यकी निश्रामें रहनेवाला, उनके कहे अनुसार अपनी दैनिक चर्याका आचरण करनेवाला और उनके इंगित–आकारका ज्ञाता ऐसा शिष्य ज्ञान, ध्यान और अध्ययनमें निरत रहता हुआ गुरुकुलमें निवासके योग्य होता है । कुमार्गका आसेवन और सन्मार्गका अनासेवन करना ये दोनों बातें कल्याणमार्गकी निरोधक या विघातक मानी गई हैं; इसलिये जो शिष्य गुरुकुलमें निवास करेगा–गुरुकी निश्रामें या उनके समीप रहेगा उसके पास इस प्रकारकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती ! इसलिये शिष्यको गुरुकुलनिवासी बननेकी

સોપસ્થાનતા અને આજ્ઞામાં નિરૂપસ્થાનતાને છોડીને હે શિષ્ય! તું નિરંતર ગુરૂકુળનો નિવાસી બન. આ પ્રકારે શિષ્યને સમજાવવા માટે સૂત્રકારે સર્વજ્ઞની આજ્ઞાના વચનને પ્રદર્શિત કરેલ છે–" तद्दृष्टया " ઇત્યાદિ । એ જ અર્થની પુષ્ટિ અને પ્રગટ કરવા માટે સૂત્રકારના આ પદોનું વ્યાખ્યાન ટીકાકારે પહેલા આ જ અધ્યયનના ચોથા ઉદ્દેશના બીજા સૂત્રમાં કરેલ છે. એનો ભાવાર્થ એ છે કે આચાર્યની નિશ્રામાં રહેવાવાળા એમના કહ્યા અનુસાર પોતાની દૈનિક ચર્યાનું આચરણ કરવાવાળા અને એમના ભાવને જાણવાવાળા એવા શિષ્ય જ્ઞાન, ધ્યાન અને અધ્યયનમાં નિરત રહીને ગુરૂકુળમાં નિવાસને યોગ્ય બને છે. કુમાર્ગનું આસેવન અને સન્માર્ગનું અનાસેવન કરવું એ બન્ને વાતો કલ્યાણ માર્ગની નિરોધક અને વિઘાતક માની ગઈ છે. આ કારણે જે શિષ્ય ગુરૂકુળમાં નિવાસ કરશે, ગુરૂની નિશ્રામાં અને તેની સમીપ રહેશે એની પાસે આવા પ્રકારની પ્રવૃત્તિ બનતી નથી. આ કારણે શિષ્યને ગુરૂકુળ નિવાસી બનાવવા તરફ સૂત્ર-

स्थानेन न कदाऽप्यवसरसम्भव इति भावः ॥ सू० १ ॥

तादृशः कं गुणमासादयतीत्याह–' अभिभूय ' इत्यादि—

मूलम्–अभिभूय अदक्खू अणभिभूए पभू निरालंबणयाए जे महं अबहिमणे, पवाएण पवायं जाणिज्जा, सह संमइयाए परवागरणेणं अन्नेसिं वा अंतिए सुच्चा ॥ सू० २ ॥

छाया—अभिभूयाऽद्राक्षीदनभिभूतः प्रभुर्निरालम्बनताया यो महान् अबहिर्मनाः, प्रवादेन प्रवादं जानीयात्, सह सम्मत्या परव्याकरणेनान्येषां वाऽन्तिके श्रुत्वा ॥ सू० २ ॥

टीका—' अभिभूये ' त्यादि–यः ' तद्दृष्ट्या '–इत्यादि–विशेषणविशिष्टो मुनिः, अभिभूय=परीषहोपसर्गं घातिकर्मचतुष्टयं वा पराजित्य, अनभिभूतः=अनुकूल–प्रतिकूलोपसर्गेण परतैर्थिकैर्वा न पराभूतः सन् अद्राक्षीत्=जिनोक्ततत्त्वमीप्सितवान्, स निरालम्बनतायाः=पूर्व–पश्चात्संयोगत्यागेन निराधारतायाः प्रभुः=समर्थः,

---

ओर सूत्रकारका खास प्रेरणात्मक यह आदेश है ॥ सू० २ ॥

इस प्रकारका शिष्य कौनसे गुणका भाजन होता है, इस बातको प्रकट करनेके लिये सूत्रकार कहते हैं " अभिभूय " इत्यादि ।

जो मुनि " तद्दृष्टया तन्मुक्त्या " इत्यादि पूर्वोक्त सूत्रांश प्रतिपादित विशेषणों से युक्त होता है तथा परिषह और उपसर्गों को या कर्मचतुष्टयको जीतकर जो उनसे अव्याहत पराक्रमवाला हाता है, अनुकूल प्रतिकूल उपसर्गों अथवा परतीर्थिकोंसे अजेय होता हुआ जिनेन्द्रद्वारा प्रतिपादित वस्तुस्वरूपका जो विचारक होता है, वह पूर्वसंयोग और पश्चात्संयोगका परित्यागी हो कर किसीके भी अवलम्बन–सहारेकी अपेक्षा नहीं रखता है। इस संसारमें माता, पिता, पुत्र, स्त्री और मित्र

કારનો આ મુખ્ય પ્રેરણાત્મક આદેશ છે.

આ પ્રકારનો શિષ્ય કેવા ગુણનો ધારક હોય છે, આ વાતને પ્રગટ કરવા માટે સૂત્રકાર કહે છે " अभिभूय " ઇત્યાદિ !

જે મુનિ " तद्दृष्टया तन्मुक्त्या " ઇત્યાદિ પૂર્વોક્ત સૂત્રાંશ પ્રતિપાદિત વિશેષણોથી યુક્ત હોય છે તથા પરિષહ અને ઉપસર્ગોને અથવા ચાર ઘાતિયા કર્મને જીતીને જે તેનાથી અવ્યાહત પરાક્રમવાળા થાય છે. અનુકૂળ પ્રતિકૂળ ઉપસર્ગો અને પરતીર્થિકોથી વિજયી બનીને જીનેન્દ્રદ્વારા પ્રતિપાદિત વસ્તુસ્વરૂપના જે વિચારક હોય છે તે પૂર્વસંયોગના પરિત્યાગી બનીને કોઈના પણ ઓશીયાળા રહેવાની અપેક્ષા રાખતો નથી.

आलम्बनानपेक्षी भवतीत्यर्थः। अत्र संसारे माता-पितृ-पुत्र-कलत्र-मित्रादय आलम्बनभूताः सन्तीति यदापाततः प्रतिभाति न तु वास्तविकं, तैस्त्राण-शरणासम्भवात्ते नाऽऽलम्बनभूताः, तत्सम्बन्धस्य मोहादिजनकत्वेन कुगतिहेतुत्वात्। एवं यो विभावयति स संयमादृते न किमप्यालम्बनमभिलषतीति भावः। कः तादृशः? इति प्रश्ने प्राह-'यो महा'-नित्यादि-यः=रत्नत्रयसमाराधकः महान्=महापुरुषो लघुकर्मा अबहिर्मनाः=बहिः=तीर्थङ्करोपदेशादन्यत्र न विद्यते मनः=चित्तं यस्य सोऽबहिर्मनाः=वीतरागाज्ञानुयायी परिहृतपरतैर्थिकमतो भवति। स एव च प्रवादेन-प्रकृष्टेन वादेन=पूर्वाचार्यपारम्परिकोपदेशेन प्रवादं=वीतरागवचनं जानीयात्=ज्ञानविषयीकुर्यात्-समालोचयेदित्यर्थः।

आदि अवलम्बनभूत पदार्थ ऊपरसे ही मोही जीवको मालूम पड़ते हैं, विवेकदृष्टिसे देखने पर तो ये बिलकुल निःस्सार ही हैं, इनसे किसी भी प्रकारसे किसी भी जीवकी न तो रक्षा ही हो सकती है और न ये किसीके लिये त्राणशरणरूप ही हैं। इनके साथ जननीजनकत्वादिरूप संबंध मोहका जनक होनेसे इस जीवको कुगतिमें ही पहुंचानेका एक मात्र कारण बनता है" इस प्रकार जो विचारता है वह संयमके सिवाय किसी भी वस्तु को अपना अवलम्बनभूत नहीं समझता है।

ऐसा कौन मनुष्य हो सकता है? इस प्रश्नका उत्तररूप समाधान करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि "यो महान् अबहिर्मनाः प्रवादेन प्रवादं जानीयात्" जो रत्नत्रयकी आराधनासे महान्-लघुकर्मी बना है तथा तीर्थङ्करके उपदेशके सिवाय जिसका चित्त अन्यतीर्थिकोंके उपदेशमें

આ સંસારમાં માતા, પિતા, પુત્ર, સ્ત્રી અને મિત્ર આદિ અવલંબનભૂત પદાર્થ ઉપરથીજ મોહ પમાડનારાં જીવને માલુમ પડે છે, વિવેક દૃષ્ટિથી જોવાથી તો આ બધાં તદ્દન નિસ્સાર જ છે. એઓથી કોઈ પણ પ્રકારે કોઈ પણ જીવની ન તો રક્ષા થઈ શકે છે કે ન તો તે કોઈ ને માટે ત્રાણ શરણરૂપ છે. એમની સાથે જનની-જનક ઇત્યાદિ રૂપ સંબંધ મોહનાં કારણ હોવાથી આ જીવને કુગતીમાં પહોંચાડવાના કારણભૂત બને છે. આ પ્રકારે જે વિચારે છે તે સંયમના સિવાય કોઇ પણ વસ્તુને પોતાને અવલંબનભૂત માનતા નથી.

એવો કયો મનુષ્ય હોઇ શકે છે? આવા પ્રશ્નના ઉત્તરરૂપ સમાધાન કરતાં સૂત્રકાર કહે છે "यो महान् अबहिर्मनाः" ઇત્યાદિ. જે રત્નત્રયની આરાધનાથી મહાન્-લઘુકર્મી બન્યા છે તથા તીર્થંકરના ઉપદેશ સિવાય જેનું ચિત્ત

यद्वा—'अबहिर्मनाः' नानाविधलौकिकसिद्धिदर्शनेनापि सर्वज्ञोपदेशात् बहिः= पृथग्भूते परमते न विद्यते मनो यस्य स तथा। ताश्च सिद्धय इन्द्रजालकसदृश्य एवेति

संलग्न नहीं होता है ऐसा वीतरागके मतका पथिक एवं अन्य एकान्त-वादियोंके सिद्धान्तकी ओर नहीं झुकनेवाला मनुष्य पूर्व आचार्य परम्परा से आगत उपदेशद्वारा वीतरागके वचनका, संशय–विपर्यय आदि दोषों से रहित ही विचार करनेवाला हो सकता है।

भावार्थ—ऐसा कौन मनुष्य हो सकता है? इस प्रश्नका समाधान यहां पर सूत्रकारने किया है। वे कहते हैं कि ऐसा वही मनुष्य हो सकता है कि जिसने सम्यग्दर्शनादिककी आराधनासे अपने जीवनको कर्मके भारसे लघु बना लिया है, अर्थात्–जो आसन्नसंसारी है, तथा जिसके चित्तमें वीतराग धर्मके सिवाय अन्य धर्मके प्रति धार्मिक भावनासे थोड़ी सी भी श्रद्धा नहीं है; क्यों कि वीतराग धर्मको ही वह अपना सब कुछ समझता है तथा पूर्व आचार्य परंपराके अनुसार प्रवाहरूपसे चले आये उपदेशसे ही जो वीतरागके वचनका श्रद्धालु बना है, जो यह अच्छी तरहसे समझ चुका है कि वीतरागवचन संशय विपर्यय एवं अनध्य-वसाय आदि दोषोंसे रहित हैं, वही उत्कृष्टसंयमी है।

अथवा—"अबहिर्मनाः" इस पदका अर्थ इस प्रकारसे भी होता

બીજા ધર્મવાળાના ઉપદેશમાં લાગતું નથી એવા વીતરાગનો અનુગામી અને એકાન્તવાદીઓના સિદ્ધાન્તની તરફ નહિ ઝુકવાવાળા મનુષ્ય પૂર્વ–આચાર્ય પરંપરાથી આવેલ ઉપદેશદ્વારા વીતરાગના વચનમાં, સંશય–વિપર્યય આદિ દોષોથી રહિત વિચાર કરવાળા થઈ શકે છે.

ભાવાર્થ—એવો કયો મનુષ્ય હોઈ શકે છે? આ પ્રશ્નનું સમાધાન અહિં સૂત્રકારે કરેલ છે. એ કહે છે કે એવો એ જ મનુષ્ય હોઈ શકે છે કે જેણે સમ્યગ્દર્શનાદિકની આરાધનાથી પોતાના જીવનને કર્મના ભારથી લઘુ બનાવી દીધેલ છે. અર્થાત્ જે આસન્નસંસારી–હલુકર્મી છે, તથા જેના ચિત્તમાં વીતરાગ ધર્મ સિવાય અન્ય ધર્મ તરફ ધાર્મિક ભાવનાથી થોડી માત્ર પણ શ્રદ્ધા નથી. કેમ કે વીત-રાગ ધર્મને જ એ પોતાનું સર્વસ્વ સમજે છે તથા પૂર્વ–આચાર્ય–પરંપરાઅનુ-સાર પ્રવાહરૂપથી ચાલ્યા આવતા ઉપદેશથી જે વીતરાગના વચનોનો શ્રદ્ધાળુ બનેલ છે, અને એ સારી રીતે સમજી ચૂકેલ છે કે વીતરાગ વચન સંશય વિપર્યય અને અનધ્યવસાય આદિ દોષોથી રહિત છે. એ જ ઉત્કૃષ્ટ સંયમી છે.

અથવા—"अबहिर्मनाः" આ પદનો અર્થ આ પ્રકારથી પણ થાય છે કે

विचार्य प्रवादेन=भगवद्वचनेन प्रवादं=त्रिषष्टयधिकत्रिशतपरतैर्थिकमतं जानीयात्= अनासेव्यतया बुद्धयेत, मिथ्यात्वविलसिततया ज्ञात्वा परीक्ष्य च तेषां मतं खण्डये-दित्यर्थः । ते च परतैर्थिकप्रवादाः परस्परविरुद्धार्थां नैकत्र पर्यवसितार्थास्तद्यथा–

है कि पूर्वोक्त वह जीव अन्य मतमें अनेक प्रकार की सिद्धियों को देखता है, तो भी उसका चित्त उस ओर नहीं झुकता है । कारण कि वह समझता है कि अनेक प्रकारकी उन २ सिद्धियों से विशिष्ट वे सिद्ध इन्द्रजालियों जैसे ही हैं । इस प्रकार विचार कर वह वीतराग प्रभुके वचनोंके सहारेसे ३६३ पाखंडियोंके मतको अनासेव्य–सेवन करनेके अयोग्य ही मानता है–ये सब मिथ्यात्वके ही विलास हैं, इनसे आत्मिक शांतिलाभ नहीं हो सकता है ऐसा जानकर और उन्हें अपनी बुद्धि-रूपी तर्कणाकी कसौटी पर कस कर ग्राह्यकोटिमें परिगणित नहीं करता है । इनसे अन्य भोलेभाले जीवोंका भविष्यमें अहित न हो जाय इस विचारसे उनमें वह प्रमाणता का भी खण्डन करता है । वह जानता है कि इन मतोंमें प्रतिपादित विषय परस्परमें विरुद्ध अर्थकी प्ररूपणा करता है, जो कुछ विषय इनमें लिखा गया है वह ठीक नहीं है, कारण कि जिस विषयको एक स्थान पर हेय बताया है उसी विषयको दूसरी जगह उपादेय बतलाया गया है। हम देखते हैं कि वेद जो एक सनातन सिद्धांत का उनकी मान्यतानुसार सबसे पुराना और प्रमाणिक ग्रन्थ है उसमें

પૂર્વોક્ત તે જીવ અન્ય મતમાં અનેક પ્રકારની સિદ્ધિઓને દેખે છે તો પણ તેનું ચિત્ત તે તરફ લાગતું નથી. કારણ કે તે સમજે છે કે અનેક પ્રકારની તેવી તેવી સિદ્ધિઓથી યુકત તે સિદ્ધ ઇન્દ્રજાળિક માફક છે. આ પ્રકારનો વિચાર કરી એ વીતરાગ પ્રભુના વચનોના આધારથી ૩૬૩ પાખંડીઓના મતને સેવન કરવાને અયોગ્ય માને છે. આ બધું મિથ્યાત્વનો જ વિલાસ છે. એનાથી આત્મિક શાન્તિનો લાભ મળી શકતો નથી, એવું જાણી અને એને પોતાની બુદ્ધિરૂપી તર્કની કસોટી પર કસીને ગ્રહણ કરવા લાયક માનતો નથી. એનાથી બીજા ભોળાભાળા માણસોનું અહિત ભવિષ્યમાં ન બને એ વિચારથી આવા માણસો સમક્ષ તેના વિચારોનું એ ખંડન કરતો રહે છે. એ જાણે છે કે આવા મતોમાં પ્રતિપાદિત વિષય પરસ્પરમાં વિરૂદ્ધ અર્થની પ્રરૂપણા કરે છે. જે કોઈ વિષય એમાં લખેલ છે તે બરાબર નથી. કારણ કે જે વિષયને એક સ્થળે હેય બતા-વેલ છે ત્યારે એ જ વિષયને બીજે સ્થળે ઉપાદેય બતાવેલ છે. વેદ જે સનાતન સિદ્ધાંતમાં એમની માન્યતા અનુસાર સહુથી પુરાતન અને પ્રમાણિત ગ્રંથ છે

प्रथमं तावद्वेद एव "मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि" इत्येकत्राभिधायाऽपरत्र च "अग्निषोमीयं पशुमालभेत" इति विरुद्धार्थप्रतिपादकत्वादप्रमाणम्।

एवं संसारस्येश्वरो निमित्तकारणं भवतीति वैशेषिकास्तेषामपि समानमातृ-पितृजातयोः पुंसोर्भाग्यवैषम्येण सुखदुःखादे वैचित्र्यदर्शनात्तेऽप्यन्ततः प्राक्तनशुभा-शुभकर्मफलरूपमदृष्टं स्वीकुर्वाणाः प्रष्टव्याः, यदि च भवद्भिरीश्वरस्य निमित्तकारणता

पहिले "मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि" इस वाक्यसे हिंसा करनेका निषेध किया है, फिर दूसरी जगह "अग्नीषोमीयं पशुमालभेत" इस मन्त्रपदसे अग्नीषोम यज्ञ करनेके लिये पशुके मारनेका विधान किया है, इस प्रकारसे परस्परमें विरुद्ध अर्थकी प्रतिपादकता उसमें भरी पड़ी है। जिसमें इस प्रकारके परस्पर विरोधी कथन देखनेमें आता है, और जहां युक्तिसे भी विरोधी तत्त्वोंका प्ररूपण हुआ है, भला! वह वेद प्रमाणता की कोटिमें कैसे आ सकता है? इसी प्रकार वैशेषिक सिद्धान्तकार इस जगतका कर्त्ता "एक ईश्वर है" ऐसा मानते हैं। परन्तु जब उनसे यह प्रश्न किया जाता है कि एक ही माता पितासे उत्पन्न हुए पुरुषोंमें सुख दुःख आदिकी विचित्रता क्यों देखी जाती है? परमात्माके द्वारा उत्पन्न किये गये इन जीवोंमें यह विषमता क्यों? इसका वे समा-धान करते हुए कहते हैं कि इस विषमताका कारण उनके भाग्यकी

એમાં પ્રથમ "मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि" આ વાકયથી હિંસા કરવાનો નિષેધ કરવામાં આવેલ છે. ફરી બીજે સ્થળે "अग्नीषोमीयं पशुमालभेत" આ મંત્ર પદથી અગ્નીષોમ યજ્ઞ કરવા માટે પશુને મારવાનું વિધાન કરેલ છે. આ રીતે અનેક સ્થળોમાં આ પ્રકારથી પરસ્પર વિરૂદ્ધ અર્થની પ્રતિપાદકતા એમાં ભરી પડી છે. જેમાં આ પ્રકારના પરસ્પરના વિરોધી કથન જોવામાં આવે છે અને યુક્તિથી પણ વિરોધી તત્ત્વોનું પ્રરૂપણ કરાયેલ છે તે વેદ પ્રમાણતાની કોટીમાં કઇ રીતે આવી શકે? એ જ રીતે વૈશેષિક સિદ્ધાંતકાર આ જગતના કર્તા "એક ઇશ્વર છે" એમ માને છે. પરંતુ જ્યારે એમને આ પ્રશ્ન કરવામાં આવે કે એક માતાથી ઉત્પન્ન થએલ પુરૂષોમાં સુખ દુઃખ ઇત્યાદિની વિચિત્રતા કેમ દેખાય છે? પરમાત્માએ જ ઉત્પન્ન કરેલ આ જીવોમાં આવી વિષમતા કેમ? આનું સમાધાન કરતાં એ કહે છે કે આ વિષમતાનું કારણ એના ભાગ્યની વિષમતા છે. તેણે જે રીતનાં શુભ અને અશુભ કર્મો કર્યાં છે એ અનુસાર તેને સુખ

ब्रुवद्भिरन्तेऽपि चाऽदृष्टविशेषः स्वीक्रियत एव, तर्हि ईश्वरस्य कारणतां विनैवाऽदृष्टेनैव सर्वं सेत्स्यति, अदृष्टं तु शुभाशुभकर्मफलरूपमेव किमीश्वरस्य कर्तृत्वदुराग्रहेणेत्यलम्।

कापिलास्तु–'प्रकृतिरेव कर्त्री पुरुषस्तु प्रतिक्षेत्र [शरीर] वर्ती निर्गुणो-

---

विषमता हैं, उन्होंने जैसा कुछ शुभ और अशुभरूप अदृष्ट कमाया है उसीके अनुसार वे सुखदुःख आदिको भोगा करते हैं। इसमें ईश्वरकी क्या अपेक्षा है? जब वे इस प्रकारका उत्तर देते हैं तब हम उनसे पूछते हैं कि जब तुम इस जगतका निमित्तकारण ईश्वरको कल्पित करते हो तो फिर सुखदुःखादिककी विचित्रताका कारण अदृष्टकी कल्पना क्यों करते हो। क्यों अदृष्टको सुखदुःखादिकका कारण मानते हो? इस प्रकारकी मान्यतामें ईश्वरमें सर्वशक्तिमत्ताका अभाव आता है; क्यों कि ईश्वरकी अपेक्षा अधिक शक्तिशाली पदार्थ एक अदृष्ट आपके कथनानुसार सिद्ध होता है; इसलिये जब अदृष्ट ही सबके भाग्यका विधाता है तो फिर ईश्वरको बीचमें डालकर क्यों उसकी ईश्वरता पर कलंक लगाते हो। जिसे अदृष्ट माना गया है, उसे ही जैन सिद्धान्तकी परिभाषा में कर्मका फल सुख दुःख कहा गया है, इसलिये इस दुराग्रहको छोडकर वास्तविक वस्तुस्थितिका विचारक बनो। इस पूर्वोक्त कथनसे वैशेषिक सिद्धान्तमें परस्पर विरुद्धार्थप्ररूपकता प्रकट की गई है।

દુઃખ આદિ ભોગવવાં પડે છે. આમાં ઇશ્વિરની શી અપેક્ષા છે, જ્યારે તે આ પ્રકારનો ઉત્તર દે છે ત્યારે અમે તેને પૂછીએ છીએ કે જ્યારે તમે આ જગતનું નિમિત્ત કારણ ઇશ્વરને માનો છો તો પછી સુખ દુઃખ ઇત્યાદિની વિચિત્રતાનું કારણ અદૃષ્ટની કલ્પના કેમ કરો છો? અદૃષ્ટને કેમ સુખ દુઃખનું કારણ માનો છો? આ પ્રકારની માન્યતામાં ઇશ્વિરમાં સર્વશક્તિમત્તાનો અભાવ આવે છે; કેમકે ઇશ્વરની અપેક્ષા અધિક શક્તિવાળા પદાર્થ એક અદૃષ્ટ આપના કથનાનુ-નુસાર સિદ્ધ હોય છે; આ માટે જ્યારે અદૃષ્ટ જ સહુના ભાગ્યનો વિધાતા છે તો પછી ઇશ્વરને વચમાં નાખીને એની ઇશ્વરતા ઉપર કલંક કેમ લગાડો છો. જેને અદૃષ્ટ માનવામાં આવેલ છે એને જ જૈન સિદ્ધાંતની પરિભાષામાં કર્મનું ફળ સુખ દુઃખ કહેવાયેલ છે; આ માટે એ દુરાગ્રહને છોડી વાસ્તવિક વસ્તુસ્થિતિના વિચારક બનો. આ પૂર્વોક્ત કથનથી વૈશેષિક સિદ્ધાંતમાં પરસ્પર–વિરૂદ્ધાર્થ–પ્રરૂપકતા પ્રકટ કરવામાં આવેલ છે.

સાંખ્ય સિદ્ધાંતની પણ આવી જ દશા છે, એમણે પ્રકૃતિ અને પુરૂષ આ

निष्क्रियो निःसङ्गः पुष्करपलाशवन्निर्लेपः उपभोक्ता न तु कर्ता तदुपभोगार्थमचेतना प्रकृतिः सर्वमुपकल्पयति' इति कथयन्ति, असमीचीनं तद्दर्शनम्–अचेतनस्य लोके प्रवर्तकत्वादर्शनेन दृष्टान्तासम्भवादप्रमाणम्। एवमीश्वरः प्रपञ्चरूपस्य जगतो

सांख्यसिद्धान्तकी भी यही दशा है, उन्होंने प्रकृति और पुरुष इस प्रकारसे दो मौलिक तत्त्व माने हैं। उनका कहना है जो कुछ करती–धरती है वह सब प्रकृति ही करती है, पुरुष–आत्मा नहीं। वह तो अकर्त्ता है, भिन्न २ शरीरवर्ती है, निर्गुण निष्क्रिय एवं निःसंग है। जिस प्रकार जलमें रहता हुआ भी कमलका पत्र उससे अलिप्त रहता है, ठीक इसी तरहसे आत्मा भी है। प्रकृति–प्रदत्त समस्त सुखदुःखादिकों का भोग करना ही उसका काम है, स्वयं यह किसी भी बातका कर्त्ता नहीं है। अचेतन प्रकृति जो भी कुछ करती है वह सब इस आत्माके उपभोगके लिये ही करती है, स्वयंके लिये नहीं। प्रकृति जड और पुरुष चेतन है। इस प्रकारका यह सांख्यका कथन ठीक नहीं है, क्यों कि लोकमें ऐसा कोई सा भी दृष्टान्त नहीं मिलता है कि जिसके बलपर अचेतनमें भी प्रवर्तकता मानी जा सके। प्रकृति जब स्वयं अचेतन है तो कार्यों की करनेवाली कैसे हो सकती है? विना किसीकी प्रेरणा पाये वह पुरुषके उपभोगके लिये प्रवृत्ति कैसे कर सकेगी! हां यदि इस विषयमें कोई दृष्टान्त मिलता तो उसके बल पर सांख्योंका यह कथन मान्य भी हो जाता। यदि

પ્રકારથી બે મૌલિક (મુખ્ય) તત્ત્વ માનેલ છે, એમનું કહેવું છે કે જે કાંઈ કરે છે તે પ્રકૃતિ જ કરે છે, પુરૂષ–આત્મા નહિ. એ તો અકર્તા છે, ભિન્નભિન્ન શરીરવર્તી છે, નિર્ગુણ, નિષ્ક્રિય અને નિઃસંગ છે. જેમ જળમાં રહેવા છતાં કમળપત્ર તદ્દન અલિપ્ત રહે છે આ જ પ્રમાણે આત્મા પણ છે. પ્રકૃતિપ્રદત્ત સમસ્ત સુખ દુઃખાદિનો ભોગ કરવો એ જ એનું કામ છે, સ્વયં (પોતે) એ કોઇ પણ વાતનો કર્તા નથી. અચેતન પ્રકૃતિ જે પણ કાંઇ કરે છે એ બધું આ આત્માના ઉપભોગ માટે જ કરે છે, પોતાને માટે નહિ. પ્રકૃત જડ અને પુરૂષ ચેતન છે. આ પ્રકારનું સાંખ્યનું કથન ઠીક નથી; કેમ કે લોકમાં એવો કોઈ પણ દૃષ્ટાંત નથી મળતો કે જેના બળ ઉપર અચેતનમાં પણ પ્રવર્તકતા માનવામાં આવે. પ્રકૃતિ જ્યાં પોતે જ અચેતન છે ત્યાં એ કાર્યો કરવાવાળી ક્યાંથી થઇ શકે? કોઈ પ્રેરણા મળ્યા વગર એ પુરૂષના ઉપભોગ માટે પ્રવૃત્તિ કઈ રીતે કરી શકે? આ વિષયમાં કોઈ દૃષ્ટાંત હોત તો એના જોર ઉપર સાંખ્યનું એ કથન માન્ય પણ થઈ શકત. કદાચ અહિં એવી શંકા કરવામાં આવે કે જૈન

यहां पर यह शङ्का की जावे कि जैनसिद्धान्तकारोंने जिन्हें कर्म माना है वे भी तो अचेतन हैं, उन अचेतनों में सुखदुःखादिरूप फलके प्रति प्रवर्तकता देखी जाती है, उसी प्रकार प्रकृतिमें भी प्रवर्तकता माननेमें क्या हानि है? इस प्रकार दृष्टान्तकी असंभवता बतलाकर जो इस कथन को अप्रमाण बतलाया गया है वह ठीक नहीं है; सो सांख्योंका ऐसा कहना जैनसिद्धान्तके प्रतिकूल है। जैनसिद्धान्तकारोंने कार्मणवर्गणारूप द्रव्यमें जीवकी रागादिक परिणतिके निमित्त को लेकर कर्मरूपसे परिणमन माना है, कार्मणवर्गणाओं का परिणमन (कर्मरूप होना) विना निमित्त के नहीं होता। अतः जब इनमें अशुद्धजीवके विभावभावों को लेकर कर्मरूपसे परिणमन होता है तभी ये सुखदुःखादिकरूप फलके प्रति प्रवर्तक माने गये हैं। सांख्यसिद्धान्तके अन्दर प्रकृतिमें इस तरहसे प्रवर्तकता नहीं मानी गई है; क्यों कि आत्मा स्वयं निर्गुण एवं अकर्त्ता माना गया है। प्रकृतिको इस प्रकार विभावपरिणतिसे अधिष्ठित हो कर यदि कार्यकी करनेवाली माना जावे तो फिर उसे जो "मूलप्रकृति-रविकृतिः" कारणरूप ही माना गया है सो यह मान्यता ठीक नहीं मानी जा सकती; कारण कि इस प्रकारकी मान्यतामें उसमें विकृति आनेसे वह कार्यरूप किसी अपेक्षासे मानी जावेगी। विशेष जिज्ञासुओंको यह विषय न्यायग्रन्थोंसे देख लेना चाहिये।

સિદ્ધાંતકારોએ જેને કર્મ માનેલ છે એ પણ અચેતન જ છે, એ અચેતનમાં સુખ દુઃખાદિ ફળ તરફ પ્રવર્તકતા જોવામાં આવે છે, એ જ રીતે પ્રકૃતિમાં પણ માનવામાં કયું નુકશાન છે? આ રીતે દૃષ્ટાંતની અસંભવતા બતાવીને આ કથનને અપ્રમાણિત કહેલ છે તે બરાબર નથી; આમ સાંખ્યોનું કહેવું જૈન સિદ્ધાંતથી વિરૂદ્ધનું છે. જૈન સિદ્ધાંતકારોએ કાર્મણવર્ગણારૂપ દ્રવ્યમાં જીવની રાગાદિક પરિણતિના નિમિત્તને લઈને કર્મરૂપથી પરિણમન માનેલ છે. કાર્મણવર્ગણાઓનું પરિણમન (કર્મરૂપ થવું) કોઈ નિમિત્ત સિવાય થતું નથી. આથી જ્યારે આમાં અશુદ્ધ જીવના વિભાવભાવોને લઇ કર્મરૂપથી પરિણમન થાય છે ત્યારે એ સુખ દુઃખના ફળ તરફ પ્રવર્તક માનવામાં આવેલ છે. સાંખ્ય સિદ્ધાંતમાં પ્રકૃતિમાં આ પ્રકારથી પ્રવર્તકતા માનવામાં આવી નથી; કેમ કે આત્મા સ્વયં નિર્ગુણ અકર્તા માનવામાં આવેલ છે. પ્રકૃતિને આ રીતે વિભાવપરિણતિથી અધિષ્ઠિત થઇ કામ કરવાવાળી માનવામાં આવે તો પછી એને જે "मूलप्रकृतिरविकृतिः" કારણરૂપજ માનવામાં આવેલ છે આ માન્યતા બરોબર થઈ શકે નહિ. કારણ કે આ પ્રકારની માન્યતાથી એનામાં વિકૃતિ આવવાથી કોઈ અપેક્ષાથી એને પણ કાર્યરૂપ માનવામાં આવશે. વધુ જીજ્ઞાસા ધરાવનારે આ વિષય ન્યાયગ્રન્થોમાં જોઇ લેવો જોઇએ.

निमित्तकारणं समवायि [उपादान] कारणं चास्तीत्यङ्गीकुर्वन्तोऽविद्याविभ्रमं सकलप्रपञ्चजातं शुक्तौ रजतवद् ब्रह्मणि जगदध्यस्तम् [आरोपितम्] नेदं रजतमिति विशेषदर्शनादधिष्ठानमात्रावशेषो यथा, तथैव 'नेह नानाऽस्ति किञ्चने'त्यादि विशेषदर्शनादधिष्ठानमात्रावशेषमद्वैतं ब्रह्म सिध्यति इत्यादि ब्रुवन्तो वेदान्तिनः प्रष्टव्या

इसी प्रकार वेदान्तियोंका कथन भी परस्परविरुद्धार्थ प्ररूपक है। वह इस प्रकारसे है-"वे इस जगतरूप प्रपंचका निमित्तकारण एवं समवायि (उपादान) कारण एक ईश्वर को मानते हैं। घट-पट-मठ-शकट और कट (चटाई) आदि जो अनेक वस्तुरूप प्रपंच प्रतिभासित होता है वह सब अविद्या-मायारूप विभ्रमसे मालूम पड़ता है, जैसे-शुक्ति (सीप)में रजतका ज्ञान होता है। शुक्तिमें जिस प्रकार रजतका आरोप होता है, उसी प्रकार एक ब्रह्ममें इस जगतका आरोप होता है। उत्तरकालमें जिस प्रकार "यह रजत नहीं है" इस प्रकार बाधक प्रत्यय होता है और इससे सिर्फ अधिष्ठानमात्र-शक्ति अवशिष्ट बची रहती है, उसी प्रकार इस संसारमें प्रत्यक्ष दृश्यमान ये नाना पदार्थ कुछ नहीं हैं, किन्तु अविद्या-माया विभ्रमसे अनेकरूप प्रतिभासित होते हैं, वास्तविक नहीं हैं। वास्तविक तो एक ब्रह्म ही है। इस प्रकार उत्तरकालीन बाधक प्रत्ययसे एक अधिष्ठानमात्ररूप अद्वैत ब्रह्मकी ही सिद्धि होती है" इस प्रकारका यह वेदान्तियोंका कथन भी ठीक नहीं है। कारण कि

આ રીતે વેદાન્તવાદીઓનું કથન પણ પરસ્પર વિરોધ બતાવનાર છે. તે આ પ્રકારે છે "તેઓ આ જગતરૂપ પ્રપંચનું નિમિત્તકારણ અને ઉપાદાનકારણ એક ઇશ્વરને માને છે. ઘટ-પટ-મઠ શકટ અને કટ (સાદડી) ઈત્યાદિ જે અનેક વસ્તુરૂપ પ્રપંચ પ્રતિભાસિત હોય છે આ બધું અવિદ્યા-માયારૂપ વિભ્રમથી દેખાય છે, જેમ સીપમાં રજતનું જ્ઞાન હોય છે. સીપમાં જેમ રજતનો આરોપ થાય છે, આ જ પ્રકારે એક બ્રહ્મમાં આ જગતનો આરોપ થાય છે. ઉત્તર કાળમાં જે રીતે "આ રજત નથી" આ પ્રકારે બાધક પ્રત્યય (જ્ઞાન) હોય છે અને આથી ફક્ત અધિષ્ઠાન માત્ર સીપ અવશિષ્ટ બની રહે છે, આ રીતે આ સંસારમાં પ્રત્યક્ષ દેખાતા વિવિધ પદાર્થો કાંઈ નથી, પણ અવિદ્યા-માયાના વિભ્રમથી અનેક રૂપ દેખાય છે, વાસ્તવિકમાં નથી; વાસ્તવિક તો એક બ્રહ્મ જ છે. આ રીતે ઉત્તરકાલીન બાધક પ્રત્યયથી (જ્ઞાનથી) એક અધિષ્ઠાનરૂપ અદ્વૈત બ્રહ્મની જ સિદ્ધિ હોય છે." આ પ્રકારનું વેદાન્તિઓનું એ કથન પણ ઠીક નથી; કારણ કે એકજ

यद् एकस्य समवायि [उपादान] कारण–निमित्तकारणयोर्लोके क्वाप्यदर्शनेन दृष्टान्तासम्भवात् प्रत्यक्षदृष्टस्य जगतः सामान्येन शब्दप्रमाणेन बाधासम्भवाच्च न युक्तियुक्तं भवन्मतमिति ।

तथा सौगताः–' यत् सत् तत् क्षणिकं सर्वस्य च निरन्वय एव नाश इति कथयन्ति। यस्मादुपादानकारणाद् यदुपादेयं जायते तस्योपादेयस्य तथैवोपादाने नाशो भवति, यथा–घटं प्रत्युपादानकारणं मृत्पिण्डः, अतो घटस्य तत्रैव नाशो भवति, तेन घट–

एक ही ब्रह्म निमित्त और उपादान कारण नहीं बन सकता है। हां–यदि कोई ऐसा दृष्टान्त मिलता कि जो निमित्त और उपादान कारण होता तो यह मान्यता ठीक मानी जा सकती, परन्तु ऐसा कोई दृष्टान्त ही नहीं दिखता । अतः यह एक कल्पना मात्र है, वास्तविक नहीं । दूसरे प्रत्यक्ष से स्पष्ट प्रतिभासित होनेवाले जगतमें सामान्य शब्द प्रमाण (आगम–प्रमाण) से बाधा भी कल्पित नहीं हो सकती है । इसलिये वेदान्तमत युक्तियुक्त नहीं माना जा सकता ।

बौद्धसिद्धान्त भी युक्तियुक्त नहीं है, क्यों कि वे " यत्सत् तत्सर्वं क्षणिकं " कहते हैं। अर्थात्–जो सत् (पदार्थ) हैं वे सब क्षणिक निरन्वय नाशशील हैं। परन्तु इस क्षणिकवादमें उपादान–उपादेय–भाव सिद्ध नहीं होनेसे कार्यकारण भावकी सिद्धि नहीं हो सकती है । जिस उपादान करण से जो उपादेयरूप कार्य होता है उस कार्यका उसी उपादानरूप कारणमें नाश होता है। जैसे घटके प्रति उपादानकारण मृत्पिण्ड है और उस घटका उसीमें ही विनाश होता है । इस अपेक्षा घट और मृत्पिण्ड

બ્રહ્મ નિમિત્ત અને ઉપાદાન કારણ થઈ શકે નહિ. કદાચ કોઈ એવું દૃષ્ટાંત અપાત કે જો નિમિત્ત અને ઉપાદાન કારણ હોત તો આ માન્યતા ઠીક માની જાત. પરંતુ એવું કોઈ દૃષ્ટાંત દેખાતું નથી. આથી એ કલ્પના માત્ર છે, વાસ્તવિક નથી. બીજું પ્રત્યક્ષથી સ્પષ્ટ દેખાતા આ જગતમાં સામાન્ય શબ્દ પ્રમાણથી કલ્પના પણ થઈ શકતી નથી. આ કારણે વેદાન્ત મત માનવાયોગ્ય મનાતો નથી. બૌદ્ધ સિદ્ધાંત પણ માનવા યોગ્ય નથી; કેમ કે તે " यत्सत् तत्सर्वं क्षणिकं " જે જે પદાર્થ છે તે બધા ક્ષણિક નિરન્વય નાશશીલ છે એમ કહે છે; પરન્તુ આ ક્ષણિકવાદમાં ઉપાદાનઉપાદેયભાવ સિદ્ધ નહિ હોવાથી કાર્યકારણ ભાવની સિદ્ધિ થઈ શકતી નથી. જે ઉપાદાનરૂપ કારણથી જે ઉપાદેયરૂપ કાર્ય થાય છે આ કાર્યનો એ ઉપાદાનરૂપ કારણમાં નાશ થાય છે, જેમ ઘડા પ્રતિ ઉપાદાનકારણ માટીનો પિંડ છે અને એ ઘડાનો એમાં જ વિનાશ થાય છે. આ રીતે ઘડાનો અને માટીપિંડનો

मृत्पिण्डयोर्नियतः कार्यकारणभावः सिद्धयति। निरन्वयनाशाङ्गीकारे घटस्य कुत्र नाशः स्याद् येन नाशाश्रय उपादानं स्यादिति नियतकार्यकारणभावासिद्धया न समीचीनं तन्मतमिति-इत्यादियुक्तिभिः परवादं निरस्य मुनिना सर्वज्ञोपदेशे वर्तितव्यमिति हृदयम्।

कथं प्रवादं जानीयादित्याह-'सहे'त्यादि-सहसम्मत्या-सहात्मना या संगता मतिः सा सहसम्मतिःपरोपदेश-निरपेक्षा जातिस्मरणप्रतिभादिकरूपा मतिस्तया जानीयात्। यद्येवं नावगच्छेत् तदा परव्याकरणेन-परस्य=तीर्थकृदादेर्व्याकरणं पदार्थसार्थस्य यथार्थस्वरूपप्ररूपणं तत्परव्याकरणं तेन परव्याकरणेन आर्हतागमेन जानीयात्, तेनाप्यनधिगमे अन्येषामाचार्यादीनाम् अन्तिके=समीपे श्रुत्वा= तदुपदेशमाकर्ण्य वस्तुतत्त्वं जानीयात्॥ सू० २॥

का परस्परमें-कार्य कारणभाव नियत सिद्ध होता है। परन्तु जब पदार्थका निरन्वय विनाश मान लिया जायगा तब घटका कहां पर नाश होगा। नाश निराश्रय होगा, उपादानके आश्रय नहीं। इस प्रकार उपादान और उपादेयभाव न बननेसे परस्परमें नियमित कार्यकारण भावकी सिद्धि नहीं हो सकती है। अतः यह मत भी ठीक नहीं है।

कहनेका अभिप्राय केवल इतना ही है कि इत्यादि युक्तियोंसे पर-मतका निराकरण कर विद्वान् मुनिको सर्वज्ञ प्रभुके उपदेशमें ही सदा निरत-श्रद्धालु रहना चाहिये।

"सहसंमत्या परव्याकरणेन अन्येषां वाऽन्तिके श्रुत्वा" इस प्रकार अपनी जातिस्मरण-प्रतिभादिकरूप बुद्धि या तीर्थङ्कर-प्रभुकथित आग-मसे मुनि इन परमतोंका सम्यक् ज्ञाता बने। यदि कदाचित् ऐसा

પરસ્પર કાર્યકારણથી મેળ સિદ્ધ થાય છે, પરંતુ જો પદાર્થનો નિરન્વય વિનાશ માની લેવામાં આવે તો ઘડાનો નાશ કયાં થાય? આ રીતે ઉપાદાન અને ઉપાદેય ભાવ ન બનવાથી પરસ્પરમાં નિયમિત કાર્યકારણ ભાવની સિદ્ધિ નથી થઈ શકતી. આથી આ મત પણ બરાબર નથી.

કહેવાનું તાત્પર્ય માત્ર એટલું જ છે કે અનેક યુક્તિઓથી બીજા મતનું નિરાકરણ કરી વિદ્વાન્ મુનિએ સર્વજ્ઞ પ્રભુના ઉપદેશમાં જ સદા શ્રદ્ધાળુ રહેવું જોઇએ.

" सहसंमत्या परव्याकरणेन अन्येषां वाऽन्तिके श्रुत्वा " આ પ્રકારે પોતાની જાતિસ્મરણ-પ્રતિભાદિકરૂપ બુદ્ધિથી અને તીર્થંકર પ્રભુએ કહેલ આગમથી મુનિ

ज्ञात्वा किं कर्तव्यमिति दर्शयति-निद्देशं ' इत्यादि—

मूलम्—निद्देसं नाइवट्टेज्जा मेहावी सुपडिलेहिया सव्वओ सव्वयाए सम्ममेव समभिजाणिया, इह आरामं परिण्णाय अल्लीणगुत्ते परिव्वए, निट्ठियट्ठी वीरे आगमेण सया परक्कमेज्जासि त्तिबेमि ॥ सू० ३ ॥

छाया—निर्देशं नातिवर्तेत मेधावी सुप्रत्युपेक्ष्य सर्वतः सर्वात्मना सम्यगेव समभिज्ञाय, इहाऽऽरामं परिज्ञायाऽऽलीनगुप्तः परिव्रजेत्, निष्ठितार्थी वीर आगमेन सदा पराक्रमेथा इति ब्रवीमि ॥ सू० ३ ॥

टीका—' निर्देश 'मित्यादि–मेधावी=आचार्यमर्यादानुगमनशीलो निर्देशं=वीतरागोपदेशं सर्वात्मना=उत्सर्गापवादरूपेण, यद्वा—आभ्यन्तरबाह्यरूपेण सर्वतः =सर्वप्रकारेण द्रव्यक्षेत्रकालभावरूपेणेत्यर्थः, सुप्रत्युपेक्ष्य=मिथ्यादृष्टिवादं भगवद्वादं च हेयोपादेयत्वेन सम्यक् समालोच्य सम्यगेव=सम्यक्तया यथावस्थितरूपेण स्वमतं परमतं च समभिज्ञाय प्रमाणनयैर्ज्ञात्वा नातिवर्तेत-भगवदाज्ञां नातिक्रमेत-नोल्लङ्घयेदित्यर्थः, उपलक्षणात् परवादं च निराकुर्यादिति । अपि च इह=अत्र जिन-

---

योग न मिले तो आचार्यादिक गुरुओंके निकट बस कर उनके उपदेश श्रवणसे वास्तविक वस्तु–तत्त्वका ज्ञायक बने ।

वस्तु तत्त्व या परप्रवादको जान कर फिर क्या करना चाहिये? इस के समाधानार्थ सूत्रकार कहते हैं " निद्देसं " इत्यादि ।

जो मुनिजन बुद्धिशाली हैं, अर्थात् अपने धर्मगुरुओंकी मर्यादाके रक्षक हैं, उनके निर्दिष्ट मार्गानुसार अपनी प्रवृत्ति करते हैं, स्वमनः-कल्पित प्रवृत्ति नहीं करते । वे वीतराग प्रभुके उपदेशका अनेक मार्गसे विचार कर कभी भी उससे विरुद्ध प्रवृत्ति, या उसका उल्लंघन नहीं करते। वीतराग प्रभुका उपदेश अनेक नयोंकी अपेक्षासे प्रवर्तित हुआ है ऐसा

આ પરમતોનો સંપૂર્ણ જ્ઞાતા બને. પરંતુ કદાચ એવો યોગ ન મળે તો આચાર્ય આદિ ગુરૂઓની પાસે રહી એમના ઉપદેશ શ્રવણથી વાસ્તવિક વસ્તુતત્ત્વના જાણકાર બને.

વસ્તુતત્ત્વ અને પરમતને જાણી પછી શું કરવું જોઈએ ? એના સમાધાનમાં સૂત્રકાર કહે છે " निद्देसं " ઈત્યાદિ!

જે મુનિજન બુદ્ધિશાળી છે એટલે પોતાના ધર્મગુરૂઓની મર્યાદાના રક્ષક છે–એમણે ઉપદેશેલ માર્ગ અનુસાર પોતાની પ્રવૃત્તિ કરે છે, **સ્વમનઃકલ્પિત** પ્રવૃત્તિ કરતા નથી તે વીતરાગ પ્રભુના ઉપદેશને અનેક માર્ગથી વિચાર કરી કદી પણ એનાથી વિરૂદ્ધ પ્રવૃત્તિ અથવા એનું ઉલ્લંઘન નથી કરતા. વીતરાગ પ્રભુનો ઉપદેશ સિદ્ધ છે એવો વિચાર કરી તે કદી પણ એના આગમમાં શંકા-

विचार कर वे भी उनके आगममें शंकाशील नहीं होते हैं-उसमें परस्पर-विरुद्धार्थप्ररूपकताकी शंका नहीं करते हैं। वे यह अच्छी तरहसे समझ लेते हैं कि भगवान वीतराग प्रभुके वचन ही निर्दोष होनेसे उपादेय हैं और सदोष होनेसे मिथ्यादृष्टियोंके वचन हेय हैं। क्यों कि पदार्थोंका जैसा स्वरूप है वह वीतरागप्रभु प्रतिपादित आगमसे साक्षात् ज्ञात होता है; कारण कि उसमें ही पदार्थोंका यथार्थस्वरूप प्रतिपादित हुआ है अन्य मिथ्यादृष्टियों के आगममें नहीं, कारण कि उसमें उनका यथावस्थित स्वरूप प्रतिपादित नहीं हुआ है, इनमें एकान्तवादकी ही प्ररूपणा है, जो प्रत्यक्ष और अनुमानसे बाधित है। पदार्थोंका स्वरूप अनेकान्तकी प्ररूपणा से ही वास्तविक ज्ञात होता है, और वही अनेकान्तता पदार्थोंमें प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे ज्ञात होती है। इस अनेकान्तताका परिज्ञान पदार्थों में प्रमाण और नयोंसे होता है। वस्तुके अंदर रहे हुए अनंत धर्मोंमें से किसी एक धर्मको मुख्यकर शेष धर्मोंकी अविवक्षासे उन्हें गौणकर वस्तुस्वरूपका प्रतिपादन करना नय है। अनंतधर्मात्मक वस्तुका कथन प्रमाण है। इस प्रकार पदार्थोंमें अनेकान्तता ही सिद्ध होती है।

शङ्का—नयवाक्यसे जो पदार्थों के स्वरूपका प्रतिपादन किया जाता है वह भी तो एकान्तवाक्य है; फिर इसमें प्रमाणरूपता कैसे मानी जा सकती है ?

શીલ બનતા નથી—એમાં પરસ્પર વિરોધીપણાની શંકા નથી કરતા. એ સારી રીતે સમજે છે કે ભગવાન વીતરાગ પ્રભુનાં વચન નિર્દોષ તેમજ આચરવાયોગ્ય હોવાથી મિથ્યાદૃષ્ટિઓનાં વચન નકામાં છે; કેમ કે પદાર્થોનું જેવું સ્વરૂપ છે તે વીતરાગ પ્રભુએ સમજાવેલ આગમથી જાણી શકાય છે. કારણ કે એમાં જ પદાર્થોનું યથાર્થ સ્વરૂપ સમજાવેલ છે. બીજા મિથ્યાદૃષ્ટિઓના આગમમાં નહીં. કારણ કે એમાં એનું સાચું સ્વરૂપ સિદ્ધ સ્વીકારાયું નથી. એનામાં એકાન્તવાદની જ પ્રરૂપણા છે. જે પ્રત્યક્ષ અને અનુમાનથી બાધિત છે. પદાર્થોનું સ્વરૂપ અનેકાન્તની પ્રરૂપણાથી જ વાસ્તવિક જાણી શકાય છે અને એ જ અનેકાન્તતા પદાર્થોમાં પ્રત્યક્ષાદિ પ્રમાણોથી જ્ઞાત થાય છે. આ અનેકાન્તતાનું પરિજ્ઞાન પદાર્થોમાં પ્રમાણ અને નયોથી થાય છે. વસ્તુની અંદર રહેલા અનંત ધર્મોમાંથી કોઈ એક ધર્મને મુખ્ય ગણી બીજા ધર્મોની અવિવક્ષા કરી એને ગૌણ સમજી વસ્તુસ્વરૂપનું પ્રતિપાદન કરવું નય છે. અનંત ધર્માત્મક વસ્તુનું કથન પ્રમાણ છે. આ પ્રકારે પદાર્થોમાં અનેકાન્તતા જ સિદ્ધ થાય છે.

શંકા—નયવાક્યથી જે પદાર્થોના સ્વરૂપનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવે છે આ પણ એકાન્તવાક્ય છે, પછી આને પ્રમાણરૂપતા કઈ રીતે માની શકાય?

उत्तर—यह आशंका ठीक नहीं है, क्यों कि जहां पर विवक्षित धर्मकी ही प्रधानता की जावे और बाकी अन्य धर्मोंका तिरस्कार कर दिया जावे वहां पर ही एकान्तता आती है। नयवाक्यमें सर्वथा एकान्त-प्रतिपादकता नहीं है। यद्यपि नय अपने द्वारा गृहीत धर्मका ही प्रतिपादन करता हैं, परन्तु वह वस्तुगत अनेक धर्मोंका तिरस्कार नहीं करता है, किन्तु उनकी ओर वह गजनिमीलिका धारण कर लेता है। इस प्रकार नयवाक्यमें दुर्नयतारूप सर्वथा एकान्तप्रतिपादकता नहीं आती है।

शंका—इस प्रकारके कथनसे नयवाक्यमें जब प्रमाणता आती है तो उसे प्रमाणवाक्यसे भिन्न क्यों मानना चाहिये ? उसका समावेश प्रमाणवाक्यमें क्यों नहीं कर लिया जावे ?

उत्तर—शङ्का ठीक नहीं है, क्यों कि जिस प्रकार समुद्रका एक बिन्दु असमुद्र एवं समुद्र नहीं हो सकता है; किन्तु समुद्रका एक देश कहा जाता है, उसी प्रकार नय वाक्य भी प्रमाणका एक देश माना गया है, वह न प्रमाण है और न अप्रमाण। इस प्रकार वह जीवादिक पदार्थों में या वीतरागप्रतिपादित आगममें उत्सर्ग और अपवाद मार्गसे प्रमाण नयोंके द्वारा यथार्थप्रतिपादकता जानकर उसे उपादेयकोटिमें

ઉત્તર—આ આશંકા વ્યાજબી નથી, કેમ કે જ્યાં વિવક્ષિત ધર્મની જ પ્રધાનતા માનવામાં આવે અને બાકીના બીજા ધર્મોનો તિરસ્કાર કરવામાં આવે ત્યાં જ એકાન્તતા આવે છે. નયવાકચમાં સંપૂર્ણ એકાન્તપ્રતિપાદકતા નથી. યદ્યપિ નય પોતાદ્વારા ગૃહીત ધર્મને જ પ્રતિપાદિત કરે છે; પરંતુ એ વસ્તુગત અનેક ધર્મોનો તિરસ્કાર કરતો નથી. પરંતુ એની તરફ તે સમભાવ ધારણ કરે છે, આ રીતે નયવાકયમાં દુર્નયતા-સર્વથા-એકાન્ત-પ્રતિપાદકતા આવતી નથી.

શંકા—આ પ્રકારના કથનથી નયવાકચમાં જ્યારે પ્રમાણતા આવે છે તો એને પ્રમાણ વાકચથી ભિન્ન કેમ માનવું જોઈએ ? એનો સમાવેશ પ્રમાણવાકયોમાં કેમ નથી કરાતો ?

ઉત્તર—શંકા બરોબર નથી; કેમ કે જે રીતે સમુદ્રનું એક ટીપુ અસમુદ્ર અને સમુદ્ર બની શકતું નથી, પરંતુ સમુદ્રનો એક દેશ કહેવાય છે, એ જ રીતે નયવાકય પણ પ્રમાણનો એક દેશ માનવામાં આવેલ છે. એ પ્રમાણ પણ નથી તેમ અપ્રમાણ પણ નથી. આ રીતે જીવાદિક પદાર્થોમાં અને વીતરાગ પ્રતિપાદિત આગમમાં ઉત્સર્ગ અને અપવાદ માર્ગથી પ્રમાણ નયો દ્વારા યથાર્થ-પ્રતિપાદકતા જાણી તેને ઉપાદેયકોટિમાં અને મિથ્યાદૃષ્ટિઓના સિદ્ધાંતોને હેય

शासने लोके आलीनगुप्तः-आलीनः-आ=सर्वतस्तपसि संयमे गुरूपदेशे परसमयनिराकरणे च लीनः=तत्परः गुप्तः=कूर्मवत् संयतेन्द्रियनोइन्द्रियश्च सन् 'निष्ठितार्थी' निष्ठितः=सकलकर्मक्षयरूपत्वान्मोक्षः सोऽर्थः=प्रयोजनमस्यास्तीति स निष्ठितार्थी=मोक्षाभिलाषी वीरः=कर्मविदारणनिपुणः 'आरामम्' आ=

और मिथ्यादृष्टियोंके सिद्धान्तको हेयकोटिमें स्थापित कर वीतराग के मार्गमें निःशंक बन आचार्यके निर्दिष्ट मार्गमें यथार्थ प्रवृत्तिशील होता है।

"सर्वतः सर्वात्मना" इन दो पदोंका यह भी अर्थ होता है कि आभ्यन्तर एवं बाह्यरूपसे तथा द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावको लेकर वह मेधावी मुनि वीतरागकथित उपदेशरूप आगमका विचार करनेवाला होता है। इसलिये जो वस्तु जिस द्रव्य क्षेत्रादिक की अपेक्षासे हेय होती है वही वस्तु अन्य द्रव्य क्षेत्रादिककी अपेक्षासे उपादेय भी हो जाती है।

इस प्रकार इस जिनशासनरूपी लोक, तप, संयम, गुरुके उपदेशके पालन करने और परसमयके निराकरण करनेमें सर्व प्रकारसे कटिबद्ध वह मुनि कच्छपकी तरह अपनी इन्द्रियों एवं नोइन्द्रिय (मन)का संवरण करता हुआ समस्त कर्मोंका क्षयस्वरूप-मोक्ष-प्रयोजनवाला होता है। इस प्रयोजनका साधन जो संयम है उसमें फिर इसकी निरवद्य प्रवृत्ति होती है; कारण कि मुक्तिका लाभ विना कर्मोंके क्षय हुए नहीं होता है। कर्मोंका क्षय भी विना संयमकी आराधना किये होता

કોટિમાં ગણી વીતરાગના માર્ગમાં નિઃશંક બની આચાર્ય સમજાવે તે માર્ગમાં તે યથાર્થ પ્રવૃત્તિશીલ બને છે.

"सर्वतः सर्वात्मना" આ બે પદોનો એ પણ અર્થ થાય છે કે આભ્યન્તર અને બાહ્ય રૂપથી તથા દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ અને ભાવને લઈ એ મેધાવી મુનિ વીતરાગે કહેલ ઉપદેશરૂપ આગમનો વિચાર કરવાવાળો હોય છે. આ માટે જે વસ્તુ જે દ્રવ્ય-ક્ષેત્રાદિકની અપેક્ષાથી હેય હોય છે એ જ વસ્તુ બીજા દ્રવ્ય-ક્ષેત્રાદિકની અપેક્ષાથી ઉપાદેય પણ બની જાય છે.

આ પ્રકારે આ જીનશાસનરૂપી લોક, તપ, સંયમ, ગુરૂના ઉપદેશનું પાલન અને પરસમયનું નિરાકરણ કરવામાં સર્વ પ્રકારથી કટિબદ્ધ એવા મુનિ કાચબાની માફક પોતાની ઈન્દ્રિયો અને મનનું સંવરણ કરીને સમસ્ત કર્મોના ક્ષયસ્વરૂપ-મોક્ષ-પ્રયોજનવાળો બને છે. આ પ્રયોજનનું સાધન જે સંયમ છે તેમાં તેની નિરવદ્ય પ્રવૃત્તિ બને છે, કારણ કે મુક્તિનો લાભ કર્મક્ષય વિના થતો નથી. કર્મોનો ક્ષય પણ સંયમની આરાધના વગર થતો નથી. સંયમનો લાભ થવાથી જ આત્મા પોતાના નિજ

समन्ताद् रमयत्यात्मानं स्वस्वरूपे यः स आरामः संयमस्तं परिज्ञाय=ज्ञपरिज्ञया ज्ञात्वा आसेवनपरिज्ञयाऽऽसेव्य च परिव्रजेत्=निरवद्याचरणे विहरेत्। हे शिष्य! त्वं सदा=सर्वस्मिन् काले आगमेन=वीतरागोपदेशेन आचार्योपदेशेन च पराक्रमेथाः= संयमे पराक्रमं कुरु। 'इति' इत्यधिकारसमाप्तौ' 'ब्रवीमि' इति पूर्ववत् ॥सू०३॥

कथं मुहुर्मुहुरुपदिश्यत इत्याह-'उड्ढं' इत्यादि—

मूलम्—उड्ढं सोया अहो सोया, तिरियं सोया वियाहिया। एए सोया विअक्खाया, जेहिं संगंति पासह ॥ सू० ४ ॥

छाया—ऊर्ध्वं स्रोतांसि अधः स्रोतांसि, तिर्यक् स्रोतांसि व्याहृतानि। एतानि स्रोतांस्यप्याख्यातानि, यैः सङ्गमिति पश्यत ॥ सू० ४॥

टीका—'ऊर्ध्व'मित्यादि-ऊर्ध्वम्=ऊर्ध्वलोके स्वर्गादौ स्रोतांसि=आस्रव-द्वाराणि मिथ्यात्वाविरत्यादीनि वर्तन्ते तत्रापि देवसम्बन्धि कामभोगसेवनात्,

---

नहीं है। संयमके लाभ होने पर ही आत्मा अपने निज स्वरूपमें रमण करता है, स्वस्वरूपमें रमणता ही तो संयम है।

इस प्रकारसे वह ज्ञ परिज्ञासे जान कर और आसेवन परिज्ञासे उसका सेवन करता है, निरवद्य आचरण करनेमें प्रवृत्तिशील बन सदा उसी ओर मग्न रहता है। इस प्रकारके उपदेशसे सूत्रकार शिष्यजनको समझाते हुए कहते हैं कि हे शिष्य! तुम भी सदा-सर्वकाल वीतराग प्रभुके उपदेश या आचार्य महाराजके उपदेशसे संयम पालनेकी ओर पराक्रमशाली बनो। सूत्रस्थ 'इति' शब्द अधिकारकी समाप्तिका सूचक है।'ब्रवीमि'पदका व्याख्यान पहिले कई स्थानोंपर लिखा जा चुका है॥सू०३॥

बारंबार संयममें प्रवृत्ति करनेका उपदेश क्यों दिया जाता है? इस का समाधान करने निमित्त सूत्रकार कहते हैं-'उड्ढं सोया" इत्यादि।

સ્વરૂપમાં રમણ કરે છે. સ્વસ્વરૂપમાં રમણતા એ જ સંયમ છે. આ પ્રકારે તે જ્ઞ-પરિજ્ઞાથી જાણીને અને આસેવન પરિજ્ઞાથી તેનું સેવન કરે છે, અને નિરવદ્ય આચરણ કરવામાં પ્રવૃત્તિશીલ બની સદા તે તરફ મગ્ન રહે છે. આ પ્રકારના ઉપદેશથી સૂત્રકાર શિષ્યજનને સમજાવતાં કહે છે કે હે શિષ્ય! તમે પણ સદા સર્વકાળ વીતરાગ પ્રભુના ઉપદેશ અને આચાર્ય મહારાજના ઉપદેશથી સંયમ પાલનની તરફ પરાક્રમશાળી બનો સૂત્રસ્થ इति શબ્દ અધિકારની સમાપ્તિનો સૂચક છે. "ब्रवीमि" આ પદનું વ્યાખ્યાન આગળ કેટલાક સ્થાનોમાં કહેવાઇ ગયાં છે. (સૂ૦ ૩)

વારંવાર સંયમમાં પ્રવૃત્તિ કરવાનો ઉપદેશ કેમ આપવામાં આવે છે. આનું સમાધાન કરવા નિમિત્તે સૂત્રકાર કહે છે "उड्ढं सोया" ઈત્યાદિ!

अधः=अधोलोके स्रोतांसि=आस्रवद्वाराणि भवनपतिसुखासेवनात् , तिर्यग्लोके=मनुष्यलोके स्रोतांसि तिर्यङ्मनुष्यव्यन्तरविषयसुखसेवनात् व्याहृतानि कथितानि।

उध्वं, अधः और तिर्यग् (मध्य) इन तीनों लोकोंमें कर्मोंके आने के अनेक द्वार-कारण शास्त्रोंमें प्रतिपादित किये गये हैं। सामान्यतया-मिथ्यात्व, अविरति, कषाय, प्रमाद और योग ये कर्मबन्धके कारण होते हैं। प्रत्येक गतिमें अथवा इन तीन लोकमें ऐसा कोई सा भी स्थान नहीं है कि जहां पर जीव कर्मोंके बन्धसे रहित हो। बन्ध बिना आस्रवके नहीं होता है, अतः जो कारण बन्धके हैं वे ही आस्रवके समझना चाहिये। स्वर्ग आदि में इन कारणोंके अतिरिक्त भी कर्मास्रवके और भी कई कारण हैं। यद्यपि इन कारणकलापोंका समावेश पूर्वोक्त कारण-कलापोंमें ही हो जाता है, फिर भी यहां पर जो देवगति संबंधी विषय सुखोंका सेवन उनके आस्रवका कारण बतलाया गया है वह शिष्य-जनोंको विशेष रीतिसे समझानेके लिये ही कहा गया है। इसी प्रकार अधोलोक एवं तिर्यग्लोकमें भी यही बात समझना चाहिये। अधोलोक में नरकगतिमें नपुंसकलिङ्गका उदय होनेसे वहां पर जीवों-नारकियोंको वैषयिक सुखोंका आसेवनजन्य कर्मोंका आस्रव कैसे हो सकता है? यह आशंका यद्यपि हो सकती है, तो भी इस आशंकाका समाधान यही है कि नपुंसक वेदके उदयमें बाह्यरूप में वैषयिक सुखों-रतिसम्बन्धी

ઉર્ધ્વ, અધઃ અને તિર્યગ્ આ ત્રણે લોકોમાં કર્મોને આવવાનાં અનેક દ્વાર-કારણ શાસ્ત્રોમાં જણાવેલ છે. સામાન્ય રીતે-મિથ્યાત્વ, અવિરતિ, કષાય, પ્રમાદ અને યોગ આ કર્મબંધનાં કારણ બને છે. પ્રત્યેક ગતિમાં અથવા આ ત્રણ લોકમાં એવું કોઇ પણ સ્થાન નથી કે જ્યાં જીવ કર્મોના બંધથી રહિત હોય. બંધ આશ્રવ વિના બનતો નથી; માટે જે કારણ બંધ માટે છે તે જ કારણ આશ્રવનું સમજવું. સ્વર્ગ આદિમાં આ કારણોથી અતિરિક્ત પણ કર્માસ્રવના બીજાં પણ કેટલાંક કારણો છે; આથી આ કારણ-કલાપોનો સમાવેશ પૂર્વોક્ત કારણ-કલાપોમાં જ થઈ જાય છે, છતાં પણ અહિં જે દેવગતિસંબંધી વિષયસુખોનાં સેવન, એના આશ્રવનું કારણ બતાવેલ છે તે શિષ્યજનોને વિશેષરીતિથી સમજાવવા માટે જ કહેલ છે. આ જ પ્રકારે અધોલોક અને તિર્યગ્લોકમાં પણ આ વાત સમજવી જોઇએ. અધોલોકમાં નરકગતિમાં નપુંસક લિંગનો ઉદય હોવાથી તે જગ્યાએ જીવો-નારકિયોના વૈષયિક સુખોનું આસેવનજન્ય કર્મોના આસ્રવ કઈ રીતે થઇ શકે? આ આશંકા જો કે થઇ શકે છે તો પણ આ આશંકાનું સમાધાન એ છે કે નપુંસક વેદના ઉદયમાં બાહ્યરૂપમાં વૈષયિક સુખો-રતિ સંબંધી

यद्वा–प्रज्ञापकापेक्षया ऊर्ध्वं स्रोतांसि–गिरिशिखरप्राग्भारनितम्बप्रपातोदकादीनि, अधोऽपि–गर्तनदीतटकन्दरादीनि, तिर्यगपि उद्यानपरिषत्प्रासादादीनि स्रोतांसि जन्तूनां विषयोपभोगास्पदानि व्याहृतानि=व्याख्यातानि। एतानि=लोकत्रयवर्तीनि कर्मास्रवद्वाराणि नदीस्रोतांसीव स्रोतांसि आख्यातानि=कथितानि,

आनंदोंका अनुभव भले ही न हो, परन्तु इस वेदके उदयमें बहुत भयंकर मानसिक कामपीडा होती है, उसीसे जीव कर्मोंका आस्रव किया करता है, तथा मिथ्यात्व आदि कारण तो वहां स्पष्ट हैं ही।

दूसरे–इस अधोलोकमें भवनपतियोंका निवासस्थान है, वहां विषयोंका सेवन भवनपति आदि किया करते हैं। इस अपेक्षासे अधोलोक भी कर्मास्रवके कारणसे रहित नहीं है। तिर्यग्लोक–मध्यलोकमें भी यही अवस्था है, यहां पर भी मनुष्यगति संबंधी, तिर्यञ्चगति सम्बन्धी और व्यन्तरदेव सम्बन्धी विषय सुखोंका सेवन कर्मोंके आस्रवका कारण स्पष्ट रूप है।

अथवा प्रज्ञापककी अपेक्षासे–उर्ध्वस्रोत, गिरिशिखर आदि स्थित प्रपातजल हैं, अधःस्रोत–गड्ढा, नदीतट, कन्दरा आदि हैं, तिर्यक्स्रोत–उद्यान परिषत् प्रासाद आदि हैं। ये सब वैषयिक सुखोंके स्थानभूत हैं, जीव इन स्थानोंमें वैषयिक सुख सेवन करते हैं तो जिस प्रकार नदी

આનંદોનો અનુભવ ભલે ન હોય પરંતુ આ વેદના ઉદયમાં ખૂબ જ ભયંકર માનસિક કામપીડા થાય છે. આથી જીવ કર્મોનો આસ્રવ કર્યા કરે છે. તથા મિથ્યાત્વ આદિ કારણ તો ત્યાં સ્પષ્ટ છે જ.

બીજું આ અધોલોકમાં ભવનપતિયોનું નિવાસસ્થાન છે ત્યાં વિષયોનું સેવન ભવનપતિ આદિ કરે છે, આ અપેક્ષાથી અધોલોક પણ કર્માસ્રવના કારણથી રહિત નથી. તિર્યચલોક–મધ્યલોકમાં પણ એવી જ અવસ્થા છે. ત્યાં પણ મનુષ્ય-ગતિ સંબંધી, તિર્યંચગતિ સંબંધી અને વ્યન્તરદેવ સંબંધી વિષયસુખોનાં સેવન કર્મોના આશ્રવનું કારણ સ્પષ્ટ રૂપથી છે.

અને પ્રજ્ઞાપકની અપેક્ષાથી–ઉર્ધ્વસ્રોત–ગિરિશિખર આદિ સ્થિત પ્રપાતજળ આદિ છે, અધઃ સ્રોત–ખાડો, નદીતટ, કન્દરા આદિ છે, અને તિર્યક્સ્રોત–ઉદ્યાન, પરિષત્, પ્રાસાદ આદિ છે. આ સઘળાં વૈષયિક સુખોનાં સ્થાન છે. જીવ આ સ્થાનોમાં વૈષયિક સુખ સેવન કરે છે. જે પ્રકારે નદી આદિ જળા-

पापोपादानकारणैस्त्रिविधकर्मास्रवैस्तैर्यैः पूर्वोक्तैः सङ्गं=भूतानां समासक्तिं कर्माभिष्वङ्गं वा पश्यत=यूयं प्रेक्षध्वम्, इति हेतोर्यस्मादभिष्वङ्गात् स्रोतांसि भवन्ति तस्मादागमोक्तसंयममार्गे सर्वतः=सर्वात्मना पराक्रमेथा इति पूर्वेण सम्बन्धः ॥ सू० ४॥

आदि जलाशयोंमें जलके आनेके कारणभूत स्रोत हुआ करते हैं उसी प्रकार ये सब भी कर्मोंके आनेके स्रोत–द्वार हैं।

इन तीन प्रकारके द्वारोंसे कि जिनसे उन २ लोकोंमें रहे हुए जीवों को नवीन कर्मोंका प्रतिसमय आस्रव होता रहता है–इस जीवकी आसक्ति होती रहती है, अथवा इन तीन प्रकारके कर्मोंके आस्रवके कारणोंद्वारा आगत कर्मोंसे इस जीवका सम्बन्ध होता रहता है; इसलिये शिष्योंको समझाते हुए सूत्रकार कहते हैं कि जब यह बात स्पष्ट है तो हे शिष्य! तुम ऐसा प्रयत्न करो कि जिससे तुम्हारा इन स्थानोंसे सम्पर्क न हो। इनसे संपर्क छुड़ानेका एक मात्र कारण आगममें प्रतिपादित संयममार्ग का आराधन ही है; इसलिये उस संयमकी आराधना करनेके लिये तुम सदा सर्वप्रकारसे कटिबद्ध रहो।

भावार्थ—"वारंवार संयममें प्रवृत्ति करानेका उपदेश क्यों दिया जाता है?" इस प्रकारके प्रश्नका समाधान इस सूत्रद्वारा किया गया है और वह संक्षिप्तमें यही बतलाया गया है कि संयम ही कर्मोंके आस्रव का निरोधक है, अतः उसमें ही प्रवृत्ति करनी चाहिये; इसीलिये ही

શયોમાં પાણીને આવવાનાં કારણભૂત ઝરણ થયા કરે છે આવી રીતે એ સઘળાં પણ કર્મને આવવાનાં દ્વાર છે.

આવા ત્રણ પ્રકારના દ્વારોથી કે જેનાથી તે તે લોકોમાં રહેલા જીવોને નવીન કર્મોનો પ્રતિસમય આસ્રવ થતો રહે છે–તે જીવની આસક્તિ થતી રહે છે, અથવા આ ત્રણ પ્રકારના કર્મોના આસ્રવના કારણદ્વારા આગત કર્મોથી આ જીવનો સંબંધ થઈ રહ્યો છે. આ કારણે શિષ્યોને સમજાવતાં સૂત્રકાર કહે છે કે જ્યારે આ વાત સ્પષ્ટ છે તો હે શિષ્ય! તમે એવો પ્રયત્ન કરો કે જેથી તમારો આવા સ્થાનોમાં સંપર્ક ન થાય, આનાથી સંપર્ક છોડાવાનું એક માત્ર કારણ આગમમાં પ્રતિપાદિત સંયમનું આરાધન જ છે. આ માટે સંયમની આરાધના કરવા સારૂ તમે સદા સર્વ પ્રકારથી કટિબદ્ધ રહો.

ભાવાર્થ:—'વારંવાર સંયમમાં પ્રવૃત્તિ કરાવવાનો ઉપદેશ કેમ આપવામાં આવે છે" આ પ્રકારના પ્રશ્નનું સમાધાન આ સૂત્રદ્વારા કરેલ છે. અને તે સંક્ષિપ્તમાં એ જ બતાવવામાં આવ્યું છે કે સંયમ જ કર્મોના આશ્રવનો નિરો-

अन्यमप्युपदेशमाह-‘ आवट्टं ’ इत्यादि—

मूलम्—आवट्टं तु पेहाए एत्थ विरमिज्ज वेयवी, विणइत्तु सोयं निक्खम्म एसमहं अकम्मा जाणइ पासइ पडिलेहाए नावकंखइ इह आगइं गइं परिन्नाय अच्चेइ जाइमरणस्स वट्टमग्गं वक्खायरए ॥ सू० ५ ॥

छाया—आवर्तं तु प्रेक्ष्यात्र विरमेद्वेदवित्, विनेतुं स्रोतो निष्क्रम्य एष महान् अकर्मा जानाति पश्यति प्रत्युपेक्ष्य नावकाङ्क्षतीहाऽऽगतिं गतिं परिज्ञाय अत्येति जातिमरणस्य वर्तमार्गं व्याख्यातरतः ॥ सू० ५ ॥

टीका—‘ आवर्त ’मित्यादि-अत्र=इह जिनशासने लोके वा, वेदवित्= वीतरागप्रणीताऽऽगमज्ञः, आवर्तं=मिथ्यात्वाविरत्यादिरूपं भावावर्तं, तु-शब्देन

उसमें प्रवृत्ति करनेका बार बार उपदेश दिया जाता है। लोकमें ऐसा कोई सा भी स्थान नहीं है कि जहां रह कर जीव कर्मोंके आस्रवसे रहित हो सके। उर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोक ये सब ही स्थान कर्मोंके आस्रवके कारणोंसे भरे पडे हैं। अतः एक संयमरूप ही मार्ग ऐसा है जो कर्मोंके आस्रवको रोकता है। इसलिये उसीमें प्रवृत्ति करनी चाहिये।

इसी विषय से लगती हुई और भी बात सूत्रकार कहते हैं— “ आवट्टं ” इत्यादि।

जो मनुष्य इस लोकमें अथवा इस पर्याय में वीतरागप्रणीत आगम का ज्ञाता है उसका कर्तव्य है कि वह मिथ्यात्व अविरति आदिरूप जो भाव आवर्त हैं उनसे, तथा “ तु ” इस शब्दसे गृहीत शब्दादिक विष-

---

धક છે. માટે તેમાં જ પ્રવૃત્તિ કરવી જોઈએ. આ માટે જ એવી પ્રવૃત્તિ કરવાનો ઉપદેશ વારંવાર આપવામાં આવે છે. લોકમાં એવું કોઈ પણ સ્થાન નથી કે જ્યાં રહીને જીવ કર્મોના આસ્રવથી રહિત બની શકે. ઉર્ધ્વલોક, મધ્યલોક અને અધોલોકમાં સઘળાં સ્થાન કર્મોના આશ્રવના કારણોથી ભરેલાં છે. આથી એક સંયમરૂપ માર્ગ એવો છે જે કર્મોના આશ્રવને રોકે છે. આ માટે એમાં પ્રવૃત્તિ કરવી જોઈએ.

આ વિષયને લગતી બીજી એક વાત પણ સૂત્રકાર કહે છે. “आवट्टं” ઈત્યાદિ.

જે મનુષ્ય આ લોકમાં અથવા આ પર્યાયમાં વીતરાગ પ્રણીત આગમનો જ્ઞાતા છે, તેનું કર્તવ્ય છે કે તે મિથ્યાત્વ અવિરતિ આદિરૂપ જે ભાવ આવર્ત છે તેનાથી, તથા “तु” આ શબ્દથી ગૃહીત શબ્દાદિક વિષયરૂપી આવર્તોથી; અથવા

शब्दादिविषयावर्तं कर्मबन्धावर्तं वा प्रेक्ष्य=पर्यालोच्य विरमेत्=आस्रवद्वारेभ्यो निवर्तेत, तेषां प्रतिरोधं कुर्यादित्यर्थः। किं तेन प्रतिरोधेनेत्याह–'विनेतु' मित्यादि। यः स्रोतः=कर्मणामास्रवद्वारं विनेतुम्=अपनेतुं=दूरीकर्तुं निष्क्रम्य=प्रव्रज्य एषः=अयं प्रत्यक्षभूतः, महान्=उदारचरितो महापुरुषः 'अकर्मा' न विद्यते कर्म घातिरूपं यस्य सोऽकर्मा क्षीणघातिकर्मा अत एव जानाति सामान्यरूपेण ततः पश्यति=

यरूपी आवर्त्तोंसे, अथवा कर्मबन्धरूप आवर्त्तोंसे विचारपूर्वक अवश्य २ विरक्त बने। संसारमें मिथ्यात्व अविरति आदि ये सब कर्मों के आस्रव के कारण बतलाये गये हैं। इनके द्वारा ही जीव नवीन २ कर्मोंका आस्रव और बंध किया करता है। इन आस्रवों के कारणोंको रोकनेके लिये सबसे मुख्य कर्तव्य है कि वीतरागप्रणीत आगमका ज्ञाता बनें। इस प्रकारके ज्ञातृत्वभावसे जीव यह भलीभांति समझ सकता है कि इस संसारमें रुलानेका अथवा शब्दादिक विषयकषायोंमें फंसानेका प्रधान कारण मिथ्यात्व और अविरति परिणाम हैं। इस प्रकार जब वह इन आवर्त्तोंका प्रतिरोध करनेका दृढसंकल्पी हो जाता है तब वह नियमसे इन आवर्त्तोंकी निरोधिका जिनदीक्षाको अंगीकार कर अपने मार्गको प्रशस्त बनाता हुआ आगे २ के गुणस्थानों पर चढ़ कर उदारचरित महात्मा पुरुषोंकी श्रेणिमें परिगणित होने लगता है। एक समय ऐसा भी आता है कि वह परिणामोंकी अत्यन्त निर्मलताके प्रभावसे घातिया कर्मोंका विनाशक बन अनन्त दर्शन और अनन्त ज्ञानका धारक केवलि-

કર્મબંધરૂપી આવર્તોથી વિચારપૂર્વક અવશ્ય અવશ્ય વિરક્ત બને. સંસારમાં મિથ્યાત્વ અવિરતિ આદિ જે સઘળાં કર્મોના આશ્રવનાં કારણ બતાવેલ છે એના દ્વારા જ જીવ નવીન નવીન કર્મોનો આશ્રવ અને બંધ કર્યા કરે છે. આ આસ્રવોના કારણોને રોકવા માટે પહેલું એ કર્તવ્ય છે કે વીતરાગપ્રણીત આગમનો જાણકાર બને. આ પ્રકારના જ્ઞાનના ભાવથી જીવ સારી પેઠે એ સમજી શકે છે કે આ સંસારમાં ભરમાવવાનું અને શબ્દાદિક વિષય કષાયોમાં ફસાવવાનું પ્રધાન કારણ મિથ્યાત્વ અને અવિરતિ પરિણામ છે. આ પ્રકારે જ્યારે એ આવા આવરણોનો પ્રતિરોધ કરવાનો દૃઢસંકલ્પી બને છે ત્યારે તે નિયમથી એ આવરણોના નિરોધક જીનદીક્ષાનો અંગીકાર કરી પોતાનો માર્ગ મોકળો બનાવી આગળ ને આગળ વધવા ગુણસ્થાનો પર ચઢી ઉદારચરિત મહાત્મા પુરૂષોની શ્રેણીમાં પરિગણિત બને છે. એક સમય એવો પણ આવે છે કે પરિણામોની અત્યંત નિર્મળતાના પ્રભાવથી તે ઘાતીયા કર્મોનો વિનાશક બની અનન્ત જ્ઞાન

विशेषरूपेणावबुध्यते, सामान्यज्ञानपूर्वकमेव विशेषज्ञानं जायते, न हि सामान्यरूपेणाज्ञातो घटो नीलादिघटस्वरूपं युक्तिसहस्रेणापि बोधयितुं शक्नोति। एतेन चोपयोगक्रमो दर्शितः। स एषोऽकर्मा किं विदध्यादित्याह-'प्रत्युपेक्ष्ये'त्यादि-स विदितपरमार्थः सम्यग् विचार्य नावकाङ्क्षति=वीतरागत्वान्न किमपीच्छति।

परमात्माके पदसे विभूषित हो जाता है। सूत्रस्थ-"जानाति पश्यति" ये दो क्रियापद इस बातकी सूचनापरक हैं कि परमात्मा पहिले पदार्थोंका सामान्यरूपसे अवलोकन करते हैं पश्चात् उन्हीं पदार्थों को विशेषरूपसे जानते हैं। यह मानी हुई बात है कि सामान्यज्ञानपूर्वक ही विशेष ज्ञान हुआ करता है। ऐसा नहीं है कि सामान्य ज्ञानके अभावमें विशेष ज्ञान हो जाय। जब तक पदार्थोंका सामान्य ज्ञान नहीं होगा तब तक विशेष ज्ञान नहीं हो सकता, घट जब तक सामान्य रूपसे अज्ञात बना रहेगा तब तक उसका नीलादि घट इस प्रकारके विशेष रूप से ज्ञान हो नहीं सकता। ऐसी कोई भी युक्ति नहीं है जो सामान्यरूपसे अज्ञात पदार्थका विशेषरूपसे भी ज्ञान हो जानेकी साधिका हो। इस कथनसे परमात्माके भी दर्शनउपयोग और ज्ञानउपयोग ये दोनों क्रमिक हैं यह बात प्रदर्शित होती है। परमात्मा विदितपरमार्थ होने से तथा कृतकृत्य होनेसे निस्पृह प्रवृत्तिशाली रहते हैं। उनके किसी भी वस्तुकी चाहना नहीं होती। चाहना-इच्छा यह मोहका एक भेद है, मोहके सर्वथा अभाव हो जानेसे

અને અનન્ત દર્શનના ધારક કેવલી પરમાત્માના પદથી વિભૂષિત બની જાય છે. સૂત્રસ્થ "जानाति पश्यति" આ બે ક્રિયાપદ આ વાતની સૂચના કરે છે કે પરમાત્મા પ્રથમ પદાર્થોને સામાન્ય રૂપથી અવલોકન કરે છે પછી તે પદાર્થોને વિશેષ રૂપથી જાણે છે. આ માનેલી વાત છે કે સામાન્યજ્ઞાનપૂર્વક જ વિશેષજ્ઞાન થતું રહે છે. એમ નથી કે સામાન્ય જ્ઞાનના અભાવમાં વિશેષ જ્ઞાન પ્રાપ્ત થાય. જ્યાં સુધી પદાર્થોનું સામાન્ય જ્ઞાન થશે નહીં ત્યાં સુધી વિશેષ જ્ઞાન થઇ શકવાનું નથી. ઘટ જ્યાં સુધી સામાન્યરૂપથી અજ્ઞાત બની રહેશે ત્યાં સુધી નીલ આદિ ઘટ આ પ્રકારનું વિશેષ રૂપનું જ્ઞાન થઇ શકતું નથી. એવી કોઇ પણ યુક્તિ નથી જે સામાન્યરૂપથી અજ્ઞાત પદાર્થના વિશેષરૂપથી પણ જ્ઞાન થઇ જવામાં સાધક બને. આ કથનથી પરમાત્માના દર્શનનો ઉપયોગ અને જ્ઞાનનો ઉપયોગ આ બન્ને ક્રમિક છે આ વાત પ્રદર્શિત થાય છે. પરમાત્મા વિદિતપરમાર્થ થવાથી તથા કૃતકૃત્ય થવાથી નિસ્પૃહ-પ્રવૃત્તિશાળી રહે છે. એને કોઈ પણ વસ્તુની ચાહના થતી નથી. ચાહના-ઇચ્છા એ મોહનો એક ભેદ છે.

अपि च स एव 'व्याख्यातरतः' वि=विविधप्रकारेण प्रधानपुरुषार्थत्वेनारब्ध-सूत्रार्थतदुभयत्वेन तपः संयमाचरणेन च आख्यातः=कथितो व्याख्यातो मोक्षस्तत्र रतः=तदधिगमतत्परः, आत्यन्तिकैकान्तिकाव्याबाधशिवसुखक्षायिकज्ञानदर्शनादि-युक्त इत्यर्थः, इह मनुष्यलोके स्थितः सन् जन्तूनाम् आगतिं चतुर्विधां गतिं पञ्च-विधां तत्प्रायोग्यकर्म वा परिज्ञाय-द्विविधपरिज्ञया ज्ञात्वा परिहृत्य च 'जातिमरणस्य'

इच्छाका भी वहां पर अभाव हो जाता है। अतः वीतराग होने से वे इच्छासे सर्वथा परे ही रहा करते हैं। ये व्याख्यातरत होते हैं।'व्याख्यात शब्दका अर्थ मोक्ष है। क्यों कि वही प्रधान पुरुषार्थरूपसे कहा गया है। उसी मोक्ष पुरुषार्थको प्रतिपादन करने एवं उसकी प्राप्तिके निमित्त ही प्रभुने सूत्र, अर्थ और सूत्रार्थ इस रूपसे आगमकी प्ररूपणा की है, तथा इसीके निमित्त तप और संयमके आचरण करनेका उपदेश है। उसमें ये रत रहते हैं।

भावार्थ—कर्मोंके सर्वथा अभावसे होनेवाली, परमशुद्ध दशाका नाम ही मुक्ति है और यह अवस्था बाधारहितसुखविशिष्ट है, क्षायिक ज्ञान और क्षायिक दर्शनका सदा इसमें प्रकाश रहता है, ऐसी मुक्त अवस्थासे परमात्मा युक्त होते हैं। परमात्मदशा ही मुक्तिदशा है, उनसे भिन्न वह अवस्था नहीं है ये परमात्मा जीवन्मुक्त अवस्थामें संसारमें रहते हुए भी समस्त संसारी जीवोंकी चतुर्विध आगति और पांच प्रकारकी गति अथवा उसके उपार्जन योग्य कर्मोंको द्विविध परिज्ञासे जानकर और

મોહનો સર્વથા અભાવ થવાથી ઇચ્છાનો પણ ત્યાં અભાવ થઈ જાય છે, આથી વીતરાગ હોવાથી તે ઇચ્છાથી સર્વથા દૂરજ રહ્યા કરે છે. એ વ્યાખ્યાતરત (મોક્ષગામી) બને છે. વ્યાખ્યાત શબ્દનો અર્થ મોક્ષ છે, કેમ કે એ પ્રધાન-પુરૂષાર્થ-રૂપથી કહેવાયેલ છે. એ મોક્ષ પુરૂષાર્થને પ્રતિપાદન કરવા અને તેની પ્રાપ્તિ નિમિત્તજ પ્રભુએ સૂત્ર, અર્થ અને સૂત્રાર્થ એ રૂપથી આગમની પ્રરૂપણા કરેલ છે. અને આને નિમિત્ત તપ અને સંયમનું આચરણ કરવાનો ઉપદેશ છે. આમાં એ રત રહે છે.

ભાવાર્થ—કર્મોના સર્વથા અભાવથી થવાવાળી પરમશુદ્ધ દશાનું નામ જ મુક્તિ છે, અને આ અવસ્થા બાધારહિત-સુખ-વિશિષ્ટ છે, ક્ષાયિક જ્ઞાન અને ક્ષાયિક દર્શનનો સદા આમાં પ્રકાશ રહે છે, પરમાત્મા આવી મુક્ત અવસ્થાથી યુક્ત બને છે. પરમાત્મદશા જ મુક્તદશા છે, એનાથી ભિન્ન એ અવસ્થા નથી. આ પરમાત્મા જીવન્મુક્ત અવસ્થામાં સંસારમાં રહેવા છતાં પણ સમસ્ત સંસારી જીવોની ચતુર્વિધ આગતિ અને પાંચ પ્રકારની ગતિ અથવા એના ઉપાર્જનયોગ્ય

जातिश्च=जन्म च मरणं च-जातिमरणं तस्य, वर्तमार्गं गत्यागतिरूपपरिभ्रमणमार्गं विकल्पितसंसारेष्टवियोगानिष्टसंयोग-दारिद्र्य -दौर्भाग्य-शारीर-मानसाद्यनेक-दुःखात्मकं संसारस्रोतस्तन्निदानं कर्म वा अत्येति=अतिक्रामति उल्लङ्घयतीत्यर्थः, वाङ्मनसयोरविषयो लोकाग्रे शाश्वतः सिद्धो भवतीति भावः ॥ सू० ५ ॥

तस्य स्वरूपं दर्शयति-'सव्वे' इत्यादि—

उन्हें छोड़कर इस संसारस्रोतसे कि जो जन्म और मरणका स्थान है, तथा जिसमें इष्टवियोग और अनिष्ट योग बना रहता है, दरिद्रताका जहां निवास रहता है, दुर्भाग्य पाप जहां पर अपना प्रभाव जमाए हुए पड़ा है, शारीरिक एवं मानसिक आदि दुःखोंकी परम्परा इस जीवनको जहां पीसती रहती है, इन सर्व से परे हो जाते हैं। जब तक अघातिया कर्मोंका उदय उनके रहता है तब तक यद्यपि वे संसारमें रहते हैं; परन्तु फिर भी वे उस संसारकी परंपरावर्धक कर्मोंके उपार्जन से रहित ही रहते हैं। घातिया कर्मोंके सर्वथा प्रक्षय हो जाने से वे फिर से संसारकी प्राप्ति कराने वाले कर्मोंके चक्करमें नहीं पड़ते हैं। अघातिया कर्मोंके विनष्ट होते ही मुक्तिस्थानमें जा विराजते हैं। यह स्थान लोकके अग्रभागमें स्थित है उससे आगे धर्मास्तिकाय का अभाव होने से वे वहींपर ठहर जाते हैं। इसी अवस्थाका नाम सिद्ध दशा है। यह संसारी जीवोंके वचन के अगोचर और मनसे भी विचारमें नहीं आ सके ऐसी है ॥ सू०५ ॥

इसी अवस्थाके स्वरूपको सूत्रकार कहते हैं-"सव्वे सरा" इत्यादि।

કર્મોને વિવિધ પરિજ્ઞાથી જાણી અને એને પ્રત્યાખ્યાન પરિજ્ઞાથી છોડી આ સંસાર-સ્રોતથી કે જે જન્મ અને મરણનું સ્થાન છે, અને જેમાં ઇષ્ટવિયોગ અને અનિષ્ટ સંયોગ થતો રહે છે, દરિદ્રતાનો જ્યાં નિવાસ રહે છે, દુર્ભાગ્ય પાપ જ્યાં પોતાનો પ્રભાવ જમાવી બેઠા છે, શારીરિક અને માનસિક આદિ દુઃખોની પરંપરા જ્યાં આ જીવનને પીસતી રહે છે, આ સર્વથી દૂર થઈ જાય છે. જ્યાં સુધી અઘાતિયા કર્મનો ઉદય એને રહે છે ત્યાં સુધી કદાચ તે સંસારમાં રહે છતાં પણ તે સંસારના પરંપરાવર્ધક કર્મોના ઉપાર્જનથી રહિત જ રહે છે. ઘાતિયા કર્મોનો સર્વથા ક્ષય થઈ જવાથી એ ફરી સંસારની પ્રાપ્તિ કરાવવાવાળા કર્મોના ચક્કરમાં પડતા નથી. અઘાતીયા કર્મોનો વિનષ્ટ થવાથી મુક્તિ સ્થાનમાં જઈ વિરાજમાન બને છે. આ સ્થાન લોકના અગ્ર ભાગમાં સ્થિત છે. એથી આગળ ધર્માસ્તિકાયનો અભાવ હોવાથી તે ત્યાં રોકાઈ જાય છે. આ અવસ્થાનું નામ સિદ્ધદશા છે. આ સંસારી જીવોના વચનથી અગોચર અને મનથી પણ વિચારમાં ન આવી શકે એવી છે. (સૂ૦ ૫)

આ અવસ્થાના સ્વરૂપને સૂત્રકાર કહે છે-"सव्वे सरा" ઇત્યાદિ!

मूलम्—सव्वे सरा नियट्टंति, तक्का तत्थ न विज्जइ, मई तत्थ न गाहिया, ओए अप्पइट्ठाणस्स खेयन्ने। से न दीहे, न हस्से, न वट्टे, न तंसे, न चउरंसे, न परिमंडले, न किण्हे, न नीले, न लोहिए, न हालिद्दे, न सुक्किल्ले, न सुरभिगंधे, न दुरभिगंधे, न तित्ते, न कडुए, न कसाए, न अंबिले, न कक्खडे, न मउए, न गरुए, न लहुए, न सीए, न उण्हे, न निद्धे, न लुक्खे, न काऊ, न रुहे, न संगे, न इत्थी, न पुरिसे, न अन्नहा, परिन्ने, सन्ने, उवमा न विज्जए, अरूवी सत्ता। अपयस्स पयं नत्थि ॥ सू० ६॥

छाया—सर्वे स्वरा निवर्तन्ते, तर्को यत्र न विद्यते, मतिस्तत्र न ग्राहिका, ओजः अप्रतिष्ठानस्य खेदज्ञः। स न दीर्घो, न ह्रस्वो, न वृत्तो, न त्र्यस्रो, न चतुरस्रो, न परिमण्डलो, न कृष्णो, न नीलो, न लोहितो, न हारिद्रो, न शुक्लो, न सुरभिगन्धो, न दुरभिगन्धो, न तिक्तो, न कटुको, न कषायो, नाम्लो, न मधुरो, न कर्कशो, न मृदुः, न गुरुः, न लघुः, न शीतो, नोष्णो, न स्निग्धो, न रूक्षो, न कापोतः, न रुहो, न सङ्गो, न स्त्री, न पुरुषो, नान्यथा, परिज्ञः, संज्ञः, उपमा न विद्यते, अरूपिणी सत्ता। अपदस्य पदं नास्ति ॥ सू० ६ ॥

टीका—'सर्व' इत्यादि—यत्र सिद्धावस्थायां सर्वे=निरवशेषाः स्वराः=ध्वनयो निवर्तन्ते-प्रतिपाद्य-प्रतिपादकसम्बन्धा न घटन्ते, शब्दादिविषयाभिधेये सति वाच्य-वाचकभावसम्बन्धविषयस्यावश्यम्भावात्। न च तस्यामवस्थायां शब्दादयः प्रवृत्ति-निमित्ततामुपलभन्त इत्याशयः। न तत्र तर्कस्यावसरोऽपीत्याह—'तर्क' इत्यादि—

सिद्धदशाका वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि इस सिद्ध दशामें समस्त स्वर-ध्वनियां प्रतिपाद्यप्रतिपादकरूप संबंधसे पर रहती हैं। अर्थात्-इस सिद्ध अवस्थाका पूर्ण-स्वरूप-वर्णन किसी भी शब्दद्वारा नहीं हो सकता है। जो पदार्थ शब्दादिक का विषयभूत हुआ करता है वहीं पर वाच्यवाचकभाव संबंधकी घटना घटित होती है, सिद्धदशा जो शब्दके अगोचर है उसमें फिर वाच्यवाचकभाव संबंध घटित भी

સિદ્ધદશાનું વર્ણન કરતાં સૂત્રકાર કહે છે કે આ સિદ્ધદશામાં સમસ્ત સ્વરો-ધ્વનીઓ પ્રતિપાદ્ય-પ્રતિપાદકરૂપ સંબંધથી દૂર રહે છે. અર્થાત્-આ સિદ્ધ અવસ્થાના પૂર્ણ સ્વરૂપનું વર્ણન કોઇપણ શબ્દોદ્વારા થઈ શકતું નથી. જે પદાર્થ શબ્દાદિકના વિષયભૂત થયા કરે છે ત્યાં વાચ્યવાચક-ભાવ-સંબંધની ઘટના ઘટિત હોય છે. સિદ્ધદશા જે શબ્દથી અગોચર છે એમાં પછી વાચ્યવાચકભાવસંબંધ ઘટિત પણ કેમ થઇ શકે. ઘટ અર્થમાં ઘટ શબ્દની પ્રવૃત્તિનિમિત્ત ઘટનરૂપ ક્રિયા છે. એટલે ઘટ

अपि च तर्कः=ऊहापोहः पदार्थविशेषाध्यवसाय इत्यर्थः 'एवं चेद् एवं भवेद्' इत्याकारकः कल्पनाविशेषो न विद्यते, शब्दादिविषयस्यावसर एव तर्कस्यावसरो भवति तदभावे कुतस्तर्कसम्भवः, एवं चेद् एवं स्यादित्युभयत्रापि शब्दविषयस्यै-

कैसे हो सकता है। घट अर्थमें घट शब्दकी प्रवृत्तिका निमित्त घटनरूप क्रिया है, अतः घट शब्द घट अर्थका प्रतिपादक होनेसे उनमें परस्पर वाच्यवाचकसंबंध सुघटित हो जाता है। इस प्रकार इस दशामें प्रवृत्ति के निमित्तभूत शब्दादिक उपलब्ध नहीं होते; कारण कि जो भी शब्द वहां पर प्रवृत्त होंगे वे उससे संपूर्ण धर्मका—स्वरूपका युगपत् प्रतिपादन नहीं कर सकते हैं। ध्वनियां क्रमिक होती हैं, और क्रम २ से ही वस्तु के स्वरूपका प्रतिपादन करती हैं। जिस स्वरूपका प्रतिपादन उनके द्वारा होता है वही स्वरूप उसका नहीं है, वह तो उसका प्रतिपाद्य विषय एकदेश पड़ता है, उतने स्वरूपमात्र तो वह वस्तु है नहीं; अतः अनंत-धर्मात्मक होनेसे उसका एकधर्ममुखेन सम्पूर्ण रूपसे कथन शब्दादि द्वारा हो नहीं सकता। प्रमाणसे हो जावेगा ? तो इस प्रकारकी आशङ्का उत्तर यही है कि प्रमाण स्वानुभवगम्य है, वह वचनसे नहीं कहा जा सकता है, जो वचनसे कहा जाता है वह नयका विषय पड़ता है। इस अपेक्षासे यहां पर सिद्धदशाको अवाच्य कहा है। वैसे तो सिद्ध अवस्थाके स्वरूपका वर्णन शास्त्रकारोंने जितना भी हो सका है किया ही है; परन्तु यहां पर जो उसे अवक्तव्य कहा है उसका भाव सिर्फ

શબ્દ ઘટ અર્થનો પ્રતિપાદક હોવાથી એનામાં પરસ્પર વાચ્યવાચક સંબંધ સુઘટિત બને છે. આ પ્રકારે આ દશામાં પ્રવૃત્તિના નિમિત્તભૂત શબ્દાદિક ઉપ-લબ્ધ નથી બનતા. કારણ કે જે પણ શબ્દ ત્યાં પ્રવૃત્ત હોય તે એના સંપૂર્ણ ધર્મના સ્વરૂપનું યુગપત્ (એકીસાથે) પ્રતિપાદન કરી શકતા નથી. ધ્વનીયો ક્રમ-વાર થાય છે અને ક્રમ ક્રમથી વસ્તુના સ્વરૂપનું પ્રતિપાદન કરે છે. જે સ્વરૂપનું પ્રતિપાદન એના દ્વારા થાય છે એ જ આ સ્વરૂપ એનું નથી હોતું, એ તો એના પ્રતિપાદ્ય વિષય એકદેશ પડે છે. તાવત્સ્વરૂપ માત્ર તો એ વસ્તુ નથી, આથી અનંત ધર્માત્મક હોવાથી એનું સંપૂર્ણ રૂપથી કથન એક ધર્મવડે શબ્દાદિદ્વારા થઇ શકતું નથી. પ્રમાણુથી થઇ જશે?—આ પ્રકારની આશંકાનો ઉત્તર આ છે કે પ્રમાણુનું કથન સ્વાનુભવગમ્ય છે, એ વચનથી કહેવાઈ શકતું નથી. જે વચનથી કહ્યું જાય છે તે નયરૂપ બને છે. આ અપેક્ષાથી અહિં સિદ્ધદશાને અવાચ્ય કહેલ છે. એમ તો સિદ્ધ અવસ્થાના સ્વરૂપનું વર્ણન શાસ્ત્રકારોથી જેટલું પણ બન્યું છે, તે કરેલ છે પરંતુ અહીં તેને અવ્યક્ત

इतना ही है कि पदार्थका वास्तविक समस्त स्वरूप शब्दोंद्वारा प्रतिपादित हो ही नहीं सकता! जितना स्वरूप केवलियोंने अपने केवलज्ञानसे पदार्थका जाना है उससे अनन्तवें भागकी उन्होंने अपनी ध्वनिद्वारा परीषदाके बीचमें प्ररूपणा की है, जितने अंशकी प्ररूपणा की है उससे अनन्तवें भागकी धारणा गणधरोंके ज्ञानमें हुई है। जितनी धारणा हुई है उससे भी अनन्तवें भागकी उन्होंने रचना की है। इस अपेक्षासे भी सिद्ध अवस्थाके समस्त स्वरूपका वर्णन शब्दोंद्वारा नहीं हो सकता! इसीलिये उस सिद्ध दशामें तर्कको भी स्थान नहीं है। तर्क शब्दका अर्थ ऊहापोह है। ऊहापोह उसीमें होता है जो शब्दका विषय होता है। शब्दके अविषयभूतमें तर्क नहीं होता। इसी ख्याल से टीकाकारका यह कथन कि "पदार्थविशेषाध्यवसायः" पदार्थ विशेषका अध्यवसाय स्वरूप तर्क वहां नहीं होता सर्वथा सत्य है। यदि यह विषय ऐसा है तो ऐसा होगा" इस प्रकारका कल्पनाविशेष वहीं पर होता है जो शब्दका विषयभूत होता है। यह "एवं चेत् एवं भवेत्" कल्पनाविशेष स्वयं शब्दमय है, और यही तर्कका आकार है, अतः इस प्रकारके तर्ककी प्रवृत्ति उस अवस्थामें नहीं होती, कारण कि "एवं चेत् एवं स्यात्" इन दोनों जगहों में शब्दविषय-पदार्थका ही अवलम्बन होता

કહેલ છે એનો ભાવ ફકત એટલોજ છે કે પદાર્થના વાસ્તવિક સમસ્ત સ્વરૂપ શબ્દોદ્વારા પ્રતિપાદિત થઈજ ન શકે. કેવલીઓએ પોતાના કેવલજ્ઞાનથી પદાર્થનું જે સ્વરૂપ જાણેલ છે, એના અનન્તમા ભાગની એમણે પોતાના દિવ્યધ્વનિ દ્વારા સભા વચ્ચે પ્રરૂપણા કરી છે. જેટલા અંશની પ્રરૂપણા કરી છે એનાથી અનન્તમા ભાગની ધારણા ગણધરોના જ્ઞાનમાં થઈ છે. જેટલી ધારણા થઈ છે એથી અનન્તમા ભાગની એમણે રચના કરી છે. આ અપેક્ષાથી પણ સિદ્ધ અવસ્થાનું સમસ્ત રૂપનું વર્ણન શબ્દોદ્વારા નથી થઈ શકતું. આ કારણે એ સિદ્ધદશામાં તર્કને સ્થાન નથી. તર્ક શબ્દનો અર્થ ઉહાપોહ થાય છે. ઉહાપોહ એમાં હોય છે જે શબ્દનો વિષય હોય છે. શબ્દના અવિષય ભૂતમાં તર્ક નથી હોતો. આ કારણેજ ટીકાકારનું એ કથન છે કે "पदार्थविशेषोऽध्यवसायः" પદાર્થવિશેષના અધ્યવસાય સ્વરૂપ તર્ક ત્યાં થતો નથી એ સર્વથા સત્ય છે. 'આ વિષય એવો છે તો એમ હશે, આ પ્રકારનો કલ્પનાવિશેષ એ સ્થળે થાય છે જે શબ્દનો વિષયભૂત હોય છે. આ "एवं चेत् एवं भवेत्" કલ્પનાવિશેષ સ્વયં શબ્દમય છે અને એ જ તર્કનો આકાર છે. આથી આ પ્રકારના તર્કની પ્રવૃત્તિ એ અવસ્થામાં નથી થતી. કારણ કે-"एवं चेत् एवं स्यात्" આ બન્ને જગ્યાએ શબ્દવિષય-

चावलम्बनात्, मूले 'तक्का' इत्यत्र प्राकृतत्वात् स्त्रीत्वम्। तर्काभावे हेतुमाह –'मति 'रित्यादि–तत्र सिद्धावस्थायां 'मतिः' मननं मतिः=मनोव्यापारः पदार्थचिन्तनरूपा, सा चौत्पत्तिक्यादिभेदाच्चतुर्विधा; न ग्राहिका=नानुभावयित्री,

---

है। इसी विषयको विशेष रीतिसे स्पष्ट करनेके लिये सूत्रकार–"मतिस्तत्र न ग्राहिका" कहते हैं। मतिः–मननं मतिः–विचार करनेका नाम मति है। यह मतिरूप मानसिक व्यापार कि जिसमें पदार्थोंके चिन्तवनके प्रति मानसिक धारा दौड़ती रहती है तथा जिसके औत्पत्तिकी आदि ४ चार भेद हैं, उस सिद्ध दशाका अनुभव करनेवाला नहीं हो सकता। क्यों कि उस दशामें संकल्पविकल्परूप कल्पनामात्रके लिये अवसर ही नहीं है। जो कर्मोंसे युक्त–लिप्त हैं, ऐसी आत्माओंको मुक्तिका लाभ नहीं होता–इस बातको बतानेके निमित्त सूत्रकार "ओजः अप्रतिष्ठानस्य खेदज्ञः" कहते हैं। जो सकल कर्मों के मलसे रहित हो चुके हैं वे ही आत्मा मोक्षसुखका अनुभव करनेवाले होते हैं, अर्थात् कर्ममलीमस आत्मा उस सुखसे सदा वंचित ही रहा करते हैं। अप्रतिष्ठान शब्दका अर्थ मोक्ष है। क्यों कि औदारिक आदि शरीरोंका अथवा कर्मोंका सद्भाव इस अवस्थामें नहीं रहता है। इस मोक्षका कि जो अव्याबाधसुखस्वरूप है कर्मोंसे मलिन आत्मा अनुभव भी

પદાર્થનું જ અવલમ્બન થાય છે. આ વિષયને વિશેષ રીતથી સ્પષ્ટ કરવા માટે સૂત્રકાર–"मतिस्तत्र न ग्राहिका" કહે છે. मतिः–मननं मतिः–વિચાર કરવાનું નામ મતિ છે–આ મતિરૂપ માનસિક વ્યાપાર કે જેમાં પદાર્થોના ચિન્તવન તરફ માનસિક ધારા દોડતી રહે છે તથા જેના ઔત્પત્તિકી આદિ ચાર ભેદ છે એ સિદ્ધદશાનો અનુભવ કરવાવાળી બની શકતી નથી, કેમ કે તેવી દશામાં સંકલ્પવિકલ્પરૂપ કલ્પનામાત્રનો પણ અવસર નથી. જે કર્મોથી યુક્ત છે તેવા આત્માઓને મુક્તિનો લાભ થતો નથી–આ વાત બતાવવા નિમિત્ત સૂત્રકાર "ओजः" ઈત્યાદિ! કહે છે. જે સકલ કર્મના મળથી રહિત બનેલ છે એવા આત્માઓ મોક્ષ સુખનો અનુભવ કરનાર હોય છે. અર્થાત્–કર્મના મળથી બંધાએલ આત્માઓ એ સુખથી સદા વંચિત જ રહ્યા કરે છે. અપ્રતિષ્ઠાન શબ્દનો અર્થ મોક્ષ છે. કેમ કે ઔદારિક આદિ શરીરોનો અને કર્મોનો સદ્ભાવ એ અવસ્થામાં રહેતો નથી. આ મોક્ષ કે જે અવ્યાબાધ–સુખ–સ્વરૂપ છે તેનો અનુભવ કર્મોથી મલિન આત્માઓ કઈ રીતે કરી શકે. અવ્યાબાધ-

तत्र संकल्प – विकल्प – कल्पनामात्रस्यानवसरात् । कर्मसमन्वितस्य मोक्षगमनं न भवतीति दर्शयति—'ओज' इति । ओजः=ओजोरूपः सकलकर्ममलरहितत्वेन ज्योतिःस्वरूपः, अपि च अप्रतिष्ठानस्य न विद्यते प्रतिष्ठानमौदारिकादिशरीरस्य कर्मणां वा अवस्थितिर्यत्र सोऽप्रतिष्ठानो मोक्षस्तस्य मोक्षसुखस्येत्यर्थः, खेदज्ञः=अनुभावुकः, तत्र विमलज्ञानसद्भावात् । अत्र खेदशब्देनाऽनुभवरूपोऽर्थो गृह्यते । किञ्च तदा स दीर्घो=लम्बो न, ह्रस्वो=वामनो न, वृत्तः=वर्तुलाकारो न, त्र्यस्रः=त्रिकोणो न, चतुरस्रः=चतुष्कोणो न, परिमण्डलः=संस्थानविशेषवान् न, उपलक्षणात् सकलसंस्थानवर्जितः; एतच्च परिमाणमवलम्ब्य प्रोक्तम्, अथ वर्णमाश्रित्य कथयति—'न कृष्ण' इत्यादि—कृष्णो न, नीलो न, लोहितः=रक्तो न, हारिद्रः=पीतो न, शुक्लः=श्वेतो न; गन्धमाश्रित्योच्यते 'न सुरभी' त्यादि—

कैसे कर सकते हैं। अव्याबाध सुखरूप मोक्षका अनुभव विना निर्मल ज्ञानके नहीं हो सकता। संसारी आत्माओं–मलिन जीवोंके इस निर्मल बोधकी प्रकटता है ही नहीं। इसकी प्रकटता तो उन्हींके होती है जो कर्ममल–कलंकसे निर्मुक्त हो चुके हैं। खेदज्ञ–शब्द घटक खेदका अर्थ यहांपर प्रकरणसे अनुभव रूप ग्रहण किया गया है। उस मुक्ति अवस्थामें रहने वाला आत्मा न दीर्घ–विस्तृत होता है, न लम्बा होता है, न ह्रस्व–छोटा होता है, न गोल होता है, न त्रिकोण होता है–न चतुष्कोण होता है, न परिमण्डल–गोल आकारवाला होता है, उपलक्षणसे और भी जितने आकार होते हैं उन आकारवाला भी नहीं होता है। यह आकार विषयके अभावका कथन परिमाणको ले कर किया है। अब वर्णको लेकर कथन करते हुए सूत्रकार कहते हैं–कि मुक्तिमें रहा हुआ आत्मा न काला होता है, न नीला होता है, न लाल होता है, न

સુખરૂપ મોક્ષનો અનુભવ નિર્મળ જ્ઞાન વિના થતો નથી. સંસારી આત્માઓ–મલિન જીવોને આ નિર્મળ બોધની પ્રગટતા છે જ નહિ. આની પ્રગટતા તો એને જ થાય છે જે કર્મમળકલંકથી નિર્મુક્ત થયા છે. ખેદજ્ઞ શબ્દમાં સ્થિત ખેદ શબ્દનો અર્થ અહિં પ્રકરણથી અનુભવરૂપ ગ્રહણ કરેલ છે. એવી મુક્તિ અવસ્થામાં રહેવાવાળા આત્મા ન દીર્ઘ–વિસ્તૃત હોય છે, ન લાંબા હોય છે, ન નાના હોય છે, ન ગોળ હોય છે, ન ત્રિકોણ હોય છે, ન ચતુષ્કોણ હોય છે, ન પરિમંડળ એટલે ગોળાકારવાળા હોય છે, ઉપલક્ષણથી જેટલા પણ બીજા આકાર હોય છે તે આકારવાળા પણ નથી. આ આકાર–વિષયના અભાવનું કથન પરિણામને લઇ કહેલ છે, હવે વર્ણ આશ્રયે સૂત્રકાર કહે છે કે મુક્તિમાં રહેલ આત્મા ન કાળા હોય છે, ન લીલા હોય છે, ન લાલ હોય છે, ન પીળા હોય છે, અને ન તો સફેદ હોય છે, ત્યાં વિશુદ્ધ આત્મા

सुरभिगन्धः=सुगन्धवान् न, दुरभिगन्धः=दुर्गन्धवान् नः रसमाश्रित्य कथ्यते 'न तिक्त' इत्यादि–तिक्तः=मरीचादिवत् न, कटुको निम्बादिवद् न, कषायः–हरीतक्यादिवद् न, आम्लः=अम्लिकावद् न, मधुरो नः स्पर्शं निषेधयति–न कर्कश' इत्यादि–कर्कशः=कठिनो न, मृदुः=कोमलो न, लघुर्न, गुरुर्न, शीतो न, उष्णो न, स्निग्धः=चिक्कणो न, रूक्षः=रसरहितोऽपि न, कापोतः=कापोतलेश्यायुक्तो न, मध्यग्रहणादाद्यन्तग्रहणम्, तेन सकललेश्यारहित इत्यर्थः, यद्वा–कायः=कायवान् न,

न पीला होता है, और न सफेद ही होता है। वहां पर विशुद्ध आत्मा न अच्छी गंधवाला होता है, न दुर्गंधवाला होता है, न मिर्च आदिकी तरह तिक्त रसवाला होता है, निम्ब–नीम आदिकी तरह न कडुक रस वाला होता है, हरड आदिकी तरह न कषाय रसवाला होता है, इमली आदिकी तरह न आम्ल रसवाला होता है और न शक्करकी तरह मीठे रसवाला ही होता है। इसी तरह वहां न कठोर स्पर्श होता है, न कोमल स्पर्श होता है, न लघु स्पर्श होता है, न भारी स्पर्श होता है, न शीत स्पर्श होता है, न उष्ण स्पर्श होता है, न स्निग्ध स्पर्श होता है, न चिकना स्पर्श होता है और न रूक्ष स्पर्श होता है। कापोतलेश्या भी वहां नहीं होती है। लेश्याओंमें कापोतलेश्या यह मध्यमें आई है, इस के ग्रहण से आदि और अन्तकी लेश्याओंका भी ग्रहण हो जाता है। इसलिये यह समझना चाहिये कि वहांपर छओं लेश्याओंका सद्भाव नहीं है। वहां औदारिक आदि पांच शरीरोंमें से किसी भी शरीरका सद्भाव न

ન સારી સુગંધવાળા હોય છે, ન દુર્ગંધવાળા હોય છે, મરચાં ઈત્યાદિની માફક ન તીખા રસવાળા હોય છે, લીમડા વિ. ની માફક ન કડવા રસવાળા હોય છે, હરડે ઈત્યાદિની માફક ન કષાયરસવાળા હોય છે, આમલી ઈત્યાદિની માફક ન ખાટા રસવાળા હોય છે. અને સાકરની માફક ન તો મીઠા રસવાળા હોય છે. આજ રીતે ત્યાં ન કઠોર સ્પર્શ હોય છે, ન કોમળ સ્પર્શ હોય છે, ન લઘુ સ્પર્શ હોય છે, ન ભારી સ્પર્શ હોય છે, ન શીતળ સ્પર્શ હોય છે, ન ઉષ્ણ સ્પર્શ હોય છે, ન સ્નિગ્ધ સ્પર્શ હોય છે, ન ચીકણો સ્પર્શ હોય છે, અને ન તો લુખો સ્પર્શ હોય છે. કાપોતલેશ્યા પણ ત્યાં નથી થતી. લેશ્યાઓમાં કાપોતલેશ્યા મધ્યમાં આવેલ હોવાથી એના ગ્રહણથી આદિ અને અન્તની લેશ્યાઓનું પણ ગ્રહણ થાય છે. જેથી એ સમજવું જોઈએ કે એ સ્થળે છએ લેશ્યાઓનો સદ્ભાવ નથી. એ ઔદારિક આદિ પાંચ શરીરોમાંથી કોઈ પણ શરીરનો સદ્-ભાવ ન હોવાથી તેઓ અકાય બને છે. કર્મરૂપી બીજનો સર્વથા પ્રક્ષય થઈ

न रुहः, रोहति=पुनः-पुनः प्रादुर्भवतीति रुहः=उत्पत्तिमान् न, कर्मबीजाङ्कुरस्य सर्वथा दग्धत्वात्, अत एव न 'सङ्गः'=सङ्गोऽस्यास्तीति सङ्गः=संयोगवान् न, सर्वसङ्गरहित इत्यर्थः। न स्त्री, न पुरुषः, नान्यथा=स्त्रीपुरुषत्वाभावान्नपुंसकोऽपि नेत्यर्थः। निषेधवाक्यैरत्र वाङ्मनसयोरगोचरतया केनापि रूपेण वक्तुमशक्य इति प्रतिपादितम्।

होने से वे अकाय होते हैं। कर्मरूपी बीजके सर्वथा प्रक्षय हो जानेसे वे फिर मुक्तिसे इस संसारमें पीछे लौट कर नहीं आते हैं। जब उन्हें पुनः संसार दशा ही नहीं होती है तो इससे यह भी स्पष्ट सिद्ध है कि वे किसी भी प्रकारके संयोगसे लिप्त भी नहीं होते हैं। उस अवस्थामें समस्त संयोगका उनके अभाव रहता है। उनके न स्त्रीलिङ्गका, न पुरुषलिङ्गका, और न स्त्री पुरुषके अभावस्वरूप नपुंसक लिङ्गका ही सद्भाव होता है, वे अलिङ्ग होते हैं। यहां पर रूपादिक पौद्गलिक धर्मोंके निषेध से यह बात जानी जाती है कि वे किस रूपमें हैं यह हम छद्मस्थ न वचन से कह सकते हैं और न मनसे ही विचार सकते हैं। उनका स्वरूप छद्मस्थ जीवोंके मन और वचनके अगोचर है। जब यह बात है तो हम किसी भी स्वरूपसे उन्हें नहीं कह सकते हैं। वाणी और मन ये दोनों ही वस्तुएँ पौद्गलिक हैं, पौद्गलिकोंसे अपौद्गलिकका न पूर्णरूपसे वर्णन ही हो सकता है और न स्पष्टरूपसे विचार ही हो सकता है। शुद्ध स्वरूपको

જવાથી તે મુક્તિથી આ સંસારમાં ફરી પાછા આવતા નથી. જ્યારે તેઓને ફરી સંસારદશા નથી થતી તો એથી એ સ્પષ્ટ છે કે એઓ કોઈ પણ પ્રકારના સંયોગથી લિપ્ત થતા નથી. તે અવસ્થામાં સમસ્ત સંયોગનો વિયોગ રહે છે. તેને ન સ્ત્રીલિંગનો, ન પુરૂષલિંગનો અને ન સ્ત્રી પુરૂષના અભાવ સ્વરૂપ નપુંસક લિંગનો સદ્ભાવ બને છે. તેઓ અલિંગ હોય છે. આ સ્થળે રૂપાદિક પૌદ્ગલિક ધર્મોના નિષેધથી એ વાત જણાય છે કે તેઓ કયા રૂપમાં છે તે, અમે છદ્મસ્થ છીએ માટે વચનથી ન કહી શકીએ અને ન તો મનથી વિચારી શકીએ. એનાં સ્વરૂપ છદ્મસ્થ જીવોના મન અને વચનથી અગોચર છે. જ્યારે આ વાત છે તો અમે કોઈ પણ સ્વરૂપથી એને ઓળખી શકતા નથી. વાણી અને મન બન્ને વસ્તુઓ પૌદ્ગલિક છે, પૌદ્ગલિકોથી અપૌદ્ગલિકોનું પૂર્ણ રૂપથી વર્ણન થઇ શકતું નથી. અને ન તો સ્પષ્ટરૂપથી વિચાર પણ થઈ શકે છે. શુદ્ધ સ્વરૂપને જાણવા માટે શુદ્ધ અનુભવ જ કામ આપે છે. એટલે જેનું વાણીથી વર્ણન અને

किन्तु परिज्ञः=सकलात्मप्रदेशैः सकलवस्तुतत्त्वस्य ज्ञाता, एवं 'संज्ञः' सं=सम्यग् जानाति=पश्यतीति संज्ञः=अनन्तज्ञान-दर्शनादिसमन्वित इत्यर्थः, तत्स्वरूपमुपमयाऽपि ज्ञातुमशक्यमित्याह-'उपमे'त्यादि-उपमानम्=उपमा=सादृश्यं न तत्र

जाननेके लिये शुद्ध अनुभव ही काम देता है। अतः जिसका वाणीसे वर्णन और मनसे विचार तक भी नहीं हो सकता है उसका कथन भी कैसे किया जा सकता है यह स्वयं एक अनुभवगम्य बात है।

वे सिद्ध भगवान् केवलज्ञानके आवारक (ढकन) ज्ञानावरणीय कर्मके सर्वथा विनाश हो जानेसे विशुद्ध समस्त आत्मप्रदेशों के द्वारा सकल वस्तुतत्त्वके ज्ञाता हैं, इससे उनका ज्ञान अनन्त है यह बात स्पष्ट हो जाती है। क्यों कि अनन्त पदार्थोंको विषय करनेवाला ज्ञान अनन्त हुए विना नहीं रह सकता, तथा अनंतज्ञानके हुए विना उन अनंत पदार्थोंका हस्तामलकवत् साक्षात्कार भी नहीं हो सकता। ज्ञानके पहिले दर्शन होता है, विना दर्शनके ज्ञानका सद्भाव नहीं माना गया हैं, इस लिये जब उनके ज्ञानमें अनन्तता है तो इससे यह भी युक्तियुक्त है कि उनका दर्शन भी अनंत है। इसी बातका बोधन "संज्ञ" इस पदसे सूत्रकारने किया है।

शङ्का—जिस प्रकार सांसारिक पदार्थोंका वर्णन किसी पदार्थकी उपमा देकर करनेमें आता है, उसी प्रकारसे सिद्धोंका वर्णन भी आप हमें उपमा दे कर समझा दीजिये?

મનથી વિચાર પણ થતો નથી એનું કથન પણ કેમ કરી શકાય, આ સ્વયં એક અનુભવગમ્ય વાત છે.

આ સિદ્ધ ભગવાન કેવળજ્ઞાનના ઢાંકણરૂપ જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો સદા વિનાશ થવાથી વિશુદ્ધ સમસ્ત આત્મપ્રદેશો દ્વારા સકલ વસ્તુતત્ત્વના જ્ઞાતા છે; આથી તેનું જ્ઞાન અનન્ત છે, આ વાત સ્પષ્ટ છે. કેમકે અનન્ત પદાર્થોનો વિષય કરવાવાળા જ્ઞાન અનંત થયા વગર રહેતું નથી, અને અનંત જ્ઞાન થયા વિના એ અનન્ત પદાર્થોના હસ્તાકમલવત્ સાક્ષાત્કાર પણ થઈ શકતો નથી. જ્ઞાનનાં પહેલાં દર્શન થાય છે, દર્શન વગર જ્ઞાનનો સદ્ભાવ માનવામાં આવતો નથી. આ માટે જ્યારે એના જ્ઞાનમાં અનન્તતા છે તો આથી એ પણ યુક્તિયુક્ત છે કે તેનું દર્શન પણ અનન્ત છે. આ વાતનું બોધન "संज्ञ" આ પદથી સૂત્રકારે કરેલ છે.

શંકાઃ—જે પ્રકારે સાંસારિક પદાર્થોનું વર્ણન કોઈ પદાર્થની ઉપમા આપીને કરવામાં આવે છે, એજ પ્રકારથી સિદ્ધોનું વર્ણનપણ અમોને ઉપમા આપી સમજાવો?

विद्यते। सिद्धस्वरूपं न केनाप्युपमातुं शक्यते । तस्य कीदृशी सत्तेत्याह–' अरूपिणी'–त्यादि–तस्य युक्तात्मनः सत्ता=सद्भावः सा अरूपिणी=केनापि रूपेण वक्तुम-

उत्तर—कहना तो ठीक है, परन्तु उनके आगे यदि हमें कोई उपमा दृष्टिपथ होती तो हम उसके द्वारा उनका वर्णन भी कर देते। परन्तु उनके आगे तो उपमा ही अस्त है, उनकी उपमा उनमें ही है। अतः " उपमा तत्र न विद्यते " किसी भी पदार्थकी उपमासे हम उनके स्वरूपका कथन नहीं कर सकते हैं। वे अनुपमेय हैं।

शङ्का—उनकी सत्ता कैसी है–उनके अस्तित्वका किसी भी रूपसे वर्णन हो सकता है?

उत्तर —"अरूपिणी सत्ता" उनकी सत्ता अरूपिणी है, अतः उनके अस्तित्वका वर्णन किसी भी रूपसे नहीं हो सकता है। किसी भी रूप से जिसका कथन न हो सके उसका नाम "अरूपिणी" है। पहिले यह प्रकट ही किया जा चुका है कि सिद्धदशा रूप, रस, गंध और स्पर्शादिसे रहित है। तथा ह्रस्व, दीर्घत्वादिक धर्म उसमें सम्भवित नहीं होते हैं। ये सब पुद्गलके धर्म हैं। पुद्गल ही मूर्त्तिक है, बाकी द्रव्य अमूर्त्तिक हैं। आत्मा भी कर्मबन्धकी दशामें यद्यपि मूर्त्तिक माना गया है, परन्तु अपने निजस्वरूप अथवा सिद्ध अवस्थाकी अपेक्षा से वह अमूर्त्तिक ही

ઉત્તરઃ—કહેવું તો ઠીક છે; પરંતુ એની આગળ કદાચ અમને કોઈ ઉપમા દૃષ્ટિપથ થાત તો અમે એનું વર્ણન પણ કરી દેત, પણ એની આગળ તો ઉપમાનો જ અભાવ છે, એમની ઉપમા એમનામાં જ છે. એટલે " उपमा तत्र न विद्यते " કોઈ પણ પદાર્થની ઉપમાથી અમે તેમના સ્વરૂપનું કથન કરી શકતા નથી. એ ઉપમાથી પર છે.

શંકાઃ—એમની સત્તા કેવી છે–એમના અસ્તિત્વનું કોઈ રૂપથી વર્ણન થઇ શકે છે?

ઉત્તર—" अरूपिणी सत्ता " એમની સત્તા અરૂપી છે. એમના અસ્તિત્વનું વર્ણન કોઇ પણ રૂપથી થઈ શકે નહિ. કોઈ પણ પ્રકારે જેનું વર્ણન ન થઈ શકે તેનું નામ " અરૂપિણી " છે. પહેલાં એ કહ્યું છે કે—સિદ્ધ દશા રૂપ, રસ, ગંધ અને સ્પર્શાદિથી રહિત છે તથા હ્રસ્વ, દીર્ઘત્વાદિક ધર્મ એમાં સંભવિત થતો નથી. આ બધા પુદ્ગલના ધર્મ છે. પુદ્ગલ જ મૂર્તિક છે. બીજા દ્રવ્ય અમૂર્તિક છે. આત્મા પણ કર્મબંધની દશામાં મૂર્તિક માનવામાં આવે છે, પરંતુ પોતાના નિજસ્વરૂપ અથવા સિદ્ધ અવસ્થાની અપેક્ષાથી અમૂર્તિક જ છે. એટલે અમૂર્તિક આત્માનું હ્રસ્વત્વ આદિ

शक्या, तत्र दीर्घत्वादि सकलविषयाऽप्रतिपादनात्; अपि च-अपदस्य=न विद्यते पदं स्थानमवस्थानविशेषो यस्य सोऽपदस्तस्य, पदं-पद्यते=बुध्यते येनार्थस्तत्पदं =तद्वाचकः शब्दः, तन्नास्ति। यः कश्चिदभिधातुं योग्यो भवति स सर्व एव शब्दादिविषयाभिधानेन वक्तुं शक्यो, न चायं तथेति तात्पर्यम् ॥ सू० ६ ॥

है। अतः अमूर्त्तिक आत्माका ह्रस्वत्वादिक रूप न होनेसे उनके द्वारा उस के अस्तित्वका वर्णन हो भी कैसे सकता है? अथवा "अरूपिणी" इस शब्दके द्वारा मुक्त आत्माकी सत्ता रूपरहित ही वर्णित हुई है, तो भी तदविनाभावी रस, गंध और स्पर्शका भी रूपके निषेध से निषेध हुआ ही समझना चाहिये।

"अपदस्य पदं नास्ति" जिसका कोई पद-स्थान अथवा अवस्थान विशेष नहीं है वह अपद है। जिसके द्वारा अर्थका बोध होता है वह पद है। अपदका वाचक कोई पद-शब्द नहीं होता है। जो कहनेके योग्य होता है वही कहा जा सकता है। घटादिक पदार्थ घटादि शब्दद्वारा इस लिये प्रतिपादित होते हैं कि वे उन शब्दोंद्वारा कहे जाने योग्य होते हैं। वाच्यवाचकभाव या प्रतिपाद्यप्रतिपादक भावसंबंध अपने योग्य पदार्थोंमें ही हुआ करता है, अन्यत्र नहीं। सिद्धदशा अपद है; अतः इसका वर्णन करनेवाला कोई भी पद नहीं है। विशेष-यह सब कथन आत्माके शुद्ध स्वरूपकी दृष्टिसे निश्चयनयके अभिप्रायको लेकर ही किया गया समझना चाहिये। उनका वाचक कोई शब्द नहीं है इत्यादि कथन सर्वथा

રૂપ ન હોવાથી એની મારફત એના અસ્તિત્વનું વર્ણન પણ કઈ રીતે થઇ શકે? અથવા "अरूपिणी" આ શબ્દ દ્વારા મુક્ત આત્માની સત્તા, રૂપરહિત જ કહેવામાં આવી છે, તો પણ તેની સાથે જ રહેનાર રસ, ગંધ અને સ્પર્શનો પણ રૂપના નિષેધથી નિષેધ થયો જ સમજવો જોઈએ.

"अपदस्य पदं नास्ति" જેનું કોઈ પદ-સ્થાન અથવા અવસ્થાન વિશેષ નથી એ અપદ છે. જેના દ્વારા અર્થનો બોધ થાય છે એ પદ છે. અપદનો વાચક કોઈ પદ-શબ્દ નથી. જે કહેવા યોગ્ય હોય છે એ જ કહેવાય છે. ઘટાદિક પદાર્થ ઘટાદિ શબ્દથી આ માટે પ્રતિપાદિત હોય છે કે તે એ શબ્દો દ્વારા કહેવાને યોગ્ય હોય છે. વાચ્યવાચકભાવ અથવા પ્રતિપાદ્યપ્રતિપાદક ભાવ સંબંધ પોતાના યોગ્ય પદાર્થોમાં જ હોય છે, અન્યમાં નહિ. સિદ્ધ દશા અપદ છે, આથી એનું વર્ણન કરનાર કોઈ પદ નથી. વિશેષ-આ બધું આત્માના વિશુદ્ધ રૂપની દૃષ્ટિથી નિશ્ચય નયનો અભિપ્રાય લઈ ને કહેવાયું છે, એમ સમજવું જોઈએ. એનો વાચક કોઇ શબ્દ નથી

तदेव प्रकटयन्नुपसंहरति-'से न' इत्यादि—

यद्वा—'न दीर्घ' इत्यादिना शब्दादिविशेषो निराकृतः पुनस्तत्सामान्य-निराकरणायाह-'से न' इत्यादि।

मूलम्-से न सद्दे न रूवे न गंधे न रसे न फासे इच्चेव त्तिबेमि ॥ सू० ७ ॥

छाया-स न शब्दो न रूपं न गन्धो न रसो न स्पर्श इत्येवमिति ब्रवीमि ॥सू०७॥

टीका—'स न' इत्यादि-स मुक्तात्मा न शब्दस्वरूपः, न रूपात्मकः, न

एकान्त रूपसे नहीं समझना चाहिये। अन्यथा वे सर्वथा अवक्तव्य होने से अवक्तव्य इस शब्दके द्वारा भी नहीं कहे जा सकेंगे, तथा रूप रस गन्धादिका निषेध भी वहां नहीं हो सकेगा। तथा इनके अभावात्मक- "रूपादि रहित हैं" इत्याकारक-बोधके वे ग्राह्य भी नहीं होंगे। इस लिये यह सब कथन सिद्ध स्वरूपकी पूर्ण दशाका वाचक कोई शब्द नहीं है इतने ही में चरितार्थ समझना चाहिये ॥ सू०६ ॥

इसी पूर्वोक्त विषयको पुनः प्रकट करते हुए सूत्रकार उसका "से न" इत्यादि सूत्रद्वारा उपसंहार करते हैं, अथवा-"न दीर्घः" इत्यादि पदों द्वारा उस अवस्थामें दीर्घत्वादि-विशेष-धर्मवाचक विशेष शब्दोंकी विषयताका ही निषेध किया गया है, सामान्य रूपसे शब्दात्मकतादिका निषेध नहीं किया है; सो "से न" इत्यादि सूत्रद्वारा सामान्यरूपसे शब्दात्मकतादिका वहां निषेध करते हुए सूत्रकार कहते हैं—

वह मुक्त आत्मा न शब्दस्वरूप हैं, न रूपस्वरूप हैं, न गंधस्वरूप

આ કથન કોઈ એકાન્ત રૂપથી સમજવું ન જોઈએ, અન્યથા એ સર્વથા અવક્તવ્ય હોવાથી અવક્તવ્ય આ શબ્દથી પણ કહી શકાય નહિ; તેમ રૂપ, રસ, ગંધ ઈત્યાદિનો નિષેધ પણ ત્યાં થઈ શકે નહિ. તથા એના અભાવાત્મક-"રૂપાદિ રહિત છે" એવા બોધથી પણ એ ગ્રાહ્ય નહિ થાય આ માટે સિદ્ધસ્વરૂપની પૂર્ણ દશાને વાચક કોઈ શબ્દ નથી–એટલામાં જ આ બધાં કથન ચરિતાર્થ સાર્થક સમજવું જોઈએ (સૂ૦૬)

એ પૂર્વોક્ત વિષયને પુનઃ પ્રગટ કરતાં સૂત્રકાર એનો "से न" ઈત્યાદિ સૂત્ર દ્વારા ઉપસંહાર કરે છે. અથવા-"न दीर्घः" ઈત્યાદિ પદોથી એ અવસ્થામાં દીર્ઘત્વાદિ-વિશેષ-ધર્મવાચક વિશેષશબ્દોની વિષયતાનો જ નિષેધ કરવામાં આવ્યો છે. સામાન્યરૂપથી શબ્દાત્મકતા આદિનો નિષેધ નથી કર્યો, માટે "से न" ઈત્યાદિ સૂત્રથી સામાન્ય રૂપથી શબ્દાત્મકતા આદિનો ત્યાં નિષેધ કરતાં સૂત્રકાર કહે છે—

એ મુક્ત આત્મા ન શબ્દસ્વરૂપ છે, ન તો રૂપસ્વરૂપ છે, ન ગંધસ્વરૂપ

गन्धात्मकः, न रसस्वरूपः, न स्पर्शस्वरूपः, इत्येवं पूर्वोक्तस्वरूपेण स न शब्दादि-सामान्यरूपो नापि तद्विशेषरूपः, शब्दादिप्रवृत्तिनिमित्ताभावादेव केनापि प्रकारेण वक्तुं न शक्य इति भावः। 'इति ब्रवीमि 'त्यस्यार्थस्तु प्रथमाध्ययनोक्तरीत्याऽवगन्तव्यः ॥ सू० ७ ॥

अध्ययनविषयोपसंहारः—

अस्मिन्नध्ययने च भोगविषयासक्त्यै व्रजन्नो मुनि,
हिंसादित्यजको निवृत्तविषयासङ्गो मुनिः सम्मतः।
निर्विण्णोऽप्यपरिग्रहो मुनिरसावेकाकिनो दुष्कृत-
माचार्यो ह्रदसन्निभाश्च परमत्यागश्च संवर्णितः ॥ १ ॥

॥ इतिश्री–विश्वविख्यात–जगद्वल्लभ–प्रसिद्धवाचक–पञ्चदशभाषाकलितललित–कलापालापक–प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक–वादिमानमर्दक–शाहू–छत्रपति–कोल्हापुरराजप्रदत्त–"जैनशास्त्राचार्य"–पदभूषित–कोल्हापुरराजगुरु–बालब्रह्मचारि–जैनाचार्य–जैनधर्मदिवाकर पूज्य–श्रीघासीलाल–व्रतिविरचितायाम् आचाराङ्गसूत्र–स्याऽऽचारचिन्तामणिटीकायां लोकसाराख्यं पञ्चम–मध्ययनं सम्पूर्णम् ॥ ५ ॥

हैं, न रसस्वरूप हैं और न स्पर्शस्वरूप हैं। इस प्रकार वह न शब्द सामान्यस्वरूप हैं और न रूप, रस और गंध आदि सामान्य स्वरूप हैं। जहां सामान्य धर्मका ही अभाव है वहां तद्विशेष ह्रस्वआदि विशेष-शब्दविषयता तथा नील, शुक्ल आदि विशेषरूपता कैसे आ सकती है? अर्थात् नहीं आ सकती। इसलिये सामान्य और विशेष रूपसे शब्द आदि की प्रवृत्तिके निमित्तका अभाव होनेसे ही वह मुक्तदशा किसी भी प्रकारसे कथन करनेमें नहीं आती है। "इति ब्रवीमि" इन पदोंका अर्थ प्रथम अध्ययनमें उक्त रीतिके अनुसार जान लेना चाहिये।सू० ७।

છે, ન રસસ્વરૂપ છે, અને ન તો સ્પર્શ સ્વરૂપ છે. આ પ્રકારે ન શબ્દ સામાન્ય સ્વરૂપ છે, અને ન રૂપ, રસ તથા ગંધ આદિ સામાન્ય સ્વરૂપ છે. જ્યાં સામાન્ય ધર્મનો જ અભાવ છે ત્યાં આગળ હ્રસ્વ આદિ વિશેષશબ્દવિષયતા તથા નીલ, શુક્લ આદિ વિશેષરૂપતા કઇ રીતે આવી શકે? અર્થાત્ આવી શકતી નથી. આ માટે સામાન્ય અને વિશેષ રૂપથી શબ્દ આદિની પ્રવૃત્તિના નિમિત્તનો અભાવ હોવાથી જ એ મુક્તદશા કોઈ પણ પ્રકારે કહી શકાતી નથી. "इति ब्रवीमि" આનો અર્થ પ્રથમ અધ્યયનમાં એ કહ્યા પ્રમાણે જાણી લેવો જોઇએ (સૂ૦૭)

इस अध्ययनका उपसंहार पद्यसे करते हैं-'अस्मिन्नध्ययने' इत्यादि।

(१) पहले उद्देशमें-प्राणियोंकी हिंसा करनेवाला, विषयोंके लिये सावद्य क्रियाओंमें प्रवृत्ति करनेवाला मुनि नहीं है। तथा विषयोंके लिये ही विचरण करनेवाला और उनमें लवलीन चित्त बना हुआ भी मुनि धर्मसे रहित है। (२) द्वितीय उद्देशमें-हिंसादि पापस्थानों से निवृत्त ही मुनि होता है। (३) तृतीय उद्देशमें-जो परिग्रहसे विरत है और काम-भोगोंसे रहित है वही विरक्त मुनि है। (४) चतुर्थ उद्देशमें-अगीतार्थ मुनिको एकाकी होकर विहार नहीं करना चाहिये, क्यों कि इस प्रकारके विहारमें उसे अनेक विघ्नबाधाएँ आती हैं। (५) पंचम उद्देशमें-मुनिको द्रहके समान होना चाहिये। मन, वचन और कायगुप्तिसे युक्त होना चाहिये। स्त्री आदिके संगसे रहित होना चाहिये। सम्यग्दर्शन और चारित्रके धारक होना चाहिये-संशयादिक दोषवर्जित होना चाहिये। (६) छठे उद्देशमें-उन्मार्गमें जानेका और राग एवं द्वेषका साधुको त्याग कर देना चाहिये।

यह आचाराङ्गसूत्रके लोकसार नामके पांचवें अध्ययनकी आचार-चिन्तामणि-टीकाका हिन्दीभाषानुवाद सम्पूर्ण ॥ ५ ॥

આ અધ્યયનનો ઉપસંહાર પદ્યથી કરવામાં આવે છે. "अस्मिन्नध्ययने" ઇત્યાદિ.

(૧) પહેલા ઉદ્દેશમાં–પ્રાણીઓની હિંસા કરવાવાળા અને વિષયોને માટે સાવદ્ય ક્રિયાઓમાં પ્રવૃત્તિ કરવાવાળાને મુનિ ન કહેવાય. તેમજ વિષયોને માટેજ વિચરણ કરવાવાળા અને એમાં લવલીન ચિત્ત થયેલા પણ મુનિ ધર્મથી રહિત છે. (૨) બીજા ઉદ્દેશમાં—હિંસાદિ પાપસ્થાનોથી નિવૃત્ત જ મુનિ હોય છે. (૩) ત્રીજા ઉદ્દેશમાં—જે પરિગ્રહથી વિરત છે અને કામભોગોથી રહિત છે એ જ વિરક્ત મુનિ છે. (૪) ચોથા ઉદ્દેશમાં—અગીતાર્થ મુનિએ એકાકી થઇ વિહાર કરવો ન જોઈએ, કેમ કે આ પ્રકારના વિહારથી એને અનેક વિઘ્નો આવે છે. (૫) પાંચમા ઉદ્દેશમાં–મુનિએ દ્રહ (સરોવર)ની સમાન થવું જોઈએ. મન, વચન અને કાયાથી વિરક્ત બનવું જોઈએ. સ્ત્રી આદિના સંગથી દૂર રહેવું જોઈએ, સમ્યગ્દર્શન જ્ઞાન અને ચારિત્રના ધારક બનવું જોઈએ. સંશય આદિ દોષોથી રહિત થવું જોઈએ. (૬) છઠ્ઠા ઉદ્દેશમાં—ઉન્માર્ગગમન, રાગ અને દ્વેષનો ત્યાગ કરી દેવો જોઈએ.

આ આચારાંગસૂત્રના લોકસાર નામના પાંચમા અધ્યયનની આચાર-ચિંતામણિ-ટીકાનો ગુજરાતી અનુવાદ સંપૂર્ણ ॥ ૫ ॥

॥ अथ षष्ठाध्ययनस्य प्रथम उद्देशः॥

उक्तं पञ्चमाध्ययनं, तत्र लोकसाररूपसंयमस्य मोक्षस्य च स्वरूपं निगदितं, तयोः प्राप्तिर्हि मातापित्रादिसंगपरित्यागेन कर्मधूननेन च विना न भवतीत्युभयं बोधयितुमिदं धूताख्यमध्ययनं प्रोच्यते—

धूयते—अपनीयत इति धूतं–मातापित्रादिसंगः अष्टविधं कर्म च। तद् धूननार्हतया प्रतिपाद्यते यत्राध्ययने तदपि धूतं निगद्यते।

छट्ठा अध्ययनका प्रथम उद्देश।

पांचवां अध्ययन कहा जा चुका है। उसके अन्दर लोकमें सारभूत संयम और मोक्षका स्वरूप कहा गया है। संयम और मुक्तिकी प्राप्ति माता पिता आदि स्वजनोंके साथ ममत्वका त्याग और कर्मोंका विनाश किये विना नहीं होती है, इस कारण इन दोनों विषयोंको समझानेके लिये इस धूताख्यान का प्रारंभ किया जाता है।

मुमुक्षुजनों द्वारा जो दूर–परिवर्जित किया जाय वह धूत है। वह धूत माता पिता आदिका संग और अष्टविधकर्मस्वरूप है। क्यों कि मुमुक्षुओं द्वारा इनका ही परित्याग किया जाता है। इस अध्ययनमें इन दोनों विषयोंको धूनन–परित्यागके योग्य प्रतिपादित किया गया है। इसलिये इस अध्ययनका नाम भी "धूत" हो गया है।

છઠા અધ્યયનનો પ્રથમ ઉદ્દેશ.

પાંચમો અધ્યયન કહેવાઈ ગયો છે, એ અધ્યયનમાં લોકમાં સારભૂત સંયમ અને મોક્ષનું સ્વરૂપ કહેવામાં આવેલ છે. સંયમ અને મુક્તિની પ્રાપ્તિ, માતા પિતા આદિ સ્વજનોના મમત્વનો ત્યાગ, કર્મોનો વિનાશ કર્યા વગર થઈ શકતો નથી. આ કારણે આ બન્ને વિષયો સમજાવવા માટે આ ધૂતાખ્યાન અધ્યયનનો પ્રારંભ કરવામાં આવે છે.

મુમુક્ષુજનો દ્વારા જે દૂર–પરિવર્જીત કરવામાં આવે તે ધૂત છે. એ ધૂત માતા પિતા ઈત્યાદિનો સંગ અને અષ્ટવિધકર્મસ્વરૂપ છે, કેમ કે મુમુક્ષુઓ દ્વારા એનો પરિત્યાગ કરવામાં આવે છે. આ અધ્યયનમાં આ બન્ને વિષયોને ધૂનન–પરિત્યાગને યોગ્ય પ્રતિપાદિત કરવામાં આવેલ છે. આ માટે આ અધ્યયનનું નામ પણ "ધૂત" થઈ ગયું છે.

धूतं द्विविधं द्रव्यभावभेदात् । तत्र द्रव्यधूतं वस्त्रपात्रादि, भावधूतमष्टविधं कर्म । उक्तश्च—

" जह मलमलिणं वत्थं, खारदव्वेण निम्मलं भवइ ।
तह संजमेण तवसा, कम्ममलं भवइ भावधुयं " ॥ १ ॥

छाया——यथा मलमलिनं वस्त्रं, क्षारद्रव्येण निर्मलं भवति ।
तथा संजमेन तपसा, कर्ममलं भवति भावधूतम् ॥ १ ॥

अत्र भावधूननाधिकारः । अस्मिन्नध्ययने पञ्चोद्देशाः सन्ति, तत्र प्रथमोद्देशे स्वजनसङ्गस्य, द्वितीये कर्मणां, तृतीये–उपकरणशरीरममत्वस्य, चतुर्थे गौरवत्रयस्य, पञ्चमे चोपसर्गमानापमानानां विधूननं प्रतिपादयिष्यते । तत्र स्वजनसङ्गपरित्याग-

---

धूत, द्रव्य और भावके भेदसे दो प्रकारका है । वस्त्र और पात्रादिक द्रव्य धूत हैं । अष्टविधकर्म भाव धूत हैं । कहा भी है—

' जह मलमलिणं वत्थं ' इत्यादि—

जैसे मलसे मलिन हुआ वस्त्र, क्षार द्रव्य–सोडा साबुन आदिसे साफ किया जाता है उसी प्रकार भावस्वरूप कर्मरूपी मैल भी आत्मासे संयम और तपद्वारा धोया–साफ किया जाता है ।

यहां पर भावधूतका अधिकार है । इसके ५ उद्देश हैं–१ प्रथम उद्देश में स्वजनके संगका, द्वितीय उद्देशमें कर्मोंका, तृतीय उद्देशमें उपकरण और शरीरके ममत्वका, चतुर्थ उद्देशमें तीन गौरवोंका, और पंचम उद्देशमें उपसर्गों एवं मान और अपमानका धूनन प्रतिपादित किया है । इनमें सर्व प्रथम सूत्रकार स्वजनोंके साथ संगके परित्यागका बोधक प्रथम

ધૂત દ્રવ્ય અને ભાવના ભેદથી બે પ્રકારનું છે. વસ્ત્ર અને પાત્રાદિક દ્રવ્ય-ધૂત છે, અષ્ટવિધ કર્મ ભાવધૂત છે. કહ્યું પણ છે–" जह मलमलिणं वत्थं " ઈત્યાદિ.

જેમ મળથી ગંદું બનેલ વસ્ત્ર ક્ષારદ્રવ્ય–સોડા સાબુ વગેરેથી સાફ કરવામાં આવે છે એ જ રીતે ભાવસ્વરૂપ કર્મરૂપી મેલને પણ આત્માથી સંયમ અને તપ દ્વારા ધોવા–સાફ કરવામાં આવે છે.

અહીં ભાવધૂતનો અધિકાર છે. આના પાંચ ઉદ્દેશ છે. પ્રથમ ઉદ્દેશમાં સ્વજનના સંગનું, બીજા ઉદ્દેશામાં કર્મોનું, ત્રીજા ઉદ્દેશમાં ઉપકરણ અને શરીરના મમત્વનું, ચોથા ઉદ્દેશમાં ત્રણ ગૌરવનું, અને પાંચમા ઉદ્દેશમાં ઉપસર્ગો અને માન તથા અપમાનનું ધૂનન પ્રતિપાદન કરેલ છે. આમાં સર્વ પ્રથમ સૂત્રકાર સ્વજનોના સંગનો પરિત્યાગ કરવો જોઈએ આ સમજાવવા માટે પ્રથમ ઉદ્દેશનો પ્રારંભ કરે છે. આમાં સહુ પ્રથમ સૂત્રકાર એ બતાવે છે કે જે પદાર્થ જે સ્વરૂપથી અવસ્થિત

बोधकः प्रथमोद्देशः प्रारभ्यते । तत्रादौ यथाऽवस्थितसकलपदार्थतत्त्वज्ञा नरा एवानुपमं धर्ममुपदेष्टुमर्हन्तीति बोधयितुमाह—'ओबुज्झमाणे' इत्यादि ।

मूलम्—ओबुज्झमाणे इह माणवेसु अक्खाति से णरे। जस्सिमाओ जातीओ सव्वओ सुपडिलेहियाओ भवंति, अक्खाइ से णाणमणेलिसं ॥ सू० १ ॥

छाया—अवबुध्यमानः इह मानवेषु आख्याति स नरः । यस्येमा जातयः सर्वतः सुप्रतिलेखिता भवन्ति, आख्याति स ज्ञानमनीदृशम् ॥ सू० १ ॥

टीका—इह=अस्मिन् लोके मानवेषु=मनुष्येषु यः अवबुध्यमानः=निरावरणज्ञानसद्भावादात्मनः संसारस्य च यथार्थस्वरूपं सम्यग्जानन् अस्ति, स नरः= अघातिकर्मचतुष्टयसद्भावाद् मनुष्यदेहावस्थितः सन् अनीदृशम्=अनुपमम्–प्रशस्यतमं–सम्यगिति यावत् , ज्ञानम्=श्रुतचारित्रधर्मम् , अत्र ज्ञानमित्यनेन ज्ञानं ज्ञानकार्यं च उपलक्ष्यते; आख्याति=मनुष्येभ्यो वदतीत्यर्थः। तीर्थङ्करा एव सर्वज्ञाः भवन्ति, अतस्तदुक्तः श्रुतचारित्रधर्म एव सम्यगिति भावः । यत्तु कुड्यादयोऽपि

उद्देशका प्रारंभ करते हैं । उनमें सबसे पहिले सूत्रकार यह बतलाते हैं कि जो पदार्थ जिस स्वरूपसे अवस्थित हैं उन सकल पदार्थों को उसी स्वरूपसे जाननेवाले मनुष्य ही अनुपम धर्मके कथन करनेके योग्य हो सकते हैं। इसी बातको समझानेके लिये सूत्रकार कहते हैं— "ओबुज्झमाणे" इत्यादि ।

इस चराचर संसारमें जिन मनुष्योंको निरावरणज्ञानकी प्राप्ति हो चुकी है और इसीसे जो आत्मा एवं संसारके वास्तविक स्वरूपके ज्ञाता हुए हैं, वे मनुष्य अघातिया कर्मोंके सद्भावसे मनुष्य शरीरमें स्थित हो कर ही सम्यक् ज्ञान और उपलक्षणसे उसके कार्यस्वरूप अनुपम सच्चे श्रुतचारित्ररूप धर्मके उपदेष्टा अन्य संसारी जीवोंके लिये होते हैं।

છે તે સકલ પદાર્થોને તે સ્વરૂપથી જાણવાવાળા મનુષ્ય જ અનુપમ ધર્મનું કથન કરવા યોગ્ય બની શકે છે. આ વાત સમજાવવા માટે સૂત્રકાર કહે છે– " ओबुज्झमाणे " ઈત્યાદિ.

આ ચરાચર સંસારમાં જે મનુષ્યોને નિરાવરણ જ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થઇ ચૂકી છે અને એનાથી જે આત્મા તથા સંસારના વાસ્તવિક સ્વરૂપના જાણકાર બનેલ છે તે મનુષ્ય અઘાતિયા કર્મોના સદ્ભાવથી મનુષ્યશરીરમાં સ્થિત થવા છતાં સમ્યક્જ્ઞાન અને ઉપલક્ષણથી એના કાર્યસ્વરૂપ અનુપમ–સાચા શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મના ઉપદેશક અન્ય સંસારી જીવો માટે થાય છે. તીર્થંકરના સિવાય ધર્મનો

धर्मं वदन्तीति शाक्याः, यच्चवैशेषिका उलूकभावेन पदार्थानामाविर्भावनं मन्यन्ते, तन्न समीचीनम्, धर्मनिरूपणं मनुष्यमन्तरेण न संभवति, सोऽपि यदि घातिकर्म-क्षये सति निरावरणज्ञानाऽऽविर्भावेन सर्वज्ञतामुपलभेत। एवंभूतः सर्वज्ञः स्वयं कृतार्थोऽपि प्राणिनां हिताय द्वादशविधपर्षदि धर्मं निरूपयतीत्युपपद्यते। कथं नु नाम

तीर्थङ्करके सिवाय धर्मका उपदेश अन्य छद्मस्थजन नहीं कर सकते हैं क्यों कि वे आत्मा और संसारके स्वरूपके वास्तविक ज्ञाता नहीं होते हैं।

भावार्थ— तीर्थङ्कर ही धर्मोपदेशक होते हैं, क्यों कि वे सर्वज्ञ हैं। अतः तीर्थङ्करप्रणीत श्रुतचारित्ररूप धर्म ही सच्चा है; अन्य छद्मस्थजन प्रणीत नहीं! शाक्य लोग जो यह कहते हैं कि कुडयादिक धर्मका निरूपण करते हैं। तथा अज्ञानी वैशेषिक जो यह कहते हैं कि पदार्थोंका आविर्भावन उलूकभावसे ही होता है, सो उनकी यह मान्यता ठीक नहीं है; क्यों कि धर्मका निरूपण उस मनुष्यके विना संभवित नहीं होता है कि जिसने घातिया कर्मोंके अभावसे केवलज्ञानकी प्राप्ति से सर्वज्ञता प्राप्त न कर ली हो। घातिया कर्मोंके विनाशसे केवलज्ञान की उद्भूति होती है और इसीकी उपलब्धिका नाम सर्वज्ञता है। जो सर्वज्ञ होते हैं वे कृतार्थ होते हैं, उनकी प्रत्येक इच्छाएँ नष्ट हो जाती हैं, संसारमें कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं होता है जिसकी उन्हें चाहना हो। कृतकृत्य होने पर भी वे भव्य जीवोंके पुण्यके उदय एवं योगोंके सद्भाव

ઉપદેશ બીજા છદ્મસ્થજન કરી શકતા નથી, કેમ કે એ આત્મા તથા સંસારના સ્વરૂપના વાસ્તવિક જાણકાર નથી હોતા.

ભાવાર્થ—તીર્થંકર જ ધર્મોપદેશક હોય છે; કેમ કે એ સર્વજ્ઞ છે. એટલે તીર્થંકર પ્રણીત શ્રુત–ચારિત્રરૂપ ધર્મ જ સાચો છે; બીજા છદ્મસ્થજન પ્રણીત નહિ! શાક્યલોક જે એવું કહે છે કે કુડ્યાદિક ધર્મનું નિરૂપણ કરે છે તથા અજ્ઞાની વૈશેષિક જે એવું કહે છે કે પદાર્થોના આવિર્ભાવન ઉલૂકભાવથી જ થાય છે. એમની આ માન્યતા બરોબર નથી; કેમ કે ધર્મનું નિરૂપણ એવા મનુષ્યના વગર સંભવિત બનતું નથી કે જેણે ઘાતીયા કર્મોના અભાવથી કેવલજ્ઞાનની પ્રાપ્તિથી સર્વજ્ઞતા પ્રાપ્ત કરી ન હોય. ઘાતીયા કર્મોના વિનાશથી કેવલજ્ઞાનની ઉદ્ભૂતિ થાય છે. અને એની ઉપલબ્ધિનું નામ સર્વજ્ઞતા છે. જે સર્વજ્ઞ બને છે તે કૃતાર્થ હોય છે. એમની પ્રત્યેક ઇચ્છાઓ નષ્ટ થઇ ગઇ હોય છે. સંસા-રમાં કોઇ પણ એવો પદાર્થ નથી દેખાતો જેની એમને ચાહના હોય. કૃતકૃત્ય હોવા છતાં પણ તેઓ ભવ્ય જીવોને પુણ્યના ઉદય અને યોગોના સદ્ભાવથી

जडस्वरूपः कुड्यादिः ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मपाशबद्धस्तिर्यक् प्राणी च सर्वज्ञवीत-रागसमकक्षतां प्राप्तुमर्हति, योग्यधर्मनिरूपणं कर्तुं प्रभवति ?।

ननु किं तीर्थङ्कर एव धर्ममाख्याति ? किमुतान्योऽपि ? इति शिष्यजिज्ञासा-यामाह—' यस्येमा ' इत्यादि । यस्य=केवलिनः श्रुतकेवलिनश्च इमाः प्रत्यक्षभूताः जातय एकेन्द्रियादिजातयः सर्वतः=सर्वप्रकारैः सूक्ष्मबादरपर्याप्तापर्याप्तरूपैः सुप्र-तिलेखिताः=अज्ञानसंशयविपर्यासनिराकरणेन यथार्थतो ज्ञाता भवन्ति, स नरः

से समवसरण में प्राणियोंको हितावह उपदेश देते हैं–धर्मकी प्ररूपणा करते हैं । जब धर्मकी प्ररूपणा करना सर्वज्ञके आधीन है तब यह कौन सचेतन प्राणी मान सकता है कि जड़ स्वभाव–अचेतन कुडयादिक (भित्ति आदि) तथा अष्टविध कर्मरूपी पाशसे जकड़ा हुआ तिर्यञ्च प्राणी सर्वज्ञकी समकक्षताको पानेके लायक हो सकता है ? अर्थात्–उससे योग्य धर्मकी प्ररूपणा हो सकती है? या वह योग्य धर्मकी प्ररूपणा करनेके लिये शक्तिशाली हो सकता है? कदापि नहीं।

तीर्थङ्कर प्रभु ही धर्मकी देशना देते हैं या और भी कोई देता है? इस प्रकार शिष्यकी शङ्काके निवारणार्थ "यस्येमाः" इत्यादि सूत्रांशकी प्ररूपणा करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि केवली और श्रुतकेवली भी धर्मकी प्ररूपणा करते हैं। क्यों कि उनके निर्दोष–संशय, विपर्यय और अनध्यवसायरहित ज्ञानसे वे प्रत्यक्षभूत एकेन्द्रियादिक जातियां सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त और अपर्याप्तरूपसे भलीभांति जाने हुए होते हैं।

સમવસરણમાં પ્રાણીયોને હિતાવહ ઉપદેશ આપે છે–ધર્મની પ્રરૂપણા કરે છે. જ્યારે ધર્મની પ્રરૂપણા કરવી સર્વજ્ઞને આધીન છે ત્યારે એવો કયો સચેતન પ્રાણી માની શકે છે કે જડસ્વભાવ અચેતન કુડ્યાદિક (ભીત આદિ) તથા અષ્ટવિધકર્મરૂપી પાસથી જકડાયેલા તિર્યંચ પ્રાણી સર્વજ્ઞની સમકક્ષાતને મેળ-વવા લાયક બની શકે છે? અર્થાત્–એનાથી યોગ્ય ધર્મની પ્રરૂપણા થઈ શકે છે? અથવા તે યોગ્ય ધર્મની પ્રરૂપણા કરવા માટે શક્તિશાળી બની શકે છે? કદાપિ નહિ. (કોઈ કાળે નહિ)

તીર્થંકર પ્રભુ જ ધર્મની દેશના આપે છે–અથવા બીજા પણ કોઈ આપે છે? આ પ્રકારની શિષ્યની શંકાના નિવારણાર્થે "यस्येमाः" ઇત્યાદિ સૂત્રાંશની પ્રરૂપણા કરતાં સૂત્રકાર કહે છે કે કેવલી અને શ્રુતકેવલી પણ ધર્મની પ્રરૂપણા કરે છે, કેમ કે નિર્દોષ–સંશય, વિપર્યય અને અનધ્યવસાય રહિત જ્ઞાનથી એ પ્રત્યક્ષભૂત એકેન્દ્રિયાદિક જાતીઓને સૂક્ષ્મ, બાદર, પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્તરૂપથી સારી રીતે જાણતા હોય છે.

केवली श्रुतकेवली च अनीदृशम्=अनुपमं-सम्यक् प्रशस्तं, ज्ञानं=श्रुतचारित्रम् आख्याति । तीर्थङ्करादन्यश्चतुर्दशपूर्वधरोऽपि सर्वोत्तमं धर्ममुपदिशतीत्यर्थः । सू० १॥

स तीर्थङ्करः कथंभूतान् मनुष्यानुपदिशतीति जिज्ञासायामाह-'से किट्टइ' इत्यादि ।

मूलम्-से किट्टइ तेसिं समुट्ठियाणं निक्खित्तदंडाणं समाहियाणं पन्नाणमंताणं इह मुत्तिमग्गं, एवमवि एगे महावीरा विप्परिक्कमंति, पासह एगे विसायमाणे अणत्तपन्ने ॥ सू०२ ॥

छाया-स कीर्तयति तेषां समुत्थितानां निक्षिप्तदण्डानां समाहितानां प्रज्ञानवताम् इह मुक्तिमार्गम्, एवमपि एके महावीरा विपराक्रमन्ते, पश्यत एकान् विषीदतः अन्यत्रप्रज्ञान् ॥ सू० २ ॥

टीका--स तीर्थङ्करगणधरादिः, इह=अस्मिन् मनुष्यलोके समुत्थितानां-धर्माचरणार्थमुद्यतानां, निक्षिप्तदण्डानां=प्राणिहिंसानिवृत्तानां, समाहितानाम्=अनन्य-

---

भावार्थ-यह पहिले जो कहा है कि तीर्थङ्कर प्रभु धर्मका उपदेश देते हैं? या कोई अन्य भी ?; सो इस शिष्यकी आशङ्काका यह उत्तर है। इसमें यह बतलाया गया है कि तीर्थङ्करके अतिरिक्त केवली और श्रुत-केवली-चतुर्दश पूर्वधर भी सर्वोत्तम इस श्रुतचारित्ररूप धर्मका भव्य जीवोंको उपदेश देते हैं॥ सू० १॥

वे तीर्थङ्कर किस प्रकारके मनुष्योंको धर्मका उपदेश देते हैं-इस प्रकारकी जिज्ञासाके होने पर सूत्रकार कहते हैं-"से किट्टइ" इत्यादि।

वे तीर्थङ्कर भगवान् अथवा गणधरादि इस मनुष्य लोकमें ऐसे जीवों को सम्यग्दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्ररूप मुक्तिके मार्ग (धर्म)का उपदेश देते हैं जो धर्मके आचरण करनेके लिये उद्यत हैं,

---

ભાવાર્થ—આ પહેલાં જે કહ્યું છે કે તીર્થંકર પ્રભુ ધર્મનો ઉપદેશ આપે છે ? અથવા બીજા પણ?, આ પૂર્વોક્ત શિષ્યની આશંકાનો આ ઉત્તર છે, આમાં એ બતાવાયું છે કે તીર્થંકર સિવાય કેવલી અને શ્રુતકેવલી—ચતુર્દશપૂર્વધર પણ સંપૂર્ણ રીતે શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મનો ભવ્ય જીવોને ઉપદેશ આપે છે.

એ-તીર્થંકર મનુષ્યોને કયા પ્રકારના ધર્મનો ઉપદેશ આપે છે, આ પ્રકારની જીજ્ઞાસા હોવાથી સૂત્રકાર કહે છે-"से किट्टइ" ઈત્યાદિ.

એ તીર્થંકર ભગવાન અથવા ગણધરાદિક દેવ આ મનુષ્ય લોકમાં એવા જીવોને સમ્યક્ દર્શન, સમ્યક્ જ્ઞાન અને સમ્યક્ ચારિત્રરૂપ મુક્તિમાર્ગ (ધર્મ) નો ઉપદેશ આપે છે જે ધર્મનું આચરણ કરવા માટે ઉત્સુક હોય છે. પ્રાણી-

मनसां प्रज्ञानवतां=हेयोपादेयबुद्धिमतां मनुष्याणां मुक्तिमार्गं=सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूपं कीर्तयति=कथयति । एवं भगवता गणधरादिना वा मोक्षमार्गे प्रतिबोधिते सति एके केचिद् महावीराः कर्मरिपून् विनाशयितुं संयमरणाङ्गणे विपराक्रमन्ते=विशेषेणात्मनः शक्तिं प्रकटीकुर्वन्ति । एकान्=कांश्चित् मोहविवशान् कातरान् अन्यत्रप्रज्ञान्=भगवद्देशनेतरविषयसंलग्नोपयोगान् अतएव-विषीदतः=प्रियवियोगाप्रियसंयोगेप्सितानवाप्तिप्रभृतिभिः पीड्यमानान् पश्यत, यद्वा-'अणत्तपन्ने' इत्यस्य -'अनात्मप्रज्ञान्' इतिच्छाया । आत्मने हिता प्रज्ञा-आत्मप्रज्ञा अविद्यमानाऽऽत्मप्रज्ञा येषां ते अनात्मप्रज्ञाः, तान् विषीदतः=संयमाराधने श्लथीभवतः-संयमं

प्राणियोंकी हिंसाका जिन्होंने परित्याग कर दिया है, अपने धर्मकर्मके आचरणमें ही जिनका मन तल्लीन रहता है, और जो हेय और उपादेयकी बुद्धिसे समन्वित हैं । इस प्रकार भगवान् वा गणधरादिकोंके द्वारा मुक्तिका मार्ग समझाये जाने पर भी कोई एक मनुष्य कर्मरूपी शत्रुओंको परास्त करनेके लिये संयमरूपी युद्धांगणमें विशेषरूपसे अपनी शक्ति प्रगट करते हैं, कोई एक मोहसे कातर बने हुए अन्यत्र-स्त्री पुत्र आदि सांसारिक पर पदार्थोंमें-जो भगवान्की देशनासे बाह्य-भिन्न विषय हैं उनमें-फँसे रहते हैं और निरन्तर इष्ट-प्रिय-वियोग और अनिष्ट-संयोग तथा अभिलषितकी अप्राप्ति आदिसे पीडित होते देखे जाते हैं । " अणत्तपन्ने " इसकी संस्कृत छाया " अनात्मप्रज्ञान् " भी है । इसका अर्थ होता है, कि जो आत्मप्रज्ञावाले नहीं है-अर्थात् आत्माकी हितकारक बुद्धिसे जो शून्य हैं, अतएव संयमके पालनके लिये

ઓની હિંસાનો જેમણે પરિત્યાગ કરેલ છે, પોતાના ધર્મકર્મના આચરણમાં જેનું મન તલ્લીન રહે છે, અને જે હેય અને ઉપાદેયની બુદ્ધિથી સમન્વિત (યુક્ત) છે. આ પ્રકારે ભગવાન અથવા ગણધરાદિકોદ્વારા મુક્તિનો માર્ગ સમજાવવામાં આવ્યા છતાં પણ કોઈ એક મનુષ્ય કર્મરૂપી શત્રુઓને પરાસ્ત કરવામાં સંયમરૂપી યુદ્ધભૂમિમાં વિશેષરૂપથી પોતાની શક્તિ પ્રગટ કરે છે. કોઈ એક મોહપાસમાં બંધાઈને સ્ત્રી પુત્ર આદિ સાંસારિક પદાર્થો કે જે ભગવાનની દેશનાથી બાહ્ય-ભિન્ન વિષય છે એમાં ફસાઈ રહે છે અને નિરંતર ઈષ્ટ-પ્રિય-વિયોગ તથા અનિષ્ટ સંયોગ અને અભિલષિત અપ્રાપ્તિરૂપ પીડાઓથી પીડિત થતા દેખાય છે. " अणत्तपन्ने " આની સંસ્કૃત છાયા " अनात्मप्रज्ञान् " પણ છે. આનો અર્થ એ થાય છે કે જે આત્મપ્રજ્ઞાવાળા નથી. અર્થાત્ આત્માની હિતકારક બુદ્ધિથી જે શૂન્ય છે, अतएव સંયમના પાળવામાં જે શિથિલ છે-એ તરફ જેની પ્રવૃત્તિ

पालयितुमप्रवृत्तान् पश्यत=अवलोकयतेत्यर्थः ॥ सू० २ ॥

किञ्च—'से बेमि' इत्यादि।

मूलम्—से बेमि, से जहानामए कुम्मे हरए विणिविट्ठचित्ते पच्छन्नपलासे उम्मग्गं से नो लहइ ॥ सू० ३ ॥

छाया—स ब्रवीमि, तद्यथानामकः कूर्मो ह्रदे विनिविष्टचित्तः पलाशप्रच्छन्नः उन्मार्गं स न लभते ॥ सू० ३ ॥

टीका—सः=भगवन्मुखादवगततत्त्वः अहं ब्रवीमि=अनात्मप्रज्ञस्य दृष्टान्तं कथयामि। तद्यथा नामकः—कश्चित् कूर्मः=कच्छपः, ह्रदे=जलाशये विनिविष्टचित्तः= समासक्तमनाः, अपि च पलाशप्रच्छन्नः=जलशैवालनलिनीपत्रैराच्छादितः। सूत्रे तु प्राकृतत्वात् प्रच्छन्नशब्दस्य व्यत्ययेन पूर्वनिपातः। उन्मार्गम्—ऊर्ध्वमार्गं—जलाद्-बहिर्देशं न लभते, तथा सः=अनात्मप्रज्ञः उन्मार्गम्=ऊर्ध्वमार्गं—मोक्षमार्गं न लभत इत्यर्थः। यथा जलाशयसमासक्तत्वाज्जलशैवालकमलिनीपत्राच्छादितत्वाच्च कच्छपो ह्रद एव तिष्ठति न जलाद्बहिर्देशं प्राप्नोति, तथाऽनात्मप्रज्ञः संसारमहाह्रदे

जो शिथिल हैं—उस तरफ जिनकी प्रवृत्ति नहीं है, ऐसे देखे जाते हैं।सू०२।

तथा—"से बेमि" इत्यादि।

सूत्रकार कहते हैं कि मैं अनात्मप्रज्ञका दृष्टान्त कहता हूं। जिस प्रकार महाह्रद (द्रह) आदि जलाशयमें रहता हुआ कच्छप उसमें रहे हुए जल शैवाल और कमलपत्रोंसे ढका रहने पर जलसे बाहर होकर-तट नहीं पाता है, उसी प्रकार जो अनात्मप्रज्ञ है वह भी जब तक संसार से बाहर नहीं होता तब तक मुक्तिके मार्गको प्राप्त नहीं करता है।

भावार्थ—जैसे जलाशयमें रहा हुआ कच्छप कि जिसकी भावना उससे बाहर निकलनेकी नहीं है, प्रत्युत उसीमें रहनेके लिये जिसका

નથી, એવા દેખાય છે. (સૂ૦૨)

તથા—"से बेमि" ઈત્યાદિ!

સૂત્રકાર કહે છે કે હું અનાત્મપ્રજ્ઞનું દૃષ્ટાંત કહું છું. જે રીતે મહાહ્રદ (દ્રહ) આદિ જળાશયમાં રહેનાર કાચબો તેમાં રહેલા જળ, સેવાળ અને કમળપત્રોથી ઢાંકેલ રહેવાથી બહાર નીકળી કિનારો મેળવી શકતો નથી એ જ પ્રકારે જે અનાત્મપ્રજ્ઞ છે એ પણ જ્યાં સુધી સંસારથી બહાર નથી થતો ત્યાં સુધી મુક્તિના માર્ગને મેળવી શકતો નથી.

ભાવાર્થ—જેવી રીતે જળાશયમાં રહેલો કાચબો કે જેની ભાવના બહાર નિકળવાની નથી પણ તેમાં રહેવાને માટે જેનું મન આસક્ત છે અને તેમાં

विषयनिविष्टचित्तत्वात् कर्मपटलाच्छादितत्वाच्च तत्रैव निमज्जन् अवतिष्ठते, न तु मोक्षमार्गं प्राप्नोतीति भावः ।

यद्वा-उन्मार्गम्-ऊर्ध्वमार्गं विवररूपं न लभते । अयं भावः-कश्चिन्महाह्रदः शैवालाच्छादितो विविधजलचराश्रय आसीत् । तत्रैकदा तत्तटस्थजम्बूवृक्षस्य सुपक्वं फलमेकं शैवालोपरि निपपात, येन शैवालमध्ये कच्छपग्रीवामात्रप्रमाणं विवरं संजातम् । अथ निजयूथपरिभ्रष्टः कश्चित् कच्छपो भ्राम्यन् शैवालमध्यगते विवरे स्व-

चित्त आसक्त है और जो उसमें रहनेसे ही जल, शैवाल, कमलिनीके पत्रोंसे लिपटा रहता है,कभी भी वह ह्रद (द्रह)से बाहर नहीं होता, प्रत्युत उसीमें मग्न रहता है, उसी प्रकार जो अनात्मप्रज्ञ हैं वे संसार रूपी महाह्रदमें विषयोंमें आसक्त तथा कर्मपटलसे आवृत होनेके कारण डूबते उतराते रहते हैं और मुक्तिके मार्गसे सदा वंचित बने रहते हैं।

अथवा-उन्मार्ग शब्दका अर्थ विवर (छिद्र) रूप ऊर्ध्वमार्ग है। महाह्रदके कच्छपकी तरह अनात्मप्रज्ञ जीव इस मार्गको नहीं पाते हैं। जैसे कोई एक महाह्रद था। उसमें बहुत ज्यादा शैवाल-काई छाई हुई थी। उसमें अनेक जलजन्तु रहते थे। उसके तट पर एक जामुनका वृक्ष भी था, जो पके हुए फलोंसे लदालद भरा हुवा था। उसमेंसे एक जामुन टूट कर उस महाह्रदकी शैवाल पर जा गिरा। उसके गिरनेसे उस शैवालपटलमें कच्छपकी गरदन प्रमाण जितना एक छिद्र हो गया। इसके कुछ समय बाद अपने समुदाय-साथियोंसे वियुक्त हुआ कोई

રહેવાથી જે જળ, સેવાળ, કમળપત્રોથી લપટાઈ રહે છે, કયારેય તે જળાશયથી બહાર નથી નીકળતો, પણ તેમાંજ મગ્ન રહે છે. એ જ રીતે જે અનાત્મપ્રજ્ઞ છે, તે સંસારરૂપી મહાહ્રદમાં વિષયોમાં આસકત તથા કર્મથી ઘેરાયેલ હોવાને કારણે ડુબતો-અથડાતો રહે છે અને મુકિતના માર્ગથી સદા વંચિત બને છે.

અથવા—ઉન્માર્ગ શબ્દનો અર્થ વિવર (છિદ્ર) રૂપ ઉર્ધ્વમાર્ગ છે. મહાહ્રદના કાચબાની માફક અનાત્મપ્રજ્ઞ જીવ એ માર્ગને મેળવી શકતા નથી. જેમ કોઈ એક મોટું જળાશય હતું. એમાં ઘણો જ સેવાળ-કીચડ જામેલ હતો. એમાં અનેક જળ-જંતુઓ રહેતાં હતાં. એના કિનારે એક જાંબુનું ઝાડ હતું જે પાકેલાં ફળોથી લચ્યું પચ્યું હતું. તેમાંથી એક જાંબુ જળાશયમાં સેવાળ ઉપર જઈ પડયું. એના પડવાથી જામેલા સેવાળમાં કાચબાની ડોક આવી શકે એવું છિદ્ર પડયું. આના થોડા સમય બાદ પોતાના સાથી સમુદાયથી છુટો પડેલ એક કાચબો ત્યાં આવી પહોંચ્યો. તેણે તે સેવાળના છિદ્રની અંદર પોતાની ડોક

कीयग्रीवां प्रवेश्योर्ध्वप्रदेशे चक्षुःप्रचारं चक्रे। ततोऽसौ शरच्चन्द्रिकया शुक्लीकृते बहुतरतारकासमलंकृते गगनतले विद्योतमानं पूर्णचन्द्रमलोकयत्। तदवलोकनेन चातीव प्रमुदितस्य तस्य मनसि विचारः समुदपद्यत, यदि मदीयबान्धवा एतत् स्वर्गसदृशमदृष्टपूर्वं पश्यन्ति ततः शोभनं भवेदित्येतदवधार्य बन्धूनामन्वेषणार्थमितश्चेतश्च बभ्राम। संप्राप्य च निजान् परिवारान् पुनरपि तद् विवरं मार्गयितुं सर्वतः पर्यटति स्म। जलाशयस्य तस्य विस्तीर्णतया तदुदकप्राचुर्याच्च पुनरसौ तद् विवरं न लेभे। तद्वत् संसारहृदे जीवकच्छपः कर्मशैवालविवरादिह मनुष्यार्यक्षेत्रसुकु-

---

एक कछुवा घूमता २ वहां पर आ निकला। उसने उस शैवालके विवरमें अपनी ग्रीवाको निकाल कर ऊपरको देखना प्रारंभ किया तो क्या देखता है कि शरदकालीन चन्द्रिका-ज्योत्स्नासे शुभ्र एवं अनेक तारोंसे प्रकाशित आकाशमें पूर्ण चन्द्रमण्डल चमक रहा है। उसे देखकर वह चित्तमें अत्यन्त प्रसन्न हुआ और विचारने लगा-कि अहा! यह कितना सुरम्य दृश्य है। यदि मेरे समस्त बन्धुजन इस अदृष्ट पूर्व स्वर्ग जैसे सुन्दर प्रदेशको देखें तो बहुत अच्छा हो। ऐसा निश्चय कर वह अपने बन्धुओंकी खोजमें वहांसे निकला और इधर उधर घूम २ कर उनकी तपास करने लगा। जब वे सब उसे मिल गये तो वह उन्हें साथ ले कर उस विवरकी ओर चला, परन्तु वह जलाशय अधिक विस्तृत और अधिक पानीसे पूर्ण भरा हुवा था, इसलिये उसे वह विवर फिर न मिल सका। इसी प्रकार यह अनात्मप्रज्ञ जीवरूपी कछुआ भी इस संसाररूप ह्रदमें पडा हुवा है और कर्मरूपी शैवालके विवरसे

કાઢી ઉપર જોવા માંડયું. તો શું જુએ છે કે શરદઋતુનો ચંદ્રની જ્યોત્સ્નાથી શુભ્ર અને અનેક તારાઓથી પ્રકાશિત આકાશ કે જેમાં પૂર્ણ ચંદ્રમંડળ ચમકી રહ્યું છે. તે જોઇ મનમાં અત્યંત ખુશી ઉપજી અને વિચારવા લાગ્યો કે અહા! કેટલું સુરમ્ય દૃશ્ય છે. જો મારા સમસ્ત બંધુજન આ અદૃષ્ટપૂર્વ સ્વર્ગ જેવા સુંદર પ્રદેશને જુએ તો ઘણું સારૂં થાય. એવો નિશ્ચય કરી તે પોતાના સમુદાયની શોધમાં નીકળ્યો અને આડા અવળી ફરી એની તપાસ કરવા માંડયો. જ્યારે બધા તેને મળી ગયા ત્યારે તે એ બધાને સાથમાં લઇ છિદ્રની તરફ ચાલ્યો; પરંતુ જળાશય ખૂબ મોટું હતું અને જળથી પૂરેપૂરૂં ભરેલ હતું આથી એને એ છિદ્ર ફરી મળી શકયું નહીં. આ જ રીતે અનાત્મપ્રજ્ઞ જીવરૂપી કાચબો પણ સંસારરૂપી હ્રદમાં પડેલ છે. અને કર્મરૂપી સેવાળના વિવરથી

लोत्पत्तिसम्यक्त्वपर्यन्तरूपं व्योमतलं प्राप्य मोहवशात् स्वजनचिन्तया भोगचिन्तया वा ततः परावृत्तः सन् पुनः संसारमहाह्रद एव पर्यटति न तु मोक्षमार्गं लभते। तस्माद् भवशतसहस्रदुर्लभं कर्मविवरभूतं सम्यक्त्वं लब्ध्वा नैव तत्र प्रमादः कार्य इति ॥ सू० ३ ॥

अनात्मप्रज्ञानामन्यमपि दृष्टान्तमाह—'भंजगा' इत्यादि।

मूलम्—भंजगा इव संनिवेसं णो चयंति, एवं एगे अणेगरूवेहिं कुलेहिं जाया, रूवेहिं सत्ता कलुणं थणंति, णिदाणतो ते ण लभंति मोक्खं ॥ सू०४ ॥

छाया—भञ्जका इव सन्निवेशं नो त्यजन्ति, एवमेकेऽनेकरूपेषु जाताः, रूपेषु सक्ताः करुणं स्तनन्ति, निदानतस्ते न लभन्ते मोक्षम् ॥ सू० ४ ॥

मनुष्यपर्याय, आर्यक्षेत्र, सुकुलमें जन्म और सम्यक्त्वका लाभरूप व्योमतल (आकाश) की प्राप्ति कर मोहके वशसे अपने सगे सम्बन्धियों की एवं भोगोंकी चिंतामें फँस कर उन सब प्राप्त हुए शुभ अवसरोंको व्यर्थ गवां देता है, और संसाररूपी महाह्रदमें ही परिभ्रमण करता रहता है। वहांसे वह अपने उद्धारके मार्गकी ओर नहीं बढता है—मोक्षके मार्गको नहीं पाता है। इसलिये सूत्रकार शिक्षा देते हैं कि—हे शिष्यजन! सम्यक्त्वको कि जिसकी प्राप्ति इस जीवको हजारों भवोंमें भी दुर्लभ है और जो कर्मोंका विवरभूत है, उसे प्राप्त कर फिर उसकी रक्षा करनेमें प्रमाद करना उचित नहीं है ॥ सू०३ ॥

अनात्मप्रज्ञोंके ऊपर और भी दृष्टान्त सूत्रकार प्रकट करते हैं—'भंजगा इव' इत्यादि—

મનુષ્યપર્યાય, આર્યક્ષેત્ર, સુકુળમાં જન્મ અને સમ્યક્ત્વના લાભરૂપ વ્યોમતળ (આકાશ)ની પ્રાપ્તિ કરી મોહના વશ થઈ પોતાના સગા-સંબંધીઓની અને ભોગોની ચિંતામાં ફસાઈ એને પ્રાપ્ત થયેલા બધા સુઅવસરને વ્યર્થ ગુમાવી દે છે અને સંસારરૂપી મહાહ્રદમાં જ પરિભ્રમણ કરતો રહે છે. એમાંથી એ પોતાના ઉદ્ધારના માર્ગની તરફ વધી શકતો નથી, મોક્ષના માર્ગને મેળવી શકતો નથી. માટે સૂત્રકાર શિક્ષા દે છે કે હે શિષ્યજન! સમ્યક્ત્વ કે જેની પ્રાપ્તિ હજારો ભવમાં પણ આ જીવને દુર્લભ છે અને જે કર્મના વિવરભૂત છે, એને પ્રાપ્ત કરી તેની રક્ષા કરવામાં પ્રમાદ કરવો ઉચિત નથી. (સૂ૦૩)

અનાત્મપ્રજ્ઞો અંગે બીજું દૃષ્ટાંત સૂત્રકાર પ્રગટ કરે છે-"भंजगा इव" ઇત્યાદિ.

टीका=इव=यथा भञ्जकाः=वृक्षाः सन्निवेशं=स्वकीयं स्थानं न त्यजन्ति=कर्म-परतन्त्रतया स्थावरत्वमासाद्य नापसरन्ति। एवम्=अनेन प्रकारेण एके=अनात्मप्रज्ञाः, अनेकरूपेषु=उच्चावचेषु कुलेषु=उग्रभोगादिषु श्वपाकादिषु च जाताः, रूपेषु=रूपादि-विषयेषु सक्ताः=गृद्धिमापन्नाः करुणं=सदुःखं स्तनन्ति=विलपन्ति, तथाहि— " किमिदमचिन्तितमसदृशमनिष्टमतिकष्टमनुपमं दुःखम् । सहसैवोपनतं मे, नैरयिकस्येव सत्त्वस्य " ॥ १ ॥ इति ।

जैसे वृक्ष स्थावरनामकर्मके उदयकी परतन्त्रतासे स्थावरपर्यायकी प्राप्तिसे अपने स्थानको नहीं छोड़ते हैं इसी प्रकार जो अनात्मप्रज्ञ जीव हैं वे भी उग्रभोगादि उच्च एवं चण्डाल आदि नीच कुलोंमें उत्पन्न होकर रूपादिक पंच इन्द्रियोंके विषयों में अत्यन्त गृद्ध हो बुरी तरह चिल्लाते हैं—कहते हैं कि जिस प्रकार नारकी अचिन्तित असदृश अनुपम अनिष्ट और अतिकष्टप्रद दुःखोंको सहसा भोगते रहते हैं उसी प्रकार मेरी भी यही हालत है। इस प्रकारके ये दुःख मेरे ऊपर कहांसे आ कर टूट पडे।

दुःखोंको भोगते हुए भी वे अनात्मप्रज्ञ जीव इनके मूलकारण कर्मोंसे वियुक्त नहीं होते हैं। यदि ऐसा ही होता कि जिन कर्मोंके उदय में जिनका फल भोग लिया जाय ऐसे कर्म यदि नष्ट हो जाते या उनसे उनका छुटकारा हो जाता तो यह बात मानी जा सकती थी कि उन

જેમ વૃક્ષ સ્થાવરનામકર્મના ઉદયની પરતંત્રતાથી સ્થાવરપર્યાય કે જેમાં એક સ્થળથી બીજા સ્થળમાં અવર જવરની ક્રિયા થતી નથી અથવા તે પોતે જ્યાં છે તે સ્થળેથી ફરવામાં પોતાનું સ્થાન છોડી શકતું નથી. આ પ્રકારે જે અનાત્મપ્રજ્ઞ જીવ છે એ પણ ઉગ્રભોગાદિ ઉચ્ચાં અને ચંડાલ આદિ નીચ કુળોમાં ઉત્પન્ન થઈને રૂપાદિક પાંચ ઇન્દ્રિયોના વિષયોમાં અત્યંત મુગ્ધ બની ખરાબ રીતે ડુબતો રહે છે. કહે છે કે જે પ્રકારે નારકી અચિન્તિત અસદૃશ અનુપમ અનિષ્ટ અતિકષ્ટપ્રદ દુઃખોને ભોગવ્યા કરે છે. એ જ રીતે મારી પણ એ જ હાલત છે. આ પ્રકારનાં એ દુઃખ મારા ઉપર ક્યાંની આવી તુટી પડ્યાં.

દુઃખોને ભોગવતાં પણ એ અનાત્મપ્રજ્ઞ જીવ એનાં મૂળકારણ કર્મોથી છુટતો નથી. કદાચ એવું હોત કે જે કર્મોના ઉદયમાં જેનું ફળ ભોગવી લેવામાં આવે એવાં કર્મ કદાચ નાશ પામે અથવા એનાથી તેનો છૂટકારો થઇ જાય તો એ વાત માની શકાત કે એ કર્મોથી તેની મુક્તિ થઈ ચૂકી. પરંતુ એવું

किन्तु ते=अनात्मप्रज्ञाः निदानतः=दुःखस्य मूलकारणतः-कर्मत इत्यर्थः, मोक्षम्=वियोगं न लभन्ते, तपःसंयमानासेवनेन कर्मबन्धापगमं न प्राप्नुवन्तीत्यर्थः।

अयं भावः-यथा वृक्षाः शीतवातातपच्छेदनभेदनशाखाकर्षणमोटनभञ्जनादिनानाविधोपद्रवान् सहमाना अपि स्थावरनामकर्मोदयात्स्वस्थानतो वियुक्ता न न भवन्ति, तथा-अनात्मप्रज्ञास्तनयवनिताभिस्तिरस्कृता अपि विविधाधिव्याधिपरिग्रस्ता अपि, राजपुरुषतस्करादिभिः सर्वस्वापहरणपुरस्सरं लुण्ठिता अपि, मातापितृपुत्रकलत्रादिभिर्वियुक्ता अपि, 'मधुबिन्दु' न्यायेनाल्पसुखदुरन्तदुःखपरिपूरितगृहस्थभावमपरित्यजन्तः सकरुणं विलपन्ति, किन्तु सकलदुःखानुषङ्गनिबन्धनकर्मबन्धतो वियुक्ता नैव भवन्तीति ॥ सू० ४ ॥

कर्मोंसे उसकी मुक्ति हो चुकी; परन्तु ऐसा तो होता नहीं है; क्यों कि फल भोगनेसे कर्मोंका सर्वथा विनाश नहीं होता है, प्रत्युत तप और संयम की आराधनासे ही जीव कर्मोंसे छुटकारा-मुक्ति पाता है। अनात्मप्रज्ञ मुक्तिके कारणोंसे परे रहते हैं। मोक्षके साधनोंका सेवन-आचरण नहीं करते, अतः कर्मबन्धसे रहित भी नहीं हो सकते हैं।

भावार्थ—जिस प्रकार वृक्ष, शीत, वायु, धूप, छेदन, भेदन, शाखा का खेंचना, उसका मोडना और काटना आदि अनेक प्रकारके उपद्रवों को सहते रहते हैं, तो भी स्थावरनामकर्मके उदयसे वे अपने गृहीत स्थान से जुदा नहीं हो सकते हैं। इसी प्रकार अनात्मप्रज्ञ जीव भी पुत्र-स्त्री आदिकोंसे तिरस्कृत होते हुए भी अनेक प्रकारकी आधिव्याधियोंको झेलते हुए भी राजपुरुष एवं चौर आदिके द्वारा सर्वस्वहरणपूर्वक लूटे गये होने पर भी, और तो क्या; माता, पिता, पुत्र और स्त्री आदिकोंसे

તો બનતું નથી; કેમ કે ફળ ભોગવવાથી કર્મોનો સર્વથા વિનાશ થતો નથી; તપ અને સંયમની આરાધનાથી જ જીવ કર્મોથી મુક્તિ મેળવે છે. અનાત્મપ્રજ્ઞ મુક્તિના કારણથી દૂર રહે છે. મોક્ષના સાધનોનું સેવન-આચરણ કરતા નથી માટે કર્મબન્ધોથી રહિત પણ થતા નથી.

ભાવાર્થ—જે પ્રકારે વૃક્ષ, શીત, વાયુ, ધૂપ, છેદન, ભેદન, ડાળને ખેંચવું કે તેને તોડવી, મરડવી આદિ પ્રકારના ઉપદ્રવોને સહ્યા કરે છે; તો પણ સ્થાવરનામકર્મના ઉદયથી પોતાના સ્થાન ઉપરથી હટી શકતું નથી. આ જ રીતે અનાત્મપ્રજ્ઞ જીવ પણ પુત્ર-સ્ત્રી ઈત્યાદિથી તિરસ્કૃત થતો હોવા છતાં, અનેક પ્રકારની આધિ-વ્યાધિઓમાં રીબાતો, રાજપુરૂષ અને ચોર વગેરેથી સર્વસ્વ લુંટાઈ જવા છતાં પણ, માતા, પિતા, પુત્ર અને સ્ત્રી ઈત્યાદિથી અલગ

अनात्मप्रज्ञानां तेषु तेषु कुलेषु जन्म कस्मै प्रयोजनाय भवती ? ति जिज्ञासायामाह—' अहे 'त्यादि ।

मूलम्—अह पास तेहिं कुलेहिं आयत्ताए जाया ॥सू०५॥

छाया—अथ पश्य तेषु कुलेषु आत्मत्वाय जाताः ॥ सू० ५ ॥

टीका—अथ हे शिष्य ! त्वं पश्य, अनात्मप्रज्ञास्तेषु=उच्चावचेषु कुलेषु आत्मत्वाय=आत्मकृतकर्मविपाकानुभवाय जाताः=जन्म प्राप्ताः नानाविधदुर्दशापन्ना भवन्ति, अतः श्रुतचारित्रधर्माराधनमेव श्रेयस्करमिति ॥ सू०५ ॥

वियुक्त होते हुए भी, मधुबिन्दुकी प्राप्ति करनेके लिये लोलुपी बने हुए मनुष्यकी तरह, अल्प सुख और दुरन्त दुःखोंसे परिपूर्ण गृहस्थभावको नहीं छोड़ते हैं और दुःखोंसे दुःखित होते रहते हैं, तो भी समस्त दुःखोंकी परम्पराका प्रधान कारण जो कर्मबन्ध है उससे वियुक्त नहीं होते हैं ॥ सू० ४ ॥

अनात्मप्रज्ञोंका उन २ कुलोंमें जन्म किस प्रयोजनके लिये होता है इस प्रकारकी जिज्ञासामें सूत्रकार कहते हैं-" अह पास " इत्यादि ।

सूत्रकार पूर्वोक्त जिज्ञासाका समाधान करने निमित्त शिष्यजनसे कहते हैं कि हे शिष्य! अनात्मप्रज्ञोंका जो उच्च नीच कुलोंमें जन्म होता है वह उनके द्वारा पूर्वमें किये गये कर्मोंके विपाकके अनुभव करने के लिये होता है। कर्मोंके वे कठिनतर विपाकोंको भोगते हुए अनेक प्रकारकी दुर्दशाओंसे गृहीत होते रहते हैं। इसलिये इन दुःखोंसे छुटकारा पानेका इलाज एक यही है कि श्रुतचारित्ररूप धर्मका आराधन

પડી જવા છતાં પણ, મધુબિન્દુની પ્રાપ્તિ કરવા લોલુપ્ત બનેલા મનુષ્યની માફક, અલ્પ સુખ અને અગણિત દુઃખોથી પરિપૂર્ણ ગૃહસ્થભાવને છોડતો નથી. અને દુઃખોથી દુઃખિત થતો રહે છે, તો પણ સમસ્ત દુઃખોની પરમ્પરાનું કારણ જે કર્મબન્ધ છે એનાથી છૂટો થઈ શકતો નથી. (સૂ૦ ૪)

અનાત્મપ્રજ્ઞોનો તે તે કુળોમાં જન્મ ક્યા પ્રયોજનથી થાય છે ? આ પ્રકારની જીજ્ઞાસામાં સૂત્રકાર કહે છે. " अह पास " ઈત્યાદિ !

સૂત્રકાર પૂર્વોકત જીજ્ઞાસાનું સમાધાન કરવા નિમિત્તે શિષ્યજનથી કહે છે કે હે શિષ્ય ! અનાત્મપ્રજ્ઞોનો જે ઉચ્ચ નીચ કુળોમાં જન્મ થાય છે તે એના દ્વારા પૂર્વનાં કરેલાં કર્મોના વિપાકના અનુભવ કરવા માટે થાય છે. કર્મોના એ કઠિનતર વિપાકોને ભોગવતાં એ અનેક પ્રકારની દુર્દશાઓથી ઘેરાઈ જાય છે. આ માટે એ દુઃખોથી છુટકારો મેળવવાનો ઈલાજ એક આ જ છે કે

स्वकृतकर्मोदयाद् विविधरोगादिकं प्राप्नुवन्तीत्याह–'गंडी' इत्यादि।

मूलम्–गंडी अहवा कुट्टी, रायंसी अवमारियं।
काणियं झिमियं चेव, कुणियं खुज्जियं तहा ॥ १ ॥
उदरिं च पास मूयं च, सूणियं च गिलासिणिं।
वेवयं पीढसप्पिं च, सिलिवयं महुमेहणिं ॥ २ ॥
सोलस एए रोगा, अक्खाया अणुपुव्वसो।
अह णं फुसंति आयंका, फासा य असमंजसा ॥ ३ ॥
मरणं तेसिं संपेहाए, उववायं चवणं च नच्चा।
परिपागं च संपेहाए, तं सुणेह जहा तहा ॥४॥ सू० ६॥

छाया–गण्डी अथवा कुष्ठी, राजांसी अपस्मारिकः।
काणत्वं झिम्मियं चैव, कुणित्वं कुब्जत्वं तथा ॥ १ ॥
उदारिणं च पश्य मूकं च, शूनिकं च ग्रासिनम्।
वेपकं पीठसर्पिणं च, श्लीपदिनं मधुमेहिनम् ॥ २ ॥
षोडशैते रोगा आख्याता अनुपूर्वशः।
अथ तं स्पृशन्ति आतङ्काः, स्पर्शाश्चासमञ्जसाः ॥ ३ ॥
मरणं तेषां संप्रेक्ष्य, उपपातं च्यवनं च ज्ञात्वा।
परिपाकं च संप्रेक्ष्य, तच्छृणुत यथा तथा ॥ ४ ॥ सू० ६ ॥

टीका–सकलदुःखनिदानस्य कर्मणः सद्भावे कर्मणो वैचित्र्यादनेकरूपा अव-

---

किया जाय; कारण कि जगतमें जीवोंका कल्याण करनेवाली यही एक वस्तु है ॥ सू० ५ ॥

अपने किये हुए कर्मोंके उदयसे जीव अनेक प्रकारके रोगादिकोंको भोगते हैं; इसे प्रकट करनेके लिये सूत्रकार कहते हैं–"गण्डी" इत्यादि।

कर्म सकल दुःखके कारण हैं। इसीलिये उनके विचित्र उदयमें जीव अनेक प्रकारकी अवस्थाओंका अनुभव करते हैं। इसी विषयको

શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મનું આરાધન કરે; કારણ કે જગતમાં જીવોનું કલ્યાણ કરનાર આ એક જ વસ્તુ છે. (સૂ૦૫)

પોતાના કરેલા કર્મોના ઉદયથી જીવ અનેક પ્રકારના રોગાદિકને ભોગવે છે. આને પ્રગટ કરવા માટે સૂત્રકાર કહે છે " ગંડી " ઈત્યાદિ !

કર્મ સકળ દુઃખનું કારણ છે. આ માટે એના વિચિત્ર ઉદયમાં જીવ અનેક પ્રકારની અવસ્થાઓનો અનુભવ કરે છે. આ વિષયને પૂર્વોક્ત ગાથાઓમાં સૂત્ર-

स्था अनुभवन्ति प्राणिनः। तद् यथा-कर्मविपाकोदयात् कश्चिद् गण्डी=गण्डमालारोगयुक्तः, अथवा-कश्चित् कुष्ठी=कुष्ठरोगी, तथा-कश्चित्-राजांसी=राजयक्ष्मवान्=क्षयरोगाक्रान्तः, तथा कश्चित् अपस्मारिकः=अपस्माररोगयुक्तः-मृगीरोगी, तथा कस्यचित्-काणत्वम्=अक्षिरोगः, तथा-कस्यचित् झिम्मियं=जड़ता, तथा कस्यचित् कुणित्वं=गर्भाधानदोषात् एकचरणे ह्रस्वता एकपाणौ न्यूनता वा-हीनाङ्गत्वम्, तथा कस्यचित् कुब्जत्वं=मातापितृशोणितशुक्रदोषेण गर्भस्थावस्थाया-मुत्पद्यमानः कुब्जरोगः। तथा-हे शिष्य! त्वं कंचित्-उदरिणं=उदररोगिणं पश्य। तथा-कंचिन्मूकम्=अव्यक्तवाचं पश्य, तथा-कंचित्-शूनिकं=शोफरोगयुक्तं पश्य, तथा-ग्रासिनं=भस्मकरोगिणं पश्य। तथा-वेपकं=कम्परोगयुक्तं पश्य। तथा-पीठसर्पिणं=पीठसर्परोगिणं-हस्तगृहीतकाष्ठेन संसरणशीलं पङ्गुविशेषं पश्य। तथा-श्लीपदिनं=हस्तिपदरोगयुक्तं पश्य, तथा-मधुमेहिनं=मधुमेहरोगयुक्तं पश्य।

इन पूर्वोक्त गाथाओंमें सूत्रकारने प्रकट किया है। वे कहते हैं-कोई जीव कर्मके विपाकसे १ गण्डमाला रोगसे पीडित रहता है, कोई २ कुष्ठी होता है, कोई ३ राजयक्ष्मासे-क्षयरोगसे दुःखी होता है, कोई ४ अपस्मार-मृगीरोगसे अक्रान्त रहता है, कोई५ काणा होता है, किसीमें ६ जडता होती है। किसीके ७ कुणिता-हीनाङ्गता होती है-गर्भाधानके दोषसे एक पैरमें या एक हाथमें न्यूनताका नाम हीनाङ्गता है। कोई ८ कुबडा होता है। माता पिताके शोणित शुक्र दोषसे गर्भकी अवस्थामें यह रोग उत्पन्न होता है। कोई पेटके ९ रोगी हैं, कोई १० गुंगे है, किसीके ११ सूजनरोग है, किसीको भस्मक १२ व्याधि है, किसीको १३ कंपरोग है, कोईके १४ पीठ-सर्पका रोग है, इस रोगके रोगी काष्ठकी चिरैया बनवा कर उनके सहारे से चला करते हैं, ये एक तरहके पंगु कहलाते हैं। किसीके १५ श्लीपद रोग होता है। इस रोगमें रोगीका पैर हाथीके पैर जैसा स्थूल हो

કારે પ્રગટ કરેલ છે. કોઈ જીવ કર્મના વિપાકથી ગણ્ડમાલા રોગથી પીડિત રહે છે. કોઈ કોઢનો ભોગ બને છે, કોઇ રાજયક્ષ્મા-ક્ષયરોગથી દુઃખી થાય છે. કોઇ અપસ્માર-મૃગી રોગથી આક્રંદ કરે છે, કોઈ કાણો બને છે, કોઇમાં જડતા હોય છે, કોઇના અંગ ઉપાંગોમાં ખામી હોય છે, કોઈ કુબડો હોય છે, કોઈ પેટનો રોગી હોય છે, કોઈ મુંગો હોય છે, કોઈને શોફ (સોજાનો) રોગ હોય છે, કોઈને ભસ્મક વ્યાધિ હોય છે, કોઈને કમ્પરોગ હોય છે, કોઈને પીઠસર્પનો રોગ હોય છે, જે રોગનો રોગી લાકડાની ઘોડીના આધારે ચાલે છે, જે એક પ્રકારના પાંગળા કહેવાય છે, કોઈને હાથીપગાનો રોગ થાય છે, કોઈને મધુ-

एते षोडश रोगाः अनुपूर्वशः=अनुक्रमेण आख्याताः=कथिताः । अथ=अनन्तरम् आतङ्काः=शीघ्रं जीवितहारिणः शूलादयो व्याधिविशेषाः, स्पर्शाश्च गाढप्रहारादि-जनिताः दुःखविशेषाः असमञ्जसाः=क्रम–यौगपद्य–निमित्ता–निमित्तोत्पन्नाः स्पृश-

जाता है, किसीके १६ मधुमेह हो जाता है, इस रोगके रोगीकी पेशाब शहद जैसे रंगकी होती है और उसमें कीडियां लगने लगती हैं। ये १६ रोग जो यहां यथाक्रमसे बतलाये गये हैं, ये सब अशुभ कर्मोंके उदयके फल विशेष हैं। कर्मोंकें उदयमें जीवोंकी और भी क्या २ अवस्थाएँ होती हैं इन्हें "अथ ते स्पृशन्ति" इत्यादि श्लोकसे प्रकट करते हैं। कोई २ ऐसे भी रोग होते हैं कि जिनमें जीवनका शीघ्र ही अन्त हो जाता है; जैसे उदरशूल वगैरह। गाढ प्रहार आदिसे उत्पन्न हुए दुःखोंका नाम स्पर्श है। जिन रोगोंमें निमित्त चाहे क्रमसे मिलें चाहे अक्रम–एकसाथ मिलें, अथवा क्रम और अक्रमसे वे न भी मिलें; ऐसे क्रमिक और अक्र-मिक निमित्त और अनिमित्तोंसे जो रोग उत्पन्न होते हैं उनका नाम असमंजस है। ये भी अशुभोदयसे ही जीवोंके होते हैं।

शङ्का—अशुभोदय ही उन रोगोंकी उत्पत्तिका निमित्त है, फिर अनिमित्तसे भी असमंजस रोगोंकी उत्पत्तिका कथन आपका ग्राह्य कैसे माना जा सकता है ?

उत्तर—यहां बाह्य कारणोंकी उपस्थिति और अनुपस्थितिकी अपेक्षा

પ્રમેહ થઇ જાય છે, આ સોળ રોગ જે યથાક્રમથી અહીં બતાવ્યા છે આ બધા અશુભ કર્મોના ઉદયના ફળ છે. કર્મોના ઉદયમાં જીવોની બીજી પણ શું શું અવસ્થાઓ બને છે એને "अथ ते स्पृशन्ति" ઈત્યાદિ શ્લોકથી પ્રગટ કરે છે.

કોઈ કોઈ એવો રોગ હોય છે કે જેનાથી જીવનનો તરત જ અન્ત આવી જાય છે, જેમકે ઉદરશૂળ વગેરે. ગાઢ પ્રહાર આદિથી ઉત્પન્ન થયેલ દુઃખોનું નામ સ્પર્શ છે. જે રોગોમાં નિમિત્ત ચાહે ક્રમથી મળે અથવા અક્રમથી. એ ન પણ મળે એવા ક્રમિક અને અક્રમિક નિમિત્ત અને અનિમિત્તથી જે રોગ ઉત્પન્ન થાય છે તેનું નામ અસમંજસ છે. આ પણ અશુભ ઉદયથી જ જીવોને થાય છે.

શંકાઃ—અશુભોદય જ તે રોગોની ઉત્પત્તિનું નિમિત્ત છે. પછી અનિમિત્તથી પણ અસમંજસ રોગોની ઉત્પત્તિનું આપનું કથન ગ્રાહ્ય કેમ માનવામાં આવે ?

ઉત્તર—અહિં બાહ્ય કારણોની ઉપસ્થિતિ અને અનુપસ્થિતિની અપેક્ષાથી

न्ति, तेषां=गृहाऽऽसक्तमनसामसमञ्जसरोगैः क्लेशितानां मरणं संप्रेक्ष्य=पर्यालोच्य उपपातं च्यवनं च देवानां ज्ञात्वा, तथा परिपाकं=मिथ्यात्वाविरत्यादिजनितानामबाधोत्तरकालमुदयावलिकाप्रविष्टानां कर्मणां शारीरमानसदुःखरूपं फलं संप्रेक्ष्य= विचार्य सकलदुःखमूलं कर्म समुच्छेत्तुं तपःसंयमे प्रयतितव्यमित्यर्थः । भोः शिष्याः! तत्=कर्मणां फलं यथा भवति तथा मया वक्ष्यमाणं शृणुत ॥ सू० ६ ॥

संसारिणो विविधं कर्मविपाकमनुभवन्तीति दर्शयितुमाह-'संति पाणा' इत्यादि।

से ही निमित्तका कथन समझना चाहिये। कर्मोंका उदय आभ्यन्तर निमित्त है और यह निमित्त तो प्रत्येक रोगोंमें साधारण कारण पड़ता ही है। उन असमंजस रोगोंसे गृहस्थाश्रममें मग्न हुए जीवों-गृहस्थोंका मरण देख कर तथा देवोंका भी उपपात-जन्म और च्यवन-मरण जान कर, एवं मिथ्यात्व, अविरति आदि कारणकलापसे उत्पन्न-बन्धदशाको प्राप्त और अबाधा कालको छोड़कर उदयावलिमें प्रविष्ट ऐसे कर्मोंका शारीरिक एवं मानसिक दुःखरूप फल अच्छी तरह विचार कर सकल दुःखोंके मूल कारण इन कर्मोंको नाश करनेके लिये तप और संयममें प्रयत्न करना चाहिये। शिष्योंको संबोधन करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि हे शिष्यजन ! इन कर्मोंका फल जिस प्रकार होता है उस प्रकार मैं और कहता हूं, सो तुम सुनो ॥ सू० ६ ॥

संसारी जन कर्मोंके विपाकको भोगते हैं-इसी बातको समझानेके लिये सूत्रकार कहते हैं-" संति पाणा " इत्यादि।

જ નિમિત્ત અને અનિમિત્તનું કથન સમજવું જોઈએ. કર્મોનો ઉદય આભ્યંતર નિમિત્ત છે, તે નિમિત્ત તો પ્રત્યેક રોગોમાં સાધારણ કારણ છેજ. આવા અસમંજસ રોગોથી ગૃહસ્થાશ્રમમાં મગ્ન રહેલા જીવો-ગૃહસ્થોનું મરણ દેખી તથા દેવોનો પણ ઉપપાત-જન્મ અને ચ્યવન-મરણ જાણી, મિથ્યાત્વ અવિરતિ આદિ કારણ કલાપથી ઉત્પન્ન બંધદશાને પ્રાપ્ત અને અબાધાકાળને છોડીને ઉદયાવલીમાં પ્રવિષ્ટ એવા કર્મોના, શારીરિક અને માનસિક દુઃખરૂપ ફળ સારી રીતે વિચાર કરી, સકળ દુઃખોના મૂળ કારણ આ કર્મોને નાશ કરવા માટે, તપ અને સંયમમાં પ્રયત્ન કરવો જોઈએ. શિષ્યોને સંબોધન કરતાં સૂત્રકાર કહે છે કે હે શિષ્યજન ! આ કર્મોનાં ફળ જે પ્રકારથી થાય છે એ પ્રકાર ફરીથી વધુ તમોને કહું છું, તે તમે સાંભળો. (સૂ૦ ૬)

સંસારી જન કર્મોના વિપાકને ભોગવે છે આ વાત સમજાવવા સૂત્રકાર કહે છે. " संति पाणा " ઈત્યાદિ—

मूलम्—संति पाणा अंधा तमसि वियाहिया, तमेव सइं असइं अइअच्च उच्चावयफासे पडिसंवेएइ, बुद्धेहिं एयं पवेइयं ॥७॥

छाया—सन्ति प्राणा अन्धास्तमसि व्याख्याताः, तामेव सकृत् असकृत् अतिगत्य उच्चावचान् स्पर्शान् प्रतिसंवेदयन्ति, बुद्धैरेतत्प्रवेदितम् ॥ सू० ७ ॥

टीका—ये प्राणाः=प्राणिनः तमसि=द्रव्यान्धकारे नरकादौ भावान्धकारे मिथ्यात्वादौ वा सन्ति=विद्यन्ते ते अन्धाः=हेयोपादेयविवेकरहिताः व्याख्याताः=कथितास्तीर्थङ्करैः। किंच—तामेवावस्थां गण्डकुष्ठादिरोगजनितामेकेन्द्रियादिजाति-प्राप्तिरूपां वा, सकृद्=एकवारम् असकृत्=अनेकवारं वा अतिगत्य=अनुभूय तत्र—उच्चावचान्=तीव्रमन्दान् स्पर्शान्=दुःखविशेषान् प्रतिसंवेदयन्ति=अनुभवन्ति, उक्ते वक्ष्यमाणे च विषये श्रद्धोत्पादनाय सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिनं प्रत्याह—बुद्धैरित्यादि। एतद् बुद्धैः=सर्वज्ञैस्तीर्थङ्करैः प्रवेदितम्=प्रबोधितं तस्मादेतन्मम वचनं श्रद्धेयमिति भावः ॥ सू० ७ ॥

जो प्राणी द्रव्य अन्धकाररूप नरकादि गतियोंमें एवं भाव—अन्धकार-रूप मिथ्यात्व आदिमें वर्तमान हैं वे द्रव्यरूपसे सूझते होते हुए भी हेय और उपादेयके विवेकसे रहित होनेसे भावरूपसे अंधे ही हैं ऐसा तीर्थङ्करोंका कहना है। ऐसे ही जीव गण्डकण्ठादि रोगोंसे विशिष्ट अवस्था एवं एकेन्द्रियादिक जातिकी प्राप्तिरूप पर्यायको बारबार या एक बार भोगकर तीव्र और मन्द दुःखविशेषोंको भोगा करते हैं। कहे गये अथवा आगे कहे जानेवाले विषयमें विश्वास उत्पन्न करनेके लिये श्री सुधर्मास्वामी श्री जम्बूस्वामीके प्रति कहते हैं कि ये जो कुछ मैंने कहा है, अथवा आगे भी जो कुछ कहा जायगा वह मेरी निजी कल्पना नहीं है, किन्तु यह सर्वज्ञके वचन हैं, ऐसा समझकर मेरे वचनों पर तुम विश्वास रखो ॥ सू० ७ ॥

જે પ્રાણી દ્રવ્યઅંધકારરૂપ નરકાદિ ગતિયોમાં, ભાવ અંધકારરૂપ મિથ્યાત્વ આદિમાં વર્તમાન છે તે દ્રવ્યરૂપથી દેખતા હોવા છતાં પણ હેય અને ઉપાદેયના વિવેકથી રહિત હોવાથી ભાવરૂપથી આંધળા જ છે, એવું તીર્થંકરોનું કહેવું છે. એવા જીવ ગંડ, કુષ્ઠાદિ રોગોના ભોગ બની અને એકેન્દ્રિયાદિક જાતિની પ્રાપ્તિરૂપ પર્યાયને એકવાર અથવા વારંવાર ભોગવી તીવ્ર અને મંદ દુઃખ ઈત્યાદિને ભોગવે છે. કહેવાઈ ગયેલ અથવા આગળ કહેવામાં આવનાર વિષયમાં વિશ્વાસ ઉત્પન્ન કરવા માટે શ્રી સુધર્માસ્વામી શ્રી જમ્બૂસ્વામીને કહે છે કે આ જે કાંઈ મેં કહ્યું છે અને આગળ પણ જે કાંઈ કહેવામાં આવશે એ મારી

किञ्च—' संति पाणा ' इत्यादि ।

मूलम्—संति पाणा वासगा, रसगा, उदए, उदयचरा, आगासगामिणो पाणा पाणे किलेसंति ॥ सू० ८ ॥

छाया—सन्ति प्राणा वासकाः, रसगाः, उदके, उदकचराः, आकाशगामिनः प्राणाः प्राणिनः क्लेशयन्ति ॥ सू० ८ ॥

टीका—वासकाः=शब्दकरणसमर्था द्वीन्द्रियादयः तथा रसगाः=तिक्तकटुकादिरसवेदकाः सञ्ज्ञिन इत्यर्थः, तथा—उदके=अप्काये स्थिता अप्कायिका इत्यर्थः, तथा—उदकचराः=जलचरा मत्स्यकच्छपादयः, अत्र स्थलचराः सर्पादयः पक्षिणश्चापि केचन जलाश्रितत्वाज्जलचरा उच्यन्ते । तथा—आकाशगामिनः=पक्षिणश्च, इत्येते प्राणाः=प्राणिनः सन्ति । ते सर्वेऽपि प्राणाः=प्राणिनः, प्राणान्=अपरान् जीवान् क्लेशयन्ति—आहाराद्यर्थं द्वेषावेशाद्वा पीडयन्ति ॥ सू० ८ ॥

रसना—इन्द्रियके सद्भावसे शब्द करनेमें समर्थ ऐसे द्वीन्द्रियादिक जीव, तथा तिक्त—कडुकादिक रसोंका अनुभवन करनेवाले संज्ञी जीव, पानी आदि कायमें स्थित अप्कायिक जीव—मछली कछुवा आदि जलचर जीव, सर्प पक्षी वगैरह स्थलचर जीव और आकाशमें उड़नेवाले पक्षी आदि नभचर जीव ये सब प्राणी आहारादिकके निमित्त, दूसरे जीवोंको क्लेशित करते हैं तथा द्वेषके आवेशसे उन्हें पीडा भी पहुंचाते हैं।

भावार्थ—द्वीन्द्रियसे लेकर संज्ञी असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यन्त समस्त जलचरादिक जीव परस्परमें एक दूसरेको आहारादिकके निमित्तसे

પોતાની કલ્પના નથી; પરંતુ આ સર્વજ્ઞનાં વચન છે, એવું સમજી મારા વચનો પર તમે વિશ્વાસ રાખો. (સૂ૦ ૭)

રસના ઈન્દ્રિયના સદ્‌ભાવથી શબ્દ કરવામાં સમર્થ એવા દ્વીન્દ્રિયાદિક જીવ તથા તિક્ત કટુક આદિ રસોનો અનુભવ કરવાવાળા સંજ્ઞી જીવ, પાણીમાં રહેનારા અપ્કાયિક જીવ—માછલાં, કાચબા વગેરે જલચર જીવ, સર્પ પક્ષી વગેરે સ્થળચર જીવ અને આકાશમાં ઉડનારાં પક્ષી આદિ નભચર જીવ આ બધા પ્રાણી આહારાદિકના નિમિત્તથી બીજા જીવોને કલેશિત કરે છે તથા દ્વેષના આવેશથી એમને પીડા પણ પહોંચાડે છે.

ભાવાર્થ—દ્વીન્દ્રિયથી લગાવી સંજ્ઞી અસંજ્ઞી પંચેન્દ્રિય પર્યંત સમસ્ત જળચરાદિક જીવ પરસ્પરમાં એક બીજાને આહારાદિકના નિમિત્તથી અથવા દ્વેષાદિકના

पुनरपि संसारिणां दशां दर्शयितुमाह-' पास लोए ' इत्यादि ।

मूलम्-पास लोए महब्भये, बहुदुक्खा हु जंतवो ॥सू०९॥

छाया-पश्य लोके महद्भयं, बहुदुःखा हु जन्तवः ॥ सू० ९ ॥

टीका-हे शिष्य! लोके=चतुर्दशरज्ज्वात्मके जगति महद्भयं=ज्ञानावरणीयादि-कर्मोदयवशात् प्राणिनामनादिकालतो विविधं दुरन्तं भयं पश्य । हु=यतः जन्तवः प्राणिनः, बहुदुःखाः=कर्मोदयवशाद् विविधानन्तदुःखाः सन्ति ॥ सू०९ ॥

अथवा द्वेषादिकके आवेशसे पीडित किया करते हैं । कोई २ पक्षी भी जो जलके ही आश्रित रहते हैं जलचर माने गये हैं ॥सू०८॥

पुनरपि संसारी जीवोंकी दशाको प्रकट करनेके लिये सूत्रकार कहते हैं—" पास लोए" इत्यादि ।

शिष्यको संबोधन करते हुए सूत्रकार कह रहे हैं कि हे शिष्य! तुम देखो, इस संसारमें जीवोंको थोड़ी सी भी शांति नहीं है। उनके पीछे अनेक प्रकारके भय लगे हुए हैं । अनेक शारीरिक एवं मानसिक कष्टोंसे वे रातदिन व्यथित हो रहे हैं ।

यह लोक १४ राजू प्रमाण है । इसमें जितने भी जीव हैं वे अनादि कालसे ज्ञानावरणीय आदि कर्मोंके उदयके वशमें पडे हुए हैं । इस कारण वे भयसहित हैं । क्यों कि परतन्त्रतामें स्वतन्त्रताका अभाव होने से सदा भय ही भय बना रहता है। कभी ये नरकनिगोदादिककी कथाओं को सुन कर उससे भयभीत होते हैं, कभी तिर्यञ्चगतिके दुःखोंसे, तो

આવેશથી પીડિત કર્યા કરે છે. કોઇ કોઈ પક્ષી પણ જે જળનાં જ આશ્રિત છે એને જળચર માનવામાં આવેલ છે. (સૂ૦ ૮)

સંસારી જીવોની દશાને પ્રગટ કરવા માટે ફરીથી સૂત્રકાર કહે છે- " पास लोए " ઈત્યાદિ—

શિષ્યને સંબોધન કરતાં સૂત્રકાર કહે છે કે હે શિષ્ય! જુઓ, આ સંસારમાં જીવોને થોડી પણ શાંતિ નથી. એની પાછળ અનેક પ્રકારના ભય લાગ્યા રહે છે. શારીરિક અને માનસિક કષ્ટોથી એ રાતદિવસ અકળાતા રહે છે.

આ લોક ૧૪ રાજૂપ્રમાણ છે, આમાં જેટલા પણ જીવ છે એ અનાદિ-કાળથી જ્ઞાનાવરણીય આદિકર્મોના ઉદયના વશમાં પડ્યા છે. આ કારણે એ ભયમાં છે. કારણ કે પરતંત્રતામાં સ્વતંત્રતાનો અભાવ હોવાથી સદા કાળ ભયજ ભય બન્યો રહે છે, ક્યારેક એ નરકનિગોદાદિકની કથાઓ સાંભળી એનાથી ભયભીત બને છે, ક્યારેક તિર્યંચ ગતિનાં દુઃખોથી, તો ક્યારેક મનુષ્યગતિનાં દુઃખોથી.

संसारिणां कथमीदृशी दशा भवतीति जिज्ञासायामाह-'सत्ता कामेहिं' इत्यादि।

मूलम्—सत्ता कामेहिं माणवा अबलेण वहं गच्छंति सरीरेण पभंगुरेणं ॥ सू० १० ॥

छाया—सक्ताः कामेषु मानवाः अबलाय वधं गच्छन्ति शरीराय प्रभङ्गुराय।१०।

टीका—मानवाः=मनुष्याः कामेषु=विषयभोगेषु सक्ताः=अनुरक्ताः सन्ति, अतः प्रभङ्गुराय=क्षणभङ्गुराय क्षणक्षणपरिणामितया स्वत एव प्रतिक्षणविनाशिने अबलाय=निःसाराय शरीराय=औदारिकशरीराय-शरीरपुष्टयर्थमिति भावः। बंधं=

कभी मनुष्यगतिके दुःखोंसे। इन कर्मोंके सदासे आधीन रहनेवाले मेरी क्या दशा होगी? ऐसा चिन्तारूप महाभय प्रत्येक सचेतन प्राणीके हृदयमें बना ही रहता है; अतः अनेक प्रकारके दुरन्त भयोंसे घिरे हुए ये अनन्त संसारी जीव हैं, और इसी कर्मोदयके वशसे ये विचारे रात-दिन अनंत कष्टोंका भी सामना करते रहते हैं ॥ सू०९॥

संसारी जीवोंकी ऐसी दशा क्यों होती है? इस प्रकारकी जिज्ञासाके समाधाननिमित्त सूत्रकार कहते हैं-"सत्ता कामेहिं" इत्यादि।

अवतरणरूप शङ्काका समाधान करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि कामभोगोंमें मग्न होनेसे मनुष्यको थोड़ा भी अवकाश प्राप्त नहीं है, अतः उन कामभोगोंका साधनभूत इस औदारिक शरीरकी पुष्टिके निमित्त वे अनुचित उपायोंका भी आचरण करते रहते हैं। नरकनिगोदादिकके अनन्त दुःखोंकी कारणभूत अन्य प्राणियोंकी हिंसा करते हुए भी ये अचकाते नहीं हैं। इन्हें स्वप्नमें भी यह विचार नहीं आता कि जब

આવા કર્મોને સદા આધીન રહેનાર મારી શું દશા થશે? એવો ચિન્તારૂપી મહાભય પ્રત્યેક સચેતન પ્રાણીના હૃદયમાં બન્યો રહે છે. આવા અનેક પ્રકારના વિકટ ભયોથી ઘેરાયેલ અનન્ત સંસારી જીવ છે. કર્મોદયના વશથી આ બિચારા રાત દિન અનન્ત કષ્ટોનો સામનો કરતા રહે છે. (સૂ૦ ૯)

સંસારી જીવોની આવી દશા કેમ થાય છે, આ પ્રકારની જીજ્ઞાસાના સમાધાનનિમિત્ત સૂત્રકાર કહે છે. "सत्ता कामेहिं" ઈત્યાદિ—

અવતરણરૂપ શંકાનું સમાધાન કરતાં સૂત્રકાર કહે છે કે કામભોગોમાં મગ્ન હોવાથી મનુષ્યને થોડો પણ અવકાશ મળતો નથી. કામભોગોના સાધનભૂત આ ઔદારિક શરીરની પુષ્ટિના કારણે એ અનુચિત ઉપાયોનું પણ આચરણ કરતા રહે છે. નરકનિગોદાદિકના અનન્ત દુઃખોના કારણભૂત અન્ય પ્રાણીઓની હિંસા કરવામાં પણ એ અચકાતા નથી. એમને સ્વપ્નમાં

नरकनिगोदाद्यनन्तदुःखहेतुभूतां प्राणिहिंसां तज्जनितकर्मबन्धं च गच्छन्ति=प्राप्नुवन्ति-कुर्वन्तीत्यर्थः। सूत्रे चतुर्थ्यर्थे तृतीयाऽऽर्षत्वात् ॥ सू० १० ॥

किञ्च—'अट्टे' इत्यादि।

मूलम्—अट्टे से बहुदुःखे, इति बाले पकुव्वति।
एते रोगे बहू णच्चा, आउरा परितावए ॥ सू० ११॥

छाया—आर्तः स बहुदुःख, इति बालः प्रकुरुते।
एतान् रोगान् बहून् ज्ञात्वा आतुराः परितापयन्ति ॥ सू० ११ ॥

टीका—आर्तः=आर्तरौद्रध्यानवर्त्ती, अत एव बहुदुःखः=शारीरमानसविविधदुःखाक्रान्तः स बालः=अज्ञानी-कर्त्तव्याकर्त्तव्यमूढः इति=एतादृशं कर्म इति=एवम् उक्तविधं प्राणिवधं वा प्रकुरुते। एतान्=उक्तरूपान् बहून्=बहुविधान् षोडशप्रकारान् रोगान्=ज्ञात्वा प्राप्य आतुराः=रोगपीडिताः परितापयन्ति=व्याधिप्रशमनार्थं शरीरपुष्टयर्थं च एकेन्द्रियादिप्राणिगणमुपमर्दयन्ति ॥ सू० ११ ॥

सांसारिक प्रत्येक पदार्थ परिणमनशील हैं तो यह मेरा शरीर भी उसी प्रकारका होनेसे क्षण २ में स्वतः गल रहा है। यह स्वयं तो निःसार है, पर इससे सार प्राप्त किया जा सकता है ॥सू० १०॥

शारीरिक एवं मानसिक अनेक रोगोंसे आक्रान्त वह अज्ञानी प्राणी कर्तव्याकर्तव्यके ज्ञानसे विमूढ हुआ आर्त्त और रौद्रध्यानके वशवर्ती बन प्राणिहिंसा जैसे अनर्थोंके करनेमें कुछ भी आगे पीछेका विचार नहीं करता। कण्ठमाल, कुष्ठ आदि १६ प्रकारके रोगोंसे जब ऐसे प्राणी अत्यन्त पीडित होते हैं तब वे अपनी उस २ व्याधिके प्रशमनार्थ अथवा शरीरकी पुष्टयर्थ एकेन्द्रियादि प्राणियोंकी हिंसा करने लग जाते हैं।

પણ એ વિચાર નથી આવતો કે જ્યારે સંસારી પ્રત્યેક પદાર્થ પરિણમનશીલ છે તો મારૂં આ શરીર પણ એવાજ પ્રકારનું હોવાથી ક્ષણ ક્ષણમાં પોતે ગળી રહ્યું છે. આ પોતે તો નિઃસાર છે છતાં એનાથી પણ સાર પ્રાપ્ત કરી શકાય છે.(સૂ૦૧૦)

શારીરિક અને માનસિક અનેક રોગોથી અકળાતો એ અજ્ઞાની પ્રાણી કર્તવ્યાકર્તવ્યના જ્ઞાનથી વિમૂઢ બની આર્ત અને રૌદ્ર ધ્યાનને વશવર્તી બની પ્રાણિહિંસા જેવા અનર્થો કરવામાં કાંઈ પણ આગળ-પાછળનો વિચાર કરતો નથી. કણ્ઠમાળ, કોઢ, ઇત્યાદિ ૧૬ પ્રકારના રોગોથી જ્યારે એ અત્યંત પીડિત બને છે ત્યારે એ પોતાની એ વ્યાધિના પ્રશમન માટે અથવા શરીરની પુષ્ટિ અર્થે એકેન્દ્રિયાદિ પ્રાણીઓની હિંસા કરવા લાગી જાય છે.

भावार्थ—शरीरमें जब कोई विशेष व्याधि हो जाती है, और उपाय करते हुए भी जब उसकी शांति नहीं होती है तो रोगीके चित्तमें अनेकों प्रकारके संकल्प-विकल्प उठने लगते हैं। इन संकल्पविकल्पोंके मध्यमें पड़ा हुआ वह रोगी कभी अपने अपाय की चिन्तासे ग्रसित होता है, कभी इन इष्ट पदार्थोंका वियोग मुझसे हो जायेगा इस प्रकार की दुर्भावनासे व्याकुल होता है, हाय! अब क्या करूं? कहां जाऊं? ये दुःख अब नहीं सहे जाते, मर जाऊं तो बहुत अच्छा-इत्यादि रूपसे बोलता हुवा आर्तरौद्र ध्यानको ध्याता है। इस स्थितिमें पडे हुए उस जीवको जो भी कोई उपाय बतलाता है वह उन उपायोंको भी करनेके लिये कटिबद्ध हो जाता है। देहसे जीवका अत्यन्त ममत्व होनेसे देह की पीडासे यह रोगोंको मिटानेके लिये अनेकानेक हिंसाजन्य कार्य करता है। कर्तव्य क्या है, अकर्त्तव्य क्या है इस प्रकारकी निर्णय बुद्धि गुमा बैठता है। इस हालतमें यदि कोई उससे यह कह देता है कि अमुक पशुकी बलि देनेसे यह रोग शांत हो जाता है तो वह उस जीवकी भी हिंसा करनेसे नहीं चूकता है। शरीरकी पुष्टिके निमित्त भी इसी प्रकारसे अज्ञानी मनुष्य अन्य जीवोंकी हिंसा करनेमें घृणा नहीं करता ॥सू० ११॥

ભાવાર્થ—શરીરમાં જ્યારે કોઈ વિશેષ વ્યાધિ થઈ જાય છે અને ઉપાય કરવા છતાં પણ જ્યારે એની શાંતિ થતી નથી ત્યારે રોગીના ચિત્તમાં અનેક પ્રકારના સંકલ્પ-વિકલ્પ ઉઠવા લાગે છે. આ સંકલ્પ-વિકલ્પોના કુંડાળામાં પડેલો એ રોગી ક્યારેક પોતાના અપાયની ચિન્તાથી ઘેરાઈ જાય છે, ક્યારેક આ બધાને છોડીને મારે જવું પડશે-આ પ્રકારની દુર્ભાવનાથી વ્યાકુળ બને છે. હાય! હવે શું કરૂં? ક્યાં જાઉં? આ દુઃખ હવે સહેવાતું નથી. મરી જાઉં તો ઘણું સારૂં. આ રીતે બોલતાં આર્ત રૌદ્ર ધ્યાનમાં પડી જાય છે. આ સ્થિતિમાં પડેલા એ જીવને જો કોઇ પણ ઉપાય બતાવવામાં આવે તો તે એ ઉપાયોના કરવામાં કટિબદ્ધ બને છે. દેહથી જીવનું અત્યંત મમત્વ હોવાથી દેહની પીડાથી એ રોગોને મટાડવા અનેકાનેક હિંસાજન્ય કાર્ય કરે છે. કર્તવ્ય શું છે? અને અકર્તવ્ય શું? એનો નિર્ણય કરવાની વિવેકબુદ્ધિ ગુમાવી બેસે છે. આ હાલતમાં કોઈ એને એવું કહે કે અમુક પશુનું બલિદાન દેવાથી આ રોગ મટી જાય તો તે એ જીવની પણ હિંસા કરવાનું ચુકતો નથી. શરીરની પુષ્ટિને કારણે અજ્ઞાની જીવ આ પ્રકારે અન્ય જીવોની હિંસા કરવામાં ઘૃણા કરતા નથી. (સૂ૦૧૧)

आचार्यः शिष्यमुपदिशति—' नालं ' इत्यादि ।

मूलम्—नालं पास अलं तवेएहिं, एयं पास मुणी ।
महब्भयं नाइवाइज्ज कंचणं ॥ सू० १२ ॥

छाया—नालं पश्य, अलं तव एतैः । एतत्पश्य मुने ! महद्भयं नातिपतयेत्कञ्चन ॥ १२ ॥

टीका—हे मुने ! पश्य=विमलधियाऽवलोकय यथा नालं=कर्मोदयजनितरोगान् निवर्त्तयितुं चिकित्साविधयो न समर्थाः सन्ति, तस्मात् तव=हेयोपादेयविवेकवतः एभिः=कर्मबन्धकारणैश्चिकित्साविधिभिः अलं=पर्याप्तम् । किञ्च—एतत्=

" नालं " इत्यादि सूत्रद्वारा आचार्य महाराज शिष्यको उपदेश देते हुए कहते हैं—

मुनिको लक्ष्यकर सूत्रकार कहते हैं कि हे मुने ! निर्मल बुद्धिसे तुम इस बातका विचार अवश्य २ करो कि जो भी रोग होते हैं वे सब इस जीवके अशुभ कर्मोदयसे होते हैं, उन्हें दूर करनेकी सामर्थ्य किसीमें नहीं है, जब तक अशुभका उदय बना रहेगा तब तक चिकित्सा होने पर भी उनकी शांति नहीं होगी, इसलिये कर्मोदयसे उत्पन्न हुए इन देहाश्रित रोगोंको हटानेके लिये कोई भी चिकित्साविधि समर्थ नहीं है। जब यह बात सिद्धान्तसिद्ध है, तो फिर चिकित्सानिमित्त अन्य प्राणियोंकी हिंसा करने जैसी चिकित्साविधि, जो केवल कर्मबन्धका ही कारण है; क्यों किया जाय ! तथा अन्य प्राणियोंकी की गई हिंसा स्वप्नमें भी शांति नहीं दे सकती है; किन्तु यह महाभयप्रद ही होती है। कारण कि इस कर्मके कर्त्ता जीवको यह कर्म जन्म और

"नालं" ઇત્યાદિ સૂત્રદ્વારા આચાર્ય મહારાજ શિષ્યને ઉપદેશ આપતાં કહે છે—

મુનિની સામે લક્ષ રાખી સૂત્રકાર કહે છે કે હે મુનિ ! નિર્મળ બુદ્ધિથી તમે આ વાતનો અવશ્ય વિચાર કરો કે જે પણ રોગ થાય છે એ બધા જીવના અશુભકર્મોદયથી જ થાય છે, એને દૂર કરવાનું સામર્થ્ય કોઈનામાં નથી. જ્યાં સુધી અશુભનો ઉદય રહે છે ત્યાં સુધી સારવાર છતાં પણ એને શાંતિ થતી નથી. એટલે કર્મોદયથી ઉત્પન્ન થયેલ આ દેહાશ્રિત રોગોને દૂર કરવામાં કોઈ પણ ચિકિત્સાવિધિ સમર્થ બનતી નથી. જ્યારે આ વાત સિદ્ધાંતથી દઢ સાબીત થયેલ છે તો પછી ચિકિત્સાનિમિત્ત બીજા પ્રાણીઓની હિંસા કરવામાં આવે તો તે કર્મબંધનું જ કારણ છે. આ રીતે કરવામાં આવતી પ્રાણિહિંસા સ્વપ્નમાં પણ શાંતિ લેવા દેતી નથી, અને તે મહાભયપ્રદ પણ બને છે. કારણ

प्राण्युपमर्दनं महद्भयं—जन्ममरणादिमहाभयहेतुत्वात्। अतः कञ्चन=कमप्येकेन्द्रियादिकं प्राणिनं नातिपातयेत्=न प्राणेभ्यो व्यपरोपयेत्। एकस्मिन्नपि प्राणिनि हन्यमाने ज्ञानावरणीयादिकं कर्म बध्यते, तच्चानन्तसंसाराय सम्पद्यते। तस्मात्प्राण्युपमर्दनं महाभयम् ॥ १२ ॥

मरणादिरूप महाभयके देनेमें कारणरूप होता है। अथवा कारणमें कार्यके उपचारसे महाभयका कारण होनेसे यह हिंसाकर्म स्वयं महाभयरूप है। इसलिये आत्महितैषीका कर्तव्य है कि वह किसी भी एकेन्द्रिय जीव तककी भी हिंसा न करे—उन्हें अपने प्यारे प्राणोंसे वियुक्त न करे। क्यों कि एक भी प्राणीका किया गया उपमर्दन कर्त्ताको ज्ञानावरणीयादिक आठ कर्मोंका बन्ध करानेवाला होता है। कर्मबंधसे जीव अनंत संसारी बनता है। इसलिये यह कर्म महाभयस्वरूप है।

भावार्थ—अशुभोदयसे जीवोंको व्याधियां होती हैं। जीवहिंसायुक्त चिकित्साविधिसे भी उन व्याधियोंका विनाश नहीं होता है। अशुभोदयकी शांतिसे व्याधियोंका विनाश स्वयमेव हो जाता है। चिकित्सा जडमूलसे रोगका नाश नहीं करती है, किंतु उस रोगको दवा देती है यह बात आजकलके विद्वान् भी स्वीकार करने लगे हैं। फिर हिंसामय चिकित्सासे व्याधियोंका विनाश मानना बालुका-रेतसे तेल निकालनेकी बात मानने जैसी है। इस विधिसे जीव नवीन कर्मोंका बन्ध करता है और रातदिन नीरोग अवस्था प्राप्तिके स्थानमें भयंकर

કે આ કર્મનો કરનાર જીવ જન્મ અને મરણરૂપ મહાભયનો ભોગવનાર બને છે. આત્મહિતેચ્છુનું એ કર્તવ્ય છે કે તે કોઇ પણ એકેન્દ્રિય જીવની પણ હિંસા ન કરે-એને પોતાના પ્રાણોથી વિયુક્ત ન કરે; કેમ કે એક પણ પ્રાણીનું કરવામાં આવેલ ઉપમર્દન, કરનારને જ્ઞાનાવરણીય આદિ કર્મોને બંધ કરનાર બને છે. કર્મબંધથી જીવ અનંત સંસારી બને છે. આ માટે આ હિંસાકર્મ મહાભયસ્વરૂપ છે.

ભાવાર્થ—અશુભના ઉદયથી જીવોને વ્યાધિઓ લાગુ પડે છે. ચિકિત્સાવિધિ કે જેમાં અન્ય જીવોનું ઉપમર્દન કરવામાં આવે છતાં આવી ચિકિત્સા રોગનો નાશ કરી શકતી નથી. અશુભોદયની શાંતિથી વ્યાધિઓનો વિનાશ આપમેળે થઈ જાય છે. રોગના શમન માટે દવાની ઉપયોગિતા સ્વીકારાઈ છે, જીવહિંસા નહીં. હિંસાવાળી ચિકિત્સાથી વ્યાધિઓનો વિનાશ માનવો એ રેતીમાંથી તેલ કાઢવા જેવી વાત છે. આ વિધિથી જીવ નવીન કર્મોના બંધ બાંધે છે અને નિરોગી અવસ્થા પ્રાપ્ત કરવાને બદલે ભયંકર અસાધ્ય રોગોનો ભોગવનાર બને

मूलम्—आयाण भो! सस्सूस भो! धूयवायं पवेयइस्सामि, इह खलु अत्तत्ताए तेहिं तेहिं कुलेहिं अभिसेएण अभिसंभूया अभिसंजाया अभिनिव्वुडा अभिसंवुड्ढा अभिसंबुद्धा अभिणिक्खंता अणुपुव्वेण महामुणी ॥ सू० १३ ॥

छाया—आजानीहि भोः! शुश्रूषस्व भो! धूतवादं प्रवेदयिष्यामि, इह खलु आत्मतया तेषु तेषु कुलेषु अभिषेकेण अभिसंभूताः, अभिसंजाताः, अभिनिर्वृत्ताः, अभिसंवृद्धाः, अभिसंबुद्धाः अभिनिष्क्रान्ताः, अनुपूर्वेण महामुनयः ॥ १३ ॥

टीका—भोः शिष्य! यदहं धूतवादं=धूतम्=अष्टविधकर्मधूननं तस्य वादो धूतवादस्तं प्रवेदयिष्यामि तद् आजानीहि=अवधारय, तथा भोः! शुश्रूषस्व=श्रोतुमिच्छां कुरु। 'भोः' इत्यस्य पुनरुच्चारणं वक्ष्यमाणार्थस्य दुरधिगमत्वेन शिष्याऽवधानार्थं, तथा च—'सावधानेन भवता भाव्यम्' इत्यभिप्रायोऽवगम्यते।

असाध्य रोगोंका आधार बन जाता है। इसलिये जो व्याधियोंके आधार बनना नहीं चाहते हैं वे तप और संयमद्वारा इनके मूल कारणोंका विनाश करनेके लिये अग्रेसर बनें। किसी जीवकी देवी देवताको बलि देनेसे या किसीके मांस आदिके खानेसे व्याधियोंकी क्षीणता होगी इस अन्धश्रद्धारूप पापका परित्याग करें ॥ सू०१२ ॥

वक्ष्यमाण धूतवादको हृदयमें धारण–श्रवण आदि करनेके निमित्त शिष्यको प्रेरित करते हुए सूत्रकार कहते है–"आयाण भो"! इत्यादि।

हे शिष्य! मैं जिस अष्टविध कर्मोंके नाशके वाद–कथनको कहूंगा तुम उसे हृदयमें धारण करो। यदि धारण न हो सके तो उसे सदा सुननेकी इच्छा करते रहो। सूत्रमें दो बार जो "भो भो" शब्दका प्रयोग हुआ है, उससे सूत्रकारका यह अभिप्राय मालूम होता है कि

છે. આ માટે જે આવા ભયંકર રોગોથી બચવા તપ અને સંયમના પંથે વળે છે અને કોઇ દેવી દેવતાને કોઈ જીવનું બલિદાન દેવામાં પાપ સમજે છે આવો જીવ અસાધ્ય વ્યાધિથી બચે છે. (સૂ૦૧૨)

વક્ષ્યમાણ ધૂતવાદને હૃદયમાં ધારણ શ્રવણ આદિ કરવા માટે શિષ્યને પ્રેરિત કરતાં સૂત્રકાર કહે છે "आयाण भो" ઈત્યાદિ!

હે શિષ્ય! હું જે આઠ પ્રકારના કર્મોના નાશ પછીની વાત તમોને કહું છું તમે એને હૃદયમાં ધારણ કરો. જો ધારણ ન થઈ શકે તો એને સાંભળવાની ઇચ્છા હમેશાં કરતા રહો. સૂત્રમાં બે વખત જે "भो भो" શબ્દનો પ્રયોગ થયો છે, આથી સૂત્રકારનો એ અભિપ્રાય થાય છે કે જે વિષય આગળ

प्रतिज्ञातमर्थमाह-'इह खलु' इत्यादि। इह=अस्मिन् मनुष्यलोके प्राणिनः आत्मतया =अनादिकालतो जीवकर्मणोः सम्बन्धादात्मकृतकर्मपरिणत्या तेषु तेषु=विविधेषु स्वस्वकर्मोदयप्रापितेषु उग्रभोगादिषूत्तमेषु श्वपाकादिषु नीचेषु च कुलेषु अभिषेकेण =शुक्रशोणितसंयोगादिक्रमेण अभिसंभूताः=जननीगर्भे कललावस्थां प्राप्ताः, अभिस-

---

जो विषय आगे कहा जानेवाला है वह बड़ी मुश्किलसे समझनेमें आवे ऐसा है; इसलिये शिष्योंके चित्तको उस विषयकी ओर सावधान करते हुए वे शिष्यजनोंसे कहते हैं कि हे शिष्यों! तुम सावधानचित्त हो कर ही इस विषयको सुनना; अन्यथा-व्यग्रचित्त होओगे तो कुछ भी समझमें नहीं आवेगा। यहांसे वही प्रस्तुत विषय कहा जाता है—

इस मनुष्यलोकमें समस्त प्राणी कर्मोंके सम्बन्धसे परतन्त्र हो रहे हैं। यह जीव और कर्मोंका सम्बन्ध आजका नहीं है किन्तु अनादिकाल का है। इस सम्बन्धके कारण ही जीव कर्मोंके विपाकोदयसे उन २ गतियोंकी प्राप्तिके कारणभूत कर्मोंके उदय आने पर उग्रभोगादि विशिष्ट उत्तम कुलोंमें एवं चण्डाल आदि नीच कुलोंमें मातापिताके शोणित-शुक्र आदिके संयोगक्रमसे उत्पन्न होते हैं। संक्षेपसे उत्पत्तिका क्रम इस प्रकार हैं-सर्वप्रथम जीव माताके गर्भमें "कलल" अवस्थामें रहता है। इसके बाद क्रमसे अनेक अवस्थाओंको धारण कर फिर वह पेशी-अवस्थासम्पन्न होता है। अंग-उपांगोंकी तथा स्नायु एवं शिरके बालोंकी

કહેવામાં આવનાર છે તે ખૂબ મુશ્કેલીથી સમજવામાં આવે તેવો છે. આ માટે શિષ્યોના ચિત્તને એ વિષય તરફ સાવધાન કરતાં સૂત્રકાર શિષ્યજનોને કહે છે કે હે શિષ્યો! તમે સાવધાનચિત્તથી આ વિષયને સાંભળજો. જો વ્યગ્રચિત્ત બનશો તો આગળ કાંઈ પણ સમજવામાં નહિ આવે. અહિંથી એ વિષય કહેવો શરૂ થાય છે.

આ મનુષ્યલોકમાં બધાં પ્રાણી કર્મના સંબંધથી પરતંત્ર થઇ રહ્યાં છે. આ જીવ અને કર્મનો સંબંધ આજનો નથી; પરંતુ અનાદિ કાળનો છે. આ સંબંધના કારણથી જીવ કર્મોના વિપાકના ઉદયથી એ એ ગતિયોની પ્રાપ્તિના કારણભૂત કર્મોનો ઉદય આવવાથી ઉગ્ર ભોગ આદિ વિશિષ્ટ ઉત્તમ કુળોમાં અથવા ચંડાળ વિગેરે નીચ કુળોમાં માતા પિતાના શોણિતશુક્ર વગેરેના સંયોગક્રમથી ઉત્પન્ન થાય છે. ટુંકમાં ઉત્પત્તિનો ક્રમ આ પ્રકારનો છે. સર્વપ્રથમ જીવ માતાના ગર્ભમાં "कलल" અવસ્થામાં રહે છે, એ પછી ક્રમથી અનેક અવસ્થાઓ ધારણ કરી ફરી તે પેશી અવસ્થા પ્રાપ્ત કરે છે. અંગ ઉપાંગો તથા સ્નાયુ

ञाताः=कललानन्तरं यावत्पेश्यवस्थां प्राप्ताः, अभिनिर्वृत्ताः=ततः साङ्गोपाङ्गस्नायु-शिरोरोमादीनां क्रमेणाभिनिर्वर्त्तनेन गर्भपूर्णावस्थां प्राप्ताः, ततो गर्भान्निःसृताःसन्तः अभिसंवृद्धाः=शैशवादिक्रमेण वृद्धिं प्राप्य धर्मश्रवणयोग्यावस्थां समापन्नाः, ततः अभिसंबुद्धाः=धर्मकथादिकं निमित्तमासाद्योपलब्धपुण्यपापस्वरूपादितया बोधिबीजं प्राप्ताः, ततः अभिनिष्क्रान्ताः=गृहस्थभावान्निर्गताः—प्रव्रज्यां प्राप्ता इत्यर्थः, अनु-पूर्वेण=अनुक्रमेण आचाराङ्गादिद्वादशाङ्गगणिपिटकाभ्यासतदर्थभावनोपबृंहितचरण-करणपरिणामतयोपाध्यायगीतार्थ-परिहारविशुद्धिकैकाकिविहारि- प्रतिमाधारि-जिनकल्पिकावस्थापर्यवसानक्रमेण महामुनयो भवन्ति ॥ सू० १३ ॥

क्रम २ से जब पूर्ण रचना हो जाती है, तब गर्भकी वह पूर्ण अवस्था कहलाती है। इस पूर्ण अवस्था के व्यतीत होते ही जीव वहांसे बाहर निकलता है। शैशव-बालपन आदिके क्रमसे जब उसकी वृद्धि होने लगती है तो एक समय ऐसा भी आ जाता है कि जब यह धर्मश्रवण के योग्य अवस्थाको प्राप्त होता है। धर्मकथाके सुननेसे पुण्य और पापके स्वरूपसे यह भलीभांति परिचित हो जाता है और बोधिबीजको पाता है। बोधिबीजकी प्राप्ति होनेसे यह गृहस्थभावसे निर्गत हो जाता है--जैनेश्वरी दीक्षाको अंगीकार करता है, क्रम २ से आचारांग आदि द्वादशांग गणिपिटकका अभ्यास करता है, अथवा उनके अभ्यास करने की भावना रखता है। इस भावनासे वह अपने करणसत्तरी और चर-णसत्तरीके परिणामोंकी वृद्धि करता रहता है। इससे क्रमशः उपाध्याय, गीतार्थ, परिहारविशुद्धिक, एकाकीविहारी, प्रतिमाधारी और जिनकल्पी

અને માથાના વાળની ક્રમે ક્રમે જ્યારે પૂર્ણ રચના થઈ જાય છે ત્યારે ગર્ભની પૂર્ણ અવસ્થા પછી જીવ ત્યાંથી બહાર નીકળે છે. શૈશવ-બાળપણ ઈત્યાદિ ક્રમથી જ્યારે એની વૃદ્ધિ થવા લાગે છે, આમાં એક સમય એવો પણ આવી જાય છે કે જ્યારે તે ધર્મશ્રવણને યોગ્ય અવસ્થાને પ્રાપ્ત થાય છે. ધર્મકથા સાંભળવાથી થનાર પુણ્ય અને પાપના સ્વરૂપથી એ સારી રીતે પરિચિત થઈ જાય છે, અને બોધિબીજને પામે છે. બોધિબીજની પ્રાપ્તિ થવાથી એ ગૃહસ્થસ્વભા-વથી નિર્ગત બની જાય છે, જૈનેશ્વરી દીક્ષાનો અંગીકાર કરે છે. ક્રમે ક્રમે આચારાંગ ઈત્યાદિ દ્વાદશાંગ ગણિપિટકનો અભ્યાસ કરે છે, અથવા એનો અભ્યાસ કરવાની ભાવના રાખે છે. આ ભાવનાથી એ પોતાના કરણસત્તરી અને ચરણ-સત્તરીના પરિણામોની વૃદ્ધિ કરતો રહે છે અને આગળ વધતાં ઉપાધ્યાય,

मूलम्—तं परिक्कमंतं परिदेवमाणा मा णे चयाहि इय ते वयंति । छंदोवणीया अज्झोववन्ना अक्कंदकारी जणगा रुवंति । अ तारिसे मुणी नो ओहं तरए, जणगा जेण विप्पजढा ।सू०१४।

छाया—तं पराक्रमन्तं परिदेवमानाः 'मा अस्मान् त्यज' इति ते वदन्ति । छन्दोपनीता अध्युपपन्ना आक्रन्दकारिणो जनका रुदन्ति । अ तादृशो मुनिर्नो ओघं तरति जनका येन विप्रत्यक्ताः ॥ सू०१४ ॥

साधु पर्यन्तकी अवस्थाओंका धारक बनता हुआ महामुनि हो जाता है।

भावार्थ—कषाय सहित होनेसे जीव कर्मोंके योग्य पुद्गल परमाणुओं का जो ग्रहण करता है इसीका नाम बन्ध है। इस बन्धदशासे समस्त संसारी जीव परतन्त्र हो रहे हैं और तत्तद्गतिप्रापक कर्मोदयसे वे उच्च-नीचादि कुलोंमें माता पिताके रज और वीर्यके सम्बन्धसे गर्भावस्था-सम्पन्न बन कर क्रम २ से अपने २ समयानुसार उत्पन्न होते रहते हैं। शैशवादि अवस्था बाद धर्मश्रवण योग्य अवस्थावाले जब वे होते हैं तब धर्मकथाके श्रवणसे पुण्यपापके स्वरूपके ज्ञाता होकर बोधिबीजकी प्राप्तिसे गृहीत धर्मकी सफलता निमित्त जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर आचारांग आदि सूत्रोंका अभ्यास करते हुए अपने चारित्रकी उज्ज्वलता की वृद्धि करनेमें सावधान रहते हैं । जिनकल्पी साधुकी अवस्थापर्यन्त मध्यकी जितनी भी साधुओंकी अवस्थाएँ हैं उन सबका आराधन करते हुए वे महामुनियोंकी कोटिमें आ विराजते हैं ॥ सू०१३ ॥

ગીતાર્થ, પરિહારવિશુદ્ધિક, એકાકીવિહારી, પ્રતિમાધારી અને જીનકલ્પી સાધુ સુધીની અવસ્થાનો ધારક બની મહામુનિ થઈ જાય છે.

ભાવાર્થ—કષાયસહિત હોવાથી જીવ કર્મોને યોગ્ય પુદ્‌ગલ પરમાણુઓનું ગ્રહણ કરે છે આનું નામ બંધ છે. આ બંધદશાથી સમસ્ત સંસારી જીવ પર-તંત્ર થઈ રહ્યા છે અને તે તે ગતિને આપનાર કર્મોદયથી તે ઉચ્ચ નીચ આદિ કુળોમાં માતા પિતાના રજ અને વીર્યના સંબંધથી ગર્ભાવસ્થાસંપન્ન બની, ક્રમે ક્રમે પોતપોતાના સમયાનુસાર જન્મ લે છે. બાલ્યઆદિ અવસ્થા બાદ ધર્મશ્રવણ યોગ્ય અવસ્થાવાળો જ્યારે તે થાય છે ત્યારે ધર્મકથાના શ્રવણથી પુણ્ય પાપના સ્વરૂ-પનો જાણકાર બની બોધિબીજની પ્રાપ્તિથી ગ્રહીત ધર્મની સફળતારૂપ જૈનેશ્વરી દીક્ષા ધારણ કરી આચારાંગ આદિ સૂત્રોનો અભ્યાસ કરતાં પોતાના ચારિત્રની ઉજ્જવલતાની વૃદ્ધિ કરવામાં સાવધાન રહે છે. જીનકલ્પી સાધુની અવસ્થા પર્યન્ત વચ્ચેની જેટલી પણ સાધુઓની અવસ્થાઓ છે એ સહુનું આરાધન કરતાં કરતાં તે મહામુનિઓની કક્ષાએ પહોંચે છે. (સૂ૦૧૩)

टीका=तम्=अभिसंबुद्धं गृहवासविमुखं, पराक्रममाणं=महामुनिनिषेवितं प-न्थानमारोहन्तं, ते=मातापितृतनयभार्यादयः वदन्ति-'अस्मान् मा त्यज' इति। किञ्च-छन्दोपनीताः त्वदभिप्रायानुवर्तिनः, अध्युपपन्नाः=त्वदनुगामिनः वयं स्मः, तस्मादेवंभूतानस्मान् परित्यज्य किं व्रजसि ?, इत्येवमाक्रन्दकारिणः=सशोकं विलपन्तः जनकाः मातापित्रादयो रुदन्ति ।

किं चैवं ते वदन्ति-अ तादृशो मुनिरित्यादि ।

येन पाषण्डिवञ्चितेन मुग्धेन जनकाः=मातापित्रादयः विप्रत्यक्ताः=सर्वथा परित्यक्ताः तादृशः अ=न मुनिर्भवति । अत्र-'अ' इति स्वरप्रतिरूपकमव्ययं निषेधार्थे वर्तते । नो=न च ओघं=संसारसागरप्रवाहं तरति ॥ सू० १४ ॥

जिसने संसार, शरीर, और भोगोंका वास्तविक स्वरूप जानकर गृहवाससे विरक्ति धारण की है, और जो महामुनियोंद्वारा सेवित मार्गका अवलम्बन करनेके लिये उद्यत हो रहा है ऐसे मुमुक्षुजनको देखकर उसके माता पिता, पुत्र स्त्री वगैरह स्वजन उससे कहते हैं कि "मा अस्मान्-त्यज" तुम हमें मत छोड़ो; कारण कि हम सब तुम्हारी इच्छानुसार प्रवृत्ति करनेवाले एवं तुम्हारे पीछे २ चलनेवाले हैं, तो फिर इस प्रकार से वर्तन करनेवाले हम सबको छोड़कर तुम क्यों जा रहे हो? इस प्रकार सशोक विलाप करते हुए माता पिता आदि सम्बन्धिजन रोते हैं और कहते हैं कि यह वास्तविक मुनि नहीं है, पाखण्डियों से ठगाये गये इस भोलेभालेने अपने मातापितादिकको सर्वथा व्यर्थ ही छोड़ दिये हैं, तथा यह संसाररूपी समुद्रके प्रवाहको भी नहीं तैर सकता है ॥सू०१४॥

જેણે સંસાર, શરીર અને ભોગોનું વાસ્તવિક સ્વરૂપ જાણી લઈ ગૃહવાસથી વિરક્તિ ધારણ કરી છે, અને જે મહામુનિઓદ્વારા સેવિત માર્ગનું અવલંબન કરવામાં ઉદ્યમશીલ રહે છે એવા મોક્ષાભિલાષી જનને જોઇ એનાં માતા પિતા, પુત્ર સ્ત્રી વગેરે સ્વજન એને કહે છે કે "मा अस्मान् त्यज" તમે અમોને છોડો નહીં, કારણ કે અમો બધા તમારી ઇચ્છા અનુસાર પ્રવૃત્તિ કરનારા અને તમારી પાછળ પાછળ ચાલવાવાળા છીયે. છતાં પણ તમે અમો બધાને છોડી કેમ જઈ રહ્યા છો ? આ પ્રકારનો શોક વિલાપ કરતા માતા પિતા ઈત્યાદિ સંબંધીજનો રૂએ છે અને કહે છે કે એ વાસ્તવિક મુનિ નથી, પાખંડીઓથી છેતરાએલ આ ભોળાભાળાએ પોતાના માતા પિતા વગેરેને સમજ્યા વગર સર્વથા છોડી દીધાં છે, અને આ સંસારરૂપી સમુદ્રના પ્રવાહને પણ તરી શકતો નથી. (સૂ૦૧૪)

अभिसम्बुद्धस्य कर्तव्यमाह—'सरणं' इत्यादि ।

मूलम्—सरणं तत्थ नो समेइ, कहं नु नाम से तत्थ रमइ? एयं नाणं सया समणुवासिज्जासि—त्तिबेमि ॥ सू० १५ ॥

छाया-शरणं तत्र नो समेति, कथं नु नाम स तत्र रमते? एतद् ज्ञानं सदा समनुवासयेः, इति ब्रवीमि ।सू० १५।।

टीका-तत्र=तस्मिन्नवसरे दीक्षाग्रहणकाले सः=अभिसम्बुद्धः प्रव्रज्यां ग्रहीतुकामो वैराग्यवान् विलपन्तमपि मातापित्रादिकं शरणं नो समेति=नोपगच्छति । संसारस्वरूपसमधिगमसञ्जाततीव्रतरवैराग्यभावनाभावितात्मतया मातापित्रादिकृताऽऽक्रन्दनमवगणय्य संयममार्गमारोढुं प्रवृत्तो भवतीति भावः । एतदेव स्पष्ट-

---

गृहवाससे विमुख जनके कर्तव्योंको सूत्रकार कहते हैं-" सरणं " इत्यादि ।

इस सूत्रमें सूत्रकार यह कह रहे हैं कि जब मनुष्य मुनिदीक्षा धारण करनेके सन्मुख होता है, वैराग्यसे उसका हृदय भरा हुआ होता है तब उस समय वह पूर्वोक्तरूपसे विलाप करते हुए माता पिता आदि की बातों में जरा भी नहीं ललचाता; कारण कि उसे यह बात भली-भांति ज्ञात हो चुकी है कि मुझे मृत्युसे छुडानेमें ये समर्थ नहीं हो सकते हैं; क्यों कि ये स्वयं ही उसके आधीन बने हुए हैं । कर्मोंके फलको भोगते समय कौन ऐसा संसारमें है जो मुझे सहारा दे सके? यहां धर्मके सिवाय मेरा रक्षक कोई नहीं है । संसारी स्वयं अपने २ कर्मोंके उदयसे त्रस्त हो रहे हैं, इनमें कौन किसका रक्षक हो सकता है । सबको अपने कर्म भोगने पड़ते हैं । यदि कोई निष्कारण

ગૃહવાસથી વિમુખ બનનારના કર્તવ્યોને સૂત્રકાર કહે છે "सरणं" ઇત્યાદિ.

આ સૂત્રમાં સૂત્રકાર એ કહે છે કે જ્યારે મનુષ્ય મુનિદીક્ષા ધારણ કરવા યોગ્ય બને છે, વૈરાગ્યથી એનું હૃદય ભરાએલું હોય છે, ત્યારે એ સમય તે પૂર્વોક્તરૂપથી વિલાપ કરતાં માતા પિતા વગેરેની વાતોમાં જરા પણ લલચાતો નથી; કારણ કે એ વાત સારી રીતે એ જાણી ચૂકયો હોય છે કે મને મૃત્યુના મુખમાંથી છોડાવવામાં આ બધાં અસમર્થ છે; કેમ કે તેઓ પોતે જ એને આધીન બનેલ છે. કર્મના ફળને ભોગવતી વખતે સંસારમાં એવું કોણ છે કે મને આધારરૂપ બને. ધર્મના સિવાય મારૂં કોઇ રક્ષક નથી. સંસારી પોતે જ પોતપોતાના કર્મોના ઉદયથી દુઃખી થઈ રહ્યા છે. આમાં કોણ કોનું રક્ષક બની શકે? બધાને પોતાના કર્મનાં ફળ ભોગવવાં

यति-'कथं नु नाम' इत्यादि। स=तीव्रवैराग्यवान् तत्र=तस्मिन् गृहवासे नरकरूपे मोक्षद्वारार्गलाभूते कथं नु नाम रमते=अनुरागं कुर्यात्? किन्तु नैव स तत्रासक्तो भवितुमर्हति। यतः कारागारवासरूपोऽयं गृहवासो न कस्याप्यभिसंबुद्धस्य प्रियः

बंधु है-रक्षक है-तो वह एक आराधित धर्म ही है; अतः उसका ही सहारा लेना मुझे उत्तम है। इस प्रकार संसारके स्वरूपके विचारसे उसके हृदयमें तीव्रतर वैराग्यभावकी जागृति होती है। इसका ही यह परिणाम होता है कि जो वह स्वार्थवश रोते चिल्लाते हुए भी अपने माता पिताकी तरफ थोड़ीसी भी ममत्वदृष्टिसे नहीं निहारता है और सहसा उनसे विरक्त बन संयम मार्गपर आरूढ होनेके लिये कटिबद्ध हो जाता है। इसी बातको "कथं नु नाम तत्र रमते" इस पंक्तिमें खुलासा किया है। ठीक ही है; अरे! जिसकी आत्मामें तीव्रतर वैराग्यका वास हो चुका है, जो इस संसारको अशरण और असार समझ चुका है, भला! वह संसारके पथिकोंको शरण और साररूप मान भी कैसे सकता है। उसे तो गृहवास नरकतुल्य और मोक्षद्वारका अर्गलास्वरूप ही प्रतिभासित होता है। यही कारण है जो वह उसमें आसक्त नहीं होता।

भावार्थ—कोई भी प्रतिबुद्ध-समझदार मनुष्य जैसे कारागारमें रहना पसंद नहीं करता है, ठीक इसी प्रकारसे जो संसार, शरीर और

પડે છે. આમાં કોઈ નિષ્કારણ બન્ધુ હોય-રક્ષક હોય તો તે એક આરાધિત ધર્મ જ છે. આથી એનો જ આશ્રય લેવો મારા માટે ઉત્તમ છે. આ પ્રકારે સંસારના સ્વરૂપના વિચારથી એના હૃદયમાં વૈરાગ્યભાવની તીવ્રતર જાગ્રતિ થાય છે. એના પરિણામરૂપ રોતાં ચિલ્લાતાં પોતાનાં માતા પિતા વગેરેની સ્વાર્થવશતા તરફ એ જરાસરખી પણ મમત્વદૃષ્ટિથી જોતો નથી, અને એનાથી તદ્દન વિરક્ત બની સંયમ માર્ગ ઉપર આરૂઢ થવા એ મક્કમ બની જાય છે. આ વાતનો "कथं नु नाम तत्र रमते" આ પંક્તિમાં ખુલાસો કરેલ છે. ઠીક છે. અરે! જેના આત્મામાં વૈરાગ્યનો તીવ્રતર વાસ થઈ ચુક્યો છે, આ સંસારને જે અશરણ અને અસાર સમજી ચુકેલ છે એવો વિરક્ત જન સ્વજનોના સ્વાર્થવશ આક્રંદને કેમ વશ બની શકે? એને તો ગૃહવાસ નરકતુલ્ય અને મોક્ષદ્વારમાં બાધકજ જણાતું હોય છે, આથી તે એનામાં આસક્ત નથી બનતો.

ભાવાર્થ—કોઈ પણ પ્રતિબુદ્ધ—સમજૂ મનુષ્ય જેમ જેલખાનામાં રહેવાનું પસંદ કરતો નથી. આ જ રીતે જે સંસાર, શરીર અને ભોગોના સાચા સ્વરૂપને જાણી ગયેલ છે એને ગૃહસ્થવાસ પ્રિય લાગતો નથી.

स्यादिति भावः। उपसंहरन्नाह–'एतद्ज्ञान'–मित्यादि। एतत्=अष्टविधकर्मधूनन-निषयकधूतवादोक्तं ज्ञानं=जीवकर्मणोरनादिसम्बन्धात्स्वकृतकर्मपरिणत्या पृथिव्या-दिषड्जीवनिकायेषु पुनः पुनरनन्तानन्तजन्ममरणदुःखौघमनुभूय प्रबलपुण्योदयेन मनुष्यभवार्यक्षेत्रसुकुलजन्मादिकमुपलभ्य धर्मश्रवणयोग्यावस्थायां वर्त्तमानः कथञ्चिद् धर्मकथादिकं निमित्तमासाद्याभिगतजीवाजीवस्वरूप उपलब्धपुण्यपापः आस्रवसंव-

---

भोगोंके वास्तविक स्वरूपके ज्ञाता हैं उन्हें गृहस्थवास भी प्रिय नहीं होता है।

"एतद्ज्ञानं सदा समनुवासयेः–इति ब्रवीमि"।—

इस प्रकरणका उपसंहार करते हुए सूत्रकार शिष्यसे कहते हैं कि इस धूतवादमें अष्टविध कर्मोंके विनाश करनेका जो विषय आया है और साथमें जो यह बतलाया गया है कि जीव और कर्मोंका संबंध अनादिकालका है, तथा तत्तद्गतिप्रापक कृतकर्मके उदयसे जीव पृथिवीका-यिक आदि पर्यायोंमें उत्पन्न होता है, एवं वहां बारंबार अनन्तानंत जन्म-मरणके दुःखोंके भारको वहन करता हुआ वह कोई प्रबल पुण्यके उदय से मनुष्यभव, आर्यक्षेत्र, सुकुलमें जन्म आदि सामग्रीकी प्राप्तिसे धर्मके श्रवण करनेयोग्य अवस्थासम्पन्न बन, कथंचित् धर्मकथा आदिके निमित्त को पाकर, जीव और अजीवादि पदार्थोंके स्वरूपका ज्ञाता बन, पुण्य और पापके यथार्थस्वरूपसे परिचित हो, आस्रव, बंध, संवर और निर्जरा के कारणोंमें कुशलमति होता हुआ मोक्षमार्ग पर आरूढ हो कर क्रमसे महा मुनि होता है, इस प्रकार यह सब विषय प्रतिपादित हुआ है; सो हे शिष्य!

"एतद्ज्ञानं सदा समनुवासयेः–इति ब्रवीमि।"

આ પ્રકરણનો ઉપસંહાર કરતાં સૂત્રકાર શિષ્યને કહે છે કે આ ધૂતવાદમાં આઠવિધ કર્મોનો વિનાશ કરવાનો જે વિષય આવેલ છે અને સાથે જે એમ બતાવવામાં આવ્યું છે કે જીવ અને કર્મોનો સંબંધ અનાદિકાળનો છે અને તે તે ગતિઆપવાવાળા કરેલ કર્મના ઉદયથી જીવ પૃથિવીકાયિક આદિ પર્યાયોમાં ઉત્પન્ન થાય છે, અને ત્યાં વારંવાર અનંતાનંત જન્મમરણના દુઃખોનો ભાર સહન કરતાં કોઇ પ્રબળ પુણ્યના ઉદયથી મનુષ્યભવ, આર્યક્ષેત્ર, સુકુળમાં જન્મ આદિ સામગ્રીની પ્રાપ્તિથી ધર્મને શ્રવણ કરવા યોગ્ય અવસ્થાસંપન્ન બની, કથંચિત્ ધર્મકથા આદિના નિમિત્તને પામીને, જીવ અને અજીવાદિ પદાર્થના સ્વરૂપનો જ્ઞાતા બની, પુણ્ય અને પાપનો યથાર્થ સ્વરૂપથી પરિચિત બની, આસ્રવ, બંધ, સંવર અ નિર્જરાના કારણોમાં કુશળ બનીને, મોક્ષમાર્ગમાં આરૂઢ થઈને,

रनिर्जराबन्धाधिकरणकुशलः सन् मोक्षमार्गारूढः क्रमेण महामुनिर्भवतीत्येवंरूपं सम्यगवबोधं सदा=निरन्तरं समनुवासयेः=स्वात्मनि त्वं सम्यगनुभावयेः। इति ब्रवीमि। व्याख्या पूर्ववत् ॥ सू० १५ ॥

॥ इति षष्ठाध्ययनस्य प्रथम उद्देशः समाप्तः ॥ ६-१ ॥

तुम इस विषयको भलीभांति अपने हृदयमें चिन्तवन करते रहो। "इति ब्रवीमि" इन पदोंका व्याख्यान पूर्वमें कहा ही जा चुका है।

भावार्थ—तीव्रवैराग्यसम्पन्न आत्मा अपने संबंधीजनद्वारा प्रदर्शित किये गये ममताभरे अनुनयविनयको लक्ष्यमें न दे कर अपने दृढ अध्यवसित कार्यकी पूर्ति करनेमें ही तल्लीनमति होता है। संसारके कोई भी पदार्थ उसे फिर लुभा नहीं सकते। घर उसे लुभा नहीं सकता, वह तो उसे कारागार जैसा मालूम होने लगता है। समस्त सम्बन्धीजन स्वार्थी एवं अशरण उसे प्रतिभासित होने लगते हैं। एक आराधित धर्मको ही वह अपना रक्षक और सहायी मानता है। इसीकी आराधना में वह सब कुछ अपना विसर्जित कर देता है। साधारण मुनि अवस्था से ले कर जिनकल्पी साधु अवस्थातक की क्रियाओंकी आराधना करता हुआ वह भाग्यशाली महामुनि की कोटिमें आ जाता है ॥सू०१५॥

॥ छट्ठा अध्ययनका पहला उद्देश समाप्त॥ ६-१ ॥

ક્રમે ક્રમે મહામુનિ બને છે. આ પ્રકારે આ સઘળો વિષય પ્રતિપાદિત થયો છે; માટે હે શિષ્ય! તમે આ વિષયનું સારી રીતે પોતાના હૃદયમાં ચિન્તવન કરતા રહો. "इति ब्रवीमि" આ પદોનું વ્યાખ્યાન પૂર્વમાં (અગાઉ) કહેવાઈ ગયું છે.

ભાવાર્થ—તીવ્ર-વૈરાગ્ય-સંપન્ન આત્મા પોતાના સંબંધી જનદ્વારા કહેવામાં આવેલા મમતાભર્યા-અનુનય વિનયને લક્ષમાં ન લેતાં પોતાના દૃઢ અધ્યવસિત કાર્યની પૂર્તિ કરવામાં જ તલ્લીન બને છે. સંસારના કોઇ પણ પદાર્થ એને પછી લોભાવી તેના લક્ષથી દૂર કરી શકતો નથી. ઘર એને લોભાવી નથી શકતું. ઘર તો એને જેલખાના જેવું લાગે છે. સઘળાં સંબંધી જન સ્વાર્થી અને અશરણ છે તેવો તેને ભાસ થાય છે. એક આરાધિત ધર્મને જ તે પોતાનો રક્ષક અને સહાયક માને છે. એની આરાધનામાં તે પોતાનું બધું ન્યોછાવર કરી દે છે, સાધારણ મુનિ અવસ્થાથી માંડી જીનકલ્પી સાધુ અવસ્થા સુધીની ક્રિયાઓની આરાધના કરતાં તે ભાગ્યશાળી મહામુનિની કોટીમાં જઈ બેસે છે.(સૂ૦૧૫)

છઠ્ઠા અધ્યયનનો પહેલો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૬-૧ ॥

। अथ षष्ठाध्ययनस्य द्वितीय उद्देशः ।

इहानन्तरोद्देशके मातापित्रादिस्वजनसङ्गविधूननं निगदितं, तच्च कर्मविधूननं विना न सफलं स्यात्, अतस्तदर्थं द्वितीयोद्देशकं कथयति । तत्रादौ ये गृहीतचारित्राः पश्चात् प्रबलमोहोदयात् आचारं परित्यजन्ति तेषां संसारपरिभ्रमणाद् विश्रामो न भवतीति तान् बोधयितुमाह—आउरं ' इत्यादि ।

मूलम्—आउरं लोगमायाए चइत्ता पुव्वसंजोगं हिच्चा उवसमं वसित्ता बंभचेरंसि, वसु अणुवसु वा जाणित्तु धम्मं जहा तहा, अहेगे तमचाइ कुसीला, वत्थं पडिग्गहं कंबलं पायपुंछणं विउसिज्ज, अणुपुव्वेण अणहियासमाणा परीसहे दुरहियासए।

॥ छट्ठा अध्ययनका दूसरा उद्देश ॥

इस अध्ययनके प्रथम उद्देशमें माता, पिता आदि स्वजनोंके संबंध का परित्याग प्रकट किया गया है । परन्तु यह परित्याग कर्मोंके विनाश के विना सफल नहीं हो सकता है । इसलिये उन कर्मोंके विनाशके निमित्त इस द्वितीय उद्देशका कथन सूत्रकार प्रारम्भ करते हैं । उसमें सर्वप्रथम वे इस बातका निरूपण करते हैं कि जिसने चारित्रकी प्राप्ति तो कर ली है, परन्तु प्रबल चारित्रमोहनीयके उदयसे उस गृहीत चारित्रका परित्याग भी कर दिया है, तो इससे उसका संसारके परिभ्रमणसे विश्राम हो जाता होगा, सो यह बात नहीं है; इसी विषयको उसे समझानेके लिये सूत्रकार कहते हैं–" आउरं " इत्यादि ।

છઠ્ઠા અધ્યયનનો બીજો ઉદ્દેશ.

આ અધ્યયનના પ્રથમ ઉદ્દેશમાં માતા–પિતા વગેરે સ્વજનોના સાથેના સંબંધનો પરિત્યાગ પ્રગટ કરાયેલ છે. પરંતુ એ પરિત્યાગ કર્મોના વિનાશ વગર સફળ બની શકતો નથી. આ માટે કર્મોના વિનાશને માટે આ બીજા ઉદ્દેશના કથનનો સૂત્રકાર પ્રારંભ કરે છે. એમાં સહુ પ્રથમ તે એ વાતનું નિરૂપણ કરે છે કે જેણે ચારિત્રની પ્રાપ્તિ તો કરી લીધી છે; પરંતુ પ્રબલ ચારિત્રમોહનીયના ઉદયથી એ ગૃહીત ચારિત્રનો પરિત્યાગ પણ કરી દીધો છે, તો આથી એના સંસારના પરિભ્રમણને વિશ્રામ મળી જાય છે, આ વાત નથી! આ વિષયને સમજાવવા માટે સૂત્રકાર કહે છે " आउरं " ઈત્યાદિ.

कामे ममायमाणस्स इयाणिं वा मुहुत्तेण वा अपरिमाणाए भेए। एवं से अंतरायएहिं कामेहिं आकेवलिएहिं अवतिन्ना चेए॥सू०१॥

छाया—आतुरं लोकमादाय त्यक्त्वा पूर्वसंयोगं हित्वा उपशमं उषित्वा ब्रह्मचर्ये, वसवः अनुवसवो वा ज्ञात्वा धर्मं यथा तथा, अथैके तम् अशक्नुवन्ति कुशीलाः, वस्त्रं पतद्ग्रहं कम्बलं पादप्रोञ्छनं व्युत्सृज्य अनुपूर्वेण अनधिसहमानाः परीषहान् दुरधिसहान् कामान् ममायमानस्य इदानीं मुहूर्तेन वा अपरिमाणाय भेदः। एवं स आन्तरायिकैः कामैः आकेवलिकैः अवतीर्णाः चैते ॥ १ ॥

टीका—लोकं=षड्जीवनिकायम्, आतुरं=क्लेशितम्, आदाय=बुद्ध्या गृहीत्वा अवबुध्येतियावत्, तथा—पूर्वसंयोगं=मातापितृपुत्रकलत्रादिसम्बन्धं त्यक्त्वा, तथा—उपशमं=विरतिं, हित्वा=प्राप्य, तथा ब्रह्मचर्ये उषित्वा=स्थित्वाऽपि वसवः=साधवः, अनुवसवः=षष्ठ्याः प्रतिमाया आरभ्य यावदेकादशप्रतिमाधारिणः श्रावका वा यथा तथाऽवस्थितं धर्मं=श्रुतचारित्राख्यं ज्ञात्वाऽपि, अथ=अनन्तरम्, एके=केचित् मोहोदयात् कुशीलाः सावद्यानुष्ठानप्रवृत्ताः सन्तः, तं=धर्मं पालयितुं अ=न शक्नुवन्ति, अतस्ते दुरधिसहान् अनधिसहमानाः वस्त्रं पतद्ग्रहं=पात्रं कम्बलं पाद-

---

षड्जीवनिकायस्वरूप इस लोकको क्लेशित अपनी बुद्धिसे जानकर, तथा माता, पिता, पुत्र, कलत्र आदि रूप पूर्वसंयोगका परित्याग कर, उपशमरूप विरतिको प्राप्त कर, और ब्रह्मचर्यव्रतका पालन कर साधुजन, अथवा श्रावककी छट्ठी प्रतिमासे ले कर ११ वीं प्रतिमा तकका आचार पालन करनेवाले गृहस्थजन, जिस स्वरूपसे श्रुतचारित्ररूप धर्मकी स्थिति है उस रूपसे उसे जान कर भी मोहके उदयसे बादमें कई एक कुशील-सावद्य अनुष्ठानमें प्रवृत्ति करनेवाले हो जाते हैं, और उस श्रुतचारित्ररूप धर्मके पालन करनेमें सर्वथा अक्षम बन उससे भ्रष्ट हो जाते हैं। परि-

---

षड्जीवनिकायस्वरूप आ लोकने पोतानी बुद्धिथी क्लेशित जाणी, माता, पिता, पुत्र अने कुटुंबीजनोना पूर्वसंयोगनो परित्याग करी, उपशमरूप विरतिने प्राप्त करी, ब्रह्मचर्यव्रतनुं पालन करवा उपरांत साधुजन अथवा श्रावकनी छठ्ठी प्रतिमाथी लई ११मी प्रतिमा सुधीनुं आचार पालन करवावाळा गृहस्थ जन जे स्वरूपनी श्रुतचारित्ररूप धर्मनी स्थिति छे ए रूपथी एने जाणीने पण, मोहना उदयथी कोईएक सावद्यानुष्ठानमां प्रवृत्ति करवावाळा बनी जाय छे अने श्रुतचारित्ररूप धर्मनुं पालन करवामां सर्वथा अक्षम थई भ्रष्ट थई जाय छे. परिषहोना सहेवामां असमर्थ बनीने वस्त्र, पात्र, कम्बल अने पादप्रोंछन

प्रोच्छनं=रजोहरणं च व्युत्सृज्य=धर्मरुच्यभावात्यक्त्वा अनुपूर्वेण=अनुक्रमेण चारित्रं परित्यजन्ति । 'अनुक्रमेण' इत्यनेनेदमुक्तं भवति-कुशीलेषु केचित् देशविरतिं, केचित् सम्यक्त्वमात्रमाश्रित्य तिष्ठन्ति, केचिच्च ततोऽपि परिभ्रश्य मिथ्यात्वमुपगच्छन्तीति । विषयभोगार्थं धर्मं त्यक्तवतां पापोदयफलमाह—'कामान्' इत्यादि। कामान्=शब्दादिविषयान् ममायमानस्य=ममत्वविषयीकुर्वाणस्य इदानीं=प्रव्रज्यापरित्यागानन्तरमेव-भोगप्राप्तिसमनन्तरमेव वा मुहुर्त्तेन वा=अन्तमुहूर्तेन वा, इदमुपलक्षणं तेन-कण्डरीकवदहोरात्रेण ततोऽप्यधिकेन कालेन वा क्षणभङ्गुरादस्माच्छरी-

षहोंके सहनेमें असमर्थ बने हुए वे वस्त्र, पात्र, कम्बल और पादप्रोञ्छन -रजोहरणका, धर्मकी ओर रुचिके अभावसे, परित्याग कर क्रमशः चारित्रका पालन करना छोड़ देते हैं। "अनुक्रम" पदसे यह बात मालूम होती है-कि कुशीलों में कोई २ देशविरतिका और कोईएक चतुर्थ गुणस्थानका पालन करते हैं और कोई ऐसे भी होते हैं जो उस चतुर्थ गुणस्थान तकका भी परित्याग कर प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थानवर्ती हो जाते हैं।

विषयभोगोंके निमित्त धर्मका परित्याग करनेवालोंके पापोंके उदय फलको प्रकट करनेके लिये सूत्रकार "कामान्" इत्यादि सूत्रांश कहते हैं। वे इसमें प्रकट करते हैं कि शब्दादिक विषयोंको ममत्वका विषय करनेवाले उस परित्यक्तचारित्रवाले मनुष्यका, प्रव्रज्याके त्यागके अनन्तर अथवा भोगप्राप्तिके बाद, या एक अन्तर्मुहूर्तकालमें, उपलक्षण से कंडरीककी तरह अहोरात्र-एकदिनरातमें, अथवा इससे भी अधिक

-રજોહરણનો, ધર્મના તરફ રૂચીના અભાવને કારણે ત્યાગ કરી ચારિત્રનું પાલન કરવાનું છોડી દે છે. "અનુક્રમ" પદથી એ વાત માલુમ પડે છે કે કુશીલોમાં કોઈ કોઈ દેશવિરતિનું અને કોઈ ચોથા ગુણસ્થાનનું પાલન કરે છે; અને કોઈ એવા પણ હોય છે કે જે ચોથા ગુણસ્થાનનો પણ પરિત્યાગ કરીને મિથ્યાત્વ ગુણસ્થાન-વર્તી બની જાય છે.

વિષયભોગોને નિમિત્ત ધર્મનો પરિત્યાગ કરવાવાળાનાં પાપના ઉદયના ફળ પ્રગટ કરવા માટે સૂત્રકાર "कामान्" ઈત્યાદિ સૂત્રાંશ કહે છે. તેઓ એમાં પ્રગટ કરે છે કે શબ્દાદિક વિષયોમાં આસક્તિ કરવાવાળા ચારિત્ર છોડનાર તે મનુષ્યનો, પ્રવ્રજ્યાના ત્યાગ બાદ, અથવા ભોગ પ્રાપ્તિ પછી, અથવા એક અન્તમુહુર્ત કાળમાં, ઉપલક્ષણથી કંડરીકની માફક એક દિનરાતમાં, અથવા તેનાથી પણ અધિક

रात्पृथग्भूतस्य तस्य पश्चात्कृतस्य-'पच्छाकडा' इति प्रसिद्धस्य अपरिमाणाय =अपरिमितकालं यावत् भेदः=मनुष्यशरीरस्यान्तरं-व्यवधानं भवति, धर्मात्परिभ्रष्टस्य मृतस्य नरकनिगोदाद्यनन्तदुःखमनुभवतोऽनन्तकालेनापि पुनर्मनुष्यशरीरं दुर्लभं भवति, कथं पुनस्तरयार्यक्षेत्रसुकुलजन्मबोधिबीजादिसामग्र्याः संभव ? इति भावः।

एतदेवोपसंहरन्नाह--'एव'मित्यादि । एवम्=अनया रीत्या सः=भोगार्थी पश्चात्कृतः एते=तदितरे ये भोगाभिलाषिणो वर्तन्ते एतेऽपि च, आन्तरायिकैः=

समयमें इस क्षणभंगुर शरीरसे जब वियोग होता है, तो फिर पीछे उसके लिये इस दुर्लभ मनुष्य जन्मकी प्राप्ति होनेमें समयका कोई प्रमाण निश्चित नहीं है। छोड़ी हुई उस पर्यायकी पुनरपि प्राप्ति होनेके लिये विरहकाल अपरिमित है-फिरसे मनुष्यपर्याय प्राप्त होनेके लिये भवोंकी कोई गणना नहीं है-उसकी पुनः प्राप्तिके लिये अपरिमित अन्तर-व्यधान-पड़ जाता है। गृहीतचारित्रधर्मसे भ्रष्ट बनकर मरे हुए उस अधम मनुष्यकी उत्पत्ति नरकनिगोदादिकोंमें होती है और वह वहांकी अपार-अनंत दुःखराशिका अनुभव करता रहता है। अनन्तकाल तक भी उसके लिये मनुष्यभवकी पुनः प्राप्ति होना दुर्लभ हो जाती है। जब यह बात है तो फिर यह तो सिद्ध ही है कि उसके लिये आर्यक्षेत्र, सुकुलमें जन्म, बोधिबीजका लाभ इत्यादि समस्त सामग्रियोंकी प्राप्तिकी संभवता कैसे हो सकती है!

इसीका उपसंहार करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि-इस रीतिसे वह भोगार्थी तथा इससे अतिरिक्त और भी जो भोगाभिलाषी हैं ये सब,

---

સમયમાં આ ક્ષણભંગુર શરીરથી જ્યારે વિયોગ થાય છે ત્યાર પછી એના માટે આ દુર્લભ મનુષ્ય જીવનની પ્રાપ્તિ હોવામાં સમયનું કોઈ પ્રમાણ નિશ્ચિત નથી. છોડેલ એ પર્યાયની ફરીથી પ્રાપ્તિ થવા માટે વિરહકાળ અપરિમિત છે-ફરીથી મનુષ્યપર્યાય પ્રાપ્ત કરવા માટે ભવોની કોઈ ગણના નથી-એની ફરી પ્રાપ્તિ માટે અપરિમિત અન્તર (વ્યવધાન) થઈ જાય છે. ગૃહીત ચારિત્રધર્મથી ભ્રષ્ટ બની મરનાર એ અધમ મનુષ્યની ઉત્પત્તિ નરકનિગોદાદિમાં થાય છે. અને એ ત્યાંની અપાર-અનન્ત દુઃખરાશિનો અનુભવ કરતો રહે છે. અનન્તકાળ સુધી પણ એને માટે મનુષ્યભવની પ્રાપ્તિ દુર્લભ બની જાય છે. જ્યારે આ વાત છે તો પછી એ તો સિદ્ધ જ છે કે તેને માટે આર્યક્ષેત્ર, સુકુળમાં જન્મ, બોધિબીજનો લાભ ઈત્યાદિ સમસ્ત સામગ્રીઓની પ્રાપ્તિની સંભવતા પણ કેમ થઈ શકે ? કોઈ કાળે થઈ શકે નહિ. આનો ઉપસંહાર કરતાં સૂત્રકાર કહે છે કે આ રીતથી તે ભોગાર્થી તથા આનાથી અતિરિકત એવા પણ જે ભોગાભિલાષી છે

अन्तरायबहुलत्वाद् दुःखमयैः आकेवलिकैः, केवलम्=अखण्डं सम्पूर्णमिति यावत्, न केवलमकेवलं तत्र भवा आकेवलिकाः=असंपूर्णास्तैः=भोगेच्छां पूरयितुमक्षमैः कामैः =शब्दादिविषयैः अतृप्ताः सन्तः मनुष्यशरीरव्यवधानं प्राप्नुवन्ति ॥ सू० १ ॥

अन्तरायबहुल होनेसे दुःखमय एवं असंपूर्ण इन शब्दादिविषयरूप कामोंसे अतृप्त होते हुए मनुष्य शरीरकी पुनः प्राप्तिके कालको व्यवधान (अन्तर) सहित कर देते हैं, आकेवलिक शब्दका अर्थ असंपूर्ण है और वह इस प्रकारसे कि अखंड–संपूर्णका नाम केवल है, जो केवल नहीं वह अकेवल है। उसमें जो हो वह आकेवलिक है। कामोंको असंपूर्ण इसलिये बतलाया गया है कि वे भोगोंकी इच्छाकी पूर्ति करनेमें असमर्थ हैं। ज्यों ज्यों इनका लाभ होता है त्यों त्यों जीवकी इच्छाएँ इन्हें अधिकाधिकरूपसे भोगनेके लिये बढ़ती जाती हैं।

भावार्थ—जो मनुष्य इस षड्जीवनिकायरूप लोकको क्लेशित समझकर उसका परित्याग कर देते हैं, तथा माता पिता आदि संबंधीजनों से भी विमुख बन कर चारित्रधर्मकी आराधना करनेमें लवलीन हो जाते हैं–चारित्रके पालनसे सम्बन्ध रखनेवाली जितनी भी ब्रह्मचर्य आदिक पालने जैसी अन्य क्रियाएँ हैं उन सबका भी वे अच्छी तरहसे पालन करते हैं, परन्तु फिर भी मोहकी प्रबलतासे वे उस गृहीत चारित्र से भ्रष्ट बनकर मिथ्यात्वी तक हो जाते हैं और मुनिचिन्होंका सर्वथा

એ બધા અન્તરાયબહુલ હોવાથી દુઃખમય અને અસંપૂર્ણ આ શબ્દાદિ વિષયરૂપ કામોથી અતૃપ્ત થતાં થતાં મનુષ્ય શરીરની પુનઃ પ્રાપ્તિના કાળને વ્યવધાન (અંતર) સહિત કરી દે છે. आकेवलिक શબ્દનો અર્થ અસંપૂર્ણ છે, અને તે આ પ્રકારે કે અખંડ સંપૂર્ણનું નામ કેવલ છે, જે કેવલ નથી એ અકેવલ છે. એમાં જે હોય તે આકેવલિક છે. કામોને અસંપૂર્ણ એ માટે બતાવેલ છે કે તે ભોગોની ઇચ્છાની તૃપ્તિ કરવામાં અસમર્થ છે. જેમ જેમ ભોગોનો લાભ થાય છે તેમ તેમ જીવની ઇચ્છાઓ એને અધિકાધિક રૂપથી ભોગવવા માટે વધતી જાય છે.

ભાવાર્થ—જે મનુષ્ય ષડ્જીવનિકાયરૂપ લોકને ક્લેશરૂપ સમજીને તેનો પરિત્યાગ કરી દે છે તથા માતા પિતા અને પોતાના સંબંધીજનોથી પણ વિમુખ બનીને ચારિત્રધર્મની આરાધના કરવામાં તલ્લીન થઈ જાય છે. ચારિત્રના પાલનથી સંબંધ રાખવાવાળી જેટલી પણ બ્રહ્મચર્ય આદિ પાળવા જેવી અન્ય ક્રિયાઓ છે એ બધાનું પણ તે સારી રીતે પાલન કરે છે. છતાં પણ મોહની પ્રબળતાથી એ ગ્રહણ કરેલા ચારિત્રથી ભ્રષ્ટ બની મિથ્યાત્વી બની જાય છે, અને મુનિચિન્હોનો સર્વથા પરિત્યાગ કરી વિષયભોગોની ચાહનામાં

यस्तु आसन्नमोक्षतया कथंचित् कुतश्चित् चारित्रं प्राप्य लघुकर्मतया प्रवर्धमान-परिणामो भवति, स सिद्धिपदं प्राप्नोतीति बोधयितुमाह-'अहेगे' इत्यादि ।

मूलम्—अहेगे धम्ममायाय आयाणप्पभिइ सुपणिहिए चरे अप्पलीयमाणे दढे सव्वं गिद्धिं परिण्णाय, एस पणए महामुणी॥सू०२॥

छाया--अथैको धर्ममादाय आदानप्रभृति सुप्रणिहितश्चरेत् अप्रलीयमानः दृढः सर्वां गृद्धिं परिज्ञाय, एष प्रणतो महामुनिः ॥ सू० २ ॥

टीका--अथ=अनन्तरम्, एकः=कश्चिदात्मार्थी धर्मं=श्रुतचारित्राख्यम्,

---

परित्याग कर, विषयभोगोंकी चाहनामें फँस, उनका सेवन करते हुए अपने अतिदुर्लभ मनुष्यजन्मको व्यर्थ नष्ट कर, नरकनिगोदादिक गतियोंके अनंत कष्टोंको भोगते रहते हैं। ऐसे जीवोंको फिरसे मानव जन्म कब कैसे प्राप्त होगा॥ सू० १ ॥

आसन्नभव्य होनेसे मोक्षकी प्राप्ति जिन्हें निकट समयमें होनेवाली है वे किसी भी तरहसे कहींसे भी चारित्रधर्मकी प्राप्ति कर लघुकर्मवाले होनेकी वजहसे चारित्रधर्मकी पालनामें वर्धितपरिणामवाले होते हैं और सिद्धिपदको प्राप्त कर लेते हैं-इस बातको समझानेके लिये सूत्रकार कहते हैं "अहेगे" इत्यादि ।

'अथ' शब्दका अर्थ अनन्तर है। जिसका तात्पर्य है कि जो चारित्र-धर्मको प्राप्त कर किसी कारणवश उसका परित्याग कर देते हैं उनकी क्या दुर्दशा होती है सो तो प्रकट कर दी गई है। अब जो चारित्रको यावज्जीवन पालते हैं उनके विषयमें यहां कहा जाता है—

ફસી તેનું સેવન કરે છે, અને પોતાના અતિદુર્લભ એવા મનુષ્ય જન્મને વ્યર્થ નષ્ટ કરી નરકનિગોદાદિ ગતિઓના અનંત કષ્ટોને ભોગવતો રહે છે. એવા જીવોને ફરીથી માનવ જન્મ કયારે કેમ પ્રાપ્ત થશે. (સૂ૦૧)

આસન્નભવ્ય હોવાથી મોક્ષની પ્રાપ્તિ જેને નિકટ સમયમાં થવાવાળી છે, એ કોઈ પણ રીતથી કયાંયથી પણ ચારિત્રધર્મની પ્રાપ્તિ કરી, લઘુકર્મવાળા હોવાને કારણે ચારિત્રધર્મને પાળવામાં વર્ધિતપરિણામવાળા હોય છે, અને સિદ્ધિપદને પ્રાપ્ત કરી લે છે. આ વાત સમજાવવા માટે સૂત્રકાર કહે છે. "अहेगे" ઈત્યાદિ.

अथ શબ્દનો અર્થ અનન્તર છે, જેનું તાત્પર્ય એ છે કે જે ચારિત્ર ધર્મને પ્રાપ્ત કરી કોઇ કારણવશ તેનો પરિત્યાગ કરી દે છે, એની શું દુર્દશા થાય છે?, એ તો પ્રગટ કરી દેવામાં આવી છે. હવે જે ચારિત્રને યાવજ્જીવન પાળે છે તેના વિષયમાં અહિં કહેવામાં આવે છે.

आदाय=गृहीत्वा, आदानप्रभृति=श्रुतचारित्रधर्मग्रहणकालादारभ्य, सुप्रणिहितः= सावधानः परीषहसहनशीलः अप्रलीयमानः=कामभोगेषु न प्रलीयमानः-अनासक्तः, अतएव-दृढः=गृहीततपःसंयमानुष्ठानप्रतिज्ञायामविचलितचित्तः सर्वां गृद्धिं= विषयभोगेच्छां परिज्ञाय=ज्ञपरिज्ञयाऽनन्तदुःखकारणत्वेन विज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया तां दूरत एव परिहृत्य चरेत्=भगवदुपदिष्टं धर्मं समाचरेदित्यर्थः। एषः= चारित्रमादाय सर्वगृद्धिभावपरित्यागी महामुनिः=महापुरुष एव प्रणतः=कर्मधूनने सम्यक् प्रवृत्तो भवति, न तु तदन्यः कातर इति ॥ सू० २ ॥

अपरं च—'अइअच्च' इत्यादि।

जो कोई आत्मार्थी श्रुतचारित्ररूप धर्मको प्राप्त कर उसकी प्राप्तिके समयसे लेकर जीवनपर्यन्त परीषह और उपसर्गोंके सहन करने में सावधान रहते हैं-परीषह उपसर्ग आने पर चारित्रसे विचलितचित्त नहीं होते हैं, तथा कामभोगोंमें जो सदा वांछारहित होते हैं, एवं जो दृढ़-गृहीत तप और संयमके अनुष्ठान करनेकी प्रतिज्ञामें अविचलितचित्त होते हैं, ऐसे वंदनीय मुनि समस्त विषयभोगोंकी इच्छाओंको अनंत दुःखोंका कारणरूप ज्ञपरिज्ञासे जानकर और प्रत्याख्यानपरिज्ञासे उनका दूर ही से परित्याग कर, वीतरागकथित निर्मल चारित्रकी आराधना करते हैं। चारित्रको प्राप्त कर समस्त विषयोंमें गृद्धिभावके परित्यागी वे ही महामुनि हैं, और वे ही कर्मोंकी रज हटाने-उडानेमें अच्छी तरह प्रवृत्त होते हैं; इनके सिवाय अन्य-दूसरे कायर नहीं ! ॥ सू० २॥

तथा 'अइअच्च' इत्यादि—

જે કોઈ આત્માર્થી શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મને પ્રાપ્ત કરી તેની પ્રાપ્તિના સમયથી માંડીને જીવનપર્યન્ત પરિષહ અને ઉપસર્ગ સહન કરવામાં સાવધાન રહે છે. પરિષહ ઉપસર્ગ આવવાથી ચારિત્રથી વિચલિતચિત્ત નથી થતા, તથા કામભોગોથી જે સદા વાંછા-રહિત બને છે એવા જે દૃઢતાપૂર્વક ગ્રહણ કરેલ તપ અને સંયમનું અનુષ્ઠાન કરવાની પ્રતિજ્ઞામાં અવિચલિતચિત્ત હોવાથી એવા વંદનીય મુનિ અને જે સમસ્ત વિષયભોગોને તથા ઈચ્છાઓને અનન્ત દુઃખોના કારણરૂપ જ્ઞપરિજ્ઞાથી જાણી અને અને પ્રત્યાખ્યાન પરિજ્ઞાથી તેનો છેટેથી જ પરિત્યાગ કરી વીતરાગકથિત નિર્મળ ચારિત્રની આરાધના કરે છે. ચારિત્ર પ્રાપ્ત કરી સમસ્ત વિષયોમાં ગૃદ્ધિભાવનો પરિત્યાગી જે છે, એ જ મુનિ છે. અને એ જ કર્મોની રજ દૂર કરવામાં-ઉડાડવામાં સારી રીતે પ્રવૃત્ત હોય છે. એના સિવાય અન્ય-બીજા કાયર નહિ. (સૂ૦૨)

તથા ''अइअच्च'' ઈત્યાદિ!

मूलम्—अइअच्च सव्वओ संगं ण महं अत्थित्ति इय एगो अहं, अस्सिं जयमाणे इत्थ विरए अणगारे, सव्वओ मुंडे रीयंते, जे अचेले परिवुसिए संचिक्खइ ओमोयरियाए ॥ सू० ३ ॥

छाया—अतिगत्य सर्वतः सङ्गं न मम अस्ति, इति एकोऽहमस्मिन् यतमानः अत्र विरतः अनगारः, सर्वतो मुण्डः रीयमाणः, यः अचेलः पर्युषितः संतिष्ठते अवमोदरिकायाम् ॥ सू० ३ ॥

टीका—मम नास्ति किंचित्, इति=अतः अहमेक एवास्मीति भावनाभावितः सर्वतः=सर्वथा सङ्गं=मातापित्रादिसम्बन्धम् अतिगत्य=अतिक्रम्य अस्मिन् आचारे यतमानः—यतनां कुर्वन्, अत्र=विषयभोगे विरतः—सर्वथा निवृत्तः, अतएव अनगारः= प्रव्रजितः, सर्वतोमुण्डः=द्रव्यतः केशलुञ्चनेन भावतो रागद्वेषराहित्येन मुण्डः, रीयमाणः—संयमानुष्ठाने विहरन् यः अचेलः=अल्पचेलः—जिनकल्पिको वा, पर्युषितः =पर्युषिताहारी, अवमोदरिकायां=न्यूनोदरतायां संतिष्ठते=वर्तते, तदपि पर्युषिताशनं नोदरपूरणेन किंत्ववमोदरिकयेति भावः। स महामुनिरिति पूर्वेण सम्बन्धः ॥सू० ३॥

"एगोहं" मैं एक हूं, मेरा संसारमें कोई नहीं है, मैं अकिञ्चन हूं— इस प्रकारकी भावनासे जिसका मन वशमें किया हुआ है, और इसी भावनासे ओतप्रोत बन जो मातापिता—आदिके सम्बन्धसे रहित बना हुआ है, ऐसा वह महामुनि अपने गृहीतचारित्रकी आराधनामें सम्हाल रखता हुआ, विषयभोगोंसे सर्वथा विरक्त होता है। मुनिदीक्षासे सुशोभित वह मुनिरत्न सर्व प्रकारसे मुण्ड—द्रव्यसे केशोंके लुञ्चन करनेसे एवं भावसे राग—द्वेषसे रहित होनेसे—होता है। संयमके अनुष्ठानमें विचरण करता हुआ वह अचेल—अल्पवस्त्रवाला होता है, अथवा जिन-कल्पी बनता है। पर्युषित (ठण्डा—बासी) आहार भी अल्प आहारमें

"एगोहं" हुं એક છું, મારૂં સંસારમાં કોઈ નથી. હું અકિંચન છું: આ પ્રકારની ભાવનાથી જેણે પોતાનું મન વશ કરેલ છે, અને એવી ભાવ-નાથી ઓતપ્રોત બની જે માતા, પિતા આદિના સંબંધથી રહિત બનેલ છે, એવા એ મહામુનિ પોતે ગ્રહણ કરેલ ચારિત્રની આરાધનામાં સંભાળ રાખતાં વિષય-ભોગોથી સર્વથા વિરક્ત બને છે, મુનિદીક્ષાથી સુશોભિત એ મુનિરત્ન સર્વ પ્રકારથી મુંડ, દ્રવ્યથી કેશલોચન કરવાથી (વાળનું ખેંચવાથી) અને ભાવથી રાગ-દ્વેષથી રહિત થવાથી બને છે. સંયમના અનુષ્ઠાનમાં વિચરણ કરનાર એ અચેલ-અલ્પ વસ્ત્રવાળા બને છે, અથવા જીનકલ્પી થાય છે. પર્યુષિત (ઠંડા

अवमोदरिकायां वर्त्तमानस्य परीषहसहनमाह-' से आकुट्टे ' इत्यादि।

मूलम्—से आकुट्टे वा हए वा लुंचिए वा पलियं पकत्थ अदुवा पकत्थ अतहेहिं सद्दफासेहिं, इय संखाए एगयरे अन्नयरे अभिन्नाय तितिक्खमाणे परिव्वए । जे य हिरीजे य अहिरीमाणा ॥सू०४॥

छाया—स आक्रुष्टो वा हतो वा लुञ्चितो वा पलितं प्रकथ्य अथवा प्रकथ्य अतथ्यैः शब्दस्पर्शैः, इति संख्याय एकतरान् अन्यतरान् अभिज्ञाय तितिक्षमाणः परिव्रजेत्। ये च ह्रीरूपाः ये च अह्रीमनसः ॥ सू० ४ ॥

टीका—सः=अवमोदरिकः यदा केनचिद्धर्मानभिज्ञेन पलितं=पूर्वकृतं जुगुप्सितं कर्म प्रकथ्य=' भो प्रव्रजित! पूर्वं काष्ठहारादिकर्म कृत्वा प्रव्रजितवेषः किमिदानीं मामुपदेष्टुं प्रवृत्तः ' इत्यादिवाक्यैर्विनिन्द्य, अथवा अतथ्यैः=अशोभनैः असंगतैः=अनुचितैः शब्दस्पर्शैः=' त्वं चौरः पारदारिकः ' इत्यादिशब्दैः, तथा

ही मानना चाहिये । अर्थात् पर्युषित आहार भी ऊनोदररूपसे ही लेता है, भरपेट नहीं ॥ सू० ३ ॥

अल्प-आहारी-अवस्थामें भी परीषह और उपसर्गों को उसे सहन करना चाहिये, इसे सूत्रकार कहते हैं—" से आकुट्टे इत्यादि ।

वह अवमोदरिकाव्रती साधु यदि किसी धर्मानभिज्ञ व्यक्तिके द्वारा इस प्रकारसे कहा जाय कि हे प्रव्रजित ! तुम तो पहिले लकडियां बेचा करते थे, अब कबसे साधु बन गये हो ? साधुका वेष पहिन कर क्या इस समय हमें उपदेश दे रहे हो ? हम तुम्हारे जैसे हीनकुलका उपदेश नहीं सुनना चाहते ! अथवा इस प्रकारके अनुचित वाक्योंसे यदि कोई उसकी निंदा करे कि तुम तो परदारलंपट हो, चोर हो; या

વાસી) આહાર લે છે, અથવા ઉનોદર—અલ્પ—આહારી થાય છે. પર્યુષિત આહારને પણ અલ્પ આહાર જ માનવો જોઈએ, અર્થાત્ આહાર પણ ઉનોદરરૂપથી જ લે છે; પેટ ભરીને નહીં. (સૂ૦ ૩)

અલ્પ—આહારી અવસ્થામાં પણ પરિષહ અને ઉપસર્ગો એણે સહન કરવા જોઈએ. આને સૂત્રકાર કહે છે. " से आकुट्ठे " ઇત્યાદિ !

એ અવમોદરિકાવ્રતી સાધુને કદી કોઈ ધર્માનભિજ્ઞ વ્યક્તિની મારફત આ પ્રકારથી કહેવાય કે હે પ્રવ્રજિત ! તમે તો પહેલાં લાકડાં વેચતા હતા, ક્યારથી સાધુ બની ગયા છો ? સાધુનો વેશ પહેરી શું આ સમય અમને ઉપદેશ આપી રહ્યા છો ? અમે તમારા જેવા હલકા કુળના માણસનો ઉપદેશ સાંભળવા નથી ઇચ્છતા." અથવા આ પ્રકારનાં અનુચિત વાક્યોથી કોઈ એમની નિંદા કરે કે તમે તો વ્યભિચારી છો, ચોર છો, અથવા કોઈ " એનો હાથ કાપે, પગ કાપે,

करचरणच्छेदन-भेदन-मोटनादिरूपैः स्पर्शैश्च प्रकथ्य=कदर्थीकृत्य आक्रुष्टः=आक्षिप्तः वा=अथवा हतः=यष्टिमुष्टयादिभिस्ताडितः लुञ्चितो वा=केशाकर्षणेन नखाघातेन च व्याकुलीकृतः सन् इति='मम पूर्वकृतकर्मफलमेतत्' इत्येवं संख्याय=पर्यालोच्य एकतरान्=उक्तरूपान् प्रतिकूलपरीषहान् अथवा अन्यतरान्=तद्भिन्नाननुकूल परिषहान्=सत्कारपुरस्कारादिरूपानपि अभिज्ञाय=मोक्षमार्गप्रतिबन्धका एते इति विचार्य तितिक्षमाणः=उभयानपि परीषहान् समभावेन सहमानः परिव्रजेत्=विहरेत् । प्रकारान्तरेणापि परीषहद्वैविध्यं दर्शयति-'ये चे 'त्यादि । ये च परीषहाः ह्रीरूपाः=लज्जारूपाः-अचेलरूपा याचनादिरूपा वा, तथा ये च अह्रीमनसः=अलज्जा-

कोई "उसका हाथ काटे, पैर छेदे, गर्दन पकड़ कर मरोड देवे"-इस प्रकारसे उसे दुःखित करे, लकड़ी, मूंठ आदिसे कोई यदि उसे ताडित करे, बालोंको पकड कर यदि कोई उसे घसीटे, अथवा लोंचे, तो भी उस साधुको यही विचारना चाहिये कि "मम पूर्वकृत कर्मफलमेतत्" ये सब उपसर्ग मेरे पूर्वकृत कर्मोंके ही फल हैं । इनमें इनका कुछ भी अपराध नहीं । इस प्रकारसे जब उसके ऊपर ये पूर्वोक्त बातें प्रतिकूल-परीषहके रूपमें आती हैं, अथवा सत्कार, पुरस्कार आदि अनुकूल परीषहरूपमें आती हैं तो उस समय उसे यही विचारकर कि ये सब "मोक्षमार्गकी प्रतिबन्धिका हैं" उन्हें खुशीसे सहना चाहिये । चाहे अनुकूल परीषह हों, चाहे प्रतिकूल परीषह हों, चाहे कोई उपसर्ग करे, अथवा सत्कार करे, सब अवस्थाओं में मुनियों को समभाव रखना चाहिये । इसी प्रकार जो अचेलरूप-(अल्प वस्त्र-सामान्य वस्त्र)-अथवा याचनादि,

ગરદન પકડી મરડી નાખે" આ પ્રકારે એને દુઃખિત કરે, લાકડી કે હાથથી માર મારે, વાળ પકડીને કોઈ ઢસરડે, અથવા લોંચે, તો પણ સાધુએ વિચારવું જોઈએ કે "मम पूर्वकृतकर्मफलमे तत्"—આ ઉપસર્ગ મારા પૂર્વકૃત કર્મોના ફલ સ્વરૂપ છે. આમાં તેનો કોઇ અપરાધ નથી. આ રીતે જ્યારે એના ઉપર એ પૂર્વોક્ત વાતો પ્રતિકૂળ પરિષહના રૂપમાં આવે છે, અથવા સત્કાર, પુરસ્કાર આદિ અનુકૂળ પરિષહરૂપમાં આવે છે તો એ સમય એણે એ વિચાર કરીને કે આ બધી વાતો "મોક્ષમાર્ગની પ્રતિબંધિકા છે" તેને ખુશીથી સહી લેવું જોઈએ. ભલે અનુકૂળ પરિષહ હોય, ચાહે પ્રતિકૂળ પરિષહ હોય, ચાહે કોઈ ઉપસર્ગ કરે કે સત્કાર કરે. બધી અવસ્થાઓમાં મુનિઓએ સમભાવ રાખવો જોઈએ. આ રીતે જે અચેલરૂપ (અલ્પ વસ્ત્ર-સામાન્ય વસ્ત્ર) અથવા યાચનાદિરૂપ પરિષહ જે લજ્જારૂપ છે અને શીત, ઉષ્ણ આદિ અલજ્જારૂપ છે આ બન્ને

रूपाः=शीतोष्णादयस्तान् द्विविधानपि परीषहान् समभावेन तितिक्षमाणः परिव्रजेदिति सम्बन्धः ॥ सू० ४ ॥

मूलम्—चिच्चा सव्वं विसुत्तियं फासे समियदंसणे ॥सू० ५॥

छाया—त्यक्त्वा सर्वां विस्रोतसिकां स्पृशेत् समितदर्शनः ॥ सू० ५ ॥

टीका—किञ्च-'चिच्चा' इत्यादि। समितदर्शनः=सम्यग् इतं-गतं प्राप्तं दर्शनं यस्य स समितदर्शनः-सम्यग्दृष्टिरित्यर्थः। सर्वां विस्रोतसिकां=परीषहप्रयुक्तं दुश्चिन्तनं त्यक्त्वा स्पृशेत्=सर्वान् परीषहान् अधिसहेत ॥ सू० ५ ॥

मूलम्—एए भो! णगिणा वुत्ता जे लोगंसि अणागमणधम्मिणो ॥ सू० ६ ॥

छाया—एते भो! नग्ना उक्ता ये लोकेऽनागमनधर्मिणः ॥ सू० ६ ॥

टीका—'एए भो' इत्यादि। भोः शिष्याः! ये अनागमनधर्मिणः=अप्रत्यागमनशीलाः-आहृतप्रतिज्ञाभारधारणशीलत्वात् पुनर्गृहं प्रत्यागन्तुं नेच्छन्तीत्यर्थः,

---

रूप परीषहें लज्जारूप हैं और जो शीत उष्ण आदि अलज्जारूप हैं, इन दोनों परीषहों को भी उसे समभावसे युक्त होकर ही सहन करना चाहिये, तभी कर्मोंका नाश होगा ॥ सू० ४॥

—अच्छी तरह अथवा अच्छा प्राप्त है दर्शन जिसे उसका नाम समितदर्शन-सम्यग्दृष्टि है। वह परीषहप्रयुक्त दुश्चितनका त्याग कर समस्त परीषहोंको सहे। परीषहोंको सहते समय कभी भी आर्त्त रौद्ररूप परिणाम नहीं करना चाहिये, शांति और समतासे उन्हें सहना चाहिये ॥ सू० ५ ॥

शिष्योंको सम्बोधित करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि हे शिष्यो! जो अनागमनधर्मी हैं—गृहीतमुनिव्रतधारणरूप प्रतिज्ञाके भारको वहन करनेके स्वभाववाले होनेकी वजहसे जो पीछे लौट कर घर नहीं

પરિષહોને પણ સમભાવથી યુક્ત થઈ એણે સહન કરવા જોઈએ. ત્યારે જ કર્મોનો નાશ થશે. (સૂ૦૪)

સારી રીતે પ્રાપ્ત છે દર્શન જેને તેનું નામ સમિતદર્શન એટલે સમ્યગ્દષ્ટિ છે. તે પરિષહપ્રયુક્ત ખરાબ ચિંતનનો ત્યાગ કરી સઘળા પરિષહોને સહે. તે પરિષહોને સહન કરતી સમય કદી પણ તેને આર્ત્ત રૌદ્રરૂપ પરિણામ નહિ કરવું જોઇએ, શાંતિ અને સમતાથી તેને સહવું જોઈએ. (સૂ૦૫)

શિષ્યોને સંબોધન કરતાં સૂત્રકાર કહે છે કે હે શિષ્યો! જે અનાગમનધર્મી છે-ધારણ કરેલ મુનિવ્રતરૂપ પ્રતિજ્ઞાના ભારને વહન કરવાનો સ્વભાવવાળા

एते=परीषहसहिष्णवः नग्नाः=भावनग्नाः-अकिंचनाः निर्ग्रन्थाः उक्ताः=तीर्थङ्करैः कथिताः ॥ सू० ६ ॥

मूलम्—आणाए मामगं धम्मं, एस उत्तरवाए इह माणवाणं वियाहिए ॥ सू०७ ॥

छाया-आज्ञया मामकं धर्मम्, एष उत्तरवादः इह मानवेभ्यो व्याख्यातः।७।

टीका—'आणाए' इत्यादि। आज्ञया=ममोपदेशेन मामकं=मदीयं मयाऽङ्गीकृतं धर्मं सम्यगनुपालयेत् इत्येवमुक्तं भगवता। एष उत्तरवादः=उत्कृष्टोपदेशः इह=मनुष्यलोके मानवेभ्यो व्याख्यातः, इह मनुष्यार्थमेतद्वचनमुक्तं तेषामेव सम्पूर्णधर्माराधनयोग्यतासद्भावात् ॥ सू० ७ ॥

आते हैं वे ये परीषहोंको सहन करनेके स्वभाववाले भावनग्न-अकिंचन निर्ग्रन्थ साधु तीर्थङ्करों द्वारा कहे गये हैं।

भावार्थ—परीषहोंके जीतनेमें जो अपनी शक्तिका पराक्रम प्रकट करते हैं और उनसे अनुद्विग्न बन कर जो "कार्यं वा साधयामि शरीरं वा पातयामि"-अपने गृहीत मुनिव्रतरूप कार्यकी सफलतार्थ सर्व प्रकारके सुखों को सर्वथा त्याग चुके हैं और अपनी प्रतिज्ञाके निर्वाहार्थ परीषहोंसे अडोल बन कर उनका सामना करते हैं-कभी भी घर नहीं आते हैं, वे ही सच्चे भावसाधु हैं; ऐसा तीर्थङ्करोंका आदेश है ॥सू०६॥

मनुष्यों में ही संपूर्ण श्रुतचारित्ररूप धर्मके आराधन करनेकी योग्यता का सद्भाव है, इसलिये मैंने उनके लिये ही यह वचन कहा है कि वे मेरे कहनेसे मेरे द्वारा अङ्गीकृत धर्मका अच्छी तरह पालन करें; क्यों कि

હોવાના કારણે જે ઘેર પાછા નથી ફરતા, તે એ પરિષહોને સહન કરવાના સ્વભાવ વાળા ભાવનગ્ન-અકિંચન નિર્ગ્રન્થ સાધુ તીર્થંકરોથી કહેવાયા છે.

ભાવાર્થ—પરિષહોને જીતવામાં જે પોતાની શક્તિનું પરાક્રમ પ્રગટ કરે છે અને એથી અનુદ્વિગ્ન બની જે "कार्यं वा साधयामि शरीरं वा पातयामि"—પોતે ધારણ કરેલા મુનિવ્રતરૂપ કાર્યની સફળતા માટે સર્વ પ્રકારના સુખોનો જે સર્વથા ત્યાગ કરી ચૂકયા છે, અને પોતાની પ્રતિજ્ઞા પૂર્ણ કરવા પરિષહોથી અડોલ બની તેનો જે સામનો કરે છે-કદી પણ ઘર તરફ નજર સરખીએ કરતા નથી, એજ સાચા-ભાવસાધુ છે-એવો તીર્થંકરોનો આદેશ છે. (સૂ૦૬)

માણસોમાં જ સંપૂર્ણ શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મનું આરાધન કરવાની યોગ્યતાનો સદ્ભાવ છે; આ માટે મેં એમને માટે જ આ વચન કહેલ છે કે તેઓ મારા કહે-

मूलम्—इत्थोवरए तं झोसमाणे आयाणिज्जं परिन्नाय परियाएण विगिचइ ॥ सू० ८ ॥

छाया—अत्रोपरतः तद् झोषयन् आदानीयं परिज्ञाय पर्यायेण विवेचयति ॥८॥

टीका—'इत्थोवरए' इत्यादि । अत्र=अस्मिन् कर्मधूननोपाये संयमे, उपरतः=उप=सामीप्येन रतः संलग्नः सन्, तद्=अष्टविधं कर्म झोषयन्=क्षपयन् धर्मं चरेदित्यर्थः । अतः आदानीयं=कर्म परिज्ञाय मूलोत्तरप्रकृतिभेदेन ज्ञात्वा पर्यायेण=श्रमणधर्माराधनेन विवचयति=पृथक् करोति–क्षपयतीत्यर्थः ॥ सू०८ ॥

सकलकर्मधूननक्षमं यद्बाह्यं तपस्तदधिकृत्याह–'इह एगेसिं' इत्यादि ।

यह उत्कृष्ट धर्मका उपदेश मनुष्योंके लिये ही कहा गया है ।

भावार्थ—यह उत्कृष्ट धर्मका उपदेश मनुष्योंके लिये ही है ऐसा जो कहा जाता है, उसका कारण मनुष्योंमें ही सम्पूर्ण रूपसे धर्माराधन करनेकी योग्यता रही हुई है, अन्योंमें नहीं ! अतः उन्हींके निमित्त धर्मका उपदेश है, अन्य प्राणी भी इससे आत्महित कर सकते हैं ॥सू०७॥

कर्मके विनाश करनेमें उपायस्वरूप इस संयममें लवलीन हुआ मुनि अष्टविध कर्मका विनाश करता हुआ धर्मकी आराधना करे; क्यों कि मूल और उत्तर प्रकृतिके भेदसे कर्मका परिज्ञान कर श्रमणधर्मकी आराधना करनेसे मनुष्य उन कर्मोंका क्षय करता है ॥सू०८॥

समस्त कर्मोंके विनाश करनेमें समर्थ जो बाह्य तप है उसकी अपेक्षासे सूत्रकार कहते हैं–"इह एगेसिं" इत्यादि ।

વાથી મારા દ્વારા અંગીકૃત ધર્મનું સારી રીતે પાલન કરે; કેમકે આ ઉત્કૃષ્ટ–ધર્મનો ઉપદેશ મનુષ્યોને માટે જ છે.

ભાવાર્થ—'આ ઉત્કૃષ્ટ ધર્મનો ઉપદેશ મનુષ્યો માટે જ છે' એમ જે કહેવામાં આવે છે એનું કારણ મનુષ્યોમાં જ સંપૂર્ણ રૂપથી ધર્મારાધન કરવાની યોગ્યતા રહેલી છે, અન્યમાં નહીં. આથી એમના નિમિત્ત ધર્મનો ઉપદેશ છે, અન્ય પ્રાણી પણ આનાથી આત્મહિત કરી શકે છે. (સૂ૦ ૭)

કર્મનો વિનાશ કરવાના ઉપાયસ્વરૂપ એ સંયમમાં લવલીન બનેલ મુનિ, અષ્ટવિધ કર્મોનો વિનાશ કરતાં, ધર્મની આરાધના કરે. કેમ કે મૂલ અને ઉત્તર પ્રકૃતિના ભેદથી કર્મનું પરિજ્ઞાન કરી શ્રમણધર્મની આરાધના કરવાથી મનુષ્ય એના કર્મોનો ક્ષય કરે છે. (સૂ૦ ૮)

સમસ્ત કર્મોનો વિનાશ કરવામાં સમર્થ જે બાહ્યતપ છે એની અપેક્ષાથી સૂત્રકાર કહે છે " इह एगेसिं " ઈત્યાદિ.

मूलम्—इह एगेसिं एगचारिया होइ, तत्थियरा इयरेहिं कुलेहिं सुद्धेसणाए सव्वेसणाए से मेहावी परिव्वए। सुब्भि अदुवा दुब्भि अदुवा तत्थ भेरवा पाणा पाणे किलेसंति, ते फासे पुट्ठो धीरे अहियासिज्जासि त्तिबेमि ॥ सू० ९ ॥

छाया——इह एकेषामेकचर्या भवति, तत्रेतरादितरेषु कुलेषु शुद्धैषणया सर्वैषणया स मेधावी परिव्रजेत् । सुरभि अथवा दुरभि अथवा तत्र भैरवाः प्राणाः प्राणान् क्लेशयन्ति, तान् स्पर्शान् स्पृष्टो धीरः अधिसहस्व इति ब्रवीमि ॥ सू० ९ ॥

टीका——इह=अस्मिन् जिनशासने, एकेषां=केषांचित् शिथिलीकृतकर्मबन्धानां एकचर्या=एकाकिविहरणप्रतिमा भवति । तत्र चानेकरूपा अभिग्रहविशेषाः भवन्ति, अतः प्राभृतिकादोषमधिकृत्याह—तत्रेत्यादि । तत्र तस्मिन् एकाकिविहारे स=कर्मधूननार्थमुद्यतः, मेधावी=साधुमर्यादाव्यवस्थितः, इतरादितरेषु=अज्ञातेषु अन्तप्रान्तेषु वा कुलेषु शुद्धैषणया—शङ्कादिदशैषणादोषरहितेनाशनादिना सर्वैषणया=आहाराद्युद्गमोत्पादनग्रासैषणारूपा या सर्वैषणा तया, परिशुद्धेन विधिना कर्मधूननोपाये संयमे परिव्रजेत्=विहरेत्, तथा सुरभि=सिंहकेशरमोदकादिकं दुरभि=

जिनके कर्मोंका बन्ध शिथिल हो गया है ऐसे मुनिराजोंकी एकचर्या होती है, इस चर्यामें उनके अनेक प्रकारके अभिग्रहविशेष होते हैं। प्राभृतिका दोषको लेकर सूत्रकार कहते हैं कि उस एकाकिविहारमें कर्मोंके विनाश करनेमें उद्यत एवं साधुमर्यादामें व्यवस्थित वह मेधावी मुनि अज्ञात अथवा अन्तप्रान्त कुलोंमें शुद्ध—एषणा—शङ्कादिक दश एषणाके दोषोंसे रहित आहारादिकसे और सर्वएषणा—आहारादिकके उद्गम, उत्पादन एवं ग्रास एषणासे परिशुद्ध विधिसे कर्मोंके विनाशक संयममें लवलीन रहता हुआ विहार करे, और सुरभि—सिंहकेशरमोदक वगैरह, और दुरभि—बल्लचणा आदिसे निष्पन्न पर्युषित अम्ल-

જેમના કર્મનો બંધ શિથિલ થઈ ગયેલ છે એવા મુનિરાજોની એકચર્યા થાય છે. આ ચર્યામાં એમનો અનેક પ્રકારનો અભિગ્રહવિશેષ હોય છે. પ્રાભૃતિકા દોષ લઈને કહે છે કે એકાકિવિહારમાં કર્મોનો વિનાશ કરવામાં તત્પર, અને સાધુમર્યાદામાં વ્યવસ્થિત એ મેધાવી મુનિ, અજ્ઞાત અથવા અન્તપ્રાન્ત કુળોમાં શુદ્ધ એષણા—શંકાદિક દશ એષણાના દોષોરહિત આહારાદિકથી અને સર્વ એષણા—આહારાદિકનો ઉદ્દ્ગમ, ઉત્પાદન અને ગ્રાસ—એષણાથી પરિશુદ્ધ વિધિથી કર્મોનો વિનાશ કરનાર સંયમમાં લવલીન રહી વિહાર કરે, અને સુરભિ—સિંહકેશરમોદક વગેરે, અથવા દુરભિ—બલ્લચણા વગેરેથી નિષ્પન્ન પર્યુષિત ખાટી છાશ

वल्लचणकादिनिष्पन्नं पर्युषितमन्नमम्लतक्रादिमिश्रितं वा प्राप्य परिव्रजेत्=रागद्वेषरहितो विहरेत्। शास्त्रविधिमनतिक्रम्य यथालब्धं प्रशस्ताप्रशस्तगन्धयुक्तमाहारादिकमङ्गारधूमादिमण्डलदोषपरिवर्जनपूर्वकं भुञ्जीतेति भावः, तथा चोक्तम्--

"पडिग्गहं संलिहित्ताणं लेवमायाइ संजए।
सुगंधं वा दुगंधं वा, सव्वं भुंजे न छड्डए॥ १॥ (दश वै० अ०५ उ० २)

अथवा-भोः शिष्य! एकाकिविहारे श्मशानादौ भैरवाः=भयंकराः प्राणाः पिशाचादयः प्राणान्=अन्यान् प्राणिनः, यद्वा प्राणान्=तव प्राणान् क्लेशयन्ति-उप-

---

तक्र (खाटी छाछ) आदिसे मिश्रित अन्नको राग-द्वेष रहित भोगे। शास्त्रोक्त विधिके अनुसार जो भी निर्दोष आहार उसे प्राप्त हो- चाहे वह प्रशस्तगन्धयुक्त हो, चाहे अप्रशस्त गन्धवाला हो, उस आहारको वह अङ्गार धूमादिमण्डल दोषसे परिवर्जित भोगे। कहा भी है-

"पडिग्गहं संलिहित्ताणं, लेवमायाइ संजए।
सुगंधं वा दुगंधं वा, सव्वं भुंजे न छड्डए॥" (दश. अ.५ उ.२गा.१)

अथवा--एकाकीविहार करनेवाले शिष्यको शिक्षा देते हुए सूत्रकार कहते हैं कि हे शिष्य! जब तुम एकाकिविहारमें हो, और कदाचित् श्मशान आदिमें ध्याननिमित्त रहना पडे, तो उस दशामें यदि वहां रहनेवाले भयङ्कर पिशाचादिक प्राणी कि जिनका स्वभाव ही दूसरे प्राणियों को कष्ट पहुंचानेका होता है तुम्हें भी क्लेशित करें-कष्ट-उपसर्ग पहुंचावें तो तुम उन कष्टोंसे घबराना नहीं, प्रत्युत धीरवीरकी तरह

આદિથી મિશ્રિત અન્નને, રાગ-દ્વેષ રહિત ભોગવે. શાસ્ત્રોક્તવિધિ અનુસાર જે પણ નિર્દોષ આહાર તેને પ્રાપ્ત થાય, ચાહે તે પ્રશસ્ત ગંધવાળા હોય, ચાહે અપ્રશસ્ત ગંધવાળા હોય, તે આહારને તે અંગાર ધૂમાદિમંડળ દોષોથી રહિત ભોગવે. કહ્યું પણ છે—

"પડિગ્ગહં સંલિહિત્તાણં, લેવમાયાઇ સંજએ।
સુગંધં વા દુગંધં વા, સવ્વં ભુંજે ન છડ્ડએ॥" (દશવૈ૦ અ૦ ૫ ઉ૦૨ ગા૦ ૧)

અથવા—એકાકિ વિહાર કરવાવાળા શિષ્યને સમજાવતાં સૂત્રકાર કહે છે કે હે શિષ્ય! જ્યારે તમે એકાકીવિહારમાં હો, અને કદાચિત શ્મશાન આદિમાં ધ્યાન નિમિત્ત રહેવું પડે તો તેવી દશામાં કદાચ તે જગ્યાએ રહેવાવાળા ભયંકર પિશાચ આદિ પ્રાણી કે જેનો સ્વભાવ બીજા પ્રાણીઓને કષ્ટ પહોંચાડવાનો છે, તમને પણ કલેશ આપે-ઉપસર્ગ પહોંચાડે તો તમે તેવા કષ્ટોથી

तापयन्ति । त्वं तु तैः क्लेशैः स्पृष्टः, धीरः=अक्षोभ्यः सन् तान् स्पर्शान्=दुःखविशेषान् अधिसहस्व–इति ब्रवीमि, अस्य व्याख्या पूर्ववत् ॥ सू० ९ ॥

॥ षष्ठाध्ययनस्य द्वितीय उद्देशः समाप्तः ॥ ६–२ ॥

उन कष्टोंको अक्षुब्धचित्त बन शांतिभावसे सहन करना। "इति ब्रवीमि" इन पदोंकी पहिले जैसी ही व्याख्या समझ लेनी चाहिये।

भावार्थ—एकाकिविहार करनेवाले साधु वे ही हो सकते हैं जो जितेन्द्रिय होते हैं और उपसर्ग एवं परीषहोंसे जो कभी भी विचलित-चित्त नहीं होते हैं। इनके अनेक प्रकारके नियम होते हैं। ये ऐसी कोई भी प्रवृत्ति नहीं करते कि जिससे साधुमर्यादाका भङ्ग हो। आहार के लिये जब ये निकलते हैं तब चाहे अन्तप्रान्त हो, कैसा भी क्यों न हो, जहां भी इन्हें शङ्कादिक दश एषणाके दोषोंसे रहित आहार मिल जायगा अथवा सर्वैषणासे जो परिशुद्ध होगा, कल्प समझ कर ये उसे ले लेगें। वह चाहे सिंहकेशरमोदकादिक हो चाहे, बल्लचणकादिक से बना और अम्लतक्रादिकसे मिश्रित हो, उसमें इन्हें कोई भी जातका पक्षपात नहीं होता है। आहारके विषयमें इनकी यही शुद्धदृष्टि रहती है कि कुछ भी मिलेपर उसे शास्त्रविधिके अनुसार ही ग्रहण करें।

ગભરાતા નહીં, પણ ધીર વીરની રીતે તેવા કષ્ટોને ક્ષોભવિના શાંતિભાવથી સહન કરો. "इति ब्रवीमि" આ પદોની પહેલાની માફકજ વ્યાખ્યા સમજવી જોઈએ.

ભાવાર્થ—એકાકીવિહાર કરવાવાળા સાધુ એ જ હોય છે જે જીતેન્દ્રિય હોય છે, ઉપસર્ગ અને પરિષહોથી જે કદિ પણ વિચલિતચિત્ત થતા નથી. એમના અનેક પ્રકારના નિયમો હોય છે, તેઓ એવી કોઈ પણ પ્રવૃત્તિ નથી કરતા કે જેનાથી સાધુમર્યાદાનો ભંગ થાય. આહારને માટે જ્યારે તે નીકળે છે ત્યારે ભલે અન્તપ્રાન્ત હોય, ગમે તેવું કેમ ન હોય, જ્યાં પણ તેને શંકાદિક એષણાના દોષોથી રહિત આહાર મળી જાય અથવા સર્વૈષણાથી જે પરિશુદ્ધ હોય તેને કલ્પ સમજીને તે લઇ લે. એ ભલે સિંહકેશરમોદકાદિક હોય ચાહે બલ્લચણકાદિકથી બનેલ અને ખાટી છાશ આદિથી મિશ્રિત હોય. તેમાં તેને કોઈ પણ જાતનો પક્ષપાત થતો નથી, આહારના વિષયમાં તેની આવી શુદ્ધ નજર રહે છે કે કાંઈ પણ મળે, પણ તેને શાસ્ત્રવિધિ અનુસારે જ ગ્રહણ કરીશ.

शिष्योंको सम्बोधन करते हुए सूत्रकार अन्तमें कहते हैं कि इस एकाकिविहारमें साधुको अनेक प्रकारकी आपत्तिविपत्तियोंका सामना करना पड़ता है। कभी २ तो यहां तक भी मौका आ जाता है कि श्मशान आदिमें पहुंचने पर साधुके उपर भयंकर पिशाचादि प्राणियों का उपसर्ग होता है; परन्तु वह धीरवीर साधु उनसे कभी भी घबराता नहीं है और सहर्ष उन परीषह-उपसर्गोंको जीतकर अपने संयमकी रक्षा करता है ॥सू०९॥

छट्ठा अध्ययनका दूसरा उद्देश समाप्त ॥ ६-२ ॥

શિષ્યોને સંબોધન કરતાં સૂત્રકાર કહે છે કે આ એકાકીવિહારમાં સાધુને અનેક પ્રકારની આપત્તિ-વિપત્તિનો સામનો કરવો પડે છે. ક્યારેક ક્યારેક તો એવો પણ પ્રસંગ આવે છે કે શ્મશાન આદિમાં પહોંચતાં સાધુના ઉપર ભયંકર પિશાચાદિ પ્રાણીઓના ઉપસર્ગ થાય છે; પરન્તુ તે ધીરવીર સાધુ એનાથી કોઈ વખત ગભરાતા નથી, અને સહર્ષ એવા પરિષહ ઉપસર્ગને જીતીને પોતાના સંયમની રક્ષા કરે છે.

છઠ્ઠા અધ્યયનનો બીજો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૬-૨ ॥



। अथ षष्ठाध्ययनस्य तृतीय उद्देशः ।

इहानन्तरद्वितीयोद्देशके कर्मधूननं सोपायं प्रदर्शितम् । तच्चोपकरणशरीरममत्वविधूननं विना न संभवतीत्यतस्तद्बोधयितुं तृतीयमुद्देशकं कथयति, तत्रादौ मुनिमर्यादामाह—' एयं खु ' इत्यादि ।

मूलम्–एयं खु मुणी आयाणं सया सुअक्खायधम्मे विहूयकप्पे णिज्झोसइत्ता ॥ सू० १ ॥

छाया—एतत्खलु मुनिरादानं सदा स्वाख्यातधर्मः विधूतकल्पः निर्झोष्य ॥ सू० १ ॥

टीका—सदा=सर्वदा स्वाख्यातधर्मः–सु=सुष्ठु–सम्यक्प्रकारेण आख्यातः=भगवता प्ररूपितः ममत्वत्यागरूपो धर्म एव धर्मः यस्य स स्वाख्यातधर्मः, तथा–

छट्ठा अध्ययनका तीसरा उद्देश ।

इस अध्ययनके द्वितीय उद्देशमें कर्मोंका क्षय उपायसहित प्रदर्शित किया जा चुका है। कर्मोंका क्षय भी जब तक उपकरण और शरीरमें ममत्वका अभाव नहीं होगा तब तक नहीं हो सकता है, इसलिये उसे समझानेके लिये इस तृतीय उद्देशका सूत्रकार कथन करते हैं। उसमें सर्वप्रथम वे मुनिकी मर्यादा कहते हैं–' एयं खु " इत्यादि ।

सर्वदा जिसके हृदयमें भगवत्प्ररूपित ममत्वत्यागरूप धर्म विद्यमान है, जो यह समझता है कि ममत्वत्याग ही सच्चा धर्म है, अर्थात्–जिनप्रवचनमें कथित प्रतिज्ञाके भारको वहन करनेमें जो शक्तिसम्पन्न

છટ્ઠા અધ્યયનનો ત્રીજો ઉદ્દેશ

આ અધ્યયના બીજા ઉદ્દેશમાં કર્મોના ક્ષય ઉપાયસહિત પ્રદર્શિત કરવામાં આવેલ છે. કર્મોનો ક્ષય પણ જ્યાં સુધી ઉપકરણ અને શરીરમાં મમત્વનો અભાવ નહિ થાય ત્યાં સુધી થઈ શકતો નથી. આ માટે એ સમજાવવા આ ત્રીજો ઉદ્દેશ સૂત્રકાર કહે છે. એમાં સર્વપ્રથમ એ મુનિની મર્યાદા કહે છે. " एयं खु " ઈત્યાદિ.

સદાય જેના હૃદયમાં ભગવત્પ્રરૂપિત મમત્વત્યાગરૂપ ધર્મ વિદ્યમાન છે. જે એ સમજે છે કે મમત્વત્યાગજ સાચો ધર્મ છે, અર્થાત્–જીનપ્રવચનમાં કહેલ પ્રતિજ્ઞાના ભારને વહન કરવામાં જે શક્તિસંપન્ન છે, તથા વિધૂતકલ્પ–સારી

विधूतकल्पः-विधूतः=सम्यक् स्पृष्टः कल्पः=आचारो येन स विधूतकल्पः=ज्ञानाचारादिपरिपालको मुनिः एतत्=पूर्वोक्तं वक्ष्यमाणं वा आदानं=कर्मोपादानं धर्मोपकरणातिरिक्तं वस्त्रादिकं निर्झोष्य=वर्जयित्वा-अस्वीकृत्येत्यर्थः, विहरति ॥ सू० १ ॥

किञ्च—'जे अचेले' इत्यादि ।

मूलम्—जे अचेले परिवुसिए, तस्स णं भिक्खुस्स नो एवं भवइ—परिजुण्णे मे वत्थे, वत्थं जाइस्सामि, सुत्तं जाइस्सामि, सूइं जाइस्सामि, संधिस्सामि, सीविस्सामि, उक्कसिस्सामि, वुक्कसिस्सामि, परिहिस्सामि, पाउणिस्सामि ॥ सू० २ ॥

छाया—योऽचेलः पर्युषितस्तस्य खलु भिक्षोर्नो एवं भवति—परिजीर्णं मे वस्त्रं, वस्त्रं याचिष्ये, सूत्रं याचिष्ये, सूचीं याचिष्ये, संधास्यामि, सेविष्यामि, उत्कर्षयिष्यामि, व्युत्कर्षयिष्यामि, परिधास्यामि, प्रावरिष्यामि ॥सू० २॥

है, तथा विधूतकल्प-अच्छी तरहसे जिसने कल्पका स्पर्श किया है-ज्ञानाचार आदि आचारका जो पालक है, ऐसा मुनि पूर्वोक्त तथा आगे कहे जानेवाले धर्मोपकरणके सिवाय अन्य वस्त्रादिकका त्याग कर मुनि-धर्ममें विचरण करता है ।

भावार्थ—जो यह समझता है कि ममत्वत्यागरूप धर्म ही कि जिस की प्ररूपणा और पालना तीर्थङ्करादि देवोंने की है यही धर्म है, तथा जो ज्ञानाचारादिकका भलीभांति पालन करनेमें सावधान रहता है और धर्मोपकरणके सिवाय अन्य वस्त्रादिक परिग्रहरूप होनेसे कर्मोंके उपार्जन करानेवाले हैं, ऐसा विचार कर जो उनका त्याग करता है, वही सच्चा मुनि है ॥सू०१॥

રીતે જેણે કલ્પનો સ્પર્શ કરેલ છે, જ્ઞાન-આદિ આચારના જે પાલક છે, એવા મુનિ પૂર્વોક્ત તથા હવે પછી કહેવામાં આવનાર ધર્મોપકરણના સિવાય અન્ય વસ્ત્રાદિકનો ત્યાગ કરી મુનિધર્મમાં વિચરણ કરતા હોય છે.

ભાવાર્થ—જે એ સમજે છે કે મમત્વત્યાગરૂપ ધર્મ જ કે જેની પ્રરૂપણા અને પાલના તીર્થંકરાદિક દેવોએ કરી છે, એ જ ધર્મ છે. તથા જે જ્ઞાનાચારાદિકનું સારી રીતે પાલન કરવામાં સાવધાન રહે છે, તે એ સમજીને કે ધર્મોપકરણના સિવાય અન્ય વસ્ત્રાદિક પરિગ્રહરૂપ હોવાથી કર્મોનું ઉપાર્જન કરવાવાળા છે. એવો વિચાર કરી જે તેનો ત્યાગ કરે છે, એ જ સાચા મુનિ છે. (સૂ૦૧)

टीका—यः साधुः, अचेलः=अल्पवस्त्रः, अत्राल्पार्थे नञ्, यथाऽयमज्ञ इत्यत्र स्वल्पज्ञानवानित्यर्थो भवति; तथा–पर्युषितः=संयमे कर्मधूननोपाये व्यवस्थितः, तस्य भिक्षोः एवं=वक्ष्यमाणं न भवति=न कल्पते, यथा परिजीर्णं मे वस्त्रम्, इदं मम शरीरत्राणाय न भविष्यतीति वस्त्रं याचिष्य इति, पूर्वगृहीतवस्त्रस्य जीर्णतया स्फाटिततया च शीतपीडितस्य ममानेन शरीरत्राणासंभवात् नवीनं वस्त्रं याचिष्य

तथा—'जे अचेले' इत्यादि।

'अचेले'–यहांपर अल्प–अर्थवाचक नञ्का प्रयोग हुआ है; जैसे 'अज्ञ' इसमें होता है। यह अज्ञ शब्दका जिस प्रकार सर्वथा ज्ञानका अभाव प्रतिपादित नहीं करता है; किन्तु ज्ञानमें अल्पता प्रदर्शित करता है, ठीक इसी प्रकारसे 'अचेल' यह शब्द भी वस्त्रके सर्वथा अभावका प्रदर्शन नहीं करता किन्तु उसमें अल्पता ही बतलाता है। ऐसे–जो अचेल–अल्प वस्त्रवाला है, तथा कर्मोंके विनाशक उपायमें जिसकी स्थिति है, उस साधुके चित्त में यह कल्पना नहीं उठती है अर्थात् उसे इस प्रकारकी कल्पना करना उचित नहीं है कि मेरा यह वस्त्र जीर्ण पुराना हो गया है अब इससे मेरे शरीरकी रक्षा नहीं हो सकेगी; अतः कोई दूसरा वस्त्र कहीं किसी से चलकर याच लूंगा। मतलब यह कि मेरा पहिलेका जो यह वस्त्र है वह इस समय जीर्ण और फटा हुवा होनेसे शीतपीडित मेरे शरीरकी रक्षा करनेमें सर्वथा असमर्थ है अतः नवीन वस्त्रके विना मिले मेरे

તથા "जे अचेले" ઈત્યાદિ!

अचेले—અહીં અલ્પ અર્થ વાચક नञ्નો પ્રયોગ થયો છે–જેમ "अज्ञ" આમાં થાય છે. આ अज्ञ શબ્દ જે પ્રકારે સર્વથા જ્ઞાનનો અભાવ પ્રતિપાદિત નથી કરતો, પરન્તુ જ્ઞાનમાં અલ્પતા પ્રદર્શિત કરે છે, ઠીક એ પ્રકારથી 'अचेल' આ શબ્દ પણ વસ્ત્રના સર્વથા અભાવનું પ્રદર્શન નથી કરતો, પરન્તુ એમાં અલ્પતા જ બતાવે છે. એવા જે અચેલ–અલ્પવસ્ત્રવાળા છે, તથા કર્મોના વિનાશક ઉપાયમાં જેની સ્થિતિ છે, એવા સાધુના ચિત્તમાં એ કલ્પના નથી ઉઠતી, અર્થાત્ એણે એ પ્રકારની કલ્પના કરવી ઉચિત નથી કે મારૂં આ વસ્ત્ર જીર્ણ–જુનું થઈ ગયું છે, હવે આનાથી મારા શરીરની રક્ષા થઇ શકવાની નથી બીજું કોઇ વસ્ત્ર કોઈ જગ્યાએ કોઈની પાસેથી માગી લઇશ. મતલબ–મારી પાસે પહેલાનું જે આ વસ્ત્ર છે તે આ સમયે જીર્ણ થવાથી ફાટી ગયેલ છે, અને ઠંડીમાં મારા શરીરની રક્ષા કરવામાં તદ્દન અસમર્થ છે. આથી નવીન વસ્ત્ર વગર મારા શરીરનું ઠંડીથી રક્ષણ થવું અસંભવ છે. આ માટે નવું વસ્ત્ર

इत्यर्थः। सूत्रं=तन्तुं याचिष्ये, सूचीं याचिष्ये, संधास्यामि=सूत्रसूच्यौ लब्ध्वा जीर्ण-वस्त्रस्य रन्ध्रं संधास्यामीत्यर्थः। तथा स्फाटितं सेविष्यामि। तथा—उत्कर्षयिष्यामि =अपरवस्त्रखण्डं योजयित्वा वर्धयिष्यामि, लघुवस्त्रं विशालं करिष्यामीत्यर्थः। तथा व्युत्कर्षयिष्यामि=स्फाटितभागं त्रोटयित्वाऽपनेष्यामि। तथा परिधास्यामि—एवं कृते सति पश्चादिदं जीर्णवस्त्रं परिधानवस्त्रं करिष्यामि। तथा—प्रावरिष्यामि=प्रावरणं 'चादर' इति भाषाप्रसिद्धं करिष्यामि।

शरीरका शीतसे त्राण (रक्षा) होना असंभव है। इसलिये नवीन वस्त्र मिल जाय तो ठीक! जब तक वह नहीं मिलता है—तब तक जैसे बने इस फटे पुराने वस्त्रसे ही काम निकाल लूंगा; परन्तु ऐसे तो ये काममें आवेगा नहीं; अतः यदि कहींसे सुई और डोरा मिल जाय तो उससे इसे सी लूंगा, जहां २ यह फट चुका है—जोड लूंगा, इसमें जितने छेद हो चुके हैं उन्हें भर लूंगा, नहीं तो कौन इतना परिश्रम करे, जो भाग बिलकुल फट चुका है उसे इससे निकाल दूंगा और दूसरा टुकडा जोड़ लूंगा, इससे यह फटा पुराना टुकडा पहिलेकी अपेक्षा कुछ बड़ा भी हो जायगा। इससे मेरे दोनों काम निकल जायेंगे, पहिरने टाइममें पहिर लिया करूँगा और ओढनेके समयमें ओढ भी लिया करूंगा, अर्थात् इसकी चादर बना लूंगा। इस प्रकारके संकल्प विकल्परूप आर्त्तध्यानसे मुनिके शुभ अध्यवसाय नहीं होता है। शुभ अध्यवसाय उत्पन्न हुए विना परंपरारूपसे कर्मोंका क्षय भी नहीं हो सकता, अतः कर्मोंके क्षय के लिये उद्यत हुए मुनिको आर्त्तध्यानका सर्वथा परित्याग कर देना

મળી જાય તો ઠીક. પરન્તુ જ્યાં સુધી એ ન મળે ત્યાં સુધી ગમે તેમ આ ફાટેલા જુના વસ્ત્રથી જ ચલાવી લઇશ, પરન્તુ ફાટેલ હાલતમાં તો એ કામમાં આવી શકે તેમ નથી, આથી જો કયાંયથી સોય દોરા મળી જાય તો એનાથી એને સીવી લઉં, જ્યાં જ્યાં એ ફાટયું છે ત્યાં જોડી લઉં, અને જ્યાં છિદ્ર પડ્યાં છે એને ભરી લઉં. નહિ તો કોણ આટલો પરિશ્રમ કરે. જે ભાગ બીલ-કુલ ફાટી ગયેલ છે એને કાઢી નાખી બીજો ટુકડો જોડી દઇશ. આથી એ ફાટેલ જુનો ટુકડો પહેલાં કરતાં મોટો થશે અને એથી મારાં બન્ને કામ થઈ જશે. પહેરવાના ટાઈમે પહેરી લઇશ અને ઓઢવાના સમયે ઓઢી પણ લઇશ. આ પ્રકારના સંકલ્પ–વિકલ્પરૂપ આર્તધ્યાનથી મુનિને શુભ અધ્યવસાય થતો નથી, શુભ અધ્યવસાય ઉત્પન્ન થયા વિના પરંપરારૂપના કર્મોનો ક્ષય પણ થઈ શકતો નથી. આથી કર્મોના ક્ષયને માટે ઉદ્યત બનેલ મુનિએ આર્ત્તધ્યાનનો સર્વથા ત્યાગ

एवंरूपार्तध्यानेन शुभाध्यवसायो नोत्पद्यते, तस्मात् कर्मधूननार्थमुद्यतेन मुनिनाऽऽर्तध्यानं परिवर्जनीयम्, अवसरे यद् भवेत्तद् भविष्यतीति चिन्तयेदिति भावः ॥ सू० २ ॥

तस्याऽचेलस्य साधोर्जीर्णवस्त्रविषयकमार्तध्यानं यदि नापि भवेत्, किन्तु

चाहिये और ऐसा विचार करना चाहिये कि जिस समय जो होनेवाला होगा सो होगा।

भावार्थ—चाहे अल्पवस्त्रवाले हों, चाहे बहु वस्त्रवाले हों; जो पर-पदार्थों में मोही हैं, उनके ही ये पूर्वोक्त रूपसे कल्पनाएँ उठा करती हैं। यदि मुनिके भी ये इसी तरहसे उठती हैं तो वह सच्चा मुनि नहीं है। मुनिके इस प्रकारकी कल्पनाओंका जागरण आर्त्तध्यानका कारण माना गया है, जो शुभ परिणामोंकी प्राप्तिमें प्रतिबन्धक होता है। अतः मुनि-योंको तो इस प्रकारकी कल्पना उठनी ही नहीं चाहिये–उन्हें तो यही विचार चाहिये कि जो जिस समयमें होना है वही होगा, मुझे इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये, चिन्तासे कर्मोंका ही बन्ध होगा, न कि उनका धूनन। तात्पर्य यह है कि वस्त्र पुराना हो जाय तो उसकी चिन्ता न करें, और कब सीऊंगा इस प्रकार आर्त्तध्यान न करें ॥सू०२॥

भले ही उस अचेल साधुके लिये फटे-पुराने-वस्त्र-विषयक आर्त्त-

કરવો જોઈએ અને એવો વિચાર કરવો જોઈએ કે જે સમયે થવાનું છે તે થઈને જ રહેશે.

ભાવાર્થ—ચાહે અલ્પવસ્ત્રવાળા હોય, ચાહે બહુવસ્ત્રવાળા હોય, જે પર-પદાર્થોમાં મોહી છે એને જ એ પૂર્વોકતરૂપથી કલ્પનાઓ ઉઠ્યા કરે છે. મુનિના મનમાં પણ જો આવી કલ્પના ઉઠે તો એ સાચો મુનિ નથી. મુનિમાં આ પ્રકારની કલ્પનાઓ જાગવી એ આર્તધ્યાનના કારણરૂપ માનવામાં આવેલ છે. જે શુભ પરિણામોની પ્રાપ્તિમાં બાધારૂપ બને છે. આથી મુનિઓમાં તો આ પ્રકારની કલ્પનાઓ ઉઠવી જ ન જોઈએ. એણે તો એવો જ વિચાર રાખવો જોઈએ કે જે સમયે જે બનવાનું છે તે બનવાનું જ છે. મારે એની ચિન્તા શા માટે કરવી જોઈએ. ચિન્તાથી તો કર્મનો બન્ધ થાય છે, એનો નાશ નહિ. તાત્પર્ય એ છે કે વસ્ત્ર ભલે જુનું થઈ જાય એની એ ચિન્તા ન કરે, અને ક્યારે સીવીશું આ પ્રકારથી આર્તધ્યાન ન કરે. (સૂ૦ ૨)

એ અચેલ સાધુને માટે ફાટેલ જુના વસ્ત્રો વિષે ભલે આર્તધ્યાન ન હોય

वक्ष्यमाणपरीषहाणामवश्यं सम्भव इति तत्र तस्य यत् कर्तव्यं तदाह-'अदुवा तत्थ' इत्यादि।

मूलम्—अदुवा तत्थ परक्कमंतं भुज्जो अचेलं तणफासा फुसंति, सीयफासा फुसंति, तेउफासा फुसंति, दंसमसगफासा फुसंति। एगयरे अन्नयरे विरूवरूवे फासे अहियासेति अचेले लाघवं आगममाणे, तवे से अभिसमण्णागए भवइ॥सू० ३॥

छाया—अथवा तत्र पराक्रममाणं भूयोऽचेलं तृणस्पर्शाः स्पृशन्ति, शीतस्पर्शाः स्पृशन्ति, तेजःस्पर्शाः स्पृशन्ति, दंशमशकस्पर्शाः स्पृशन्ति। एकतरान् अन्यतरान् विरूपरूपान् स्पर्शान् अध्यास्ते अचेलो लाघवम् आगमयन्, तपस्तस्य अभिसमन्वागतं भवति॥ सू०३॥

टीका—अथवा तत्र—अल्पवस्त्रावस्थायां पराक्रममाणं=कर्मधूननोपाये संयमे समुद्यच्छन्तं अचेलम्=अल्पवस्त्रं साधुं क्वचिद् ग्रामादौ त्वक्त्राणवस्त्राभावात् तृणशायिनं,

---

ध्यान न हो तो भी ये वक्ष्यमाण परीषह तो अवश्य हो सकते हैं। उनके होनेपर जो उनका कर्तव्य है, उसे सूत्रकार कहते हैं—"अदुवा तत्थ" इत्यादि।

अथवा—अल्प वस्त्र धारण करनेकी अवस्थामें अच्छी तरहसे उद्युक्त अर्थात् संयमकी रक्षा अधिक वस्त्रोंके धारण करनेसे नहीं हो सकती है और जहां संयमकी रक्षा ही नहीं है वहां कर्मोंका क्षय भी नहीं हो सकता है—इस भावनासे प्रेरित वह साधु कर्मविनाशक संयममें सदा उद्योगशाली बना रहता है और इसीलिये वह अल्प वस्त्र—थोडे वस्त्रोंसे अपना काम चलाता है, तो भी ऐसे साधुको किसी ग्रामादिकमें शारीरिक रक्षाके योग्य वस्त्रोंका अभाव होनेसे कदाचित् घासपर भी शयन करना पड़ता है, इस अवस्थामें कठोर तृणस्पर्शोंसे उत्पन्न दुःखविशेषों

તો પણ એ વક્ષ્યમાણ પરિષહ તો અવશ્ય થાય છે, તે થતાં તેનું જે કર્તવ્ય છે તેને સૂત્રકાર કહે છે "अदुवा तत्थ" ઈત્યાદિ.

અથવા અલ્પ વસ્ત્ર ધારણ કરવાની અવસ્થામાં સારી રીતે ઉદ્યુકત એટલે સંયમની રક્ષા વધુ વસ્ત્રો ધારણ કરવાથી થઈ શકતી નથી, અને જ્યાં સંયમની રક્ષા જ નથી ત્યાં કર્મનો ક્ષય પણ થઈ શકતો નથી, આ ભાવનાથી પ્રેરિત તે સાધુ કર્મવિનાશક સંયમમાં સદા ઉદ્યોગશાળી બની રહે છે, અને એ માટે તે અલ્પ વસ્ત્ર—થોડાં વસ્ત્રોથી પોતાનું કામ ચલાવે છે, તો પણ એવા સાધુને કોઈ ગામડામાં શારીરિક રક્ષા—યોગ્ય વસ્ત્રોનો અભાવ હોવાથી કોઇ વખતે ઘાસ ઉપર

तृणस्पर्शाः=परुषतृणस्पर्शजनितदुःखविशेषाः कदाचित् स्पृशन्ति=पीडयन्ति, तथा शीतस्पर्शाः=शीतपरीषहाः स्पृशन्ति । तथा—तेजःस्पर्शाः=उष्णपरिषहाः स्पृशन्ति, तथा दंशमशकस्पर्शाः स्पृशन्ति। एषु परिषहेषु ये एकतरे=एकरूपाः,—प्रतिकूला एव दंशमशकादयः, तथा-ये अन्यतरे=उभयविधाः-अनुकूलप्रतिकूलरूपाः=शीतोष्णादयः; यथा ये शीतस्पर्शाः हेमन्ते प्रतिकूलास्त एव ग्रीष्मेऽनुकूलाः, तथा य उष्णस्पर्शाः ग्रीष्मे प्रतिकूलास्त एव हेमन्तेऽनुकूला इत्येवमनुकूलप्रतिकूलरूपाः शीतस्पर्शाः उष्णस्पर्शाश्च भवन्ति, अतएव विरूपरूपाः=अनेकरूपाः स्पर्शाः—परिषहरूपास्तृणादिस्पर्शाः प्रादुर्भवन्ति, तान् अचेलः=अल्पवस्त्रः साधुः अधिसहते। स किमुद्दिश्य परिषहान् अधिसहते? इति जिज्ञासायामाह—लाघवमागमयन्निति । लाघवम्=द्रव्यतो

का उसे सामना करना पड़ता है—उन दुःखोंको सहता है । शीतस्पर्श-परीषह भी वह सहता है । डांस मच्छर आदि जन्य वेदनाओंको भी सहन करता है । इन परीषहोंमें कोई २ परीषह प्रतिकूल ही हैं, तथा कोई अनुकूलप्रतिकूल उभयरूप हैं। जैसे—दंशमशकादिक प्रतिकूल ही हैं। तथा शीत उष्ण वगैरह अनुकूल प्रतिकूल दोनों रूप हैं। जो शीतस्पर्श हेमन्त ऋतुमें प्रतिकूल मालूम देते हैं वे ही ग्रीष्मऋतुमें अनुकूल लगने लगते हैं । इसी प्रकार जो उष्ण स्पर्श ग्रीष्ममें प्रतिकूल लगते हैं वे ही हेमन्तमें अनुकूल जचते हैं। इसी अपेक्षा ये शीत—उष्ण स्पर्श विरूप-रूप—अनेक रूप बताये गये हैं । इन अनेकरूप स्पर्शोंको और परीषहरूप तृणादिस्पर्शोंको वह अचेल साधु सहन करता है । किस विचारसे वह इन परीषहोंको सहता है ? इस प्रकारकी जिज्ञासा होने पर सूत्रकार

પણ સુવું પડે છે. આ સ્થિતિમાં કઠોર ઘાસના સ્પર્શથી ઉત્પન્ન દુઃખોનો તેને સામનો કરવો પડે છે—એ આવાં દુઃખોને સહે છે. શીતસ્પર્શ પરીષહ પણ સહે છે. ડાંસ, મચ્છર આદિજન્ય વેદનાઓને પણ સહન કરે છે. આ પરીષહોમાં કોઈ કોઈ પરીષહ પ્રતિકૂળ જ હોય છે, અને કોઈ કોઈ અનુકૂળ પ્રતિકૂળ ઉભયરૂપ હોય છે. જેમ દંશ મશકાદિ પરીષહ પ્રતિકૂળ જ છે. અને શીત ઉષ્ણ આદિ પરીષહ અનુકૂળ પ્રતિકૂળ ઉભયરૂપ છે. જે શીતસ્પર્શ હેમંત ઋતુમાં પ્રતિકૂળ માલુમ પડે છે. તે જ ગ્રીષ્મ ઋતુમાં અનુકૂળ લાગે છે. એ જ રીતે ઉષ્ણ સ્પર્શ ગ્રીષ્મ ઋતુમાં પ્રતિકૂળ લાગે છે તે જ હેમન્તમાં અનુકૂળ લાગે છે. આ અપેક્ષાથી શીત—ઉષ્ણ સ્પર્શ વિરૂપરૂપ—અનેકરૂપ બતાવવામાં આવેલ છે. આ અનેકરૂપ સ્પર્શોને અને પરિષહરૂપ તૃણાદિસ્પર્શોને એ અચેલ સાધુ સહન કરે છે. કયા વિચારથી એ આવાં દુઃખો સહે છે? આ પ્રકારની જીજ્ઞાસા હોવાથી સૂત્રકાર કહે છે કે—“ लाघवं आगमयन् ”—એ સાધુ વસ્ત્રાદિકોના લાઘવ—સંક્ષેપ

भावतश्च। तत्र द्रव्यतो-धर्मोपकरणवस्त्रादिलाघवं,भावतस्तु-ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्म-लाघवम्, आगमयन्=नयन्, यद्वा-अवगमयन्-मोक्षार्थिनो मम वस्त्रादिलाघवं कर्मलाघवं चावश्यं करणीयमित्येवं चिन्तयन्-इति यावत्; परिषहाणां सहनमेव मम कर्मधूननोपाय इति कृत्वा तान् सर्वान् परीषहान् अधिसहत इति भावः।

तस्य=उपकरणलाघवेन कर्मलाघवं कर्मलाघवेन चोपकरणलाघवं विदित्वा तृणादिस्पर्शान् अधिसहमानस्य तपः=कायक्लेशरूपतया बाह्यं तपः, अभि-समन्वागतं=मोक्षाभिमुख्येन सम्यगाचरितं भवति ॥ सू० ३ ॥

कहते हैं कि "लाघवं आगमयन्" वह साधु वस्त्रादिकोंका लाघव-संक्षेप करानेका अभिलाषी है-अर्थात् द्रव्य और भावके भेदसे लाघव दो प्रकारका है-धर्मके उपकरणभूत वस्त्रादिकोंकी लघुता-अल्पता द्रव्य लाघव है और ज्ञानावरणीयादि अष्ट कर्मोंकी लघुता भावलाघव है। इन दोनोंको वह मुनि लाघव (हलकापन) की ओर ले जा रहा है। "आगमयन्" की जगह "अवगमयन्" यह भी पाठान्तर है, इससे यह भाव निकलता है कि उसका सदा यही विचार रहता है कि मैं मोक्षका अभिलाषी हूं, मेरे पास सदा वस्त्रोंकी अल्पता ही होनी चाहिये और मुझे कर्मोंका लाघव अवश्य करना चाहिये। इसी विचारसे वह परीषहोंको सहता है, क्योंकि इनका सहना ही मेरे पास कर्मोंके क्षय करनेका उपाय है।

साधुके उपकरण के लाघवसे कर्मोंका लाघव और कर्मोंके लाघव से उपकरणका लाघव जानकर, तृणादि स्पर्शजन्य कष्टोंको सहन करने-वाले उस साधुका तृणादि स्पर्शजन्यकष्ट तप-कायक्लेश नामक बाह्यतप है और वह उसको निर्जरा समझकर अच्छी तरहसे सहन करता है। सू० ३।

કરવાનો અભિલાષી છે-અર્થાત્ દ્રવ્ય અને ભાવ ના ભેદથી લાઘવ બે પ્રકારે છે-ધર્મના ઉપકરણભૂત વસ્ત્ર આદિની લઘુતા દ્રવ્ય લાઘવ છે અને જ્ઞાના-વરણીયાદિ આઠ કર્મોની લઘુતા ભાવલાઘવ છે, આ બન્નેને એ લાઘવની તરફ લઈ જાય છે. "आगमयन्" ને સ્થાને "अवगमयन्" આ પણ પાઠાન્તર છે; આથી એ ભાવ નિકળે છે કે એને સદા એ વિચાર રહે છે કે હું મોક્ષનો અભિલાષી છું, મારી પાસે વસ્ત્રોની સદા અલ્પતા જ રહેવી જોઈએ, અને મારે કર્મોનું લાઘવ અવશ્ય કરવું જોઈએ. કેમ કે દુઃખોને સહેવાથી આઠ કર્મોનો ક્ષય થાય છે.

ઉપકરણના લાઘવથી કર્મોનું લાઘવ અને કર્મોના લાઘવથી ઉપકરણનું લાઘવ જાણી તૃણાદિસ્પર્શજન્ય કષ્ટોને સહનાર તે સાધુનું તૃણાદિસ્પર્શજન્ય કષ્ટ તપ-કાયકલેશ નામનું બાહ્ય તપ છે, અને એ તેને નિર્જરા સમજી સારી રીતે સહન કરે છે. (સૂ૦૩)

एतच्च न मया स्वबुद्धया परिकल्प्य कथ्यते; किन्तु भगवदुक्तानुसारेणे-त्याह-' जहेयं ' इत्यादि ।

मूलम्--जहेयं भगवया पवेइयं तमेव अभिसमिच्चा सव्वओ सव्वत्ताए संमत्तमेव समभिजाणिज्जा, एवं तेसिं महावीराणं चिररायं पुव्वाइं वासाणि रीयमाणाणं दवियाणं पास अहियासियं ॥ सू० ४ ॥

छाया--यथैतद् भगवता प्रवेदितं तदेवाभिसमेत्य सर्वतः सर्वात्मतया सम्यक्त्वमेव समभिजानीयात् । एवं तेषां महावीराणां चिररात्रं पूर्वाणि वर्षाणि रीयमाणानां द्रविकान् पश्य अध्यासितम् ॥ सू० ४ ॥

टीका--एतद्=उक्तं वक्ष्यमाणं च यथा=येन प्रकारेण भगवता प्रवेदितं=प्रकर्षेण बोधितम् , अतः तदेव उपकरणादिलाघवम् , सर्वतः=द्रव्यक्षेत्रकालभावतः, तत्र द्रव्यतः --आहारोपकरणादौ, क्षेत्रतः--सर्वत्र ग्रामादौ, कालतः--अहर्निशम् दुर्भिक्षकादौ वा,

---

यह मैं अपनी बुद्धिकी कल्पनासे नहीं कहता हूं, किन्तु भगवान्के कहे अनुसार ही कहता हूं; इस बातको प्रकट करनेके लिये श्रीसुधर्मास्वामी श्रीजम्बूस्वामीसे कहते हैं-" जहेयं " इत्यादि ।

भगवान् ने यह पूर्वोक्त अथवा वक्ष्यमाण उपकरणादिलाघवरूप विषय जिस प्रकारसे कहा है-समझाया है, वही द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावसे जानकर, मुनि उसमें दत्तावधान बन, शुभ अध्यवसायरूप सम्यक्त्वका ही मोक्षकी सन्मुखतासे चिन्तवन करे। आहार एवं उपकरणादिकोंमें जो लाघव किया जाता है वह द्रव्यकी अपेक्षा लाघव है । मैं इतने ही ग्रामोंमें विहार करूंगा, इतनेमें नहीं-इस प्रकार जो ग्रामादिकोंमें

આ હું મારી બુદ્ધિની કલ્પનાથી નથી કહેતો; પરંતુ ભગવાનના કહેવા અનુસાર જ કહું છું. આ વાતને પ્રગટ કરવા માટે શ્રી સુધર્માસ્વામી શ્રી જમ્બૂ-સ્વામીને કહે છે-" जहेयं " ઇત્યાદિ.

ભગવાને આ પૂર્વોક્ત અથવા વક્ષ્યમાણ ઉપકરણાદિલાઘવરૂપ વિષય જે પ્રકારે કહેલ છે-સમજાવેલ છે, તેને દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ અને ભાવથી જાણીને મુનિ તેમાં એકાગ્ર બની શુભ અધ્યવસાયરૂપ સમ્યક્ત્વનો જ મોક્ષની સન્મુખતા માટે ચિંતવન કરે. આહાર અને વસ્ત્રો આદિમાં જે લાઘવ કરવામાં આવે છે તે દ્રવ્યની અપેક્ષા લાઘવ છે. હું એટલા જ ગ્રામાદિકોમાં વિહાર કરીશ, એટલામાં નહિ-આ પ્રકારે જે ગ્રામાદિકોમાં લાઘવ કરવામાં આવે છે તે ક્ષેત્રની

भावतो मायाराहित्येन अभिसमेत्य=ज्ञात्वा सर्वात्मतया=अनन्यमनसा सम्यक्त्वमेव =शुभाध्यवसायमेव समभिजानीयात्=सम्यगूमोक्षाभिमुख्येन जानीयात्, चिन्तयेदित्यर्थः। अयं भावः-जिनकल्पिक एकवस्त्रधारिणं स्थविरकल्पिकं न हीलयेत्। एवमेकवस्त्रधारको द्विवस्त्रधारकम्, द्विवस्त्रस्त्रिवस्त्रधारकम्। तथा चातुर्मासिकक्षपकस्त्रिमासक्षपकम्, त्रिमासिको द्विमासिकम्, द्विमासिक एकमासिकम्, एकमासिकोऽर्द्धमासिकम्, अर्द्धमासिकक्षपक एकान्तरक्षपकम्, एकान्तरक्षपक एकभक्तभोजिनं न हीलयेत्, यथा अयं न मादृशः, किन्तु दुष्करतपःसंयमाराधनकातरः इत्यादिरूपं दुष्प्रणिधानं न कुर्यात्। किमधिकेन? जिनकल्पिकः प्रतिमाप्रतिपन्नो वा

लाघव किया जाता है वह क्षेत्रकी अपेक्षा लाघव है। इस ग्राममें मैं एक रात दिन रहूंगा, अथवा दुर्भिक्षकालादिकमें रहूंगा, सब समयमें नहीं, यह कालकी अपेक्षा लाघव है। मायाचाररहित होना यह भावकी अपेक्षा लाघव है। तात्पर्य इसका यह है-जिनकल्पी साधु, एक वस्त्र धारण करनेवालेका, एक वस्त्रधारी द्विवस्त्रधारणकरनेवालेका, द्विवस्त्रधारी तीनवस्त्रधारणकरनेवालेका, तथा चातुर्मासिकक्षपक, त्रिमासिक क्षपकका, त्रिमासिक क्षपक द्विमासिक क्षपकका, द्विमासिकक्षपक एकमासिक क्षपकका, एकमासिक क्षपक अर्धमासिक क्षपकका, अर्द्धमामासिक क्षपक एकान्तर क्षपकका, और एकान्तरक्षपक एकभक्तभोजीका, कभी भी तिरस्कार न करे। यह मेरा जैसा नहीं है; किन्तु दुष्कर तप और संयमकी आराधना करनेमें कायर है-इत्यादि-रूपसे उनकी अवहेलना न करे, और न अनादरकी दृष्टिसे देखे। इस विषयमें ज्यादा

અપેક્ષા લાઘવ છે. આ ગામમાં હું એક રાત દિવસ રહીશ. અથવા દુર્ભિક્ષ કાલાદિકમાં રહીશ, બધા સમય સુધી નહિ. આ કાળની અપેક્ષા લાઘવ છે. માયાથી રહિત રહેવું એ ભાવની અપેક્ષા લાઘવ છે. તાત્પર્ય એનું એ છે કે જીનકલ્પી સાધુ એક વસ્ત્ર ધારણ કરવાવાળાનું અને એક વસ્ત્રધારી બે વસ્ત્ર ધારણ કરવાવાળાનું, બે વસ્ત્રધારી ત્રણ વસ્ત્ર ધારણ કરવાવાળાનું તથા ચાતુર્માસિક ક્ષપક ત્રૈમાસિક ક્ષપકનું, ત્રૈમાસિક ક્ષપક બે માસિક ક્ષપકનું, બે માસિક ક્ષપક એક માસિક ક્ષપકનું, એક માસિક ક્ષપક અર્ધમાસિક ક્ષપકનું, અર્ધમાસિક ક્ષપક એકાન્તર ક્ષપકનું અને એકાન્તર ક્ષપક એકભકતભોજીનો કદિ પણ તિરસ્કાર ન કરે-એ મારા જેવા નથી; પરંતુ દુષ્કર તપ અને સંયમની આરાધના કરવામાં કાયર છે-ઇત્યાદિ રૂપથી એની અવહેલના ન કરે, અને ન તો અનાદરની દૃષ્ટિથી જુએ. આ વિષયમાં વધુ શું કહેવું. જીનકલ્પી સાધુઓ અને પડિમાધારી

कदाचित् स्वकल्पेन षडपि मासान् भिक्षां न लभते चेत्तथाऽप्यसौ समभावमालम्ब्य विभावयति-सर्वे चैते स्वस्वकर्मक्षपणार्थं यथाविधिप्रवृत्ताः धृतिसंहननबलस्थामादिकारणवशाद् विसदृशकल्पा जिनाज्ञायामेव वर्त्तन्त इति। एतच्च बाहुभ्यां समुद्रतरणवदसम्भवं नास्ति, चिरमन्यैर्बहुभिस्तीर्थङ्करगणधरैः समाराधितत्वादिति दर्शयितुमाह-'एवम्' इत्यादि। एवम्=उक्तविधिना तेषाम्=अचलेतया तृणस्पर्शादिकमधिसहमानानां महावीराणां=कर्मविदारणशूराणां चिररात्रं=प्रभूतकालं यावज्जीवमित्यर्थः, तदेव स्पष्टीकरोति-पूर्वाणि वर्षाणि च रीयमाणानां=संयममार्गे गच्छतां,

---

क्या कहा जाय? जिनकल्पी हो, अथवा पडिमाधारी हो, कदाचित् वह यदि अपने कल्पसे छह मास तक भी भिक्षा नहीं पाता है तो भी समताभावका अवलम्बन कर विचारता है कि ये समस्त मुनिजन शास्त्रविधि के अनुसार अपने २ कर्मोंके क्षपण करनेके लिये प्रवृत्त हैं, धैर्य, संहनन, बलकी स्थिरता आदि कारणके वशसे विसदृश कल्पवाले होते हुए भी जिन भगवान्‌की आज्ञामें ही प्रवृत्ति कर रहे हैं। यह बात हाथोंसे समुद्र को पार करने जैसी असंभव नहीं है। क्यों कि यह सम्यक्त्वरूप मार्ग चिरकाल तक अनेक तीर्थङ्करों एवं गणधरोंने पाला है। इसी बातको दिखलानेके लिये सूत्रकारने "एवं तेषां महावीराणां चिररात्रं पूर्वाणि वर्षाणि रीयमाणानां द्रविकाणां पश्य अध्यासितम्" इस सूत्रांशको कहा है। इसमें वे यह बतलाते हैं कि तीर्थङ्करादिकोंने भी उक्त विधिके अनुसार ही अचेल अवस्थामें रहते हुए तृणस्पर्शादि परीषहोंको सहन किया है, और इसीसे वे कर्मरूपी शत्रुओंके क्षय करनेमें शूरवीर बने हैं, तथा उनके जीवनका पूर्व और वर्षरूप समय संयममार्गकी आराधना

સાધુઓ કદાચ પોતાના કલ્પથી છ મહિના સુધી ભિક્ષા ન મેળવે તો પણ સમતાભાવનું અવલંબન કરી વિચારે છે કે આ બધા મુનિજન શાસ્ત્રવિધિના અનુસાર પોતપોતાના કર્મોના ક્ષપણ કરવા માટે પ્રવૃત્ત છે. ધૈર્ય, સંહનન, બળની સ્થિરતા આદિ કારણના વશથી વિભિન્ન કલ્પવાળા હોવા છતાં જીન ભગવાનની આજ્ઞામાં જ પ્રવૃત્તિ કરે છે આ વાત હાથથી સમુદ્રને પાર કરવા જેવી અસંભવ નથી; કેમ કે સમ્યક્ત્વરૂપ માર્ગ ચિરકાળ સુધી અનેક તીર્થંકરો અને ગણધરોએ પાળેલ છે. આ વાતને પ્રદર્શિત કરવા માટે સૂત્રકાર "एवं तेषां महावीराणां" ઇત્યાદિ સૂત્રાંશને કહેલ છે. આમાં તેઓ એ બતાવે છે કે તીર્થંકર આદિએ પણ ઉકતવિધિ અનુસાર જ અચેલ અવસ્થામાં રહેતાં તૃણસ્પર્શાદિ પરિષહને સહન કરેલ છે, અને એથી તેઓ કર્મરૂપી શત્રુઓનો ક્ષય કરવામાં શૂરવીર બન્યા છે. તથા એમનાં જીવનનાં પૂર્વ અને વર્ષરૂપ સમય સંયમમાર્ગની આરાધના કરવામાં જ વ્યતીત થયેલ છે. અહિં પૂર્વનું પ્રમાણ

तत्र पूर्वं वर्षाणां सप्ततिः कोटिलक्षाः षट्पञ्चाशच्च कोटिसहस्राणि, तत्र ऋषभदेवादारभ्य शीतलनाथं दशमतीर्थङ्करं यावत् पूर्वसंख्यायाः सद्भावात् पूर्वाणीत्युक्तं, ततः श्रेयांसादारभ्य वर्षसंख्याप्रवृत्तेर्वर्षाणीत्युक्तमिति। तथा द्रविकाणाम्=आत्मार्थिनाम् अध्यासितम्=अधिसोढमेतद्-इति हे शिष्य! पश्य=अवधारय। बहुभिर्महापुरुषैः पूर्वं द्वाविंशतिपरीषहसहनं कृतं, तस्मान्मोक्षार्थिभिस्तृणस्पर्शादयः परीषहाः सम्यक् सोढव्या इति भावः ॥ सू० ४ ॥

करनेमें ही व्यतीत हुआ है। यहां पर पूर्वका प्रमाण टीकाकार इस प्रकारसे बतलाते हैं-८४००००० लाख वर्षका एक पूर्वाङ्ग होता है और ८४००००० लाख पूर्वाङ्गका एक पूर्व होता है। एक पूर्वमें ७० लाख करोड और ५६ हजार करोड वर्ष होते है। ऋषभदेवसे लेकर शीतलनाथ जो दशवें तीर्थङ्कर हैं उन तक संयमका काल तो पूर्व तकका रहा है। उसके बादके तीर्थङ्कर श्रेयांसनाथसे लेकर महावीर पर्यन्त तीर्थङ्करोंका संयम समय पूर्वके प्रमाणमें न रह कर वर्षोंके प्रमाणमें आ जाता है; इसलिये "वर्षाणि" ऐसा सूत्रकारने कहा है। द्रविक-आत्मार्थियोंका जीवनकाल भी इसी प्रकारसे संयममार्गमें व्यतीत हुआ है, हे शिष्य! तुम अपने चित्तमें ऐसी श्रद्धा रखो। भावार्थ—पूर्वमें अनेक महापुरुषोंने २२ परीषहोंको सहन किया है; अतः मोक्षाभिलाषी तृणस्पर्शादिक परीषहोंको अच्छी तरहसे सहन करें॥ सू० ४॥

ટીકાકાર આ પ્રકારે બતાવે છે-૮૪ લાખ વર્ષનું એક પૂર્વાઙ્ગ થાય છે, અને ૮૪ લાખ પૂર્વાઙ્ગનું એક પૂર્વ થાય છે, એક પૂર્વમાં સીત્તેર લાખ કરોડ અને છપ્પન હજાર કરોડ (૭૦૫૬૦૦૦૦૦૦૦૦૦૦) વર્ષ હોય છે. ઋષભદેવથી લઇ શીતલનાથ જે દસમા તીર્થંકર છે એમના સુધી સંયમનો કાળ તો પૂર્વ તકનો રહ્યો છે. એમના પછી તીર્થંકર શ્રેયાંસનાથથી લઈને મહાવીર પર્યન્ત તીર્થંકરોનો સંયમસમય પૂર્વના પ્રમાણમાં ન રહેતાં વર્ષોના પ્રમાણમાં આવી ગયેલ છે. આ માટે "वर्षाणि" એવું સૂત્રકારે કહેલ છે. દ્રવિક-આત્માર્થીઓનો જીવનકાળ પણ આ પ્રકારના સંયમમાર્ગમાં વ્યતીત થયેલ છે, હે શિષ્ય! તમે તમારા ચિત્તમાં એવી શ્રદ્ધા રાખો.

ભાવાર્થ—પૂર્વમાં અનેક મહાપુરૂષોએ ૨૨ પરિષહોને સહન કર્યા છે. આ માટે જે મોક્ષના અભિલાષી છે એનું કર્તવ્ય છે કે તેઓ તૃણસ્પર્શાદિક પરિષહોને સારી રીતે સહન કરે. (સૂ૦ ૪)

परीषहोपसर्गसहनशीलानां यद्भवति, तदाह-'आगयपन्नाणाणं' इत्यादि।

मूलम्—आगयपन्नाणाणं किसा बाहा भवंति, पयणुए मंस-सोणिए । विस्सेणिं कट्टु परिण्णाए, एस तिन्ने मुत्ते विरए वियाहिए त्तिबेमि ॥ सू० ५ ॥

छाया—आगतप्रज्ञानानां कृशा बाहवो भवन्ति, प्रतनुकं मांसशोणितम् । विश्रेणिं कृत्वा परिज्ञया, एष तीर्णः मुक्तः विरतः व्याख्यातः-इति ब्रवीमि ॥सू०५॥

टीका—आगतप्रज्ञानानां=लब्धसम्यग्ज्ञानानां बाहवः=भुजाः कृशा भवन्ति, तपसा परीषहाधिसहनेन च गात्राणि कृशत्वमापद्यन्त इत्यर्थः। यद्वा-'बाधा' इतिच्छाया, तत्र बाधाः=परीषहजनिता पीडाः कृशा भवन्ति=प्रतनुत्वमापद्यन्ते। कर्मक्षपणार्थं प्रयतमानाः साधवः "ममैते शरीरमात्रपीडाकराः परीषहोपसर्गाः सहायका एवे"ति मन्यमानाः शरीरपीडां न पश्यन्तीति भावः। अतः मांसशोणितं

परीषह और उपसर्गोंको सहन करनेका जिनका स्वभाव है ऐसे महामुनियों को जो लाभ होता है उसे सूत्रकार कहते हैं "आगय-पन्नाणाणं" इत्यादि ।

जिन्हें सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति हो चुकी है ऐसे महामुनियोंकी भुजाएँ कृश हो जाती हैं, अर्थात्-तप और परीषहोंके सहनेसे उनके शरीर कृश जाते हैं। "बाहा" शब्दकी छाया "बाधा" भी है-जिसका अर्थ है कि सम्यग्ज्ञानी मुनियोंकी परीषहजन्य बाधाएँ कृश हो जाती हैं-अत्यंत अल्प रह जाती हैं।

भावार्थ—कर्मोंको नाश करनेके लिये प्रयत्नशील साधु परीषहा-दिकोंके आने पर यह विचार करते हैं कि ये परीषह और उपसर्ग मेरे शरीरमात्रको ही पीड़ा देनेवाले हैं, संयमका कुछ भी ये बिगाड़ नहीं कर सकते हैं, प्रत्युत उसमें सहायक ही हैं। इस प्रकार मानकर वे महा-

આ પરિષહ અને ઉપસર્ગો સહન કરવાનો જેમનો સ્વભાવ છે એવા મહામુનિયોને જે લાભ થાય છે એને સૂત્રકાર કહે છે. "आगयपन्नाणाणं" ઇત્યાદિ.

જેને સમ્યગ્જ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થઇ ચુકી છે એવા મહામુનિયોની ભુજાઓ કૃશ થઈ જાય છે, અર્થાત્-તપ અને પરિષહ સહન કરવાથી એમનું શરીર કૃશ થઇ જાય છે, "बाहा" શબ્દની છાયા "बाधा" પણ છે. જેનો અર્થ એ છે કે સમ્યગ્જ્ઞાની મુનિયોની પરિષહજન્ય બાધાઓ કૃશ થઈ જાય છે-અત્યંત અલ્પ થઇ જાય છે.

ભાવાર્થ—કર્મોનો નાશ કરવા માટે પ્રયત્નશીલ સાધુ પરિષહ વગેરેના આવવાથી એ વિચાર કરે છે કે એ પરિષહ અને ઉપસર્ગ મારા શરીર માત્રને જ પીડા આપનારા છે. સંયમનો એ કાંઇ પણ બગાડ કરી શકનાર નથી; પરંતુ એમાં

=परीषहादिसहनशीलानां शरीरस्थं मांसरुधिरं प्रतनुकं=शुष्कं सत् स्वल्पतरं भवति। रूक्षाहारत्वादल्पाहारत्वात् परीषहादिसहनाच्च अल्पवस्त्रतया तृणस्पर्शशीतस्पर्शादिभिः शरीरस्य रसशोषणाच्च मोक्षार्थिनां मांसशोणितं शुष्कं भवतीति भावः।

तथा–परिज्ञया=समभावनया जिनकल्पिकः स्थविरकल्पिको वा विकृष्टाविकृष्टतपश्चरणशीलः प्रत्यहंभोजी वा सर्वेऽप्येते भगवदाज्ञावर्त्तिन एव–इत्येवंरूपया विश्रेणिं कृत्वा=रागद्वेषकषायसंततिरूपां संसारावतारणिकां संसारश्रेणिं समत्वभावनया क्षान्त्यादिभिश्च त्रोटितां कृत्वा वर्तत इत्यर्थः। एषः=उक्तलक्षणः साधुः,

---

मुनि होती हुई शारीरिक पीड़ाकी तरफ लक्ष्य नहीं देते हैं। परीषह आदिको शांतिभावसे सहनेवाले साधुओंके शरीरका मांस और रुधिर शुष्क हो जाता है–वे शरीरसे दुबले पतले हो जाते हैं–रुधिर और मांस उनके शरीरमें बहुत कम रह जाता है। कारण कि अन्तप्रान्त और अल्प आहारसे, परीषह आदिके सहनेसे और थोडे वस्त्र रखनेके कारणसे तृणस्पर्शादिकोंके द्वारा होनेवाली अनेक परीषहोंसे उनके शरीरका मांस और शोणित सूख जाता है।

समभावनासे युक्त जिनकल्पी हो या स्थविरकल्पी हो, विकृष्ट (कठिन) तप तपनेवाला हो, या अविकृष्ट (साधारण) तप तपनेवाला हो, या प्रतिदिन आहार करनेवाला हो, ये सब भगवानकी आज्ञानुसार ही चलनेवाले हैं। इस रूपसे जो राग, द्वेष और कषायकी परंपरारूप संसारश्रेणी को समभावसे एवं क्षान्त्यादि धर्मके आराधनसे तोड़ देते

એ સહાયક જ છે. આ પ્રકારે માની એ મહામુનિ પોતાને થતી શારીરિક પીડાની તરફ લક્ષ આપતા નથી. પરિષહ આદિને શાન્તિપૂર્વક સહન કરવાવાળા સાધુઓના શરીરનું માંસ અને લોહી સૂકાઈ જાય છે અને શરીરથી તેઓ દુબળા પાતળા બની જાય છે. લોહી અને માંસ એમના શરીરમાં નામમાત્રનાં રહે છે; કારણ કે અન્તપ્રાન્ત અને અલ્પ આહારથી, પરિષહ આદિના સહેવાથી અને થોડાં વસ્ત્ર રાખવાના કારણથી, તૃણસ્પર્શાદિકદ્વારા બનતા અનેક પરિષહોથી તેના શરીરનું માંસ અને લોહી સૂકાઇ જાય છે.

સમભાવનાથી યુકત જીનકલ્પી હોય અથવા તો સ્થવિરકલ્પી હોય; વિકૃષ્ટ–કઠિન તપ તપવાવાળા હોય, અથવા–અવિકૃષ્ટ–સાધારણ તપ તપવાવાળા હોય, અથવા પ્રતિદિન આહાર કરવાવાળા હોય, કોઈ પણ સાધુ હોય એ બધા ભગવાનની આજ્ઞા અનુસાર જ ચાલવાવાળા છે. અને આ રૂપથી જે રાગ, દ્વેષ અને કષાયની પરંપરારૂપ સંસારશ્રેણીને સમભાવથી એટલે ક્ષાન્ત્યાદિ

तीर्णः=भवाब्धेः पारंगतः, मुक्तः=सर्वसंगरहितः, विरतः=सर्वसावद्यव्यापाररहितः व्याख्यातः=तीर्थङ्करैः कथितः । इति ब्रवीमि, भगवता यथोपदिष्टं तथेदं कथयामीत्यर्थः ॥ सू० ५ ॥

संसारश्रेणिं संत्रोटच वर्तमानमरतिरभिभवतीत्याह-'विरयं' इत्यादि ।

मूलम्-विरयं भिक्खुं रीयंतं चिरराओसियं अरई तत्थ किं विधारए? ॥ सू० ६ ॥

छाया-विरतं भिक्षुं रीयमाणं चिररात्रोषितम् अरतिस्तत्र किं विधारयेत्॥सू० ६॥

टीका—विरतम्=असंयमतो निवृत्तं रीयमाणम्=उत्तरोत्तरप्रवर्धमानशुभाध्यवसायेषु प्रवर्तमानं चिररात्रोषितं=प्रभूतकालं संयमावस्थितं भिक्षुं=निरवद्यभिक्षाजीविनं मुनिम् अरतिः=संयमोद्वेगः तत्र=संयमे किं विधारयेत्=किं प्रतिस्खलयेत्?।

हैं, वही पूर्वोक्तलक्षणसंपन्न साधु संसारसमुद्रसे पार हो जाते हैं और सर्वसंगसे रहित हो सर्वसावद्यव्यापाररहित हो जाते हैं-ऐसा तीर्थङ्कर प्रभुका कहना है। "इति ब्रवीमि" यह कथन मेरा नहीं है, किन्तु प्रभुका है। हे जम्बू ! उन्होंने जैसा कहा है वैसा ही मैं कहता हूं ॥ सू०५॥

संसारपरम्पराको उच्छेद करके रहे हुए साधुको अरतिभाव कदाचित् परास्त कर सकता है ! इसे प्रकट करनेके लिये सूत्रकार कहते हैं "विरयं" इत्यादि—

असंयम भावसे दूर रहनेवाले, और उत्तरोत्तर बढते हुए शुभ अध्यवसायोंमें प्रवृत्ति करनेवाले, तथा बहुत काल तक संयमकी आराधना करते २ उसीमें अपने जीवनके समयको व्यतीत करनेवाले ऐसे निरवद्य भिक्षाजीवी मुनिको संयममें उद्वेगरूप अरतिभाव उससे स्ख-

---

धर्मना आराधनथी तोडी दे छे; એवा पूर्वोक्तलक्षणसंपन्न साधु संसारसमुद्रथी पार थई जाय छे, अने सर्वसंगथी रहित बनी सर्वसावद्यव्यापाररहित बनी जाय छे; એवुं तीर्थंकर प्रभुनुं कहेवुं छे. "इति ब्रवीमि"-आ कथन मारुं नथी, परन्तु प्रभुनुं छे. हे जम्बू! એमणे जेम कह्युं छे तेवी ज रीते हुं कहुं छुं. (सू०५)

संसारपरंपरानो उच्छेद करीने रहेला साधुओने अरतिभाव कदाच परास्त करी शके छे! आने प्रगट करवा माटे सूत्रकार कहे छे "विरयं" ईत्यादि.

असंयमभावथी दूर रहेवावाळा अने उत्तरोत्तर वधता जता शुभ अध्यवसायोमां प्रवृत्ति करवावाळा तथा घणा काळ सुधी संयमनी आराधना करतां करतां એमां ज पोताना जीवननो समय व्यतीत करवावाळा એवा निरवद्य भिक्षाजीवी मुनिने संयममां उद्वेगरूप अरतिभाव अटकावी शके खरो के?

अत्र किं शब्दः प्रश्ने; तथाभूतमपि मोक्षमार्गारूढं किमरतिर्विषयस्थानं नीत्वा स्खलयेत्?, स्खलयेदित्युच्यते। इन्द्रियाणि दुर्वाराणि अविनयवन्ति च, मोहशक्तिश्चाचिन्त्या, तथा—कर्मपरिणतिरपि विचित्रा, तर्हि किं न कुर्यात्?, अपि तु सर्वं कुर्यादिति भावः।

यद्वा—किं शब्दोऽत्र क्षेपार्थे। अरतिस्तथाभूतं मोक्षमार्गावस्थितं विधारयेत्=प्रतिस्खलयेत् किम्?, नैव विधारयेदित्यर्थः ॥ सू० ६ ॥

किञ्च—'संधेमाणे' इत्यादि।

मूलम्—संधेमाणे समुट्ठिए, जहा से दीवे असंदीणे ।सू०७।

छाया—संदधानः समुत्थितः; यथा स द्वीपः असंदीनः ॥ सू० ७ ॥

लित कर सकता है क्या? यहां "किं" यह शब्द प्रश्नवाचक है।

उत्तर—हां! ऐसे भी उस मोक्षमार्ग में आरूढ हुए मुनिको अरतिभाव विषयोंकी ओर ले जाकर स्खलित कर सकता है। क्यों कि इन्द्रियां दुर्निवार हैं, मोहकी शक्ति अचिन्त्य है तथा कर्मकी परिणति भी विचित्र है। इनकी प्रबलता क्या नहीं कर सकती? सब कुछ कर सकती है।

अथवा—"किं" शब्द यहां क्षेप अर्थमें है; इसका मतलब है कि यदि कोई हमसे यह पूछे कि क्या ऐसे मोक्षमार्गमें स्थित साधुको भी अरतिभाव संयममार्गसे च्युत कर सकता है? तो हम यह उत्तर देंगे कि नहीं कर सकता है ।।सू०६।।

तथा—"संधेमाणे" इत्यादि—

અહિં "किं" આ શબ્દ પ્રશ્નવાચક છે.

ઉત્તરઃ—હા, એવા મોક્ષમાર્ગમાં આરૂઢ થયેલા મુનિને પણ અરતિભાવ વિષયોની તરફ લઇ જઇ સ્ખલિત કરી શકે છે; કેમ કે ઈન્દ્રિયોની અનેકવિધ મોહવાળી શક્તિ અચિન્ત્ય છે તથા કર્મની પરિણતિ પણ વિચિત્ર છે. એની પ્રબળતા શું નથી કરી શકતી? બધું કરી શકે છે.

અથવા—"किं" શબ્દ અહિં ક્ષેપ અર્થમાં છે. આનો મતલબ એ છે કે કદાચ કોઇ એમ પૂછે કે શું આવા મોક્ષમાર્ગમાં સ્થિત સાધુને પણ અરતિભાવ સંયમ માર્ગથી ચ્યુત કરી શકે છે? તો એનો આ ઉત્તર છે કે કરી શકતો નથી. (સૂ૦૬)

"संधेमाणे" ઈત્યાદિ—

टीका—यतः स संदधानः=उत्तरोत्तरमधिकाधिकप्रशस्तपरिणामधारां गुण-स्थानकं वा आरोहन् समुत्थितः=सम्यगुत्थितः यथाऽऽख्यातचारित्राभिमुखः उत्तरोत्तर-प्रशस्तभावसमारूढो वर्तते । तमरतिः कथं स्खलेयिदिति भावः । यथा द्वीपः=द्विर्गता आपोऽस्मिन्निति द्वीपः–उभयतः पानीयं यत्र तिष्ठति सा स्थलभूमिर्द्वीपः, असंदीनः=जलोपप्लावनाद्युपसर्गरहितो भवति, तथा स=पूर्वोक्तलक्षणो मुनिरपि परिषहोपसर्गप्रतिबाधितो न भवतीत्यर्थः । यद्वा–असंदीनो द्वीपो यथा यात्रिभिरा-श्वसनीयो भवति, तथा स तथाविधः साधुरिति । समुद्रादिकमुत्तरीतुमिच्छन्तोऽसं-दीनं द्वीपमाश्वसन्ति–विश्वसन्ति, तथैव संसारसागरं समुत्तितीर्षवोऽन्ये प्राणिनः तं साधुं विश्वसन्तीत्यर्थः ॥ सू० ७ ॥

जिसकी प्रशस्त परिणामधारा उत्तरोत्तर अधिकाधिकरूपमें वृद्धिंगत हो रही है, अथवा जो आगे २ के गुणस्थानों पर चढ़ता जा रहा है, और इसीसे जो यथाख्यात चारित्रके सन्मुख जा रहा है, ऐसे महामुनिको अरतिभाव कैसे अपने स्थानसे स्खलित कर सकता है? अर्थात् नहीं कर सकता है, दोनों ओर जिसके जल होता है उसका नाम द्वीप है। वह द्वीप–स्थलभूमि जिस प्रकार जलमग्न होने आदिके उप-द्रवसे सुरक्षित रहता है उसी प्रकार ऐसा मुनि भी परीषह और उपसर्ग से बाधित नहीं होता है।

अथवा—जिस प्रकार असंदीन (उपसर्गरहित) द्वीप यात्रियोंके लिये आश्वासनका स्थान होता है उसी प्रकार वे महामुनि भी भव्योंके लिये आश्वासन (आधार) रूप हैं। समुद्रादिकको पार करनेकी भावना-वाले मनुष्य असंदीन द्वीपमें विश्वास रखते हैं, उसी प्रकार संसाररूपी

જેની પ્રશસ્ત પરિણામધારા ઉત્તરોત્તર અધિકાધિકરૂપમાં વૃદ્ધિગત થઈ રહી છે, અથવા જે ગુણસ્થાનો પર આગળ આગળ ચઢતા જતા હોય છે, અને આથી જે યથાખ્યાત ચારિત્રની સન્મુખ જઈ રહેલ છે એવા મહામુનિને અરતિભાવ ક્યાંથી પોતાના સ્થાનથી સ્ખલિત કરી શકે ? અર્થાત્ કરી શકતો નથી. બન્ને બાજુ જેને જળ છે એનું નામ દ્વીપ છે, એ દ્વીપ–સ્થળભૂમિ જે રીતે પૂર આદિના ઉપદ્રવથી સુરક્ષિત રહે છે. એ રીતે એવા મુનિ પણ પરિષહ અને ઉપસર્ગથી બાધિત હોતા નથી. જેમકે ઉપસર્ગ રહિત દ્વીપ યાત્રિયોને માટે આશ્વાસનનું સ્થાન હોય છે, તેવી જ રીતે મહામુનિ પણ ભવ્ય જીવોને માટે આધારરૂપ છે. સમુદ્રાદિકને પાર કરવાની ભાવનાવાળા મનુષ્ય ઉપસર્ગરહિત દ્વીપમાં વિશ્વાસ રાખે છે, એવી રીતે સંસારરૂપી સમુદ્રથી પાર થવાની ભાવનાવાળા ભવ્ય પણ એવા મુનિનો વિશ્વાસ કરે છે.

मूलम्—एवं से धम्मे आरियपदेसिए ॥ सू० ८ ॥

छाया—एवं स धर्मः आर्यप्रदेशितः ॥ सू० ८ ॥

टीका—स प्रागुक्तः आर्यप्रदेशितः=तीर्थङ्करभाषितः धर्मः एवम्=ईदृशो द्वीपतुल्योऽस्तीत्यर्थः । भगवद्भाषितो धर्मः खलु जलेनासंदीनद्वीपवत् अरत्या कुतर्केण च कदाचिदपि न बाध्यत इति भावः ॥ सू० ८ ॥

ननु तथाविधा भगवद्भाषितधर्मस्य समाराधकाः कथंभूता भवन्तीति शिष्यजिज्ञासायामाह–'ते अणवकंखमाणा' इत्यादि ।

समुद्रसे पार होनेकी भावनावाले भव्य भी उन मुनिका विश्वास करते हैं।

भावार्थ—यथाख्यात चारित्रकी ओर ले जानेवाली प्रशस्त परिणामधारा जिसके उत्तरोत्तर अधिकाधिक रूपमें बढ रही है ऐसे मुनिके लिये एक तो परीषह उपसर्गादिक आते नहीं हैं, यदि कदाचित् आ भी जाते हैं तो वे मुनि उनसे जलके प्लाव (उपद्रव)से असंदीन द्वीपकी तरह सदा सुरक्षित रहते हैं और अन्य प्राणियोंके लिये आधारभूत होते हैं॥सू०७॥

जिस प्रकार पूर्वोक्त स्वरूपवाला साधु अरति आदि बाधाओंसे बाधित नहीं होते उसी प्रकार जिनेन्द्रप्रतिपादित वह धर्म भी अरति या कुतर्कोंसे कभी भी बाधित या खण्डित नहीं होता है। यह धर्म भी असंदीन द्वीपकी तरह ही है। वह जिस प्रकार जलप्लावसे निर्बाध रहता है–उसी प्रकार धर्म भी कुतर्कोंसे या अरति आदि दुर्भावोंसे अबाध्य रहता है॥सू०८॥

भगवत्कथित धर्मके समाराधक जीव कैसे होते हैं? इस प्रकार शिष्यकी जिज्ञासाका "ते अणवकंखमाणा" इत्यादि सूत्रसे सूत्रकार

ભાવાર્થ—યથાખ્યાત ચારિત્રની તરફ દોરવાવાળી પ્રશસ્ત પરિણામધારા જેને ઉત્તરોત્તર અધિક–અધિક–રૂપમાં વધી રહી છે, એવા મુનિને માટે જો કે પરિષહ ઉપસર્ગાદિક આવતાં નથી, અને કદાચ આવી જાય તો પણ એ મુનિ એનાથી જળના ઉપદ્રવથી સુરક્ષિત દ્વીપની માફક, સદા સુરક્ષિત રહે છે, અને અન્ય પ્રાણિઓ માટે આધારભૂત રહે છે. (સૂ૦૭)

જે પ્રકારે પૂર્વોક્તસ્વરૂપવાળા સાધુ અરતિ આદિ બાધાઓથી બાધિત નથી થતા, એજ પ્રકારે જીનેન્દ્રપ્રતિપાદિત ધર્મ પણ અરતિ અને કુતર્કોથી કદી પણ બાધિત અને ખંડિત થતો નથી. આ ધર્મ પણ સુરક્ષિત દ્વીપની માફક છે. એ જેમ જળના ઉપદ્રવથી સુરક્ષિત રહે છે તે પ્રકારે ધર્મ પણ કુતર્કોથી અને અરતિ આદિ દુર્ભાવોથી સુરક્ષિત રહે છે. (સૂ૦૮)

ભગવતકથિત ધર્મનો આરાધક જીવ કેવો હોય છે? આ પ્રકારની શિષ્યની

मूलम्—ते अणवकंखमाणा पाणे अणइवाएमाणा दइया मेहाविणो पंडिया ॥ सू० ९॥

छाया——ते अनवकाङ्क्षन्तः प्राणान् अनतिपातयन्तः दयिताः मेधाविनः पण्डिताः ॥ सू० ९ ॥

टीका——यतस्ते मुनयः अनवकाङ्क्षन्तः=विषयभोगाननभिवाञ्छन्तः तथा-प्राणान्=प्राणिनः, अनतिपातयन्तः=अहिंसन्तः, इदं शेषमहाव्रतानामुपलक्षणम्-तेन शेषाण्यपि महाव्रतानि धारयन्त इत्यर्थः, तथा-दयिताः=सकलप्राणिनां शुभचिन्तकत्वात् सर्वलोकप्रिया इत्यर्थः, तथा-मेधाविनः-साधुमर्यादाव्यवस्थिताः, पण्डिताः= सर्वसावद्यव्यापारपरिहारेण हेयोपादेयज्ञानवन्तो भवन्तीत्यर्थः ॥ सू० ९ ॥

ये तु हेयोपादेयज्ञानाभावाद्भगवद्धर्मे समुत्थिता न सन्ति, तान् प्रति यदाचार्यादीनां कर्त्तव्यं तदाह-'एवं तेसिं' इत्यादि ।

समाधान करते हैं—

भगवत्प्रतिपादित धर्मके समाराधक जीव विषयभोगोंकी वाञ्छासे रहित होते हैं, प्राणियोंकी हिंसा नहीं करते हैं। उपलक्षणसे अवशिष्ट महाव्रतों के धारक होते हैं। समस्त जगतके कल्याणके अभिलाषी होने से वे जगत्प्रिय होते हैं। साधुमर्यादामें रहते हैं और समस्त सावद्य व्यापारोंके त्यागी होनेसे हेय और उपादेयके विवेकसे वासित अन्तःकरणवाले होते हैं ॥सू०९॥

जो हेय और उपादेयके विवेकके अभावसे भगवत्प्रतिपादित धर्म में समुत्थित नहीं है—उसमें अनुत्साही हैं, उनके प्रति आचार्योंका क्या कर्तव्य होना चाहिये? इस बातको सूत्रकार "एवं तेसिं' इत्यादि सूत्र-द्वारा प्रकट करते हैं—

જીજ્ઞાસાનું "ते अणवकंखमाणा" ઇત્યાદિ સૂત્રથી સૂત્રકાર સમાધાન કરે છે.

ભગવત્-પ્રતિપાદિત ધર્મના આરાધક જીવ વિષયભોગોની વાંછનાથી રહિત હોય છે. પ્રાણીઓની હિંસા કરતા નથી. ઉપલક્ષણથી અવશિષ્ટ મહાવ્રતોના ધારક હોય છે. સમસ્ત જગતના કલ્યાણના અભિલાષી હોવાથી એ જગતપ્રિય હોય છે. સાધુમર્યાદામાં રહે છે. અને સમસ્ત સાવદ્ય વ્યાપારોના ત્યાગી હોવાથી હેય અને ઉપાદેયના વિવેકથી ભરપૂર અન્તઃકરણવાળા હોય છે. (સૂ૦૯)

જે હેય અને ઉપાદેયના વિવેકના અભાવથી ભગવત્-પ્રતિપાદિત ધર્મમાં સ્થિર નથી-ઉત્સાહી નથી, એમના તરફ આચાર્યોનું શું કર્તવ્ય છે? એ વાતને સૂત્રકાર "एवं तेसिं" ઇત્યાદિ સૂત્રદ્વારા પ્રગટ કરે છે.

मूलम्—एवं तेसिं भगवओ अणुट्ठाणे जहा से दियपोए। एवं ते सिस्सा दिया य राओ य अणुपुव्वेण वाइयत्तिबेमि॥सू०१०॥

छाया——एवं तेषां भगवतोऽनुत्थाने यथा स द्विजपोतः। एवं ते शिष्या दिवा च रात्रौ च अनुपूर्वेण वाचिताः, इति ब्रवीमि ॥ सू० १० ॥

टीका——भगवतः श्रीवर्धमानस्वामिनो धर्मे एवं=पूर्वोक्तरीत्या तेषां=तथाभूत-ज्ञानाभावेन भगवद्धर्मसमाराधनानुत्साहवतां शिष्याणाम् अनुत्थाने=उत्तरोत्तरमधि-काधिकप्रशस्तपरिणामधारानारोहणे सति आचार्यादिभिः सदुपदेशदानेन बुद्धिवैश-द्यं विधेयमित्यर्थः। अत्र दृष्टान्तमाह–' यथा सः ' इत्यादि,

यथा सः=प्रसिद्धः द्विजपोतः=पक्षिशावकः मातापितृभ्यामनुपाल्यते, एवं ते शिष्या आचार्येण दिवा च रात्रौ च अनुपूर्वेण=क्रमेण वाचिताः=सामायिकादी-न्येकादशाङ्गानि च पाठिताः सकलपरीषहोपसर्गसहिष्णवः संसारसागरोत्तरणसम-र्थाश्च भवन्तीत्यर्थः। इति ब्रवीमि। अस्य व्याख्या प्राग्वत् ॥ सू० १० ॥

॥ षष्ठाध्ययनस्य तृतीयोद्देशः समाप्तः ॥ ६–३ ॥

भगवान् श्री वर्धमानस्वामीके धर्ममें इस प्रकार पूर्वोक्त रीतिसे यदि शिष्यजन हेयोपादेय ज्ञानसे विकल होनेके कारण, भगवान् द्वारा उपदिष्ट धर्मकी आराधना करनेमें अनुत्साही हों तो, आचार्योंका कर्तव्य है कि वे उन्हें सदुपदेश प्रदान करें, जिससे उनकी बुद्धिमें विश-दता आवे। दृष्टान्त–जैसे पक्षियुगल अपने बच्चोंको पालता है, उन्हें चलना–फिरना सिखलाता है उसी प्रकार वे शिष्य भी आचार्यद्वारा रात दिन क्रम २ से सामायिक आदिके तथा ग्यारह अंगोंके पाठी बनाये जाते हैं, ताकि वे सकल परीषह और उपसर्गोंको जीतनेमें सहनशील बन संसारसागरसे पार होनेमें शक्तिसम्पन्न बन सकें। "इति ब्रवीमि" इन पदोंकी व्याख्या पहिले जैसी जाननी चाहिये।

ભગવાન શ્રી વર્ધમાન સ્વામીના ધર્મમાં આ પ્રકારે પૂર્વોકત રીતથી કદાચ શિષ્યજન–હેય ઉપાદેયના જ્ઞાનથી વિકળ હોવાના કારણે ભગવાનદ્વારા ઉપદિષ્ટ–ઉપદેશેલ ધર્મની આરાધના કરવામાં અનુત્સાહી હોય તો આચાર્યનું કર્તવ્ય છે કે તેઓ તેને સદ્ ઉપદેશ પ્રદાન કરે. જેનાથી તેની બુદ્ધિમાં વિશ-દતા આવે. દૃષ્ટાંત–જેમ એક પક્ષીજોડું પોતાના બચ્ચાંને પોષે છે, તેને ચાલતાં ફરતાં શીખવાડે છે, એવી જ રીતે તે શિષ્ય પણ આચાર્યદ્વારા રાતદિવસ ક્રમ ક્રમથી સામાયિક આદિના અને અગ્યાર ૧૧ અંગોના પાઠી બનાવવામાં આવે છે. જેથી તે સકલ પરિષહ અને ઉપસર્ગો જીતવામાં સહનશીલ બની સંસારસાગરથી પાર થવામાં શકિતસંપન્ન બની શકે. "इति ब्रवीमि" આ પદોની વ્યાખ્યા પહેલા જેવી જાણવી.

भगवान्‌के द्वारा कथित धर्ममें जो शिष्यजन मन्दपरिणामी हों-उत्साहशील न हों तो, आचार्यका कर्तव्य है कि वह उनका तिरस्कार न कर उन्हें उस धर्मकी आराधना करनेमें चतुर बनावें-उन्हें शास्त्रोंका अभ्यास करावें। जैसे पक्षी अपने बच्चोंकी संभाल रखते हैं उसी प्रकार आचार्य भी उनकी हरएक प्रकारसे संभाल रखते हुए हेय और उपादेयके विवेकसे वासित मतिवाला करनेकी चेष्टा करते रहें; ताकि वे परीषह और उपसर्गों के सहनमें अधीर न बन कर सहनशील बनें, और इस संसार समुद्रसे पार हो सकें ॥सू० १०॥

॥ छट्ठा अध्ययन का तीसरा उद्देश समाप्त ॥ ६-३ ॥



ભગવાનદ્વારા કહેવાએલા ધર્મમાં જે શિષ્યજન મંદપરિણામી હોય-ઉત્સાહશીલ ન હોય તો, આચાર્યનું કર્તવ્ય છે કે તેનો તિરસ્કાર ન કરતાં તેને આ ધર્મની આરાધના કરવામાં ચતુર બનાવે-તેને શાસ્ત્રોનો અભ્યાસ કરાવે. જેમ -પક્ષી પોતાના બચ્ચાઓની સંભાળ રાખે છે તે પ્રકારે આચાર્ય પણ તેની દરેક પ્રકારથી સંભાળ રાખીને હેય અને ઉપાદેયના વિવેકથી ભરપૂર મતિવાળા કરવાની ચેષ્ટા કરતા રહે, જેથી તે પરિષહ અને ઉપસર્ગો સહન કરવામાં અધીરો ન બને. સહનશીલ બને, અને આ સંસાર સમુદ્રથી પાર થઇ શકે. (સૂ૦૧૦)

છઠ્ઠા અધ્યયનનો ત્રીજો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૬-૩ ॥



॥ अथ षष्ठाध्ययनस्य चतुर्थ उद्देशः॥

इहानन्तरतृतीयोद्देशके उपकरणशरीरममत्वधूननं प्रतिबोधितम् । तच्च गौरव-त्रयवतः सम्पूर्णतया न भवत्यतस्तद्धूननार्थं चतुर्थोद्देशं कथयन्नाद्यं सूत्रमाह–' एवं ते सिस्सा ' इत्यादि ।

मूलम्—एवं ते सिस्सा दिया य राओ य अणुपुव्वेण वाइया तेहिं महावीरेहिं पण्णाणमंतेहिं, तेसिंतिए पण्णाणमुवलब्भ हिच्चा उवसमं फारुसियं समाइयंति ॥ सू० १ ॥

छाया—एवं ते शिष्या दिवा च रात्रौ च अनुपूर्वेण वाचिताः तैर्महावीरैः प्रज्ञानवद्भिः, तेषामन्तिके प्रज्ञानमुपलभ्य हित्वा उपशमं पारुषिकं समाददति ॥१॥

टीका—एवं=पक्षिशावकसंवर्धनक्रमेण ते शिष्याः दिवा रात्रौ च अनुपूर्वेण=क्रमेण यथा त्रिवर्षपर्याय आचाराङ्गादि अध्याप्यते, कक्षान्तरे केशसमुद्भवे सति ततः

॥ छठा अध्ययनका चोथा उद्देश ॥

इस अध्ययनके तृतीय उद्देशमें साधुको उपकरण और शरीरमें ममत्व नहीं रखना चाहिये, यह बात समझा दी गई है । इनमें ममत्व का त्याग, जो तीन गौरवोंसे युक्त है उसके संपूर्ण रीतिसे नहीं होता है । इसलिये उन गौरवोंके त्याग करानेके लिये इस चतुर्थ उद्देशको प्रारम्भ करते हुए सूत्रकार कहते हैं–" एवं ते सिस्सा " इत्यादि ।

जिस प्रकार पक्षी अपने बच्चोंका क्रमशः संवर्धन करते हैं, उसी प्रकार सम्यग्ज्ञानी तीर्थङ्कर और गणधरादिकोंके द्वारा भी आचाराङ्गादि

છઠા અધ્યયનનો ચોથો ઉદ્દેશ.

આ અધ્યયનના ત્રીજા ઉદ્દેશમાં સાધુએ ઉપકરણ તરફ મમત્વ રાખવું ન જોઈએ આ વાત સમજાવવામાં આવી છે. આ મમત્વનો ત્યાગ, જે ત્રણ ગૌરવથી ભરપૂર છે તેનાથી સારી રીતે થઈ શકતો નથી. માટે તે ત્રણ ગૌરવનો ત્યાગ કરાવવા માટે આ ચતુર્થ ઉદ્દેશનો પ્રારંભ કરતાં સૂત્રકાર કહે છે–" एवं ते सिस्सा " ઈત્યાદિ.

જે પ્રકારે પક્ષી પોતાના બચ્ચાને પાળી પોષીને મોટું કરે છે એ રીતે સમ્યગ્જ્ઞાની તીર્થંકર અને ગણધર આદિ દ્વારા પણ આચારાંગ સૂત્ર ઈત્યાદિ પાઠનક્રમથી શિષ્યજન દિનરાત ગ્રહણશિક્ષા અને આસેવનશિક્ષા આ બન્ને

पूर्वमप्यध्याप्यते,—इत्यादिक्रमेण प्रज्ञानवद्भिः=सम्यग्ज्ञानवद्भिः तैर्महावीरैः तीर्थङ्करगणधरादिभिः वाचिताः=ग्रहणासेवनाशिक्षाद्वयेन शिक्षिताः, सूत्रार्थतदुभयाध्यापनरूपां ग्रहणशिक्षां साधुसामाचारीपालनरूपामासेवनशिक्षां च ग्राहिताः। तत्र केचन शिष्याः, तेषाम् आचार्यादीनां तीर्थङ्करादीनाम् अन्तिके=समीपे प्रज्ञानं=प्रकृष्टं ज्ञानं श्रुतज्ञानम् उपलभ्य=संप्राप्य ज्ञानगर्वान्धाः सन्तः उपशमं शान्तिभावं हित्वा=प्रबलमोहोदयापनीतसदुपदेशसञ्जातोत्कटमदत्वेन त्यक्त्वा पारुषिकं=पारुष्यं समाद-

---

सूत्र पाठनक्रमसे शिष्यजन दिन–रात निरन्तर ग्रहणशिक्षा और आसेवनशिक्षा इन दोनों शिक्षाओंसे शिक्षित किये जाते हैं। शिष्यकी दीक्षापर्याय जब तीन वर्षकी हो जाय तो उसे आचाराङ्ग आदि सूत्रोंका क्रमसे अध्ययन कराना चाहिये, तथा यदि कक्षा (कांख)में बाल ऊग आवें तो इसके पहिले भी उसे आचारांग आदिका अध्ययन कराया जा सकता है। क्रम २ से सूत्र अर्थ और साथ २ सूत्र अर्थका अध्ययन शिष्यको कराना इसका नाम ग्रहणशिक्षा है। साधु समाचारीके पालन करनेकी उन्हें शिक्षा देना इसका नाम आसेवनशिक्षा है। उसमें कोई २ शिष्य उन तीर्थङ्कर या आचार्योंके निकट सर्वोत्तम श्रुतज्ञान प्राप्त कर विशिष्ट ज्ञानी जब हो जाते हैं तब ज्ञानका गर्व करने लग जाते हैं, और इस अभिमानसे अंध–उन्मत्त हो कर शांतिभाव तकका भी परित्याग कर देते हैं। इस अवस्थामें वे प्रबल मोहके उदयसे गुरुके प्रदत्त उपदेश अनुसार प्रवृत्ति नहीं करते हैं, और उत्कट मदके नशेमें बेभान जैसे बन कर अपने उपकारी गुरुजनोंके साथ भी वाचनिक कठोर व्यवहार

શિક્ષાઓથી શિક્ષિત બનાવવામાં આવે છે. શિષ્યની દીક્ષાનો સમય જ્યારે ત્રણ વર્ષનો થઈ જાય ત્યારે તેને આચારાંગ સૂત્ર આદિ સૂત્રોનું ક્રમથી અધ્યયન કરાવવું જોઈએ. પણ જો આ સમયની અંદર તેની કાંખમાં વાળ ઉગવા લાગે તો આ કાળ પહેલાં આચારાંગ આદિનું અધ્યયન કરાવી શકાય છે. ક્રમ ક્રમથી સૂત્ર, અર્થ અને સાથોસાથ સૂત્ર અર્થનું અધ્યયન શિષ્યને કરાવવું જોઈએ, આનું નામ ગ્રહણશિક્ષા છે. સાધુસામાચારીનું પાલન કરવાની શિક્ષા દેવી જોઈએ ? આનું નામ આસેવનશિક્ષા છે. આમાં કોઈ કોઈ શિષ્ય તીર્થંકર અથવા આચાર્યોની પાસેથી શ્રુતજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરી જ્યારે સારા જ્ઞાની બની જાય ત્યારે જ્ઞાનનો ગર્વ કરવા લાગી જાય છે, અને એ અભિમાનથી અંધ–ઉન્મત્ત બની શાંતિભાવનો પણ પરિત્યાગ કરી દે છે. આ અવસ્થામાં તે પ્રબળ મોહના ઉદયથી ગુરૂથી પ્રાપ્ત થયેલ ઉપદેશ અનુસાર પ્રવૃત્તિ કરતા નથી અને મદના નશામાં બેભાન જેવા બની જઈ ઉપકારી ગુરૂજનોની સાથે પણ વાદવિવાદરૂપી

दति=गृह्णन्ति, यथा—ज्ञानलवं प्राप्य, तन्मदान्धाः परस्परं वाचनाप्रच्छनादिषु वदन्ति, 'भवता यन्निगद्यते नैतत् समीचीनं, अस्य शब्दस्य नायमर्थः, यथा मयोच्यते स एव सिद्धान्तः, शब्दार्थनिर्णयाय कश्चिदेवास्ति मादृशः' इत्यादिरूपं वचनपारुष्यं स्वीकुर्वन्ति ॥ सू०१ ॥

किञ्च—'वसित्ता' इत्यादि।

मूलम्—वसित्ता बंभचेरंसि आणं तं नोत्ति मन्नमाणा॥सू०२॥

छाया—उषित्वा ब्रह्मचर्ये आज्ञां तां नो इति मन्यमानाः ॥ सू० २ ॥

टीका—एके तु शिष्याः ब्रह्मचर्ये=संयमे आचारार्थम् उषित्वा=स्थित्वा तामाज्ञां तीर्थङ्करोपदेशरूपां नो इति मन्यमानाः=देशतस्तीर्थकृदुपदेशं नाद्रियमाणाः सातागौरवप्रकर्षेणाऽज्ञातकुलादिष्वन्तप्रान्ताहारप्राप्तिशङ्कया शरीरविभूषादिना चारित्रमालिन्यलक्षणं बाकुशिकत्वं प्रपद्यन्त इति भावः ॥ सू० २ ॥

करने लग जाते हैं। वे पल्लवग्राहिपाण्डित्यवाले शिष्यजन गर्वोन्मत्त बन–अहंकारसे फूल कर सूत्रोंकी वाचना एवं प्रच्छना आदिके समय यह कह दिया करते हैं कि "आप जो कुछ कह रहे हैं वह ठीक नहीं है, इस शब्दका यह अर्थ नहीं है" "जो कुछ मैं कहता हूं वही यथार्थ है–वही सुन्दर सिद्धान्त है, शब्द और अर्थका निर्णय मेरा जैसा कोई कर सकता है! कोई नहीं" इत्यादि रूपसे अभिमानयुक्त वचन बोलते हैं ॥ सू० १ ॥

तथा—"वसित्ता" इत्यादि।

कोई एक शिष्यजन ब्रह्मचर्यका पालन करके तीर्थङ्कर उपदिष्ट आज्ञा का आदर नहीं करते हैं। एकदेशसे भी तीर्थङ्करके उपदेशको वे नहीं मानते हैं। सातागौरवके प्रकर्षसे "कदाचित् अज्ञातकुलादिकोंमें हमें अन्तप्रान्त आहार मिले?" इस प्रकारकी शङ्कासे वे शारीरिक वेष-

---

કઠોર વ્યવહાર કરવા લાગે છે. તેવા પલ્લવગ્રાહિપાંડિત્યવાળા શિષ્યજન ગર્વોન્મત્ત બની અહંકારથી ફુલાઈ જઈ સૂત્રોની વાચના અથવા પ્રચ્છના આદિના સમયે એવું કહી દે છે કે "આપ જે કાંઈ કહો છો એ ઠીક નથી, આ શબ્દનો આ અર્થ નથી." "હું જે કાંઇ કહું છું તે બરોબર છે. એ જ સુંદર સિદ્ધાન્ત છે, શબ્દ અને અર્થનો નિર્ણય મારા જેવો કોઈ કરી શકે છે! કોઇ નહિ" ઈત્યાદિ રૂપથી અભિમાનયુકત વચન બોલે છે. (સૂ૦૧)

તથા "वसित्ता" ઈત્યાદિ!

કોઇ એક શિષ્યજન બ્રહ્મચર્યનું પાલન કરી તીર્થંકરે ઉપદેશેલ આજ્ઞાનો આદર ન કરે, એકદેશથી પણ તીર્થંકરના ઉપદેશને એ ન માને, સાતાગૌરવના

ननु साध्वाचारपरिभ्रष्टानां कुशीलानां दीर्घः संसारो भवतीत्युपदेशः कथं न तेभ्यः क्रियते? इति जिज्ञासायामाह-'आघायं तु' इत्यादि।

मूलम्-आघायं तु सुच्चा निसम्म, "समणुन्ना जीविस्सामो" एगे निक्खम्म ते असंभवंता विडज्झमाणा कामेहिं गिद्धा अज्झोववन्ना समाहिमाघायमझोसयंता सत्थारमेव फरुसं वयंति ।सू०३।

छाया--आख्यातं तु श्रुत्वा निशम्य, 'समनोज्ञा जीविष्यामः' एके निष्क्रम्य ते असंभवन्तः विदह्यमानाः कामैर्गृद्धाः अध्युपपन्नाः समाधिम् आख्यातम् अजोषयन्तः शास्तारमेव परुषं वदन्ति ॥ सू० ३ ॥

टीका--एके=केचन कुशीलाः शिष्यास्तु-आख्यातं=तीर्थङ्करगणधरादिभिः कथितं कुशीलाचारविपाकं श्रुत्वा निशम्य=अवधार्य शास्तारमेव परुषं वदन्तीत्यन्वयः। कथम्भूतास्ते शिष्याः? इत्यत्राह-'समनोज्ञा' इत्यादि, समनोज्ञाः=लोकप्रियाः सन्तः जीविष्यामः; इति मत्वा निष्क्रम्य=प्रव्रजितो भूत्वा ते असम्भवन्तः=न

भूषा बनाते हैं, इससे उनका चारित्र मलिन बनता है, और इससे वे बकुश मुनियोंकी श्रेणिमें परिगणित होने लगते हैं ॥ सू० २ ॥

साधुके आचारसे परिभ्रष्ट उन कुशीलोंको आप वह उपदेश क्यों नहीं देते हो कि कुशीलोंका संसार दीर्घ हो जाता है? इस प्रकारकी शिष्यकी जिज्ञासामें सूत्रकार "आघायं तु" यह सूत्र कहते हैं—

कोई एक कुशील शिष्य तीर्थङ्कर और गणधरादिकों द्वारा कथित कुशील संबंधी आचारके विपाकको सुनकर और उसका अवधारण कर के भी अपने शासकके प्रति कठिन वचन बोलते हैं। "हम लोग लोकप्रिय बन कर जीयेंगे" ऐसे अभिप्रायसे प्रेरित हो भागवती दीक्षाका वेष पहिन साधु तो बन जाते हैं, परन्तु फिर वे "न सम्यग्

પ્રકર્ષથી "કદાચ અજાણ્યા કુળવાળાઓને ત્યાંથી અન્તપ્રાન્ત આહાર મળે? આવી શંકાથી તે શરીરની વેશભૂષા બનાવે છે. આથી એનું ચારિત્ર મલિન બની જાય છે, બકુશ મુનિઓની ગણત્રીમાં ગણાવા લાગે છે. (સૂ૦ ૨)

સાધુના આચારથી ભ્રષ્ટ થયેલા તે કુશીલોને આપ કેમ ઉપદેશ આપતા નથી, જેથી કુશીલોનો સંસાર દીર્ઘ બની રહ્યો છે? આ પ્રકારની શિષ્યની અને એથી તે જીજ્ઞાસામાં સૂત્રકાર "आघायं तु" આ સૂત્ર કહે છે.

કોઈ એક કુશીલ શિષ્ય તીર્થંકર અને ગણધરાદિકોદ્વારા કહેવામાં આવેલ કુશીલસંબંધી આચારના વિપાકને સાંભળી, અને સમજીને પણ પોતાના ગુરૂજન વગેરે તરફ કઠણ વચન બોલે છે, "અમે તો લોકપ્રિય બનીને જીવવાના" આવા અભિપ્રાયથી પ્રેરિત બની ભાગવતી દીક્ષાનો વેશ પહેરી

न सम्यग् भवन्तः–पुनर्मोहोदयाद् गौरवत्रयान्यतमावेशान्मोक्षमार्गे न प्रवर्त्तमाना इत्यर्थः; तथा कामैः=भोगाभिलाषैः विदह्यमानाः=अभिलषितविषयानवाप्त्या कषायानलेनान्तस्तप्यमानाः गृद्धाः=सातादिगौरवलोलुपाः, अध्युपपन्नाः=विषयसुखनिमग्नमानसाः आख्यातं=तीर्थङ्करप्ररूपितं समाधिम्=उपशमम् अजोषयन्तः=असेवमानाः सन्तः शास्तारमेव=शिक्षयितारमेव, यद्वा-तीर्थङ्करादिकमेव परुषं=रूक्षं निन्दावचनं वदन्ति। अत्र–एव शब्देनेदमुक्तं भवति–एवं तीर्थङ्करादिः सर्वप्राणिसुखावहं दुरन्तसंसारदुःखविध्वंसकं शाश्वतिकशिवपदप्रापकं दयामयं धर्मं परमकरुणया कल्याणाय

भवन्तः " पुनः मोहके उदयसे तीन गौरवोंमें से किसी एक गौरवके आवेशसे मुक्ति मार्गमें प्रवृत्तिसे शून्य ही रहते हैं। भोगोंकी अभिलाषासे वे रातदिन जलते रहते हैं। जब इन्हें अभिलषित विषय नहीं मिलता है तो उस समय वे कषायरूपी अग्निसे संतप्त बन कर सातादिक गौरवोंमें लोलुपी बने रहते हैं। इनकी वैषयिक सुखोंमें मानसिक वृत्ति चलायमान होती रहती है। तीर्थङ्कर प्रभुसे प्ररूपित समाधिभाव–उपशमभावसे रहित ही बने रहते हैं। समझाने पर उल्टे ये समझानेवालेको ही कठोर वचन बोलकर उनकी भर्त्सना करते हैं–रूक्ष निंदात्मक वचन बोलते हैं। सूत्रमें "शास्तारमेव" जो यहां 'एव' पदका प्रयोग हुआ है उससे यह बात मालूम होती है कि–जो तीर्थङ्कर भगवान सर्वप्राणिओंको सुखकारक, इस दुरंत संसारके दुःखोंका विनाशक शाश्वतिक शिवपदकी प्राप्तिका हेतु और दयामय ऐसे धर्मकी परम करुणासे जीवोंके कल्याणके निमित्त प्ररूपणा करते हैं, ऐसे तीर्थङ्करोंकी

સાધુ તો બની જાય છે, છતાં પણ તે "न सम्यग् भवन्तः" પુનઃ મોહના ઉદયથી ત્રણ ગૌરવમાંના એક ગૌરવના આવેશથી મુક્તિમાર્ગની પ્રવૃત્તિથી દૂર બની જાય છે. ભોગોની અભિલાષાથી તે રાતદિવસ બળતો રહે છે. જ્યારે તેને ઇચ્છિત વિષય નથી મળતો ત્યારે તે કષાયરૂપી અગ્નિથી સંતપ્ત બની સાતાદિક ગૌરવોમાં લોલુપી બની રહે છે. તેની વૈષયિક સુખોમાં માનસિક વૃત્તિ ચલાયમાન થતી રહે છે. તીર્થંકર પ્રભુએ પ્રરૂપિત ઉપશમભાવથી રહિત બની જાય છે. સમજાવવાથી તે ઉલ્ટો સમજાવનાર તરફ જ કઠોર વચનો બોલી એની માનહાનિ કરે છે–નિંદાત્મક વચનો બોલે છે. સૂત્રમાં "शास्तारमेव" અહિં જે 'एव' પદનો પ્રયોગ છે, એનાથી એ વાત માલુમ પડે છે કે તીર્થંકર ભગવાન સર્વ પ્રાણીયોને સુખકારક, આ દુરન્ત સંસારના દુઃખોના વિનાશક, શાશ્વતિક શિવપદની પ્રાપ્તિના હેતુ અને દયામય એવા ધર્મની પરમ કરૂણાથી જીવોના કલ્યાણ નિમિત્ત પ્રરૂપણા કરે છે. એમની આજ્ઞાનું પાલન કરવું તો દૂર રહ્યું, પણ એમનો

समुपदिशति, तदाज्ञापरिपालनं तु दूरतोऽपास्तं; प्रत्युत परुषवचनेन तमेवाक्षिपन्ति, तद्यथा–भगवान् प्रमादी षड्लेश्याधारी गोशालकरक्षणेन स्खलितः इत्यादि। तदेत्सर्वं तेषां प्रबलमिथ्यात्वोदयविलासमात्रमिति नवमाध्ययनचतुर्थोद्देशवृत्तौ स्पष्टीभविष्यति ॥सू० ३ ॥

ते स्वयं भ्रष्टाः कुशीला न केवलं शास्तारं परुषं वदन्ति, अपरानपि साधून् परुषं वदन्तीत्याह–'सीलमंता' इत्यादि ।

आज्ञाका पालन करना तो दूर रहा, परंतु वे कुशील उनका ही परुष (कठिन) वचनोंसे तिरस्कार करते हैं, कहते हैं कि "भगवान तो प्रमादी थे, षड्लेश्याओंको धारण करते थे, गोशालाके रक्षण करनेसे वे चूक गये थे"। इस प्रकार उनका कहना प्रबल मिथ्यात्वके उदयका एक विलासमात्र है; यह बात हम नौमे अध्ययनके चतुर्थ उद्देशमें स्पष्ट करेंगे ।

वे वेषधारी साधुका बाना इसलिये पहिर लिया करते हैं कि इस बानेसे हमें खाने पीनेको निश्चिन्ततासे मिल जाया करेगा; नहीं तो कौन पूछे! विषयकषायोंके ये पिण्ड होते हैं। थोड़ी २ सी बातोंमें लड़ने-झगड़नेको तैयार हो जाते हैं। इन्हें साधुमर्यादा क्या है ? इस तकका भी भान नहीं होता! मौजसे खाना और तीन गौरवोंके वश रहना एक यही इनका लक्ष्य रहता है ॥ सू०३॥

स्वयंभ्रष्ट वे कुशील सिर्फ अपने शास्ताके प्रति ही कठोर वचनों का प्रयोग करते हैं, सो बात नहीं; किन्तु अन्य साधुओंसे भी यद्वा-तद्वा

જ કઠણ વચનોથી તિરસ્કાર કરે છે કે "ભગવાન તો પ્રમાદી હતા, ષડ્લેશ્યાધારી હતા, ગૌશાળાનું રક્ષણ કરવાથી તેઓ ચૂકી ગયા હતા." આ પ્રકારે તેનું કહેવું પ્રબળ મિથ્યાત્વના ઉદયનો એક વિલાસ માત્ર છે. આ વાત નવમા અધ્યયનના ચોથા ઉદ્દેશમાં સ્પષ્ટ કરવામાં આવશે.

તે વેષધારી સાધુનો વેષ એ માટે પહેરી રાખે છે કે એ વેષથી ખાવા પીવાનું તો વગર ચિન્તાએ મળતું રહે છે. નહિ તો કોણ ભાવ પૂછે. વિષય-કષાયોના પિંડરૂપ તે જરા જરા વાતમાં લડવા-ઝગડવા તૈયાર થઈ જાય છે. સાધુમર્યાદા શું છે? એનું તેને ભાન નથી હોતું. મોજથી ખાવું અને ત્રણ ગૌરવના વશ રહેવું આ જ તેનું લક્ષ હોય છે. (સૂ૦ ૩)

જાતે ભ્રષ્ટ બનેલ તે કુશીલ ફક્ત પોતાના આચાર્ય ગુરૂ આદિ પ્રત્યે જ કઠોર વચનોનો પ્રયોગ કરે છે એ વાત નથી; પરંતુ બીજા સાધુઓથી પણ એ આવોજ વ્યવહાર કરે છે. આ વાતને પ્રગટ કરતાં સૂત્રકાર કહે છે "સીલમંતા" ઇત્યાદિ.

मूलम्–सीलमंता उवसंता संखाए रीयमाणा 'असीला' अणुवयमाणस्स बितिया मंदस्स बालया ॥ सू०४ ॥

छाया––शीलवन्त उपशान्ताः संख्यया रीयमाणाः 'अशीलाः' अनुवदतः द्वितीया मन्दस्य बालता ॥ सू० ४ ॥

टीका––ये साधवः शीलवन्तः=अष्टादशशीलाङ्गसहस्रधराः, यद्वा महाव्रत-पञ्चेन्द्रियकषायनिग्रह–गुप्तित्रय–धारिणः, अतएव उपशान्ताः=क्षान्त्यादिगुणयुक्ताः, 'शीलवन्तः' इत्यनेनैव कषायोपशमार्थस्य गतार्थत्वात्पुनः 'उपशान्ताः' इति विशेषणं कषायनिग्रहस्य प्राधान्यं बोधयितुमुक्तम्। तथा–सङ्ख्यया=हेयोपादेयप्रज्ञया

व्यवहार करते हैं। इसी बातको प्रकट करनेके लिये सूत्रकार कहते हैं "सीलमंता" इत्यादि।

जो साधु अठारह हजार (१८०००) शीलोंके भेदोंको धारण करनेवाले हैं, अथवा पंच महाव्रतोंके पालक पंचेन्द्रियों एवं कषायोंका निग्रह करनेवाले और गुप्तित्रयके धारक हैं, तथा इसीसे जो क्षमा आदि सद्गुणोंसे विभूषित हैं, हेय और उपादेयके विवेकपूर्वक संयममार्गमें जो लवलीन हैं। उन्हें भी ये कुशील "ये अशील हैं–ये चारित्रसे रहित हैं" ऐसा कहते हैं। यह इन अवसन्न–पासत्थादिरूप कुशीलोंकी दूसरी अज्ञानता है। प्रथम तो उनकी यही बड़ी भारी अज्ञानता है--जो ये स्वयं चारित्रसे भ्रष्ट हुए हैं और दूसरी अज्ञानता यह है कि जो ये चारित्रशालियोंको भी अचारित्री–भ्रष्ट कहते हैं। सूत्रमें "शीलवन्तः" इस पदसे ही कषायोंके उपशमनरूप अर्थकी प्रतीति हो जाती है; फिर भी "उपशान्ताः" ऐसा जो पद देकर उनका स्वतन्त्ररूपसे अभाव प्रदर्शित किया है, उसका मतलब केवल कषायोंके निग्रहकी प्रधानता प्रकट करना ही समझना चाहिये।

જે સાધુ અઢારહજાર (૧૮૦૦૦) શીલોના ભેદોને ધારણ કરવાવાળા છે, અથવા પાંચ મહાવ્રતોના પાલક પંચેન્દ્રિયો અને કષાયોનો નિગ્રહ કરવાવાળા અને ગુપ્તિત્રયના ધારક છે. અને એથી જે ક્ષમા આદિ સદ્ગુણોથી વિભૂષિત છે, હેય અને ઉપાદેયના વિવેકપૂર્વક સંયમ માર્ગમાં જે લવલીન છે, એમને પણ તે કુશીલ "આ અશીલ છે–આ ચારિત્રથી રહિત છે" એમ કહે છે, આ તે અવસન્નપાસત્થાદિ રૂપ કુશીલોની બીજી અજ્ઞાનતા છે. પહેલી તો તેની આ મોટી અજ્ઞાનતા છે કે તે સ્વયં ચારિત્રથી ભ્રષ્ટ થઈ ગયા છે, અને બીજી અજ્ઞાનતા આ છે કે જે ચારિત્રશાળીઓને પણ અચારિત્રી ભ્રષ્ટ કહે છે. સૂત્રમાં "शीलवन्तः" આ પદથી જ કષાયોના ઉપશમનરૂપ અર્થની પ્રતીતિ થઇ જાય છે. છતાં પણ "उपशान्ताः"

रीयमाणाः=संयममार्गे प्रवर्तमानाः सन्ति तान् 'अशीलाः=चारित्रवर्जिता एते' इति अनुवदतः प्रतिवदतः मन्दस्य=अवसन्नपार्श्वस्थादेरेषा द्वितीया बालतास्ति। अत्र ज्ञानगर्वान्धत्वात् स्वयं चारित्रभ्रष्टा अभूवन्निति प्रथमा, द्वितीया तु अन्यसाधून् प्रति 'भ्रष्टाः' इति कथनरूपेति भावः ॥सू०४॥

केचिद् ऋजुमतयः स्वयमशक्ता अपि साध्वाचारं प्रशंसन्तीत्याह– 'नियट्टमाणा' इत्यादि।

मूलम्–नियट्टमाणा वेगे आयारगोयरमाइक्खंति ॥सू०५॥

छाया––निवर्तमाना वैके आचारगोचरमाख्यान्ति ॥ सू० ५ ॥

टीका––वा=अथवा एके=केचित् निवर्तमानाः=स्वयं संयमाराधनां सम्यक्तया कर्तुमसमर्थतया ततो निवृत्ता अपि आचारगोचरं=मूलोत्तरगुणं अख्यान्ति=शुद्धतया वर्णयन्ति, तेषां द्वितीया बालता नास्तीति भावः ॥ सू० ५ ॥

जो शीलसंपन्न हैं–उपशान्त हैं, हेय और उपादेयके विवेकपूर्वक संयममार्गमें लगे हुए हैं उन्हें ये कुशील अचारित्री कह कर अपनी अज्ञानता प्रदर्शित करते हैं ॥सू०४॥

कोई २ कुशील (शिथिलाचारी) ऋजुमतियुक्त होते हैं। ये चारित्रके भारको वहन करनेके लिये असमर्थ होते हुए भी साधुके आचारकी प्रशंसा करते हैं। इसी बातको प्रकट करनेके लिये सूत्रकार कहते हैं "नियट्टमाणा" इत्यादि—

अथवा कोई २ कुशील (शिथिलाचारी) स्वयं संयमकी समीचीन आराधना करनेमें असमर्थ होनेसे उससे दूर रहते हैं, तो भी मूलगुण और उत्तरगुणोंकी शुद्धतासे प्रशंसा करते हैं। इनके द्वितीया बालता (अज्ञानता) नहीं होती।

એવું જે પદ છે તે સ્વતંત્રરૂપથી કષાયોના અભાવ પ્રદર્શિત કરે છે. આનો અર્થ કેવળ કષાયોના નિગ્રહની પ્રધાનતા પ્રગટ કરવા માટેજ કહેવાયાનું સમજવું જોઈએ.

જે શીલસંપન્ન છે–ઉપશાન્ત છે, હેય અને ઉપાદેયના વિવેકપૂર્વક સંયમ માર્ગમાં લાગેલા છે એમને તે કુશીલ ચારિત્ર વગરના કહી પોતાની અજ્ઞાનતાનું પ્રદર્શન કરે છે. (સૂ૦૪)

કોઈ કોઈ કુશીલ (શિથિલાચારી) હલકી મતિથી ભરેલા હોય છે. ચારિત્રના ભારને એ વહન કરી શકતા નથી; છતાં પણ સાધુના આચારની પ્રશંસા કરે છે. આ વાતને પ્રગટ કરતાં સૂત્રકાર કહે છે "नियट्टमाणा" ઈત્યાદિ.

અથવા કોઈ કોઈ કુશીલ (શિથિલાચારી) સ્વયં સંયમના આરાધના કરવામાં અસમર્થ હોવાથી એનાથી દૂર રહે છે તો પણ મૂળગુણ અને ઉત્તરગુણોની

सदसद्विवेकभ्रष्टाः किं कुर्वन्ती ? त्याकाङ्क्षायामाह-'नाणब्भट्ठा' इत्यादि।

मूलम्—नाणब्भट्टा दंसणलूसिणो नममाणा वेगे जीवियं विप्परिणामंति ॥ सू० ६ ॥

छाया—ज्ञानभ्रष्टा दर्शनलूषिणो नमन्त एके जीवितं विपरिणामयन्ति ॥सू०६॥

टीका—एके=केचन दर्शनलूषिणः=सम्यक्त्वपतिताः, अतएव ज्ञानभ्रष्टाः=हेयोपादेयबुद्धिविच्युताः, नमन्तो वा=आचार्यादीन् द्रव्यतः प्रणमन्तोऽपि जीवितं=स्वात्मानं विपरिणामयन्ति=परिवर्त्तयन्ति—सम्यक्चारित्राद् विध्वंसयन्तीत्यर्थः; सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रलक्षणान्मोक्षमार्गाद् भ्रश्यन्तीति भावः ॥ सू० ६ ॥

भावार्थ—शुद्ध संयमकी आराधना नहीं हो सकनेके कारण कोई २ कुशील उस संयमकी पालनासे यद्यपि दूर रहते हैं, फिर भी उस संयमको शुद्ध रीतिसे पालनेवालोंकी वे निंदा नहीं करते—उन्हें 'ये भ्रष्ट हैं, ऐसा नहीं समझते; अतः ये प्रथम बालतासे युक्त होते हुए भी दूसरी बालतासे रहित माने जाते हैं ॥ सू०५ ॥

जो सत् और असतके विवेकसे भ्रष्ट हैं, वे क्या करते हैं? इस प्रकार की आकांक्षा होने पर सूत्रकार कहते हैं-" नाणब्भट्ठा " इत्यादि—

कोई २ बकुश सम्यक्त्वसे पतित होनेकी वजहसे, हेय और उपादेयवाली बुद्धिसे रहित होते हुए, आचार्यादिकोंके लिये द्रव्यरूप नमस्कार से नमन करते हैं तो भी अपनी आत्माको सम्यक्त्व चारित्रसे पतित ही बनाये रहते हैं। ऐसे जीव सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप मोक्षमार्गसे सदा भ्रष्ट हैं, ऐसा समझना चाहिये ॥सू०६॥

શુદ્ધતાથી પ્રશંસા કરે છે. એને બીજી બાળતા (અજ્ઞાનતા) નથી હોતી.

ભાવાર્થઃ—શુદ્ધ સંયમની આરાધના ન કરી શકવાને કારણે કોઈ કોઈ કુશીલ તે સંયમની પાલનાથી જો કે દૂર રહે છે તો પણ સંયમને શુદ્ધ રીતિથી પાળવાવાળાની નિંદા તે નથી કરતો-એમને એ ભ્રષ્ટ છે એમ નથી સમજતો. આથી એ પ્રથમ બાલતાથી યુક્ત હોવા છતાં પણ બીજી બાલતાથી રહિત માનવામાં આવે છે. (સૂ૦ ૫)

જે સત્ અને અને અસત્ના વિવેકથી ભ્રષ્ટ છે તે શું કરે છે, આ પ્રકારની આકાંક્ષા હોવાથી કહે છે नाणभट्ठा ઈત્યાદિ.

કોઈ કોઈ બકુશ સમ્યક્ત્વથી પતિત થવાના કારણે હેય અને ઉપાદેયવાળી બુદ્ધિરહિત બની આચાર્યાદિકોને દ્રવ્યરૂપ નમસ્કારથી નમન કરે છે, તો પણ તે પોતાના આત્માને સમ્યક્ત્વચારિત્રથી પતિત જ બનાવી રાખે છે, એવા જીવ સમ્યગ્દર્શન, સમ્યગ્જ્ઞાન અને સમ્યક્ચારિત્રરૂપ મોક્ષ માર્ગથી સદા ભ્રષ્ટ છે એવું સમજવું જોઈએ. (સૂ૦૬)

किञ्च—' पुट्ठा ' इत्यादि ।

मूलम्—पुट्ठा वेगे नियट्टंति जीवियस्सेव कारणा, णिक्खंतंपि तेसिं दुन्निक्खंतं भवइ ॥ सू०७ ॥

छाया—स्पृष्टा वैके निवर्त्तन्ते जीवितस्यैव कारणात्, निष्क्रान्तमपि तेषां दुर्निष्क्रान्तं भवति ॥ सू०७ ॥

टीका—एके=केचन स्पृष्टाः=परीषहोपसर्गैरुपद्रुताः सन्तः जीवितस्यैव कारणात्=क्षणभङ्गुरजीवनस्य सुखार्थं निवर्त्तन्ते=संयमात्पृथग् भवन्ति । तेषां=चारित्रच्युतानां निष्क्रान्तमपि=निष्क्रमणमपि दुर्निष्क्रान्तं भवति=मूलोत्तरगुणविघातेन निरर्थकं भवति । चारित्रपरिभ्रष्टानां गृहान्निष्क्रमणं न श्लाघनीयं भवति; प्रत्युत गर्हणीयमेवेति भावः ॥ सू० ७ ॥

तथा—“पुट्ठा” इत्यादि ।

कोई २ बकुश परीषह और उपसर्गों से बाधित बन कर अपने प्यारे जीवनके विनाशके भयके कारणसे गृहीत संयममार्गमें भ्रष्ट हो जाते हैं । अर्थात् ये जहां भी जीवनके कष्टकारी विपत्तिरूप विभीषिका से उपद्रवित होते हैं शीघ्र ही वहां ‘ इस क्षणभंगुर जीवनको सुख मिले’ इस चाहनासे संयममार्गसे हट जाते हैं । ऐसे चारित्रसे पतित हुए भयशीलोंकी पूर्वकालगृहीत प्रव्रज्या–दीक्षा मूल और उत्तरगुणोंके विघातसे निरर्थक हो जाती है । ठीक बात है–जो चारित्रसे भ्रष्ट हो चुके हैं, उनका गृहसे निकलना–गृहका परित्याग करना प्रशंसनीय नहीं होता है; उल्टा निंदनीय ही माना जाता है ।

भावार्थ—कोई २ बकुश क्षणभंगुर जीवनको सुखी करनेके अभि-

તથા—“ પુટ્ઠા ” ઇત્યાદિ !

કોઇ કોઈ બકુશ પરિષહ અને ઉપસર્ગોથી ગભરાઇ પોતાના પ્યારા જીવનના વિનાશના ભયના કારણથી ગ્રહણ કરેલા સંયમ માર્ગથી ભ્રષ્ટ થઈ જાય છે. અર્થાત્ એ જ્યાં પણ જીવનને કષ્ટકારી કોઇ પણ આપત્તિ-વિપત્તિરૂપ કારણથી ઉપદ્રવિત બને છે. તરત જ ત્યાંથી આ ક્ષણભંગુર જીવનનું સુખ મળે એવી ચાહનાથી તે સંયમ માર્ગથી દૂર થાય છે. એવા ચારિત્રથી પતિત બનેલા ભયશીલની પૂર્વ કાળમાં ગ્રહણ કરેલી દીક્ષા મૂળ અને ઉત્તર ગુણોના વિઘાતથી નિરર્થક બની જાય છે. ઠીક વાત છે. જે ચારિત્રથી ભ્રષ્ટ બનેલા છે એમનું ઘરમાંથી નિકળવું પ્રશંસનીય બનતું નથી; ઉલ્ટું નિંદનીય માનવામાં આવે છે.

ભાવાર્થ:—કોઇ કોઈ બકુશ ક્ષણભંગુર જીવનને સુખી કરવાના અભિપ્રા-

किञ्च—'बालवयणिज्जा' इत्यादि।

मूलम्—बालवयणिज्जा हु ते नरा, पुणो पुणो जाइं पकप्पंति, अहे संभवंता विद्दायमाणा "अहमंसीति" विउक्कसे, उदासीणे फरुसं वयंति, पलियं पकरथे, अदुवा पकरथे अतहेहिं, तं वा मेहावी जाणिज्जा धम्मं ॥ सू० ८॥

छाया—-बालवचनीया हु ते नराः, पुनः पुनर्जातिं प्रकल्पयन्ति, अधः संभवन्तः विद्वायमानाः 'अहमस्मीति' व्युत्कर्षयेयुः, उदासीनान् परुषं वदन्ति, पलितं प्रकथयेत्, अथवा प्रकथयेत् अतथ्यैः, तन्मेधावी जानीयाद् धर्मम् ॥८॥

टीका—यतः जीवितसुखार्थं चारित्रविच्युता अतस्ते नरा बालवचनीयाः—बालानाम्=आपामरजनानां वचनीयाः=निन्दनीया भवन्ति, किंच ते पुनः पुनर्जातिम् =एकेन्द्रियादिषूत्पत्तिं प्रकल्पयन्ति=प्रकुर्वन्ति। चारित्रपरिवर्जनेनानन्तानन्तवारं चतुर्गतिकसंसारे जन्ममरणान्यनुवर्त्तमाना अरहट्टघटीयन्त्रन्यायेन परिवर्त्तन्त इति भावः।

किञ्च—अधः संभवन्तः=संयमस्थानात्पतन्तः विद्वायमानाः=पण्डितम्मन्याः

प्रायसे ही परीषहादिकोंके आने पर संयममार्गको छोड़ देते हैं। ऐसे जीवोंकी पूर्वकालिक प्रव्रज्या भी निरर्थक हो जाती है ॥ सू०७॥

तथा—"बालवयणिज्जा" इत्यादि—

क्यों कि ये बकुश जीवनको सुखी करनेके अभिप्रायसे चारित्रसे भ्रष्ट बनते हैं, इसीलिये पामर जैसे प्राणियों तकसे भी निंदनीय होते हैं। ऐसे जीव बार २ एकेन्द्रियादिक पर्यायों में अपनी उत्पत्ति करते रहते हैं—अर्थात् गृहीत चारित्रके त्यागसे अनन्तानन्त बार चतुर्गतिस्वरूप संसारमें जन्म और मरणके चक्करमें पड कर अरहट्ट—घटीयंत्रकी तरह भ्रमण किया करते हैं।

ये संयमस्थानसे नीचे गिरते हैं, फिर भी अपनेको पण्डित मानते

यथी જ પરિષહ આદિ આવતાં સંયમમાર્ગને છોડી દે છે. એવા જીવોની પૂર્વકાલિક પ્રવ્રજ્યા પણ નિરર્થક બની જાય છે. (સૂ૦૭)

તથા—"बालवयणिज्जा" ઈત્યાદિ !

કેમ કે એ બકુશ જીવનને સુખી કરવાના અભિપ્રાયથી ચારિત્રથી ભ્રષ્ટ બને છે. આ માટે પામર જેવા પ્રાણીઓથી પણ નિંદનીય બને છે. એવા જીવ વારંવાર એકેન્દ્રિયાદિક પર્યાયોમાં પોતાની ઉત્પત્તિ કરતા રહે છે, અર્થાત્ ગૃહીત ચારિત્રના ત્યાગથી અનન્તાનન્તવાર ચતુર્ગતિસ્વરૂપ સંસારમાં જન્મ અને મરણના ચક્કરમાં પડી અરહટઘટીયંત્રની માફક ભ્રમણ કિયા કરે છે.

તે સંયમ સ્થાનથી નીચે પડે છે, છતાં પણ પોતાની જાતને પંડિત માને

'अहमस्मीति 'अहमेव बहुश्रुतोऽस्मीति प्रत्येकं प्रलपन्तस्ते व्युत्कर्षयेयुः=स्वं स्वमात्मानं प्रशंसन्ति, यथा–यदाचार्यो जानाति तन्मया प्रागेव ज्ञातमित्यादि। किञ्च–उदासीनान्=उपशान्तकषायान् स्खलितहितकथनप्रवृत्तानऽन्यानपि परुषं वदन्ति=आक्षिपन्ति। तदेव दर्शयति–पलितमित्यादि, पलितं=प्राक्तनं दीक्षाग्रहणात्प्राक्कालिकचरितं काष्ठभारवहनादिकं प्रकथयेयुः=प्रवदन्ति–'पूर्वं तृणकाष्ठभारवाहनादिभिर्घृष्टशिरसि तव नैकोऽपि केशो दृष्टिगोचरीभवति, एवंभूतस्त्वं किमिदानीमुपदेष्टुं प्रवृत्तोऽसि' इत्यादि। अथवा अतथ्यैः=असद्भिर्दोषैः प्रकथयेयुः=परुषं

हैं। "मैं ही बहुश्रुत हूं"–इस प्रकार ये हरएकसे अपनी आश्लाघा किया करते हैं। इसमें ये कभी २ यह भी कह दिया करते हैं कि जो आचार्य जानते हैं वह तो मैं पहिलेसे ही जानता था–आदि। तथा–जिन की कषायें उपशांत हो चुकी हैं, आत्महितसे भ्रष्ट बने हुए मनुष्योंको जो आत्महितके उपदेश करनेमें प्रवृत्त हैं ऐसे अन्य साधुजनोंका भी ये तिरस्कार करते हैं–उनके प्रति भी ये कठोर वचनोंका प्रयोग करते हैं। इसी बातको सूत्रकार "पलितं प्रकथयेत्" इत्यादि सूत्रांशसे प्रकट करते हैं। दीक्षा ग्रहण करनेके पहिलेके समयके आचरणका नाम पलित है। यदि कोई बकुश निर्मल संयम मार्गके आराधक साधुजनसे ऐसा कहे कि हम तुम्हें जानते हैं, तुम वे ही हो जो पहिले काष्ठका भार माथे पर ढोया करते थे। देखो; यही कारण है कि पहिले तृणकाष्ठके भारों को ढोते ढोते तुम्हारे माथे–शिरपर एक बाल भी नजर नहीं आ रहा है, तुम ऐसे हो; अब इस समय क्या हमें उपदेश देनेके लिये प्रवृत्त हो?–इस प्रकारके कथनका नाम पलित कथन है। अथवा जो दोष उसमें न हों

છે. "હું જ બહુશ્રુત છું" આ પ્રકારથી તે દરેકની સામે પોતાની બડાઇ હાંકયે રાખે છે. આમાં તે કોઈ વખતે એવું પણ કહે છે કે આચાર્ય જે જાણે છે આ તો હું પહેલેથી જ જાણું છું. વિ.

તથા—જેની કષાય ઉપશાન્ત થઇ ચૂકી છે, આત્મહિતથી ભ્રષ્ટ બનેલા માણસોને જે આત્મહિતનો ઉપદેશ આપવામાં પ્રવૃત્ત છે એવા અન્ય સાધુજનોનો પણ તે તિરસ્કાર કરે છે. એના તરફ કઠોર વચનોનો પ્રયોગ કરે છે. આ વાતને સૂત્રકાર "पलितं प्रकथयेत्" ઈત્યાદિ સૂત્રાંશથી પ્રગટ કરે છે. દીક્ષા લીધા પહેલાંના સમયના આચરણનું નામ પલિત છે, કદી કોઈ બકુશ નિર્મલ સંયમ માર્ગના આરાધક સાધુજનને એમ કહે કે હું તમને જાણું છું તમે તો એ છોને કે પહેલાં લાકડાના ભારા માથે ઉપાડતા હતા. જુઓ; આ કારણે તમારા માથામાં એક પણ વાળ નજરે પડતો નથી, તમે તો એવા છો,

प्रवदन्ति, यथा-'त्वं हिंसको मृषावादी स्वयं पतितोऽसि, किमन्यमुपदिशसी'-इत्यादि। सूत्रे 'विउक्कसे' 'पसत्थे' इत्यत्र आर्षत्वादेकवचनम्। उपसंहरन्नाह-'तं मेहावी' इत्यादि, तत्=तस्मात् कारणात् मेधावी=साधुमर्यादाव्यवस्थितो मुनिः धर्मं=श्रुतचारित्रलक्षणं जानीयात्=सम्यग् भावयेत्, न तु धर्मात्प्रचलितो भवेत्॥सू०८॥

ऐसे अविद्यमान दोषोंसे उसे तर्जित-तिरस्कृत करना; जैसें-तुम हिंसक हो, मृषावादी हो, स्वयं पतित हो, दूसरोंके लिये क्या उपदेश देते हो? इत्यादि। उपसंहार करते हुए सूत्रकार कहते है-"तं मेहावी" इत्यादि। इसलिये साधुमर्यादामें व्यवस्थित मेधावी मुनि श्रुतचारित्ररूप धर्मकी अच्छी तरहसे भावना भाता रहे-उसे सम्हालता रहे, धर्मसे कभी भी प्रच्युत न होवे।

भावार्थ--जो बकुश क्षणिक इस जीवनको सुखित बनानेकी इच्छा से चारित्ररूप धर्मसे च्युत हो जाते हैं, जगतके छोटे से भी छोटे प्राणी उनकी निंदा और हंसी करते हैं। चारित्रभ्रष्ट जीवोंका अनन्तानन्त काल एकेन्द्रियादिक जीवोंकी पर्यायमें ही व्यतीत होता है। चारित्र-भ्रष्ट हो कर भी जो अपने को अच्छा समझते हैं-अपने भीतर बहु-श्रुत होनेका जो अभिमान करते हैं-अन्य निर्मल चारित्र आराधक साधुओंके प्रति जो कठोर शब्दोंका प्रयोग करते हैं-उनका तिरस्कार करते हैं-पहिलेके उनके आचरणोंको ले कर जो उन्हें नीचा दिखानेका

ત્યારે આજે અમને ઉપદેશ આપવા આવ્યા છે. આ પ્રકારના કથનનું નામ પલિત છે. અથવા જે દોષ એનામાં ન હોય એવા પગ-માથા વિનાના દોષો લગાડી તિરસ્કૃત કરવા; જેમ કે-તમે હિંસક છો, ખોટું બોલનારા છો, સ્વયં પતિત છો ફરી બીજાને શું ઉપદેશ આપો છો વગેરે. ઉપસંહાર કરતાં સૂત્રકાર કહે છે કે-"તં મેહાવી" ઈત્યાદિ! આ માટે સાધુ-મર્યાદામાં વ્યવસ્થિત મેધાવી મુનિ શ્રુતચારિત્ર-રૂપ ધર્મની ભાવના ભાવતા રહે, એને સાંભળતા રહે. ધર્મથી કદિ પણ પાછા ન હઠે.

ભાવાર્થ—જે બકુશ ક્ષણિક આ જીવનને સુખી બનાવવાની ઇચ્છાથી ચારિત્રરૂપ ધર્મથી પાછા હઠે છે આવા સાધુની જગતમાં નાના મોટા એની નિંદા અને હાંસી કરે છે. ચારિત્રભ્રષ્ટ જીવોનો અનન્તાનંત કાળ સુધી એકેન્દ્રિ-યાદિક જીવોની પર્યાયમાં સમય વ્યતીત થાય છે. ચારિત્રભ્રષ્ટ બનીને પણ જે પોતાને સારા સમજે છે, પોતાની અંદર બહુશ્રુત હોવાનું અભિમાન કરે છે. બીજા નિર્મળ ચારિત્ર આરાધક સાધુ તરફ જે કઠોર શબ્દોનો પ્રયોગ કરે છે-તેનો તિરસ્કાર કરે છે, પહેલાના તેના આચરણોનો દાખલો આપી તેને નીચા

चारित्रविच्युतं बालमाचार्यादिरेवं शिक्षयेदित्याह–' अहम्मट्ठी ' इत्यादि ।

मूलम्–अहम्मट्ठी तुमंसि णाम बाले, आरंभट्ठी अणुवयमाणे 'हण पाणे' घायमाणे, हणओ यावि समणुजाणमाणे, 'घोरे धम्मे उदीरिए' उवेहइ णं अणाणाए एस विसण्णे वितद्दे वियाहिए–त्तिबेमि ॥ सू० ९ ॥

छाया–अधर्मार्थी त्वमसि नाम बालः, आरम्भार्थी अनुवदन् 'प्राणान्–जहि' घातयन्, घ्नतश्चापि समनुजानानः, घोरः धर्मः उदीरितः, उपेक्षसे तम् अनाज्ञायाम् एष विषण्णः वितर्दः व्याख्यातः–इति ब्रवीमि ॥ सू० ९ ॥

टीका—हे शिष्य ! यतस्त्वम् आरम्भार्थी=षड्जीवनिकायोपमर्दनप्रवृत्तः 'प्राणान्=प्राणिनः जहि=मारय' इति अनुवदन्=पुनः पुनर्ब्रुवन्, तथा अपरैः घातयन्, घ्नतश्चापि समनुजानानः=अनुमोदयन् असि, तस्मात्त्वं बालो नाम=अज्ञतया

प्रयत्न करते हैं, अविद्यमान दोषोंसे जो उन्हें दूषित प्रकट करते हैं ऐसे जीव साधुमर्यादासे बाह्य हैं । इनमें प्रथम नंबरकी बालताके साथ २ द्वितीय नंबरकी बालता रही होती है । इसलिये मुमुक्षु साधुका कर्तव्य है कि वह कभी भी किसी अन्य साधुके प्रति परुष (कठिन) शब्दोंका प्रयोग न करे, तभी जाकर श्रुतचारित्ररूप धर्मका वह संरक्षण और पालन कर सकता है ॥ सू० ८ ॥

चारित्रसे भ्रष्ट हुए बालजीवोंको आचार्य किस प्रकारसे संबोधे ? इस बातको प्रकट करनेके लिये सूत्रकार कहते हैं–" अहम्मट्ठी " इत्यादि ।

बाल शिष्यको संबोधन करते हुए आचार्य कह रहे हैं कि हे शिष्यो ! तुम षड्जीवनिकायों के उपमर्दनरूप आरम्भमें प्रवृत्त हो; क्यों कि तुम " प्राणियोंको मारो " इस प्रकार बार २ कहते हो, और दूसरों

દેખાડવાનો પ્રયત્ન કરે છે. પગ–માથા વિનાના દોષોથી જે તેને દોષિત પ્રગટ કરે છે, એવા જીવ સાધુ મર્યાદાથી બાહ્ય છે. તેમાં પહેલા નંબરની બાલતાની સાથે સાથે બીજા નંબરની બાલતા (અજ્ઞાનતા) રહી હોય છે. માટે મુમુક્ષુ સાધુનું કર્તવ્ય છે કે કોઇ પણ વખતે બીજા સાધુ પ્રત્યે કઠણ શબ્દનો પ્રયોગ ન કરે, તો જ તે શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મનું સંરક્ષણ અને પાલન કરી શકે છે.(સૂ૦૮)

ચારિત્રથી ભ્રષ્ટ બનેલા બાલજીવોને આચાર્ય કયા પ્રકારે સંબોધે ? આ વાતને પ્રગટ કરવા માટે સૂત્રકાર કહે છે. " अहम्मट्ठी " ઈત્યાદિ.

બાળશિષ્યને સંબોધન કરીને આચાર્ય કહે છે કે, હે શિષ્યો ! તમે ષડ્જીવનિકાયોના ઉપમર્દનરૂપ આરંભમાં પ્રવૃત્ત છો, કેમ કે તમે—" પ્રાણીઓને મારો " આ પ્રકારે વારંવાર કહો છો અને બીજાઓથી તેનો ઘાત કરાવો છો

प्रसिद्धोऽसि, तथा अधर्मार्थी=अधर्माभिलाषी असि। किञ्च-घोरः=दुःखमयः कर्त्तुमशक्यः, धर्मः=साधूनामाचारः उदीरितः=तीर्थङ्करैः कथितः इत्यवधार्य अनाज्ञायां=तीर्थङ्कराज्ञाबहिर्वर्त्ती सन् तं=तीर्थङ्करोक्तं धर्मम् उपेक्षसे=परित्यजसीत्यर्थः। आर्षत्वात्सूत्रे प्रथमपुरुषनिर्देशः। एषः=एवंविधस्त्वादृशो जनः विषण्णः=कामभोगमूर्च्छितः, अतएव वितर्दः=षड्जीवनिकायोपमर्दनपरायणः व्याख्यातः=तीर्थङ्करैः कथितः। तस्मात् इति ब्रवीमि='त्वं मेधावी भूत्वा धर्मं जानीयाः' इति पूर्वोक्तं, तथा वक्ष्यमाणं च कथयामि ॥ सू० ९ ॥

से उन्हें मरवाते हो, तथा उन्हें मारनेवालोंकी तुम अनुमोदना करते हो। इसलिये तुम बाल हो-अज्ञरूपसे प्रसिद्ध हो। इस प्रकारकी प्रवृत्तिसे ही यह स्पष्ट मालूम होता है कि तुम अधर्माभिलाषी बने हुए हो। तीर्थङ्करों ने साधुओंका आचार बहुत कठिनतर बतलाया है-हरएक प्राणी उसे सहसा नहीं पाल सकता है - ऐसा निश्चय कर तुम उनकी आज्ञा के बहिर्वर्ती मत बनो। यदि ऐसा करते हो तो निश्चय है कि तुम उनके धर्मकी अवलेहना करते हो-उपेक्षा करते हो। तीर्थङ्करोंका यही आदेश है कि जो तुम्हारे जैसे मनुष्य कामभोगोंमें मूर्च्छित बने हुए हैं वे षड्-जीवनिकाय के उपमर्दन करनेमें परायण माने गये हैं। इसलिये मैं कहता हूं कि तुम मेधावी बन कर धर्मको समझो। तथा और भी जो कुछ कहता हूं उसे सुनो। साधुको कृत, कारित और अनुमोदना एवं मन वचन और कायसे हिंसादिक पापोंका सर्वथा त्यागी होना चाहिये ऐसा तीर्थङ्कर प्रभुओंका मुख्य आदेश है यद्यपि-तुम स्वयं हिंसा नहीं

તથા તેને મારવાવાળાઓની અનુમોદના કરો છો, આ માટે તમે બાળ છો-અજ્ઞરૂપથી પ્રસિદ્ધ છો. આ પ્રકારની પ્રવૃત્તિથી એ સ્પષ્ટ માલૂમ થાય છે કે તમે અધર્મ-અભિલાષી બન્યા છો. તીર્થંકરોએ સાધુઓનો આચાર ઘણો જ કઠિન બતાવ્યો છે, દરેક પ્રાણી તેને સહસા પાળી શકતો નથી, તેવો નિશ્ચય કરી તમે એમની આજ્ઞાનું ઉલ્લંઘન કરનાર ન બનો. જો તમે એવું વર્તન રાખતા હો તો એ નિશ્ચય છે કે તમે તેના ધર્મની અવલેહના કરો છો-ઉપેક્ષા કરો છો. તીર્થંકરોનો એ આદેશ છે કે, જે તમારા જેવા મનુષ્ય કામભોગોમાં મૂર્ચ્છિત બનેલા છે તેઓ ષડ્જીવનિકાયનો ઉપમર્દન કરવામાં પરાયણ માનવામાં આવેલ છે. આ માટે હું કહું છું કે, તમે મેધાવી બની ધર્મને સમજો, અને બીજું પણ જે કહું છું તે સાંભળો. સાધુએ કરવું, કરાવવું અને અનુમોદન આપવું અને મન વચન અને કાયાથી હિંસાદિક પાપોનો સદા ત્યાગ કરવો જોઇએ; એવો તીર્થંકર પ્રભુનો મુખ્ય આદેશ છે. કદાચ તમે પોતે હિંસા ન કરતા હો; પરંતુ બીજા-

इति ब्रवीमिति पूर्वसूत्रोपात्तं वक्ष्यमाणवचनमाह ' किमणेण भो ' इत्यादि।

मूलम्—**किमणेण भो ! जणेण करिस्सामित्ति मन्नमाणा एवं एगे विइत्ता मायरं पियरं हिच्चा णायओ य परिग्गहं वीरायमाणा समुट्ठाए अविहिंसा सुव्वया दंता, पस्स दीणे उप्पइए पडिवयमाणे, वसट्टा कायरा जणा लूसणा भवंति।सू०१०।**

छाया—किमनेन भो ! जनेन करिष्यामीति मन्यमाना एवमेके विदित्वा मातरं पितरं हित्वा ज्ञातीन् च परिग्रहं वीरायमाणाः समुत्थाय अविहिंसाः सुव्रताः दान्ताः, पश्य दीनान् उत्पतितान् प्रतिपततः, वशार्त्ताः कातरा जनाः लूषका भवन्ति ॥ सू० १० ॥

टीका—भो !=हे आत्मन् ! अनेन=एतद्भवप्राप्तेन जनेन=मातापित्रादि-स्वजनेन स्वार्थपरेण वस्तुतोऽनर्थरूपेण किं करिष्यामि=स्वकर्मविपाकावसरे नायं

करते हो; परंतु फिर भी दूसरों को उस ओर लगाते हो, एवं उस काम के करनेवालोंकी अनुमोदना भी करते हो। अतः तुम्हारी इस प्रवृत्तिसे यही निश्चित होता है कि तुम अभी तक भी साधुमर्यादासे अनभिज्ञ बने हुए हो; इसलिये इस अज्ञताका त्याग करो। तुम तो समझदार हो, प्रयत्न करो; ता कि मुनिधर्मका वास्तविक स्वरूप समझ सको। आरंभार्थी बन कर अधर्माभिलाषी मत बनो ॥ सू० ९ ॥

" इति ब्रवीमि " इस प्रकार जो ९ में सूत्रमें कहा है उसीके विषय को सूत्रकार कहते हैं—" किमणेण भो " इत्यादि।

जो पहिले संसारका परित्याग कर विरक्त साधु बन जाते हैं और पीछे उससे पतित बन गृहस्थ हो जाते हैं, उनके विषयमें सूत्रकार कथन करते हैं कि ये प्राणी प्रथम ऐसा विचार करते हैं " हे आत्मन् ! इस

ઓને તે તરફ લગાડો છો, અને તેવા કામ કરવાવાળાઓની અનુમોદના પણ કરો છો, માટે તમારી આ પ્રવૃત્તિથી એ નિશ્ચિત થાય છે કે તમે હજી સુધી સાધુમર્યાદાથી અનભિજ્ઞ છો. માટે આ અજ્ઞતાનો ત્યાગ કરો. તમે સમજદાર છો, પ્રયત્ન કરો, જેથી મુનિધર્મનું વાસ્તવિક સ્વરૂપ સમજી શકો. આરંભાર્થી બની અધર્માભિલાષી ન બનો. (સૂ૦ ૯)

" इति ब्रवीमि " આ પ્રકારે જે નવમા સૂત્રમાં કહેલ છે એ વિષયને સૂત્રકાર કહે છે—" किमणेणं भो " ઈત્યાદિ.

જે પહેલા સંસારનો પરિત્યાગ કરી વિરક્ત સાધુ બની જાય છે, અને પાછળથી એનાથી પતિત થઇ ગૃહસ્થ થઈ જાય છે, એના વિષયમાં સૂત્રકાર કહે છે–એ પ્રાણી પ્રથમ એવો વિચાર કરે છે " હે આત્મન્! આ ભવમાં પ્રાપ્ત એવા

जनो मम शरणाय वा त्राणाय वा भविष्यतीति मन्यमानाः एके केचन धर्मकथादि-श्रवणेन विदितसंसारस्वभावाः एवम्=एतत्प्रकारकं संसारस्वरूपं विदित्वा=सर्वथा-नर्थमूलं विज्ञाय मातरं पितरम्, उपलक्षणतया पुत्रकलत्रमित्रादिकमपि, तथा ज्ञातीन्=बान्धवान् परिग्रहं=धनधान्यहिरण्यसुवर्णहर्म्यादिकं च हित्वा=वैराग्यभावनया तृण-वत्परित्यज्य वीरायमाणाः=चारित्रग्रहणे सिंहवत्प्रवर्तमानाः समुत्थाय=प्रव्रज्यां गृ-हीत्वा अविहिंसाः=षट्कायोपमर्दननिवृत्ताः,अतएव सुव्रताः=प्राणातिपातविरमणादि-महाव्रतधारिणः, दान्ताः=इन्द्रियनोइन्द्रियदमनप्रवृत्ता भवन्ति। तान् उत्पतितान्=प्रबलमोहोदयेन संयमस्थानात् उत्प्लुत्य निर्गतान् प्रतिपततः=कर्मगतिवैचित्र्यात्का-

भवमें प्राप्त स्वार्थमें तत्पर एवं वास्तविक दृष्टिसे अनर्थरूप माता-पिता आदि स्वजनसे मैं क्या करूँगा? ये मेरे क्या काम आयेंगे? जब मैं अपने शुभ और अशुभ कर्मके फलका भोक्ता बनूंगा तब ये मुझे उसमें सहा-यक नहीं हो सकेंगे, न ये मुझे शरणभूत होंगे, और न ये मेरे रक्षक ही होंगे" ऐसे अध्यवसायसे प्रेरित हो कई एक जीव धार्मिक कथाओं के श्रवणसे संसारका स्वरूप जानकर और माता पिता तथा उपलक्षण से-पुत्र, कलत्र एवं मित्रादिकोंको, तथा बान्धवों, धन, धान्य, हिरण्य, सुवर्ण और मकान आदिको वैराग्यभावनासे वासित अन्तःकरण बन, तृणकी तरह छोड कर, चारित्रके ग्रहणमें सिंहकी तरह प्रवृत्तिशील बनते हुए दीक्षा धारण करते हैं, और षट्कायके जीवोंकी हिंसासे दूर रहते हुए प्राणातिपातविरमण आदि पंच महाव्रतोंका आराधन करते हुए इन्द्रिय और मनका निग्रह करनेमें लवलीन रहते हैं। इतनी अवस्था तक भी पहुँचे हुए जीवोंको मोहका प्रबल उदयका झकोरा कहां से कहां

સ્વાર્થમાં તત્પર અને વાસ્તવિક દૃષ્ટિએ અનર્થરૂપ માતા-પિતા ઇત્યાદિ સ્વજન સાથે હું શું કરૂં ? આ લોકો મારા કયા કામમાં આવવાનાં ? જ્યારે હું મારા શુભ અને અશુભ કર્મના ફળોનો ભોક્તા બનીશ ત્યારે એમાં એ મને સહાય કરી શકવાનાં નથી, ન એ મને આશ્રય આપશે, ન તો મારાં રક્ષક બનશે. આવા વિચા-રથી પ્રેરાઈને કોઇ એક જીવ ધાર્મિક કથાઓના શ્રવણથી સંસારનું સ્વરૂપ જાણી, માતા-પિતા, સ્ત્રી, પુત્ર કુટુંબ તેમજ મિત્રાદિકો તથા ધન, ધાન્ય, હીરા, મોતી, સુવર્ણ અને મકાન ઈત્યાદિને વૈરાગ્ય ભાવનાથી છોડી, ચારિત્રને ગ્રહણ કરવામાં સિંહની માફક પ્રવૃત્તિશીલ બની દીક્ષા ધારણ કરે છે, અને ષટ્કા-યના જીવોની હિંસાથી દૂર રહી પ્રાણાતિપાતવિરમણ વગેરે પાંચ મહાવ્રતોની આરાધના કરતાં, ઇન્દ્રિય અને મનનો નિગ્રહ કરવામાં તત્પર રહે છે આટલી અવસ્થા સુધી પહોંચેલા જીવને પણ મોહના પ્રબળ ઉદયનો એકજ ઝપાટો કયાંથી

रागारसदृशगृहस्थावासे पुनर्निपततः, अतएव दीनान्=शृगालवन्नीचभावमगतान् संसारदुःखव्याकुलान् पश्य=हे शिष्य ! अवलोकय । यतः वशार्त्ताः=कषायवशवर्त्तित्वादार्त्तरौद्रध्यानयुक्ताः, कातराः=शृगालसादृश्यं प्राप्य परीषहोपसर्गभीरवो ये

ले जाकर पटक देता है-इसके लिये सूत्रकार "पश्य दीनान् उत्पतितान् प्रतिपततः" इस पंक्तिद्वारा प्रकट करते हैं —

वे इसमें बतलाते हैं कि प्रबल मोहके उदयसे संयमस्थानसे उछलकर निकलनेवाले वे जीव कर्मकी गतिकी विचित्रतासे कारागारके तुल्य गृहस्थावासमें जाकर ठहरते हैं और वहां शृगालकी तरह नीच मनोवृत्तिसे युक्त होते हुए सांसारिक दुःखोंसे व्याकुल होते रहते हैं। शिष्यको सम्बोधन कर सूत्रकार कहते हैं कि हे शिष्यो ! तुम देखो ! क्या से क्या वे बन जाते हैं । इस प्रकारके उनके परिवर्तनमें छिपी हुई कौन वस्तु काम करती है कि जिससे मोहके उदयकी प्रबलता जागृत बन उनका सर्वसंहारक बनती है ? इसका उत्तर सूत्रकार "वशार्त्ताः कातराः जनाः लूषका भवन्ति" इस पंक्तिसे देते हैं। वे कहते हैं-इसमें प्रबल अपराध कषायवशावर्तिताका है । इतना सब कुछ करने पर भी वे जो प्रबल मोहके उदयसे पतित बना दिये जाते हैं, उसका प्रधान कारण उनका कषायोंसे युक्त होना है। कषायोंसे युक्त होनेके कारण ही जीव आर्त्त एवं रौद्रध्यानवाले होते है। जिस प्रकार शृगाल जरासा भी ध्वनि पाकर अपने स्थानसे भाग खडा होता है, उसी प्रकार ये भी परीषह और उपसर्ग आने पर, उनसे भयभीत बनकर अपने

ઉપાડી ક્યાં પછાડી દે છે. એ અંગે સૂત્રકાર "पश्य दीनान् उत्पतितान् प्रतिपततः" આ પંક્તિદ્વારા પ્રગટ કરે છે. તેઓ આમાં બતાવે છે કે પ્રબળ મોહના ઉદયથી સંયમસ્થાનથી ઉછળી કર્મની વિચિત્રતાથી જીવ કારાગારતુલ્ય ગૃહસ્થવાસમાં જઈ પડે છે. ત્યાં શૃગાલની માફક નીચ મનોવૃત્તિથી યુક્ત બની સાંસારિક દુઃખોથી વ્યાકુળ થતો રહે છે. શિષ્યને સંબોધન કરતાં સૂત્રકાર કહે છે કે હે શિષ્યો ! તમે જુઓ; ઘડીમાં શું થી શું થઈ જાય છે. આ પ્રકારના એના પરિવર્તનમાં કઈ એવી છુપી વસ્તુ કામ કરે છે કે જેથી મોહના ઉદયની પ્રબલતા જાગ્રત થઈ એનો સર્વ સંહાર કરે છે ? આનો ઉત્તર સૂત્રકાર वशार्ताः कातराः जनाः लूषका भवन्ति" આ પંક્તિથી આપે છે. તેઓ કહે છે-આમાં પ્રબળ અપરાધ કષાયવશવશવર્તિતાનો છે. આટલું કરવા છતાં પણ મોહના પ્રબળ ઉદય એને પતિત બનાવી દે છે. આનું પ્રધાન કારણ એનું કષાયોથી યુકત થવું છે. કષાયોથી યુકત થવાના કારણે જ જીવ આર્ત-રૌદ્ર ધ્યાનવાળો બની જાય છે. જે રીતે શૃગાલ

जनाः सन्ति ते लूषकाः=व्रतविध्वंसका भवन्ति। अष्टादशशीलाङ्गसहस्राणि धारयितुं कः पारयिष्यतीत्यवधार्य द्रव्यलिङ्गं भावलिङ्गं च विहाय सर्वथा षट्कायविराधका भवन्तीति भावः ॥ सू० १० ॥

पश्चात्कृतानां लोकेऽवहेलना भवतीत्याह-' अहमेगेसिं ' इत्यादि ।

मूलम्—**अहमेगेसिं सिलोए पावए भवइ, से समणविब्भंते समणविब्भंते ॥ सू०११ ॥**

छाया—अथैकेषां श्लोकः पापको भवति, स श्रमणविभ्रान्तः श्रमणविभ्रान्तः।

टीका—अथ=द्रव्यभावलिङ्गत्यागानन्तरम् एकेषां=ये भग्नप्रतिज्ञाः परित्यक्त-संयमास्तेषां मध्ये केचित्प्रव्रज्यात्यागसमनन्तरमेव म्रियन्ते, केचिदल्पकालेन, यथा कृषीवलमुनिर्भगवदभिमुखं रजोहरण-सदोरकमुखवस्त्रिका-वस्त्र-पात्राणि प्रक्षिप्य समवस-

---

महाव्रत-आराधन-रूप स्थानसे भाग खडे होते हैं-अर्थात् व्रतोंके लोप करनेवाले होते हैं। द्रव्यलिङ्ग तथा भावलिङ्गको तज कर ये सर्वथा षट्-कायके जीवोंके विराधक हो जाते हैं ॥ सू० १० ॥

पछाकड़ोंकी लोकमें अवलेहना होती है-इस बातको प्रदर्शित करनेके लिये सूत्रकार कहते हैं-" अहमेगेसिं " इत्यादि ।

द्रव्यलिङ्ग और भावलिङ्गके त्यागके बाद अपनी प्रतिज्ञाभङ्ग करनेवाले तथा संयमका परित्याग करनेवाले उन जीवोंमें से किन्हीं २ जीवोंकी प्रव्रज्या त्यागके अनन्तर समयमें ही मृत्यु हो जाती है, तथा किन्हीं २ की कुछ समय पश्चात्, जैसे कृषीवल मुनिकी कि जिसने भगवान् के समक्ष ही रजोहरण, सदोरक मुखवस्त्रिका एवं वस्त्र और पात्रोंका परि-त्याग कर दिया था, समवसरणकी भूमिसे बाहर निकलते समय ही

(સિયાળ) જરા ખડખડાટ સાંભળતાં પોતાના સ્થાનથી ભાગે છે એ જ રીતે એ પણ પરિષહ અને ઉપસર્ગ આવતાં એનાથી ભયભીત બની પોતાના મહાવ્રતોની આરાધનાના સ્થાનેથી ભાગી છૂટે છે. અર્થાત્ મહાવ્રતોને ભાંગી નાંખે છે. દ્રવ્યલિંગ તથા ભાવલિંગને છોડીને ષટ્કાયના જીવોનો એ સદા વિરાધક બની જાય છે. (સૂ૦૧૦)

પછાકડાઓની લોકોમાં મશ્કરી થાય છે આ વાતને પ્રદર્શિત કરવા સૂત્રકાર કહે છે. " अहमेगेसिं " ઇત્યાદિ.

દ્રવ્યલિંગ અને ભાવલિંગના ત્યાગ બાદ, પોતાની પ્રતિજ્ઞા ભંગ કરવાવાળા અને સંયમ પરિત્યાગ કરવાવાળા તે જીવોમાંથી કોઇ કોઈ જીવની પ્રવ્રજ્યા ત્યાગના બાદના સમયમાં જ મૃત્યુ થઇ જાય છે. તથા કોઈ કોઈની થોડા સમય બાદ; જેવી રીતે કૃષીવલ મુનિનું કે જેણે ભગવાનની સમક્ષ જ રજોહરણ સદોરક-

रणाद् बहिर्निर्गतस्तदानीमेव मृतः, यथा वा ततोऽधिकेन कालेन कण्डरीकः, केचिच्च ततोऽधिकमपि जीवन्ति, तेषां श्लोकः=चारित्रग्रहणतत्परिपालनजनितयशःकीर्त्तिरूपः पापकः=स्वपक्षपरपक्षे सर्वत्र भूमण्डले चाश्लोको भवति—भग्नोत्साहानां भग्नपराक्रमाणां भग्नमहाव्रतानां लोके सर्वत्र निन्दा भवति। यथा—

"परलोकविरुद्धानि, कुर्वाणं दूरतस्त्यजेत्।
आत्मानं यो न संधत्ते, सोऽन्यस्मै स्यात्कथं हितः" ॥ १ ॥ इति।

निन्दामेवदर्शयति—'सः' इत्यादि, सः=असौ श्रमणविभ्रान्तः=श्रमणः पश्चाद्विभ्रान्तः, श्रमणो भूत्वा पश्चाद्भ्रष्ट इति। अत्र मूले 'श्रमणविभ्रान्तः'

मृत्यु हो गई थी, कण्डरीककी चारित्रत्यागके कुछ काल बाद ही मृत्यु हुई थी, कोई मनुष्य चारित्रत्यागके बाद भी जीवित रहते हैं। ऐसे जीवों की स्वपक्ष और परपक्षमें तथा सर्वत्र अपकीर्ति फैलती है! लोग कहते हैं कि यह भग्न उत्साहवाला है, भग्न पराक्रमवाला है, भग्न महाव्रतवाला है; इस प्रकार लोकमें सब जगह उसकी निंदा होती है। ठीक ही है—लोकमें भग्न उत्साहवालोंकी, भग्न पराक्रमवालोंकी, भग्न महाव्रतवालोंकी निंदा होनी ही चाहिये; क्यों कि-"परलोकविरुद्धानि कुर्वाणं दूरतस्त्यजेत्। आत्मानं यो न संधत्ते सोऽन्यस्मै स्यात्कथं हितः॥" परलोक विरुद्ध कार्योंको करनेवाले व्यक्तिका दूरसे परित्याग कर देना चाहिये। जो स्वयंका हित नहीं कर सकता है वह दूसरोंका कैसे हितकारक हो सकता है। निंदाका प्रकार प्रकट करनेके लिये सूत्रकार कहते हैं—"स श्रमणविभ्रान्तः" यह चारित्रभ्रष्ट श्रमण हो कर पश्चात् विभ्रान्त-भ्रष्ट हुआ है, इस—

મુખવસ્ત્રિકા અને વસ્ત્ર તથા પાત્રોનો ત્યાગ કર્યો, અને સમવસરણની ભૂમિથી બહાર નીકળતા સમયે જ તેનું મૃત્યુ થયેલું. કણ્ડરીકનું ચારિત્રત્યાગ બાદ થોડા કાળે મૃત્યુ થવા પામેલું. કોઇ મનુષ્ય ચારિત્ર ત્યાગ બાદ પણ જીવિત રહે છે એવા જીવોની સ્વપક્ષ અને પરપક્ષમાં પણ અપકીર્તિ સર્વત્ર ફેલાય છે. લોકો કહે છે કે આ ઉત્સાહ વગરનો છે, પરાક્રમ વગરનો છે, મહાવ્રતનો ત્યાગ કરનાર છે; આ પ્રકારે લોકોમાં સર્વત્ર તેની નિંદા થાય છે. ઠીકજ છે—લોકોમાં ઉત્સાહ રહિતની, પરાક્રમ રહિતની તથા મહાવ્રતનો ત્યાગ કરનારની નિંદા થવી જ જોઈએ. કેમ કે—"परलोकविरुद्धानि, कुर्वाणं दूरतस्त्यजेत्। आत्मानं यो न संधत्ते सोऽन्यस्मै स्यात् कथं हितः॥"—પરલોક વિરૂદ્ધ કાર્યોનો કરનાર વ્યક્તિનો દૂરથી ત્યાગ કરવો જોઈએ. જે પોતાનું હિત નથી કરી શકતા તે બીજાઓનું હિત કેવી રીતે કરી શકે. નિંદાનો પ્રકાર પ્રગટ કરતાં સૂત્રકાર કહે છે કે "स श्रमणविभ्रान्तः" ઈતિ.

આ ચારિત્રભ્રષ્ટ સાધુ બનીને પાછળથી વિભ્રાન્ત-ભ્રષ્ટ થયેલ છે, માટે શ્રમણ-

इति द्विरुक्तेनेदमुक्तं भवति–लोके सर्वत्र प्रतिदेशं प्रतिग्रामं प्रतिनगरं प्रतिस्थलं प्रतिजनं संयमभ्रष्टानां निन्दा प्रसरतीति ॥ सू०११ ॥

किञ्च—'पासहेगे' इत्यादि ।

मूलम्–**पासहेगे समन्नागएहिं असमन्नागए, णममाणेहिं अणममाणे, विरएहिं अविरए, दविएहिं अदविए। अभिसमेच्चा पंडिए मेहावी णिट्ठियट्ठे वीरे आगमेणं सया परक्कमेज्जासि–त्तिबेमि॥१२॥**

छाया––पश्यत एके समन्वागतैः असमन्वागताः, नमद्भिरनमन्तः, विरतैरविरताः, द्रविकैरद्रविकाः। अभिसमेत्य पण्डितः मेधावी निष्ठितार्थः वीरः आगमेन सदा पराक्रमेथाः, इति ब्रवीमि ॥ सू० १२ ॥

टीका–हे शिष्याः! पश्यत यूयं कर्मप्रभावम्, एके केचन हतभाग्याः समन्वागतैः=उग्रविहारिभिः सह वसन्तोऽपि असमन्वागताः=शीतलविहारिणो भवन्ति। तथा–नमद्भिः=संयमाराधकतया विनयनम्रैः सह स्थिता अपि अनमन्तः=अविनीता अहङ्कारिणः, तथा विरतैः=विरतिमद्भिः सह निवसन्तोऽपि अविरताः=विरतिर-

---

लिये श्रमणविभ्रान्त है। मूल सूत्रमें यह पद दो बार कहा गया है; सो उसका यह मतलब है–कि लोकमें सर्व जगह–हरएक गांवमें, हरएक नगरमें, हरएक स्थानमें और प्रत्येक मनुष्यमें संयमसे भ्रष्ट हुए मनुष्यों की निन्दा होती है ॥सू०११॥

तथा—"पासहेगे" इत्यादि ।

शिष्योंको संबोधित करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि हे शिष्यो! तुम लोग कर्मोंके प्रभावको तो देखो, बिचारे हतभाग्य कोई साधुजन उग्र विहार करनेवालोंके साथ रहते हुए भी शीतलविहारी होते हैं, संयमके आराधन करनेवाले होनेसे विनीत साधुओंके साथ एक जगह वसते हुए भी उद्धतस्वभावके अहंकारी होते हैं, विरतिवालोंके साथ

વિભ્રાન્ત છે. મૂળ સૂત્રમાં આ પદ બે વાર કહેવામાં આવેલ છે. તેનો આ મતલબ છે કે લોકોમાં સર્વ જગ્યા, દરેક ગામમાં, દરેક નગરમાં, દરેક સ્થાનમાં અને પ્રત્યેક મનુષ્યમાં સંયમથી ભ્રષ્ટ થયેલા મનુષ્યની નિંદા થાય છે. (સૂ૦૧૧)

તથા—"पासहेगे" ઈત્યાદિ.

શિષ્યોને સંબોધીને સૂત્રકાર કહે છે કે, હે શિષ્યો! તમે કર્મોનો પ્રભાવ તો જુઓ. બીચારા હતભાગી કોઈ સાધુજન ઉગ્રવિહાર કરવાવાળાઓની સાથે રહેવા છતાં પણ શીતલવિહારી બને છે. સંયમનું આરાધન કરવાવાળા હોવાથી વિનીત સાધુઓની સાથે રહેવા છતાં પણ ઉદ્ધતસ્વભાવના તથા અહંકારી હોય છે. વિરતિવાળાઓની સાથે હંમેશા સ્થિતિ કરવા છતાં પણ અવિરતિ-

हिताः, तथा द्रविकैः=संयमाराधकैः सहावस्थिता अपि अद्रविकाः=संयमानाराधका एव तिष्ठन्ति । हे शिष्य ! त्वं तु अभिसमेत्य=समन्वागतादिमहापुरुषान् संप्राप्य तैः सह निवासं कृत्वा, पण्डितः=सम्यग्ज्ञानवान् मेधावी=साधु सामाचारीव्यवस्थितः निष्ठितार्थः=विगतविषयसुखस्पृहः, तथा वीरः=परीषहोपसर्गसहनपुरस्सरं कर्मशत्रु-दलनदक्षः सन् आगमेन=तीर्थङ्करोपदेशानुसारेण सदा सर्वदा पराक्रमेथाः=तपः-संयमे पराक्रमं स्फोरय । इति ब्रवीमि, व्याख्या पूर्ववत् ॥ सू० १२ ॥

॥ इति षष्ठाध्ययनस्य चतुर्थ उद्देशः समाप्तः ॥ ६-४ ॥

सदा स्थिति करते हुए भी अविरतिसंपन्न होते हैं, संयमकी आराधना करनेवालोंके साथ निवास करते हुए भी संयमकी आराधना करनेसे वंचित रहते हैं । इसलिये हे शिष्य ! तुम उग्रविहारी, विनयी, विरति-संपन्न और संयमाराधक साधुओंके साथ निवास करते हुए सम्यग्ज्ञान संपन्न, साधु समाचारीमें व्यवस्थित, वैषयिक सुखतृष्णासे निर्मुक्त, और परीषह और उपसर्गों के सहनपूर्वक कर्मशत्रुओंके विनाश करनेमें दक्ष होते हुए, तीर्थङ्कर प्रभुके उपदेशके अनुसार सदा तप और संयमकी आराधना करनेमें वीर्योल्लासी बनो । "इति ब्रवीमि" इन पदोंकी व्याख्या पहिलेके समान समझनी चाहिये ॥ सू० १२ ॥

॥ छट्ठा अध्ययन का चौथा उद्देश समाप्त ॥ ६-४ ॥

સંપન્ન બને છે. સંયમની આરાધના કરવાવાળાઓની સાથે નિવાસ કરવા છતાં પણ સંયમની આરાધના કરવાથી વંચિત રહે છે. માટે હે શિષ્યો ! તમે ઉગ્રવિહારી, વિનયી, વિરતિસંપન્ન અને સંયમ આરાધક સાધુઓની સાથે નિવાસ કરીને સમ્યગ્જ્ઞાનસંપન્ન, સાધુસમાચારીમાં વ્યવસ્થિત, વૈષયિક તૃષ્ણાથી નિર્મુકત અને પરિષહ અને ઉપસર્ગો સહન કરી કર્મશત્રુઓનો વિનાશ કરવામાં દક્ષ બનો. તીર્થંકર પ્રભુના ઉપદેશ અનુસાર સદા તપ અને સંયમની આરાધના કરવામાં વીર્યોલ્લાસી બનો. "इति ब्रवीमि" આ પદોની વ્યાખ્યા પહેલાની માફક સમજવી.

છઠ્ઠા અધ્યયનનો ચોથો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૬-૪ ॥

। अथ षष्ठाध्ययनस्य पञ्चम उद्देशः ।

इहानन्तरचतुर्थोद्देशके गौरवत्रयविधूननं निगदितम् । तदर्थं चोद्देशकार्थमुपसंहरन्–' वीरे सया आगमेणं परक्कमेज्जासि ' इति वाक्येन ' मुनिना तीर्थङ्करोपदेशानुसारेण वर्त्तितव्य 'मित्यबोधि । अथ तच्च गौरवत्रयविधूननं परीषहोपसर्गमानापमानविधूननेन विना सम्पूर्णतया न भवितुमर्हतीत्यतस्तत्प्रदर्शयितुं पञ्चमोद्देशमुपक्रमते, तत्र परीषहोपसर्गादीनि कुत्र संभवन्तीति दर्शयितुमाह– ' से गिहेसु वा ' इत्यादि ।

मूलम्–से गिहेसु वा गिहंतरेसु वा गामेसु वा गामंतरेसु वा नगरेसु वा नगरंतरेसु वा जणवएसु वा जणवयंतरेसु वा संते-

---

छट्ठा अध्ययनका पाँचवाँ उद्देश ।

इस छट्ठे अध्ययनके चतुर्थ उद्देशमें सूत्रकारने तीन गौरवोंके त्याग करनेका उपदेश दिया है । उस उपदेशके अन्दर उद्देशमें कथित अर्थका उपसंहार करते हुए उन्होंने " वीरे सया आगमेणं परक्कमेज्जासि " इस वाक्यसे " मुनियोंको तीर्थङ्कर प्रभुके उपदेशके अनुसार रहना चाहिये" यह समझाया है । यह गौरवत्रयका त्याग परीषह, उपसर्ग, मान और अपमानके सहे विना पूर्ण रूपमें नहीं हो सकता है । इसलिये इसी विषयका प्रदर्शन करनेके लिये इस पञ्चम उद्देशका प्रारंभ किया गया है। उसमें सर्व प्रथम सूत्रकार परीषह और उपसर्ग कहां पर संभवित होता है–इस बातको दिखानेके लिये "से गिहेसु " इत्यादि सूत्र कहते हैं—

છટ્ઠા અધ્યયનનો પાંચમો ઉદ્દેશ

છઠ્ઠા અધ્યયનના ચોથા ઉદ્દેશમાં સૂત્રકારે ત્રણ ગૌરવોના ત્યાગનો ઉપદેશ આપેલ છે. તે ઉપદેશમાં ચતુર્થોદ્દેશકથિત અર્થનો ઉપસંહાર કરતાં તેઓએ " वीरे सया आगमेणं परक्कमेज्जासि " આ વાકયથી "મુનિયોએ તીર્થંકર પ્રભુના ઉપદેશ–અનુસાર રહેવું જોઈએ." તે સમજાવ્યું છે. આ ત્રણ ગૌરવનો ત્યાગ પરિષહ, ઉપસર્ગ, માન–અપમાનને સહ્યા વિના પૂર્ણરૂપથી બનતો નથી. તેથી આ વિષયને સમજાવવા માટે આ પાંચમા ઉદ્દેશનો પ્રારંભ કરેલ છે. આમાં સર્વપ્રથમ સૂત્રકાર પરિષહ અને ઉપસર્ગ કયાં કયાં સંભવિત બને છે એ વાત દેખાડવા માટે " से गिहेसु " ઈત્યાદિ સૂત્ર કહે છે.

गइया जणा लूसणा भवंति, अदुवा फासा फुसंति; ते फासे पुट्ठो धीरो अहियासए ओए समियदंसणे ॥ सू० १ ॥

छाया—तस्य गृहेषु वा गृहान्तरेषु वा ग्रामेषु वा ग्रामान्तरेषु वा नगरेषु वा नगरान्तरेषु वा जनपदेषु वा जनपदान्तरेषु वा सन्त्येकके जना लूषका भवन्ति, अथवा स्पर्शाः स्पृशन्ति; तान् स्पर्शान् स्पृष्टः धीरः अध्यासयेत् ओजः समित-दर्शनः ॥ सू० १ ॥

टीका—तस्य=आहारादि ग्रहीतुं गच्छतो मुनेः, गृहेषु वा उच्चनीचमध्यम-कुलेषु, गृहान्तरेषु वा गृहसमीपेषु, ग्रामेषु वा ग्रामसमीपेषु वा, नगरेषु वा नगरसमी-पेषु वा, तथा ग्रामानुग्रामं विहरतश्च जनपदेषु वा=देशेषु मगधादिषु, जनपदान्तरेषु= देशसीमासु, उपलक्षणत्वात् उद्यानेषु वा उद्यानान्तरेषु वा, तथा—विहारभूमिषु स्वाध्यायं कुर्वतो, विचारभूमिषु शरीरचिन्तार्थं गच्छतो गतस्य वा, एकके=एके ये केचन कषायोपहतचेतसो जनाः लूषकाः=परीषहोपसर्गादिकारकाः भवन्ति। अथवा

आहारादि ग्रहण करनेके निमित्त जाते हुए मुनिजनको घरोंमें—उच्च, नीच और मध्यम कुलोंमें, घरके आसपासमें, गावोंमें, गांवोंके आसपासमें, नगरमें, नगरके आसपासमें, तथा एक ग्रामसे दूसरे ग्राममें विहार करते हुए मुनिको मगधादिक जनषदमें, जनपदकी सीमा —हदमें, उपलक्षणसे बगीचामें, बगीचाके आसपासमें, तथा—स्वाध्याय करनेवाले मुनिको विहार भूमिमें, शौचादिकी निवृत्तिके लिये जाते हुए अथवा गये हुए साधुको विचारभूमि—नगरके बाहिरी जंगल (वन) आदि प्रदेशमें, कई एक कि जिनका चित्त कषायसे मलिन हो रहा है—व्याप्त या युक्त बना हुआ है ऐसे दुष्ट मनुष्य उपसर्ग और परीषह आदि करनेवाले होते ही हैं। अथवा—वात, पित्त और कफजनित दुःख विशेष या तृण-स्पर्श, दंशमशक, शीत उष्ण आदि जनित दुःख भी कभी २ उन्हें दुःखित

આહારાદિ ગ્રહણ કરવા નિમિત્ત જતાં મુનિજનને ઘરોમાં—ઉચ્ચ, નીચ અને મધ્ય કુળોમાં ઘરની આસપાસમાં, ગામમાં, ગામની આસપાસમાં, નગરમાં, નગરની આસપાસમાં, તથા એક ગામથી બીજા ગામમાં વિહાર કરનાર મુનિને મગધાદિક જનપદમાં, જનપદની સીમા—હદમાં, ઉપલક્ષણથી બગીચામાં, બગીચાની આસપાસમાં તથા સ્વાધ્યાય કરવાવાળા મુનિને વિહાર ભૂમિમાં, શૌચાદિની નિવૃત્તિ માટે જતાં અથવા આવતાં સાધુને વિચારભૂમિ—નગરની બહાર જંગલ (વન) આદિ પ્રદેશમાં, કેટલાક દુષ્ટ મનુષ્ય કે જેનું ચિત્ત કષાયથી મલિન બનેલ છે—આકુળ-વ્યાકુળ બનેલ છે; ઉપસર્ગ અને પરિષહ કરનાર હોય છે. અથવા વાત, પિત્ત

स्पर्शाः=दुःखविशेषाः वातपित्तकफदोषजनिताः, तृणस्पर्शदंशमशकशीतोष्णादिजनिता वा स्पृशन्ति=कदाचिदभिभवन्ति; तैः=परीषहोपसर्गादिभिः स्पृष्टः ओजः=एकः राग-द्वेषादिरहितः समितदर्शनः=उपशान्ताध्यवसायः, यद्वा समितदर्शनः=समतामितं समितं दर्शनं यस्य सः, समदृष्टिरित्यर्थः; धीरः=अक्षोभ्यः सन् तान्=लूषककृतान् वातादिदोषजनितान् तृणस्पर्शादिजनितान् वा स्पर्शान्=दुःखविशेषान् अध्यासयेत्= अधिसहेत; नरकादिदुःखं यथा कर्मोदयजनितं तथा मदीयमेतत्सर्वं स्वकर्मोदयफल-मित्येतन्मयैव सोढव्यमित्यवधार्य सम्यक् तितिक्षेत इत्यर्थः ॥ सू० १ ॥

किञ्च—' दयं ' इत्यादि ।

करते ही रहते हैं । इसलिये उन परीषह और उपसर्ग आदिसे सताये गये या उपद्रवित किये गये वे रागद्वेषरहित सम्यग्दृष्टि मुनिजन अक्षोभ्य होते हुये उन वातादिदोष जनित अथवा तृणस्पर्शादिसे होनेवाले दुःख-विशेषोंको सहन करें, घबरावें नहीं । उस समय वे यही विचारें–कि जिस प्रकार कर्मके उदयजनित नरक आदिके दुःखोंको मैंने ही अन-न्तवार सहन किये हैं, उसी तरह ये सब भी हमारे कर्मोदयजनित हैं; इसलिये हमें ही इन्हें मध्यस्थभावसे सहना चाहिये, ऐसा निश्चय कर अच्छी तरह–विना किसी आकुलताके उन्हें सहें। समताको प्राप्त जिसका दर्शन है उसका नाम समितदर्शन–सम्यग्दृष्टि है ॥ सू० १ ॥

तथा—" दयं लोगस्स " इत्यादि ।

અને કફજનિત દુઃખવિશેષ અને તૃણસ્પર્શ, દંશમંશક, શીત ઉષ્ણ આદિ જનિત દુઃખ પણ એમને કોઇ કોઈ વખત દુઃખિત કરતો રહે છે. આ માટે એવા પરિષહ અને ઉપસર્ગ વગેરેથી સતાવેલ અને ઉપદ્રવિત કરા-એલ એ રાગદ્વેષરહિત સમ્યગ્દૃષ્ટિ મુનિજન અક્ષોભ્ય બનીને તે વાતાદિ દોષ જનિત અથવા તૃણ સ્પર્શાદિથી થવાવાળા દુઃખવિશેષોને સહન કરે. ગભરાય નહિ. એ સમયે એ એવું જ વિચારે કે જે પ્રકારે કર્મના ઉદયથી નરક આદિના દુઃખોને મેં અનેક વખતે સહન કરેલ છે, એ જ રીતે એ બધાં મારા કર્મોના ઉદયરૂપ છે. આ માટે મારે પણ તેને મધ્યસ્થભાવથી સહન કરવાં જોઇએ. એવો નિશ્ચય કરી સારી રીતે આકુલતારહિત એને સહે. સમતાને પ્રાપ્ત જેનું દર્શન છે એનું નામ સમ્યગ્દૃષ્ટિ છે. (સૂ૦ ૧)

તથા—" दयं लोगस्स " ઈત્યાદિ.

मूलम्—दयं लोगस्स जाणित्ता पाईणं पडीणं दाहिणं उदीणं आइक्खे विभए किट्टे वेयवी ॥ सू० २ ॥

छाया—दयां लोकस्य ज्ञात्वा प्राचीनं प्रतीचीनं दक्षिणं उदीचीनम् आचक्षीत विभजेत् कीर्तयेत् वेदवित् ॥ सू० २ ॥

टीका—वेदवित्-सर्वज्ञप्रणीतागमज्ञानवान् मुनिः, लोकस्य ज्ञात्वा=द्रव्यतः षड्जीवनिकायस्वरूपं विज्ञायेत्यर्थः, लोकस्येत्यत्र-कर्मणः सम्बन्धमात्रविवक्षायां षष्ठी; तथा-क्षेत्रतः-प्राचीनं=पूर्वं, प्रतीचीनं=पश्चिमं; दक्षिणम्, उदीचीनम्=उत्तरम्, उपलक्षणत्वादन्यानपि दिग्विभागान् ज्ञात्वा=अभिसमीक्ष्य कालतो यावज्जीवं भावतो रागद्वेषरहितः सर्वत्र दयां कुर्वन् धर्ममाचक्षीत; यथा-सर्वे प्राणिनो दुःखद्विषः सुखलिप्सवः आत्मौपम्येन सर्वदा द्रष्टव्या इति । तथा धर्ममाचक्षाणः विभजेत्=द्रव्यक्षेत्रकालभावभेदैः प्राणातिपातविरमणादिभिश्च प्ररूपयेत्। कीर्त्तयेत्=धर्मानुष्ठानफलं कथयेत् ॥ सू० २ ॥

सर्वज्ञरचित आगमके ज्ञाता मुनि द्रव्यसे षड्जीवनिकायस्वरूपको जान कर तथा क्षेत्रसे पूर्वदिशा, पश्चिमदिशा, दक्षिणदिशा और उत्तर-दिशाको, एवं उपलक्षणसे इन दिशाओंके विभागोंको जानकर, कालकी अपेक्षा जीवनपर्यन्त, भावसे रागद्वेषरहित होकर, सर्वत्र धर्मका उपदेश करें। उस उपदेशमें यह अवश्य २ प्रकट करें कि समस्त संसारी प्राणी दुःखको नहीं चाहते हैं और सुखके अभिलाषी हैं, अतः समस्त प्राणिओं को अपने समान समझना चाहिये, तथा वह धर्म द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके भेदों एवं अहिंसा आदि व्रतोंके भेदोंकी अपेक्षासे अनेक प्रकार का है। इस प्रकार उसका विभाग कर प्ररूपणा करें। धर्मकी आराधनासे जीवोंको क्या फल मिलता है? इसका भी व्याख्यान करें।

સર્વજ્ઞરચિત આગમના જ્ઞાતા મુનિ દ્રવ્યથી ષડ્જીવનિકાયસ્વરૂપ લોક-સ્વરૂપ જાણીને, તથા ક્ષેત્રથી પૂર્વદિશા, પશ્ચિમદિશા, દક્ષિણદિશા અને ઉત્તર-દિશા, અને ઉપલક્ષણથી આ દિશાના વિભાગોને જાણીને, કાળની અપેક્ષા જીવન-પર્યંત, ભાવથી રાગ દ્વેષ રહિત બનીને સર્વત્ર ધર્મનો ઉપદેશ કરે. આ ઉપદેશમાં તે અવશ્ય અવશ્ય પ્રગટ કરે કે સમસ્ત સંસારી પ્રાણી દુઃખને ચાહતા નથી, અને સુખના અભિલાષી છે. માટે સમસ્ત પ્રાણીઓને પોતાના સમાન સમજવા જોઈએ. તથા એ ધર્મ, દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર અને કાળ, ભાવના ભેદો અને અહિંસા આદિ વ્રતોના ભેદોની અપેક્ષાથી અનેક પ્રકારનો છે. આ પ્રકારે તેના વિભાગ કરી પ્રરૂપણા કરે. ધર્મની આરાધનાથી જીવોને શું ફળ મળે છે તેનું વ્યાખ્યાન કરે.

किञ्च—' से उट्ठिएसु वा ' इत्यादि ।

मूलम्—से उट्ठिएसु वा अणुट्ठिएसु वा सुस्सूसमाणेसु पवेदए—संतिं विरतिं उवसमं णिव्वाणं सोयं अज्जवियं मद्दवियं लाघवियं अणइवत्तिय ॥ सू० ३ ॥

छाया—उत्थितेषु वा अनुत्थितेषु वा शुश्रूषमाणेषु प्रवेदयेत् शान्तिं विरतिम्; उपशमं निर्वाणं शौचम् आर्जविकं मार्दविकं लाघविकम् अनतिपत्य ॥ सू०३ ॥

टीका—सः=आगमवित् शुश्रूषमाणेषु=श्रोतुमिच्छत्सु गुर्वादिसेवां कुर्वत्सु वा उत्थितेषु=गृहीतप्रव्रज्येषु वा अनुत्थितेषु=श्रावकादिषु वा शान्तिम्=शमनम्—अहिंसा-

---

भावार्थ—सर्वज्ञ भगवानद्वारा प्रतिपादित आगमके ज्ञाता मुनिराज लोक आदिका यथार्थ स्वरूप जान कर, जीवोंकी रक्षाके निमित्त धर्मका उपदेश दें। उसमें वह द्रव्य, क्षेत्र, कालभावकी, अथवा अहिंसा व्रत आदिकी अपेक्षासे धर्मका विस्तारपूर्वक कथन करें, और साथमें यह भी स्पष्ट समझावें कि धर्मके आराधनसे किन २ जीवोंको किस २ फल की प्राप्ति हुई है॥ सू०२ ॥

तथा—" से उट्ठिएसु वा " इत्यादि।

आगमज्ञाता वे मुनि धर्मका उपदेश करते समय इन विषयोंका भी विवेचन करें। धार्मिक उपदेश सुननेके जो इच्छुक हैं उनका नाम शुश्रूषमाण हैं, अथवा जो गुरुओंकी सेवा करते हैं वे भी शुश्रूषमाण हैं। जिन्होंने दीक्षा ग्रहण कर ली है वे उत्थित हैं और श्रावक आदि अनुत्थित हैं। इन सबके लिये वे आगमज्ञाता मुनि अहिंसा, मृषावाद आदिसे

ભાવાર્થ—સર્વજ્ઞ ભગવાન્ દ્વારા પ્રતિપાદિત આગમના જ્ઞાતા મુનિરાજ લોક આદિનું યથાર્થ સ્વરૂપ જાણી જીવોની રક્ષા નિમિત્ત ધર્મનો ઉપદેશ દે. તેમાં તે દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ, ભાવ અને અહિંસાવ્રત આદિની અપેક્ષાથી ધર્મનું વિસ્તારપૂર્વક કથન કરે. અને સાથે સાથે એ પણ સમજાવે કે ધર્મના આરાધનથી કયા કયા જીવોને કયા કયા ફળની પ્રાપ્તિ થયેલ છે.

તથા—" से उट्ठिएसु वा " ઇત્યાદિ.

આગમજ્ઞાતા એ મુનિ ધર્મનો ઉપદેશ કરતી વખતે એ વિષયોનું પણ વિવેચન કરે. ધાર્મિક ઉપદેશ સાંભળવામાં જે ઇચ્છુક છે તેનું નામ શુશ્રૂષમાણ છે, અથવા જે ગુરૂઓની સેવા કરે છે તેઓ પણ શુશ્રૂષમાણ છે. જેઓએ દીક્ષા ગ્રહણ કરેલી છે તેઓ ઉત્થિત અને શ્રાવક આદિ અનુત્થિત છે. આ બધા માટે

मित्यर्थः, विरतिम्=विरमणं मृषावादादिविरमणं मूलगुणमित्यर्थः, उपशमं=क्रोधोपशमं क्षमाम् , उपलक्षणत्वात्सर्वमुत्तरगुणमित्यर्थः, निर्वाणं=मूलगुणोत्तरगुणफलभूतं मोक्षम् , शौचं=मनःशुद्धिम् , आर्जविकम्=आर्जवं मायाशल्यराहित्यं, मार्दविकं=मार्दवं मानराहित्यं, लाघविकम्=कर्मभारापनयनादात्मनो लाघवम्। एतत्सर्वम् अनतिपत्य=यथावस्थितमर्थमनतिक्रम्य-आगमानुसारेणेत्यर्थः, प्रवेदयेत्=उपदिशेत् ॥ सू० ३ ॥

किञ्च--' सव्वेसिं ' इत्यादि ।

मूलम्—सव्वेसिं पाणाणं, सव्वेसिं भूयाणं, सव्वेसिं जीवाणं, सव्वेसिं सत्ताणं अणुवीइ भिक्खू धम्ममाइक्खेज्जा ॥ सू०४ ॥

छाया--सर्वेषां प्राणानां, सर्वेषां भूतानां सर्वेषां जीवानां, सर्वेषां सत्त्वानाम् , अनुविचिन्त्य भिक्षुर्धर्ममाचक्षीत ॥ सू०४ ॥

विरमण होनेरूप विरति-मूलगुण, क्रोधका उपशमरूप क्षमा, उपलक्षणसे समस्त उत्तरगुण, निर्वाण-मूलगुण और उत्तरगुणोंके फलभूत मोक्ष, मानसिक शुद्धि, मायाशल्यका अभावरूप आर्जव (सरलता), मानका अभावरूप मार्दव (नम्रता), और कर्मभारके नाश हो जानेसे उद्भूत आत्माके लाघवगुणका यथार्थ स्वरूपसे-आगमके अनुरूप उपदेश करें ।

आगमज्ञाता मुनिको अपने उपदेशमें प्रधानतया किन २ विषयोंका वर्णन करना चाहिये सूत्रकारने वे सब विषय उपर्युक्त रीतिसे प्रकट किये हैं। अतः विद्वान् उपदेशक मुनि, धार्मिक उपदेश सुननेवालोंके समक्ष उन विषयोंपर अवश्य २ अपने उपदेशमें प्रकाश डालें ॥सू० ३॥

तथा—" सव्वेसिं " इत्यादि ।

તે આગમજ્ઞાતા મુનિ, અહિંસાનો મૃષાવાદ આદિથી વિરમણ હોવારૂપ વિરતિ-મૂળગુણનો, નિર્વાણ-ક્રોધના ઉપશમરૂપ ક્ષમાનો, ઉપલક્ષણથી સમસ્ત ઉત્તરગુણ, મૂળગુણ અને ઉત્તરગુણોના ફળભૂત મોક્ષનો, માનસિક શુદ્ધિ, માયાશલ્યના અભાવરૂપ સરળતા, માનના અભાવરૂપ નમ્રતા અને કર્મભારનો નાશ થઇ જવાથી ઉદ્‌ભૂત આત્માના લાઘવગુણનો યથાર્થસ્વરૂપથી આગમને અનુરૂપ ઉપદેશ કરે.

આગમજ્ઞાતા મુનિએ પોતાના ઉપદેશમાં મુખ્ય તથા કેવા કેવા વિષયોનું વર્ણન કરવું જોઈએ. સૂત્રકારે એ બધા વિષય ઉપર્યુકત (ઉપર કહેલ) રીતિથી પ્રગટ કરેલ છે. માટે વિદ્વાન્ ઉપદેશક મુનિ ધાર્મિક ઉપદેશ સાંભળવાવાળા સમક્ષ એ વિષયો ઉપર અવશ્ય અવશ્ય પોતાના ઉપદેશનો પ્રકાશ કરે.

તથા—" સવ્વેસિં " ઇત્યાદિ.

टीका--भिक्षुः=निर्दोषभिक्षाजीवी मुनिः सर्वप्राणिभूतजीवसत्त्वानां हितं अनुविचिन्त्य=पर्यालोच्य धर्मं=श्रुतचारित्रलक्षणम्-अगारधर्ममनगारधर्मं वा आचक्षीत=प्रतिबोधयेत्। एकेन्द्रियादिषु सर्वेषु प्राणिषु कस्यचिदपि विराधना यथा न भवेत्तथा धर्ममुपदिशेदिति भावः ॥ सू० ४ ॥

अनुविचिन्त्य धर्ममाचक्षाणो भिक्षुरन्यत्किं कुर्यादित्याह-'अणुवीइ भिक्खू' इत्यादि।

मूलम्-अणुवीइ भिक्खू धम्ममाइक्खमाणे णो अत्ताणं आसाइज्जा, णो परं आसाइज्जा, णो अन्नाइं पाणाइं भूयाइं जीवाइं सत्ताइं आसाइज्जा ॥ सू० ५ ॥

निर्दोष भिक्षासे अपने शरीरका निर्वाह करनेवाले भिक्षु समस्त प्राणियों, समस्त भूतों, समस्त जीवों और समस्त सत्वोंका हित विचार कर श्रुतचारित्ररूप धर्मका, अथवा गृहस्थ और मुनिके धर्मका व्याख्यान करें। एकेन्द्रियादिक समस्त प्राणियोंमेंसे किसी भी जीवकी विराधना जिस तरह किसी भी जीवसे न बने-इस प्रकारसे धर्मका उपदेश देकर जीवोंको समझावें। अथवा मुनिका धर्म क्या है? गृहस्थका धर्म क्या है? इस विषयको समझावें। समझानेकी पद्धति इतनी हृदयरोचक एवं चित्ताकर्षक हो कि जिससे प्राणी उस उपदेशको सुन कर एकेन्द्रियादिक जीवों तककी भी विराधना करना छोड़ देवें ॥ सू०४॥

धर्मका बार २ विचार कर कथन करनेवाला भिक्षु और क्या करें? इसके लिये सूत्रकार कहते हैं-"अणुवीइ भिक्खू" इत्यादि।

નિર્દોષ ભિક્ષાથી પોતાના શરીરનો નિર્વાહ કરવાવાળા ભિક્ષુ સમસ્ત પ્રાણીયો, સમસ્ત ભૂતો, સમસ્ત જીવો અને સમસ્ત સત્વોના હિતનો વિચાર કરી શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મનું અથવા ગૃહસ્થ અને મુનિ ધર્મનું વ્યાખ્યાન કરે. એકેન્દ્રિયાદિક સમસ્ત પ્રાણીયોમાંથી કોઈ પણ જીવની વિરાધના જે રીતે કોઇ પણ જીવથી ન બને આ પ્રકારથી ધર્મનો ઉપદેશ આપી જીવોને સમજાવે, અને મુનિનો ધર્મ શું છે? ગૃહસ્થનો ધર્મ શું છે? આ વિષય સમજાવે. સમજાવવાની પદ્ધતિ એટલી હૃદયંગમ હોવી જોઇએ કે તેની અસર તાત્કાલિક પહોંચે; જેથી ઉપદેશ સાંભળનાર એકેન્દ્રિયજીવોની તરફે પણ સદ્ભાવવાળો બને. (સૂ૦૪)

ધર્મનો વારંવાર વિચાર કરી બોલવાવાળા ભિક્ષુ બીજું શું કરે? આને માટે સૂત્રકાર કહે છે-"अणुवीइ भिक्खू" ઇત્યાદિ.

छाया—अनुविचिन्त्य भिक्षुर्धर्ममाचक्षाणः नो आत्मानमाशातयेत्, नो परमाशायेत्, नो अन्यान् प्राणान् भूतान् जीवान् सत्त्वान् आशातयेत् ॥ सू० ५ ॥

टीका—धर्मम् आचक्षाणः=कथयन् भिक्षुः=संयमी, अनुविचिन्त्य=सर्वप्राणिहिताहितं पर्यालोच्य आत्मानं=स्वकीयमात्मानं न आशातयेत्-स्वात्मन आशातनां सर्वथा न कुर्यात्, ज्ञानदर्शनचारित्रविरुद्धवर्त्तनेनात्मनः संसारपरिभ्रमणं भवति तदेवात्मन आशातना विराधनेत्यर्थः। सा द्विविधा-लौकिकी लोकोत्तरा चेति, एकैकाऽपि द्रव्यभावभेदाद् द्विधा। तत्र द्रव्यतो लौकिकी सचित्ताचित्तमिश्रद्रव्यविषया, भावतो विनयादिस्खलितस्य विद्यादिलाभो यया न भवति सा। द्रव्यतो लोकोत्तरा शरीरोपधिविषया, भावतस्तु ज्ञानदर्शनचारित्रतपोविनयादिगुणविषया। तथा-

धर्मका उपदेश करनेवाले भिक्षु-संयमी समस्त प्राणियोंके हित और अहितकी पर्यालोचना कर, अपनी निज आत्माकी सर्वथा विराधना न करें। ज्ञान, दर्शन और चारित्रसे विरुद्ध प्रवर्तन करनेसे आत्माका जो संसारमें परिभ्रमण होता है, वह परिभ्रमण ही आत्माकी आशातना-विराधना है। यह लौकिकी, और लोकोत्तरा के भेदसे प्रकारकी है। लौकिकी एवं लोकोत्तरा ये दोनों भी द्रव्य और भावके भेदसे दो दो भेदवाली हैं। सचित्त, अचित्त और मिश्र द्रव्यको विषय करनेवाली आशातना द्रव्यसे लौकिकी है। अविनयीके जिससे विद्यादिकका लाभ नहीं होता है वह भावसे लौकिकी आशातना है। शरीर और उपधिको विषय करनेवाली द्रव्यसे लोकोत्तरा आशातना है, तथा ज्ञान, दर्शन और चारित्र, तप और विनयादिक गुणोंको विषय करनेवाली भावसे लोकोत्तरा

ધર્મનો ઉપદેશ કરનાર ભિક્ષુએ સંયમ પાળવા ઉપરાંત બધા પ્રાણીઓના હિત અને અહિતની પર્યાલોચના કરી પોતાના આત્માની સર્વથા વિરાધના ન કરે. જ્ઞાન, દર્શન અને ચારિત્રથી વિરૂદ્ધ પ્રવર્તન કરવાથી આત્માનું જે સંસારમાં પરિભ્રમણ થાય છે-એ પરિભ્રમણ જ આત્માની અશાતના-વિરાધના છે. આ લૌકિકી અને લોકોત્તરના ભેદથી બે પ્રકારે છે. લૌકિકી અને લોકોત્તર આ બન્ને પણ દ્રવ્ય અને ભાવના ભેદથી બબ્બે ભેદવાળી છે. સચિત્ત, અચિત્ત અને મિશ્ર દ્રવ્યનો વિષય કરવાવાળી આશાતના દ્રવ્યથી લૌકિકી છે. અવિનયીને જેથી વિદ્યાદિકનો લાભ નથી મળતો તે ભાવથી લૌકિકી આશાતના છે. શરીર અને અને ઉપધિનો વિષય કરવાવાળી દ્રવ્યથી લોકોત્તર તથા જ્ઞાન, દર્શન અને ચારિત્રમાં અવિનય આદિ ગુણોનો વિષય કરવાવાળી ભાવથી લોકોત્તર આશાતના

परम्=अन्यं, शुश्रूषुमार्यमनार्य्यमुत्थितमनुत्थितं वा न आशातयेत्, तथा–अन्यान् वा सामान्येन प्राणान्=प्राणिनः भूतान् जीवान् सत्त्वान्, सर्वानित्यर्थः; न आशातयेत्, षड्जीवनिकायस्वरूपाऽपलापेन सावद्योपदेशेन च न विराधयेत्। इदमुक्तं भवति–तथाभूतमुपदेशं न कुर्यात् येन कस्यापि प्राणिनो विराधना समुत्पद्येत ॥५॥

आशातना है। उपदेश सुननेके लिये अभिलाषी बने हुएका नाम शुश्रूषु, सर्वविरतिरूप चारित्रके पालक उत्थित और गृहस्थजन अनुत्थित हैं। इनमें से कोई भी हो, मुनिका कर्तव्य है कि वह इनकी आशातना (विराधना) न करें। इसी प्रकार सामान्यसे प्राणियोंकी, भूतोंकी, जीवोंकी, और सत्त्वोंकी वे आशातना करनेके अधिकारी नहीं हैं। ऐसा उपदेश न दें कि जिससे षड्जीवनिकायके स्वरूपका आपलाप हो और सावद्य व्यापारोंमें जीवोंकी प्रवृत्ति हो। क्यों कि इस प्रकारके उपदेशसे जीवोंकी प्रवृत्ति अन्य जीवोंकी विराधनाकी ओर उत्साहित होती है। कहनेका मतलब यह है कि ऐसा उपदेश मुनिको कभी नहीं देना चाहिये कि जिससे किसी भी जीवकी विराधना होवे।

धर्मका उपदेश करनेवाला संयमी सदा इस बातका पूर्ण ध्यान रखे कि, मेरे उपदेशसे जहां तक हो सके, सब जीवोंका कल्याण हो। कुमार्गमें जानेवाले भी प्राणी इससे लाभ उठावें और वे सन्मार्गमें लग जावें। श्रोताओंके ऊपर उसी उपदेष्टाका प्रभाव पड़ता है जो स्वयं ज्ञान,

છે. ઉપદેશ સાંભળવા માટે ઉત્સુક બનેલાનું નામ સુશ્રૂષુ, સર્વવિરતિરૂપ ચારિત્રના પાલક ઉત્થિત અને ગૃહસ્થજન અનુત્થિત છે. આમાંથી કોઇ પણ હો, મુનિનું કર્તવ્ય છે કે તે કોઈની વિરાધના ન કરે. આ જ રીતે સામાન્ય પ્રાણીઓની, ભૂતોની, જીવોની અને સત્વોની તે વિરાધના કરવાના અધિકારી નથી. એવો ઉપદેશ ન આપે કે જેથી ષટ્જીવનિકાયના સ્વરૂપનો અપલાપ (સંતાડવાપણું) થાય અને સાવદ્ય વ્યાપારોમાં જીવોની પ્રવૃત્તિ વધે. કેમકે આ પ્રકારના ઉપદેશથી જીવોની પ્રવૃત્તિ અન્ય જીવોની વિરાધના તરફ ઉત્સાહિત બને છે. કહેવાની મતલબ એ છે કે મુનિએ એવો ઉપદેશ ન દેવો જોઈએ કે જેથી કોઈ પણ જીવની વિરાધના થાય.

ધર્મનો ઉપદેશ કરનાર સંયમી આ વાતને સદા પૂર્ણરીતે ધ્યાનમાં રાખે કે મારા ઉપદેશથી બને ત્યાં સુધી જીવોનું કલ્યાણ થાય. કુમાર્ગમાં જવાવાળા પ્રાણી પણ આનો લાભ મેળવે અને સન્માર્ગે ચાલવા લાગે, શ્રોતાઓ ઉપર આવા ઉપદેશકનો પ્રભાવ પડે છે જે સ્વયં જ્ઞાન દર્શન અને ચારિત્રથી વિરુદ્ધ

एवम्भूतो मुनिः सर्वप्राणिनां शरणं भवतीति दृष्टान्तद्वारेण दर्शयति— 'से अणासायए' इति।

मूलम्—से अणासायए अणासायमाणे वज्झमाणाणं पाणाणं भूयाणं जीवाणं सत्ताणं जहा से दीवे असंदीणे एवं से भवइ सरणं महामुणी ॥ सू० ६ ॥

छाया—सः अनाशातकः अनाशातयन् वध्यमानानां प्राणानां भूतानां जीवानां सत्त्वानां, यथा स द्वीपः असन्दीनः, एवं स भवति शरणं महामुनिः ॥ सू०६ ॥

टीका—यथा सः=प्रसिद्धः असन्दीनः=जलोपप्लवरहितः द्वीपः प्राणिनां शरणम् =आश्रयो भवति, एवं सः=असौ अनाशातकः=अविराधकः अनाशातयन्=आशातना-मकुर्वन् महामुनिः=तीर्थङ्करो गणधरो वा तपःसंयमलब्धिसम्पन्नोऽनगारो वा वध्य-

---

दर्शन, और चारित्रसे विरुद्ध प्रवर्त्तन नहीं करता है। इसी लिये उस उपदेष्टाके लिये प्रभुका यह आदेश है कि वह अपनी आशातना (बिरा-धना) न करे। जो स्वयं धर्मसे विरुद्ध प्रवृत्तिशाली होता है, वह दूसरों को सुमार्गपर नहीं ला सकता है॥सू०५॥

ऐसा मुनि सर्व प्राणियोंका शरणभूत होता है-इस बातको दृष्टान्त द्वारा सूत्रकार दिखलानेके लिये "से अणासायए" यह सूत्र कहते हैं-

असन्दीन द्वीप कि जिसके चारों ओर पानी होते हुए भी जो स्वयं जलके उपद्रवसे रहित होता है-ऐसा प्रदेशविशेष जैसे अनेक प्राणियों का आश्रयभूत होता है, इसी तरह अनाशातक -अविराधक महामुनि-तीर्थङ्कर अथवा गणधर देव या तप और संयमकी लब्धिवाले मुनिजन भी आशातना (विराधना) से रहित होकर

પ્રવૃત્તિ ન કરતા હોય. આ માટે ઉપદેશકને પ્રભુનો એ આદેશ છે કે તે પોતાની વિરાધના ન કરે. જે સ્વયં ધર્મથી વિરૂદ્ધ ચાલનાર હોય છે તે બીજાને સુમાર્ગ ઉપર લાવી શકતા નથી. (સૂ૦ ૫)

એવા મુનિ સર્વપ્રાણીઓના શરણભૂત હોય છે એ. વાત દૃષ્ટાન્તદ્વારા સૂત્રકાર બતાવવા માટે "से अणासायए" આ સૂત્ર કહે છે.

અસન્દીન બેટ કે જેની ચારે તરફ પાણી હોય છે છતાં તે જળના ઉપદ્ર-વથી રહિત રહે છે. આવો પ્રદેશ અનેક પ્રાણીયોનો આશ્રયદાતા બને છે. એ જ રીતે અનાશાતક-અવિરાધક મહામુનિ-તીર્થંકર અથવા ગણધરદેવ તેમજ તપ અને સંયમની લબ્ધિવાળા મુનિજન પણ, આશાતના (વિરાધના)થી રહિત થઈને

मानानां प्राणानां भूतानां जीवानां सत्त्वानां सर्वेषां तद्रक्षणोपायप्रदर्शनतः शरणं भवति। वधकानां च तदध्यवसायान्निवर्त्तनेन विशिष्टगुणस्थानावस्थापनाच्छरणं भवति। तथाहि–अगारानगारधर्ममाचक्षाणस्तथाविधो महापुरुषः कतिचन प्रव्राजयति; कतिचन श्रावकव्रते प्रवर्त्तयति, कतिचन सम्यक्त्वं प्रापयन् मोक्षमार्गस्य प्रथमसोपाने समारोहयति, कतिचन प्रकृतिभद्रान् करोति, प्रगाढमिथ्यात्ववतश्चापि कतिचन नवनीतवन्मृदुलमानसान् विदधातीति॥ सू० ६॥

उक्तमर्थमुपसंहरन्नाह–'एवं से उट्ठिए' इत्यादि।

समस्त प्राणी, भूत, जीव और सत्त्वकी रक्षाके उपाय दिखानेके कारण समस्त प्राणियोंके, समस्त भूतोंके, समस्त जीवोंके और समस्त सत्त्वों के आश्रय–शरण होते हैं। तथा–वे उन प्राणी आदिके वध करनेवालोंके भी, उन्हें हिंसाके व्यापारसे निवृत्त कर विशिष्ट गुणस्थानमें पहुंचानेके कारण; शरण होते हैं। सबके शरण वे महामुनि वध करनेवाले जीवों में से कितनेक जीवोंको उपदेश दे कर दीक्षित कर देते हैं, कइयोंको श्रावकोंके व्रतोंमें स्थापित कर देते हैं, किननेकों को सम्यक्त्व प्राप्त करा कर मोक्षमार्गकी प्रथम सीढ़ी पर चढ़ा देते हैं, और कितनेक प्राणियोंको प्रकृतिसे भद्र बना देते हैं। यहां तक कि जिनके गाढ मिथ्यात्वका भी उदय है ऐसे भी कई जीवोंके चित्त को वे नवनीत (मक्खन) के समान कोमल बना देते हैं॥ सू० ६॥

पूर्वोक्त अर्थका उपसंहार करते हुए सूत्रकार कहते हैं–"एवं से उट्ठिए" इत्यादि।

સમસ્ત પ્રાણી, ભૂત, જીવ અને સત્વની રક્ષાનો ઉપાય પ્રદર્શિત કરવાને લીધે સમસ્ત પ્રાણીયોના, સમસ્ત ભૂતેના, સમસ્ત જીવોના, અને સમસ્ત સત્વોના આશ્રય–શરણ–દાતા હોય છે.

તથા—તે પ્રાણી આદિનો વધ કરનાર મનુષ્યોને હિંસાના વ્યાપારથી નિવૃત્ત કરી, વિશિષ્ટ ગુણસ્થાનમાં લઈ જવાના કારણે, તે મહામુનિ તે હિંસકોના પણ શરણ થાય છે. બધાના શરણ તે મહામુનિ વધ કરનાર જીવોમાંથી કેટલાક જીવોને ઉપદેશ આપી દીક્ષા ગ્રહણ કરાવે છે. કેટલાયને શ્રાવકના વ્રતોમાં દૃઢ બનાવે છે. કેટલાયને સમ્યક્ત્વ પ્રાપ્ત કરાવી મોક્ષધર્મની પ્રથમ સીડી ઉપર ચડાવી દે છે. અને કેટલાક પ્રાણીયોને પ્રકૃતિથી ફેરવનાર બને છે. ત્યાં સુધી કે જેનામાં ગાઢ મિથ્યાત્વનો પૂર્ણ ઉદય હોય એવા ઘણા જીવોના ચિત્તમાં પોતાની શુદ્ધ વાણીનો પ્રવાહ રેડી તેને માખણ જેવા કોમળ મનવાળા બનાવી દે છે. (સૂ૦ ૬)

પૂર્વોક્ત અર્થનો ઉપસંહાર કરતાં સૂત્રકાર કહે છે–"एवं से उट्ठिए" ઈત્યાદિ.

मूलम्—एवं से उट्ठिए ठियप्पा अणिहे अचले चले अबहिलेस्से परिव्वए ॥ सू० ७ ॥

छाया—एवं स उत्थितः स्थितात्मा अनीहः अचलः चलः अबहिर्लेश्यः परिव्रजेत् ॥ सू० ७ ॥

टीका—एवम्=उक्तरीत्या स उत्थितः=कर्मधूननार्थं गृहीतप्रव्रज्यः स्थितात्मा-श्रुतचारित्रधर्मे स्थितः=स्थिरीभूत आत्मा यस्य सः—धर्माराधनपरायणः, अनीहः=कपटवर्जितः—अनिगूहितबलवीर्य इत्यर्थः, यद्वा-'अस्निहः' इति च्छाया; रागद्वेषरहितः, अचलः=महावाते प्रवहति सति मेरुरिवानुकूलप्रतिकूलपरीषहोपसर्गसमुपस्थितौ सत्यामप्रकम्पः, विकृताध्यवसायरहित इत्यर्थः । चलः=स्थिरवासवर्जितः, उग्रविहारीत्यर्थः । अबहिर्लेश्यः=न वर्त्तते संयमाद् बहिर्लेश्या=मनोवृत्तिर्यस्य सः तथोक्तः, संयमैकलक्ष्यः सन् परिव्रजेत्=विहरेत् ॥ सू० ७ ॥

इस पूर्वोक्त रीतिसे कर्मों को हटानेके लिये जिसने आर्हती दीक्षा धारण की है, तथा जिसकी आत्मा श्रुतचारित्ररूप धर्म में स्थिरीभूत है-धर्मके आराधन करनेमें जो परायण है, कपटरहित है-अपने बल और वीर्यको जिसने छिपाता नहीं है, अथवा अस्निह-राग और द्वेषसे रहित है, झंझावातके चलने पर भी सुमेरुकी ज्यों जो अनुकूल प्रतिकूल परीषह और उपसर्गों के आने पर भी अडोल बना रहता है-विकृत-परिणामोंसे शून्य रहता है, जो उग्रविहारी है-स्थिरवास नहीं करता है, संयमके सिवाय बाहिरी पदार्थोंमें जिसकी मानसिक वृत्ति चलायमान नहीं होती है, ऐसा मुनि संयमरूप अपने एक लक्ष्यमें स्थिर बन विहार करे। सू०७॥

એ પૂર્વોક્ત રીતથી કર્મોને હટાવવા માટે જેણે આર્હતી દીક્ષા ધારણ કરી છે તથા જેનો આત્મા શ્રુત ચારિત્રરૂપ ધર્મમાં સ્થિર છે-ધર્મનું આરાધન કરવામાં જે પરાયણ છે, કપટરહિત છે-પોતાનું બળ અને વીર્યને જેણે છુપાવેલ નથી. અથવા જે રાગ અને દ્વેષથી રહિત છે, ગમે તેવા ઝંઝાવાતની સામે જેમ મેરૂ પર્વત અડગ અને અચળ રહે છે, એ રીતે ગમે તેવા ઉપસર્ગો અને પરિષહ આવવા છતાં અચળ રહે છે-વિકૃત પરિણામોથી શૂન્ય રહે છે, જે ઉગ્રવિહારી છે-સ્થિર વાસ કરતા નથી, સંયમ સિવાય બહારના પદાર્થોમાં જેની માનસિક વૃત્તિ ચલાયમાન થતી નથી, એવા મુનિ સંયમરૂપ પોતાના એક લક્ષમાં સ્થિર બની વિહાર કરે. (સૂ૦૭)

उक्तरीत्या चारित्रमाराधयन् ज्ञानं प्राप्य मुक्तो भवतीति दर्शयति—'संखाय' इत्यादि ।

मूलम्—संखाय पेसलं धम्मं दिट्ठिमं परिणिव्वुडे ॥सु०८॥

छाया—संख्याय पेशलं धर्मं दृष्टिमान् परिनिर्वृतः ॥ सू० ८ ॥

टीका—दृष्टिमान्=सम्यग्दर्शनवान् पेशलं=हिंसादिदोषरहितं शुद्धं धर्मं=जिनोक्तं श्रुतचारित्राख्यं संख्याय=सम्यग्ज्ञानेन विज्ञाय परिनिर्वृतः=समूलसकलकर्मक्षयात् प्रकटितशुद्धात्मस्वरूपतया निराबाधाऽमन्दानन्दसन्दोहसम्पन्नो भवति ॥

यस्तु मिथ्यादृष्टिः पेशलं धर्मं न जानाति स परिनिर्वृतो न भवतीति दर्शयितुमाह—'तम्हा' इत्यादि ।

उक्त रीतिसे चारित्रकी आराधना करनेवाला मुनि ज्ञानकी प्राप्ति करके मुक्त होता है—इस बातको सूत्रकार कहते हैं—"संखाय" इत्यादि ।

सम्यक् दर्शन—सम्पन्न मुनि हिंसादिक दोषोंसे रहित शुद्ध ऐसे जिनेन्द्रद्वारा प्रतिपादित श्रुतचारित्ररूप धर्मका सम्यक् ज्ञानसे परिज्ञान कर परिनिवृत्त हो जाता है—अर्थात् आमूलचूल सकल कर्मोंके विनाश होनेसे प्रकटित शुद्ध आत्मस्वरूप होनेके कारण, निराबाध अमन्द आनंद की परंपरासे संपन्न हो जाता है—सम्यग्दर्शन संपन्न महामुनि जिनेन्द्रदेव कथित धर्मकी सम्यग्ज्ञानपूर्वक आराधना करनेसे समस्त कर्मोंसे रहित हो जाता है और अव्याबाध सुखका भोक्ता बन जाता है ॥ सू०८॥

जो मिथ्यादृष्टि हैं, वे मिथ्यात्वके प्रभावसे शुद्ध ऐसे जिनोक्त धर्म को नहीं जानते हैं; इसलिये वे मुक्तिके भी पात्र नहीं होते हैं—इस बात

આ રીતથી ચારિત્રની આરાધના કરવાવાળા મુનિ જ્ઞાનની પ્રાપ્તિ કરી મુક્ત બને છે; આ વાતને સૂત્રકાર કહે છે—"संखाय" ઇત્યાદિ—

સમ્યક્દર્શનસંપન્ન મુનિ હિંસાદિક દોષોથી રહિત શુદ્ધ એવા જિનેન્દ્ર દ્વારા પ્રતિપાદિત શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મને સમ્યક્જ્ઞાનથી જાણીને પરિનિર્વૃત થઈ જાય છે, અર્થાત્ પોતાના સકળ કર્મોનો સમૂળ વિનાશ થતાં પ્રગટેલા શુદ્ધ આત્મસ્વરૂપના કારણે કોઈ પ્રકારની બાધારહિત અમન્દ (પારાવાર) આનંદસંપન્ન થઈ જાય છે. સમ્યગ્દર્શનસંપન્ન મહામુનિ જીનેન્દ્રદેવે કહેલા ધર્મની સમ્યગ્જ્ઞાનપૂર્વક આરાધના કરવાથી સઘળા કર્મોથી રહિત બની જાય છે અને અવ્યાબાધ સુખના ભોક્તા બને છે. (સૂ૦૮)

જે મિથ્યાદષ્ટિ છે તે મિથ્યાત્વના પ્રભાવથી શુદ્ધ એવા જીનોક્ત ધર્મને

मूलम्—तम्हा संगंति पासह, गंथेहिं गढिया णरा विसण्णा कामक्कंता, तम्हा लूहओ णो परिवित्तसेज्जा ॥ सु० ९ ॥

छाया—तस्मात् सङ्गमिति पश्यत, ग्रन्थैर्ग्रथिता नरा विषण्णाः कामक्रान्ताः, तस्माद् रूक्षात् नो परिवित्रसेत् ॥ सू० ९ ॥

टीका—इति शब्दोऽत्र हेत्वर्थे; इति=यतः-मिथ्यादृष्टिः सङ्गवान् भूत्वा न परिनिर्वृतो भवति तस्मात् सङ्गं=मातापित्रादिसम्बन्धं तद्विपाकं वा पश्यत=विवेकबुद्ध्या पर्यालोचयत। सङ्गमाह-ग्रन्थैः=सबाह्याभ्यन्तरपरिग्रहैः ग्रथिताः=अवबद्धाः विषण्णाः=ग्रन्थसङ्गे निमग्नाः कामक्रान्ताः-कामभोगाभिनिविष्टचित्ता न परिनिर्वृता भवन्ति; किन्तु शारीरमानसैर्नानाविधदुरन्तदुःखैः परितप्ता एव भवन्ति, तस्मात् कारणात् मुनिः रूक्षतः-रागादिरहितत्वादस्निग्धतया रूक्ष इव रूक्षः=निस्सङ्गः

को दिखानेके लिये सूत्रकार कहते हैं "तम्हा" इत्यादि।

सूत्रमें इति शब्द हेत्वर्थमें प्रयुक्त हुआ है। जिस कारणसे वह मिथ्यादृष्टि बाह्य पदार्थों में संग–आसक्तिवाला बन कर मुक्त नहीं होता है, इसी कारणसे हे शिष्य! तुम भी माता पिता आदिके संबंधका और उसके विपाकका विवेकबुद्धिसे अच्छी तरहसे विचार करो। जो बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रहोंसे बंधे हुए हैं, और इसीलिये जो परिग्रहके सम्बन्धमें मग्न हैं, कामभोगोंमें जिनका चित्त सर्व प्रकारसे लवलीन है, वे उस अवस्थामें मुक्त नहीं हो सकते हैं। सिर्फ ऐसे जीव शारीरिक और मानसिक नाना प्रकारके दुरन्त दुःखोंसे ही संतप्त होते रहते हैं। इस कारण मुनिका कर्तव्य है कि वह रूक्ष–संयमसे कभी भी उद्विग्न

જાણતા નથી, આથી તે મુક્તિને પાત્ર પણ નથી બનતા. આ વાત બતાવવા સૂત્રકાર કહે છે. "तम्हा" ઈત્યાદિ—

સૂત્રમાં इति શબ્દ હેતુ–અર્થમાં પ્રયુક્ત થયેલ છે. જે કારણથી તે મિથ્યાદૃષ્ટિ બાહ્ય પદાર્થોમાં આસક્તિવાળા બની મુકત થઈ શકતા નથી, આ માટે હે શિષ્યો! તમે પણ માતા પિતા આદિના સંબંધનો અને એના વિપાકનો વિવેકબુદ્ધિથી વિચાર કરો. જે બાહ્ય અને આન્તરિક પરિગ્રહોથી બંધાયેલા છે અને એથી કરી તેઓ એમાં જ ખુંચેલા છે, કામભોગોમાં જેમનું ચિત્ત સર્વ–પ્રકારથી મગ્ન છે તેઓ એ અવસ્થામાંથી મુક્ત થઇ શકતા નથી. આવા જીવો શારીરિક અને માનસિક નાના પ્રકારની વ્યાધિ–ઉપાધિઓમાં સંતપ્ત રહે છે. આ કારણે મુનિનું કર્તવ્ય કે તે રૂક્ષ–સંયમથી કદિ પણ ઉદ્વિગ્ન ન બને.

संयमः, तस्मात् नो परिवित्रसेत्=न बिभीयात्-संयममुपादाय परीषहादिभ्यस्त्रासं न प्राप्नुयात्-अविचलमनसा संयमं परिपालयेदित्यर्थः ॥ सू० ९ ॥

न हो। रूक्षका अर्थ यहां संयम है; क्यों कि यह रागादिक दोषोंसे रहित होता है, इस लिये इसमें स्निग्धता नहीं आ सकती है, अतः उसके न होनेसे यह रूक्षकी तरह रूक्ष है, रूक्ष होनेसे ही यह कषायोंसे संश्लिष्ट नहीं हो सकता है ऐसे संयमको ग्रहण कर मुनि परीषह आदिसे भय-भीत न हो-अविचलित चित्तसे संयमकी पालना और उसकी सदा रक्षा करे।

मिथ्यादृष्टि मुक्त नहीं होता-इसका कारण सूत्रकार बतलाते हैं। वे कहते हैं कि उसकी मिथ्यात्वके सम्बन्धसे बाह्य पदार्थोंमें आसक्ति बनी रहती है, जो संयमकी विघातक है। इसकी बुद्धि कामाक्रान्त होती है, तथा बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रहोंमें यह सदा मग्न रहता है। इस लिये अनेक दुरन्त शारीरिक एवं मानसिक कष्टोंका सामना करता हुआ भी संयमके दर्शन तकसे वंचित रहता है, फिर मुक्तिकी तो बात ही क्या करनी? इसलिये मुनिका कर्तव्य है कि वह संयम ग्रहण करने के बाद परीषह और उपसर्गादिकोंके आने पर भय न करे और अवि-चलित मन बन संयमकी पालना और रक्षा करता रहे ॥ सू० ९ ॥

રૂક્ષનો અર્થ અહિં સંયમ છે, કેમ કે તે રાગાદિક દોષોથી રહિત હોય છે. આ કારણે તેનામાં સ્નિગ્ધતા આવી શકતી નથી. આ કારણે તે રૂક્ષની તરહ રૂક્ષ છે. રૂક્ષ હોવાથી જ તે કષાયોથી અકળાતા નથી. આવા સંયમને ગ્રહણ કરી મુનિ પરિષહ આદિથી ભયભીત ન બને-અવિચલિતચિત્તથી સંયમની પાલના અને તેની સદા રક્ષા કરે.

મિથ્યાદષ્ટિ મુક્ત નથી થઈ શકતા; એનું કારણ સૂત્રકાર બતાવે છે. તે કહે છે કે એનામાં મિથ્યાત્વ હોવા સબબ તેની બાહ્ય પદાર્થોમાં આસક્તિ રહે છે, જે સંયમની વિઘાતક છે. એની બુદ્ધિ વિષયથી વ્યાપ્ત હોય છે, અને બાહ્ય તથા આન્તરિક પરિગ્રહોમાં એ સદા મગ્ન રહે છે. આથી ભયંકર એવાં શારીરિક અને માનસિક કષ્ટોનો સામનો કરતાં છતાં પણ સંયમના દર્શનથી પણ વંચિત રહે છે, પછી મુક્તિની તો વાત જ કયાં કરવી. આ માટે મુનિનું કર્તવ્ય છે કે સંયમ ધારણ કરવા બાદ પરિષહ અને ઉપસર્ગાદિકોના આવવાથી ભયભીત ન બને અને અવિચલિત મનના બની સંયમની પાલના અને રક્ષા કરતા રહે. (સૂ૦ ૯)

कस्य पुनः संयमादपरित्रासः संभवतीति जिज्ञासायामाह–'जस्सिमे' इत्यादि।

मूलम्–जस्सिमे आरंभा सव्वतो सव्वत्ताए सुपरिण्णाया भवंति, जेसिमे लूसिणो णो परिवित्तसंति, से वंता कोहं च माणं च मायं च लोहं च । एस तुट्टे वियाहिए–त्तिबेमि ।सू०१०।

छाया—यस्येमे आरम्भाः सर्वतः सर्वतया सुपरिज्ञाता भवन्ति, येष्विमे लूषिणो नो परिवित्रस्यन्ति, स वान्त्वा क्रोधं च मानं च मायां च लोभं च । एष तुट्टः व्याख्यातः, इति ब्रवीमि ॥ सू० १० ॥

टीका—येषु=आरम्भेषु आरम्भप्रवृत्तिषु इमे=ग्रन्थग्रथिता विषण्णाः कामक्रान्ताः जनाः लूषिणः=लूषणशीला हिंसका नो परिवित्रस्यन्ति=अज्ञानेन प्रबलमोहोदयेन च नोद्विजन्ते । स्वस्वप्राणपरित्राणकारणात् स्वस्वस्थानस्थिताः पृथिव्यादयस्तान् भयसञ्ज्ञावतः, तथा–बिलनीडगृहादिकं निर्माय स्वात्मगोपनपराः स्थिताः

क्या कारण है कि जिससे संयमसे मुनिजनोंको त्रास नहीं होता है? इस प्रकारकी जिज्ञासा होनेपर सूत्रकार कहते हैं–"जस्सिमे" इत्यादि।

जो जीव अनेक आरंभों–अनेक आरम्भमय प्रवृत्तियोंमें बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रहोंसे ग्रथित, तथा उस परिग्रहके जुटानेमें मग्न और कामभोगों में मूर्च्छित बन कर अनेक जीवोंकी हिंसा करनेरूप प्रवृत्तिमें संक्लिष्टचित्त रहते हैं, वे अज्ञान और प्रबल मोहके उदयसे उस प्रकार की प्रवृत्तिको करते हुए भय नहीं करते हैं–हमें नरकनिगोदादिकोंके दुरन्त दुःख भोगने पडेंगे इस प्रकारके भयसे वे किसी भी तरह नहीं डरते हैं । ये दुष्ट जन अपने २ स्थानमें स्थित भयसंज्ञावाले पृथिवीका-

---

કયું કારણ છે કે મુનિજનને સંયમથી ત્રાસ થતો નથી ? આ પ્રકારની જીજ્ઞાસા થવાથી સૂત્રકાર કહે છે–"जस्सिमे" ઇત્યાદિ.

જે જીવ અનેક આરંભો–અનેક આરંભમય પ્રવૃત્તિઓમાં બાહ્ય અને અંદરના પરિગ્રહોથી ગુંથાઈ, તથા આવા પરિગ્રહને જોડવામાં મગ્ન અને કામભોગોમાં મૂર્છિત બની, અનેક જીવોની હિંસા કરવારૂપ પ્રવૃત્તિમાં વ્યાકુળ ચિત્ત રહે છે, તે અજ્ઞાન અને પ્રબળ મોહના ઉદયથી એ પ્રકારની પ્રવૃત્તિઓ કરતાં ભય નથી કરતા–અમોને નરક નિગોદાદિકનાં ભયંકર દુઃખો ભોગવવા પડશે આ પ્રકારના ભયથી તે કોઈ પણ રીતે ડરતા નથી. આવા દુષ્ટ જનો પોત-પોતાના સ્થાનમાં રહી ભયસંજ્ઞાવાળા પૃથ્વીકાયિક આદિ એકેન્દ્રિય જીવોને,

द्वीन्द्रियादयः पशुपक्षिमनुष्यादिपञ्चेन्द्रियाश्च ये स्वयमेव परित्रस्तास्तिष्ठन्ति तानपि हिंसितुं प्रवृत्ताः जना नरकनिगोदादिदुरन्तदुःखेभ्यः कथं चिदपि न बिभ्यति, प्रत्युत तान् अन्विष्यान्विष्योपमर्द्य हृष्यन्तीति भावः।

किन्तु यस्य गृहीतप्रव्रज्यस्य मुनेः इमे=पूर्वोक्ता मातापित्रादिसङ्गजनिता वा आरम्भाः उपभोगाद्यर्थं द्रव्यभावशस्त्रैः पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसोपमर्दनरूपाः शस्त्रपरिज्ञाध्ययनप्रतिबोधिताः सावद्यव्यापाराः सर्वतः=द्रव्यक्षेत्रकालभावतः सर्वात्मना=त्रिकरणात्रियोगैः सुपरिज्ञाताः=ज्ञपरिज्ञया बन्धहेतुत्वेन विज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया परित्यक्ता भवन्ति।

यिक आदि एकेन्द्रिय जीवोंको, बिल, नीड, घर बना कर उसीमें रह कर अपनी आत्माकी रक्षा करनेमें तत्पर द्वीन्द्रियादिक तथा पशु, पक्षी और मनुष्य आदि पंचेन्द्रिय जीवों को, कि जो स्वयं ही डरे हुए रहते; हैं ढूँढ २ कर मारते हैं और आनन्द मनाते हैं।

किंतु–जिसने भागवती दीक्षाका अङ्गीकार किया है; ऐसे मुनि इन पूर्वोक्त कुकृत्योंको अथवा माता पिता आदिके संगसे उद्भूत आरंभ और उपभोग आदिके लिये द्रव्य एवं भावशस्त्रोंसे पृथिवीकायिक, अप्कायिक तेजकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रस जीवोंके विनाश करनेरूप शस्त्रपरिज्ञाके अध्ययनमें समझाये गये सावद्यव्यापारको, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षासे, त्रिकरण और त्रियोगोंद्वारा, ज्ञपरिज्ञा से बन्धके कारणरूप जानकर प्रत्याख्यान परिज्ञासे परित्याग करते हैं।

ભોણ, રાફડા, ઘર બનાવી એમાં રહીને પોતાના આત્માની રક્ષા કરવામાં તત્પર બેઇન્દ્રિય, પશુ, પક્ષી અને મનુષ્ય આદિ પંચેન્દ્રિય જીવોને, કે જે પોતે જ ડરતા રહે છે; ગોતી ગોતીને મારે છે અને આનંદ મનાવે છે.

પણ જેઓએ ભાગવતી દીક્ષા અંગીકાર કરી છે; એવા મુનિઓ આ પૂર્વોક્ત કુકૃત્યોનો, અથવા માતા પિતા આદિના સંગથી ઉદ્ભૂત આરંભ અને ઉપભોગ આદિને માટે દ્રવ્ય અને ભાવશસ્ત્રોથી પૃથ્વીકાયિક, અપ્કાયિક, તેજકાયિક, વાયુકાયિક, વનસ્પતિકાયિક, અને ત્રસજીવોના વિનાશ કરવારૂપ શસ્ત્રપરિજ્ઞાના અધ્યયનમાં સમજાવવામાં આવેલ સાવદ્ય વ્યાપારોનો, દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ અને ભાવની અપેક્ષાથી, ત્રિકરણ અને ત્રિયોગથી, જ્ઞપરિજ્ઞાથી બંધના કારણરૂપ જાણીને પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞાથી પરિત્યાગ કરે છે.

स क्रोधं च मानं च मायां च लोभं च चतुरः कषायान् वान्त्वा=उद्गीर्य-त्यक्त्वेत्यर्थः, मोहनीयं क्षपयति-संयममार्गे विहरति। एषः=असौ मुनिः त्रुट्टः=त्रुटितः-कर्मसन्ततेरपसृतः-छिन्नकर्मबन्धः-अकर्मा व्याख्यातः=तीर्थङ्करगणधरादिभिरभिहितः। एतादृशस्य संयमात् परित्रासो न भवतीति बोध्यम्। इति=एवं पूर्वोक्तं वक्ष्यमाणं च ब्रवीमि=कथयामि ॥ सू० १० ॥

वह चतुर मुनि क्रोध, मान, माया और लोभ कषायोंका परित्याग कर, मोहनीय कर्मके विनाश स्वरूपसंयममार्गमें विहार करता है। ऐसा मुनि ही तीर्थङ्कर और गणधरादि देवोंके द्वारा कर्मसंततिसे अलग-छिन्न-बंधवाला-अकर्मा कहा गया है। इस प्रकारके मुनिको संयमसे भय नहीं होता है। 'इति ब्रवीमि'-ऐसा मैं कहता हूं, आगे और भी इसके विषयमें कहूंगा।

भावार्थ-क्या कारण है कि जिससे संयमी मुनिजनोंको संयमसे त्रास नहीं होता है? इसी प्रश्नका उत्तर इस सूत्रमें सूत्रकारने दिया है। वे कहते हैं कि जो जीव आरंभ और आरंभमय प्रवृत्तियोंमें लवलीन रहते हैं, परिग्रहमें जो मग्न हो रहे हैं, अथवा उसके जुटानेमें ही जो रातदिन एक करते रहते हैं, विषयोंमें भोगेच्छासे जिनका अन्तःकरण आक्रान्त बना हुआ है, और इसीलिये जो दूसरे जीवोंकी विराधना करनेसे नहीं डरते हैं-त्रस और स्थावर तकको भी मारकर जो आनंद मानते हैं; ऐसे निर्दयी जीवोंको इतना तक भी ख्याल नहीं होता है कि हमें इन अपने कुकृत्यों का फल नरकनिगोदादि गतियोंमें जाकर भोगना पडेगा।

એ ચતુર મુનિ ક્રોધ, માન, માયા અને લોભ કષાયોનો પરિત્યાગ કરી મોહનીય કર્મના વિનાશરૂપ સંયમમાર્ગમાં વિહાર કરે છે. એવા મુનિ જ તીર્થંકર અને ગણધર આદિ દેવોદ્વારા કર્મસંતતિથી અલગ-છિન્નબંધવાળા-અકર્મા કહેવાયા છે. આવા પ્રકારના મુનિઓ સંયમથી ભય કરતા નથી. "इति ब्रवीमि" —આ રીતે હું કહું છું, આગળ પણ એના વિષયમાં કહીશ.

ભાવાર્થ-કયું કારણ છે કે જેનાથી સંયમી મુનિજનોને સંયમથી ત્રાસ થતો નથી? આ પ્રશ્નનો ઉત્તર આ સૂત્રમાં સૂત્રકારે આપેલ છે. તેઓ કહે છે કે જે જીવ આરંભ અને આરંભમય પ્રવૃત્તિઓમાં મગ્ન રહે છે, પરિગ્રહમાં જે મગ્ન હોય છે, અને એનામાં જ જે રાત-દિન રચ્યોપચ્યો રહે છે, વિષયોમાં ભોગેચ્છાથી જેનું અન્તઃકરણ આક્રાન્ત બનેલું છે, અને આ માટે જે બીજા જીવોની વિરાધના કરવાથી ડરતો નથી, ત્રસ અને સ્થાવરને મારીને જે આનંદ માને છે; એવા નિર્દયી જીવોને એટલો પણ ખ્યાલ નથી થતો કે અમારે આ મેં કરેલા કૃત્યોનું ફળ નરકનિગોદાદિક ગતિઓમાં જઈને ભોગવવું પડશે. કેમકે અજ્ઞાન અને

ब्रवीमीतिपदप्रतिज्ञातं वक्ष्यमाणमर्थमुपदर्शयति-‘ कायस्स ’ इत्यादि ।

मूलम्—कायस्स वियाघाए संगामसीसे वियाहिए । से हु पारंगमे मुणी। अवि हम्ममाणे फलगावयट्ठी कालोवणीए कंखेज्ज कालं जाव सरीरभेओ त्ति बेमि ॥ सू० ११ ॥

छाया—कायस्य व्याघातः संग्रामशीर्षं व्याख्यातः । स हु पारङ्गमो मुनिः । अपि हन्यमानः फलकापकृष्टी कालोपनीतः काङ्क्षेत्कालं यावत् शरीरभेद इति ब्रवीमि ॥ सू० ११ ॥

टीका—कायस्य=औदारिक—तैजस—कार्मण—शरीरस्य भवग्राहिकर्मचतुष्टयस्य वा

क्यों कि अज्ञान और प्रबल मोहके उदयसे उन्हें आरंभ—समारंभादि कार्योंसे भय नहीं होता है, परंतु जो यह समझ चुके हैं कि ये आरम्भ—समारम्भ आदि कार्य भयङ्कर नरकनिगोदादिक अनर्थोंके उत्पादक हैं, इसलिये वे इनका त्रिकरण और त्रियोगसे द्रव्यक्षेत्रादिकी भी अपेक्षासे त्यागकर चुके हैं ऐसे मुनिजनोंको सदा ये भयप्रद ही ज्ञात होते रहते हैं। इसीलिये इन सब अनर्थोंके त्यागरूप संयमसे उन्हें अत्रास होता है, और इसीसे कषाय आदिके त्यागक्रमसे वे धीरे २ अकर्मा बनते हैं । यही तीर्थङ्करादिकोंका अभिमत है ॥ सू० १० ॥

“ ब्रवीमि ” इस पदसे सूचित वक्ष्यमाण विषयको सूत्रकार “कायस्स” इत्यादि सूत्रसे प्रदर्शित करते हैं—

औदारिक, तैजस और कार्मण—इन तीन शरीरों अथवा भवोपग्राहि

પ્રબળ મોહના ઉદયથી તેને આરંભ—સમારંભાદિ કાર્યોથી ભય થતો નથી. પરંતુ જે સમજી ચુકેલા છે કે આ આરંભ-સમારંભ આદિ કાર્ય ભયંકર નરક નિગોદાદિક અનર્થોનાં ઉત્પાદક છે, તેથી જે તેનો ત્રણ કરણ અને ત્રણ યોગથી દ્રવ્ય—ક્ષેત્રાદિની પણ અપેક્ષાથી ત્યાગ કરી ચુકેલ છે, એવા મુનિરાજોને એ સદા ભયપ્રદ જ જણાતાં રહે છે. આ માટે આ બધા અનર્થોના ત્યાગરૂપ સંયમથી તેને ત્રાસ થતો નથી. અને એથી કષાય આદિનો ત્યાગક્રમથી તે ધીરે ધીરે અકર્મા બને છે. એવો તીર્થંકર આદિનો અભિપ્રાય છે. (સૂ૦૧૦)

“ ब्रवीमि ” આ પદથી સૂચિત વક્ષ્યમાણ વિષયને સૂત્રકાર “ कायस्स ” ઇત્યાદિ સૂત્રથી પ્રદર્શિત કરે છે.

ઔદારિક, તૈજસ અને કાર્મણ આ ત્રણ શરીરો અથવા ભવોપગ્રાહી ચાર

व्याघातः=आत्यन्तिकविनाशः संग्रामशीर्षम्=अष्टविधकर्मवैरिसंग्रामशीर्षम् व्याख्यातः=तीर्थङ्करैः कथितः । यथा=द्रव्यसंग्रामशिरसि शत्रुं पराजित्येष्टान् भोगान् वीरः प्राप्नोति, एवं भावसंग्रामशिरसि कर्मवैरिविनाशनाद् वीरः संयमी अनन्तकेवलज्ञानकेवलदर्शनं प्राप्नोतीति भावः । स हु=स एव मुनिः पारंगमः ज्ञानादिपञ्चविधाचारतरणिसमारूढः संसारसागरपारगामी भवति । किञ्च स परीषहोपसर्गैर्हन्यमानोऽपि=उपद्रुतोऽपि फलकावकृष्टी=अवकृष्टमस्यास्तीत्यवकृष्टी फलकवदवकृष्टी फलकावकृष्टी, यथा फलकं वास्यादिभिरुभयपार्श्वतस्तष्टं घट्टितं सत् तनु भवति, अरक्तद्विष्टं वा भवति, तथा साधुरपि सबाह्याभ्यन्तरेण तपसा निष्टप्त-

---

चार अघातिया कर्मोंके आत्यन्तिक क्षयको, तीर्थङ्करोंने संग्रामशीर्ष, अर्थात्-अष्टविध कर्मोंके साथ संग्रामका अग्रभाग कहा है। जैसे द्रव्यसंग्रामके अग्र भागमें शत्रुको जीत कर वीर पुरुष अपने इच्छित भोगोंको प्राप्त करता है, इसी तरह भावसंग्रामके अग्र भागमें कर्मरूपी वैरियोंके विनाशसे वीर संयमी अनन्त केवलज्ञान अनंत केवलदर्शन को प्राप्त कर लेता है। ऐसा ही मुनि ज्ञानाचार आदि पांच प्रकारके आचाररूपी नौका पर सवार होकर संसाररूपी समुद्रका पारगामी होता है। परीषह और उपसर्गों से उपद्रुत होता हुआ भी यह फलककी तरह अवकृष्टी होता है। अवकृष्ट जिसके है वह अवकृष्टी है, फलकके तुल्य जो अवकृष्टी है वह फलकावकृष्टी है। जैसे फलक-काष्ठका पाटिया कुल्हाडी वगैरह हथियारोंसे आजूबाजूमें छोले जाने पर पतला हो जाता है, उसी तरह साधु भी बाह्य और आभ्यन्तर तप तपनेसे कृशशरीर-दुर्बल और रागद्वेष रहित हो जाता है। अथवा-जैसे वही फलक, वासी (वसोला)

અઘાતિયા કર્મોના આત્યન્તિક ક્ષયને તીર્થંકરોએ સંગ્રામશીર્ષ, અર્થાત્-અષ્ટવિધ કર્મોની સાથે સંગ્રામનો અગ્રભાગ કહેલ છે. જે રીતે દ્રવ્યસંગ્રામના અગ્ર ભાગમાં શત્રુને જીતી વીર પુરૂષ પોતાના ઇચ્છિત ભોગોને પ્રાપ્ત કરે છે, આવી રીતે ભાવસંગ્રામના અગ્ર ભાગમાં કર્મરૂપી વૈરીયોના વિનાશથી વીર સંયમી અનંત કેવળજ્ઞાન, અનંત કેવળ દર્શનને પ્રાપ્ત કરી લે છે. એ જ રીતે મુનિ જ્ઞાનાચાર આદિ પાંચ પ્રકારના આચારરૂપી નૌકા ઉપર સવાર થઈ સંસારરૂપી સમુદ્રને પાર ઉતરનાર બને છે. પરિષહ અને ઉપસર્ગોથી ઉપદ્રુત (યુક્ત) થવા છતાં પણ તે મક્કમ રહે છે. જેવી રીતે ફલક-લાકડાનું પાટીયું કુવાડાથી કે બીજા હથીયારોથી છોલતાં પાતળું થઈ જાય છે, એ જ રીતે સાધુ પણ બાહ્ય અને અંદરથી તપ તપતાં તેનું શરીર દુબળું અને રાગદ્વેષરહિત થઈ જાય છે. જેમ પાટીયું કુવાડા વિ. છોલવાથી પાતળું બને છે

देहस्तनुदुर्बलशरीरो रागद्वेषरहितश्चेति। यद्वा-यथा फलकमुभयतो वास्यादिनाऽव-कृष्यमाणमवकृष्टं च सत् शयनोपयोगि फलकं लेखनोपयोगि पट्टिकाख्यं वा संपद्यते तथा मुनिर्बाह्याभ्यन्तरेण तपसा बहिरन्तश्चात्मानमवकर्षति, तत्रानुकूलप्रतिकूलपरिष-होपसर्गैर्बहिः शरीरमन्तस्तु कर्म अवकृष्यमाणं सदात्माऽवकृष्टो भवति, वास्यादिशस्त्रेण तक्ष्यमाणः कशावेत्रादिना ताड्यमानो वा कर्मत्रोटनान्नो निर्वेदं प्राप्नोति।

यद्वा—' फलकावस्थायी ' इति छाया। दुर्वचनवास्यादिभिस्तक्ष्यमाणोऽपि

कुल्हाडी वगैरहसे छीले जानेपर और घिसे जानेपर पतला और चिकना हो जाता है और शयन करनेके काममें तख्तरूपसे और लिखने पढ़नेके काममें पट्टीरूपसे आता है, उसी प्रकार मुनि बाह्य और आभ्यन्तर तपोंद्वारा बाहर और भीतरसे अपने आपको कृश कर देता है, अनुकूल, प्रतिकूल परीषह और उपसर्गों के जीतनेसे बाहरमें उसका शरीर और भीतरमें कर्मोंके बंधन शिथिल हो जाते हैं, ऐसी अवस्थामें वह आत्मा उन कर्मोंके बंधनसे शिथिल-हल्का हो जाता है। पहिले कर्मोंके बंधनका जितना भार उस पर था उसके शिथिल होने पर आत्मा भी पहिलेकी अपेक्षा उस भारके शिथिल होते ही स्वयं अपने आपको विना बोझके अनुभव करने लगता है। क्रम २ से जब वह कर्मोंका शिथिल हुआ बंधन बिलकुल नष्ट होने लगता है तब वह आत्मा कर्मोंके टूटते समय कुल्हाडी आदि शस्त्रसे काटे जाने पर या कशा-कोडा और वेत्र आदिसे ताडित होने पर भी खेदखिन्न नहीं बनता है।

अथवा-"फलगावयट्ठी" की संस्कृत छाया 'फलकावस्थायी' भी होती

અને ઘસવાથી લીસું થાય છે અને સૂવા માટે પાટના રૂપમાં અને લખવા-પઢવાના કામે પટ્ટીરૂપમાં ફેરવાય છે, એ જ રીતે મુનિ બાહ્ય અને અંદરના તપથી પોતે પોતાની જાતને દુબળી બનાવી દે છે. અનુકૂળ-પ્રતિકૂળ પરિષહ અને ઉપસર્ગને જીતવાથી બહારમાં એનું શરીર અને અંદરમાં કર્મોનાં બંધન છુટી જતાં એનો આત્મા હલકો બની જાય છે. પ્રથમ કર્મોનાં બંધનનો જેટલો ભાર તેના ઉપર હતો તે દૂર થતાં અને બહારનાં બંધન પણ હટી જતાં સ્વયં પોતે પોતાને બોજારહિત માને છે. ક્રમ ક્રમથી કર્મોનો બોજ હલકો બને છે, અને બંધન તુટતાં તુટતાં સાવ નિર્મૂળ બને છે, ત્યારે આત્મા ખીલી ઉઠે છે. ખેદનું નામનિશાન સરખું રહેતું નથી.

અથવા—"फलगावयट्ठी "ની સંસ્કૃત છાયા फलकावस्थायी પણ થાય છે. એનો

यः कषायाभावेन फलकवदचलोऽवतिष्ठते तच्छीलश्च स फलकावस्थायी-वासीचन्दनकल्पः, वास्या तक्ष्यते चन्दनेन चाऽनुलिप्यते, उभयत्र समभाव इत्यर्थः ।

यद्वा—' फलकापदर्थी ' फलं कर्मक्षयरूपं तदेव फलकं तेनाऽऽपदि संसारभ्रमणरूपायामर्थः प्रयोजनं फलकापदर्थः, स विद्यते यस्यासौ फलकापदर्थी-संसारभ्रमणरूपायामापदि कर्मक्षयरूपफलाभिलाषीत्यर्थः ।

तथा कालोपनीतः—कालः=मरणकालः उपनीतः=प्रज्ञाविषयीकृतो येन स

है। इसका अर्थ इस प्रकार है कि दुर्वचनरूपी कुठारसे छेदा गया भी वह मुनि कषायरहित होनेसे फलककी तरह विना किसी विकृतिके स्थिरचित्त रहता है। इसे क्या वसोला क्या चन्दन? दोनोंमें समता रहती है। चाहे कुल्हाडीसे यह काट दिया जावे तो इसे उसमें रोष नहीं, और चन्दनसे लिप्त कर दिया जावे तो उसमें उसे हर्ष नहीं, अर्थात्-उसे दोनोंमें समभाव रहता है।

अथवा—" फलकापदर्थी " यह भी संस्कृत छाया "फलकावयट्ठी" जब इस पदकी मानी जावेगी, तब इसका अर्थ इस प्रकारसे होगा कि कर्मक्षयरूप जो फल वही हुआ फलक, उससे संसारपरिभ्रमणरूप आपत्तिमें जो मुनि प्रयोजनवाला है वह फलकापदर्थी है। मुनिजन संसारपरिभ्रमणरूप आपत्तिमें कर्मक्षयरूप फलके अभिलाषी होते हैं। मुनिको जब अपना मरणकाल ज्ञात हो जावे तब वह १२ वर्षकी संलेखनासे क्रमशः शरीरको कृश करता हुआ भक्त-

---

અર્થ એ પ્રકારનો છે કે દુર્વચનરૂપી કુહાડાથી છેદવામાં આવેલ પણ એ મુનિ-કષાયરહિત હોવાથી પાટીયાની માફક કોઈપણ પ્રકારની વિકૃતિ વિના સ્થિરચિત્ત રહે છે. એને વાસી (વાસલો) શું? અને ચંદન શું? બન્નેમાં સમતા રહે છે. ભલે કુવાડાથી તેને કાપવામાં આવે તો પણ તેને ગુસ્સો નથી, અને ચંદનથી લેપ કરવામાં આવે તો તેને હર્ષ નથી. બન્નેમાં સમભાવ રહે છે.

અથવા—" फलकापदर्थी " આ પણ સંસ્કૃત છાયા " फलगावयट्ठी " જ્યારે આ પદની માનવામાં આવશે ત્યારે એનો અર્થ એ પ્રકારે થશે કે કર્મક્ષયરૂપ જે ફળ તેજ થયું ફલક. તેનાથી સંસાર-પરિભ્રમણ-રૂપ આપત્તિમાં જે મુનિ પ્રયોજનવાળા છે તે ફલકાપદર્થી છે. મુનિજન સંસાર પરિભ્રમણરૂપ આપત્તિમાં કર્મક્ષયરૂપ ફળના અભિલાષી હોય છે. મુનિને જ્યારે પોતાના મરણકાળનો સમય જણાઈ આવે ત્યારે તે ૧૨ વર્ષની સંલેખનાથી ક્રમે ક્રમે શરીરને ઘસાવતા ઘસાવતા

तथोक्तः—ज्ञातस्वमरणकालः साधुः, द्वादशवार्षिक्या संलेखनया क्रमशः शरीरं संलिख्य भक्तप्रत्याख्यानेङ्गितमरणपादपोपगमनान्यतममरणेन यावच्छरीरभेदः=शरीरस्य भेदः स्वात्मनः पार्थक्यं यावद्भवति तावत् कालं=मरणकालम् काङ्क्षेत्=इच्छेत् शरीरविधूननं कुर्यादित्यर्थः। एवं भक्तप्रत्याख्यानादिभिः कृत्स्नकर्मक्षयं

प्रत्याख्यान, इङ्गितमरण और पादपोपगमन; इनमें से किसी एक मरणसे अपनी आत्मासे जब तक शरीरकी पृथक्ता नहीं हो जाती तब तक शरीरको कृश करता रहे, समाधिमरणसे ही शरीरको छोडे।

भावार्थ—औदारिक आदि शरीरत्रयका, अथवा भवोपग्राहि कर्म-चतुष्टयका अभाव होते ही कर्मों के साथ लगे हुए युद्धका अन्त हो जाता है। इस अवस्थामें संग्राममें विजयश्री पानेवाले वीरकी तरह वह आत्मा भी अनन्त ज्ञान और अनन्तदर्शनकी विजयपताका फहराता हुआ पंच प्रकारके आचारोंकी पूर्णतासे मुक्तिका वरण कर लेता है। परीषह और उपसर्ग मुक्ति प्राप्तिकी तैयारी करनेवालेके लिये बाधक नहीं बनते हैं। हां, इनसे इतना अवश्य होता है कि वह आत्मा यदि इनका सम-भावसे सामना करता है तो मुक्ति प्राप्तिके लायक बाह्य और आभ्य-न्तर तपोंको तपता हुआ, बाह्यमें कृशगात्र एवं भीतर शिथिल कर्मबंध-वाला बन जाता है। इस अवस्थामें आत्मा कर्मोंके भारसे हल्का बन

ભક્તપ્રત્યાખ્યાન, ઈંગિતમરણ અને પાદપોપગમન આમાંથી કોઇ એક મરણથી પોતાના આત્માથી જ્યાં સુધી શરીરની પૃથકતા નથી થતી, ત્યાં સુધી શરીરને કૃશ કરતા રહે, અને સમાધિમરણથી શરીરને છોડે.

ભાવાર્થ—ઔદારિક આદિ શરીરત્રયનો અથવા ભવોપગ્રાહી ચાર કર્મોનો અભાવ થતાં જ કર્મોની સાથે લાગેલા યુદ્ધનો અંત થઈ જાય છે. આ અવસ્થામાં સંગ્રામમાં વિજયશ્રી મેળવનાર વીરની માફક તે આત્મા પણ અનન્તજ્ઞાન અને અનંતદર્શનની વિજયપતાકા લહેરાવતા પાંચ પ્રકારના આચારોની પૂર્ણતાથી મુક્તિને માર્ગે પહોંચે છે. પરિષહ અને ઉપસર્ગ મુકિત પ્રાપ્તિની તૈયારી કરવા-વાળા માટે બાધક બનતા નથી. હા, એથી એટલું અવશ્ય થાય છે કે તે આત્મા કદાચ તેનો સમભાવથી સામનો કરે તો મુક્તિ પ્રાપ્તિને લાયક બાહ્ય અને અંદરના તપોને તપતાં તપતાં બહારમાં કૃશશરીર અને અંદરથી શિથિલ–કર્મ-બંધવાળા બની જાય છે. આ અવસ્થામાં આત્મા કર્મોના ભારથી હલકો બની પોતે પોતાને હલકો અનુભવ કરવા લાગે છે. જેવી રીતે લાકડાનું પાટીયું

विधाय महापुरुषः शिवमचलमरुजमनन्तमक्षयमव्याबाधमपुनरावृत्तिसिद्धिगतिनामधेयं स्थानं संप्राप्नोतीति भावः ॥ सू० ११ ॥

अध्ययनविषयोपसंहारः—

स्वजन–कर्म–शरीर–विधूननं,
त्रितयगौरव–धूननमात्मनः ।
इह परीषहधूननमन्ततो,–
निजगदे गणनाथसुधर्मणा ॥ १ ॥

॥ इतिश्री–विश्वविख्यात–जगद्वल्लभ–प्रसिद्धवाचक–पञ्चदशभाषाकलितललित–कलापालापक–प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक–वादिमानमर्दक–शाहू–छत्रपति–कोल्हापुरराजप्रदत्त–" जैनशास्त्राचार्य "–पदभूषित–कोल्हापुरराजगुरु–बालब्रह्मचारि–जैनाचार्य–जैनधर्मदिवाकर–पूज्य–श्रीघासीलाल–व्रतिविरचितायाम् आचाराङ्गसूत्र–स्याऽऽचारचिन्तामणिटीकायां धूताख्यं षष्ठ–मध्ययनं सम्पूर्णम् ॥ ६ ॥

अपने आपको हल्का अनुभव करने लगता है। जिस प्रकार काष्ठका पाटिया आजूबाजूसे व्यर्थके अवयव छिल जाने पर शयनादिक कार्योंमें उपयोगी बन जाता है उसी प्रकार तपश्चर्या आदिसे आत्माके ऊपरका कर्मरूपी व्यर्थका कचरा जब निकल जाता है तो यह भी मुक्तिकी प्राप्ति में उपयोगी बन जाता है।

मुनिको जब अपना मरणकाल मालूम हो जावे तो उसका कर्तव्य है कि वह १२ वर्षकी संलेखनासे शरीरको कृश कर भक्तप्रत्याख्यान आदि किसी भी प्रकारसे अपने शरीरका परित्याग करे ॥सू०११॥

આજુબાજુથી છોલાઇ જવાથી શયનાદિકાર્યોમાં ઉપયોગી બની જાય છે એ પ્રકારે તપશ્ચર્યા આદિથી આત્માના ઉપરના કર્મરૂપી નકામો કચરો જ્યારે નિકળી જાય છે ત્યારે એ પણ મુક્તિની પ્રાપ્તિમાં ઉપયોગી બની જાય છે.

મુનિને જ્યારે પોતાનો મરણકાળ માલુમ થઈ જાય ત્યારે તેનું કર્તવ્ય છે કે તે ૧૨ વર્ષની સંલેખનાથી શરીરને કૃશ કરી ભક્ત પ્રત્યાખ્યાન આદિ કોઈ પણ પ્રકારથી પોતાના શરીરનો ત્યાગ કરે. (સૂ૦૧૧)

अध्ययनान्तर्गतविषयोंका उपसंहार

स्वजन-संग शरीर-ममत्व के
त्रितय गौरव के अरु कर्म के।
कथन है इसमें परिहार का
विधि परीषहके जयकी कही॥

यह आचाराङ्गसूत्रके धूतनामक छट्ठा अध्ययनकी आचार-
चिन्तामणि-टीकाका हिन्दीभाषानुवाद सम्पूर्ण ॥ ६ ॥

અધ્યયનાન્તર્ગત વિષયોનો ઉપસંહાર—

સ્વજન-સંગ શરીર-મમત્વના,
ત્રિતય-ગૌરવના સહુ કર્મના,
વળિ પરીષહના પરિહારને,
અહિં કહ્યો ભગવંત ગણાધિપે.

આ આચારાંગસૂત્રના ધૂત નામના છઠ્ઠા અધ્યયનની આચાર-
ચિંતામણિ-ટીકાનો ગુજરાતી અનુવાદ સંપૂર્ણ ॥ ૬ ॥

। अथ विमोक्षाख्यस्य अष्टमाध्ययनस्य प्रथम उद्देशः ।

अथ धूताख्यषष्ठाध्ययनानन्तरं क्रमप्राप्तमहापरिज्ञाख्यसप्तमाध्ययनस्यावसरः, किन्तु तस्य विच्छेदात्सम्प्रति तन्नोपलभ्यते, यतोऽत्र यावच्छरीरभेदस्तावत् संयमं परिपालयन् भक्तप्रत्याख्यानपूर्वकं पण्डितमरणेन मुनिः कालमभिकाङ्क्षेदिति धूताध्ययने 'कंखिज्ज कालं जाव शरीरभेओ ' इत्यन्तिमसूत्रेण प्रोक्तम् । तदनु महापरिज्ञानामकं सप्तममध्ययनम् । शास्त्रस्य सकलहेयोपादेयविषयप्रतिपादकत्वेन तदध्ययनं हेयनानाविधचमत्कारजनकविषयपरिपूरितमासीत्। एतदध्ययनमधीत्य समा-

---

॥ विमोक्षनामक आठवां अध्ययनका पहला उद्देश ॥

धूत नामक छट्ठे अध्ययनके बाद क्रमप्राप्त महापरिज्ञा–नामक सातवें अध्ययनका अवसर था, किन्तु विच्छेद हो जानेसे वह इस समय उपलब्ध नहीं है । जब तक शरीरका भेद (विनाश) है, तब तक संयमकी पालना करता हुआ मुनि काल–समाधिमरणरूप कालकी चाहना करता रहे, यह बात धूत अध्ययन में "कंखिज्ज कालं जाव सरीरभेओ" इस अन्तिम सूत्रसे कही गई है, उसीके पीछे महापरिज्ञानामक सातवां अध्ययन है ।

यह अध्ययन अनेक प्रकारके चामत्कारिक विषयोंसे, जो हेयकोटिमें माने गये हैं; परिपूरित था। शास्त्रोंमें प्रत्येक विषयका, चाहे वह हेय हो या उपादेय हो; वर्णन होता है। इस अध्ययनको पढ़ कर और सुन कर

વિમોક્ષ નામના આઠમા અધ્યયનનો પહેલો ઉદ્દેશ.

ધૂત નામના છઠ્ઠા અધ્યયન પછી મહાપરિજ્ઞા નામના સાતમા અધ્યયનનો અવસર હતો પણ તેનો વિચ્છેદ થઈ જવાથી તે આ સમયે પ્રાપ્ત થઈ શકે તેમ નથી. જ્યાં સુધી શરીરનો ભેદ (વિનાશ) છે, ત્યાં સુધી સંયમની પાલના કરતાં મુનિ કાલ–સમાધિમરણરૂપ કાળની ચાહના કરતા રહે. આ વાત ધૂત અધ્યયનમાં " कंखिज्ज कालं जाव सरीरभेओ " આ અંતિમ સૂત્રથી કહેવામાં આવેલ છે, એ પછી મહાપરિજ્ઞા નામનું સાતમું અધ્યયન છે.

આ અધ્યયન, અનેક પ્રકારના ચમત્કારિક વિષયોથી–જે હેય કોટીમાં માનવામાં આવેલ છે તેનાથી–પરિપૂર્ણ હતું. શાસ્ત્રોમાં પ્રત્યેક વિષયનું, ચાહે તે હેય હોય અથવા ઉપાદેય હોય; વર્ણન હોય છે. આ અધ્યયનને વાંચીને અને સાંભળીને મહા-

कर्ण्य च महापुरुषास्तदुक्तविद्यां ज्ञपरिज्ञया कर्मबन्धकारिणीं ज्ञात्वा प्रत्याख्यानपरिज्ञया तां परिहृत्य च कर्मधूननपूर्वकं स्वात्मकल्याणमकार्षुः ।

तत्र जल-स्थलाऽऽकाश-पातालादिविहरणरूपाः परकायप्रवेशादिकाः सिंह-व्याघ्रादिशरीरधारणपूर्वकस्वस्वरूपपरावर्तनादिस्वभावाश्चावर्तिन्यो विद्या आसन् । श्रूयते च गुरुपरम्परया--स्वशिष्यमध्यापयन् कश्चिदाचार्य एकदा विचारभूमिं गतवान्, तदनु स शिष्यो बाल्यचापल्येन महापरिज्ञाऽऽध्ययनेऽभिहितायाः सिंहतनुधारण-विद्याया उपयोगं कुर्वन् तत्प्रभावेण स सिंहरूपो जातः, परन्तु तत्परावर्तनविधान-

महापुरुषों ने इस अध्ययनमें वर्णित विद्याओं को ज्ञपरिज्ञासे कर्मोंके बंध करानेवाली जान कर प्रत्याख्यानपरिज्ञा से उनका परिहार कर कर्म-धूननपूर्वक अपनी आत्माका कल्याण किया है ।

इस अध्ययनके अंदर जलमें, स्थलमें, आकाशमें, पातालमें विहार करानेवाली विद्याओंका, परशरीरमें प्रवेश करानेवाली विद्याओंका, और सिंह व्याघ्र आदिका शरीर धारणपूर्वक अपने निजरूपका परिवर्तन करानेवाली विद्याओंका वर्णन था। गुरुपरंपरासे ऐसा सुना जाता है कि कोई एक आचार्य महाराज यह अध्ययन एक समय अपने शिष्यको पढा रहे थे। शौचक्रिया की बाधा होने पर जब ये बाहर शौचनिवृत्तिके लिये गये तो शिष्यने बाल-सुलभ चंचलता से इस महापरिज्ञाके अध्ययनमें कथित सिंहशरीरको धरानेवाली विद्याका उपयोग किया और वह उसके प्रभा-

પુરૂષોએ એ અધ્યયનમાં વર્ણવેલી વિદ્યાઓને જ્ઞપરિજ્ઞાથી કર્મોના બંધ કરવાવાળી જાણીને પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞાથી એનો પરિહાર કરી કર્મધૂનનપૂર્વક પોતાના આત્માનું કલ્યાણ કર્યું છે.

આ અધ્યયનમાં જળમાં, સ્થલમાં, આકાશમાં, પાતાળમાં વિહાર કરાવવાવાળી વિદ્યાઓનું, પરશરીરમાં પ્રવેશ કરાવવાવાળી વિદ્યાઓનું અને સિંહ, વાઘ આદિના શરીર ધારણ કરીને પોતાના નિજરૂપના પરિવર્તન કરાવવાવાળી વિદ્યાઓનું વર્ણન હતું. ગુરૂપરમ્પરાથી એવું સાંભળ્યું છે કે કોઇ એક આચાર્ય મહારાજ એ અધ્યયન પોતાના શિષ્યને એક સમય શીખવી રહ્યા હતા. આ વખતે શૌચક્રિયાની બાધા થતાં જ્યારે તેઓ શૌચનિવૃત્તિ માટે બાહેર ગયા પાછળથી શિષ્યે બાળસુલભ ચંચળતાથી એ મહાપરિજ્ઞા અધ્યયનમાં કહેલ સિંહ શરીરને ધારણ કરાવવાવાળી વિદ્યાનો ઉપયોગ કર્યો, અને તે સિંહના સ્વરૂપમાં ફેરવાઈ ગયો. સિંહસ્વરૂપનું પરિવર્તન કરાવવાવાળી વિદ્યાના અધ્યયનથી અપ-

ध्ययनेन तद्रूप एव स्थितः किंकर्तव्यविमूढो विचारभूमेरागतेनाऽऽचार्येण विलोकितः, परमकरुणया पुनः स्वस्वरूपं प्रापितः स्वचेतसि चिन्तितं च—पञ्चमारकेऽस्याऽध्ययनेन लाभस्तु दूरापेत एव; प्रत्युत महाननर्थो भावीति । तत आरभ्यैव तस्याध्यापनक्रिया लुप्तप्रायाऽभूत् । ते नैव हेतुना पुस्तकारूढसमयेऽप्याचार्यवर्यैरेतदध्ययनं न सङ्गृहीतम् । तस्मादिदं विच्छेदमापेति युक्तमुत्पश्यामः ।

अथाऽष्टमं विमोक्षाध्ययनं प्रारभ्यते । तत्र विमोक्षः—वि=विशेषेण सर्वथा मोक्षः=दूरीभवनं कर्मभ्यः कर्मबन्धकारणेभ्यश्च, पृथग् भूत्वा पण्डितमरणेन शरीरपरित्याग

वसे सिंहके स्वरूपमें आ गया । वह सिंहस्वरूपके परावर्तन करानेवाली विद्याके अध्ययनसे अपरिचित था, इसलिये उससे छूट कर अपने असली रूपमें नहीं आ सका । शौचसे निवृत्त होकर जब आचार्य महाराज आये तब उन्होंने इसे सिंहरूपमें देखा, देखकर उसके ऊपर उन्हें दया आई और उसे सिंहके रूपसे मुनिरूपमें परिवर्तित कर दिया । बादमें आचार्यने विचार किया कि पंचमकालमें इस अध्ययनके पठनसे लाभकी तो कोई आशा ही नहीं है; उल्टा महान् अनर्थ ही होगा । अतः उस समयसे लगाकर ही इस अध्ययनको लुप्त कर दिया । इसी कारणसे शास्त्रोंकी रचनाके समयमें भी आचार्योंने इस अध्ययनका संग्रह नहीं किया, इसीलिये इसका विच्छेद हुआ ।

अब विमोक्षाध्ययन नामका आठवां अध्ययन प्रारम्भ होता है । इसमें 'विमोक्ष' शब्दका अर्थ इस प्रकार है—वि–सर्वथा मोक्ष–दूर होना

રિચિત હોવાથી એ શિષ્ય પોતાના અસલ સ્વરૂપને પ્રાપ્ત કરી શકેલ નહિ. શૌચથી નિવૃત્ત થઈ જ્યારે આચાર્ય મહારાજ આવ્યા ત્યારે તેમણે શિષ્યને સિંહના રૂપમાં જોયો, અને દયા આવતાં સિંહના રૂપથી મુનિરૂપમાં પરિવર્તન કરાવ્યું. આ પછી આચાર્યે વિચાર કર્યો કે પાંચમા કાળમાં આ અધ્યયનના પઠનથી લાભની તો કોઈ આશા નથી, પણ એથી વિપરીત મહાઅનર્થનીજ સંભાવના છે. આથી તે સમયે તેમણે એ અધ્યયનને લુપ્ત કરી દીધો. આ કારણથી શાસ્ત્રોની રચનાના સમયમાં પણ આચાર્યોએ એ અધ્યયનનો સંગ્રહ કરેલ નથી, આ કારણે એનો વિચ્છેદ થયેલ છે.

હવે વિમોક્ષાધ્યયન નામના આઠમા અધ્યયનનો પ્રારંભ થાય છે. આમાં 'વિમોક્ષ' શબ્દનો અર્થ આ પ્રકારે છે—વિ–સર્વથા, મોક્ષ–દૂર થવું અર્થાત્ કર્મ અને એના બંધના કારણોથી પૃથક્ થઈ

इत्यर्थः। तत्प्रतिपादकमिदमध्ययनमपि विमोक्षशब्देन व्यवह्रियते। अस्य धूताध्ययनेन सहायं परम्परासम्बन्धः–तत्र स्वकर्मशरीरोपकरणऋद्धिरससाताख्यगौरवत्रिकोपसर्गसम्मानानां विधूननेन मुनेः सङ्गराहित्यं प्रतिपादितम्, तद्धूननं तदैव सफलं स्याद् यद्यन्तकाले सम्यग् निर्याणं जायेतेति तदर्थमस्याध्ययनस्यारम्भः।

अथवा–षष्ठे शब्दादिविषयसङ्गवर्जितेन मुनिनाऽनेकपरीषहोपसर्गाः सहनीया इत्यभिहितम्। एवमत्र मारणान्तिकोपसर्गसंसर्गेऽप्यनुद्विग्नेन संयमिना सम्यग् निर्याणं कार्यमिति कथनायेदमारभ्यते।

—अर्थात् कर्म और इनके बन्धके कारणोंसे पृथक् होकर पण्डितमरणसे शरीरका परित्याग करना वही विमोक्ष है। इस विमोक्षका प्रतिपादन करनेवाला यह अध्ययन भी 'विमोक्ष' शब्दसे व्यवहृत हुआ है। इस अध्ययनका धूत नामक छट्ठे अध्ययनके साथ परंपरारूपसे संबंध है। छट्ठे अध्ययनमें मुनिको अपनेद्वारा कृत कर्म, शरीर, उपकरण, ऋद्धि-रस-साता-नामक तीन गौरव, उपसर्ग एवं मान और अपमान इन सबके विधूननसे सङ्गरहित होना चाहिये–इस प्रकारसे प्रतिपादन किया है। इन सबका विधूनन मुनिका तभी सफल हो सकता है, कि जब उसका अन्तसमयमें निर्याण सम्यक्–शास्त्रोक्त विधिके अनुसार हो, इसी विषयको प्रकट करनेके लिये इस अध्ययनका आरंभ हुआ है।

अथवा—शब्दादिक विषयोंमें संगसे रहित मुनिको अनेक परीषह और उपसर्ग सहन करना चाहिये–यह बात भी छट्टे अध्ययनमें कही गई है; सो मरणके समयमें उपसर्गों के आने पर भी संयमी–मुनिको उद्विग्न-

પણ્ડિતમરણથી શરીરનો પરિત્યાગ કરવો એ જ વિમોક્ષ છે. આ વિમોક્ષનું પ્રતિપાદન કરવાવાળું આ અધ્યયન પણ વિમોક્ષ શબ્દથી વ્યવહૃત થયેલ છે. આ અધ્યયનનો ધૂત નામના છઠ્ઠા અધ્યયનની સાથે પરમ્પરારૂપથી સંબંધ છે. છઠ્ઠા અધ્યયનમાં મુનિએ પોતાના દ્વારા કૃત કર્મ, શરીર, ઉપકરણ, ઋદ્ધિ–રસ–સાતા નામના ત્રણ ગૌરવ, ઉપસર્ગ અને માન અને અપમાન આ સઘળાના વિધૂનનથી સંગરહિત હોવા જોઈએ, આ પ્રકારે પ્રતિપાદન કરેલ છે. આ બધાનું વિધૂનન મુનિનું ત્યારે સફળ બને છે કે જ્યારે એના અંત સમયમાં નિર્યાણ સમ્યક્–શાસ્ત્રોક્તવિધિ અનુસાર હોય, આ વિષયને પ્રગટ કરવા માટે આ અધ્યયનનો આરંભ થાય છે.

અથવા—શબ્દાદિક વિષયોના સંગથી રહિત મુનિએ અનેક પરિષહ અને ઉપસર્ગો સહન કરવા જોઇએ. આ વાત પણ છઠ્ઠા અધ્યયનમાં કહેવાયેલ છે; માટે મરણના સમયમાં ઉપસર્ગો આવવાથી પણ સંયમી મુનિએ ઉદ્વિગ્નચિત્ત

अत्रोद्देशार्थाधिकारः। अस्मिन्नष्टोद्देशाः सन्ति। तत्र प्रथमे-त्रिषष्ट्यधिकत्रिशतपाषण्डिकानामाहारोपधिशय्यादिसंसर्गो वर्जनीयः, किं पुनस्तन्मतस्वीकारः। तपःसंयम विराधकानामवसन्नपार्श्वस्थादीनां संसर्गत्यागश्च कर्तव्य इति। (१)

द्वितीये—चाकल्प्याहारादि प्रयच्छतस्तन्निषेधरुष्टगृहस्थस्य शास्त्रोक्तदोषप्रकथनपुरस्सरं तदाहारादिपरित्याग इति। (२)

चित्त नहीं होना चाहिये और सम्यक्-रीतिसे निर्याण करना चाहिये इस बातको समझानेके लिये इस अध्ययनका प्रारंभ किया गया है। यहां उद्देशके अर्थका अधिकार है। इसमें आठ उद्देश हैं-१ प्रथम उद्देशमें यह बतलाया गया है कि मुनिजनको ३६३ पाखण्डिमतवालोंका आहार, उपधि और शय्या आदिके संसर्गका परित्याग कर देना चाहिये। जब उनकी ये सब चीजें परिवर्जनीय हैं तो फिर उनके मतकी स्वीकृति तो वर्जनीय है ही, इसमें क्या कहना! इसी प्रकार यह भी बतलाया गया है कि जो तप और संयमके विराधक हैं ऐसे अवसन्न-पासत्थादिकोंका संसर्ग भी त्यागने योग्य है।

२ द्वितीय उद्देशमें—मुनिकल्पके विरुद्ध-अकल्पनीय आहारादिक प्रदान करनेवाला गृहस्थ, "यह आहार मुनिजनके अयोग्य-अकल्प्य है" इस प्रकार मुनिजन द्वारा निषेध करनेपर यदि रुष्ट होता है तो, मुनिका कर्तव्य है कि वह उस आहारके ग्रहण करनेमें शास्त्रोक्त दोषोंका प्रतिपादन करे और उस आहारका परित्याग करे। यह प्रकट किया गया है।

બનવું ન જોઈએ, અને સમ્યક્-રીતિથી નિર્યાણ કરવું જોઈએ. આ વાતને સમજાવવા માટે આ અધ્યયનનો પ્રારંભ કરેલ છે. અહિં ઉદ્દેશના અર્થનો અધિકાર છે. એમાં આઠ ઉદ્દેશ છે. ૧ પ્રથમ ઉદ્દેશમાં એમ બતાવેલ છે કે મુનિજને ૩૬૩ પાખંડીમતવાળાઓના આહાર, ઉપધિ અને શૈયા આદિના સંસર્ગનો પરિત્યાગ કરવો જોઈએ, જ્યારે તેની એ સઘળી ચીજો પરિવર્જનીય છે તો પછી તેના મતની સ્વીકૃતિ તો વર્જનીય છે જ, એમાં કહેવાનું શું હોય. આ રીતે એ પણ બતાવાયું છે કે જે તપ અને સંયમનો વિરાધક છે એવા અવસન્ન-પાસત્થાદિકનો સંસર્ગ પણ ત્યાગ કરવા યોગ્ય છે.

૨ બીજા ઉદ્દેશમાં-મુનિકલ્પના વિરૂદ્ધ અકલ્પનીય આહારાદિક પ્રદાન કરવાવાળા ગૃહસ્થ, "આ આહાર મુનિજનને માટે અયોગ્ય છે-અકલ્પ્ય છે" આ પ્રકારે મુનિજનદ્વારા નિષેધ કરવાથી જો રીસાય તો, મુનિનું કર્તવ્ય છે કે તે તેવા આહારને ગ્રહણ કરવામાં શાસ્ત્રોકત દોષોનું પ્રતિપાદન કરે અને એ આહારનો

तृतीये—शीतादिना प्रकम्पितं मुनिं कामविकारिणं शङ्कमानाय गृहपतये 'शीतादिकं मम गात्रकम्पनकारणं न कामविकारः' इति प्रतिपाद्य तच्छङ्कापनोदनमिति। (३)

चतुर्थे—चापरिहार्यस्त्र्याद्युपसर्गोपनिपाते संयमरक्षार्थं वैहानस–गार्द्धपृष्ठप्रकारद्वयरूपमरणं श्रेय इति। (४)

पञ्चमे—ग्लानाद्यवस्थायां पूर्वादृतप्रतिज्ञायाः पालनाशक्तौ मुनेर्भक्तपरिज्ञया मरणं साधीय इति। (५)

---

३ तृतीय उद्देशमें—शीत आदिसे कंपते हुए मुनिको देख कर गृहस्थ यदि यह शङ्काशील बन जाय कि "इस मुनिके कामविकार हो गया है इसीलिये यह कँप रहा है" तो मुनिजनका यह धर्म है कि उस शंकाका निवारण करे और कहे कि मेरा शरीर शीतादिक निमित्तसे कँप रहा है, कामविकारसे नहीं! –यह प्रतिपादित किया गया है।

४ चतुर्थ उद्देशमें—स्त्री वगैरह द्वारा कृत उपसर्गके अपरिहार्य हो जाने पर साधुका कर्तव्य है कि वह अपने संयमकी रक्षाके लिये वैहानस और गार्द्धपृष्ठ नामक मरणसे अपने प्राणोंको छोड़ देवे–यह स्पष्ट किया गया है।

५ पंचम उद्देशमें–ग्लान आदि अवस्थामें पूर्वगृहीत प्रतिज्ञा की पालनामें साधुकी अशक्ति होने पर उस मुनिके लिये भक्तपरिज्ञासे मरण प्राप्त करना श्रेयस्कर है–यह बात बतलाई गई है।

પરિત્યાગ કરે. એ પ્રગટ કરવામાં આવેલ છે.

૩ ત્રીજા ઉદ્દેશમાં–ઠંડી આદિથી ધ્રૂજતા મુનિને જોઈ ગૃહસ્થ કદાચ એવી શંકા કરે કે "આ મુનિને કામવિકાર થયેલ છે એથી એ કંપી રહેલ છે" તો મુનિજનનો એ ધર્મ છે કે તે ગૃહસ્થની એવી શંકાનું નિવારણ કરે અને કહે કે મારૂં શરીર ઠંડી આદિથી કંપી રહેલ છે, કામવિકારથી નહિ. આવું પ્રતિપાદિત કરવામાં આવેલ છે.

૪ ચોથા ઉદ્દેશમાં—સ્ત્રી વગેરે દ્વારા કરાયેલા ઉપસર્ગ અનિવાર્ય હોય તો સાધુનું કર્તવ્ય છે કે તે પોતાના સંયમની રક્ષા માટે વૈહાનસ અને ગાર્દ્ધ-પૃષ્ઠ નામના મરણથી પોતાના પ્રાણોને છોડી દે. આ સ્પષ્ટ કરેલ છે.

૫ પાંચમા ઉદ્દેશમાં—ગ્લાનાદિ અવસ્થામાં પૂર્વે લીધેલ પ્રતિજ્ઞાના પાલનમાં

षष्ठे—चैकत्वभावनया मुनेरिङ्गितमरणं प्रशस्तमिति। (६)

सप्तमे—मुनिनैकमासादिका भिक्षुप्रतिमा पालनीया, शरीरस्य संयमपालनाशक्तावस्थायां क्रमेण षष्ठाष्टमादितपसाऽऽहारादिसंक्षेपं कृत्वा पादपोपगमनं विधेयमिति। (७)

अष्टमे च—चिरपरिपालितचारित्रस्य यथाशास्त्रविहारिणः सूत्रार्थतदुभयग्रहणादानाऽऽसेवनानन्तरं बलहान्या संसीदत्संयमक्रियस्य संवर्द्धितशिष्यसम्पद

---

६ छट्ठे उद्देशमें—एकत्व-भावनासे युक्त होकर मुनिका इंगितमरण प्रशस्त है। यह प्रकट किया गया है।

७ सातवें उद्देशमें—एक मास आदि प्रमाणवाली भिक्षुप्रतिमा मुनिको पालनी चाहिये, तथा जब शरीर संयम पालन करनेकी शक्ति-रहित अवस्थामें आ जावे तो क्रम २ से षष्ठ और अष्टम आदि तपसे आहारका संक्षेप कर उसे पादपोपगमन संथारा धारण कर लेना चाहिये-यह वर्णन किया गया है।

८ आठवें उद्देशमें—चिरकालसे जिसने चारित्रकी आराधना की है और शास्त्रोक्त विधिके अनुसार ही जिसने विहार किया है-ऐसे मुनिकी सूत्र, अर्थ और सूत्रार्थ इन तीनोंके ग्रहण, दान और आसेवनके बाद बलकी हानिसे संयमरूप क्रियाकी पालनामें शिथिलता आ रही हो

સાધુની અશક્તિ થવાથી એ મુનિને માટે ભકતપરિજ્ઞાથી મરણ પ્રાપ્ત કરવું શ્રેયસ્કર છે. આ વાત બતાવેલ છે.

૬ છઠ્ઠા ઉદ્દેશમાં-એકત્વભાવનાથી યુકત બની મુનિનું ઈંગિતમરણ પ્રશસ્ત છે. આ પ્રગટ કરાયેલ છે.

૭ સાતમા ઉદ્દેશમાં—એકમાસ - આદિ પ્રમાણવાળી ભિક્ષુપ્રતિમા મુનિએ પાળવી જોઈએ. તથા જ્યારે શરીર, સંયમ પાળવાની શકિતથી રહિત અવસ્થામાં આવી જાય તો ધીરે ધીરે છઠ અને અઠમ આદિ તપથી આહારને બંધ કરી તેણે પાદપોપગમન સંથારો ધારણ કરી લેવો જોઈએ, આ વર્ણન કરેલ છે.

૮ આઠમા ઉદ્દેશમાં—લાંબા કાળથી જેણે ચારિત્રની આરાધના કરી છે અને શાસ્ત્રોકતવિધિ અનુસાર જ જેણે વિહાર કરેલ છે એવા મુનિને સૂત્ર-અર્થ અને સૂત્રાર્થ એ ત્રણેનું ગ્રહણ, દાન અને આસેવનના પછી બળની હાનિથી સંયમરૂપ ક્રિયાને પાળવામાં શિથિલતા આવી રહેલ હોય તો

उत्सर्गतो द्वादशवर्षसंलेखनाक्रमेण संलिखितशरीरस्य भक्तप्रत्याख्यानेङ्गितपादपोपगमनमरणेषु किंचिदेकमाश्रित्य जन्म सफलीकर्तव्यमिति प्रतिपादितम् । (८)

साम्प्रतं प्रथमसूत्रेण परमतनिराकरणार्थमेवोपक्रमते 'से बेमि' इत्यादि ।

मूलम्—से बेमि समणुन्नस्स वा असमणुन्नस्स वा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा वत्थं वा पडिग्गहं वा कंबलं वा पायपुंछणं वा नो पाएज्जा नो निमंतिज्जा नो कुज्जा वेयावडियं परं आढायमाणे त्तिबेमि ॥ सू०१ ॥

छाया—सोऽहं ब्रवीमि समनोज्ञाय वाऽसमनोज्ञाय वाऽशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा वस्त्रं वा पतद्ग्रहं वा कम्बलं वा पादप्रोञ्छनं वा नो प्रदद्यात् नो निमन्त्रयेद् नो कुर्याद् वैयावृत्त्यं परमाद्रियमाण इति ब्रवीमि ॥ सू० १ ॥

टीका—'सोऽहम्' इत्यादि—यो भगवन्मुखाद्विनिर्गतयथाश्रुतग्राही परिज्ञातहेयोपादेयः सोऽहं त्वां ब्रवीमि=वक्ष्यमाणवचनं वच्मि, तदेवाह—'समनोज्ञाये-

---

तो संवर्द्धित-शिष्यरूप-संपत्तिवाले उस मुनिको उत्सर्गसे १२ वर्ष की संलेखना धारण कर लेनी चाहिये। इस क्रमसे शरीरके कृश होने पर उसे भक्तप्रत्याख्यान, इंगित और पादपोपगम इन मरणोंसे किसी एक मरणको धारण कर जन्म सफल करना चाहिये—यह विषय समझाया गया है।

इस समय प्रथम सूत्रसे सूत्रकार परमतके निराकरण करनेका उपक्रम (प्रारंभ) करते हैं—'से बेमि' इत्यादि—

श्री सुधर्मास्वामी श्री जम्बूस्वामीसे कहते हैं—हे शिष्य ! जिसने भगवानके मुखसे निर्गत श्रुतके अनुसार ही तत्त्व ग्रहण किया है और

શિષ્યરૂપ સંપત્તિથી વૃદ્ધિ પામેલ એ મુનિએ ઉત્સર્ગથી ૧૨ વર્ષની સંલેખના ધારણ કરી લેવી જોઇએ. આ ક્રમથી શરીરના કૃશ થવાથી તેણે ભકતપ્રત્યાખ્યાન, ઈંગિત અને પાદપોપગમ આ મરણોમાંથી કોઇ એક મરણને ધારણ કરી જન્મ સફળ કરવો જોઇએ. આ વિષય સમજાવેલ છે.

આ સમય પ્રથમ સૂત્રથી સૂત્રકાર પરમતનું નિરાકરણ કરવાનો આરંભ કરે છે—" से बेमि " ઈત્યાદિ.

શ્રી સુધર્માસ્વામી શ્રી જમ્બૂસ્વામીને કહે છે—હે શિષ્ય ! જેને ભગવાનના મુખથી નિર્ગત શ્રુતના અનુસાર જ તત્ત્વ ગ્રહણ કરેલ છે અને એનાથી જે હેય અને ઉપાદેયના જ્ઞાનથી યુકત છે એવો હું તમને આ પ્રકારથી કહું છું કે તમે

त्यादि । परम्=उत्कृष्टम् आद्रियमाणः=सत्कुर्वाणः सन् समनोज्ञाय=दृष्टिलिङ्गाभ्यां चारुवेषाय स्वमतावसन्नपार्श्वस्थप्रभृतये, वा-शब्दः पक्षान्तरद्योतकः; असमनोज्ञाय =परतीर्थिकाय शाक्यप्रभृतये वा यद् अशनम्-ओदनादिकम् पानं=द्राक्षादिधावन-जलं वा, खाद्यं=नारिकेलादिकं वा, स्वाद्यं=लवङ्गादिकं वा, वस्त्रं वा, पतद्ग्रहं=पात्रं वा, कम्बलं वा, पादप्रोञ्छनं=रजोहरणादिकं वा नो प्रदद्यात्=प्रासुकमपि तस्मै न ददेत, नापि च वितरणाय निमन्त्रयेत्, वैयावृत्त्यं=शुश्रूषादिकमपि न कुर्याद्=नो विदध्यात् । इति=एवम् अहं त्वां ब्रवीमि=यथा भगवत्सकाशाच्छ्रुतं तथा कथयामि ॥

अपरमप्यहं ब्रवीमीत्याह-' धुवं ' इत्यादि ।

मूलम्-धुवं चेयं जाणिज्जा असणं वा जाव पायपुंछणं वा लभिया, नो लभिया, भुंजिया, नो भुंजिया, पंथं विउत्ता विउक्कम विभत्तं धम्मं जोसमाणे समेमाणे चलेमाणे पाइज्जा

इसीसे जो हेय और उपादेयके ज्ञानसे युक्त है वह मैं तुमसे इस प्रकार कहता हूं कि तुम अच्छी तरह-भक्तिके आवेशसे-आदर सत्कार करके, समनोज्ञ-दृष्टि और लिङ्गोंसे सुन्दर वेषवाले ऐसे स्व-जैनमतानुयायी अवसन्न पासत्थादिकोंको, अथवा असमनोज्ञ-परतीर्थिक शाक्य आदिको अशन-ओदनादिक, पान-द्राक्षादिका धोवन जल, खाद्य-नारियल आदि, अथवा स्वाद्य-लवंगादिक, वस्त्र, पतद्ग्रह-पात्र, कम्बल अथवा पादप्रो-ञ्छन-रजोहरणादिक, प्रासुक होने पर भी न दो और न उन्हें देनेके लिये आमंत्रित करो, वैयावृत्य भी उनकी न करो-इस प्रकार जैसा भगवानसे सुना है वैसा मैं तुमसे कहता हूं ॥ सू०१ ॥

और भी "धुवं" इत्यादि सूत्रसे कहता हूं, सो सुनो—

સારી રીતે-ભકિતના આવેશથી આદરસત્કાર કરીને સમનોજ્ઞ-દૃષ્ટિ અને લિંગથી સુંદર વેશવાળા એવા પોતાના જૈનમત અનુયાયી અવસન્ન-પાસત્થાદિકોને માટે— અથવા અસમનોજ્ઞ-પરતીર્થિક શાકય આદિને માટે અશન-ઓદનાદિક, પાન-દ્રાક્ષાદિકનું ધોવણ જળ, ખાદ્ય-નારિયલ આદિ, અને સ્વાદ્ય-લવંગાદિક, વસ્ત્ર, પતદ્ગ્રહ-પાત્ર, કમ્બલ અને પાદપ્રોંછન-રજોહરણાદિક પ્રાસુક હોવા છતાં પણ ન દો, અને ન એને આપવા માટે આમંત્રણ કરો, વૈયાવૃત્તિ પણ તેની ન કરો. આ પ્રકારે જેવું ભગવાનથી સાંભળ્યું છે તેવું હું તમને કહું છું. (સૂ૦૧)

બીજું પણ "ધુવં" ઇત્યાદિ સૂત્રથી કહું છું સાંભળો.

वा निमंतिज्जा वा कुज्जा वा वेयावडियं परं अणाढायमाणे त्तिबेमि ॥ सू० २ ॥

छाया--ध्रुवं चैतज्जानीयादशनं वा यावत् पादप्रोञ्छनं वा लब्ध्वा नो लब्ध्वा, भुक्त्वा, नो भुक्त्वा, पन्थानं व्यावर्त्यापि उत्क्रम्य विभक्तं धर्मं जुषमाणः समायन् चलन् प्रदद्यात् वा निमन्त्रयेद्वा कुर्याद्वैयावृत्त्यं परमाद्रियमाण इति ब्रवीमि ॥

टीका--'ध्रुव'मित्यादि । शाक्यादयो हि कदाचिदशनादिकं प्रदर्श्यैवं ब्रुवन्ति,-भवान्-एतत्=वक्तव्यं ध्रुवं=निश्चितं जानीयात्=बुध्येत, यद् अशनादिकमारभ्य यावत् पादप्रोञ्छनं सर्वं परगृहे लब्ध्वा वा अलब्ध्वा वा भुक्त्वा वा अभुक्त्वा वा अवश्यमस्माकं मनस्तुष्टये तद्ग्रहणायास्मदीयवसतौ समागन्तव्यम्; तथा हि-अशनादीनामलाभे लाभाय, लाभेऽपि चोत्कृष्टमिष्टान्नादिलाभार्थं वा, भुक्तेऽपि पुनर्भोजनार्थम्, अभुक्तेऽपि प्रथमालिकार्थम् ['सिरावण' इति भाषायाम्],

---

शाक्य आदि, मुनिको देख कर कदाचित् भोजनादिक दिखा कर यह कहें कि हे मुनि! आप यह हमारा कहना अवश्य मानें कि आपको अशनसे लगाकर पादप्रोञ्छन तककी समस्त सामग्री अथवा असमस्त सामग्री परगृहमें मिले या न मिले, आपने आहार किया हो अथवा न भी किया हो तो भी आप अवश्य २ हमारे सन्तोषके लिये ही कम से कम अशनादिक लाभके निमित्त, हमारे स्थान पर पधारें। वहां आनेसे आपको फायदा होगा-अशनादिकके अलाभमें आपको वहां उनका लाभ होगा, अन्यत्र उनके मिल जाने पर भी वहां आनेसे आपके लिये उत्तम २ मिष्टान्न आदि सामग्री की प्राप्ति हो जायगी, खा करके भी आने पर फिरसे भोजन हो

શાકય આદિ, મુનિને જોઇ કદાચિત્ ભોજનાદિક બતાવી એવું કહે કે હે મુનિ! આપ અમારૂં એ કહેવું અવશ્ય માનો કે આપને અશનથી લગાડી પાદપ્રોંછન સુધી સમસ્ત સામગ્રી અથવા અસમસ્ત સામગ્રી બીજાને ઘરે મળે અથવા ન મળે, આપે આહાર કર્યો હોય અથવા ન કર્યો હોય તો પણ આપ અવશ્ય અવશ્ય અમારા સંતોષ માટે જ કમથી કમ અશનાદિક લાભના નિમિત્ત અમારા સ્થાન ઉપર પધારો ત્યાં આવવાથી આપને ફાયદો થશે-અશનાદિકના અલાભમાં આપને ત્યાં એનો લાભ થશે, બીજે સ્થળેથી એ મળવા છતાં પણ ત્યાં આવવાથી આપને માટે ઉત્તમમાં ઉત્તમ મિષ્ટાન્ન આદિ સામગ્રીની પ્રાપ્તિ થશે, ખાઈને આવવા છતાં ફરીથી ભોજન થશે, અને

अस्मत्सन्तोषायावश्यमस्मत्स्थाने समागन्तव्यम्, यद् यद् भवतां कल्पनीयं तत्तद्दास्यामीति भावः। ममावासो भवत्संचरणरथ्यायामेव वर्तते, यदि वक्रोऽपि भवेत्तथाऽपि पन्थानं=मार्गं व्यावर्त्यापि=परिभ्रम्यापि उत्क्रम्य=मार्गमध्यवर्तिगृहाण्युल्लङ्घ्यागन्तव्यम्, नाऽत्र क्लेशो गणनीयः, कृपा विधेया—इत्यादि कथयित्वा सः विभक्तं=भिन्नं धर्मं जुषमाणः=सेवमानः शाक्यादिः, समायन्=तेन मार्गेण कदाचिद् आगच्छन्, चलन्=मार्गे गच्छन् यच्चाशनादिकं प्रदद्यात्, तद्दानादिना निमन्त्रयेद्वा, अन्यद्वा वैयावृत्त्यं कुर्यात्=विदध्यात्, तर्हि मुनिः परम्=अत्यर्थम् अनाद्रियमाणः तस्यानादरं कुर्वन्—समस्वीकुर्वाणः सन् विहरेत्, तेन सह परिचयमपि न कुर्यात्, अनेन दर्शनशुद्ध्यादेरवश्यं भावादित्याशयः। इति पूर्वोक्तं वक्ष्यमाणं च ब्रवीमि=कथयामि ॥ सू० २ ॥

जायगा, और नहीं खा कर आनेपर सुबहका लघुभोजन हो जायगा। इस लिये हमारे संतोषके लिये आप मेरे स्थान पर अवश्य २ आवें। आनेपर आपके लिये जो २ वस्तुएँ कल्पनीय होंगी उन्हें मैं अवश्य २ दूंगा। मेरा निवासस्थान आपके निकलनेकी गली ही में है। यदि वहांसे वह शायद आपके लिये टेढ़ा भी पडे तो भी घूमकर कुछ मध्यवर्ती घरोंको छोड़ कर आप वहां जरूर आवें। इसमें परिश्रमका ख्याल न करें। बड़ी दया होगी।" इत्यादि कह कर वह भिन्न धर्मका अनुयायी शाक्य आदि उस मार्गसे कदाचित् आता जाता मिल जाय और उस मुनिके लिये जो कुछ भी अशनादिक दे, अथवा उसके लिये आग्रह करे, या आमंत्रित करे अथवा दूसरी तरहसे कोई वैयावृत्ति करना चाहे तो उस मुनिको चाहिये कि वह उसकी किसी भी बात पर ख्याल न करे, उसके द्वारा प्रदत्त किसी भी वस्तुका ग्रहण

ખાઈને ન આવવાથી શિરામણ થશે. આ માટે અમારા સ્થાન ઉપર અમારા સંતોષ માટે આપ અવશ્ય અવશ્ય આવો. આવવાથી આપને માટે જે જે વસ્તુઓ કલ્પનીય હશે એ હું તમોને અવશ્ય અવશ્ય આપીશ. મારૂં નિવાસસ્થાન આપની નિકળવાની શેરીમાં જ છે. અથવા ત્યાંથી એ થોડો છેટો પડે તો પણ ફરીને કેટલાક વચલા ઘરોને મુકીને પણ આપ ત્યાં જરૂર આવો. આમાં પરિશ્રમનો ખ્યાલ ન કરશો. ખૂબ દયા થશે. ઈત્યાદિ કહીને એ બીજા ધર્મના અનુયાયી શાકય આદિ એ માર્ગથી કદાચિત આવતાં જતાં મળી જાય અને એ મુનિ માટે જે કાંઈ ખાવા પીવાનું આપે, અથવા એને માટે આગ્રહ કરે, યા આમંત્રણ કરે, અથવા બીજી રીતે કોઈ વૈયાવૃત્ત કરવા ચાહે, ત્યારે તે મુનિ

अपि च वक्ष्यमाणं दर्शयति–' इहमेगेसिं ' इत्यादि–

मूलम्–इहमेगेसिं आयारगोयरे नो सुनिसंते भवति, ते इह आरंभट्ठी अणुवयमाणा हण पाणे घायमाणा हणओ यावि समणुजाणमाणा, अदुवा अदिन्नमाययंति, अदुवा वायाउ विउज्जंति, तं जहा–अत्थि लोए, नत्थि लोए, धुवे लोए, अधुवे लोए, साइए लोए, अणाइए लोए, सपज्जवसिए लोए, अपज्जवसिए लोए, सुकडेत्ति वा, दुक्कडेत्ति वा, कल्लाणेत्ति वा, पावेत्ति वा, साहुत्ति वा, असाहुत्ति वा, सिद्धित्ति वा, असिद्धित्ति वा, निरएत्ति वा, अनिरएत्ति वा, जमिणं विप्पडिवन्ना मामगं धम्मं पन्नवेमाणा, एत्थ वि जाणह अकस्मात्, एवं तेसिं नो सुयक्खाए धम्मे नो सुपन्नत्ते धम्मे भवइ ॥ सू० ३ ॥

छाया—इहैकेषामाचारगोचरो नो सुनिशान्तो भवति, त इहारम्भार्थिनोऽनुवदन्तो घ्नन्तः प्राणान् घातयन्तः घ्नतश्चापि समनुजानन्तः, अथवाऽदत्तमाददति, अथवा वाचो वियुञ्जन्ति, तद्यथा–अस्ति लोको, नास्ति लोको, ध्रुवो लोकः, अध्रुवो लोकः, सादिको लोकोऽनादिको लोकः, सपर्यवसितो लोकोऽपर्यवसितो लोकः, सुकृतमिति वा, दुष्कृतमिति वा, कल्याणमिति वा, पापमिति वा, साध्विति वा, असाध्विति वा, सिद्धिरिति वा, असिद्धिरिति वा, निरय इति वा, अनिरय इति वा, यदिदं विप्रतिपन्ना मामकं धर्मं प्रवदन्तः, अत्रापि जानीत अकस्मात्, एवं तेषां नो स्वाख्यातो धर्मो न सुप्रज्ञप्तो धर्मो भवति ॥ सू० ३ ॥

टीका–'इहैकेषा'मिति–इह=अत्र मनुष्यलोके एकेषां = कतिपयानाम्,

न करे और वहांसे चल देवे, कोई भी प्रकारका संपर्क उससे न रखे। इस प्रकारके वर्त्तनसे उस मुनिके समकित की शुद्धि होती है। ऐसा मैं कहता हूं ॥ सू० २ ॥

तथा –'इहमेगेसिं' इत्यादि–

इस मनुष्य लोकमें जो सर्वज्ञसे उपदिष्ट संयमके मार्गसे अनभिज्ञ

એની કોઈપણ વાત ઉપર ખ્યાલ ન કરે, એના દ્વારા મળતી કોઈપણ વસ્તુને ગ્રહણ ન કરે અને ત્યાંથી ચાલ્યા જાય, કોઈ પણ પ્રકારનો સંપર્ક એનાથી ન રાખે. આ પ્રકારના વર્તનથી તે મુનિના સમકિતની શુદ્ધિ થાય છે, એવું હું કહું છું. (સૂ० ૨)

અપિ ચ—"इहमेगेसिं" ઈત્યાદિ..

આ મનુષ્ય લોકમાં જે સર્વજ્ઞથી ઉપદેશવામાં આવેલ સંયમ માર્ગથી

न सर्वेषाम्; 'आचारगोचरः' आचारस्य=संयमस्य गोचरः=विषयः सर्वज्ञोपदिष्ट-मार्ग इत्यर्थः, सुनिशान्तः–सुपरिचितः, नो भवति, ते इह=अस्मिँल्लोके आरम्भार्थिनः पचन–पाचनानुमोदनादिसावद्यव्यापारवन्तः शाक्यादयो द्रव्यलिङ्गिनोऽवसन्न-पार्श्वस्थादयः, अनुवदन्तः=देवायतननिर्माणे प्रतिमाप्रतिष्ठापूजादौ औद्देशिकाहारादौ च धर्मं प्ररूपयन्तः सन्तः प्राणान्=एकेन्द्रियादिजीवान् घ्नन्तः=नाशयन्तः अन्यैर्घातयन्तः, घ्नतः घातयतो वा समनुजानन्तः=अनुमोदयन्तो भवन्ति। एतेन षड्जीवनिकायविराधकत्वं तेषामभिहितम्।

'अथवा'=पक्षान्तरे, तेन–ते आरम्भार्थिनः अदत्तं=परस्य धनादिकम् आददति=गृह्णन्ति, तृतीयेऽव्रते स्तोककथनीयत्वात्तस्य पूर्वं प्रतिपादनम्। द्वितीये च बहुवक्तव्यत्वात्ततस्तदुपन्यास इति विज्ञेयम्।

हैं, अर्थात् जो सर्वज्ञकथित संयमके मार्गसे अपरिचित हैं–ऐसे वे शाक्यादिक तथा द्रव्यलिङ्गी अवसन्न–पासत्थादिक आरम्भार्थी, पचन, पाचन और अनुमोदन आदि सावद्य व्यापारोंसे युक्त बन देवायतन–मन्दिर आदिके निर्माणमें, प्रतिमा की प्रतिष्ठामें, और उसके पूजन आदिमें तथा उद्दिष्ट आहार वगैरहमें धर्मकी प्ररूपणा करते हुए एकेन्द्रियादिक जीवोंका स्वयं आरम्भ करनेवाले, दूसरोंसे उनका आरम्भ करानेवाले एवं उनके आरम्भ करनेवालोंकी अनुमोदना करनेवाले होते हैं। इस कथनसे षड्जीवनिकायोंकी विराधकता उनके कही गई समझनी चाहिये।

अथवा—वे आरम्भार्थी–शाक्यादिक एवं अवसन्न–पासत्थादिक पर का अदत्त धनादिक द्रव्य ग्रहण करते हैं। तृतीय अव्रत–चौर्य है।

અનભિજ્ઞ છે, અર્થાત્ જે સર્વજ્ઞકથિત સંયમના માર્ગથી અપરિચિત છે એવા એ શાક્યાદિક તથા દ્રવ્યલિંગી અવસન્ન–પાસત્થાદિક આરંભાર્થી, પચન, પાચન અને અનુમોદન આદિ સાવદ્ય વ્યાપારોથી યુક્ત બની દેવાયતન–મન્દિર આદિના નિર્માણમાં, પ્રતિમાની પ્રતિષ્ઠામાં અને તેના પૂજન આદિમાં તથા ઉદ્દિષ્ટ આહાર વગેરેમાં ધર્મની પ્રરૂપણા કરતાં એકેન્દ્રિય આદિ જીવોનો સ્વયં આરંભ કરવાવાળા, બીજાથી તેનો આરંભ કરાવવાળા અને તેનો આરંભ કરવાવાળાને અનુમોદન આપનારા હોય છે. આ કથનથી ષડ્જીવનિકાયોની વિરાધકતા તેની કહેવામાં આવી સમજવી જોઇએ.

અથવા—એ આરમ્ભાર્થી–શાકયાદિક અને અવસન્ન–પાસત્થાદિક બીજાનું અદત્ત ધનાદિક દ્રવ્ય ગ્રહણ કરે છે. ત્રીજું અવ્રત–ચૌર્ય છે. સૂત્રકાર આ

'अथवा' पक्षान्तरद्योतकः, तद्यथा-अदत्तं गृह्णन्तो हि वाचः=बहुविधाः वक्ष्यमाणा वियुञ्जन्ति=प्रयुञ्जन्ति-वाचो विनियोगं कुर्वन्ति-कथयन्तीत्यर्थः, तदेवाह-तद्यथेत्यादिना-तद्यथा--

केचिदाहुः-'लोकः=स्थावर-जङ्गमलक्षणः, अस्ति=विद्यते। तथाहि-सप्तसमुद्रा सप्तद्वीपा नवखण्डा पृथिवी, नातः परमन्यो लोकः' इति।

केचिच्च-एतादृशानि बहूनि ब्रह्माण्डानि सन्ति, तेषु कति चिज्जलमध्ये प्लवमानानि सन्तीति, वर्तन्ते पञ्चमहाभूतानि पृथिव्यादीनीति, तथा अस्ति च परलोकः=यमलोकादिरूपः' इति प्रवदन्ति।

सूत्रकारको इसके विषयमें विशेषकथन नहीं करना है-इसलिये इसका क्रमप्राप्त असत्यके कथन करनेके पहिले कथन नामोल्लेखरूपसे किया है। द्वितीय अव्रतमें विशेष वक्तव्यता है; इसलिये उसके बाद उसका कथन किया है।

अथवा-अदत्तका ग्रहण करनेवाले मनुष्य बहुत प्रकारकी (जिसके विषयमें आगे कहा जायगा) बातें बनाया करते हैं। इसीका "तद्यथा" पदसे स्पष्टीकरण करते हुए सूत्रकार कहते हैं—

कोई कोई कहते हैं-स्थावर और जंगम स्वरूपवाला यह लोक है! इसका मतलब सिर्फ इतना ही है कि यह पृथिवी सात समुद्रवाली है, सात इसमें द्वीप हैं, और नव इसके खण्ड हैं। इसीका नाम लोक है। इससे जुदा और कोई लोक नहीं है। कोई २ ऐसा भी कहते हैं-ऐसे तो बहुत ब्रह्माण्ड हैं। इनमें कितनेक तो जलके बीचमें डूबे हुए हैं,

---

આ વિષયમાં વિશેષ કહેવા માગતા નથી. આ માટે ક્રમપ્રાપ્ત અસત્યનું કથન નહિ કરતાં પહેલાં અદત્તાદાનનું નામોલ્લેખરૂપથી કથન કરેલ છે. બીજા અવ્રતમાં વિશેષ વક્તવ્ય છે; આ માટે એના પછી એનું કથન કરેલ છે.

અથવા—અદત્તનું ગ્રહણ કરવાવાળા મનુષ્ય ઘણા પ્રકારની (જેના વિષયમાં આગળ કહેવામાં આવશે) વાતો બનાવ્યા કરે છે, એનું "तद्यथा" પદથી સ્પષ્ટીકરણ કરતાં સૂત્રકાર કહે છે—

કોઇ કોઇ કહે છે સ્થાવર અને જંગમ-સ્વરૂપવાળો આ લોક છે. આનો અર્થ ફક્ત એટલો જ છે કે આ પૃથ્વી સાત સમુદ્રવાળી છે, આમાં સાત દ્વીપ છે અને નવ એના ખંડ છે. આનું નામ લોક છે. આનાથી જુદો બીજો કોઇ લોક નથી. કોઈ કોઇ એમ પણ કહે છે-એમ તો ઘણા બ્રહ્માંડ છે, આમાં કેટલાક તો પાણીમાં ડુબી ગયેલા છે. કેટલાક પંચમહાભૂતસ્વરૂપ પૃથ્વી આદિ

चार्वाकास्तु-'लोकः=परलोको नास्ति' इत्याहुः। इत्थं च तेषामभ्युपगमः-स्वर्गादिकं गन्धर्वनगरमरुमरीचिकादिसदृशमेव, प्रत्यक्षमेव प्रमाणं, नान्यदमनुमानादिकं परोक्षम्, परलोकाभावेन जीवः परलोकगामी न भवत्येव; किन्तु प्रत्यक्षं परिदृश्यमानः पञ्चभूतात्मक एव लोकः, अतो नास्ति बन्धो, नास्ति मोक्षः, नास्ति पुण्यं, नास्ति पापमित्यादि, तथाहि—

"यथा यथाऽर्थाश्चिन्त्यन्ते, विविच्यन्ते तथा तथा।
यद्येतत्स्वयमर्थेभ्यो, रोचते तत्र के वयम्॥ १॥

कितनेक पंचमहाभूतस्वरूप पृथिवी आदिक विद्यमान हैं। तथा यम-लोक-आदि-स्वरूप परलोक भी मौजूद हैं। चार्वाक-सिद्धान्तवाले नास्तिकलोग 'परलोक नहीं है' ऐसा मानते है। उनका सिद्धान्त इस प्रकारसे है-स्वर्गादिक परलोककी मान्यता गन्धर्वनगर तथा मरुमरीचिका जैसी है। जैसे इनका आभास भ्रमसे होता है, उसी तरहसे स्वर्गादिक परलोककी भी मान्यता ऐसी ही है, वास्तविक नहीं। इनके सिद्धान्तानुसार १ प्रत्यक्ष ही प्रमाण है। परोक्ष-अनुमानादिक नहीं। जब परलोक ही नहीं तो जीव परलोकमें जाता है, अथवा परलोकमें उसके जानेका स्वभाव है-ऐसी कल्पना भी ठीक नहीं है। जो कुछ प्रत्यक्षसे पञ्चभूतात्मक दिखाई देता है वही लोक है, इससे परे नहीं। इसलिये न बन्ध है, न मोक्ष है, न पुण्य है, और न पाप है।

વિદ્યમાન છે. તથા યમલોક વગેરે સ્વરૂપથી પરલોક પણ છે. ચાર્વાક સિદ્ધાંત-વાળા નાસ્તિક લોક 'પરલોક નથી' એવું માને છે. એમનો સિદ્ધાંત આ પ્રકારનો છે-સ્વર્ગાદિક પરલોકની માન્યતા ગન્ધર્વનગર તથા મરૂમરીચિકા જેવી છે. જેમ એનો આભાસ ભ્રમથી થાય છે એવી જ રીતે સ્વર્ગાદિક પરલોકની માન્યતા પણ છે, વાસ્તવિક નથી. એમના સિદ્ધાન્ત-અનુસાર ૧ પ્રત્યક્ષ જ પ્રમાણ છે. પરોક્ષ-અનુમાનાદિક નહીં. જ્યારે પરલોક જ નથી તો જીવ પરલોકમાં જાય છે, અથવા પરલોકમાં એનો જવાનો સ્વભાવ છે એવી કલ્પના કરવી એ પણ ઠીક નથી. જે કાંઇ પ્રત્યક્ષથી પંચભૂતાત્મક દેખાય છે એ જ લોક છે, આથી બીજું નહીં. આથી ન બન્ધ છે, ન મોક્ષ છે, ન પુણ્ય છે કે ન પાપ છે.

भौतिकानि शरीराणि, विषयाः करणानि च ॥
तथाऽपि मन्दैरन्यस्य, तत्त्वं समुपदिश्यते ॥ २ ॥ ” इति ।

किमधिकेन ।

कापिलास्तु—‘ ध्रुवो लोकः ’=लोकः ध्रुवः=शाश्वतिकः=नित्यः कूर्माङ्गानीवाऽऽविर्भाव–तिरोभावेनैवोत्पत्तिध्वंसादिव्यवहार औपचारिको न तु वास्तविकोऽपूर्वोपजनरूपः ।

वैशेषिकादितन्त्रवदुत्पत्तेः पूर्वं कार्यस्याऽसत्त्वस्वीकारेऽसतः शशशृङ्गादेरप्युत्पत्तिः कदाचिदङ्गीकार्या स्यात् । सतो विनाशाऽसम्भवाच्च न सन्नाऽसत्; किन्तु

यथा यथार्थाश्चिन्त्यन्ते विविच्यन्ते तथा तथा ।
यद्येतत्स्वयमर्थेभ्यो रोचते तत्र के वयम् ॥ १ ॥
भौतिकानि शरीराणि विषयाः करणानि च ।
तथापि मन्दैरन्यस्य तत्त्वं समुपदिश्यते ॥ २ ॥

भावार्थ—जिस जिस प्रकारसे पदार्थोंका विचार किया जाता है उस उस प्रकारसे वे विशीर्ण (नष्ट) होते हैं। हम क्या करें–यदि यह शून्यता ही पदार्थोंको रुचती है तो! शरीर, विषय और इन्द्रियां ये सब भौतिक हैं, तो भी मूर्ख प्राणी अन्यके लिये तत्त्वोंका उपदेश देते हैं; ज्यादा क्या कहा जाय?

कापिलमतानुयायी सांख्य--यह कहते हैं कि यह लोक ध्रुव–शाश्वतिक–नित्य है। इसमें उत्पत्ति और ध्वंस–नाशका व्यवहार औपचारिक–गौण है। इसमें आविर्भाव और तिरोभाव ही होते

यथा यथार्थाश्चिन्त्यन्ते विविच्यन्ते तथा तथा ।
यद्येतत्स्वयमर्थेभ्यो रोचते तत्र के वयम् ॥ १ ॥
भौतिकानि शरीराणि विषयाः करणानि च ।
तथापि मन्दैरन्यस्य तत्त्वं समुपदिश्यते ॥ २ ॥

ભાવાર્થ—જે જે પદાર્થોનો જે પ્રકારથી વિચાર કરવામાં આવે છે તે તે પ્રકારથી તેનો નાશ થાય છે. અમે શું કરીએ–જો આ શૂન્યતા જ પદાર્થોને રૂચે છે. શરીર, વિષય અને ઈન્દ્રિયો આ બધું ભૌતિક છે. તો પણ મૂર્ખ પ્રાણી બીજાને માટે તત્ત્વોનો ઉપદેશ આપે છે. વધુ શું કહેવાય.

કાપિલ–મતાનુયાયી સાંખ્ય એવું કહે છે કે આ લોક ધ્રુવ–શાશ્વતિક–નિત્ય છે. આમાં ઉત્પત્તિ અને નાશનો વ્યવહાર ગૌણ છે. એમાં આવિર્ભાવ અને તિરોભાવ જ

'सदसदिदं प्रपञ्चजातं, मृत्तिकादावुपादानकारणे घटादिरव्यक्तरूपेण सन् बहिरिन्द्रियप्रत्यक्षायोग्यत्वेनाऽसन् घट इति व्यवहारः' इत्यादिकमाहुः, तेषां मते सिद्धमेव लोकस्य ध्रुवत्वम् ।

हैं, अतः यह व्यवहार–वास्तविक नहीं है । मिट्टीसे घट कोई अपूर्व वस्तु उत्पन्न नहीं होती है किंतु उसमें घटका तिरोभाव था और कारणकलापसे तिरोभाव हट जाने पर उसका आविर्भाव होता है । अर्थात्–सत्का ही आविर्भाव हुआ असत्का नहीं । इस लिये अपूर्व कुछ भी उत्पन्न नहीं होता । वैशेषिकसिद्धान्तकी तरह उत्पत्तिसे पूर्व कार्यका असत्त्व माना जायगा तो असत् शशशृङ्गकी भी उत्पत्ति कदाचित् स्वीकार करनी पडेगी। सत्का कभी भी विनाश नहीं होता है इसीलिये घटका सर्वथा सत्त्व मानने पर उसका कभी विनाश नहीं हो सकता है, परन्तु विनाश होता दिखता तो है, इसलिये यह जगत्प्रपंच सत्–असत् –स्वरूप है । उपादानकारणस्वरूप मिट्टीमें घटादिक कार्य अव्यक्तरूपसे थे, इसलिये वे बहिरिन्द्रिय चक्षुरादिकोंके अविषयभूत थे; अतः मिट्टीमें वर्तमान होते हुए भी उनका चक्षुरिन्द्रियसे ग्रहण नहीं होता है । इस लिये बहिरिन्द्रियसे ग्रहणके अयोग्य होनेसे घटादिकों में "असन् घटः" इत्यादिक व्यवहार होता है–ऐसा सांख्योंका कहना है, इस प्रकारके उनके कथनसे लोकमें ध्रुवता सिद्ध होती है।

થાય છે, પણ આ વ્યવહાર વાસ્તવિક નથી. માટીથી ઘટ કોઈ અપૂર્વ વસ્તુ ઉત્પન્ન થતી નથી; પરન્તુ એમાં ઘટનો તિરોભાવ હતો અને કારણકલાપથી તિરોભાવ દૂર થતાં એનો આવિર્ભાવ થઈ જાય છે, અર્થાત્–સત્‌નો જ આવિર્ભાવ થયો અસત્‌નો નહીં. આથી અપૂર્વ કાંઈ પણ ઉત્પન્ન થતું નથી. વૈશેષિક સિદ્ધાંત માફક ઉત્પત્તિથી પૂર્વ કાર્યનું અસત્ત્વ માનવામાં આવે તો અસત્ શશશૃંગની પણ ઉત્પત્તિ કદાચ સ્વીકારવી પડે. સત્‌નો કદિ પણ વિનાશ થતો નથી. આ કારણે ઘટનું સર્વથા સત્ત્વ માનવાથી એનો કદિ વિનાશ થઈ શકતો નથી. પરન્તુ વિનાશ થતો દેખાય તો છે. આથી આ જગત્–પ્રપંચ સત્–અસત્–સ્વરૂપ છે. ઉપાદાન કારણ માટીમાં ઘટાદિક કાર્ય અવ્યકતરૂપથી હતાં, આથી તે બહિરિન્દ્રિય ચક્ષુનાં અવિષયભૂત હતાં. માટે માટીમાં વર્તમાન હોવા છતાં પણ તેને આંખથી જોઈ શકાતું નથી. માટે બાહ્ય ઈન્દ્રિયથી જોવાને અયોગ્ય હોવાથી ઘટ આદિમાં "असन् घटः" ઇત્યાદિ વ્યવહાર થાય છે. એવું સાંખ્યોનું કહેવું છે. આ પ્રકારના તેના કથનથી લોકમાં ધ્રુવતા સિદ્ધ થાય છે.

बौद्धास्तु–'अध्रुवो लोकः' इति ब्रुवते; इत्थं हि तेषामभ्युपगमः–सर्वमिदं स्थावरजङ्गमात्मकं जगत् क्षणिकम्, लोकस्य विनाशकारणाभावेन यदि 'लोको नित्यः' इति मन्यसे तर्हि नित्यभूतस्य शाश्वतिकस्य स्वरूपेणाविच्युतस्य तस्य सर्वथा विकाररहितत्वेन भाव्यम्, तथा च क्रमेण यौगपद्येन वा तस्यार्थक्रियायां सामर्थ्याभावात्सर्वव्यवहारोच्छेदापत्तिः स्यात्, तस्मात् 'अध्रुवो लोकः' इति।

बौद्धोंका कथन है कि यह लोक अध्रुव–अनित्य है। उनकी मान्यता इस प्रकार है–कि स्थावर–जंगम–स्वरूप यह लोक क्षणिक–क्षण २ में नष्ट होता रहता है। विनाशके कारणोंके अभावसे यदि लोकको नित्य माना जावे तो फिर इस प्रकार से सर्वथा नित्य बने इस लोकमें विकृतिका सद्भाव नहीं पाया जाना चाहिये; क्योंकि "अप्रत्युत्पन्नस्थिरैकरूपो नित्यः" उत्पत्तिरहित, शाश्वतिक, स्वरूपसे अप्रच्युत का नाम ही नित्य है, और इस प्रकार नित्य बने हुए में विकृति नहीं होती है। तथा–क्रम और यौगपद्यसे सर्वथा नित्य पदार्थकी अर्थक्रिया करनेमें सामर्थ्य घटित नहीं होनेसे अर्थक्रियाकारित्व के अभावसे उसमें शून्यता ही आवेगी, "यदेवार्थक्रियाकारि तदेव परमार्थसत्" इस वाक्यके अनुसार अर्थक्रियाकारी पदार्थ ही परमार्थ से सत् माना गया है। इसलिये नित्यमें विकृतिके अभावसे सर्व व्यवहार के उच्छेदकी आपत्ति आनेसे "लोकअध्रुव" है यही मान्यता ठीक है।

બૌદ્ધોનું કથન છે કે આ લોક અધ્રુવ–અનિત્ય છે. તેની માન્યતા આ પ્રકારની છે સ્થાવર–જંગમ–સ્વરૂપ આ લોક ક્ષણિક–ક્ષણ ક્ષણમાં નષ્ટ થતો–રહે છે. વિનાશના કારણોના અભાવથી કદાચ લોકને નિત્ય માનવામાં આવે તો પછી આ પ્રકારથી સર્વથા નિત્ય બનેલા આ લોકમાં વિકૃતિનો સદ્ભાવ રહેવું જોઈએ નહિ; કારણ કે 'अप्रत्युत्पन्नस्थिरैकरूपो नित्यः' ઉત્પત્તિરહિત, શાશ્વતિક અને સ્વરૂપથી અપ્રચ્યુતનું નામજ નિત્ય છે, અને આ પ્રકારે નિત્ય બનેલામાં વિકૃતિ હોતી નથી. ક્રમ અને યૌગપદ્યથી સર્વથા નિત્ય પદાર્થની અર્થક્રિયા કરવામાં સામર્થ્ય ઘટિત નહિ હોવાથી, અર્થક્રિયાકારિત્વના અભાવથી તેમાં શૂન્યતા જ આવવાની. "यदेवार्थक्रियाकारि तदेव परमार्थसत्" આ વાક્ય અનુસાર અર્થક્રિયાકારી પદાર્થ જ પરમાર્થથી સત્ માનવામાં આવેલ છે. નિત્યમાં વિકૃતિના અભાવથી સર્વ વ્યવહારના ઉચ્છેદની આપત્તિ આવશે; માટે "લોક અધ્રુવ" છે એજ માન્યતા ઠીક છે.

यद्वा केचित्–' लोकः=भूलोकः पृथिवीमण्डलमित्यर्थः, अध्रुवः=चलः ' इति वदन्ति, तथा हि—यथा–नौकादिगतैर्जनैश्चलद्भिरपि भ्रान्तिवशादचलास्तीरस्थ-वृक्षादयश्चला दृश्यन्ते, एवं वस्तुतः पृथिव्येव चलति सूर्यस्त्वचलोऽपि भ्रान्तिवशाच्चल इव प्रतिभाति ।

यत्तु–सूर्यं ये पूर्वस्यां दिशि वीक्षन्ते तेषामुदितः सूर्यो जायते, ये तु दूरवर्ति-त्वात्तं नेक्षन्ते तेषामस्तमितः सूर्य इति । मध्यस्थितानां मध्याह्नगतो भवति ।

पौराणिकास्तु–सादिको लोकः=उत्पत्तिमान लोकः, तत्पूर्वं सृष्ट्यादौ तमो-भूतमतर्क्यं सर्वतः प्रसुप्तमिवाऽऽसीत् । विष्णोर्नाभिकमलाज्जगदिदमुत्पन्नमिति कथयन्ति ।

अथवा—कोई यह कहते हैं–लोक–भूलोक–पृथिवीमंडल–चल है । जैसे–नौकादिसे चलनेवाले मनुष्योंको (जो नौकादिमें रहनेसे स्वयं स्थिर होते हुए भी भ्रमण कर रहे हैं) भ्रान्तिके वशसे तीरस्थ वृक्षादिक चलते हुए नजर आते हैं । इसी तरह वस्तुतः पृथिवी ही चलती है सूर्य अचल होते हुए भी भ्रान्तिके वशसे चलता हुआ जैसा ज्ञात होता है। सूर्यको जो पूर्वदिशामें उदित हुआ देखते हैं वे कहते हैं कि सूर्यका उदय हुआ, दूर होनेसे जो नहीं देख सकते हैं वे कहते हैं कि सूर्य अस्तमित हो गया, मध्यमें स्थित प्राणियोंको मध्याह्नगत मालूम देता है; वास्तवमें तो सूर्य अचल ही है ।

पौराणिकोंका यह कथन है कि यह लोक सादिक उत्पत्तिवाला है, जब इसकी उत्पत्ति नहीं हुई थी अर्थात् सृष्टिकी आदि में यह तमोभूत था, अतर्क्य था (यह क्या था कुछ नहीं कहा जा सकता

અથવા—કોઈ એમ કહે છે–લોક–ભૂલોક=પૃથ્વીમંડળ ચલ છે. જેમ જહાજમાં ચાલવાવાળા મનુષ્યને ભ્રાન્તિને કારણે તીરસ્થિત વૃક્ષ વગેરે દોડતાં–ચાલતાં નજરે પડે છે. એ જ રીતે વસ્તુતઃ પૃથ્વી ચાલે છે, સૂર્ય અચલ હોવા છતાં પણ ભ્રાન્તિના વશથી ચાલતો હોય એમ દેખાય છે. સૂર્ય કે જેને પૂર્વ દિશામાં ઉદિત થએલો જોઇએ છીએ, અને કહીએ છીએ કે સૂર્યનો ઉદય થયો. દૂર હોવાથી જે નથી દેખી શકતા તે કહે છે કે સૂર્ય આથમી ગયો. મધ્યમાં સ્થિત પ્રાણીઓને મધ્યાહ્ન માલુમ પડે છે. વાસ્તવમાં તો સૂર્ય અચલ જ છે.

પૌરાણિકોનું એવું કથન છે કે આ લોક સાદિક–ઉત્પત્તિવાળોજ છે. જ્યારે એની ઉત્પત્તિ થયેલ ન હતી, અર્થાત્ સૃષ્ટિની ઉત્પત્તિ પહેલાં આ તમોભૂત

अनादिको लोकः=सौगतमते चानादिपरम्परयैकान्ततो लोकस्यानादित्वं भवति।

सपर्यवसितः=सान्तः प्रलयसमये विष्णोर्नाभिकमले लोको विलीनो भवति, एतदपि पौराणिकमतम् ।

अपर्यवसितः=अन्तरहितो लोकोऽस्ति । सतो लोकस्याऽऽत्यन्तिकविनाशासम्भवात् ।

येषां मते सादिको लोकस्तेषां मते लोकः सपर्यवसितः । येषां त्वनादिकस्तेषामपर्यवसित इति बोध्यम् ।

है) और सर्वतः प्रसुप्त जैसा था । विष्णुकी नाभिमें रहे हुए कमलसे यह जगत उत्पन्न हुआ है। अतः यह सादिक है ।

यह लोक अनादि है-यह भी सौगतोंका मत है। इस मान्यतामें एकान्तरूपसे अनादि परम्परासे चला आया हुआ होनेसे लोकमें अनादिता आती है ।

" सपर्यवसितो लोकः " यह लोक सान्त है, प्रलयके समयमें यह लोक विष्णुकी नाभिके कमलमें विलीन हो जाता है-यह भी पौराणिकोंका मत है। " अपर्यवसितो लोकः " यह लोक अन्तरहित है, क्यों कि जो सत् पदार्थ होता है उसका आत्यन्तिक विनाश नहीं होता है। जिसके सिद्धान्तानुसार लोक सादिक है उसके सिद्धान्तानुसार लोक सपर्यवसित भी है, जिसने उसे अनादि माना है, उसकी मान्यतानुसार वह अपर्यवसित भी है।

હતું, શું હતું તે કહેવાઈ શકતું નથી. ચારે બાજુ સૂનકાર જેવું હતું. વિષ્ણુની નાભિમાં રહેલા કમળથી આ જગત્ ઉત્પન્ન થયેલ છે. આ ખરોબર છે.

આ લોક અનાદિ છે-આ સૌગતોનું કહેવું છે. આ માન્યતા-અનુસાર એકાન્ત રૂપથી અનાદિ પરંપરાથી ચાલ્યું આવેલ હોવાથી, લોકમાં અનાદિતા આવે છે.

" सपर्यवसितो लोकः " આ લોક સાન્ત છે. પ્રલયના સમયમાં આ લોક વિષ્ણુના નાભિ-કમળમાં વિલીન થઈ જાય છે. આવો પણ પૌરાણિકોનો મત છે. " अपर्यवसितो लोकः " આ લોક અન્તરહિત છે, કેમ કે જે સત્ પદાર્થ હોય છે એનો આત્યન્તિક વિનાશ થતો નથી. જેના સિદ્ધાન્ત અનુસાર લોક સાદિક છે તેના સિદ્ધાન્ત-અનુસાર લોક સપર્યવસિત પણ છે, જેને એણે અનાદિ માનેલ છે-એમની માન્યતાનુસાર તે અપર્યવસિત પણ છે.

स्याद्वादतत्त्वानाभिज्ञास्ते ' अस्ति लोकः ' इत्यादिनैकान्तवादमाश्रित्य नानाविधवाचां विनियोजनमभिधायात्मविषयेऽपि विवदन्ते । तदेव दर्शयति–' सुकृत '-मित्यादि। सुकृतमिति वा=पुण्यमिति, सुष्ठुकृतमित्यर्थो वा, एवमेव दुष्कृतमिति वा =पापमिति वादिनो भवन्ति । तथा हि–यदनेन परिहृतसर्वसङ्गेन पञ्चमहाव्रतादानं विहितं तत्सुष्ठु कृतम्, तथा विहितस्त्रीपरिग्रहेण तनयमनुत्पाद्य स्त्री त्यक्तेति दुष्कृतमिति वा कृतमिति ।

किञ्च 'कल्याणमिति वा' गृहीतसंयमं कश्चित्कथयति–कल्याणमाचरितं त्वयेति,

---

ये पूर्वोक्त " अस्ति " आदि लोकविषयक समस्त मान्यताएँ स्याद्वादसिद्धान्तके तत्त्वसे अनभिज्ञ हुए व्यक्तियोंकी हैं। इन अनेक प्रकारकी मान्यताओं में एकान्तरूपसे ही अपने २ अभिमतकी पुष्टि की गई है। इन प्रवादियों की मान्यता आत्मतत्त्वमें भी भिन्न २ रूपसे है–यही बात 'सुकृत' मित्यादि वाक्योंसे सूत्रकार स्पष्ट करते हैं।

पुण्य अथवा सुष्ठुकृतका नाम सुकृत है। पाप अथवा खोटे कृत–किये गयेका नाम दुष्कृत है। जैसे–इसने सर्व परिग्रह आदिका त्यागकर पंच महाव्रतोंको धारण किया यह तो सुष्ठुकृतम्–बहुत अच्छा किया; परन्तु जब इसके स्त्री थी तो इसे चाहिये था कि उसके कमसे कम एक बच्चा ही हो जाता तब जा कर यह मुनि बनता, इसके पहिले इसने स्त्री त्याग कर दिया और मुनि बन गया यह इसने 'दुष्कृतं'–अच्छा नहीं किया।

तथा–' कल्याणम् इति वा'–जिसने संयम धारण कर लिया है, ऐसे

આ પૂર્વોકત " अस्ति " આદિ લોકવિષયક સમસ્ત માન્યતાઓ સ્યાદ્વાદ સિદ્ધાંતના તત્ત્વથી અજાણ એવી વ્યકિતઓની છે. આવી અનેક પ્રકારની માન્યતાઓમાં એકાન્તરૂપથી જ પોતપોતાના મતની પુષ્ટિ કરવામાં આવેલ છે. આ મતવાળાઓની માન્યતા આત્મ તત્ત્વમાં પણ જુદા જુદા રૂપથી છે. આ વાત– 'सुकृतम्' ઇત્યાદિ વાકયોથી સૂત્રકાર સ્પષ્ટ કરે છે. પુણ્ય–અથવા સારૂં કાર્ય તેનું નામ સુકૃત છે, પાપ અને ખોટું કાર્ય તેનું નામ દુષ્કૃત છે. જેમ–તેણે સર્વ પરિગ્રહનો ત્યાગ કરી પાંચ મહાવ્રત ધારણ કર્યાં તેણે સુકૃત કર્યું. પરંતુ એની સ્ત્રીને એકાદ બાળક થયા પછી એણે મુનિવ્રત ગ્રહણ કર્યું હોત તો ઠીક હતું. આની પહેલાં તે મુનિ બની ગયો તે એણે દુષ્કૃત્ય કર્યું, એટલે સારૂં નથી કર્યું.

તથા कल्याणम् इति वा—જેણે સંયમ ધારણ કરેલ છે એવા મુનિના પ્રત્યે

तथा 'पापमिति वा' कश्चित्कथयति–पापं त्वया समाचरितं यद् गृहस्थधर्मपरिपालनासमर्थः कातरोऽनपत्य एव त्वं संयमं गृहीतवानिति। एवमेव कश्चित्कथयति–साधुरिति वा असाधुरिति वा, तथैव तव सिद्धिरिति वा, असिद्धिरिति वा, तथा निरय

मुनिके प्रति कोई ऐसा कहता है कि "कल्याणम् आचरितं त्वया" तुमने अपनी आत्माका कल्याण-भला-कर लिया। तथा 'पापमिति वा' कोई कहता है कि आपने यह अच्छा नहीं किया; क्यों कि इससे तो यह मालूम होता है कि तुम गृहस्थ धर्मके पालन करनेमें कायर-असमर्थ थे और इससे कायर बन कर विना पुत्ररूप उत्तराधिकारीके हुए तुमने संयम धारण कर लिया है। इसी तरह कोई कहता है–'साधु इति वा, असाधु इति वा–आपने अच्छा किया, आपने अच्छा नहीं किया, तथा–'तव सिद्धिरिति वा'–असिद्धिरिति वा, तुम्हारी सिद्धि होगी–तुम्हारी सिद्धि नहीं होगी, एवं निरय इति वा–तुमने घरवालोंका कुछ भी ख्याल न कर और उन्हें रोता विलखता छोड़ कर जो यह साधुका वेष पहिर लिया है–इससे तुम्हारी गति अच्छी हो जावेगी, सो यह बात नहीं है, दूसरों को दुःखके उत्पादक होनेसे तुमने नरक गमनके योग्य पापका ही उपार्जन किया है, अतः तुम मनुष्य नहीं–नारकी हो। यह आवेशके वचन हैं। कोई २ मनुष्य सांसारिक पदार्थों को छोड़कर आत्मकल्याण करने-

કોઈ એમ કહે છે કે "कल्याणम् आचरितं त्वया" તમે તમારા આત્માનું કલ્યાણ ભલે કરી લીધું. તથા–'पापमिति वा'–કોઈ એમ કહે છે કે તમે આ ઠીક નથી કર્યું; કેમ કે આથી તો એમ માલુમ પડે છે કે તમે ગૃહસ્થ ધર્મનું પાલન કરવામાં અસમર્થ હતા, અને એથી કાયર બની પુત્રરૂપી ઉત્તરાધિકારી વિના તમે સંયમ ધારણ કરેલ છે. આમાં કોઈ એમ પણ કહે છે કે 'साधु इति वा' 'असाधु इति वा' આપે સારૂં કર્યું. આપે સારૂં નથી કર્યું. તથા–'तव सिद्धिरिति वा असिद्धिरिति वा' તમારી સિદ્ધિ થશે તમારી સિદ્ધિ થનાર નથી. તથા–'निरय इति वा' તમે પોતાના ઘરવાળાઓનો કાંઈ પણ ખ્યાલ કર્યા વગર અને તેને રોતા કકળતા છોડીને જે આ સાધુનો વેશ પહેર્યો છે એથી તમારી ગતિ સારી થશે એ વાત બરોબર નથી, બીજાઓને દુઃખ થાય તેવું કરવાથી તમોએ નરક યોગ્ય પાપનું જ ઉપાર્જન કરેલ છે. આથી તમે મનુષ્ય નથી, નારકી છો. આ આવેશનું વચન છે. કોઈ કોઈ મનુષ્ય, સાંસારીક પદાર્થોને છોડીને આત્મકલ્યાણ કરવાવાળાઓની પ્રશંસા–સ્તુતિ પણ કરે છે

इति वा–नरकगमनायोपार्जितपापत्वादेव त्वं नरकः=नरकगामी, अथवा निरय इति वा–नरकलोकोऽस्तीति वा, तथैव अनिरय इति वा–नरकलोको नास्तीति, यद्वा–नास्य संयमिनो नरकगमनमिति वा–इति। इत्यादीनि स्वच्छन्दमतिकल्पितानि नानाविधानि वाक्यानि विवदन्ते। अन्यदप्युक्त्वा विवदन्त इति दर्शयति–'यदिद'–मित्यादि। यद्=यस्मात् कारणात्, यद्वा–यत्पूर्वोक्तं=लोकादिकमभिहितं तद् इदं=लोकादिकं विप्रतिपन्नाः=विरुद्धभाषिणस्ते मिथ्यादृष्टयः, मामकं=स्वकीयं धर्मं श्रेयस्करं मुक्तिकरं च प्रज्ञापयन्तः=प्रकर्षेण प्ररूपयन्तः स्वयं श्रेयोमार्गाद् वञ्चिताः परा-

---

वालोंकी प्रशंसा–स्तुति भी करते हैं और कहते हैं–"अनिरय इति" आपने अच्छा किया जो इस संसाररूपी नरकसे आप पार हो गये, अथवा यह सिद्धान्तका वचन है कि "अणुवयमहव्वयाइं न लहइ देवाउगं मुत्तं" अणुव्रत महाव्रत देवायुके बंध करनेवालेके सिवाय किसी अन्य आयुके बंधक जीवको नहीं होते हैं–इस अपेक्षा इस संयमीका नरकमें गमन नहीं हो सकता। इस प्रकार लोग स्वच्छन्दमतिसे कल्पित अनेक प्रकारके वाक्योंका प्रयोग करते रहते हैं। और भी स्वकल्पित बातें वे बनाते हैं–इसे सूत्रकार "यदिदं विप्रतिपन्नाः" इन पदोंसे प्रदर्शित करते हैं। इस प्रकारसे विरुद्ध भाषण करनेवाले ये मिथ्यादृष्टि जीव "मेरा ही धर्म श्रेयस्कर और मोक्षप्रदाता है" इस प्रकारकी प्ररूपणा कर स्वयं श्रेयोमार्गसे वंचित बन, अन्य जीवोंको भी ठगा करते हैं, अर्थात् उस मार्गसे दूसरोंको वंचित बनाते रहते हैं। जिस प्रकार कोई

અને કહે છે 'अनिरय इति वा' આપે સારૂં કર્યું જે આ સંસારરૂપી નરકથી આપ પાર થયા, અથવા આ સિદ્ધાંતનું વચન છે કે–"अणुव्वयमहव्वयाइं न लहइ देवाउयगं मुत्तं' અણુવ્રત મહાવ્રત દેવાયુના બંધ કરવાવાળાની સિવાય કોઈ બીજા આયુષ્યના બન્ધક જીવને થતું નથી. આ અપેક્ષા એવા એવા સંયમીનું નરકમાં ગમન થઇ શકતું નથી. આ રીતે લોક સ્વચ્છંદમતિથી કલ્પિત અનેક પ્રકારનાં વાકયોનો પ્રયોગ કરતા રહે છે. બીજી પણ સ્વકલ્પિત વાતો તે કહેતા રહે છે. તેને સૂત્રકાર–"यदिदं विप्रतिपन्नाः" આ પદોથી પ્રદર્શિત કરે છે. આ લોકમાં આ પ્રકારથી વિરૂદ્ધ ભાષણ કરવાવાળા એ મિથ્યાદૃષ્ટિ જીવ "મારો જ ધર્મ શ્રેયસ્કર અને મોક્ષ આપનાર છે" આ પ્રકારની પ્રરૂપણા કરી શ્રેયોમાર્ગથી વંચિત બની, બીજા જીવોને પણ ઠગે છે. અર્થાત્ એ માર્ગથી બીજાઓને પણ વંચિત બનાવે છે. જે રીતે કોઈ આંધળો આંધળાનો હાથ

नपि वञ्चयन्ति 'अन्धेनैव नीयमानो यथाऽन्धः' इति लोकोक्त्या स्वयं नष्टाः परान्नाशयन्तीति तात्पर्यम्। लोकादिविषये ते बहुधा विवदन्ते, तद्यथा—

"इच्छन्ति कृत्रिमं सृष्टिवादिनः सर्वमेवमिति लिङ्गम्॥
कृत्स्नं लोके महेश्वरादयः सादिपर्यन्तम्॥ १॥
नारीश्वरजं केचित्केचित्सोमाग्निसम्भवं लोकम्॥
द्रव्यादिषड्विकल्पं जगदेतत् केचिदिच्छन्ति॥ २॥
ईश्वरप्रेरितं केचित् केचिद्ब्रह्मकृतं जगत्॥
अव्यक्तप्रभवं सर्वं विश्वमिच्छन्ति कापिलाः॥ ३॥

अंधा अंधेका हाथ पकड़ कर मार्ग बताने ले जाता है तो वह दूसरे अंधे को भी मार्गसे भ्रष्ट बना देता है, अथवा यथेष्ट स्थान पर नहीं पहुंचा सकता, उसी प्रकार इन मिथ्यादृष्टियोंके फंदेमें पड़ा हुआ प्राणी भी यथेष्ट स्थान पर नहीं जा सकता। अतः ऐसे जीव स्वयं नष्ट बन कर दूसरोंको भी नष्ट करते हैं। लोकादिकके विषयमें भी ये बहुधा विवाद किया करते हैं—

इच्छन्ति कृत्रिमं सृष्टिवादिनः, सर्वमेवमिति लिङ्गम्।
कृत्स्नं लोके महेश्वरादयः सादिपर्यन्तम्॥ १॥
नारीश्वरजं केचित् केचित् सोमाग्निसंभवं लोकम्।
द्रव्यादि-षड्विकल्पं जगदेतत् केचिदिच्छन्ति॥ २॥
ईश्वरप्रेरितं केचित् केचिद् ब्रह्मकृतं जगत्।
अव्यक्तप्रभवं सर्वं विश्वमिच्छन्ति कापिलाः॥ ३॥

પકડીને માર્ગ બતાવવા લઈ જાય છે તે બીજા આંધળાને પણ માર્ગથી વેગળો કરી દે છે, અને ઉચિત સ્થાને પહોંચાડી શકતો નથી. એ રીતે આવા મિથ્યા-દૃષ્ટિના ફંદમાં પડેલા પ્રાણી પણ ઉચિત સ્થાને પહોંચી શકતા નથી. આથી એવા જીવ સ્વયં નાશ પામીને બીજાનો પણ નાશ કરે છે. લોકાદિકના વિષયમાં પણ ઘણી વખત વિવાદ કર્યા કરે છે.

इच्छन्ति कृत्रिमं सृष्टिवादिनः, सर्वमेवमिति लिङ्गम्।
कृत्स्नं लोके महेश्वरादयः सादिपर्यन्तम्॥ १॥
नारीश्वरजं केचित् केचित् सोमाग्निसंभवं लोकम्।
द्रव्यादि-षड्विकल्पं जगदेतत् केचिदिच्छन्ति॥ २॥
ईश्वरप्रेरितं केचित् केचिद् ब्रह्मकृतं जगत्।
अव्यक्तप्रभवं सर्वं विश्वमिच्छन्ति कापिलाः॥ ३॥

यादृच्छिकमिदं सर्वं केचिद् भूतविकारजम् ॥
केचिच्चानेकरूपं तु बहुधा संप्रधाविताः ॥ ४ ॥
अनेकान्तवादानभिज्ञानामेकान्तवादिनामेतत्कथनम् । तथाहि—

यादृच्छिकमिदं सर्वं केचिद्भूतविकारजम् ।
केचिच्चानेकरूपं तु बहुधा संप्रधाविताः ॥ ४ ॥

भावार्थ—सृष्टिवादी वैशेषिक, मीमांसक और नैयायिक आदि सिद्धान्तकार इस लोकको कृत्रिम और आदि–अन्तसहित मानते हैं। कोई २ अर्धनारीश्वरसे उत्पन्न हुआ इसे स्वीकार करते हैं। सोम, चन्द्र और अग्निसे यह लोक हुआ है–कोई २ ऐसा कहते हैं। किसी २ का सिद्धान्त है कि यह लोक द्रव्यादि–षड्–विकल्प–स्वरूप है। कोई २ इसे ईश्वरसे उद्भूत, कोई २ इसे ब्रह्मासे रचित मानते हैं। सांख्य इसे प्रकृति से जनित, कोई २ इसे स्वतः उद्भूत, और कोई २ इसे पृथ्व्यादिक पांच भूतोंका विकारस्वरूप स्वीकार करते हैं। कोई इसे एकरूप और कोई इसे अनेकरूप भी मानते हैं। इस प्रकारसे इस लोकके विषयमें भिन्न २ सिद्धान्तकारोंकी भिन्न २ मान्यताएँ इन पद्यों द्वारा बतलाई गई हैं। लोक और आत्मतत्त्वके विषयमें ये उपर्युक्त मान्यताएँ उन्हीं व्यक्तियों की हैं जो अनेकान्तवादसे अनभिज्ञ बने हुए हैं। कहा भी है—

यादृच्छिकमिदं सर्वं केचिद् भूतविकारजम् ।
केचिच्चानेकरूपं तु बहुधा संप्रधाविताः ॥ ४ ॥

ભાવાર્થ—સૃષ્ટિવાદી વૈશેષિક, મીમાંસક અને નૈયાયિક આદિ સિદ્ધાંતકાર આ લોકને કૃત્રિમ અને આદિ–અન્ત–સહિત માને છે. કોઈ કોઇ અર્ધનારીશ્વરથી ઉત્પન્ન થએલ હોવાનો સ્વીકાર કરે છે. સોમ, ચંદ્ર અને અગ્નિથી આ લોક થયેલ છે તેમ કોઈ કહે છે. કોઈ કોઈનો સિદ્ધાંત છે કે આ લોક દ્રવ્યાદિ–ષટ્–વિકલ્પ–સ્વરૂપ છે. કોઈ કોઈ તેને ઇશ્વરથી ઉત્પન્ન થયેલ, કોઈ કોઈ તેને બ્રહ્માથી રચિત થયેલ માને છે. સાંખ્ય તેને પ્રકૃતિથી જનિત સ્વીકારે છે કોઈ કોઇ તેને સ્વતઃ ઉદ્ભૂત અને કોઈ કોઈ તેને પૃથ્વી આદિ પાંચ ભૂતોના વિકાર–સ્વરૂપ સ્વીકાર કરે છે. કોઇ તેને એકરૂપ, કોઇ તેને અનેક રૂપ પણ માને છે, આ પ્રકારથી આ લોકના વિષયમાં ભિન્ન ભિન્ન સિદ્ધાંતકારોની ભિન્ન ભિન્ન માન્યતાઓ આ પદો દ્વારા બતાવેલ છે. લોક અને આત્મતત્ત્વના વિષયમાં ઉપર કહેલ એ માન્યતાઓ એ વ્યક્તિઓની છે કે જે અનેકાન્તવાદથી અજાણ છે. કહ્યું પણ છે

"लोकक्रियाऽऽत्मतत्त्वे, विवदन्ते वादिनो विभिन्नार्थम्।"
अविदितपूर्वं येषां स्याद्वादविनिश्चितं तत्त्वम् ॥ १ ॥ इति।

येषां तु स्याद्वादसिद्धान्तो हृदये प्ररूढस्तेषामस्तित्वनास्तित्वाद्यर्थस्य तत्त-न्नयाभिप्रायेण कथञ्चित्सङ्गतिसद्भावात्प्रवादस्थानमेव नास्तीति।

परतैर्थिकधर्माणामपारमार्थिकत्वं प्रतिपादयन् स्वधर्मस्य पारमार्थिकत्वं दर्शयति-'इत्थवि'-इत्यादि, अत्रापि 'अस्ति लोको नास्ति लोक' इत्यादि-

---

लोकक्रियात्मतत्त्वे विवदन्ते वादिनो विभिन्नार्थम्।
अविदितपूर्वं येषां स्याद्वादविनिश्चितं तत्त्वम् ॥

जिनके हृदयमें स्याद्वाद सिद्धान्तका वास है, उन्हें अस्तित्व-नास्तित्व इत्यादि अर्थमें उस २ नयके अभिप्रायसे संगतिका सद्भाव होनेसे, वाद-विवादके लिये स्थान ही नहीं है।

भावार्थ—ये पूर्वोक्त मन्तव्य एकान्तरूपमें माने जाने पर ही एक दूसरेके लिये विवादका कारण बनते हैं, परन्तु जब ये किसी अपेक्षासे (नयके अभिप्रायसे) विचार करनेमें आते हैं तो इनमें विवादके लिये स्थान ही नहीं रहता है। इसी बातको सूत्रकार "अत्रापि" इत्यादि पदोंसे प्रदर्शित करते हैं, वे कहते हैं-परतीर्थिक धर्मोंमें अपरमार्थिकता और स्वधर्ममें परमार्थिकता इस प्रकारसे है—

अस्ति लोकः, नास्ति लोकः, ये दो परस्पर विरुद्ध हैं-अस्तिकी

लोकक्रियात्मतत्त्वे विवदन्ते वादिनो विभिन्नार्थम्।
अविदितपूर्वं येषां स्याद्वादविनिश्चितं तत्त्वम् ॥

જેના હૃદયમાં સ્યાદ્વાદ સિદ્ધાંતનો વાસ છે તેને અસ્તિત્વ નાસ્તિત્વ ઈત્યાદિ અર્થમાં તે તે નયના અભિપ્રાયથી સંગતિનો સદ્ભાવ હોવાથી વાદવિવાદ માટે સ્થાન નથી.

ભાવાર્થઃ—આ પૂર્વોકત મંતવ્ય એકાન્તરૂપમાં માનવામાં આવેલ હોવાથી એક બીજા માટે વિવાદનું કારણ બને છે, પરન્તુ જ્યારે એ કોઇ અપેક્ષાથી (નયના અભિપ્રાયથી) વિચાર કરવામાં આવે છે તો તેમાં વિવાદને માટે સ્થાન જ નથી. આ વાતને સૂત્રકાર "अत्रापि" ઈત્યાદિ પદોથી પ્રદર્શિત કરે છે. તેઓ કહે છે-પરતીર્થિક ધર્મમાં અપરમાર્થિકતા અને સ્વધર્મમાં પરમાર્થિકતા આ પ્રકારે છે—

'अस्ति लोकः, नास्ति लोकः' આ બન્ને પરસ્પર વિરૂદ્ધ છે. અસ્તિની

विप्रतिपत्तौ एवं यूयं जानीत=बुध्यध्वम् , यस्तेषाम् 'अस्ति लोकः' 'नास्ति लोकः' इत्याद्येकान्तवादः सः अकमात्='अकस्मात्' इति संस्कृतस्यैव मगधदेशे प्रसिद्धत्वान्मूले गणधरैस्तदेव गृहीतम् , 'कस्मात्' इति हेतौ; न कस्मात् अकस्मात् निर्हेतुकोऽस्तीत्यर्थः। तथा हि-यद्येकान्तः, 'अस्ति लोकः' इत्यत्रास्तित्वसमानाधिकरणत्वं लोकस्य स्यात् ततश्च 'यदस्ति तल्लोकः' इति व्याप्तेः 'अलोकोऽस्ति' इत्यत्राऽस्तित्वरूपहेतोः

अपेक्षा नास्ति और नास्तिकी अपेक्षा अस्ति। कोई वादी लोकमें अस्तित्व धर्म स्वीकार करता है दूसरा उसमें नास्तित्व। ये दोनों कथन परस्पर विरुद्ध इसलिये हैं कि ये नयकी विवक्षासे रहित हैं। इसीका नाम एकान्तवाद है। इसीलिये इनमें अपनी २ मान्यतानुसार वादियोंको विवादका प्रसंग आता है। सूत्रकार कहते हैं कि इस विप्रतिपत्तिमें आप लोग यही समझो कि उनका "अस्ति लोकः, नास्ति लोकः" यह जो एकान्तवाद है वह अकस्मात्-निर्हेतुक है। "अकस्मात्" यह निर्हेतुकता-बोधक पद संस्कृत भाषाकी तरह मगधदेशकी भाषामें भी प्रसिद्ध है, इस लिये गणधरोंने भी मूल सूत्रमें उसी पदका ग्रहण किया है। "कस्मात्" यह हेत्वर्थमें आता है, जो "कस्मात्" नहीं वह "अकस्मात्" है। इसका अर्थ निर्हेतुक" होता है, अर्थात् उनका यह वाद निर्हेतुक है। जैसे कि- "अस्ति लोकः" इस कथनमें अस्तित्वके साथ समानाधिकरणता एकान्तरूपसे लोकमें मानी जावे तो "यदस्ति तल्लोकः" जो है वह लोक है-

---

અપેક્ષા નાસ્તિ અને નાસ્તિની અપેક્ષા અસ્તિ. કોઈ વાદી લોકમાં અસ્તિત્વ ધર્મનો સ્વીકાર કરે છે બીજા નાસ્તિત્વનો. આ બન્ને વાતો પરસ્પર વિરૂદ્ધ આ માટે છે કે એ નયની વિવક્ષાથી રહિત છે. આનું નામ એકાન્તવાદ છે. આ માટે એમાં પોતપોતાની માન્યતા અનુસાર વાદવાળાઓને વિવાદનો પ્રસંગ આવે છે. સૂત્રકાર કહે છે કે આ સામસામા વાદ અંગે આપ એ સમજો કે એમનું 'अस्ति लोकः' नास्ति लोकः' આ જો એકાન્તવાદ છે એ अकस्मात्-હેતુ વગરનો છે. 'अकस्मात्' એ હેતુ વગરના બોધક પદ સંસ્કૃત ભાષાની જેમ મગધદેશમાં પણ પ્રસિદ્ધ છે. આ માટે ગણધરોએ પણ મૂળ સૂત્રમાં એ પદને ગ્રહણ કરેલ છે. "कस्मात्" આ હેત્વર્થમાં આવે છે. જે "कस्मात्" નહીં તે "अकस्मात्" છે એનો અર્થ હેતુ વગરનો થાય છે. અર્થાત્ એમનો એ વાદ નિર્હેતુક છે. "अस्ति लोकः" આ વાક્યમાં અસ્તિત્વની સાથે સમાનાધિકરણતા એકાન્તરૂપથી લોકમાં માનવામાં આવે તો "यदस्ति तल्लोकः" જે છે તે લોક છે આ પ્રકારની વ્યાપ્તિ

सत्त्वात्, साध्यस्य लोकस्य चासत्त्वादनैकान्तिको हेतुः। लोकाभावरूपसाध्याभाव-साधकतया विरुद्धोऽपि च भवति। तथा च-अस्तित्वहेतुना लोकस्य साधने लोक एवालोकः स्यात्, आकाशास्तिकायस्य लोकालोकभेदमाश्रित्य 'अत्थि अलोए'

इस प्रकारकी व्याप्ति होनेसे हेतु अनैकान्तिक हो जाता है; क्यों कि साध्य लोकसे विरुद्ध अलोकके साथ भी इस अस्तित्वरूप हेतुकी व्याप्ति व्यावृत्तिवाली नहीं होती है। अनैकान्तिक हेतु वही होता है जो पक्ष सपक्षमें रहता हुआ भी विपक्षमें रहता है। प्रकृतमें "यदस्ति तल्लोकः" यहां पर अस्तित्वरूप हेतु पक्ष लोकके साथ रहता हुआ भी विपक्ष अ-लोकमें भी रहता है, क्यों कि वहां-अलोकमें साध्य-लोकका अभाव है, दूसरे इसीलिये यह हेतु विरुद्ध भी पड़ता है, लोकका अभावरूप जो साध्यका अभाव अलोक है उसका साधक यह हेतु होता है-अलोकाकाश में भी अस्तित्वरूप हेतु रहता है। इस बातको प्रकट करनेके लिये टीका-कार कहते हैं कि लोक और अलोक ये दो विभाग एक आकाश अस्ति-काय द्रव्यके ही हैं तो जिस प्रकार लोकमें "अस्ति लोकः" ऐसा व्यव-हार होता है, उसी प्रकार "अस्ति अलोकः" अलोकमें भी यह अस्ति-त्वविशिष्ट व्यवहार होता है। "अत्थि लोए-अत्थि अलोए" ये दोनों वचन आकाशविषयक हैं, अतः अस्तित्व यह हेतु लोक और अलोक इन

થવાથી હેતુ અનૈકાન્તિક થઈ જાય છે. કેમ કે સાધ્ય લોકથી વિરૂદ્ધ અલોકની સાથે પણ એ અસ્તિત્વરૂપ હેતુની વ્યાપ્તિ વ્યાવૃત્તિવાળી થતી નથી. અનૈકાન્તિક હેતુ એ જ હોય છે જે પક્ષ સપક્ષમાં રહેવા છતાં વિપક્ષમાં પણ રહે છે. પ્રકૃ-તમાં "यदस्ति तल्लोकः" અહીં પર અસ્તિત્વરૂપ હેતુ પક્ષ લોકની સાથે રહેવા છતાં પણ વિપક્ષ અલોકમાં પણ રહે છે. કેમ કે ત્યાં અલોકમાં સાધ્ય લોકના અભાવ છે, બીજું આ જ કારણે એ હેતુ વિરૂદ્ધ પણ પડે છે. લોકના અભાવરૂપ સાધ્યના અભાવ અલોક છે, એના સાધક એ હેતુ થાય છે-અલોકાશમાં પણ અસ્તિત્વરૂપ હેતુ રહે છે. આ વાતને પ્રગટ કરવા માટે ટીકાકાર કહે છે કે લોક અને અલોક આ બે વિભાગ એક આકાશ અસ્તિકાય દ્રવ્યના જ છે તો જે પ્રકારે લોકમાં "अस्ति लोकः" એવો વ્યવહાર થાય છે એ જ રીતે "अस्ति अलोकः" અલોકમાં પણ આ અસ્તિત્વવિશિષ્ટ વ્યવહાર થાય છે. એ આકાશનું "अत्थि लोए-अत्थि अलोए' વચન છે. આથી અસ્તિત્વ આ હેતુ લોક અને અલોક બન્નેમાં વ્યાપક છે. લોક અને અલોક બન્ને એ અસ્તિત્વના વ્યાપ્ય છે. આ

इत्यागमवचनाद् अस्तित्वं लोकालोकव्यापकम् । लोकत्वमलोकत्वं च अस्तित्वव्याप्यम् इति अस्तित्वहेतोरुभयत्र समानत्वाद् अस्तित्वहेतुसद्भावेन लोकोऽप्यलोक इत्यापद्येत, अलोकस्य अस्तित्वव्याप्यतया व्यापकीभूतास्तित्वसत्तया व्याप्यभूतालोकत्वसत्ता निर्बाधा ।

अपरञ्च—एवम् अलोकाभावरूपस्य लोकस्य अस्तित्वव्याप्यत्वे अलोकस्यापि लोकत्वप्रसङ्गः, लोकत्वरूपव्याप्यसद्भावे व्यापकस्यापि अलोकस्यास्तित्वस्य नि-

उभयोंमें व्यापक है, लोक और अलोक ये दोनों उस अस्तित्वके व्याप्य हैं। इसलिये अस्तित्व हेतु दोनोंमें समानरूपसे रहता है। इस हेतुसे अतिप्रसंग नामका भी दूषण आता है। क्यों कि अस्तित्व हेतुके सद्भावसे लोक भी अलोकरूपसे और अलोक लोकरूपसे आपादित किया जा सकता है। कारण कि लोक जिस प्रकार अस्तित्वका व्याप्य है और वह अपनी व्यापकीभूत सत्तासे समन्वित है उसी प्रकार अलोक भी अस्तित्वका व्याप्य है और वह भी उसी सत्तासे समन्वित है, अतः सत्ताके एकत्व होनेसे लोकमें भी अलोकपना आपादित किया जा सकता है। इसी प्रकार अलोकमें भी लोकपना आपादित हो सकता है, और वह भी इस प्रकारसे कि अलोकके अभावरूप लोक अस्तित्वका व्याप्यपनामें रहता है; इसलिये अलोकमें लोकत्वका प्रसंग हो सकता है; क्यों कि लोकत्वरूप व्याप्यके सद्भावमें व्यापक–जो अलोकका अस्तित्व है, उसका भी नियमसे वहां सद्भाव पाया जाता है। तब तो लोक अलोक और अलोक लोक हो जायगा–इस प्रकारअनिष्टापत्ति होनेसे कुछ

કારણે અસ્તિત્વ હેતુ બન્નેમાં સમાન રૂપથી રહેલ છે. આ હેતુથી અતિપ્રસંગ નામનું દૂષણ આવે છે. કેમકે અસ્તિત્વ હેતુના સદ્‌ભાવથી લોક પણ અલોકરૂપથી અને અલોક લોકરૂપથી આપાદિત કરી શકાય છે. કારણ કે લોક જે પ્રકારે અસ્તિત્વનો વ્યાપ્ય છે અને તે પોતાની વ્યાપકભૂત સત્તાથી સમન્વિત છે. એજ રીતે અલોક પણ અસ્તિત્વનો વ્યાપ્ય છે અને એ પણ એવી સત્તાથી સમન્વિત છે, આથી સત્તાનું એકત્વ થવાથી લોકમાં પણ અલોકપના આપાદિત કરી શકાય છે.

આ રીતે અલોકમાં પણ લોકપના આપાદિત થઈ શકે છે. અને એ પણ આ પ્રકારથી કે અલોકના અભાવરૂપ લોક અસ્તિત્વના વ્યાપ્યપનામાં રહે છે. આ કારણે અલોકમાં લોકત્વનો પ્રસંગ થઈ શકે છે, કેમકે લોકત્વરૂપ વ્યાપ્યના સદ્‌ભાવમાં વ્યાપક જે અલોકનું અસ્તિત્વ છે એનો પણ નિયમથી ત્યાં સદ્‌ભાવ દેખાય છે. ત્યારેતો લોક અલોક અને અલોક લોક થઈ જશે. આ પ્રકારની

यमतः सद्भावात्, तथा च-लोकः अलोको भवति, अलोकोऽपि लोकः, इत्यादि सर्वमनिष्टम्।

किञ्च-लोकालोकापेक्षयाऽस्तित्वस्य व्यापकत्वे जिनदत्तजिनदासादेरप्यलोकत्वापत्तिः, व्याप्याया जिनदत्तव्यक्तेर्नियमतो व्यापकीभूतलोकास्तित्वसद्भावात्, जिनदत्तादौ अलोकव्यापकास्तित्वस्य सद्भावे अलोकत्वसत्ताया अवश्यम्भावात्।

किञ्च-यद्यस्तित्वरूपेण हेतुना लोकत्वं साध्यते तर्हि 'अस्तित्वरूपो हेतुरस्ति' इति कृत्वा हेतुरपि-अस्तित्ववानेव भवति, तथा च हेतोरपि लोकत्वे सिद्धे हेतु-

भी व्यवस्था नहीं बन सकती है।

तथा—लोक और अलोककी अपेक्षासे अस्तित्वमें व्यापकता मानने पर जिनदत्त और जिनदास आदि व्यक्तियोंमें भी लोकत्व और अलोकत्व की आपत्ति आयगी; क्यों कि उभयकी सत्ताका वहां सद्भाव है। व्याप्य जिनदत्त आदि व्यक्ति लोकरूप इसलिये माने जाने चाहिये कि उनमें लोकका व्यापक जो अस्तित्व है उसका सद्भाव है, तथा अलोकका व्यापक जो अस्तित्व है उसका भी वहां सद्भाव है।

तथा—यदि अस्तित्वरूपसे लोककी सिद्धि होती है तो कोई यहां यह भी प्रश्न कर सकता है कि अस्तित्वरूप हेतु जब स्वयं अस्तिरूप है तो उसे भी अस्तित्वविशिष्ट होनेसे लोकत्वापत्ति आवेगी, अर्थात् वह स्वयं लोकरूप हो जायगा।

तथा-हेतु और साध्यमें लोकरूपपनेसे एकत्वापत्ति आ जानेसे साध्यसाधकभाव ही नहीं बन सकता है, ऐसी स्थितिमें किसको हेतु मान

અનિષ્ટાપત્તિ થવાથી કાંઈ પણ વ્યવસ્થા નથી થઈ શકતી.

તથા—લોક અને અલોકની અપેક્ષાથી અસ્તિત્વમાં વ્યાપકતા માનવાથી જીનદત્ત અને જીનદાસ વગેરે વ્યક્તિઓમાં પણ લોકત્વ અને અલોકત્વની આપત્તિ આવી જશે. કેમ કે બન્નેની સત્તાનો ત્યાં સદ્ભાવ છે. વ્યાપ્ય જીનદત્ત આદિ વ્યક્તિને લોકરૂપ એ કારણે માનવી જોઈએ કે એનામાં લોકનું જે વ્યાપક અસ્તિત્વ છે એનો સદ્ભાવ છે, તથા અલોકનું વ્યાપક જે અસ્તિત્વ છે એનો પણ સદ્ભાવ છે.

તથા—જો અસ્તિત્વરૂપથી લોકની સિદ્ધિ થાય છે તો કોઈ એવો પણ પ્રશ્ન કરી શકે છે કે અસ્તિત્વરૂપ હેતુ જ્યારે સ્વયં અસ્તિરૂપ છે તો એને પણ અસ્તિત્વવિશિષ્ટ હોવાથી લોકત્વાપત્તિ આવશે અર્થાત્ એ સ્વયં લોકરૂપ બની જશે. તેમજ હેતુ અને સાધ્યમાં લોકરૂપપણાથી એકત્વાપત્તિ આવી જવાથી

साध्ययोर्लोकत्वरूपतयैकत्वापत्तिः, ततश्च कं हेतुमाश्रित्य लोकः साधयिष्यते प्रत्युत लोकादन्योऽप्यलोकः अस्तित्वहेत्वसम्भवाद् 'अस्ति लोकः' इति प्रतिज्ञाऽपि नैव सिध्यति। तस्मादेकान्तत एव लोकास्तित्वे स्वीक्रियमाणे उक्तरीत्या हेत्वभावोऽस्तीति 'अकस्मात्' इति पदेन भगवता प्रदर्शितम्।

अत्रायं विवेकः—सिद्धो हि हेतुर्भवति, तत्र यद्यस्तित्वहेतोर्लोकरूपसाध्यान्त-

---

कर लोककी सिद्धि की जा सकेगी! लोककी सिद्धिके अभावमें "अस्ति लोकः" यह साध्य और पक्षकी वचनस्वरूप जो प्रतिज्ञा है उसकी भी सिद्धि नहीं हो सकती! साध्यकी सिद्धि हेतुसे होती है, क्यों कि हेतु और साध्यका परस्परमें अविनाभाव सम्बन्ध होता है। यहां पर लोकके अस्तित्वविधायक हेतुका ही जब अभाव है तब फिर साध्यकी सिद्धि हेतुके अभावमें हो भी कैसे सकती है? नहीं हो सकने से प्रतिज्ञा की हानि आती है। इसलिये मूल सूत्रमें जो "अकस्मात्" इस पदसे यह सूत्रकारने कहा है कि "अस्ति लोकः नास्ति लोकः" इत्यादि विप्रतिपत्तियां निर्हेतुक हैं, वह बात यहां तक स्पष्ट रीतिसे समझाई गई है; क्यों कि एकान्तरीतिसे ही लोकका अस्तित्व स्वीकार करनेमें उपर्युक्त रीतिसे हेतुका अभाव आया है।

जो हेतु सिद्ध होता है वही अपने साध्यका साधक होता है, असिद्ध नहीं। असिद्ध साध्य होता है। प्रकृतमें अस्तित्वरूप हेतु जब अपने साध्यके

સાધ્ય-સાધકભાવ જ નથી બની શકતો. એવી સ્થિતિમાં કોને હેતુ માની લોકની સિદ્ધિ કરી શકાય! લોકની સિદ્ધિના અભાવમાં " अस्ति लोकः " આ સાધ્ય અને પક્ષના વચનરૂપ જે પ્રતિજ્ઞા છે એની પણ સિદ્ધિ થઈ શકતી. સાધ્યની સિદ્ધિ હેતુથી થાય છે, કેમ કે હેતુ અને સાધ્યનો પરસ્પર અવિનાભાવ સંબંધ થાય છે. અહિં લોકનું અસ્તિત્વ-વિધાયક હેતુનો જ જ્યારે અભાવ છે-ત્યારે પછી સાધ્યની સિદ્ધિ હેતુના અભાવમાં થઇ પણ કેમ શકે? ન થઈ શકવાથી પ્રતિજ્ઞાને હાનિ પહોંચે છે. આ કારણે મૂળ સૂત્રમાં " अकस्मात् " એ પદથી સૂત્રકારે આ કહ્યું છે કે "अस्ति लोकः नास्ति लोकः" ઈત્યાદિ વિપ્રતિપત્તિઓ નિર્હેતુક છે એ વાત અહીં સુધી સ્પષ્ટ રીતે સમજાવવામાં આવી છે કે એકાન્ત રીતિથી જ લોકના અસ્તિત્વનો સ્વીકાર કરવામાં ઉપર્યુકત રીતિથી હેતુનો અભાવ આવે છે.

જે હેતુ સિદ્ધ થાય છે તે જ સાધ્યમાં સાધક બને છે, અસિદ્ધ નહીં અસિદ્ધ સાધ્ય થાય છે. પ્રકૃતમાં અસ્તિત્વરૂપ હેતુ જ્યારે પોતાના સાધ્યના અન્તર્ભૂત થઇ

र्गतत्वेन तस्यापि साध्यत्वमापतितं, साध्यरूपहेतोरसिद्धत्वेनासाधकतयाऽनुमानस्यै-वोच्छेदः स्यात्त्वन्मते–इत्यादिबहुवक्तव्यत्वाद् विस्तरभिया विरम्यते । एवं 'ध्रुवो लोकः' 'अध्रुवो लोकः' इत्यादिष्वपि एकान्तवादं निरस्य स्याद्वादपक्षः सर्वत्र योजनीयः । यथा–' नास्ति लोकः' इति वादिनं पृच्छामि–' त्वमसि न वा ?, यदि त्वमसि तदा लोकान्तर्भूतस्तद्बहिर्भूतो वा ? यदि लोकान्तर्भूतस्त्वं तर्हि ' नास्ति लोक ' इति ब्रुवन् कथं न लज्जसे?, अथ तदन्तर्भूतो नासि तर्हि बन्ध्या-

---

अन्तर्भूत हो जागया तब वह साध्यसम–असिद्ध, होनेसे स्वयं साध्य-कोटिमें आ जायगा। यहां साध्य लोक है, हेतु भी लोकस्वरूप हो जानेसे वह साध्य जैसा हो गया; अतः साध्य भावका अभाव होनेसे साधनसे साध्य का ज्ञान न हो सकनेसे यहां अनुमान ही नहीं बन सकता है। इस विषयमें टीकाकार कहते हैं कि बहुत कुछ कहना था, परन्तु विस्तार के भयसे इतना ही कहना काफी है। इसी प्रकार " ध्रुवो लोकः " इत्यादि वाक्योंमें भी एकान्तवादका निरसन और स्याद्वाद पक्षका समर्थन कर लेना चाहिये। जो लोग एकान्तरूपसे " नास्ति लोकः" इस बातको कहते हैं, हम उन वादियोंसे इतना पूछते हैं कि " तुम स्वयं अस्तिरूप हो कि नास्तिरूप "? यदि अस्तिरूप हो तो लोकके अन्तर्गत हो या उससे बाहिर? यदि लोकके अन्तर्गत तुम अपनेको मानते हो तो " नास्ति लोकः " इस प्रकार कहते हुए आपको संकोच क्यों नहीं होता। क्यों कि तुम स्वयं अस्तित्वरूपसे लोकके अंतर्गत अपने आपको मान रहे हो। यदि

જશે ત્યારે તે સાધ્યસમ–અસિદ્ધ–હોવાથી સ્વયં સાધ્યકોટિમાં આવી જશે, અહીં સાધ્ય લોક છે, હેતુ પણ લોકસ્વરૂપ થઈ જવાથી તે સાધ્ય માફક થઈ જાય છે. સાધ્યસાધકભાવનો અભાવ હોવાથી સાધનથી સાધ્યનું જ્ઞાન ન બની શકવાથી આ જગ્યાએ અનુમાન બની શકતું નથી. આ વિષયમાં ટીકાકાર કહે છે કે–ઘણું કહેવાનું હતું; પરંતુ વિસ્તારના ભયથી આટલું જ કહેવું બરોબર છે. આ પ્રકારેજ " ध्रुवो लोकः " ઈત્યાદિ વાકયમાં પણ એકાન્તવાદનું નિરસન અને સ્યાદ્વાદ પક્ષનું સમર્થન કરી લેવું જોઈએ. જે લોકો એકાન્તરૂપથી " नास्ति लोकः " આ વાતને કહે છે, અમે તેવા વાદીઓને એવું પૂછીએ છીએ કે " તમે સ્વયં અસ્તિરૂપ છો કે નાસ્તિરૂપ ? " જો અસ્તિરૂપ છો તો લોકના અન્તર્ગત છો કે તેનાથી બાહર ? જો લોકના અન્તર્ગત પોતાને માનતા હો તો " नास्ति लोकः " આ પ્રકારે કહેતાં આપને સંકોચ કેમ નથી થતો ? કેમ કે તમે સ્વયં અસ્તિત્વ-

पुत्रादिवत् सर्वथाऽसत्त्वं तव प्राप्तं, तर्हि मुधैवाऽसता त्वया सह वादकथाऽऽरम्भः।

अनेकान्तवादिनामस्माकं मते त्वेकान्ततः सत्त्वस्यासत्त्वस्य वा न सम्भवः, किन्तु द्वयोरपि सम्भवोऽस्ति, तथा हि–घटादिः स्वस्वरूपेण सन् परकीयरूपेण चाऽसन्–स्वद्रव्य–क्षेत्र–कालभावैः घटादेः सत्त्वं परकीयैश्च तैरसत्त्वमिति । उक्तञ्च–

"सदेव सर्वं को नेच्छेत्, स्वरूपादिचतुष्टयात् ।
असदेव विपर्यासान्न चेन्न व्यवतिष्ठते ॥ १ ॥" इति ।

लोकके अंतर्गत अपने आपको नहीं मानते हो तो तुम्हारी वन्ध्यापुत्रकी तरह स्वतन्त्र सत्ता ही सिद्ध नहीं हो सकती; अतः असत्यात्मक होने से तुम्हारे साथ वादविवाद करना भी व्यर्थ है । वादविवाद सत्के साथ होता है, असत् वन्ध्यापुत्रके साथ नहीं ।

अनेकान्तवादी हम लोगोंके सिद्धान्तमें न किसीका एकान्तसे एकत्व माना गया है और न एकान्तसे किसीका असत्त्व ही । सत्त्व और असत्त्व ये दो धर्म हैं और इनका सम्भव स्वद्रव्यादि–चतुष्टयकी अपेक्षासे ही स्वीकृत है, जैसे–घटादि द्रव्य अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षासे ही है, परद्रव्य–पटादिकके द्रव्य–क्षेत्रादिकी अपेक्षासे नहीं। उनकी अपेक्षासे तो उसका असत्त्व ही अंगीकृत है । कहा भी है—

सदेव सर्वं को नेच्छेत् स्वरूपादिचतुष्टयात् ।
असदेव विपर्यासात् न चेन्न व्यवतिष्ठते ॥ १ ॥

રૂપથી લોકની અંદર પોતાને માની રહ્યા છો. જો લોકની અંદર પોતાને ન માનતા હો તો તમારી વંધ્યાપુત્રની તરહ સ્વતંત્ર સત્તાજ સિદ્ધ થઇ શકતી નથી. એટલે અસત્યાત્મક હોવાથી એ અંગે તમારી સાથે વાદવિવાદ કરવો વ્યર્થ છે. વાદવિવાદ સત્યની સાથે હોય છે, અસત્ય વન્ધ્યાપુત્રની સાથે નહીં.

અમારા અનેકાન્તવાદિઓના સિદ્ધાંતમાં ન કોઈનું એકાન્તથી એકત્વ માનેલ છે અને ન તો એકાન્તથી કોઇનું અસત્ત્વ. સત્ત્વ અને અસત્ત્વ આ બે ધર્મ છે. અને એનો સંભવ સ્વદ્રવ્યાદિ--ચતુષ્ટયની અપેક્ષાથી જ સ્વીકૃત છે. જેમ–ઘટાદિ દ્રવ્ય પોતાના દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ અને ભાવની અપેક્ષાથી જ છે, પરદ્રવ્ય પટાદિકના દ્રવ્ય-ક્ષેત્રાદિની અપેક્ષાથી નહીં. એની અપેક્ષાથી તો એના અસત્વનોજ અંગીકાર છે. કહ્યું પણ છે—

"सदेव सर्वं को नेच्छेत्, स्वरूपादिचतुष्टयात् ।
असदेव विपर्यासान्नचेन्न व्यवतिष्ठते ॥ १ ॥" इति ।

इति सुदृढमनेकान्तवादसाम्राज्यम् ।

एवमुक्तप्रकारेण तेषां विरुद्धमपलपतां परतैर्थिकाणां धर्मो न स्वाख्यातः=न शोभनो व्याख्यातः, एकान्तवादगर्भितत्वात् , नैव च तेषां धर्मः सुप्रज्ञप्तः=सुप्ररूपितो भवति असर्वज्ञप्रणीतत्वात् ; अतः स्याद्वादसाम्राज्यबहिर्भूतत्वात्तेषां परवादिनां धर्मः सर्वथा हेय एवेति भावः ॥ सू० ३ ॥

स्वबुद्धिपरिकल्पितत्वनिरासायाऽऽह–' से जहेयं ' इत्यादि—

मूलम्—**से जहेयं भगवया पवेइयं आसुपन्नेण जाणया पासया, अदुवा गुत्ती वओगोयरस्स त्तिबेमि, सव्वत्थ संमयं पावं तमेव उवाइक्कम्म एस महं विवेगे वियाहिए, गामे वा अदुवा रण्णे नेव गामे नेव रण्णे, धम्ममायाणह पवेइयं माहणेण मइमया,**

वस्तु स्वद्रव्यादिक की ही अपेक्षासे सत्त्वात्मक और परद्रव्यादिक की अपेक्षासे ही असत्त्वात्मक मानी गई है। इस प्रकारकी मान्यता न माननेसे किसी भी वस्तुकी स्वतन्त्र सत्ता सिद्ध नहीं हो सकती है! यही सुदृढ़ अनेकान्तवादका साम्राज्य है।

इस प्रकार उक्तरूपसे एकान्तरूपमें गर्भित होनेके कारण परस्परमें विरुद्धार्थकी प्ररूपणा करनेवाले अन्य तीर्थिकोंका मत निर्दोष रूपसे कथित नहीं है, और इसीलिये वह असर्वज्ञ प्रणीत होनेसे अच्छी तरहसे प्ररूपित भी नहीं है। इसलिये स्याद्वाद साम्राज्यके बहिर्भूत होनेसे उन परवादियोंका धर्म सर्वथा हेय ही है॥ सू० ३॥

अनेकान्ततत्त्वमें सूत्रकार स्वबुद्धिसे परिकल्पितपनेका निषेध करने के लिये " से जहेयं " इत्यादि सूत्र कहते हैं।

વસ્તુ સ્વદ્રવ્યાદિકની અપેક્ષાથી સત્ત્વાત્મક અને પરદ્રવ્યાદિકની અપેક્ષાથી અસત્ત્વાત્મક માનવામાં આવેલ છે. આ પ્રકારની માન્યતા ન માનવાથી કોઈપણ વસ્તુની સ્વતંત્ર સત્તા સિદ્ધ થઈ શકતી નથી. આ સુદૃઢ અનેકાન્તવાદનું સામ્રાજ્ય છે.

આ રીતે એ રૂપથી એકાન્તરૂપમાં ગર્ભિત થવાના કારણે, પરસ્પરમાં વિરૂદ્ધાર્થની પ્રરૂપણા કરવાવાળા અન્ય તીર્થિઓના મત નિર્દોષરૂપથી કહેવાયેલ નથી અને એ કારણે અસર્વજ્ઞ પ્રણીત હોવાથી સારી રીતે પ્રરૂપિત પણ નથી. આ કારણે સ્યાદ્વાદસામ્રાજ્યના બહિર્ભૂત હોવાથી પરવાદીઓનો ધર્મ સર્વથા હેય છે. (સૂ૦૩)

અનેકાન્ત તત્ત્વમાં સૂત્રકાર સ્વબુદ્ધિથી પરિકલ્પિતપણાનો નિષેધ કરવા માટે " से जहेयं " ઇત્યાદિ સૂત્ર કહે છે—

जामा तिन्नि उदाहिया, जेसु इमे आयरिया संबुज्झमाणा समुट्ठिया, जे णिव्वुया पावेहिं कम्मेहिं अणियाणा ते वियाहिया ॥सू०४॥

छाया—तद्यथेदं भगवता प्रवेदितम् आशुप्रज्ञेन जानता पश्यता, अथवा गुप्तिर्वचोगोचरस्येति ब्रवीमि, सर्वत्र सम्मतं पापं, तदेवोपातिक्रम्य एष मम विवेको व्याख्यातः, ग्रामे वा अथवाऽरण्ये, नैव ग्रामे नैवारण्ये, धर्ममाजानीत प्रवेदितं माहनेन मतिमता, यामास्त्रय उदाहृताः, एषु इमे आर्याः सम्बुध्यमानाः समुत्थिताः, ये निर्वृताः पापेषु कर्मसु अनिदानास्ते व्याख्याताः ॥ सू० ४ ॥

टीका—तद्यथा-इदम् अनेकान्तरूपं पूर्वोक्तं सकलव्यवहारानुसारि कुत्राप्यस्खलितं मतं आशुप्रज्ञेन=शीघ्रबुद्धिना आवरणक्षयात् सततोपयुक्तेन, जानता=ज्ञानोपयुक्तेन पश्यता=दर्शनोपयोगवता भगवता=तीर्थङ्करेण प्रवेदितं=प्ररूपितम् । एकान्तवादिनां धर्मो न स्वाख्यातो भवति तत्र हेतुदृष्टान्ताभावात्, सर्वज्ञोपदिष्टस्तु स्वाख्यातः प्रतिज्ञा-हेतु-दृष्टान्तादिसद्भावादिति बोध्यम् । अथवा पक्षान्तरे वाग्गोचरस्य=

कोई भी वस्तु एकान्तरूपसे न अस्तिरूप है और न नास्तिरूप है, किन्तु अस्ति-नास्तिरूपता वस्तुओं में स्वद्रव्यादि चतुष्टयकी अपेक्षासे ही मानी जाती है-यह बात तृतीय सूत्रकी व्याख्याके अंतमें संक्षेपरूपसे बतलाई गई है। इसीका नाम अनेकान्त है। इसकी स्वीकृति विना दुनियाका कोई भी व्यवहार नहीं चल सकता है। ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जो इस अनेकान्तके साम्राज्यसे बहिर्भूत हो। ऐसी प्ररूपणा आशुप्रज्ञ-अनन्त ज्ञानशाली और अनन्तदर्शनोपयोगी श्री तीर्थङ्कर भगवान्ने की है। हेतु और दृष्टान्तके अभावसे एकान्तवादिसंमत धर्म स्वाख्यात-निर्दोषरूपसे प्रतिपादित नहीं हुआ है। प्रतिज्ञा, हेतु,

---

કોઈ પણ વસ્તુ એકાન્તરૂપથી ન અસ્તિરૂપ છે અને ન તો નાસ્તિરૂપ છે. અસ્તિ-નાસ્તિરૂપતા વસ્તુઓમાં સ્વદ્રવ્યાદિચતુષ્ટયની અપેક્ષાથી જ માની શકાય છે. આ વાત ત્રીજા સૂત્રની વ્યાખ્યાના અંતમાં સંક્ષેપરૂપથી કહેલ છે. એનું જ નામ અનેકાન્ત છે. એની સ્વીકૃતિ વગર દુનિયાનો કોઈ પણ વહેવાર ચાલી શકે નહીં. એવી કોઈ પણ વસ્તુ નથી જે આ અનેકાન્તના સામ્રાજ્યથી બહિર્ભૂત હોય. એવી પ્રરૂપણા આશુપ્રજ્ઞ-અનન્તજ્ઞાન અને અનન્તદર્શનશાળી શ્રી તીર્થંકર ભગવાને કરી છે. હેતુ અને દૃષ્ટાંતના અભાવથી એકાન્તવાદી-સંમત ધર્મ સ્વાખ્યાત-નિર્દોષ-રૂપથી પ્રતિપાદિત થયા નથી. પ્રતિજ્ઞા, હેતુ અને દૃષ્ટાંત આદિના સદ્ભાવથી

वाग्विषयस्य गुप्तिः=भाषासमितिर्विधेयेत्येतदपि प्रवेदितम् ।

यद्वा–'अस्ति लोको नास्ति लोक' इत्यादिवादाय समुत्थितानां पाषण्डिकानां स्वाभिमतहेतुदृष्टान्तस्थापनेन तदुक्तदूषणगणनिरसनेन च जयात् स्वमतस्थापनं

और दृष्टान्त आदिके सद्भावमें सर्वज्ञप्रतिपादित धर्म ही स्वाख्यात है ।

एकान्तस्थापक न कोई हेतु है और न कोई दृष्टान्त ही मिलता है कि जिसके बल पर एकान्त धर्मकी प्ररूपणा वास्तविक सिद्ध हो सके । हां–अनेक धर्मात्मक ही वस्तु है। इसकी प्ररूपणाके ख्यापक हेतु और दृष्टान्तादि उपलब्ध होते हैं ।

भगवानने वचन बोलनेवाले साधुके लिये भाषासमिति पालनेका भी आदेश दिया है । " अस्ति लोकः नास्ति लोकः " इत्यादि वादके लिये तैयार हुए वादियोंके अभिमत तत्त्वका जो उन्होंने अपने इच्छानुसार हेतु–दृष्टान्तकी स्थापनासे स्थापन किया है, और प्रतिवादी जैनसंमत तत्त्वकी निराकृतिनिमित्त दूषणोंका प्रदर्शन किया है, सो उनके प्रदर्शित हेतु और दृष्टान्तोंका निराकरण एवं प्रदत्त दूषणोंका परिहार करते समय प्रतिवादी मुनिके लिये भाषासमितिका पालन करना चाहिये । परपक्षका निराकरण करते या तद्विषयक उत्तर देने समय कभी २ जोश

સર્વજ્ઞપ્રતિપાદિત ધર્મ જ સ્વાખ્યાત છે.

એકાન્તસ્થાપક ન કોઇ હેતુ છે અને ન કોઇ દૃષ્ટાંત પણ મળે છે, જેના બળ ઉપર એકાન્ત ધર્મની પ્રરૂપણા વાસ્તવિક સિદ્ધ થઈ શકે. હાં–અનેક ધર્માત્મક જ વસ્તુ છે. એની પ્રરૂપણાના ખ્યાપક હેતુ અને દૃષ્ટાન્તાદિ ઉપલબ્ધ થાય છે.

ભગવાને વચન બોલવાવાળા સાધુ માટે ભાષાસમિતિ પાળવાનો પણ આદેશ આપ્યો છે. " अस्ति लोकः नास्ति लोकः " ઇત્યાદિ વાદને માટે તૈયાર થયેલા વાદિયોએ પોતાના અભિમત–તત્ત્વનું પોતાની ઇચ્છાનુસાર હેતુ–દૃષ્ટાંતની સ્થાપનાથી સ્થાપન કરેલ છે અને પ્રતિવાદી જૈનસંમત તત્ત્વની નિરાકૃતિ નિમિત્ત દૂષણોનું પ્રદર્શન કરેલ છે, એવા એમના પ્રદર્શિત હેતુ અને દૃષ્ટાંતોનું નિરાકરણ અને પ્રદત્ત (આપેલ) દૂષણોનો પરિહાર કરતી વખતે પ્રતિવાદી મુનિને માટે ભાષાસમિતિનું પાલન જરૂરી છે. પરપક્ષનું નિરાકરણ કરતાં અથવા કોઇ પ્રશ્નનો ઉત્તર દેવાને સમયે ક્યારેક જોશ આવી જવાથી વચનનો સંયમ રહેતો નથી, તો પણ વિદ્વાન્

वाग्गोचरस्य गुप्तिरिति । वाक्संयमेन सम्यगुत्तरं देयं न तु भाषासमितिमनपेक्ष्येति भावः । इति=गुप्तिर्वाग्गोचरस्य कार्येत्येतद्वक्ष्यमाणं चाहं ब्रवीमि । तदेव वक्तुं प्रक्रमते-' सर्वत्रे 'त्यादि-प्रतिवादिनं संबोध्य पृच्छेद्-यत्तव षड्जीवनिकायोपमर्दनं कृतकारितानुमोदनैः सर्वत्र त्वच्छास्त्रे सम्मतम्=अप्रतिषिद्धत्वेनाभिलषितं तत्सर्वं पापं=पापजनकं नरकनिगोदादिदुःखकारकत्वादतो न ममाभिलषितमित्यर्थः । तदेवाह-

आ जाने से वचनका संयम नहीं रहता है, तो भी विद्वान् मुनिके लिये इस बातका वहां भी ध्यान रखना चाहिये। भाषासमितिका परिहार कर अपने मूलगुणमें विराधना लाना यह विद्वान् मुनिका कर्तव्य नहीं है। इसी वस्तुस्थितिको ध्यानमें रख कर सूत्रकार " गुप्तिर्वचोगोचरस्येति ब्रवीमि " यह कहते हैं-जैनसिद्धान्ताभिमत हेतु और दृष्टान्तकी स्थापनासे एवं पाखण्डियोंके द्वारा कथित दूषणोंके निरसन (उत्तर) से उन पाखंडियोंके परास्त होनेपर स्वमतकी स्थापन स्वतः हो जाती है, और यही वचनविषयकी गुप्ति है। इसमें रहनेवाले साधुको वाक्-संयमसे ही उत्तर देना चाहिये; उसकी उपेक्षा करके नहीं। इसी प्रकारसे सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं-विद्वान् वादी मुनि, प्रतिवादीको संबोधित कर यह पूछे कि आपके शास्त्रमें कृत, कारित और अनुमोदनासे षड्जीवनिकायका उपमर्दन प्रतिपादित हुआ है और वह अप्रतिषिद्ध होनेसे आपके लिये सम्मत है। परंतु यह आप विश्वास रखें कि यह सब कुकृत्य है और करनेवाले जीवोंको नरक और निगोदादिक दुःखोंके प्रदाता है। इसलिये हमारी दृष्टिमें यह उपादेय-अभिलषित नहीं है। इसी कारण

મુનિએ એ વાતનો ત્યાં પણ ખ્યાલ રાખવો જોઈએ. ભાષાસમિતિનો પરિહાર કરી પોતાના મૂળ ગુણમાં વિરાધના લાવવી એ વિદ્વાન્ મુનિનું કર્તવ્ય નથી. આ વસ્તુસ્થિતિને ધ્યાનમાં રાખી સૂત્રકાર " गुप्तिर्वचोगोचरस्येति ब्रवीमि " આમ કહે છે. જૈનસિદ્ધાન્તાભિમત હેતુ અને દૃષ્ટાંતની સ્થાપનાથી અને પાખંડીઓ દ્વારા કહેવાયેલા દૂષણોના ઉત્તરથી તે પાખંડિઓની હાર થવાથી સ્વમતની સ્થાપના આપમેળે થઈ જાય છે-આ વચનવિષયની ગુપ્તિ છે. આમાં રહેવાવાળા સાધુએ વાક્-સંયમથી જ ઉત્તર આપવા જોઈએ, ભાષાસમિતિની ઉપેક્ષા કરીને નહીં. આ પ્રકારેજ સૂત્રકાર પ્રદર્શિત કરે છે-વિદ્વાન્ વાદી મુનિ, પ્રતિવાદીને સંબોધિત કરી પૂછે કે આપના શાસ્ત્રમાં કૃત, કારિત અને અનુમોદનાથી ષડ્જીવનિકાયનું ઉપમર્દન પ્રતિપાદિત થયેલ છે અને એ અપ્રતિષિદ્ધ હોવાથી આપને માટે સમ્મત છે; પરંતુ આપ વિશ્વાસ રાખો કે એ બધાં કુકૃત્ય છે, અને કરવાવાળા જીવોને નરક અને નિગોદાદિક દુઃખો આપનાર છે. આ કારણે અમારી દૃષ્ટિમાં એ ઉપાદેય-

'तदेवे'त्यादि–तदेव=सावद्याचरणमेव उपातिक्रम्य=उल्लङ्घ्याहं वर्तमानोऽस्मीत्येवं-भूतस्य मम एष महान् विवेकः=हेयोपादेयरूपविचारो व्याहृतः=कथितः, अनपिहितास्रवद्वारेण भवता सह सम्भाषणेनालम् ।

ननु परतीर्थिका अपि वनवासिनः फल–मूल–कन्दाद्याहारास्तरुतलवासिनो भवन्ति, कथं ते संभाषणानर्हाः? इति चेन्न, वनवास-फलाहारादिकरणेन न धर्मः, अपि तु जीवाजीवादितत्त्वपरिज्ञानपूर्वकनिरवद्याचरणात्, तच्च तेषां नास्ति । एतमेवार्थमाविर्भावयन्नाह–'ग्रामे वे'त्यादि–ग्रामे=ग्रामविषये वसेच्चेद्धर्मो भवेद्, एवमरण्ये=वने

मैं सदा इन कृत्यों–पापोंसे दूर रहता हूं। मेरा विवेक–हेय और उपादेयकी जागृतिरूप बोध भी मुझे यही कहता है। महापुरुषोंकी भी यही शिक्षा है। अतः जिन्होंने इन पापमय सावद्य व्यापारोंके अत्यागसे अपने कर्मोंके आस्रवके द्वारको बंद नहीं किया है, उनके साथ संभाषण करना भी मुझे उचित नहीं है।

शङ्का—परतीर्थिक जन भी वनमें रहते हैं, कंद, मूल और फल आदिका आहार करते हैं, गिरि गुफामें एवं वृक्षोंके नीचे निवास करते हैं तो फिर ये संभाषणके अयोग्य कैसे माने जा सकते हैं?

उत्तर—कन्दमूल आदि खानेसे और वनमें निवास करनेसे धर्मकी प्राप्ति होती है, सो बात नहीं है। धर्मकी प्राप्तिका कारण जीव और अजीव आदि तत्त्वोंका परिज्ञानपूर्वक निरवद्य आचरण करना है। यह उनके नहीं होता है। इसी अर्थको समझाते हुए सूत्रकार कहते हैं–

અભિલષિત નથી. આ માટે હું સદા એ કુકૃત્યો–પાપોથી દૂર રહું છું. મારા વિવેક–હેય અને ઉપાદેયની જાગૃતિરૂપ બોધ પણ મને એ કહે છે. મહાપુરૂષોની પણ એ શિક્ષા છે. માટે જેઓએ આવા પાપમય સાવદ્યવ્યાપારોના અત્યાગથી પોતાના કર્મોના આસ્રવનું દ્વાર બંધ કરેલ નથી તેની સાથે સંભાષણ કરવું પણ મને ઉચિત નથી.

શંકા—પરતિર્થીક જન પણ વનમાં રહે છે, કંદ, મૂળ, ફળ આદિનો આહાર કરે છે. ગિરિ ગુફામાં અને વૃક્ષોની નીચે વાસ કરે છે, તો પછી એઓ સંભાષણ કરવાને અયોગ્ય કેવી રીતે માની શકાય?

ઉત્તરઃ—કંદમૂળ આદિ ખાવાથી અને વનમાં નિવાસ કરવાથી ધર્મની પ્રાપ્તિ થાય છે એવી વાત નથી. ધર્મની પ્રાપ્તિનું કારણ જીવ અને અજીવ આદિ તત્ત્વોનું પરિજ્ઞાનપૂર્વક નિરવદ્ય આચરણ કરવું તે છે. આ તેનાથી બનતું નથી.

वा धर्मो भवेदिति नैष नियमः, यतो धर्मो नैव ग्रामे भवति नैवारण्ये, किन्तु यत्र कुत्रापि वसतो जीवाजीवादितत्त्वपरिज्ञानपूर्वकनिरवद्यानुष्ठानमेव धर्मम् आजानीत, इति माहनेन 'मा हन-मा हन' इति यो जीवरक्षामुपदिशति स माहनो वीतरागस्तेन, मतिमता-मतिः=सकलवस्तुतत्त्वपरिज्ञानं, सा यस्यास्तीति मतिमान्, तेन-केवलिना, धर्मः=पूर्वोदाहृतो वक्ष्यमाणश्च प्रवेदितः=प्ररूपितः। वक्ष्यमाणमेवाह-'यामा' इत्यादि-त्रयो यामाः=व्रतरूपाः उदाहृताः=कथिताः, अत्र त्रिग्रहणेन प्राणातिपातमृषावादपरिग्रहविरमणरूपा गृहीताः, मैथुनाऽदत्ताऽऽदानविरमणयोः परिग्रहविरमणेऽन्तर्भावमाश्रित्य तथा प्रोक्तमिति बोध्यम्।

कि 'ग्राममें रहनेसे, जंगलमें निवास करनेसे धर्म होता है' ऐसा नियम नहीं है; क्यों कि धर्म ग्राम अथवा जंगलमें नहीं रखा है जो वहां रहनेसे मिल जाता हो। धर्म जीव और अजीवादि तत्त्वोंके परिज्ञानपूर्वक निरवद्य अनुष्ठानके आचरणका नाम है, ऐसा जीवरक्षाके उपदेशक और वस्तुतत्त्वके ज्ञाता केवली भगवानने कहा है। 'माहन' शब्दका अर्थ वीतराग और 'मति' शब्दका अर्थ सम्पूर्ण वस्तुओं का परिज्ञान है। यह मतिरूप परिज्ञान जिसके है वह मतिमान् केवली है।

व्रतरूप तीन याम कहे गये हैं—१ प्राणातिपातविरमण, २ मृषावादविरमण और ३ परिग्रहविरमण। बाकीके मैथुनका विरमण और अदत्तादानका विरमण, ये दो महाव्रतरूप धर्म यहां इसलिये स्वतन्त्ररूपसे नहीं कहे गये हैं कि उनका अन्तर्भाव परिग्रहविरमणरूप महाव्रतमें करलिया है।

આ અર્થને સમજાવવા માટે સૂત્રકાર કહે છે કે-'ગામમાં રહેવાથી, જંગલમાં નિવાસ કરવાથી ધર્મ થાય છે' એવો નિયમ નથી, કેમ કે ધર્મ ગામ અને જંગલમાં રાખેલ નથી કે જે ત્યાં રહેવાથી મળી જાય, ધર્મ જીવ અને અજીવાદિ તત્ત્વોનું પરિજ્ઞાનપૂર્વક નિરવદ્ય અનુષ્ઠાનનું આચરણ તે છે, આમ જીવરક્ષાના ઉપદેશક અને વસ્તુતત્ત્વના જ્ઞાતા કેવલી ભગવાને કહેલ છે. 'માહન' શબ્દનો અર્થ વીતરાગ, અને 'મતિ' શબ્દનો અર્થ સંપૂર્ણ વસ્તુઓનું પરિજ્ઞાન છે. આ મતિરૂપ પરિજ્ઞાન જેને છે તે મતિમાન્ કેવલી છે.

વ્રતરૂપ ત્રણ યામ કહેવાયાં છે, ૧ પ્રણાતિપાતવિરમણ, ૨ મૃષાવાદવિરમણ, ૩ પરિગ્રહવિરમણ. બાકીનાં મૈથુનવિરમણ અને અદત્તાદાનવિરમણ, આ બન્ને મહાવ્રતરૂપ ધર્મ અહિં આ માટે સ્વતંત્રરૂપથી કહેવાયેલ નથી કે તેનો અંતર્ભાવ પરિગ્રહવિરમણરૂપ મહાવ્રતમાં કરાયેલ છે.

यद्वा-यामा=अवस्थाविशेषास्त्रयस्ते यथा-अष्टवर्षादात्रिंशद् एका (१), ततः षष्टिवर्षपर्यन्तं द्वितीया (२), तत ऊर्ध्वं तृतीयेति, उदाहृताः=कथिताः, एतेनाति-बाल-वृद्धयोर्निरासः, तिसृष्वेवावस्थासु धर्माद्याचरणस्य सम्भवात्।

अथवा-' यामाः ' यम्यते=विरम्यते संसारपरिभ्रमणादेभिरिति यामाः=ज्ञाना-दयस्त्रयः कथिताः, किमेतेनेत्याह-'येष्वि'-त्यादि, येषु=वयोविशेषेषु त्रिषु ज्ञाना-दिषु वा संबुध्यमानाः=धर्माचरणावसरं मोक्षं वा जानानाः, इमे=आर्या द्रव्य-क्षेत्र -काल-भावभेदेन चतुर्विधास्ते समुत्थिताः=तपःसंयमाचरणादौ प्रवृत्ताः, के? ये पापेषु=पापजनकेषु प्राणातिपाताद्यष्टादशस्थानेषु कर्मसु निवृत्ताः=कषायापन-

---

अथवा—अवस्थाविशेषोंका नाम भी याम है, वे तीन हैं-आठ वर्षसे लगा कर तीस वर्ष तक प्रथम, एकतीस वर्षसे ले कर ६० वर्ष तक द्वितीय, और उससे आगे तृतीय। इससे यह ध्वनित होता है कि अतिबाल और अतिवृद्ध अवस्था धर्माचरणके योग्य नहीं है। इन तीनों ही अवस्थाओंमें धर्माचरणकी संभावना है।

अथवा—संसारका परिभ्रमण जिनसे इस जीवका रुक जाता है उनका नाम भी याम है। ऐसे ये याम ज्ञानादिक तीन हैं। जिन वयोवि-शेष या ज्ञानादिकत्रयमें संबुध्यमान, धर्मके आचरणके अवसरको अथवा मोक्षको जानते हुए ये द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके भेदसे चार प्रकारके आर्यजन मुनिराज कि जो पापजनक प्राणातिपातादिक रूप १८ पापस्थानोंमें कषायके दूर होनेसे शान्त-आस्रवसे निवृत्त हैं, वे तप और संयमके

અથવા—અવસ્થાવિશેષોનું નામ પણ યામ છે. તે ત્રણ છે. આઠ વર્ષથી માંડી ત્રીસ વર્ષ સુધી પ્રથમ, એકત્રીસ વર્ષથી માંડી ૬૦ વર્ષ સુધી દ્વિતીય અને તેનાથી આગળ તૃતીય.આથી એ ફળિત થાય છે કે અતિબાળ અને અતિવૃદ્ધ અવસ્થા ધર્માચરણને યોગ્ય નથી. આ ત્રણ અવસ્થાઓમાં ધર્માચરણની સંભાવના છે.

અથવા—સંસારનું પરિભ્રમણ જેનાથી આ જીવનું અટકી જાય છે તેનું નામ યામ છે. આવા એ યામ જ્ઞાનાદિક ત્રણ છે. જે વયોવિશેષ અથવા જ્ઞાના-દિક ત્રયમાં સંબુધ્યમાન, ધર્મના આચરણનો અવસરને અથવા મોક્ષને જાણનારા, દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ અને ભાવના ભેદથી ચાર પ્રકારના એ આર્યજન મુનિરાજ કે જે પાપજનક પ્રાણાતિપાતાદિરૂપ ૧૮ પાપસ્થાનોમાં કષાયના દૂર થવાથી શાંત છે-આસ્રવથી નિવૃત્ત છે તે તપ અને સંયમના આચરણ આદિમાં પ્રવૃત્ત થાય છે.

यनेन शान्ताः, आस्रवनिवृत्ता इत्यर्थः, तेषां रागादिबन्धहेतवो न सम्भवन्ति, अत एव ते अनिदानाः=द्रव्य-भाव-निदानरहिताः, तत्र द्रव्यनिदानं माता-पितृ-पुत्र-कलत्रादि-विषयकं धन-धान्यादिविषयकं च, भावनिदानं विषयकषायादिकं चेति द्विविधनिदानहानपरायणास्ते व्याख्याताः=कथिताः ॥ सू० ४ ॥

कस्मिंस्ते निदानरहिताः ? इति दर्शयति—'उड्ढं' इत्यादि ।

मूलम्—**उड्ढं अहं तिरियं दिसासु सव्वओ सव्वावंति च णं पाडियक्कं जीवेहिं कम्मसमारंभे णं, तं परिन्नाय मेहावी नेव सयं एएहिं काएहिं दंडं समारंभिज्जा, नेवन्ने एएहिं काएहिं दंडं समारंभावेज्जा, नेवन्ने एएहिं काएहिं समारंभंतेऽवि समणुजाणेज्जा। जे अन्ने एएहिं काएहिं दंडं समारंभंति तेसिं पि वयं लज्जामो, तं परिन्नाय मेहावी तं वा दंडं अन्नं वा दंडं नो दंडभी दंडं समारंभिज्जासि-त्तिबेमि ॥ सू०५ ॥**

छाया—ऊर्ध्वमधस्तिर्यग् दिक्षु सर्वतः सर्वासु च खलु प्रत्येकं जीवेषु कर्मसमारम्भः खलु, तं परिज्ञाय मेधावी नैव स्वयमेतेषु दण्डं समारभेत, नैवान्यैरेतेषु कायेषु दण्डं समारम्भयेत्, नैवान्यैरेतेषु कायेषु दण्डं समारभमाणानपि समनुजानीयात्, ये चान्ये एतेषु कायेषु दण्डं समारभन्ते तैरपि वयं लज्जामहे, तं परिज्ञाय मेधावी तं वा दण्डमन्यं वा नो दण्डभीर्दण्डं समारभेथाः, इति ब्रवीमि ॥ सू० ५ ॥

आचरण आदिमें प्रवृत्त होते हैं। इनके रागादिक जो बन्धके कारण हैं वे नहीं होते हैं। इसीलिये ये द्रव्य और भावके भेदसे दोनों प्रकारके निदानोंके विनाश करनेमें तत्पर कहे गये हैं। माता, पिता, पुत्र और स्त्री आदि स्वजनविषयक, और धन-धान्य आदि परिग्रहविषयक द्रव्य-निदान, एवं विषयकषायादिविषयक भावनिदान होता है॥ सू०४ ॥

और भी किसमें वे निदानरहित होते हैं? इस विषयको सूत्रकार कहते हैं-"उड्ढं अहं" इत्यादि—

તેને રાગાદિક જે બન્ધનું કારણ છે તે બનતું નથી, જેથી તે દ્રવ્ય અને ભાવ ના ભેદથી બે પ્રકારના નિદાનોનો વિનાશ કરવામાં તત્પર કહેવાયેલ છે. માતા, પિતા, પુત્ર અને સ્ત્રી આદિ સ્વજનવિષયક, અને ધન ધાન્ય આદિ પરિગ્રહ-વિષયક દ્રવ્ય નિદાન છે, અને વિષયકષાયાદિવિષયક ભાવનિદાન હોય છે. (સૂ૦૪)

બીજા કયા કયામાં નિદાનરહિત હોય છે? આ વિષયને સૂત્રકાર કહે છે-"उड्ढं अहं" ઈત્યાદિ.

टीका–'ऊर्ध्व'मित्यादि–ऊर्ध्वमधस्तिर्यग् दिक्षु सर्वतः=सर्वप्रकारेण 'सव्वावंति' इति सर्वासु 'च' शब्दाद् विदिशां सङ्ग्रहस्तेन विदिक्षु–इत्यर्थः, खलु=निश्चयेन प्रत्येकं जीवेषु=सूक्ष्मबादरादिषु प्रत्येकं प्राणिषु यः कर्मसमारम्भः=प्राणिविराधनादिरूपः खलु=निश्चयेन अस्ति। मेधावी=विदितप्राण्युपमर्दनजनितकटुकफलः, तं=कर्मसमारम्भं परिज्ञाय=ज्ञपरिज्ञया ज्ञात्वा प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहृत्य च स्वयम् एतेषु कायेषु= षड्जीवनिकायेषु दण्डं=मनोवाक्कायैर्जीवविराधनारूपं नैव समारभेत=नैव कुर्यादित्यर्थः। अपि च–स एव एतेषु कायेषु=चतुर्दशभूतग्रामवर्तिषु जीवेषु अन्यैर्दण्डं न समारम्भयेत्=न कारयेत्, एतेषु कायेषु दण्डं समारभमाणानप्यन्यान्नैव समनुजानीयात्= नानुमोदयेत् । ये वाऽन्ये दण्डं समारभन्ते तैः=दण्डसमारम्भविधायिभिः सह वक्तु-

उर्ध्व, अधः और तिर्यग् दिशाओमें, सर्व प्रकारसे पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशाओंमें, और "च" शब्दसे गृहीत विदिशाओंमें वर्तमान सूक्ष्म और बादर आदिकके भेदसे १४ प्रकारके प्रत्येक जीवोंमें जो प्राणियोंकी विराधनारूप कर्मसमारंभ है, मेधावी–जिसने प्राणियोंकी हिंसासे उत्पन्न कटुक परिणाम जान लिया है ऐसा मेधावी (बुद्धिमान्) मुनि–उस कर्मसमारम्भको ज्ञपरिज्ञासे जानकर और प्रत्याख्यानपरिज्ञासे उसका परित्याग कर षड्जीवनिकायोंके विषयमें मन, वचन और कायसे जीवविराधनारूप दण्डका समारम्भ न करें, दूसरोंसे इन १४ प्रकारके जीवोंमें दंडका आरंभ न करावें, और जो इनके विषयमें समारंभ कर रहे हैं उनकी अनुमोदना भी न करें। अंतमें शिष्यको संबोधित करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि जो अन्य प्राणी षड्जीवनिकायोंमें दण्ड

ઉર્ધ્વ, અધઃ અને તિર્યગ્ દિશાઓમાં સર્વ પ્રકારથી પૂર્વ, પશ્ચિમ, ઉત્તર અને દક્ષિણ દિશાઓમાં "ચ" શબ્દથી ગૃહીત વિદિશાઓમાં વર્તમાન સૂક્ષ્મ અને બાદર આદિના ભેદથી ૧૪ પ્રકારના પ્રત્યેક જીવોમાં જે પ્રાણીયોની વિરા- ધનારૂપ કર્મસમારંભ છે, મેધાવી–જેણે પ્રાણીયોની હિંસાથી ઉત્પન્ન કડવું પરિણામ જાણી લીધું છે એવા બુદ્ધિમાન–મુનિ કર્મસમારંભને જ્ઞપરિજ્ઞાથી જાણી અને પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞાથી તેનો ત્યાગ કરી સ્વયં ષડ્જીવનિ- કાયો વિષે મન, વચન અને કાયાથી જીવવિરાધનારૂપ દંડનો સમારંભ ન કરે, બીજાઓથી આવા ૧૪ પ્રકારના જીવોમાં દંડનો આરંભ ન કરાવે અને જે તેનો સમારંભ કરે છે તેની અનુમોદના ન કરે. અંતમાં શિષ્યને સંબોધિત કરીને સૂત્રકાર કહે છે કે–જે અન્ય પ્રાણી આ ષડ્જીવનિકાયોમાં દંડનો સમારંભ કરે છે,

मपि वयं लज्जामहे; किमुत तदभिमतानुमोदनम्, इत्थं कृतनिश्चयः मेधावी=साधुमर्यादास्थितः--'दण्डभीः' दण्डात्=प्राणिविराधनारूपाद् बिभेतीति दण्डभीः=प्राणातिपातभीरुः सन् तम्=अनर्थकरं कर्मसमारम्भं परिज्ञाय=ज्ञपरिज्ञया ज्ञात्वा मेधावी तं=पूर्वोक्तं प्राणातिपातादिरूपं दण्डमन्यं वा दण्डं न समारभेथाः=त्वं न कुरुष्व-त्रिकरण-त्रियोगैस्तं सर्वथा परित्यजेरित्याशयः। 'इति ब्रवीमी' त्यस्यार्थस्तूक्त एवेति ॥ सू० ५ ॥

॥ इति अष्टमाध्ययनस्य प्रथम उद्देशः समाप्तः ॥८-१॥



का समारम्भ करते हैं साधुजनोंका यह दृढ निश्चय होता है कि वे यह विचार कर उनके कृत्यकी प्रशंसा नहीं करते हैं कि जब हम इनके साथ बोलने तकमें लजाते हैं तो इनके कृत्यकी प्रशंसा कैसे कर सकते हैं ? इसलिये हे शिष्य ! तुम भी साधुमर्यादाके पालक हो और प्राणियोंकी विराधनारूप दण्डसे भीरु हो, अतः इस अनर्थकर प्राणातिपातादिरूप दण्डका तथा अन्य दण्डका तुम तीन करण और तीन योगसें सर्वथा परित्याग करो ॥ सू०५ ॥

॥ आठवां अध्ययनका पहला उद्देश समाप्त ॥ ८-१ ॥



સાધુજનોનો એવો દઢ નિશ્ચય હોય છે કે તેઓ વિચાર કરી તેના કૃત્યોની પ્રશંસા કરતા નથી, કેમ કે જ્યારે અમે તેની સાથે બોલવામાં પણ શરમ અનુભવીએ છીએ તો પછી તેનાં કૃત્યની પ્રશંસા કેવી રીતે થઇ શકે ? માટે હે શિષ્યો ! તમે પણ સાધુમર્યાદાના પાલક છો અને પ્રાણીઓની વિરાધનારૂપ દંડથી ભીરૂ છો. માટે આવા અનર્થકારી પ્રાણાતિપાત-આદિરૂપ દંડનો તથા અન્ય દંડનો તમે ત્રણ કરણ અને ત્રણ યોગોથી સર્વથા પરિત્યાગ કરો. (સૂ૦૫)

આઠમા અધ્યયનનો પહેલો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૮-૧ ॥



। अष्टमाध्ययनस्य द्वितीय उद्देशः ।

उक्तः प्रथमोद्देशः, सम्प्रति द्वितीय आरभ्यते । अस्य च पूर्वोद्देशेन सहायमभिसम्बन्धः, पूर्वोद्देशे विशुद्धसंयमनिर्वाहाय कुदृष्टिपरिहार उक्तः, स चाऽकल्प्यपरिहारं विना न संभवति, तत्सम्बन्धेनास्मिन्नुद्देशे चाकल्प्यपरित्याग एव प्रतिपादनीयोऽस्ति । तत्र पूर्वमकल्प्यपरिहारविधिं दर्शयति-' से भिक्खू ' इत्यादि—

मूलम्—से भिक्खू परिक्कमिज्ज वा, चिट्ठिज्ज वा, निसीइज्ज वा, तुयट्टिज्ज वा, सुसाणंसि वा, सुन्नागारंसि वा, गिरिगुहंसि वा, रुक्खमूलंसि वा, कुंभारायणंसि वा, हुरत्था वा, कहिंचि विहरमाणं तं भिक्खुं उपसंकमित्तु गाहावई बूया—आउसंतो ! समणा ! अहं खलु तव अट्ठाए असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, वत्थं वा, पडिग्गहं वा, कंबलं वा, पायपुच्छणं

आठवें अध्ययनका दूसरा उद्देश ।

प्रथम उद्देश कहा जा चुका । अब द्वितीय उद्देशका प्रारम्भ होता है। इसका पूर्व उद्देशके साथ सम्बन्ध इस प्रकारसे है—प्रथम उद्देशमें विशुद्ध संयमके निर्वाहके लिये मुनिको जो मिथ्यादृष्टियोंका परिहार करना कहा है वह अकल्पनिक अशनादिक परिहारके विना संभवित नहीं होता है इसलिये विशुद्ध संयमके साथ सम्बन्ध रखनेसे इस उद्देशमें अकल्पनिक अशनादिकका परित्यागसम्बन्धी वर्णन है। उसमें सर्व प्रथम सूत्रकार अकल्पनिकके परिहारकी विधिका प्रदर्शन करते हैं—" से भिक्खू " इत्यादि ।

આઠમા અધ્યયનનો બીજો ઉદ્દેશ

પ્રથમ ઉદ્દેશ કહેવાઈ ગયો છે. હવે બીજા ઉદ્દેશનો પ્રારંભ થાય છે. આનો પૂર્વ ઉદ્દેશની સાથે સંબંધ આ પ્રકારનો છે—પ્રથમ ઉદ્દેશમાં વિશુદ્ધ સંયમના નિર્વાહ માટે મુનિએ મિથ્યાદૃષ્ટિયોનો પરિહાર કરવાનું કહ્યું છે તે અકલ્પનિક અશનાદિકના પરિહાર વિના સંભવિત બનતું નથી, આ માટે વિશુદ્ધ સંયમની સાથે સંબંધ રાખવાથી આ ઉદ્દેશમાં અકલ્પનિક અશનાદિકના પરિત્યાગસંબંધી-વર્ણન છે. આમાં સર્વ પ્રથમ સૂત્રકાર અકલ્પનિકના પરિહારની વિધિનું પ્રદર્શન કરે છે—" से भिक्खू " ઇત્યાદિ.

वा, पाणाइं भूयाइं जीवाइं सत्ताइं समारब्भ समुद्दिस्स कीयं पामिच्चं अच्छिज्जं अणिसिट्ठं अभिहडं आहट्टु चेएमि, आवसहं वा समुस्सिणोमि से भुंजह वसह आउसंतो! समणा! भिक्खू तं गाहावइं समणसं सवयसं पडियाइक्खे–आउसंतो ! गाहावइ ! नो खलु ते वयणं आढामि, नो खलु ते वयणं परिजाणामि जो तुमं मम अट्ठाए असणं वा ४, वत्थं वा४, पाणाइं वा ४, समारब्भ समुद्दिस्स कीयं पामिच्चं अच्छिज्जं अणिसिट्ठं अभिहडं आहट्टु चेएसि आवसहं वा, समणुस्सिणासि से विरओ आउसो ! गाहावई ! एयस्स अकरणयाए ॥ सू०१ ॥

छाया—स भिक्षुः पराक्रमेत वा तिष्ठेद्वा निषीदेद्वा त्वग्वर्तयेद्वा श्मशाने वा शून्यागारे वा गिरिगुहायां वा वृक्षमूले वा कुम्भकारायतने वा हुरत्था वा क्वचिद्विहरन्तं तं भिक्षुमुपसंक्रम्य गाथापतिर्ब्रूयात्–आयुष्मन् ! श्रमण ! अहं खलु तवार्थायाशनं वा पानं वा खाद्यं वा स्वाद्यं वा वस्त्रं वा पतद्ग्रहं वा कम्बलं वा पादप्रोञ्छनं वा प्राणिनो भूतान् जीवान् सत्त्वानि समारभ्य समुद्दिश्य क्रीतं प्रामित्यम् आच्छिद्यम् अनिसृष्टम् अभिहृतम् आहृत्य ददामि, आवसथं समुच्छृणोमि तद् भुङ्क्ष्व वस आयुष्मन् ! श्रमण ! । भिक्षुस्तं गाथापतिं समनसं सवयसं प्रत्याचक्षीत–आयुष्मन् ! गाथापते ! न खलु ते वचनमाद्रिये न खलु ते वचनं परिजानामि, यस्त्वं ममार्थाय अशनं वा ४ वस्त्रं वा ४ प्राणिनो वा ४ समारभ्य समुद्दिश्य क्रीतं प्रामित्यम् आच्छिद्यम् अनिसृष्टम् अभिहृतम् आहृत्य ददासि, आवसथं वा समुच्छृणोषि, सोऽहं विरत आयुष्मन् ! गाथापते ! एतस्याकरणतया ॥ सू० १ ॥

इसमें ये जितने कल्प प्रकट किये गये हैं वे सब प्रतिमाप्रतिपन्न साधुकी अपेक्षा से कहे गये हैं। अन्य साधुजनोंमें भी ये यथासंभव जान लेना चाहिये। सूत्रकार 'इसमें मुनिजनके लिये इस प्रकारका आहार अकल्पनिक है' वह बतलाते हैं—

આમાં જેટલા કલ્પ પ્રગટ કરવામાં આવેલ છે તે બધા પ્રતિમાપ્રતિપન્ન સાધુની અપેક્ષાથી કહેવાયા છે. અન્ય સાધુજનોમાં પણ એ યથાસંભવ સમજવા જોઈએ. સૂત્રકાર આમાં મુનિજનને માટે 'એ પ્રકારના આહાર અકલ્પનિક છે' તે બતાવે છે—

टीका-' स भिक्षु '-रित्यादि, सः=गृहीतपञ्चमहाव्रतः, परिज्ञाशिखरिशिखर-समारूढः सकलसमारम्भोपरतः भिक्षुः=शरीरयात्रानिर्वहणार्थमशनवसनादियाचन-शीलो मुनिः 'श्मशाने' शवाः शेरते यत्र तत् श्मशानम्, अत्र 'वा' शब्दः सर्वत्र पक्षान्तरद्योतकः। तथा शून्यागारे=निर्जनगृहे गिरिगुहायां=पर्वतकन्दरायां वृक्षमूले =तरुमूले, कुम्भकारायतने=कुम्भकाराशालायां 'हुरत्था' इति देशभाषया पूर्वोक्तस्थानेभ्योऽन्यत्र वा कुत्रचित् स्थाने पराक्रमेत=तपःसंयमाचरणादौ पराक्रमं कुर्यात्, विहरेदित्यर्थः, तिष्ठेद्वा ध्यानादिविधानाय, निषीदेद्वा वाचना-पृच्छना-परिवर्तनादिकरणाय उपविशेत्, अपि चाध्वखेदसमापन्नः स त्वग्वर्तयेत्=त्वग्वर्तनं कुर्यात्, पार्श्वं परिवर्तयेदित्यर्थः। एते च कल्पाः प्रतिमाप्रतिपन्नमधिकृत्य प्रोक्ताः, अन्येषां तु यथासम्भवं बोध्यम्। गाथापतिः=गृहस्थः=स्वीकृतसम्यक्त्वसाध्वाचारानभिज्ञः प्रकृतिभद्रस्तत्र तत्र स्थानेषु विहरन्तं=विचरन्तं मुनिम् उपसंक्रम्य=मुनिस-

---

पांच महाव्रतोंका धारक, परिज्ञारूपी पर्वतकी शिखर पर समारूढ समस्त समारम्भोंसे निवृत्त भिक्षु शरीरयात्राके निर्वाहके लिये ही अशन, वसन (वस्त्र) आदिकी याचना करनेवाला मुनि ध्यान आदि करनेके निमित्त, या आगमकी वाचना, पृच्छना और परिवर्तना आदि करनेके निमित्त अथवा अपने गृहीत तप और संयमकी विशेष आराधनाके निमित्त कभी श्मशानमें जाता है, कभी शून्य गृहमें ठहरता है कभी पर्वतकी गुफामें बसता है और कभी किसी वृक्षके नीचे और कभी किसी कुंभारकी शालामें या और भी कहीं इन स्थानोंसे अतिरिक्त स्थानोंमें तथा मार्गजनित परिश्रमको दूर करनेके लिये विश्रामके निमित्त भी इन्हीं स्थानोंमेंसे कहीं ठहर जाता है। इस परिस्थितिसे सम्पन्न विहार करनेवाले मुनिके पास प्रकृतिके भद्र सम्यग्दृष्टि कोई गृहस्थ जो मुनिके आचारसे

પાંચ મહાવ્રતોના ધારક, પરિજ્ઞારૂપી પર્વતના શિખર પર સમારૂઢ અને સમસ્ત સમારંભોમાંથી નિવૃત્ત ભિક્ષુ-શરીર યાત્રાના નિર્વાહ માટે જ અશન, વસન આદિની યાચના કરવાવાળા મુનિ-ધ્યાન આદિ કરવા નિમિત્ત, અગર આગમની વાચના, પૃચ્છના અને પરિવર્તના આદિ કરવા નિમિત્ત, અથવા પોતે ધારણ કરેલ તપ અને સંયમની વિશેષ આરાધનાના નિમિત્ત ક્યારેક શ્મશાનમાં જાય છે, ક્યારેક ઉજ્જડ મકાનમાં રહે છે, ક્યારેક પર્વતની ગુફામાં વસે છે અને ક્યારેક કોઈ વૃક્ષની નીચે અને કુંભારની શાળામાં અથવા બીજા કોઈ સ્થાનોમાં તથા માર્ગની થાકને દૂર કરવા માટે વિશ્રામ નિમિત્તે પણ એજ સ્થાનોમાંથી કંઈપણ રહી જાય છે. આ પરિસ્થિતિથી સંપન્ન વિહાર કરવાવાળા મુનિની પાસે પ્રકૃતિથી

मीपमागत्य 'अयं सानुक्रोशः लाभालाभसन्तोषी भिक्षोपजीवी परोपकारपरायणो-ऽस्ति तस्मादेतस्मै सर्वमशनादिकं दास्यामी'-ति चेतसि विचिन्त्य च ब्रूयात्=वक्ष्यमाणं वाक्यं कथयेत्, तदेवाह-आयुष्मन्! श्रमण!=भो मुने! अहं संसारपारावारपारं जिगमिषुः 'खलु' वाक्यालङ्कारे तवार्थाय=भवदर्थं सर्वम् अशनं पानं खाद्यं स्वाद्यं चतुर्विधमप्याहारम्, तथा वस्त्रं पतद्ग्रहं कम्बलं पादप्रोञ्छनं समुद्दिश्य=भवन्तमुद्दिश्य एवं प्राणिनो भूतानि=जीवान् सत्त्वानि समारभ्य=विराध्य सम्पादितम् अशनादि-सम्पादने षड्जीवनिकायविराधनाया अवश्यम्भावात्, तदशनादिकं क्रीतं=मूल्येन, प्रामित्यम्=अपमित्यमुच्छिन्नतया गृहीतम्, आच्छिद्यं=बलात्कारेण यद् दुर्बलाद् गृ-

अनभिज्ञ है वह आकर इस ख्यालसे कि "यह साधु सानुक्रोश लाभ और अलाभमें संतोषी भिक्षोपजीवी तथा परोपकारमें निरत है इस कारण इसके लिए मैं अशन वसनादिक दूं" इस भावनासे प्रेरित होकर ऐसा कहता है कि-हे आयुष्मन् मुने! मैं संसाररूपी समुद्रसे पार होनेका हूं, अतः आपके लिये समस्त अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, ये चार प्रकारका आहार, तथा वस्त्र, पात्र, कम्बल और रजोहरण देना चाहता हूं। ये समस्त वस्तुएँ मैंने आपके उद्देशसे ही रख छोड़ी है। इनकी तैयारी करनेमें अथवा संग्रह करनेमें अनेक प्राणियों भूतों जीवों और सत्त्वोंकी विराधना हुई है, क्यों कि षट्कायके जीवोंकी विराधना हुए विना इनकी उत्पत्ति हो भी कैसे सकती है, आपको देनेके लिये ही मैंने इन्हें मूल्य दे कर खरीदा है, इन वस्तुओंको मैंने येन केन प्रकारेण उधार ले कर इन्हें रखा है। बलात्कारसे छीन कर इनका संग्रह किया है। मेरे घरमें इन वस्तु-

ભદ્ર સમ્યગ્દૃષ્ટિ કોઇ ગૃહસ્થ જે મુનિના આચારથી અજાણ છે તે આવીને આવા ખ્યાલથી કે "આ સાધુ સાનુક્રોશ લાભ અને અલાભમાં સંતોષી, ભિક્ષોપજીવી, તથા પરોપકારમાં નિરત છે આ કારણે આને હું અન્ન વસ્ત્ર આપું" આ આવી ભાવનાથી પ્રેરિત બની સાધુ સમક્ષ આવી વંદના કરી કહે છે-હે આયુષ્મન્ મુને! હું સંસારરૂપી સમુદ્રથી પાર થવાનો અભિલાષી છું આપના માટે અશન, પાન, ખાદ્ય, સ્વાદ્ય, આ ચાર પ્રકારના આહાર તથા વસ્ત્ર, પાત્ર, કમ્બલ અને રજોહરણ દેવા ચાહું છું. આ બધી વસ્તુઓ મેં આપના ઉદ્દેશથી જ રાખી છે. આની તૈયારી કર-વામાં અથવા સંગ્રહ કરવામાં અનેક પ્રાણીઓ, ભૂતો, જીવો અને સત્વોની વિરાધના થઈ છે, કેમ કે ષટ્કાયના જીવોની વિરાધના થયા વિના એની ઉત્પત્તિ થઈ પણ કેમ શકે?, આપને આપવા માટે જ મેં આ વસ્તુઓ મૂલ્ય દઈ ખરીદી છે, આ બધી વસ્તુઓ ઉછીતી લઈને રાખેલ છે, બળાત્કારથી દુર્બળોથી છીનવી એનો સંગ્રહ કરેલ છે. મારા ઘરમાં

हीतम् , अनिसृष्टम्=अनेकस्वामिकाहारादिकमन्याननापृच्छय तदनिच्छयैकेन यद्दीयमानम् , अभिहृतं=साधुसमीपमानीय दीयमानम् , एतादृशं सर्वमाहारादिकम् आहृत्य= आनीय तुभ्यं ददामि, एवम् आवसथं=वसतिं वा भवदर्थं समुच्छृणोमि=नवीनं विदधामि जीर्णं वा परिष्करोमि भो आयुष्मन् ! श्रमण ! त्वं तत्तथाभूतमशनादिकं भुङ्क्ष्व=अशान, त्वदर्थं मन्निर्मितभवने च वस=तिष्ठ । मूले बहुवचनमार्षत्वात् । एवमुक्तवन्तं गाथापतिं निषेधयन्मुनिरेवमाह–भिक्षुः=मुनिः समनसं मनसा सहेति समनास्तं=सचेतसम् शोभनमनसा कृतादरं, सवयसं वयसा=बाल्यातिरिक्तेन सह सवयास्तं सवयसं=बाल्येतरावस्थापन्नं तादृशं गाथापतिं=गृहस्थं प्रत्याचक्षीत=वक्ष्यमाणं प्रत्युत्तरं दद्यात्—

भो आयुष्मन् ! गृहपते ? अहं ते वचनं=पूर्वोक्तं न 'खलु' शब्दोऽप्यर्थे तेन नापि आद्रिये=न तत्रादरं करोमि, अपि च अहं ते वचनं न परिजानामि

ओंके अनेक मालिक हैं सो मैंने इन्हें देनेके निमित्त और किसीसे नहीं पूछा है–शायद उनकी इच्छा देनेकी न हो–सो मैं तो एक ही जनसे पूछ कर इन्हें देनेके लिये आपके समक्ष ले आया हूं । ये आहारादिक वस्तुएँ आपके लेनेके योग्य हैं अतः आप इन्हें लीजिये मैं देता हूं, इसी प्रकार मैं आपको ठहरनेके लिये एक नवीन मकान बनवाये देता हूं, अथवा पुरानेको ही ठीक करवाये देता हूं, सो आप जैसा मैंने कहा है उस प्रकारसे अशनादिकको ग्रहण करें और उस मेरे द्वारा बनवाये हुए मकानमें रहें । इस प्रकार कहनेवाले गृहस्थजनके लिये मुनि इस प्रकारसे निषेध करे—

हे आयुष्मन् गृहपते ! आपने जो कुछ कहा है वह भक्तिसे भरे हुए अंतःकरणसे कहा है–उसमें ऊपरके दिखावकी झलक नहीं है । तथा

આ વસ્તુઓના અનેક માલિક છે પરંતુ આપને દેવા નિમિત્ત મેં કોઈને પૂછ્યું નથી, કારણ કે કદાચ એમની ઈચ્છા દેવાની ન થાય–ફક્ત એકજ જણને પૂછી દેવા માટે આપની સમક્ષ લઈ આવેલ છું. આહારાદિક વસ્તુઓ આપને લેવા યોગ્ય છે; આપ એનો સ્વીકાર કરો, હું આપું છું. આ રીતે આપને રહેવા માટે એક નવું મકાન બનાવી આપું છું અથવા જુનાને ઠીક કરાવી આપું છું તો આપ મેં કહ્યું તેમ અસનાદિકને ગ્રહણ કરો અને મારા બનાવેલા મકાનમાં રહો. આ પ્રકારે કહેવાવાળા ગૃહસ્થને મુનિ આ પ્રકારે નિષેધ કરે—

હે આયુષ્માન્ ગૃહસ્થ ! આપે જે કહ્યું તે ભક્તિથી ભરપૂર અંતઃકરણથી કહ્યું છે, તેમાં ઉપરના દેખાવની ઝલક નથી, તથા તમે બાલ્ય અવસ્થાને ઉલંઘન

आसेवनपरिज्ञया न समनुजानामि, यस्त्वं ममार्थाय=मन्निमित्तं यद् अशनं=चतुर्विधं वस्त्रं वा=वस्त्रादिकं प्राणादीन् समारभ्य षड्जीवनिकायमुपमर्द्य सम्पादितम्, तथा समुद्दिश्य=मामुद्दिश्य क्रीतं प्रामित्यम् आच्छिद्यम् अनिसृष्टम् अभिहृतम् आहृत्य ददासि, आवसथं वा समुच्छृणोषि=मदर्थं निर्मापयसि किन्तु हे आयुष्मन् ! गृहपते !

तुम बाल्य अवस्थाको उल्लङ्घन भी कर चुके हो इसलिये हम यह भी नहीं मान सकते कि किसीने तुम्हें समझा बुझाकर हमारे पास भेजा है, अतः तुम सहृदय एवं उमरलायक व्यक्ति हो फिर भी तुम मुनि के आचार विचारोंसे अपरिचित हो इसलिये हम तुम्हें समझाते हैं कि-आपने जो कुछ आहार आदि सामग्रीके लेनेके विषयमें कहा है, मैं उन वचनोंको न सुनना चाहता हूं, न आदरकी दृष्टिसे देखता हूं और न आसेवनपरिज्ञासे उनकी अनुमोदना भी करता हूं। तुम जो कह रहे हो कि मैंने अशनादिक चारों प्रकारका आहार तथा वस्त्रादिक षड्जीवनिकायको उपमर्दन करके संपादित किया है, तथा मेरे उद्देश्यसे इन्हें खरीदा है, ये समस्त चीजें तुमने उधार लेकर हमको देनेके लिये इन्हें रख छोड़ी है, बलात्कारसे निर्बलोंसे इसे छीन झपट कर संग्रह की है, घरमें इस सामग्रीके अनेक मालिक थे सो किसीसे न पूछ कर केवल एक ही मनुष्यकी आज्ञा ले कर तुम अपनी इच्छासे हो हमें देनेके लिये इसे लाये हो, तथा एक नवीन भवन भी मुझे करवा देनेके लिये कह रहे हो, आदि २ ये तुम्हारी बातें मुनियोंके योग्य नहीं हैं, इस लिये

કરી ગયા છો માટે અમે એ પણ માનતા નથી કે કોઈએ તમને સમજાવી બુજાવીને અમારી પાસે મોકલેલ છે, માટે તમે સહૃદય તેમજ ઉમરલાયક વ્યક્તિ છો. તો પણ તમે મુનિના આચાર વિચારથી અપરિચિત છો માટે અમે તમોને સમજાવીએ છીએ કે આપે જે કાંઇ આહારાદિ સામગ્રી લેવાના વિષયમાં કહ્યું છે હું તે વચનોને સાંભળવા ઇચ્છતો નથી, આદરની દૃષ્ટિથી દેખતો નથી અને આસેવનપરિજ્ઞાથી તેની અનુમોદના પણ કરતો નથી. તમે જે કહી રહ્યા છો કે મેં અશનાદિક ચારે પ્રકારનો આહાર તથા વસ્ત્રાદિક ષડ્જીવનિકાયનું ઉપમર્દન કરીને સંપાદિત કરેલ છે, તથા મારી ઈચ્છાથી ખરીદેલ છે. આ સમસ્ત ચીજો તમો ઉછીની લઇને મને આપવા માટે રાખી મુકેલ છે. બળાત્કારથી નિર્બળો પાસેથી આને આંચકી લઈ સંગ્રહ કરેલ છે. ઘરમાં આ સામગ્રીના અનેક માલીક હતા એમાંથી કોઈને ન પૂછતાં કેવળ એક જ માણસની આજ્ઞા લઇને તમે તમારી ઈચ્છાથી મને આપવા માટે લાવેલ છો તેમજ એક નવું

एतस्य=पूर्वोक्तस्य अकरणतया अनासेवनपरिज्ञया सोऽहं विरतः=अकल्पनीयाशनादिग्रहणेभ्यो निवृत्तोऽस्मि, पूर्वोक्तं सर्वं मम न कल्पत इति भावः, अतो मदर्थमुपकल्पितं पूर्वोक्तं सर्वं वस्तुजातं भगवदाज्ञाबहिर्भूतत्वात् स्वीकर्तुं न शक्नोमि, नात्र त्वया स्वमनसि खेदो विधेयः, इत्यादि सान्त्वनावाक्यैस्तं प्रकृतिभद्रं गृहस्थमनुनयेदिति तात्पर्यम् ॥ सू० १ ॥

विदितसाध्वाचारो गृहपतिः साधुमविज्ञाप्याशनादिकमुपकल्प्य निमन्त्रयेत् तन्निषेधयितुमाह–' से भिक्खू ' इत्यादि ।

हम इसे ग्रहण नहीं कर सकते हैं और न हम इसकी तुम्हें स्वीकृति ही दे सकते हैं, कारण कि इस प्रकारकी अकल्पनीय सामग्रीके ग्रहणसे हम सर्वथा विरत हैं। तीर्थङ्कर प्रभुकी यह आज्ञा है कि मुनिजन इस प्रकारकी अकल्पनीय अशनादि सामग्रीको ग्रहण न करें, अतः हमारे निमित्त रखी हुई पूर्वोक्त समस्त अशनवसनादिरूप सामग्री तीर्थङ्कर भगवान्‌की आज्ञासे बहिर्भूत होनेके कारण हमें ग्रहण करनेयोग्य नहीं है, इसलिये हम उसे ग्रहण नहीं कर सकते हैं। इस विषयमें तुम अपने चित्तमें खेद मत करना। इस प्रकारके सान्त्वना परिपूर्ण वचनोंसे वह मुनि उस प्रकृतिभद्र गृहस्थको समझावे॥ सू० १॥

साधुके निमित्त तय्यार की गई आहारादिक सामग्री ज्ञात होने पर साधुके लिये अकल्पनीय है। साधुजन उसे नहीं ले सकते हैं। जिसने साधुका आचार जाना है ऐसे गृहस्थके द्वारा साधुके उद्देश

મકાન પણ મારા માટે કરાવી આપવાનું કહી રહ્યા છો. આ સઘળી તમારી વાતો મુનિને યોગ્ય નથી જેથી તેને હું ગ્રહણ કરી શકતો નથી તેમ એની સ્વીકૃતિ પણ દઈ શકતો નથી. કારણ કે આ પ્રકારની અકલ્પનીય સામગ્રીના ગ્રહણથી હું સર્વથા વિરક્ત છું. તીર્થંકર પ્રભુની એવી આજ્ઞા છે કે મુનિજન આવા પ્રકારની અકલ્પનીય અશનાદિ સામગ્રી ગ્રહણ ન કરે. માટે મારા નિમિત્ત રાખેલી પૂર્વોક્ત સમસ્ત અશનવસનાદિરૂપ સામગ્રી તીર્થંકર ભગવાનની આજ્ઞાથી બહિર્ભૂત હોવાને કારણે મારે યોગ્ય નથી. આ માટે હું તેને ગ્રહણ કરી શકતો નથી. આ બાબત તમે તમારા મનમાં ખેદ કરશો નહીં. આ પ્રકારે સાન્ત્વના પરિપૂર્ણ વચનોથી તે મુનિ એ પ્રકૃતિભદ્ર ગ્રહસ્થને સમજાવે ॥ સૂ૦ ૧ ॥

સાધુના નિમિત્ત તૈયાર કરાએલી આહારાદિક સામગ્રી જાણ્યા પછી સાધુ માટે અકલ્પનીય છે. સાધુજન તેનો સ્વીકાર કરતા નથી. જેણે સાધુના આચાર જાણ્યા છે એવા ગૃહસ્થદ્વારા સાધુના ઉદ્દેશ વિના પણ તૈયાર કરાયેલી ભોજનાદિક

मूलम्—से भिक्खू परक्कमिज्ज वा, जाव हुरत्था वा, कहिं चि विहरमाणं तं भिक्खुं उवसंकमित्तु गाहावई आयगयाए पेहाए असणं वा ४, वत्थं वा ४, जाव आहट्ट चेएइ आवसहं वा समुस्सिणाइ तं भिक्खुं परिघासेउं। तं च भिक्खू जाणिज्जा सह सम्मइयाए परवागरणेणं अन्नेसिं वा अंतिए सुच्चा—अयं खलु गाहावई मम अट्ठाए असणं वा ४, जाव आवसहं वा समुस्सिणाइ तं च भिक्खू पडिलेहाए आगमित्ता आणविज्जा अणासेवणयाए त्तिबेमि ॥ सू०२॥

छाया——स भिक्षुः पराक्रमेत वा यावद् हुरत्था (अन्यत्र) वा क्वचिद् विहरमाणं तं भिक्षुमुपसंक्रम्य गृहपतिरात्मगतया प्रेक्षया अशनं वा ४ वस्त्रं वा ४ यावदाहृत्य ददाति आवसथं वा समुच्छृणोति तं भिक्षुं परिघासयितुं। तच्च भिक्षुर्जानीयात् सहसम्मत्या परव्याकरणेनाऽन्येषां वाऽन्तिके श्रुत्वा—अयं खलु गाथापतिर्ममार्थायाशनं वा ४ यावदावसथं वा समुच्छृणोति तद्भिक्षुः प्रत्युपेक्ष्यावगम्याऽऽज्ञापयेदनासेवनतयेति ब्रवीमि ॥ सू० २ ॥

टीका='स भिक्षु'-रित्यादि, स भिक्षुः=मुनिः पूर्वोक्ते श्मशानादौ 'हुरत्था' देशभाषया अन्यत्रापि ग्रामादौ पराक्रमेत=तपःसंयमादौ, 'यावत्' इत्यनेन पूर्वो-

---

के विना भी तैयार की गई भोजनादिक सामग्री निमंत्रित किया गया साधु नहीं ले सकता है, इसे प्रकट करनेके लिये सूत्रकार कहते हैं— "से भिक्खू" इत्यादि।

उस मुनिको कि जो अपने तप और संयमकी वृद्धि करनेके निमित्त ध्यान आदिकी सिद्धिके निमित्त, अथवा आगमकी वाचना, पृच्छना और परिवर्तना आदिके निमित्त श्मशान आदि स्थानोंमें शून्य घरमें पर्वतकी

સામગ્રી નિમંત્રિત કરવામાં આવેલ સાધુ લઈ શકતા નથી, તેને પ્રગટ કરવા માટે સૂત્રકાર કહે છે–"से भिक्खू" ઈત્યાદિ.

એ મુનિ કે જે પોતાના તપ અને સંયમની વૃદ્ધિ કરવા નિમિત્ત ધ્યાન આદિની સિદ્ધિના નિમિત્ત અથવા આગમની વાચના, પૃચ્છના, અને પરિવર્તના આદિના નિમિત્ત શ્મશાન આદિ સ્થાનોમાં, ઉજ્જડ ઘરમાં, પર્વતની ગુફામાં,

त्कवन्निषीदेत्त्वग्वर्त्तयेदिति सङ्ग्रहः, गाथापतिः=प्रकृतिभद्रकः कश्चिद् आत्मगतया =अन्तःकरणस्थितया प्रेक्षयाऽनाविष्कृताशयः प्रच्छन्नपचनपाचनादिना षड्जीवनिकायं विराधयन् तं भिक्षुं तत्र क्वचिदेकत्र विहरन्तम् उपसंक्रम्य तत्समीपं गत्वा अशनं वा चतुर्विधं, वस्त्रं वा ४ यावत् सर्वम् आहृत्य=आदाय तं भिक्षुं परिवासयितुं= मुनिभोजनाय ददाति=वितरति आवसथं वा=नवीनं गृहं वासयितुं समुच्छृणोति= निर्मापयति जीर्णं वा परिष्करोति, भिक्षुः=संयमी तद् आहारादिकं वस्त्रादिकमावसथं वा साध्वर्थमेव कृतमिति सहसम्मत्या=स्वबुद्धया, तयाऽनधिगमे परव्याकरणेन परपरिप्रश्नेन, ततोऽनवगमे अन्येषां=तत्परिजनदासादीनामन्तिके=समीपे श्रुत्वा वा

गुफाओंमें कुंभारकी शालामें या इनसे अतिरिक्त किसी भी स्थानमें रहता है ठहरता है उठता है तथा बैठता है या मार्गजन्य खेदको दूर करनेके लिये उन २ स्थानोंमें विश्राम करता है उन्हें देख कर कोई प्रकृतिभद्र गृहस्थ अपनी इच्छासे उपार्जित आहार देनेकी भावनासे आता है। मुनिके निमित्त इसने आहारादिक सामग्री तैयार की है इस प्रकार का उसका अभिप्राय प्रकट नहीं हो रहा है, तथा मुनिसे प्रच्छन्न पचन पाचनादि व्यापारसे जिसने षट्जीवनिकायकी विराधना भी की है वह गृहस्थ अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य तथा वस्त्र, पात्र, कम्बल और रजोहरण आदि समस्त सामग्रीको ले कर मुनिको देनेके निमित्त कहीं रख देता है। नया मकान भी ठहरनेके लिये बनवा देता है, अथवा जीर्ण का उद्धार करवा देता है। मुनिको जब यह बात अपनी बुद्धिसे या उस से नहीं मालूम पड़ने पर दूसरेसे पूछनेसे, उससे भी निश्चित न होनेपर

કુંભારની શાળામાં, અથવા તેનાથી સિવાય કોઇ પણ સ્થાનમાં રહે છે-રોકાય છે ઉઠે છે બેસે છે તથા માર્ગજન્ય થાકને દૂર કરવા માટે તેવા સ્થાનમાં વિશ્રામ કરે છે તેને જોઇને કોઇ પ્રકૃતિભદ્ર ગૃહસ્થ પોતાની ઇચ્છાથી ઉપાર્જીત આહાર દેવાની ભાવનાથી આવે છે. મુનિ નિમિત્ત તેણે આહારાદિક સામગ્રી તૈયાર કરેલી છે. આ પ્રકારનો ભાવ દેખાઈ આવતો નથી તથા મુનિથી પ્રચ્છન્ન પચનપાચનાદિ વ્યાપારથી જેણે ષડ્જીવનિકાયની વિરાધના કરેલી છે. તે ગૃહસ્થ અશન, પાન, ખાદ્ય, અને સ્વાદ્ય તથા વસ્ત્ર, પાત્ર, કમ્બલ અને રજોહરણ આદિ સમસ્ત સામગ્રી લઇને મુનિને દેવા માટે કોઈ જગ્યાએ રાખે છે. નવું મકાન પણ રહેવા માટે બનાવી દે છે અથવા જુનાને સમરાવી આપે છે. મુનિને આ વાત જ્યારે પોતાની બુદ્ધિથી, અથવા તેને નહીં માલુમ પડવાથી બીજાને પૂછવાથી, એનાથી પણ નિશ્ચિત ન થવાથી તેના દાસ દાસી આદિના પાસેથી

जानीयात्=बुद्ध्येत, किं जानीयादित्याह–'अय'–मित्यादि–अयम्=एष गाथापतिः खलु=निश्चयेन, ममार्थाय=मदर्थं संपाद्य अशनं वा ४ वस्त्रं वा ४ यावत्सर्वं ददाति, आवसथं वा समुच्छृणोति एतत्सर्वं जानीयादिति सम्बन्धः। तत्सर्वमकल्प्यत्वात्परिहरेदित्याह–'तदि'–त्यादि, भिक्षुः=मुनिः तत्=अशन–वसनावसथादिकं मदर्थमेव सम्पादितमिति प्रत्युपेक्ष्य=दृष्ट्यादिना सम्प्रेक्ष्य अवगम्य=स्वबुद्ध्या सम्यगवबुद्ध्य च तं गृहस्थम् अनासेवनतया=अकल्पनीयत्वेन सेवितुमयोग्यमिति आज्ञापयेत्=प्रतिबोधयेत्, ग्रहीतुमपि न कल्पते इति तात्पर्यम्, 'एतन्मदर्थमुपकल्पितमशनादिकमुद्गमादिदोषदूषिततया नाहं ग्रहीष्ये, नापि तस्मिन् आवसथे वत्स्यामि, इत्याद्यभिधाय 'प्रासुकदाने धर्मोऽन्यथा न धर्मः' इत्यादिकं

उसीके दासदासी आदिके पासमें सुननेसे यह मालूम होता है कि यह आहारादिक सामग्री, या वस्त्र पात्रादिक वस्तुएँ, और ठहरनेके लिये यह निर्मित स्थान इस श्रावकने मुनियोंके निमित्त ही तैयार किये हैं। यह आहारादिक सामग्री इसने हमारे निमित्त ही बनवाई है, वस्त्रादिक ये हमारे निमित्त ही देने लाया है, यह मकान भी इसने हमारे निमित्त ही तय्यार करवाया है, इस प्रकार अच्छी तरह जानकर और विचारकर उस दाता गृहस्थको समझावे, कि–ये तुम्हारे द्वारा दी जानेवाली समस्त वस्तुएँ हमें अकल्प्य हैं–हमें सेवन करनेके अयोग्य हैं। हम इन्हें ग्रहण तक नहीं कर सकते हैं, कारण कि ये सब अशनादिक वस्तुएँ उद्गमादिक दोषोंसे दूषित हैं, इसलिये हम न इन्हें ग्रहण करेंगे और न मकानमें ही ठहरेंगे। ऐसा कह कर "निर्दोषके देनेमें ही धर्म होता है

સાંભળી એમ માલૂમ પડે છે કે એ આહારાદિક સામગ્રી અને વસ્ત્ર પાત્રાદિક વસ્તુઓ અને ઉતરવા માટે આ નિર્મિત સ્થાન તે શ્રાવકે મુનિયોના નિમિત્તે જ તૈયાર કરેલ છે. આ આહારાદિક સામગ્રી તેણે અમારા નિમિત્ત જ બનાવેલી છે. વસ્ત્રાદિક અમારા નિમિત્ત જ આપવા માટે લાવેલ છે. આ મકાન પણ અમારા નિમિત્તજ તેણે બનાવેલ છે. આ પ્રકારે સારી રીતે જાણીને અને વિચાર કરીને તે દાતા ગૃહસ્થને આ પ્રકારે સમજાવે કે આ તમારા દ્વારા અપાતી સમસ્ત વસ્તુઓ અમારે અકલ્પનીય છે, અમારા સેવન માટે અયોગ્ય છે, અમે તેને ગ્રહણ કરી શકતા નથી, કારણ કે એ સઘળી અશનાદિક વસ્તુઓ ઉદ્ગમાદિક દોષોથી દૂષિત છે માટે અમે તેને ગ્રહણ કરતા નથી. એવું કહીને "પ્રાસુકને દેવામાં જ ધર્મ થાય છે એ સિવાય નહીં" ઇત્યાદિ શાસ્ત્રોક્ત કલ્પોનો એને

शास्त्रोक्तकल्पमुपदिश्य तमभिसान्त्वयेदिति भावः। 'इति' अधिकारसमाप्तौ, यन्मया भगवत्सकाशात् श्रुतं तत्सर्वं पूर्वोक्तं वक्ष्यमाणं च ब्रवीमि=कथयामि ॥ सू०२ ॥

वक्ष्यमाणमेवाह—'भिक्खुं च' इत्यादि—

मूलम्—भिक्खुं च खलु पुट्ठा वा, अपुट्ठा वा जे इमे आहच्च गंथा वा फुसंति से हंता हणह, खणह, छिंदह दहह, पयह, आलुंपह, विलुंपह सहसा कारेह, विप्परामुसह, ते फासे, पुट्ठो धीरो अहियासए, अदुवा, आयारगोयरमाइक्खे तक्किया णमणेलिसं, अदुवा वइगुत्तीए गोयरस्स अणुपुव्वेण सम्मं पडिलेहाए आयगुत्ते, बुद्धेहिं एयं पवेइयं ॥ सू० ३ ॥

छाया—भिक्षुं च खलु पृष्ट्वा वा अपृष्ट्वा वा ये इमे आहत्य ग्रन्थाद्वा स्पृशन्ति स हन्ता हत क्षणुत, छिन्त, दहत, पचत,आलुम्पत, विलुम्पत, सहसाकारयत, विपरामृशत, तान् स्पर्शान् स्पृष्टोऽध्यासयेत् , अथ वा आचारगोचरमाचक्षीत, तर्कयित्वा खलु अनीदृशमथवा वाग्गुप्त्या गोचरस्यानुपूर्व्या सम्यक् प्रत्युपेक्षेत आत्मगुप्तः, बुद्धैरेतत्प्रवेदितम् ॥ सू० ३ ॥

टीका–'भिक्षु'–मित्यादि, ये=पूर्वोक्ता इमे=प्रत्यक्षनिर्दिष्टा गाथापतयो भिक्षुं =श्मशानादौ विहरन्तं तं मुनिं 'चः' समुच्चयार्थकः, 'खलु' वाक्यालङ्कारे, पृष्ट्वा

अन्यथा नहीं" इत्यादिक शास्त्रोक्त कल्पका उसे उपदेश देकर समझावे। सूत्रमें इति शब्द अधिकारकी समाप्तिका सूचक है। जो मैंने भगवान्से सुना है वह सब पूर्वोक्त अथवा वक्ष्यमाण तुमसे कहा है, तथा आगे कहता हूं ॥ सू० २ ॥

वक्ष्यमाण विषयको सूत्रकार कहते हैं–"भिक्खुं च" इत्यादि।

सूत्रकारने १ प्रथम और २ द्वितीय सूत्रमें यह प्रकट किया है कि–कुछ गृहस्थ ऐसे हैं जो मुनियों के प्रति पूर्ण भक्ति रखते हैं परन्तु उनके

ઉપદેશ આપી સમજાવે. સૂત્રમાં इति શબ્દ અધિકારની સમાપ્તિનો સૂચક છે જે મેં ભગવાન પાસેથી સાંભળેલ છે એ સઘળું પૂર્વોક્ત અથવા વક્ષ્યમાણ તમને કહેલ છે તથા આગળ કહું છું. ॥ સૂ૦ ૨ ॥

વક્ષ્યમાણ વિષયને સૂત્રકાર કહે છે—"भिक्खुं च" ઈત્યાદિ.

સૂત્રકારે ૧ પ્રથમ અને ૨ બીજા સૂત્રમાં એ પ્રગટ કરેલ છે કે કોઈ ગૃહસ્થ એવા હોય છે કે જે મુનિયોની તરફ પૂર્ણ ભકિત રાખે છે પણ તેના

'भो भिक्षो ! तुभ्यमाहारवस्त्रादिकं दातुमिच्छामि स्थानं वा परिष्करिष्यामि अनुजानीहि मा'-मित्यादिवाक्यैस्तं पृष्ट्वा, अप्राप्तानुज्ञोऽपि गाथापतिर्यदि सहसा चाऽऽग्राहयिष्यते, कश्चिच्च स्तोकमनगाराचारविधिज्ञः अपृष्ट्वा वा भिक्षुणाऽननुज्ञातः

आचारसे अपरिचित हैं, तथा कुछ गृहस्थ ऐसे हैं जो उनके आचारसे परिचित हैं। इनमें जो उनके आचारसे अपरिचित हैं उनके विषयमें सूत्रकार फिर भी कह रहे हैं कि ऐसे व्यक्ति मुनिको ध्यान अध्ययनादि पूर्वोक्त कारणोंके कारण श्मशान आदि स्थानोंमें विहार करते हुए देख कर भक्तिके आवेशसे स्वयं मुनिसे पूछते हैं कि-महाराज ! मैं आपके लिये आहार वस्त्रादिक देनेका अभिलाषी हूं। आपके लिये एक नवीन भवन भी जिसमें आप निवास कर सकें वैसा बनवा देना चाहता हूं। नहीं तो कोई एक आपके लायक पुराना ही स्थान सुधरवा दूं, कहिये आपकी क्या संमति है। आपकी आज्ञाकी ही देरी है काम बहुत शीघ्र हो जायगा। इस प्रकार उस गृहस्थकी बातको सुन कर मुनि ध्यानादिके कारण जब कुछ भी उत्तर नहीं देते हैं तो वह गृहस्थ अपने मनमें अपनी ही कल्पनासे यह निश्चय कर लेता है कि ठीक है, मुनिराजने हमें कोई इस बाबतमें उत्तर नहीं दिया है तो कोई हर्ज नहीं, मैंने उन्हें सूचित तो कर दिया है, चलो भक्ति-अनुनय विनयादि करके सब उनसे मंजूर करवा लूंगा और यह सब आहारादिककी सामग्री इन्हें

આચારથી અપરિચિત છે. તથા કેટલાક ગૃહસ્થ એવા હોય છે કે તેના આચારથી પરિચિત છે. એમાં જે એના આચારથી અપરિચિત છે તેના વિષયમાં સૂત્રકાર ફરીથી પણ કહે છે કે એવી વ્યક્તિ મુનિને ધ્યાન અધ્યયન આદિ સ્થાનોમાં વિહાર કરતા જોઇને ભક્તિના આવેશથી પોતે મુનિને પૂછે છે કે-મહારાજ હું આપને માટે આહાર વસ્ત્રાદિક દેવાનો અભિલાષી છું. આપને માટે એક નવીન મકાન પણ જેમાં આપ નિવાસ કરી શકો તેવું બનાવી દેવા ચાહું છું, નહિ તો આપને લાયક જુના મકાનને સુધરાવી દઉં. કહો આપની શું સંમતિ છે? આપની આજ્ઞાની વાર છે કામ જલ્દી થઇ જશે. આ પ્રકારની તે ગૃહસ્થની વાત સાંભળીને મુનિ ધ્યાનાદિકના કારણે જ્યારે કાંઇ પણ ઉત્તર આપતા નથી ત્યારે તે ગૃહસ્થ પોતાની કલ્પનાથી પોતાના મનમાં નિશ્ચય કરી લે છે-ઠીક છે મુનિરાજે મને આ બાબતમાં કાંઈ ઉત્તર આપેલ નથી તો કાંઈ વાંધો નથી. મેં તેમને જાહેર તો કરી જ દીધું છે. ભક્તિ-અનુનય-વિનય વિગેરે-થી મંજુર કરાવી લઈશ. અને આ આહારાદિકની સામગ્રી પણ એમને કોઈ પણ પ્રકારે

'येन केनापि प्रकारेणैतदशन-वसनादिकं ग्राहयिष्यामी'-त्येवं चेतसि परिचिन्त्य तं भिक्षुमपृष्ट्वैव तदर्थमशनादिकं निष्पादयेयुः। गृहस्थोपहृतमशनादिकमगृह्णतो मुनेः

किसी भी प्रकारसे दे ही दूंगा। अथवा यदि कोई इसी प्रकारका राजपुरुष है तो वह कहता है कि-वे नहीं लेंगे तो बलात्कारसे उन्हें लेना पडेगा कम से कम वे इतना तो विचार करेंगे कि यह एक राजाका उच्च कर्मचारी है या स्वयं राजपुरुष है इसके द्वारा लाई गई सामग्री अब कैसे नहीं लूँ-नहीं लेनेसे इसके चित्तमें खेद होगा-उससे मेरे प्रति इस की विरक्ति हो जायगी और इससे यह मुझे उपद्रवित करेगा।

जो गृहस्थ पूर्णरूपसे मुनिके आचारसे परिचित नहीं है, इस कारण से वह पूछना उचित नहीं समझ कर नहीं पूछता है पर वह इतना तो अवश्य विचार करता है कि चाहे कुछ भी हो, परन्तु यह अशन वसनादि सामग्री इस मुनिके लिये अवश्य दूंगा और वे इसे अवश्य २ लेंगे। ऐसे विचारसे वह भी अशन वसनादिक सामग्री तय्यार करा कर और उसे ले कर उनके निकट पहुंच जाते हैं परन्तु मुनिराज औद्देशिकादि दोषसे दूषित इस सामग्रीको जब नहीं लेतें हैं, तब उनके चित्तमें यह ख्याल जम जाता है कि इस साधुने हमारा तिरस्कार किया है अतः द्वेषाविष्ट बन वे राजपुरुषरूप गृहस्थ उस मुनिके ऊपर अनेक

દઈજ દઈશ. અથવા જો કોઈ આ પ્રકારનો રાજપુરૂષ હોય તો એ કહે કે જો તેઓ નહીં લે તો બળજબરીથી એણે સ્વીકારવું પડશે. ઓછામાં ઓછો તેઓ એટલો તો વિચાર કરશે કે ' આ એક રાજાનો કર્મચારી છે. અથવા સ્વયં રાજ-પુરૂષ છે, એમણે લાવેલી આ સામગ્રી હું કઈ રીતે ન લઉં-ન લેવાથી દિલમાં ખેદ થશે-આથી મારા તરફ એની વિરકિત બનશે અને એથી એ મને દુઃખકારક બનશે.'

જે પુરૂષ-ગૃહસ્થ પૂર્ણ રીતે મુનિના આચારથી પરિચિત નથી અને એ કારણથી એ પૂછવું ઉચિત ન માની પૂછતો નથી અને મનમાં નિશ્ચય કરે છે કે ચાહે ગમે તેમ થાય તો પણ હું અન્ન, વસ્ત્ર આદિ સામગ્રી મુનિને અવશ્ય આપવાનો છું, અને તેઓ અવશ્ય એનો સ્વીકાર કરશે જ. આવો નિર્ધાર કરી એ અન્ન, વસ્ત્ર ઈત્યાદિ સામગ્રી તૈયાર કરાવી એને લઈ એ મુનિ પાસે પહોંચે છે, પરંતુ મુનિરાજ ઔદેશિકાદિ દોષોથી દૂષિત એ સામગ્રી જ્યારે લેતા નથી ત્યારે એના દિલમાં એવો ખ્યાલ જામી જાય છે કે આ સાધુએ મારો તિરસ્કાર કર્યો છે. આથી દ્વેષ ભાવનાવાળા થઈ એ રાજપુરૂષ ગૃહસ્થ એ મુનિના ઉપર

द्वेषाविष्टास्ते तिरस्कृता गृहस्था राजपुरुषास्तस्य बहुविधमुपतापं कुर्वन्तीत्याह- 'आहच्च' इत्यादि, ते गृहस्थास्तत्सर्वमशनादिकं ग्रन्थात्=अपरिमितद्रव्यव्ययात् आहृत्य=ढौकित्वा तदर्थं निष्पाद्येत्यर्थः। आहृतमप्यशनादिकमनङ्गीकुर्वन्तं स्पृशन्ति=परितापयन्ति, तदेव दर्शयति-'स' इत्यादि-सः=प्रद्वेषमुपगतो राजपुरुषादिस्तस्य मुनेर्हन्ता=स्वयं हन्तुं प्रवृत्तो भवति अन्यमाज्ञापयति च-'हते'-त्यादि- भो पुरुषाः ? यूयमेनं मुनिं हत दण्ड-कशादिना, क्षणुत=मुष्टिलत्तादिना मारयत, छिन्त=कुठारादिना कर-चरणाद्यवयवानां छेदं कुरुत, दहत=वह्न्यादिना भस्मीकुरुत, पचत तद्देहमांसादिकम्, आलुम्पत=वस्त्रादिकमपहरत, विलुम्पत=सर्वस्वं गृह्णीत, सहसाकारयत=त्वरितं प्राणानपहरत, विपरामृशत=वि=विविधैः पीडनोत्पा-

---

प्रकारके उपद्रव करना प्रारंभ कर देते हैं, इसी बातको सूत्रकार-"आहच्च गंथा वा फुसंति" इस वाक्यसे प्रकट करते हैं। वे गृहस्थ अपरिमित द्रव्यके व्ययसे साध्य उस अशनादिक सामग्रीको उसके निमित्त तय्यार कराकर जब उस मुनिके निकट ले जाते हैं और वह जब उस सामग्रीको स्वीकृत नहीं करता है तब वे उसे अस्वीकार करनेवाले उस मुनिको अनेक प्रकारसे दुःखित करने लग जाते हैं। कभी वे राजपुरुष गृहस्थ स्वयं उस मुनिको मारने लग जाते हैं और दूसरोंसे भी यह कहते हैं कि अरे! तुम सब लोग इस मुनिको दण्ड और कशा आदिसे पीटो मुष्टि और लातके प्रहारोंसे इसे चोट पहुँचाओ, कुठार आदिसे इसके हाथ और पैर आदि अवयवोंको छेद दो, अग्निमें इसे जलादो, इसकी देहके मांसको निकालकर पका लो, इसके वस्त्र वगैरह सब छीन लो- इसका सर्वस्व लूट लो और जल्दी से जल्दी इसके प्राणोंको ले लो, तथा

અનેક પ્રકારનો ઉપદ્રવ કરવા લાગે છે, આ વાતને સૂત્રકાર—"आहच्च गंथा वा फुसंति" આ વાકયથી પ્રગટ કરે છે. તે ગૃહસ્થ અપરિમિત દ્રવ્યના વ્યયથી અશનાદિક સામગ્રી મુનિના નિમિત્તે તૈયાર કરાવી જ્યારે એ મુનિની પાસે લઇને જાય છે અને મુનિએ સામગ્રી જ્યારે સ્વીકારતા નથી ત્યારે તે અસ્વીકાર કરનાર મુનિને અનેક પ્રકારથી દુઃખ આપવા લાગે છે. કયારેક કયારેક એ રાજપુરૂષ ગૃહસ્થ જાતે જ તે મુનિને મારવા પ્રેરાય છે અને બીજાઓને પણ ઉશ્કેરે છે અને કહે છે કે તમે બધા લોકો આ મુનિને લાકડીથી, હાથથી, પગના પ્રહારોથી ખુબ પીટો, કુહાડી આદિથી એના હાથ પગ વગેરે અવયવોને છેદી નાખો, અગ્નિમાં એને બાળી નાખો, એના શરીરના માંસના લોચા કાઢી લો, એનાં વસ્ત્ર અને અન્ય સામગ્રી આંચકી લો અને જલ્દી એના જીવનનો અંત લાવી દો, જે જે પ્રકારની યાત-

दनैः परामृशत=यातनां ददत । एवं स्पृष्टः=पूर्वोक्तहननादिबहुविधपरीषहाभिभूतः सन् धीरः=परीषहोपसर्गसहनशीलः तान्=पूर्वोक्तान् हननादीन् स्पर्शान्=दुःखविशेषान् अधिसहेत । स भिक्षुः परिषहोपसर्गैः स्पृष्टोऽपि न तदौद्देशिकादिदोषदुष्टमाहारं गृह्णीयात्, नापि ग्लानत्वमवलम्बेतेत्याशयः ।

अथवा स भिक्षुः अनीदृशम् 'अयं पुरुषः कः किं सम्यग्दृष्टिरुत मिथ्यादृष्टिः? अभिगृहीतनियमोऽनभिगृहीतनियमो वा?' इत्यादिरूपमीदृशं, तद्भिन्नमनीदृशं पुरुषं तर्कयित्वा=सम्भाषणार्हं समालोच्य आचारगोचरं=मुनेराचारविषयम् आचक्षीत=समुपदिशेत् । स्वसमयस्थापन–परसमयनिरसनेन च तमभिसान्त्वयेदित्यर्थः,

जिस २ प्रकारसे इसे अनेक यातनाएं दी जा सकें दो । इस प्रकार इन उपर्युक्त हननादिक अनेक प्रकारके परीषहोंसे व्याप्त होता हुआ भी वह धीर–परीषह और उपसर्गों के सहन करनेमें शक्तिशाली–मुनि इन हननादिक दुःखविशेषोंको समभाव से सहन करे। इन परीषह और उपसर्गों से घबड़ा कर वह मुनि औद्देशिकादि दोषोंसे दूषित उस आहारको न लेवे और न चित्तमें कोई ग्लानि ही लावे।

अथवा—वह मुनि "यह पुरुष कौन है? सम्यग्दृष्टि है? कि मिथ्यादृष्टि? अभिगृहीत नियमवाला है? या उससे रहित है?" इत्यादिरूप विचारका जो विषय हो उसका नाम ईदृश है, इससे भिन्नका नाम अनीदृश है। "यह अनीदृश है" ऐसा विचार कर–'यह संभाषणके योग्य है' ऐसा जानकर–उसे मुनिके आचारका उपदेश दे। स्वसिद्धान्त की स्थापना और परसिद्धान्तके निराकरणसे उस व्यक्तिको संतुष्ट करे

નાખો પહોંચાડી શકાય તેટલી પહોંચાડો, એને રીબાવી રીબાવીને મારી નાખો. આ પ્રકારે અનેક પરિષહ અને ઉપસર્ગોથી વ્યાપ્ત થતા પણ ધીર–પરીષહ અને ઉપસર્ગોને સહન કરવામાં શકિતશાલી મુનિ હનનાદિ દુ:ખોને સમભાવે સહન કરે પણ ઔદ્દેશિકાદિક દોષોથી દૂષિત અન્ન વસ્ત્રાદિકને ગ્રહણ ન કરે, તેમ ચિત્તમાં કોઇ પ્રકારની ગ્લાનિ પણ ન લાવે.

અથવા—તે મુનિ "એ પુરૂષ કોણ છે? સમ્યગ્દૃષ્ટિ છે? કે મિથ્યાદૃષ્ટિ? અભિગૃહીતનિયમવાળા છે? અથવા એથી રહિત છે?" ઇત્યાદિ વિચારવાનો વિષય જેનું નામ ઈદૃશ છે એનાથી ભિન્નનું નામ અનીદૃશ છે. "આ અનીદૃશ છે" એવું વિચારી–એ સંભાષણને યોગ્ય છે–એવું જાણી લઇ એને મુનિના આચારનો ઉપદેશ આપે. સ્વસિદ્ધાંતની સ્થાપના અને પરસિદ્ધાંતના નિરાકરણથી એ વ્યકિતને સંતોષ આપે. અમારે માટે આ ઔદ્દેશિક અશન વસનાદિક અસ્વી-

'ममेदमशनवसनादिकं न कल्प्य'-मिति मूलोत्तरगुणभेदभिन्नां सर्वां पिण्डैषणाविशुद्धिं कथयित्वा—"यत्स्वयमदुःखितं स्यान्न च परदुःखे निमित्तभूतमपि । केवलमुपग्रहकरं, धर्मकृते तद्भवेद्देयम् " ॥ १ ॥ इत्यादिवाक्यैस्तमनुनयेदिति भावः ।

स्वस्मिन् कथनसामर्थ्ये श्रोतरि चानुकूले कथनीयम्, अन्यथा कथनवैयर्थ्यादित्याह—अथ वा वाग्गुप्त्या वाचो गुप्तिः वाग्गुप्तिः=वाक्यसंयमनं मौनमित्यर्थः, तया वाग्गुप्त्या उपलक्षितः मौन एव आत्मगुप्तः=आत्मना तिसृभिर्मनोगुप्त्यादिभिर्गुप्तः=रक्षितः सन् गोचरस्य=आचारगोचरस्य पिण्डविशुद्ध्यादेः, आनुपूर्व्या=उद्ग-

---

हमारे लिये औद्देशिक अशन वसनादिक कल्पनिक नहीं है, इस प्रकार मूल गुण और उत्तरगुणोंके भेदसे भिन्न ऐसी सम्पूर्ण पिण्डैषणाकी शुद्धि का कथन कर "यत्स्वयमदुःखितं स्यान्न च परदुःखे निमित्तभूतमपि । केवलमुपग्रहकरं, धर्मकृते तद्भवेद्देयम् ॥" इत्यादि वाक्योंसे यह बतलावे कि जो आहारादिक वस्तु अदोष होगी वही दूसरोंकी उपकारक होगी, ऐसी उपकारक वस्तु ही मुनियों के लिये उनके धर्मकी वृद्धिमें सहायक होनेसे देनेयोग्य मानी गई है। यह सब मुनि आचारविषयक कथन तब ही करे कि जब अपनेमें इस आचारको समझानेकी पूर्ण शक्ति-योग्यता हो और सुननेवाला श्रोता अनुकूल हो। अन्यथा कहनेसे कोई लाभ नहीं होगा। इसी बातको "अथवा वाग्गुप्त्या गोचरस्यानुपूर्व्या सम्यक् प्रत्युपेक्षेत आत्मगुप्तः" इन पदोंसे प्रस्फुट करते हैं-अथवा वचनगुप्ति -वचनसंयम-मौन ही आत्माका गुण है। इस प्रकार मनोगुप्ति आदि तीन गुप्तियोंसे गुप्त होता हुआ वह साधु पिण्डविशुद्धि आदिके उद्गम

કાર્ય છે. આ પ્રકારે મૂલગુણ અને ઉત્તરગુણોના ભેદથી ભિન્ન એવી પિંડૈષણાની શુદ્ધિનું કથન કરી તે ગૃહસ્થના મનમાં દૃઢતા જમાવે, તેવી વાણીથી તેને સમજાવે "यत्स्वयमदुःखितं स्यान्न च परदुःखे निमित्तभूतमपि । केवल मुपग्रहकरं, धर्मकृते तद् भवेद्देयम्" ઇત્યાદિ વાકયોથી એ બતાવે કે આહારાદિક વસ્તુ અદોષ હોય તે જ બીજાને ઉપકારક બને. આવી ઉપકારક વસ્તુ જ મુનિયો માટે એમના ધર્મની વૃદ્ધિમાં સહાયક હોવાથી દેવા યોગ્ય માનવામાં આવેલ છે. આ રીતે મુનિ આચારવિષયક કથન ત્યારે જ કરે કે જ્યારે એનામાં આચારને સમજાવવાની પૂર્ણ શકિત-યોગ્યતા હોય અને સાંભળનાર પણ યોગ્ય-પાત્ર હોય. એમ ન હોય તો કહેવાથી કોઇ લાભ નહીં બને. આ વાતને "अथवा वाग्गुप्त्या" ઇત્યાદિ. આ પદોથી પ્રસ્ફુટ (સ્પષ્ટ) કરે છે. અથવા વચન ગુપ્તિ-વચનસંયમ-મૌન જ આત્માનો ગુણ છે. આ રીતે મનોગુપ્તિ આદિ

मोत्पादनादिप्रश्नप्रतिवचनादिपूर्वकं सम्यक् प्रत्युपेक्षेत=तद्गतदोषान् सम्यगवधारयेत् । भिक्षुः कदाचिदप्यौद्देशिकाहारादिकं न गृह्णीयात्, तदाहारग्रहणस्याकल्प्यत्वं प्रतिपादयेत्, सम्भाषणेनाप्यप्रभाविताशङ्कायां मौनमेवावलम्बेतेति वर्तुलार्थः । सर्वमेवैतन्न मया स्वबुद्ध्योच्यत इत्याह–'बुद्धे'–रित्यादि, एतत्=सर्वं पूर्वोक्तमकल्प्याहारादिनिषेधनं वक्ष्यमाणं वा बुद्धैः कल्प्याकल्प्यविधानाभिज्ञैः सर्वज्ञैः प्रवेदितं=द्वादशपरिषदि प्ररूपितम् ॥ सू० ३ ॥

वक्ष्यमाणमेव दर्शयति–' से समणुन्ने ' इत्यादि ।

उत्पादनादि गत दोषोंका प्रश्नप्रतिवचनादिपूर्वक अच्छी तरहसे निश्चय करे। तात्पर्य यह कि–भिक्षु कभी भी औद्देशिक आदि आहारको न लेवे । दूसरे जन यदि बलात्कारसे उसे देनेकी हठ करें–आपत्ति विपत्तियां खड़ी करें –तो उनसे बिलकुल भी न घबड़ावे । मुनिको कैसा आहार कल्पनिक है यह उन्हें समझावे। यदि समझाने पर भी वे न माने तो सर्वोत्तम एक यही उपाय है कि वह मौन रखें ।

यह सब मैंने अपनी बुद्धिसे कल्पित कर नहीं कहा है किन्तु यह पूर्वोक्त कल्प अकल्प आहारादिविषयक कथन तथा आगे और भी जो कहना है वह सब कल्प और अकल्पके विधानको जाननेवाले सर्वज्ञ भगवान्ने अपनी १२ प्रकारकी सभामें कहा है ॥ सू० ३ ॥

वक्ष्यमाण विषयको ही सूत्रकार सूत्रद्वारा प्रदर्शित करते हैं– "से समणुन्ने" इत्यादि।

ત્રણ ગુપ્તિઓથી ગુપ્ત રહેતા એ સાધુ પિણ્ડવિશુદ્ધિ આદિના ઉદ્ગમ ઉત્પાદનાદિ ગત દોષોનો પ્રશ્નપ્રતિવચનાદિપૂર્વક સારી રીતથી નિશ્ચય કરે. તાત્પર્ય એ છે કે—ભિક્ષુ કદિ પણ ઔદ્દેશિક આદિ આહાર ન લે બીજો માણુસ કદી બળાત્કારથી એને આપવાની હઠ પકડે–આપત્તિ વિપત્તિઓ ઉભી કરે–ત્યારે એનાથી જરા પણ ન ગભરાય. મુનિ માટે કેવો આહાર કલ્પનિક છે તે એને સમજાવે અને સમજાવવા છતાં પણ તે ન માને તો સારામાં સારો રસ્તો મૌન ધારણ કરવાનો છે.

આ બધું મેં મારી બુદ્ધિથી કલ્પિત કરીને કહ્યું નથી પરંતુ આ પૂર્વોકત કલ્પ અકલ્પ આહારાદિવિષયક કથન, તથા આગળ કાંઇ કહેવાનું છે એ બધું કલ્પ અને અકલ્પના વિધાનને જાણવા વાળા સર્વજ્ઞ ભગવાને પોતાની ૧૨ પ્રકારની સભામાં કહેલ છે. (સૂ૦ ૩)

વક્ષ્યમાણ વિષયને જ સૂત્રકાર સૂત્રદ્વારા પ્રદર્શિત કરે છે—" से समणुन्ने " ઈત્યાદિ.

मूलम्-से समणुन्ने असमणुन्नस्स असणं वा ४, वत्थं वा ४ नो पाइज्जा नो निमंतिज्जा नो कुज्जा वेयावडियं परं आढायमाणे त्तिबेमि ॥ सू० ४ ॥

छाया—स समनोज्ञोऽसमनोज्ञायाशनं वा ४ वस्त्रं वा ४ नो प्रदद्यान्नो निमन्त्रयेन्नो कुर्याद्वैयावृत्यं परमाद्रियमाण इति ब्रवीमि ॥ सू० ४ ॥

टीका-' स समनोज्ञ ' इत्यादि, स समनोज्ञः=पूर्वोक्तोऽनगारः परम्=अत्यर्थम् आद्रियमाणः तैः कृतादरोऽपि गृहपतिसकाशात्केवलमकल्पनीयमेव न गृह्णीयात् इत्येव न प्रवेदितं, किन्तु असमनोज्ञाय=शाक्यप्रभृतये तत्पूर्वोक्तमाहारादिकं न प्रदद्यात् न निमन्त्रयेत् न तेषां वैयावृत्यं कुर्यात् । ' इति ' अधिकारसमाप्तौ त्वां ब्रवीमि=कथयामि ॥ सू० ४ ॥

कीदृशः कस्मै दद्यादित्याह-' धम्म० ' इत्यादि ।

वह अनगार उन असमनोज्ञ—शाक्यादिकों—द्वारा अत्यंत आदृत होता हुआ भी गृहस्थोंके यहांसे प्राप्त—कल्पनिक आहारादिक अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य एवं वस्त्र, पात्र, कम्बल और पादप्रोञ्छनको उन शाक्यादिकों के लिये न देवे न उन्हें देनेके लिये आमंत्रित करें और न उनकी वैयावृत्ति ही करे। यहां 'इति' शब्द अधिकारकी समाप्तिमें आया है, इस प्रकार अधिकारकी समाप्तिमें सुधर्मास्वामी श्री जम्बूस्वामीसे कहते हैं—

साधु गृहस्थोंसे सिर्फ अकल्पनीय आहारादिकका ग्रहण न करे इतना ही नहीं किन्तु जो कल्पनीय आहारादिक ग्रहण किये गये हैं, वे अन्य:शाक्यादिकों को प्रदान भी न करे ॥सू० ४॥

'कैसा होकर किसके लिये उन्हें दे' इसे प्रकट करते हैं-'धम्म०'इत्यादि।

એ અનગાર તે અસમનોજ્ઞ—શાકયાદિકો દ્વારા અત્યંત આદૃત થયેલ પણ ગૃહસ્થોને ત્યાંથી પ્રાપ્ત કલ્પનિક આહારાદિક અશન, પાન, ખાદ્ય અને સ્વાદ્ય તથા વસ્ત્ર, પાત્ર, કમ્બલ અને પાદપ્રોચ્છન, એ શાકયાદિકોને ન આપે, અથવા તો એમને આપવા માટે ન આમંત્રણ આપે, અથવા તો ન તેની વૈયાવૃત્ય કરે. અહિં 'इति' શબ્દ અધિકારની સમાપ્તિમાં આવે છે આ પ્રકારે અધિકારની સમાપ્તિમાં શ્રી સુધર્માસ્વામી શ્રી જમ્બૂસ્વામીને કહે છે—

સાધુ ગૃહસ્થો પાસેથી ફક્ત અકલ્પનીય આહારાદિક સ્વીકાર ન કરે. આટલુંજ નહિ પરન્તુ કલ્પનીય આહારાદિક સ્વીકારેલ હોય તે અન્ય શાકયાદિકોને આપે પણ નહિ (સૂ૦ ૪)

" કેવા થઈ કોને માટે આપે " આને પ્રગટ કરે છે–'धम्ममायाणह' ઈત્યાદિ.

मूलम्–धम्ममायाणह पवेइयं माहणेण मइमया समणुन्ने समणुन्नस्स असणं वा ४ वत्थं वा ४ पाएज्जा निमंतेज्जा कुज्जा वेयावडियं परं आढायमाणे त्तिबेमि ॥ सू० ५ ॥

छाया–धर्ममाजानीत प्रवेदितं माहनेन मतिमता समनोज्ञः समनोज्ञायाशनं वा ४ वस्त्रं वा ४ प्रदद्यात् निमन्त्रयेत् कुर्याद्वैयावृत्त्यं परमाद्रियमाण इति ब्रवीमि ॥५॥

टीका––'धर्म'–मित्यादि, परम्=उत्कृष्टम् आद्रियमाणः तस्यादरं कुर्वन् समनोज्ञैराद्दतो वा स समनोज्ञः=अनगारः उद्यतविहारी समनोज्ञाय=परस्मै सम्यग्दर्शनादिमते संविग्नाय साम्भोगिकायैकसामाचारीप्रविष्टाय मुनये अशनं वा चतुर्विधमाहारं वस्त्रादिकं प्रदद्यात्, निमन्त्रयेत्, वैयावृत्यं=सुश्रूषां वा कुर्यात्। गृहस्थेभ्यः केवलमकल्पनीयाऽऽहारादिग्रहणस्यैव प्रतिषेधः, असमनोज्ञेभ्यस्तु न ग्राह्यं नापि तस्मै देयमिति भावः। इत्येवं माहनेन मतिमता=भगवता महावीरेण प्रवेदितं= प्ररूपितं धर्मं=पूर्वोक्तमशनादिग्रहणविधिनिषेधप्रतिपादकं साध्वाचाररूपम् 'आजा-

समनोज्ञोंका आदर करता हुआ, अथवा समनोज्ञोंसे आद्दत होता हुआ वह उद्यतविहारी साधु सम्यग्दर्शनादिमें संविग्न–एक सामाचारीके पालन करनेमें प्रविष्ट–अन्य मुनिजनोंके लिये चार प्रकारके अशन और चार प्रकारके वस्त्रादिक देवे, उन्हें देनेके लिये आमंत्रित करे, और उनकी वैयावृत्त्य–शुश्रूषा भी करे। गृहस्थोंके पाससे केवल अकल्पनीय आहारादिक एवं वस्त्रादिक ले लेनेका ही निषेध है–कल्पनीयका नहीं, परंतु असमनोज्ञोंसे तो उन्हें न वह लेवे और न उन्हें वह देवे। इस प्रकार मतिमान्–केवलज्ञानी श्री महावीर भगवान् द्वारा प्ररूपित पूर्वोक्त अशनादिके ग्रहणकी विधि और निषेधका प्रतिपादक साधुके आचाररूप

સમનોજ્ઞોનો આદર કરતા અથવા સમનોજ્ઞોથી આદૃત થતા એ ઉદ્યતવિહારી સાધુ સમ્યગ્દર્શનાદિમાં સંવિગ્ન–એક સામાચારીનું પાલન કરવામાં પ્રવિષ્ટ–અન્ય મુનિજનો માટે ચાર પ્રકારના અશન અને ચાર પ્રકારનાં વસ્ત્રાદિક દે, એને આપવા માટે આમંત્રણ આપે અને એમની વૈયાવૃત્ય–શુશ્રૂષા પણ કરે. ગૃહસ્થોની પાસેથી કેવળ અકલ્પનીય આહારાદિક અને વસ્ત્રાદિકને લેવાનો નિષેધ છે. કલ્પનીયનો નહીં, પરંતુ અસમનોજ્ઞો પાસેથી ન તો લે કે ન એને આપે. આ પ્રકારે મતિમાન્–કેવલજ્ઞાની મહાવીર ભગવાન્ દ્વારા પ્રરૂપિત પૂર્વોકત અશનાદિના ગ્રહણની વિધિ અને નિષેધના પ્રતિપાદક સાધુના આચારરૂપ ધર્મને હે

नीत ' आ=सर्वतो जानीत=बुद्धयध्वं यूयमिति शेषः। 'इति ब्रवीमि '-त्यस्यार्थ-स्तूक्त एवेति ॥ सू० ५ ॥

॥ अष्टमाध्ययनस्य द्वितीय उद्देशः समाप्तः ॥ ८-२ ॥



धर्मको हे शिष्यो ! तुम सब सर्व प्रकारसे समझो। इति ब्रवीमि इन पदोंका अर्थ पहिले उद्देशोंमें कहा जा चुका है ॥ सू०५ ॥

॥ आठवां अध्ययनका द्वितीय उद्देश समाप्त ॥ ८-२ ॥



શિષ્યો ! તમે સઘળા સારી રીતે સમજો. " इति ब्रवीमि " આ પદોનો અર્થ પહેલાના ઉદ્દેશોમાં કહેવાઈ ગયેલ છે. (સૂ૦ ૫)

આઠમા અધ્યયનનો બીજો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૮-૨ ॥

। अथाष्टमाध्ययनस्य तृतीय उद्देशः ।

अभिहितो द्वितीयोद्देशः, साम्प्रतं तृतीय आरभ्यते, अस्य च पूर्वोद्देशेन सहायं सम्बन्धः–अनन्तरोद्देशे चाकल्पनीयाशनादिग्रहणनिषेध उक्तः, अत्र च गृहपतिः कदाचिच्छीतादिना प्राप्तप्रकम्पं भिक्षाद्यर्थमागतं भिक्षुं पृच्छति–'कामचेष्टयैव भवच्छरीरं कम्पते ?' इति तस्य गृहपतेरसदाशङ्कां मुनिर्दूरीकुर्यात्, 'शीतादिना मम गात्रं कम्पते नान्यथे'–ति प्रतिपादयिष्यते, तत्र मध्यमावस्थायां शीतप्रवेपितगात्रप्रसङ्गात्तस्य वयसः संयमाचरणयोग्यतां प्रथमसूत्रेणोपदर्शयति— 'मज्झिमेण' इत्यादि ।

आठवें अध्ययनका तीसरा उद्देश ।

द्वितीय उद्देश कहा । अब तृतीय उद्देश कहा जाता है, इस उद्देशका पूर्व उद्देशके साथ यह सम्बन्ध है–वहां साधुके लिये अकल्पनीय अशनादि ग्रहण करनेका निषेध किया है, इस उद्देशमें यह बतलाया जायगा कि अपने घर आहारादि ग्रहण करनेके निमित्त आये हुए मुनिको कोई भद्र गृहस्थ कदाचित् शीतादि कारणवश प्रकम्पित होते देख पूछे कि "कामकी चेष्टासे ही आपका शरीर काँप रहा है क्या ?" तब साधुका कर्तव्य है कि वह इस प्रकारकी गृहस्थकी असत्–खोटी आशंकाका निवारण करे और कहे कि "शीतादिक निमित्तसे ही मेरा शरीर कांप रहा है अन्य कारणसे नहीं।" उसमें सर्व प्रथम मध्यम अवस्थामें शीत से कंपित शरीरके प्रसंगसे उस अवस्था की संयमके आचरणकी योग्यता को सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं–'मज्झिमेण' इत्यादि ।

આઠમા અધ્યયનનો ત્રીજો ઉદ્દેશ

બીજો ઉદ્દેશ કહેવાઈ ગયેલ છે, હવે ત્રીજો ઉદ્દેશ કહેવામાં આવે છે. આ ઉદ્દેશનો પૂર્વ ઉદ્દેશ સાથે એવો સંબંધ છે–સાધુને અકલ્પનીય અશનાદિ ગ્રહણ કરવાનો એમાં નિષેધ કરવામાં આવેલ છે. આ ઉદ્દેશમાં એ બતાવવામાં આવશે કે પોતાને ઘેર આહારાદિ ગ્રહણ કરવા નિમિત્તે આવેલા મુનિને કોઈ ભદ્ર ગૃહસ્થ ઠંડીના કારણે થરથરતા જોઈ પૂછે કે "કામની ચેષ્ટાથી આ શરીર કંપી રહ્યું છે કે શું ?" ત્યારે સાધુનું એ કર્તવ્ય છે કે તેણે પેલા ગૃહસ્થની ખોટી શંકાનું નિવારણ કરવું અને કહેવું કે–'ઠંડીના કારણે મારૂં શરીર કંપી રહ્યું છે બીજું કોઈ કારણ નથી" આમાં સર્વ પ્રથમ મધ્યમ અવસ્થામાં ઠંડીથી કંપતા શરીરના પ્રસંગથી એ અવસ્થામાં સંયમના આચરણની યોગ્યતાને સૂત્રકાર પ્રદર્શિત કરે છે—" मज्झिमेण " ઈત્યાદિ.

मूलम्—मज्झिमेण वयसावि एगे संबुज्झमाणा समुट्ठिया सुच्चा मेहावी वयणं पंडियाणं निसामिया समियाए धम्मे आरिएहिं पवेइए, ते अणवकंखमाणा अणइवाएमाणा अपरिग्गहेमाणा नो परिग्गहावंति सव्वावंति च णं लोगंसि विहाय दंडं पाणेहिं पावं कम्मं अकुव्वमाणे एसमहं अगंथे वियाहिए, ओए जुइमस्स खेयन्ने उववायं चवणं च नच्चा ॥ सू० १ ॥

छाया—मध्यमेन वयसाऽप्येके संबुद्ध्यमानाः समुत्थिताः, श्रुत्वा मेधावी वचनं पण्डितानां निशम्य समतया धर्म आर्यैः प्रवेदितः, तेऽनभिकाङ्क्षन्तः अनतिपातयन्तोऽपरिगृह्णन्तः नो परिग्रहवन्तः सर्वस्मिन्नपि च खलु लोके विहाय दण्डं प्राणिषु पापं कर्माऽकुर्वाणः एष महान् अग्रन्थो व्याख्यातः, ओजो द्युतिमतः खेदज्ञः उपपातं च्यवनं च ज्ञात्वा ॥ सू० १ ॥

टीका–'मध्यमेने'–त्यादि, मध्यमेन वयसा=यौवन–वार्द्धक्यातिरिक्तेन तपः संयमाचरणयोग्येनावस्थाविशेषेण संबुद्ध्यमानाः=संयमाचरणाय बोधं प्राप्ता एके=केचन समुत्थिताः=गृहीतप्रव्रज्याः मुनयो भवन्ति । अत्र प्रथम–तृतीयावस्थाद्वयं विहाय मध्यमग्रहणात्प्रायशस्तस्मिन् वयसि निवृत्तकामाभिलाषा निर्विघ्नं रत्नत्रयाराधने शक्तिसम्पन्ना भवन्तीति द्योतितम् ।

यौवन एवं वृद्ध अवस्थासे भिन्न अवस्थाविशेषका नाम मध्यम अवस्थाहै । यह अवस्था ही प्रधानतया तप और संयमके योग्य मानी गई है। इस अवस्थासे संयमके आचरणके लिये बोधको प्राप्त हुआ कोई २ मनुष्य दीक्षा लेकर मुनि हो जाते हैं। सूत्रमें प्रथम और तृतीय, इन दोनों अवस्थाओंको छोड़कर जो मध्यम अवस्थाका ग्रहण किया है उससे यह बात मालूम होती है कि प्रायः कर इस अवस्थामें कामकी अभिलाषासे निवृत्त हो कर प्राणी निर्विघ्न रूपसे रत्नत्रयकी आराधना करनेमें शक्तिशाली होते हैं ।

યૌવન અને વૃદ્ધ અવસ્થાથી વચ્ચેની અવસ્થાનું નામ મધ્યમ અવસ્થા છે, એ અવસ્થા જ ખાસ કરી તપ અને સંયમ માટે યોગ્ય માનવામાં આવેલ છે; એ અવસ્થામાં સંયમના આચરણ માટે બોધને પ્રાપ્ત થયેલ કોઈ કોઈ મનુષ્ય દીક્ષા લઈ મુનિ બને છે. સૂત્રમાં પ્રથમ અને ત્રીજી, આ બન્ને અવસ્થાઓને છોડી જે મધ્યમ અવસ્થા નક્કી કરવામાં આવી છે આથી એ વાત માલુમ પડે છે કે ખાસ કરી એ અવસ્થામાં કામની અભિલાષાથી નિવૃત્ત બની પ્રાણી નિર્વિઘ્ન રૂપથી રત્નત્રયની આરાધના કરવામાં શક્તિશાળી હોય છે.

अत्रायं विशेषः-इह सम्बुद्धयमानाः-स्वयंबुद्धाः प्रत्येकबुद्धाः बुद्धबोधिताश्चेति त्रिविधाः सन्ति, तेषु बुद्धबोधितानामेवात्राधिकारोऽस्ति, तमेवावलम्ब्य दर्शयति-'श्रुत्वे'-ति-मेधावी=रत्नत्रयाराधनफलाभिज्ञः पण्डितानां=तीर्थङ्कर-गणधरादीनां वचनम् इष्टानिष्टप्राप्तिपरिहारप्रतिपादकमागमं श्रुत्वा=समाकर्ण्य ततो निशम्य=हृदयेऽवधार्य च समतामाश्रयेत्। यतो धर्मः=श्रुत-चारित्रलक्षणः समतया=सर्वप्राणिषु समभावेन आर्यैः=तीर्थङ्कर-गणधरैः प्रवेदितः=द्वादशविधपरिषदि प्ररूपितः। तेषामेव कर्तव्यं निर्दिशति-'ते' इत्यादिना, ते=सम्बुध्यमानाः समुद्यताः सन्तः अनवकाङ्क्षन्तः=शब्दादिविषयमनिच्छन्तः अनतिपातयन्तः=प्राणिप्राणव्यपरोपणमकु-

यहां इतना विशेष है-संबुध्यमान जीव ती प्रकारके हैं-१ स्वयम्बुद्ध, २ प्रत्येकबुद्ध, और ३ बुद्धबोधित। इनमें जो बुद्धबोधित हैं उनका ही यहां अधिकार है, अतः उसी अधिकारको ले कर कहते हैं "श्रुत्वा" इत्यादि, रत्नत्रयकी आराधनाजन्य फलका ज्ञाता वह मेधावी-तीर्थङ्कर और गणधरादिकोंके इष्ट और अनिष्टकी प्राप्ति और परिहारके प्रतिपादक आगमस्वरूप वचन सुन कर, और उन्हें हृदयमें धारण कर समस्त जीवोंमें समताभाव धारण करे। क्यों कि श्रुतचारित्रलक्षणरूप ही धर्म है और यह समस्त जीवोंमें समभावरूपसे रहने से ही प्राप्त होता है, ऐसा तीर्थङ्कर और गणधरादि देवोंने बारह प्रकारकी सभामें कहा है। बुद्धबोधितों के कर्तव्योंको दिखलानेके निमित्त सूत्रकार 'ते अणवकंखमाणा' इस सूत्रांशका कथन करते हैं-ये बुद्धबोधित जीव प्रव्रज्या धारण करनेके लिये उद्यत होते हुए शब्दादिक विषयोंकी

આમાં એટલું વિશેષ છે-સંબુધ્યમાન જીવ ત્રણ પ્રકારના છે. ૧ સ્વયંબુદ્ધ, ૨ પ્રત્યેકબુદ્ધ, ૩ બુદ્ધબોધિત. આમાં જે બુદ્ધબોધિત છે એનોજ અહિં અધિકાર છે. આથી એ અધિકારને લઈ સૂત્રકાર કહે છે-" श्रुत्वा " ઈત્યાદિ. રત્નત્રયની આરાધનાજન્ય ફળના જાણનાર એ મેધાવી-તીર્થંકર-અને ગણધરાદિકોનાં ઈષ્ટ અને અનિષ્ટની પ્રાપ્તિ અને પરિહારના પ્રતિપાદક આગમસ્વરૂપ વચન સાંભળી અને તેને હૃદયમાં ધારણ કરી સમસ્ત જીવોમાં સમતાભાવ ધારણ કરે. કેમ કે શ્રુતચારિત્રલક્ષણરૂપ જ ધર્મ છે, અને તે સમસ્ત જીવોમાં સમભાવરૂપથી રહેવાથી પ્રાપ્ત થાય છે. એવું તીર્થંકર અને ગણધર આદિ દેવોએ બાર પ્રકારની સભામાં કહ્યું છે. બુદ્ધબોધિતોનાં કર્તવ્ય બતાવવા માટે સૂત્રકાર " ते अणवकंखमाणा " આ સૂત્રાંશથી કથન કરે છે-આ બુદ્ધબોધિત જીવ પ્રવ્રજ્યા ધારણ કરવા માટે ઉદ્યમી બનીને શબ્દાદિક વિષયોની ચાહનાથી રહિત બનીને

र्वाणाः, अपरिगृह्णन्तः=परिग्रहमकुर्वाणाः, अत्र प्रथमचरमयोर्ग्रहणे मध्यवर्तिनां त्रयाणां मृषावादादीनामपि ग्रहणं, तेन 'मृषावादमकुर्वन्त' इत्यादिकं वाच्यम्, सर्वस्मिन्नपि लोके, अत्र 'चकारः' समुच्चायकः स च 'नो परिग्रहवन्त' इत्यनेन सम्बध्यते, 'खलु' वाक्यालङ्कारे 'नो परिग्रहवन्तः=निष्परिग्रहाश्च भवन्ति, ते कुत्रापि परिग्रहदोषैर्न लिप्यन्ते इत्यर्थः। अपि च-स एव प्राणेषु=प्राणिषु दण्डं=परितापकरं मनोवाक्कायव्यापारं विहाय=त्यक्त्वा पापं=पापजनकं कर्म प्राणातिपातादिकमष्टादशविधम् अकुर्वाणः=अननुतिष्ठन् एष महान्=लघुकर्मा 'अग्रन्थः' न विद्यते ग्रन्थो बाह्यो धन-धान्यादिराभ्यन्तरः कषायादिश्च यस्य सोऽग्रन्थः=सर्वतः परिग्रहवर्जितः व्याख्यातः=तीर्थकृद्भिः प्ररूपितः।

किं च स ओजः=एको रागद्वेषवर्जित इत्यर्थः, द्युतिमतः=मोक्षस्य तत्साधनस्य

चाहनासे रहित होकर प्राणियोंके प्राणोंके व्यपरोपण कार्यसे सर्वथा दूर रहते हैं और परिग्रहसे अलग होकर समस्त लोकमें कहीं भी परिग्रहके दोषसे लिप्त नहीं बनते हैं। यहां प्रथम और अंतिम पापसे उनकी निवृत्ति प्रकट करनेसे मध्यवर्ती मृषावाद आदि पापोंसे भी वे रहित होते हैं। यह बात भी स्वयं समझ लेनी चाहिये। वह बुद्धबोधित साधु ही प्राणियोंके विषयमें परिताप उपजानेवाले मन, वचन, कायके व्यापारका परित्याग कर पापजनक प्राणातिपातादिकरूप पापकर्मको नहीं करता हुआ लघुकर्मा बनता है, एवं धन धान्यादिक बाह्य परिग्रह से और कषायादिरूप आभ्यन्तर परिग्रहसे रहित होनेसे निष्परिग्रही -परिग्रहसे रहित-तीर्थङ्करोंद्वारा कहा गया है।

तथा—यह बुद्धबोधित मुनि 'ओजो' अकेला अर्थात् रागद्वेषरहित

પ્રાણીઓના પ્રાણોના નાશના કારણથી સદા દૂર રહે છે, અને પરિગ્રહથી અલગ બની સમસ્ત લોકમાં કોઈ પણ સ્થળે પરિગ્રહના દોષથી લિપ્ત બનતા નથી. અહિં પ્રથમ અને અંતિમ પાપથી તેની નિવૃત્તિ પ્રગટ કરવાથી મધ્યવર્તી મૃષાવાદ આદિ પાપોથી પણ તે રહિત બને છે. આ વાત પણ પોતે સમજી લેવી જોઈએ. તે બુદ્ધબોધિત સાધુ જ પ્રાણીઓના વિષે પરિતાપ ઉપજાવવાવાળા મન, વચન અને કાયાના વ્યાપારનો પરિત્યાગ કરી પાપજનક પ્રાણાતિપાતાદિકરૂપ પાપ કર્મો નહિ કરતાં લઘુકર્મી બને છે, અને ધનધાન્યાદિક બાહ્ય પરિગ્રહથી અને કષાયાદિરૂપ આભ્યંતર પરિગ્રહથી રહિત હોવાથી નિષ્પરિગ્રહી-પરિગ્રહથી રહિત તીર્થંકરોદ્વારા કહેવામાં આવેલ છે.

તથા—આ બુદ્ધબોધિત મુનિ 'ओए'-એકલો-રાગદ્વેષરહિત હોઈ 'द्युतिमतः'

वा खेदज्ञः, खेदशब्दोऽत्र स्वरूपार्थप्रतिबोधकस्तेन मोक्ष-संयमयोः स्वरूपपरिज्ञातेत्यर्थः । देवलोकेऽपि उपपातं च्यवनं चकारान्नर-नरक-तिर्यग्जन्म-मरणादिदुःखं ज्ञात्वा=बुद्ध्वा पापकर्म नैव कुर्यात् ॥ सू० १ ॥

हो 'द्युतिमतः'-मोक्ष और उसके साधन-संयम-के 'खेदज्ञ' स्वरूपका परिज्ञाता होता है, संसारके साधनोंका नहीं, कारण कि यह इस बातको अच्छी तरह जान चुका है कि संसारमें इस जीवको कभी सच्ची सुखशांति नहीं मिल सकती है, देवगतिमें भी जीवको जन्म और मरण करना पड़ता है, मनुष्यगति, नरकगति और तिर्यञ्चगतिमें भी यही परिस्थिति है । यहां पर भी जीव जन्म और मरणके दुःखोंसे रहित नहीं है, इसलिये इन समस्त सांसारिक दुःखोंसे छुड़ानेवाला यदि कोई है तो, वह इनका अभावस्वरूप एक मोक्ष है, और मोक्षकी प्राप्तिका कारण एक संयम है अतः यह मोक्ष और संयमके स्वरूपका ज्ञाता बनकर उसी ओर अपनी प्रवृत्तिको लगाता रहता है और पापकर्मोंसे सर्वथा जुदा रहता है, इसी आशयको सूचित करनेके लिये "ओजो द्युतिमतः खेदज्ञः उपपातं च्यवनं च ज्ञात्वा" यह कहा है ।

खेदज्ञ—खेद शब्दका अर्थ स्वरूप है, उसके ज्ञाताका नाम खेदज्ञ है । मध्यम अवस्थामें संयमके आचरणके लिये बोधको प्राप्त हुए कोई २ जीव दीक्षा ले कर मुनि हो जाते हैं । तीर्थङ्करादिप्रतिपादित वचन-

—મોક્ષ અથવા તેના સાધન-સંયમ-ના ' खेदज्ञ ' સ્વરૂપના જાણકાર હોય છે—સંસારના સાધનોના નહિ, કારણ કે એ આ વાતને સારી રીતે જાણી ચૂકેલ છે કે સંસારમાં આ જીવને કદી પણ સાચી સુખ શાંતિ મળી શકતી નથી. દેવગતિમાં પણ જીવને જન્મ અને મરણ કરવાં પડે છે. મનુષ્યગતિ, નરકગતિ, અને તિર્યંચગતિમાં પણ આવી જ પરિસ્થિતિ છે—ત્યાં પણ જીવ જન્મ અને મરણના દુઃખોથી રહિત નથી, માટે આવા સમસ્ત સાંસારિક દુઃખોથી છોડાવવાવાળા જો કોઈ હોય તો તે તેના અભાવસ્વરૂપ એક મોક્ષ જ છે, અને મોક્ષની પ્રાપ્તિ સંયમથી જ મેળવી શકાય છે. મોક્ષની પ્રાપ્તિનું કારણ એક સંયમ છે માટે મોક્ષ અને સંયમના સ્વરૂપના જ્ઞાતા બની તેના તરફ પોતાની પ્રવૃત્તિને લગાડે છે અને પાપ કર્મોથી સર્વથા જુદા રહે છે. આ આશયને સમજાવવા માટે " ओजो द्युतिमतः खेदज्ञः उपपातं च्यवनं च ज्ञात्वा " આ કહ્યું છે. खेदज्ञ—ખેદ શબ્દનો અર્થ આ સ્થળે સ્વરૂપ છે, તેના જ્ઞાતાનું નામ ખેદજ્ઞ છે.

મધ્યમ અવસ્થામાં સંયમના આચરણ માટે પ્રાપ્ત થયેલ કોઈ કોઈ જીવ દીક્ષા લઈને મુનિ બની જાય છે. તીર્થંકરાદિપ્રતિપાદિત વચનરૂપ આગમનું

मध्यमे वयसि प्रव्रजिता अप्यन्ये परीषहेन्द्रियैर्ग्लायन्तीत्याह–'आहारो०' इत्यादि।

मूलम्–आहारोवचया देहा परीसहपभंगुरा, पासह एगे सव्विंदिएहिं परिगिलायमाणेहिं ओए दयं दयइ ॥सू० २ ॥

छाया—आहारोपचया देहाः परीषहप्रभङ्गुराः पश्यत एके सर्वेन्द्रियैः परिग्लायमानैः ओजो दयां दयते ॥ सू० २ ॥

टीका–'आहारोपचये'–इत्यादि, 'आहारोपचयाः' आहारेण=अशनादिना उपचयो वृद्धिर्येषां ते आहारोपचयाः 'परीषहप्रभङ्गुराः' परीषहेण=क्षुधारूपेण

रूप आगमके श्रवण एवं मनन से समस्त जीवों में समता धारण करने से ही श्रुतचारित्ररूप धर्मकी प्राप्ति होती है, ऐसे दृढ़ विश्वास से शब्दादिक विषयों की ओर नहीं जा कर अठारह प्रकारके पापस्थानकोंका परित्याग कर अपने गृहीत चारित्रकी उज्ज्वलता करने निमित्त समस्त परिग्रहसे रहित बन राग और द्वेषसे रहित होनेके लिये मोक्ष और उसके साधनों को जानने की ओर ही अग्रेसर होते हैं॥सू०१॥

मध्यम वयमें दीक्षित होने पर भी कोई एक मुनि परीषह और इन्द्रियोंसे दुःखित होते हैं, इस विषयको बतानेके लिये सूत्रकार कहते हैं—'आहारोवचया' इत्यादि।

प्राणियोंके शरीर, "आहारोपचया" आहार–अशन आदिसे उपचय –वृद्धि को प्राप्त होनेवाले तथा "परीषह प्रभंगुराः" क्षुधारूप परीषहसे विनशनशील होते हैं।

तात्पर्य यह कि–प्राणियोंका औदारिक शरीर आहारसे वृद्धिंगत और

શ્રવણ તેમજ મનનથી સમસ્ત જીવોમાં સમતા ધારણ કરવાથી જ શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મની પ્રાપ્તિ થાય છે, એવા દૃઢ વિશ્વાસથી તે શબ્દાદિક વિષયોની તરફ નહીં જતાં અઢાર પ્રકારના પાપસ્થાનોનો પરિત્યાગ કરી પોતાના ગૃહીત ચારિત્રને ઉજ્જવળ કરવા નિમિત્ત સમસ્ત પરિગ્રહથી રહિત બની રાગ અને દ્વેષથી પર બનવાથી મોક્ષ અને તેનાં સાધનો જાણવાની તરફ જ અગ્રેસર થાય છે. (સૂ૦૧)

મધ્યમ વયમાં દીક્ષિત બનવાથી પણ કોઈ એક મુનિ પરિષહ અને ઇન્દ્રિયોથી દુઃખિત થાય છે, આ વિષયને બતાવવા માટે સૂત્રકાર કહે છે—"आहारोवचया" ઇત્યાદિ.

પ્રાણીઓના શરીર, "आहारोपचयाः" આહાર–અશન આદિથી ઉપચય–વૃદ્ધિને પ્રાપ્ત થનારા તથા–" परिषहप्रभंगुराः " ક્ષુધારૂપ પરિષહથી મ્લાન હોય છે.

તાત્પર્ય એ છે કે—પ્રાણીઓનું ઔદારિક શરીર આહારથી વૃદ્ધિંગત અને

प्रभङ्गुराः=विनशनशीलाः प्राणिनां देहाः=शरीराणि भवन्तीति पश्यत=यूयं प्रेक्षध्वम्, एके=केचित्कातराः क्षुधया परिग्लायमानैः सर्वेन्द्रियैः कातरभावं गच्छन्ति, इत्यपि पश्यतेति पूर्वेण सम्बन्धः । किन्तु तद्विपरीत ओजः=एकः राग-द्वेषवर्जितः परीषहोपसर्गसहनसमर्थः क्षुधादिपरीषहोपनिपातेऽपि महागिरिरिवाऽकम्प्यो दयां षड्जीवनिकायानुकम्पां दयते=परिपालयति ।

क्षुधार्तश्चक्षुषा रूपादिकं न सम्यक् पश्यति, कर्णेन शब्दं न सम्यक् शृणोति, रसनया न रसं सम्यगास्वादयति, नाऽपि घ्राणेन गन्धं सम्यग् जिघ्रति, त्वचा नाऽपि शीतादिकं सम्यक् स्पृशति, क्षुधा सर्वेन्द्रियाणां शक्तिप्रतिघातकारिणी भवतीत्याशयः ।

क्षुधारूप परीषह से म्लान या विनष्ट हो जाता है, यह बात शिष्यों को समझाते हैं-" पश्यत " आप लोग इस बात पर विश्वास रखो। जब यह बात है तो कोई २ कातर प्राणी क्षुधावेदनीय से दुःखित हुए इन्द्रियोंद्वारा कातर भावको धारण करते हैं। यह भी बात विश्वास करने जैसी है, किन्तु जो राग-द्वेषसे रहित होते हैं वे परीषह और उपसर्गों को सहनेमें शक्तिशाली होते हैं-क्षुधादि परीषहों के आ जाने पर भी वे सुमेरुकी तरह अकम्प्य होते हैं, और षड्जीवनिकाय की दयाका परिपालन करते हैं ।

जो कातर होते हैं वे जब क्षुधासे पीडित होते हैं तब आंखोंसे रूपादिकका अच्छी तरहसे अवलोकन नहीं कर सकते हैं, कानोंसे अच्छी तरह शब्द भी नहीं सुन सकते हैं, जीभसे सुन्दर सुस्वादु रस तक का भी स्वाद नहीं ले सकते हैं, नाकसे सुन्दर गंध तक भी नहीं

ક્ષુધારૂપ પરિષહથી મ્લાન અને નિર્બળ બને છે. આ વાત શિષ્યોને સમજાવે છે અને કહે છે-" पश्यत " આપ લોક આ વાત ઉપર વિશ્વાસ રાખો. જ્યારે આ વાત છે તો કોઈ કોઈ કાયર પ્રાણી ભૂખના દુઃખથી દુઃખિત બની ઈન્દ્રિયોદ્વારા કાયરભાવ ધારણ કરે છે. આ વાત પણ વિશ્વાસ કરવા જેવી છે, પરંતુ જે રાગ દ્વેષથી રહિત છે તે પરિષહ અને ઉપસર્ગો સહેવામાં શક્તિશાળી હોય છે- ક્ષુધાદિ પરિષહોના આવવાથી પણ તે સુમેરૂની માફક અડગ રહે છે, અને ષડ્જીવનિકાયની દયાનું પરિપાલન કરે છે.

જે કાયર હોય છે તે જ્યારે ભૂખથી પીડિત થાય છે ત્યારે આંખોથી રૂપાદિકનું પણ સારી રીતે અવલોકન કરી શકતા નથી, કાનોથી સારી રીતે શબ્દ પણ સાંભળી શકતા નથી. જીભથી સુંદર સુસ્વાદુ રસનો પણ સ્વાદ લઈ શકતા નથી, નાકથી સુન્દર ગંધ પણ સુંઘી શકતા નથી અને સ્પર્શ ઈન્દ્રિયથી

ननु केवलिभिन्नानां देहा आहारोपचया भवन्तीति तदर्थं तेऽश्नन्ति, दयादीनि च पालयन्तीति, केवलिनो हि नियतं सेत्स्यन्ति तर्हि किमर्थं ते देहं धारयन्ति? किमर्थं च भुञ्जते? इति चेत्, न, केवलिनामपि वेदनीयादिकर्मचतुष्टयसद्भावेन तत्क्षपणार्थं शरीरधारणस्याऽऽहारस्य चाऽऽवश्यकत्वात्, अन्यथा तेषां तदानीमपि वेदनीयादिकर्मसत्त्वात्क्षुधापरीषहाभिभवस्य दुर्वारत्वं स्यात्, ततश्च केवलिनोऽपि कवलाहारं कुर्वन्ति, तं विनौदारिकशरीरस्थितेरसम्भवात्, शरीरस्थितिं विना शेषकर्मचतुष्टयक्षपणासम्भवाच्चावश्यक एव केवलिनामपि कवलाहार इत्यलम् ॥सू० २॥

षड्जीवनिकायरक्षकः कीदृशो भवतीति दर्शयति–'जे संनिहाणसत्थस्स' इत्यादि।

सूंघ सकते हैं और स्पर्शन इन्द्रियसे शीतादिकके ज्ञानसे भी अपरिचित रहते हैं, तात्पर्य–क्षुधा समस्त इन्द्रियोंकी शक्तिका प्रतिघात करनेवाली होती है।

केवलियों के भी वेदनीयादिक चार अघातिया कर्मोंका सद्भाव है, अतः उन कर्मोंको नाश करनेके लिये उन्हें भी शरीररक्षाकी आवश्यकता है, और शरीररक्षाके निमित्त कवलाहार की जरूरत है, कवलाहार भी इसलिये वहां होता है कि वह वेदनीय कर्मका कार्य है, यदि वे कवलाहार न करें तो वेदनीय कर्मके सद्भावसे तज्जन्य–क्षुधापरीषहजन्य कष्टका उन्हें सामना करना पडे। इस लिये केवली भी कवलाहार करते हैं, इसके विना औदारिक शरीरकी स्थिति नहीं रह सकती, शरीरस्थिति रहे विना शेष कर्मचतुष्टयका विनाश नहीं हो सकता है, अतः केवलियोंके भी कवलाहार है ॥ सू०२ ॥

षड्जीवनिकायका रक्षक वह कैसा होता है? सो कहते हैं– "जे संनिहाणसत्थस्स" इत्यादि।

ઠંડી આદિના જ્ઞાનથી પણ અપરિચિત રહે છે. તાત્પર્ય–ભૂખ સમસ્ત ઇન્દ્રિયોની શક્તિનો પ્રતિઘાત કરનાર છે.

કેવલિયોને પણ વેદનીય આદિ ચાર અઘાતિયા કર્મોનો સદ્‌ભાવ છે માટે તેવા કર્મોના નાશ કરવા તેને પણ શરીરરક્ષાની આવશ્યકતા છે, અને શરીરરક્ષાના નિમિત્ત કવલ આહારની જરૂરત છે. કવલ આહાર પણ એ માટે ત્યાં હોય છે કે તે વેદનીય કર્મનું કાર્ય છે. જો તે કવલ આહાર ન કરે તો વેદનીય કર્મના સદ્‌ભાવથી તજ્જન્ય–ક્ષુધાપરિષહજન્ય કષ્ટનો તેને સામનો કરવો પડે, માટે કેવલી પણ કવલ આહાર કરે છે. તેના વિના ઔદારિક શરીરની સ્થિતિ રહી શકતી નથી. શરીરસ્થિતિ રહ્યા વિના બાકી રહેલા ચાર કર્મોના વિનાશ થઈ શકતો નથી, માટે કેવલિયોને પણ કવલ આહાર છે. (સૂ૦૩)

ષડ્જીવનિકાયના રક્ષક કેવા હોય છે? તે કહે છે–"जे संनिहाणसत्थस्स" ઇત્યાદિ.

मूलम्—जे संनिहाणसत्थस्स खेयन्ने से भिक्खू कालन्ने बलन्ने मायन्ने खणन्ने विणयन्ने समयन्ने परिग्गहं अममायमाणे कालेणुट्ठाई अपडिन्ने दुहओ छित्ता नियाइ ॥ सू० ३॥

छाया——यः सन्निधानशास्त्रस्य खेदज्ञः भिक्षुः कालज्ञो बलज्ञो मात्राज्ञः क्षणज्ञो विनयज्ञः समयज्ञः परिग्रहममममायमानः कालेऽनुष्ठायी अप्रतिज्ञो द्विधा छित्त्वा नियाति।

टीका——'यः' इत्यादि, यः=पूर्वोक्तो दयापरिपालकः सन्निधानशास्त्रस्य–सन्निधीयते=स्थाप्यते नरकनिगोदादिषु जीवो येन तत् सन्निधानं=ज्ञानावरणीयादिकं कर्म, तस्य शास्त्रं=तत्स्वरूपप्रतिपादक आगमः=सन्निधानशास्त्रं, तस्य। यद्वा–'सन्निधानशस्त्रस्य' इति छाया, तेन सन्निधानस्य कर्मणः शस्त्रवच्छेदकत्वेन शस्त्रं संयमस्तस्य खेदज्ञः=कुशलो भवति स भिक्षुः कालज्ञो बलज्ञो मात्राज्ञः क्षणज्ञो विनयज्ञः समयज्ञः परिग्रहममममायमानः कालेऽनुष्ठायी अप्रतिज्ञो द्विधा रागं द्वेषं च छित्त्वा नियाति=मोक्षं प्राप्नोति। एतेषां व्याख्या द्वितीयाध्ययनस्य पञ्चमोद्देशे प्रोक्तेति ॥

संनिधानशास्त्रका अर्थ आगम है, वह इस प्रकारसे–नरक और निगोदादिकों में जीव जिसके द्वारा स्थापित किया जाता है वह सन्निधान –ज्ञानावरणीयादि कर्म–है, इनके स्वरूपका प्रतिपादक जो शास्त्र है वह सन्निधानशास्त्र–आगम है। अथवा—"सन्निधानशस्त्र" यह भी "संनिहाणसत्थस्स" की छाया हो सकती है। इसका अर्थ संयम है संनिधानका अर्थ कर्म, और उस कर्मका शस्त्रकी तरह छेदक होनेसे शस्त्र संयम है। आगमका अथवा संयमका जो ज्ञाता–उस विषयमें जो कुशल–है वह कालज्ञ, बलज्ञ, मात्रज्ञ, क्षणज्ञ, विनयज्ञ, समयज्ञ परिग्रहत्यागी, कालोकाल संयम क्रियाका आराधक, अप्रतिज्ञ मुनि राग और द्वेषका विनाश कर मोक्षको प्राप्त करता है। इन समस्त पदों की

સંનિધાનશાસ્ત્રનો અર્થ આગમ છે. તે આ પ્રકારથી–નરક અને નિગોદાદિકોમાં જીવ જેના દ્વારા સ્થાપિત કરાય છે તે સન્નિધાન–જ્ઞાનાવરણીયાદિ કર્મ છે. તેના સ્વરૂપનું પ્રતિપાદક જે શાસ્ત્ર છે તે સન્નિધાનશાસ્ત્ર–આગમ છે. અથવા—"सन्निधानशस्त्रस्य" આ પણ "संनिहाणसत्थस्स"ની છાયા બને છે, આનો અર્થ સંયમ છે. સન્નિધાનનો અર્થ કર્મ–અને એ કર્મનું શસ્ત્રની રીતે છેદન કરનાર હોવાથી શસ્ત્ર સંયમ છે. આગમના અથવા સંયમના જે જ્ઞાતા–આ વિષયમાં જે કુશળ–છે તે કાલજ્ઞ, બલજ્ઞ, માત્રજ્ઞ, ક્ષણજ્ઞ, વિનયજ્ઞ, સમયજ્ઞ, પરિગ્રહત્યાગી, કાલોકાલ સંયમ ક્રિયાનો આરાધક, અપ્રતિજ્ઞ મુનિ રાગ અને દ્વેષનો વિનાશ કરી મોક્ષને પ્રાપ્ત કરે છે. આ સમસ્ત પદોની

संयमाचरणाय प्रव्रजतो यद्भवति तद्दर्शयति–' तं भिक्खु ' इत्यादि ।

मूलम्–तं भिक्खुं सीयफासपरिवेवमाणगायं उवसंकमित्ता गाहावई बूया–आउसंतो ! समणा ! नो खलु तं गामधम्मा उव्वाहंति ?। आउसंतो ! गाहावई ! नो खलु मम गामधम्मा उव्वाहंति, सीयफासं च नो खलु अहं संचाएमि अहियासित्तए, नो खलु मे कप्पइ अगणिकायं उज्जालित्तए वा पज्जालित्तए वा, कायं आयावित्तए वा पयावित्तए वा, अन्नेसिं वा वयणाओ सिया से एवं वयंतस्स परो अगणिकायं उज्जालित्ता पज्जालित्ता कायं आयाविज्ज वा पयाविज्ज वा तं च भिक्खू पडिलेहाए आगमित्ता आणविज्जा अणासेवणयाए–त्तिबेमि ॥ सू० ४ ॥

छाया––तं भिक्षुं शीतस्पर्शपरिवेपमानगात्रमुपसंक्रम्य गाथापतिर्ब्रूयात्–आयुष्मन् ! श्रमण ! न खलु ते ग्रामधर्मा उद्‌बाधन्ते ? । आयुष्मन् ! गाथापते ! नो खलु मम ग्रामधर्मा उद्‌बाधन्ते शीतस्पर्शं च न खल्वहं शक्नोम्यध्यासितुं, न खलु मे कल्पतेऽग्निकायमुज्ज्वालयितुं वा प्रज्वालयितुं वा कायमातापयितुं वा प्रतापयितुं वा; अन्येषां वा वचनात् स्यात् तस्य एवं वदतः परोऽग्निकायमुज्ज्वाल्य प्रज्वाल्य कायमातापयेद्वा, प्रतापयेद्वा, तद्भिक्षुः प्रत्युपेक्ष्यावगम्याऽऽज्ञापयेदनासेवनयेति ब्रवीमि ॥ सू० ४॥

टीका–' तं भिक्षु '–मित्यादि, गाथापतिः=धन–धान्य–हिरण्य–सुवर्णादिसमृद्धिमान् कस्तूरीचन्दनादिपरिलिप्तगात्रो रमणीयवपुः कमनीयरमणीगणसमन्वितो

व्याख्या द्वितीय अध्ययनके पांचवें उद्देशमें कह दी गई है ॥सू०३॥

संयमके आचरणके लिये दीक्षित हुए मुनि के जो होता है उसे सूत्रकार कहते हैं–" तं भिक्खुं " इत्यादि ।

जो धन, धान्य, हिरण्य, सुवर्ण आदि समृद्धिसे युक्त है, कस्तूरी, चन्दन आदिसे जिसका शरीर लिप्त हो रहा है, देह

વ્યાખ્યા બીજા અધ્યયનના પાંચમા ઉદ્દેશમાં કહેવાયેલ છે. (સૂ૦૩)

સંયમના આચરણ માટે દીક્ષિત બનેલ જે મુનિ હોય છે એને સૂત્રકાર કહે છે–" तं भिक्खुं " ઇત્યાદિ.

જે ધન, ધાન્ય, હિરણ્ય, સુવર્ણ, આદિ સમૃદ્ધિથી યુક્ત છે, કસ્તુરી, ચંદન, આદિથી જેનું શરીર લિપ્ત થઈ રહેલ છે, દેહ પણ જેની

गृहस्थः शीतस्पर्शपरिवेपमानगात्रं=हेमन्ततौ शीतस्पर्शेन परिवेपमानं=कम्पमानं गात्रं=शरीरं यस्य स शीतस्पर्शपरिवेपमानगात्रस्तम् अल्पोपधिकत्वेन शीतवात-परिकम्पितशरीरं तम्=अन्तप्रान्ताशिनं तेजोरहितमकिञ्चनं भिक्षुं=मध्यमावस्थापन्नं मुनिम्=उपसंक्रम्य=तत्समीपमागत्य 'किमयं मदीयवनितारूप-लावण्य-विलोकनेन शृङ्गारचेष्टाभिभूतत्वात् परिकम्पितगात्रोऽथवा शीतस्पर्शादिना वा? इति सन्देहमुपगम्य च तं भिक्षुं ब्रूयात्=वक्ष्यमाणं वाक्यं कथयेत् पृच्छेदित्यर्थः, तदेवाह—' भो आयु-ष्मन् ! श्रमण ! किं ग्रामधर्माः=शृङ्गारादिमदनचेष्टाविशेषा विषयास्त्वां 'नो उद्बाधन्ते'=न पीडयन्ति ? तादृशं कृतप्रश्नमसत्याशङ्कं गृहपतिमालक्ष्य स भिक्षु-स्तच्छङ्कामपनेतुं ब्रवीति-' आयुष्म '-न्नित्यादि, हे आयुष्मन् ! ग्रामधर्माः मां नो

भी जिसकी बहुत सुन्दर है, घरमें जिसके मनोहर अंगवाली नारियोंका समूह है, ऐसे किसी गृहस्थके घर पर मध्यम अवस्थावाले, अल्प उपधिके धारी मुनि आहार लेनेके निमित्त आवे तब उन्हें अधिक ठण्डसे कंपित होते देखकर वह गृहस्थ उन अन्तप्रान्तभोजी एवं तेजरहित अकिंचन मुनिके प्रति सन्देहयुक्त विचार करता है कि-"यह मेरे घरकी इन वनिताओंके सुन्दर रूप और लावण्यको निहार कर शृङ्गार की चेष्टासे युक्त बन कम्पितशरीरवाला हुआ है? या शीतके स्पर्श से इसका शरीर कम्प रहा है ?" ऐसा सोच कर वह मुनिसे पूछता है-भो मुने! आपका शरीर हमारी स्त्रियोंको देख कर कम्प रहा है या अन्य किसी कारणसे?, इस प्रकार असत्य आशङ्कासे युक्त उस पूछने-वाले गृहस्थ के प्रश्नको सुन कर वह भिक्षु उसकी आशङ्काके परिहार करने हेतु इस प्रकार कहे—भो आयुष्मन् ! ग्रामधर्म-काम-की चेष्टा

ખુબ સુંદર છે, ઘરમાં મનોહર અંગવાળી સ્ત્રીઓનો સમૂહ છે, એવા કોઈ ગૃહ-સ્થના ઘેર મધ્યમ અવસ્થાવાળા, અલ્પ ઉપધિના ધારક મુનિ આહાર લેવા માટે આવે ત્યારે તેને અધિક ઠંડીથી કાંપતાં જોઈ તે ગૃહસ્થ અન્તપ્રાન્તભોજી એવં તેજરહિત અકિંચન મુનિના તરફ સંદેહયુક્ત વિચાર કરે છે કે-"આ મારા ઘરની સ્ત્રીઓના સુંદર રૂપ અને લાવણ્યને જોઈ શૃંગારની ચેષ્ટાથી અકળાઈ કાંપી રહેલ છે ? અથવા ઠંડીના સ્પર્શથી આનું શરીર કાંપી રહ્યું છે?" એવું વિચારી એ મુનિને પૂછે છે-હે મુનિ ! તમારૂં શરીર મારા ઘરની સ્ત્રીઓને જોઈ કાંપી રહ્યું છે કે બીજા કોઈ કારણથી ?, આ પ્રકારની અસત્ય આશંકાથી પૂછવામાં આવેલા ગૃહસ્થના એ પ્રશ્નને સાંભળી ભિક્ષુ એની આશંકાનું નિવારણ કર-વાના હેતુથી કહે છે કે-હે આયુષ્યમન્ ! ગ્રામધર્મ-કામ-ની ચેષ્ટાસ્વરૂપ શૃંગા-

खलु=नैव उद्बाधन्ते=न मां पीडयन्ति किन्तु अहं शरीरदौर्बल्येनाल्पोपधिकत्वेन च शीतस्पर्शं=तीव्रतरशीतबाधाम् अध्यासितुम्=अधिसोढुं न शक्नोमि तेन मे गात्रं कम्पते न तु कामचेष्टयेति भावः। इति लब्धोत्तरो गृहपतिर्विनयभक्तिपरिपूरितान्तःकरणः सन् लज्जितः पुनः पृच्छति–प्रदीप्तं वह्निं संसेव्य शीतपीडां कथं भवान् नापनयति? इति प्रश्ने सति मुनिरुत्तरमाह–' न खल्वि '–त्यादि, अग्निकायम् उज्ज्वालयितुम्=ईषत् ज्वालयितुं प्रज्वालयितुं=प्रकर्षेण ज्वालयितुं कायं=स्वशरीरम्= आतापयितुम्=मनाक् तापयिम्=अधिकमातापयितुं प्रतापयितुं वा, अन्येषां=परेषां वा वचनात्=कथनादपि तद् मे=मम न कल्पते, अग्निकायारम्भे षड्जीवनिकायारम्भस्यावश्यम्भावाद्भगवदाज्ञाविराधनादोषापातात्।

स्वरूप शृङ्गारादि विषयवाले विषय मुझे पीडित नहीं कर रहे हैं, किंतु इस समय शीत अधिक पड़ रहा है, उपधि भी इतनी अधिक नहीं है कि जिससे में शीतका निवारण कर सकूं, खैर–उपधि अल्प होने पर भी यदि शरीर सशक्त हो तो भी शीत वगैरह सहन किया जा सकता है परन्तु इस समय शरीर भी दुर्बल हो रहा है अतः शीतके कारण मेरा शरीर कंप रहा है–कामचेष्टासे नहीं। इस प्रकार मुनिसे जब वह अपनी आशङ्काका उत्तर ठीक २ पालेता है तब वह लज्जित अवश्य होता है, साथमें उसके हृदयमें विवेकका सागरसा उमड़ आनेसे वह उस मुनिके प्रति भक्ति और विनयके भारसे भरित अंतःकरणवाला

રાદિ વિષયવાળા વિષય મને પીડતા નથી પરંતુ અત્યારે ઠંડી અધિક પ્રમાણમાં હોવાથી, તેમ મારી પાસે એ ઠંડીથી બચાવ કરી શકે તે રીતે વસ્ત્રાદિક ન હોવાથી કાંપી રહ્યો છું. વસ્ત્રાદિક ઓછા હોવા છતાં પણ જો શરીર સશક્ત હોય તો ઠંડી સહન કરવામાં હરકત ન પડે, આ સમયે મારૂં શરીર પણ દુર્બળ છે, આથી ઠંડીના કારણે મારૂં શરીર કાંપી રહ્યું છે–કામચેષ્ટાથી નહીં. આ પ્રકારે મુનિથી જ્યારે તે પોતાની આશંકાનો ઉત્તર ઠીક ઠીક મેળવી લે છે ત્યારે તે લજ્જીત બને છે, સાથમાં તેના હૃદયમાં વિવેકનો ઉભરો આવવાથી તે મુનિ પ્રત્યે ભક્તિ અને વિનયના ભાવથી ભરેલા અંતઃકરણવાળો થઇ

एवं वदतो मुनेरग्निकायप्रज्वालनादेः परिहारे कृतेऽपि स्यात्=कदाचिद् यदि सः=पूर्वोक्तोऽन्यो वा गृहस्थः अग्निकायं=वह्निं तदर्थमुज्ज्वाल्य प्रज्वाल्य च तस्य मुनेः कायं=शरीरम् आतापयेद्वा प्रतापयेद्वा तदा भिक्षुः=स मुनिः तत् सर्वं प्रत्युपेक्ष्य =सावद्याचरणतया विचार्य अवगम्य=ज्ञात्वा वा तं गृहपतिम् अनासेवनतया= अकल्पनीयतया 'अग्निसेवनं मम न कल्पते' इत्यनासेवनपरिज्ञया आज्ञापयेत्= प्रतिबोधयेत्। इति ब्रवीमि '–त्यस्यार्थस्तूक्त एव ॥ सू० ४ ॥

॥ अष्टमाध्ययनस्य तृतीय उद्देशः समाप्तः ॥ ८-३ ॥

हो कर वह कहता है–महाराज! जब आपकी यह हालत है तो फिर आप शीतको अग्निद्वारा क्यों नहीं दूर करते हैं ?। इसके उत्तरमें मुनि इस प्रकार कहता है कि–अग्निकायको थोडा या अधिक जलानेका और उससे इस शरीरको थोड़ा या अधिक तपानेका मुनिकल्प नहीं है।

भावार्थ—अग्निकायके आरंभमें षड्जीवनिकायकी विराधना होती है, इस लिये शास्त्रमें इस प्रकारका आचार मुनिके लिये निषिद्ध है, क्यों न भयङ्करसे भयङ्कर शीत पडे तो भी मुनि इस प्रकारका अग्निका आरंभ नहीं कर सकते। किसीकी विराधना कर इस पौद्गलिक शरीरको सुखित करना यह मुनियोंका कर्तव्य नहीं है। अग्निकायके आरम्भमें अग्नि-कायिक जीवोंकी विराधनाके साथ २ इतरकायिक जीवोंकी भी विरा-

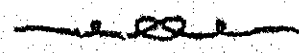
તે કહે છે–મહારાજ જ્યારે આપની આ હાલત છે તો પછી આપ ઠંડીને અગ્નિથી કેમ દૂર કરતા નથી ? તેના ઉત્તરમાં મુનિ કહે છે કે–અગ્નિકાયને થોડા અથવા વધારે બાળવામાં અને તેનાથી આ શરીરને થોડો અથવા અધિક તાપ આપવામાં મુનિકલ્પ નથી.

ભાવાર્થ—અગ્નિકાયના આરંભમાં ષડ્જીવનિકાયની વિરાધના થાય છે માટે શાસ્ત્રમાં આ પ્રકારનો આચાર મનિ માટે નિષિદ્ધ છે. ભલે ભયંકરમાં ભયંકર ઠંડી પડે તો પણ મુનિ આ પ્રકારે અગ્નિનો આરંભ કરી શકતા નથી. કોઈની વિરાધના કરી આ પૌદ્ગલિક શરીરને સુખી કરવો એવું મુનિનું કર્તવ્ય નથી. અગ્નિકાયના આરંભમાં અગ્નિકાયના જીવોની વિરાધનાની સાથે સાથે બીજા

धनाका आरंभ अवश्य होता है, इस लिये इस प्रकारके आरंभ करनेकी भगवान् की आज्ञा मुनिके लिये नहीं है।

इस प्रकार समझाने पर भी यदि कोई या वही गृहस्थ भक्ति या दयाके आवेशसे उस मुनिकी शीतसे रक्षा करनेके अभिप्रायसे थोड़ी या बहुत अग्नि जला कर उसके शरीरको थोडे रूपमें या बहुत रूपमें तपाने की चेष्टा भी करे तो उस समय वह भिक्षु इस प्रकारकी उनकी (अग्नि-ज्वालनादि क्रियासे शरीरको तपानेरूप) क्रियाको सावद्यके आचरण रूपसे विचार कर और जानकर उस गृहस्थसे "यह आचार हम मुनियों को अकल्पनीय होनेसे नहीं कल्पता है" इस प्रकार अनासेवनपरिज्ञा से कहे—उसे समझावे। "इति ब्रवीमि" इन पदोंका अर्थ पहिले कहा जा चुका है ॥सू०४॥

॥ आठवें अध्ययनका तीसरा उद्देश समाप्त ॥ ८-३ ॥



જીવોની પણ વિરાધનાનો આરંભ અવશ્ય થાય છે, માટે આ પ્રકારનો આરંભ કરવાની ભગવાનની આજ્ઞા મુનિ માટે નથી.

આ રીતે સમજાવવા છતાં પણ જો કોઇ અથવા એજ ગૃહસ્થ ભક્તિ અગર દયાના આવેશથી તે મુનિની ઠંડીથી રક્ષા કરવાના અભિપ્રાયથી થોડી ઘણી અગ્નિ સળગાવી તેના શરીરને થોડા રૂપમાં અથવા ઘણા રૂપમાં તપાવવાની ચેષ્ટા પણ કરે તો તે સમય તે ભિક્ષુ આ પ્રકારની તેની (અગ્નિજ્વાલનાદિ ક્રિયાથી શરીરને તપાવવારૂપ) ક્રિયાને સાવદ્યના આચરણ રૂપથી વિચારી અને જાણી તે ગૃહસ્થથી "આ આચાર અમો મુનિઓ માટે અકલ્પનીય હોવાથી કલ્પતું નથી" આ પ્રકારે અનાસેવનપરિજ્ઞાથી કહે—તેને સમજાવે. "इति ब्रवीमि" આ પદોનો અર્થ પહેલાના ઉદ્દેશોમાં કહેવાઇ ગયેલ છે.(સૂ૦૪)

આઠમા અધ્યયનનો ત્રીજો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૮-૩ ॥



॥ अथाष्टमाध्ययनस्य चतुर्थ उद्देशः ॥

अथ तृतीयोद्देशकथनान्तरं सम्प्रति तुरीय आरभ्यते। अस्यानन्तरोद्देशेन सहायं सम्बन्धः–अनन्तरोद्देशे भिक्षार्थं परिभ्राम्यन् मुनिः शीतस्पर्शवेपितगात्रो ग्रामधर्मशङ्कितमनसा गृहस्थेन पृष्टस्तस्यासत्यशङ्कामपनयेदित्यभिहितम्। अत्र च यदि पुनः स्त्रिय एव तं भिक्षुं हावभावादिभिर्वशीकर्तुं चेष्टेरन्, मुनिस्ततस्थानान्निष्क्रमितुमशक्तो भवेत्तदा चारित्रपरिरक्षणार्थं वैहायस–गार्द्धपृष्ठाख्यमरणविधिना प्राणां-

आठवें अध्ययनका चौथा उद्देश।

तृतीय उद्देशके कहनेके बाद अब चतुर्थ उद्देश प्रारम्भ होता है। इस उद्देशका अनन्तर उद्देशके साथ यह सम्बन्ध है–उस अनन्तर उद्देशमें यह कहा है कि "भिक्षाके लिये निकले हुए मुनिका शीतकाल में शीतके स्पर्शसे कम्पित शरीर देख कर यदि कोई गृहस्थ ग्रामधर्मकी आशङ्का उसमें कर लेता है तो वह मुनि उसकी उस असत्य आशङ्काका परिहार कर देता है। इस उद्देशमें यह प्रकट किया जायगा कि स्त्रियां ही यदि उस मुनिको हावभाव आदि चेष्टाओंसे वशमें करनेका प्रयत्न करें, और मुनि उस स्थानसे बाहर निकलनेके लिये असमर्थ बन जाय तो उस समय उस मुनिका यही कर्तव्य है कि वह अपने चारित्रकी सब प्रकारसे रक्षा करनेके लिये वैहायस और गार्द्धपृष्ठ नामक मरणविधि

આઠમા અધ્યયનનો ચોથો ઉદ્દેશ.

ત્રીજો ઉદ્દેશ કહેવાઇ ગયા બાદ હવે ચોથા ઉદ્દેશનો પ્રારંભ થાય છે. આ ઉદ્દેશનો પાછળના ઉદ્દેશની સાથે આ સંબંધ છે–પાછળના ઉદ્દેશમાં એ કહેવાયું છે કે ભિક્ષાને માટે નિકળેલ મુનિને ઠંડીમાં ઠંડીના સ્પર્શથી કાંપતા જોઈ જો કોઈ ગૃહસ્થ ગ્રામધર્મની આશંકા કરી લે છે ત્યારે મુનિ એની એ અસત્ય આશંકાનું સમાધાન કરી દે છે. આ ઉદ્દેશમાં એ પ્રગટ કરવામાં આવશે– સ્ત્રીઓ જ કદાચ મુનિને હાવભાવ વગેરે ચેષ્ટાઓથી વશમાં કરવાનો પ્રયત્ન કરે, અને મુનિ પણ એ સ્થાનમાંથી બહાર નિકળવામાં અસમર્થ બની જાય ત્યારે એ સમયે મુનિનું આ કર્તવ્ય છે કે તે પોતાના ચારિત્રની રક્ષા કરવા માટે વૈહાયસ અને ગાર્દ્ધપૃષ્ઠ નામની મરણ વિધિથી પોતાના પ્રાણ તજી દે પણ પોતાના શીલ–બ્રહ્મચર્યમહાવ્રત–નો ભંગ ન કરે. કેમ કે બ્રહ્મચર્યના

स्त्यजेत्, न तु शीलभङ्गं समाचरेत्, तदभावे च तन्मरणं गर्हितमिति कथयन्नादौ शीतस्पर्शप्रसङ्गेन वस्त्रस्य कल्पनीयतामावेदयति–' जे भिक्खू इत्यादि ।

मूलम्–जे भिक्खू तिहिं वत्थेहिं परिवुसिए पायचउत्थेहिं, तस्स णं नो एवं भवइ–चउत्थं वत्थं जाइस्सामि से । अहेसणिज्जाइं वत्थाइं जाइज्जा अहापरिग्गहियाइं वत्थाइं धारिज्जा नो धोइज्जा नो रएज्जा नो धोयरत्ताइं वत्थाइं धारिज्जा अपलिउंचमाणे गामंतरेसु ओमचेलिए एयं खु वत्थधारिस्स सामग्गियं ॥सू०१॥

छाया–यो भिक्षुस्त्रिभिर्वस्त्रैः पर्युषितः पात्रचतुर्थैः, तस्य खलु नो एवं भवति–चतुर्थं वस्त्रं याचिष्ये, स यथैषणीयानि वस्त्राणि याचेत, यथापरिगृहीतानि वस्त्राणि धारयेत्, नो धावेत्, नो रञ्जयेत्, नो धौतरक्तानि वस्त्राणि धारयेत्, अपरिकुञ्चमानः ग्रामान्तरेषु अवमचेलिकः, एतत्खलु वस्त्रधारिणः सामग्र्यम् ॥ सू० १ ॥

टीका–' यो भिक्षु '–रित्यादि, यो मुनिः पात्रचतुर्थैः=वस्त्रत्रयातिरिक्तं चतुर्थं पात्रं यत्र तानि, तैः पात्रचतुर्थैः त्रिभिर्वस्त्रैः–कार्पासिके द्वे, तृतीयमौर्णिकं कम्बलादिकम्, एतत्रयमेव वस्त्रं तेषां कल्पते, तत्र शीतप्रारम्भे चैकं प्रावरणवस्त्रं स मुनिर्धारयेत्, ततोऽप्यधिकशीतपीडायां कम्बलमुपरि धारयेत्, एतेन कम्बलगतबाह्याच्छादनता बोध्या ।

से अपने प्राणोंको छोड़ दे परन्तु वे शील–ब्रह्मचर्य महाव्रत–का भङ्ग न करे, क्यों कि ब्रह्मचर्यके अभावमें उसका मरण निंदित है, इस बातको कहते हुए सूत्रकार आदिमें शीतस्पर्शके प्रसंग से वस्त्रकी कल्पनीयता और अकल्पनीयता सूत्रद्वारा प्रकट करते हैं–' जे भिक्खू ' इत्यादि ।

स्थविरकल्पी मुनि तीन वस्त्र (दो सूती एक ऊनी कम्बल) आदि और एक पात्र, इस प्रकार वस्त्र और पात्र रखते हैं, क्यों कि इतने ही वस्त्र और पात्र रखने का उनका कल्प है । इनमें शीतकालके प्रारम्भमें एक ही ओढनेका वस्त्र वे रखते हैं । जब अधिक शीत पड़ने लगती है तो वे द्वितीय वस्त्र भी ओढनेके लिये रख लेते हैं, और भी अधिक

અભાવથી એનું મરણ નિંદિત છે. આ વાત કહેતાં સૂત્રકાર ઠંડીના પ્રસંગમાં વસ્ત્રની કલ્પનીયતા અને અકલ્પનીયતા સૂત્રદ્વારા પ્રગટ કરે છે–'जे भिक्खू'ઈત્યાદિ.

આ સ્થવિરકલ્પી મુનિ ત્રણ વસ્ત્ર જેમાં બે સુતરાઉ અને એક કમ્બલ વગેરે અને એક પાત્ર આ પ્રકારનાં વસ્ત્ર અને પાત્ર રાખે છે. કેમ કે એટલાં જ વસ્ત્ર અને પાત્ર, રાખવાનો એનો કલ્પ છે. આમાં ઠંડીના પ્રારંભમાં એક જ ઓઢવાનું વસ્ત્ર રાખે છે જ્યારે ઠંડી વધુ પ્રમાણમાં પડવા લાગે ત્યારે બીજું વસ્ત્ર પણ ઓઢવા માટે રાખી લે છે. ખુબ જ પ્રમાણમાં ઠંડી પડવા લાગે ત્યારે એક કમ્બલ પણ રાખી

एतैर्वस्त्रैः पर्युषितः=व्यवस्थितो भिक्षुः-संयतो भवति, तस्य=पूर्वोक्तस्य भिक्षोश्चैनस्यैवमध्यवसायः खलु=निश्चयेन न भवति-मम कल्पेन=वस्त्रत्रयरूपेण न शीतापगमो भवति तदर्थमहं चतुर्थं वस्त्रं याचिष्ये। अध्यवसायस्य प्रतिषेधेन चतुर्थवस्त्रयाचनं तु सर्वथा हेयमेवेति दर्शितम्। यदि वस्त्र-त्रितयं न लब्धवान् शीतकालश्च सम्प्राप्तो भवेत् तदा तत् कल्पनीयं याचेत भिक्षुरिति दर्शयति-'स' इत्यादि-स=भिक्षुः यथैषणीयानि वस्त्राणि मूल्यतः प्रमाणतश्चोत्कर्षापकर्षरहितान्यपरिकर्माणि याचेत, एवं स एव यथापरिगृहीतानि =यथारूपप्राप्तानि श्वेतान्येव वस्त्राणि धारयेत्, किन्तु तानि वस्त्राणि नो धावेत्=प्रा-

ठण्ड पड़ने पर वे एक कम्बल भी लेते है, जिससे शीतजन्य बाधा उन्हें बाधित न कर सके।

इन वस्त्रोंसे व्यवस्थित-युक्त जो साधु होता है। उसके चित्तमें निश्चयसे इस प्रकारका अध्यवसाय नहीं होता है कि-मेरा इस वस्त्रत्रय रखनेरूप कल्पसे शीतका निवारण नहीं होता है इसलिये चौथे वस्त्रकी याचना करूं। जब सूत्रकारने चौथे वस्त्रकी याचना करनेरूप अध्यवसायका ही प्रतिषेध किया है तो उससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वे चतुर्थ वस्त्रकी याचना करेंगे ही कैसे ?-यह याचना तो सर्वथा त्याज्य ही है, हां इतना हो सकता है कि उसके पास यदि वे पूर्वोक्त तीन वस्त्र नहीं हैं और शीतकाल आ चुका है तो वे अपने लिये कल्पनीय ही वस्त्रोंकी याचना करेंगे, अकल्पनीय की नहीं, यही बात "से" इत्यादि सूत्रांश द्वारा प्रकट की है। वह भिक्षु यथैषणीय-प्रमाणसे एवं मूल्यसे जो उत्कर्ष और अपकर्ष रहित हैं ऐसे अपरिकर्म वस्त्रोंकी ही याचना कर सकते हैं। तथा याचना समयमें जो वस्त्र जिस रूपमें मिले हैं उसी

લે છે જેથી ઠંડીનો ઉપદ્રવ નહિ થાય.

આ વસ્ત્રોથી વ્યવસ્થિત-યુક્ત જે સાધુ હોય છે, તેના દિલમાં નિશ્ચયથી આ પ્રકારનો અધ્યવસાય થતો નથી કે મારા-આ વસ્ત્રત્રય રાખવારૂપ કલ્પથી ઠંડીનો નિવારણ થતો નથી આથી ચોથા વસ્ત્રની યાચના કરૂં. જ્યારે સૂત્રકારે ચોથા વસ્ત્રની યાચના કરવારૂપ અધ્યવસાયનો જ નિષેધ કરેલ છે તો આથી એ વાત સ્પષ્ટ થઈ જાય છે કે એ ચોથા વસ્ત્રની યાચના કરે પણ કઈ રીતે ?-એ યાચના તો સર્વથા ત્યાજ્ય જ છે, એટલું થઈ શકે છે કે એની પાસે જો પૂર્વોક્ત ત્રણ વસ્ત્ર ન હોય અને ઠંડી શરૂ થઈ ગઈ હોય તો તે પોતાને માટે કલ્પનીય વસ્ત્રોની જ યાચના કરે. અકલ્પનીયની નહીં, આ જ વાત "से" ઈત્યાદિ સૂત્રાંશથી પ્રગટ કરવામાં આવેલ છે. તે ભિક્ષુ યથૈષણીય-

प्रासुकोदकेनापि न प्रक्षालयेत्, नापि रञ्जयेत्=केशरहारिद्रादिना पीतादिरागरञ्जितानि न कुर्यात्, किं च 'धौत-रक्तानि' पूर्वं धौतानि=प्रक्षालितानि पश्चाच्च रक्तानि धौतरक्तानि वस्त्राणि नो धारयेत् तेन शृङ्गारादिभावसम्भवात्। अपि च स ग्रामान्तरेषु विहरन् तस्करादिभयेन मार्गे वस्त्राणि अपरिकुञ्चमानः=न परिगोपयन्-मूल्यप्रमाणादिना हीनत्वादुज्झितधर्मकत्वेनागोपनीयान्येव मुनीनां वसनानि भवन्तीति कक्षपात्रादिषु तानि न प्रच्छन्नानि कुर्वन्नित्यर्थः, अवमचेलिकः=अवमं मूल्यतः प्रमाणतश्च न्यूनं च तत् चेलं जीर्णमलिनवस्त्रम्=अवमचेलं, तदस्यास्तीति अवमचेलिकः=हीनजीर्णमलीमसवसनवान् सन् मुनिर्विहरेत्, एतत् खलु पूर्वोक्तमेव नान्यत्, वस्त्रधारिणः साधोः सामग्र्यं=पात्रचतुर्थवस्त्रत्रयादिरूपं सामग्र्यमस्ति ॥ सू० १ ॥

रूपमें वे श्वेत वस्त्रोंका उपयोग कर सकते हैं। अर्थात् याचना समयमें श्वेत वस्त्र ही लेते हैं और उन्हें वे उसी रूपमें रख कर अपने काममें ला सकते हैं। उन्हें ये प्रासुक पानीसे धो भी नहीं सकते हैं और न हरिद्रा केशर आदि पीले रंगसे रंग ही सकते हैं, क्यों कि ऐसे वस्त्रोंके रखनेसे शृङ्गारका आविर्भाव होता है। जो पहिले धोये गये हों और पीछे रंगे गये हों वे धौत-रक्त वस्त्र हैं। ग्रामान्तरों में विहार करते समय ये वस्त्रोंको चौरादिकके भयसे कक्षा और पात्रादिकों में छुपानेकी भावना न रखे, क्यों कि मुनियों के वस्त्र मूल्यसे और प्रमाण आदि से हीन ही होते हैं, तथा सामान्य दशामें रहते हैं अतः ये अगोपनीय ही होते हैं, इस लिये इन्हें छिपाने की कोशिश नहीं करनी चाहिये। मूल्य एवं प्रमाणसे हीन वस्त्र अवमचेल कहलाता है, ये जिसके पास होते हैं अर्थात् ऐसे वस्त्रको

પ્રમાણુથી અથવા મૂલ્યથી જે ઉત્કર્ષ અને અપકર્ષ રહિત છે એવા અપરિકર્મ વસ્ત્રોનીજ યાચના કરી શકે છે. તથા યાચના સમયે જે વસ્ત્ર જે રૂપમાં મળે એજ રૂપમાં તે શ્વેત વસ્ત્રોનો ઉપયોગ કરે. અર્થાત્ યાચના સમયે સફેદ વસ્ત્ર જ લે છે અને તેને એ જ રૂપમાં રાખી પોતાના કામમાં લઈ શકે છે. એને એ ધોઈ શકતા નથી તેમ હલદર કેશર કે તેવા પીળા રંગથી રંગી શકતા નથી. કેમ કે એવાં વસ્ત્રો રાખવાથી શૃંગારનો આવિર્ભાવ બની જાય છે. જે પહેલાં ધોવાયાં હોય અને પાછળથી રંગવામાં આવે તે ધૌત-રક્ત વસ્ત્ર છે. ગામડાઓમાં વિહાર કરતી વખતે ચોર વગેરેથી વસ્ત્રો ચોરાઈ જવાના ભયથી વસ્ત્રોને કક્ષા કે પાત્રોમાં છુપાવવાની કોશિશ ન કરવી જોઈએ, કેમ કે મુનિઓનાં વસ્ત્ર મૂલ્યથી અને પ્રમાણુથી હીનજ હોય છે. તેમ સામાન્ય દશાનાં હોય છે, આથી એ અગોપનીય જ હોય છે. આ માટે એને છુપાવવાની કોશિશ ન કરવી જોઈએ. મૂલ્ય અને પ્રમાણુથી હીન વસ્ત્ર અવમચેલ કહેવાય છે. આ

मुनिः शीतेऽतिक्रान्ते क्रमेण तान्यपि वसनानि परित्यजेदिति दर्शयति- 'अह पुण' इत्यादि।

मूलम्-अह पुण एवं जाणिज्जा उवाइक्कंते खलु हेमंते गिम्हे पडिवन्ने अहापरिजुन्नाइं वत्थाइं परिट्ठविज्जा, अदुवा संतरुत्तरे अदुवा एगसाडे अदुवा अचेले लाघवियं आगममाणे तवे से अभिसमन्नागए भवइ ॥ सू०२॥

छाया--अथ पुनरेवं जानीयात् उपातिक्रान्तः खलु हेमन्तो ग्रीष्मः प्रतिपन्नः यथापरिजीर्णानि वस्त्राणि परिष्ठापयेत्, अथवा सान्तरोत्तरः, अथवा अवमचेलः, अथवा एकशाटः, अथवा अचेलः, लाघविकमागमयन्, तपस्तस्याभिसमन्वागतं भवति ॥ सू० २ ॥

जो धारण करता है वह अवमचेलिक है। ऐसे वस्त्र मुनियोंके पास होते हैं, क्यों कि वे हीन जीर्ण और शीर्ण वस्त्रवाले होते हैं। ये ही तीन वस्त्र और एक पात्र ये, चार ही इन स्थविरकल्पधारी साधुओंके पास सामग्र्य-साधन हैं, अन्य नहीं।

डोरेसहित मुँहपत्ती, रजोहरण और पहिरनेका एक वस्त्र इनके सिवाय अन्य ये पूर्वोक्त तीन वस्त्र और एक पात्र मुनि रखते हैं, इनसे अधिक नहीं। हां इन तीनमें चाहे तो वह कम ही कर सकते हैं पर इन्हें बढ़ा नहीं सकते।

अधिक याचनाकी भावना करना ही जब मना है तो फिर चतुर्थ वस्त्रकी वह याचना कर भी कैसे सकते हैं? विहारमें वह सिंह की तरह विचरे-वस्त्रोंकी तरफसे निश्चिंत रहे-कारण कि वे इतने

જેની પાસે હોય છે એટલે આવા વસ્ત્રને જે ધારણ કરે છે તે અવમચેલિક છે. એવા વસ્ત્રો મુનિઓની પાસે હોય છે, કારણ કે તે જીર્ણ શીર્ણ વસ્ત્રોવાળા હોય છે. એ જ ત્રણ વસ્ત્ર અને એક પાત્ર, આ ચાર જ આ સ્થવિરકલ્પધારી સાધુઓની પાસે સામગ્ર્ય-સાધન છે, બીજું નહીં.

દોરા સાથે મુહપત્તી, રજોહરણ અને પહેરવાનું વસ્ત્ર ઉપરાંત ત્રણ વસ્ત્ર અને એક પાત્ર મુનિ રાખી શકે છે, એનાથી અધિક નહીં. આ ત્રણમાંથી જો તે ચાહે તો ઓછાં કરી શકે છે પણ વધારી શકતા નથી.

વધુ વસ્ત્રોની યાચનાની ભાવના કરવી એ પણ જ્યારે મના છે તો ચોથા વસ્ત્રની તે યાચના પણ કઈ રીતે કરી શકે છે. વિહારમાં તે સિંહની માફક વિચરે-વસ્ત્રોની બાબતમાં નિશ્ચિંત રહે, કારણ કે તે એટલાં મૂલ્યવાન

टीका—'अथे'-त्यादि, स भिक्षुरथ पुनरेवं जानीयात् यत् उपातिक्रान्तः=व्यतीतः खलु हेमन्तः=शीतसमयः प्रतिपन्नः=प्राप्तश्च ग्रीष्मः=उष्णसमयः तदा स भिक्षुः यथापरिजीर्णानि वस्त्राणि परिष्ठापयेत्=परिहरेत्-यद् यद् जीर्णं संजातं तत्तत्परित्यज्य सङ्गरहितो विचरेदित्यर्थः। व्यतीते शीतसमये क्षेत्र-काल-पुरुषस्वभावेन शीतबाधायां सत्यां किं कर्तव्यमित्याह-' सान्तरोत्तरः ' इत्यादि, अथवा=

अधिक मूल्य एवं प्रमाणमें अधिक होते ही नहीं हैं जो चौरोंके मनको बिगाड़ सकें, हीन, जीर्ण और मलिन वे वस्त्र होते हैं-भला चौर ऐसे वस्त्रोंको लेकर करेंगे ही क्या? अतः इन वस्त्रोंको छुपानेकी साधुको किसी भी प्रकारकी चेष्टा नहीं करनी चाहिये ॥सू०१॥

अब सूत्रकार ' शीतकाल व्यतीन हो जाने पर क्रम २ से उन वस्त्रों का भी साधुको परित्याग कर देना चाहिये ' यह प्रदर्शित करते हैं-" अह पुण " इत्यादि।

वह भिक्षु इस बातको जाने कि-हेमन्तकाल व्यतीत हो चुका है और ग्रीष्मसमय आ गया है उस समय वह भिक्षु जीर्ण वस्त्रोंको परिष्ठापित कर देवे-जो जो जीर्ण हो चुके हों उन २ का परित्याग कर निःसंग बने। शीत समयके व्यतीत होने पर भी यदि क्षेत्र काल और पुरुषस्वभाव को ले कर शीतबाधा उपस्थित हो जाय तो वह क्या करे? इस प्रकारकी आशङ्काका उत्तर "संतरुत्तरे" इत्यादि सूत्रांशसे सूत्रकार स्पष्ट करते हैं-'अथवा' यह पद पक्षान्तर में है. वे कहते हैं-जब इस प्रकारकी परिस्थिति हो तो वह तीन वस्त्र सहित हो जावे, आन्तर-सूतके दो वस्त्र एवं उत्तर-एक प्रावरणरूप ऊनका कम्बल,

---

અને પ્રમાણમાં અધિક નથી હોતાં કે ચોરોનું મન લલચાય. ઓછી કિંમતનાં ટુંકાં અને મેલાં વસ્ત્ર હોય છે, ચોર એને લઈને કરે પણ શું? આથી આ વસ્ત્રોને છુપાવવાની સાધુએ કોઇપણ પ્રકારની ચેષ્ટા ન કરવી જોઇએ. (સૂ૦૧)

હવે સૂત્રકાર ઠંડીની મોસમ પુરી થઈ જતાં ક્રમે ક્રમે એ વસ્ત્રોનો ત્યાગ કરી દેવો જોઈએ. એવું પ્રદર્શિત કરે છે-' अह पुण ' ઇત્યાદિ.

તે ભિક્ષુ આ વાત સમજે કે હેમન્તકાળ પૂરો થઈ ચુકેલ છે અને ગ્રીષ્મ સમય આવી ગયો છે, આ વખતે તે ભિક્ષુ જીર્ણ વસ્ત્રોનો ત્યાગ કરે-જે જે જીર્ણ થઇ ગયાં હોય એનો ત્યાગ કરી નિઃસંગ બને. ઠંડીના સમય વ્યતીત થઈ જવા છતાં પણ ક્ષેત્ર કાળ અને પુરૂષસ્વભાવના કારણે ઠંડીનો ઉપદ્રવ થઇ જાય તો તે શું કરે? આ પ્રકારની આશંકાનો ઉત્તર " सन्तरुत्तरे " ઇત્યાદિ સૂત્રાંશથી સૂત્રકાર સ્પષ્ટ કરે છે-" અથવા " આ પદ પક્ષાન્તરમાં છે, તેઓ કહે છે-જ્યારે આ પ્રકારની પરિસ્થિતિ ઉભી થાય તો તે ત્રણ વસ્ત્ર ધારણ કરી લે. આંતર-

पक्षान्तरे स सान्तरोत्तरः आन्तरं=सूत्रवस्त्रद्वयम् उत्तरं=प्रावरणवस्त्रं, ताभ्यां सहितो वस्त्रत्रयवान् भवेत्, शीतबाधया क्वचित् शरीरमाच्छादयेत्, क्वचिच्च शीतशङ्कया पार्श्वे स्थापयेत् न तु तत्परित्यजेत्। अथवा सः अवमचेलः=मूल्यतः प्रमाणतश्च हीन-जीर्णवस्त्रवान् भवेत्–कल्पनीयेषु त्रिषु वस्त्रेषु मध्ये चैकपरिहारेण वस्त्रद्वयं धारयेदिति भावः। अथवा शनैः शनैः शीतापगमे एकशाटकः द्वितीयवस्त्रपरित्यागेनैक-वस्त्रधारी भवेत्। अथवा सर्वथा शीतापगमे चैकमपि वस्त्रं परिहृत्य अचेलः=प्रावरणवस्त्ररहितो भवेत्। केवलं सदोरकमुखवस्त्रिकारजोहरणलज्जावस्त्रोपधिकः सन् विहरेत्।

इन सहित होनेका नाम सान्तरोत्तर है। क्षेत्र काल और पुरुषस्वभावकी अपेक्षासे यदि शीतकालकी बाधा आई हुई उसे ज्ञात हो तो वह साधु पूर्वोक्त दो वस्त्र सूतके और १ ऊनका कम्बल, इस प्रकार तीन वस्त्र रख लेवे। जब शीतकी बाधा उसे होवे तब तो यह उन्हें ओढ़ लेवे और यदि शीतबाधा न हो तो वह उन्हें पासमें ही रखे पर वस्त्रोंका त्याग न करे। अथवा वह अवमचेल रहे—हीन जीर्ण वस्त्र रखे। कल्पनीय तीन वस्त्रोंमें किसी एकके परित्यागसे दो वस्त्र रखे। शीत जैसे२ व्यतीत हो वैसे२ यह भी किसी एक द्वितीय वस्त्रका फिर त्याग करे और एक ही वस्त्र रखे। जब बिलकुल ही शीतकाल निकल जावे तब यह एक भी रखे हुए वस्त्रका परित्याग कर देवे और इस प्रकार यह प्रावरण वस्त्र से रहित हो जावे। पासमें केवल एक धागेसहित मुखवस्त्रिका रजोहरण और लज्जा निवारणार्थ एक पहननेका वस्त्र ही रखे।

સૂતરના બે વસ્ત્ર તેમજ ઉત્તર–એક પ્રાવરણરૂપ ઊનની કંબલ, આ સહિત થવાનું નામ સાન્તરોત્તર છે. ક્ષેત્ર કાળ અને પુરૂષસ્વભાવની અપેક્ષાથી જો ઠંડીની બાધા આવેલી જણાય તો તે સાધુ પૂર્વોક્ત બે વસ્ત્ર સુતરનાં અને એક ઉની કમ્બલ, આ પ્રકારે ત્રણ વસ્ત્ર રાખી લે. જ્યારે ઠંડીનો ઉપદ્રવ તેને લાગે ત્યારે તે એને ઓઢી લે. ઉપદ્રવ ઓછો થતાં પોતાની પાસે રાખે પણ વસ્ત્રોનો ત્યાગ ન કરે. અથવા—તે અવમચેલ રહે–હલકાં જુનાં વસ્ત્ર રાખે, કલ્પનીય ત્રણ વસ્ત્રોમાંથી એકનો પરિત્યાગ કરી બે વસ્ત્ર રાખે. ઠંડી ઓછી થતાં આ બે વસ્ત્રોમાંથી પણ કોઈ એક વસ્ત્ર તજી દે અને એક જ વસ્ત્ર રાખે, જ્યારે સંપૂર્ણપણે ઠંડી ઓછી થઇ જાય ત્યારે રાખેલા એક વસ્ત્રનો પણ તે ત્યાગ કરી દે. આ રીતે તે પ્રાવરણ વસ્ત્રથી રહિત બની જાય. પોતા પાસે ફક્ત દોરા સાથેની એક મુહપત્તી એક રજોહરણ અને લજ્જા સાચવવાના હેતુથી એક પહેરવાનું વસ્ત્ર, આટલું જ રાખે, બાકી કાંઈ નહીં.

किमर्थं क्रमेणैकैकं वसनं परिहार्यमित्याह-'लाघविक'-मित्यादि, 'लाघविकं' लघोर्भावो लाघवं तद् यस्यास्तीति लाघविकस्तं लाघविकं=स्वात्मानम् आगमयन्=सम्पादयन् भिक्षुः क्रमेण वसनं परिहरेत्। यद्वा-लाघविकं=देहोपकरणे कर्मणि च लघुताम् आगमयन्=सम्पादयन् स वसनं परिवर्जयेत्। तस्य=एतादृशस्य भिक्षोः एवं करणे तपः=कायक्लेशरूपम् अभिसमन्वागतं=प्राप्तं भवति कायक्लेशस्य तपोभेदत्वात्, तथा हि—"पंचहिं ठाणेहिं समणाणं निग्गंथाणं अचेलगत्ते पसत्थे भवइ, तं जहा-अप्पा पडिलेहा १ वेसासिए रूवे, २ तवे अणुमए, ३ लाघवे पसत्थे, ४ विउले इंदियनिग्गहे॥" छाया-पञ्चभिः स्थानैः श्रमणानां निर्ग्रन्थानामचेलकत्वं प्रशस्तं भवति-अल्पा प्रतिलेखना १, वैश्वासिकं रूपं २, तपोऽनुमतं ३, लाघवं प्रशस्तं ४, विपुल इन्द्रियनिग्रहः ५। इति।

मुनीनां वस्त्रलाघवेन प्रतिलेखनाऽल्पत्वं १ विश्वासपात्रत्वं २ तपःसद्भावः ३ प्रशस्तलाघवं ४ प्रभूततरेन्द्रियनिग्रहत्वं ५ च भवति भावः॥ सू०२॥

यह एक२ वस्त्रके परिहारका जो यहां क्रम बतलाया है उसका मतलब केवल इतना ही है कि इन पूर्वोक्त तीन वस्त्रोंके रखनेसे आत्मामें लाघव नहीं आता है, मुनिजन आत्मामें लाघव लानेके ही अभिलाषी होते हैं अतः ज्यों २ इनका परित्याग होगा त्यों २ आत्मामें इनके हटनेसे इन संबंधी भारका भी अभाव हो जायगा। इस आत्मामें एक प्रकारका लाघव नामका गुण प्रकट होगा। इस प्रकारसे रहनेवाले उस पडिमाधारी स्थविरकल्पी भिक्षुके कायक्लेश नामक तप आचरित होता है। कायक्लेश यह बाह्य तपका एक भेद है, जैसे-"पंचहिं ठाणेहिं" इत्यादि, अर्थात्-अल्पवस्त्र रखनेसे पांच स्थानोंद्वारा निर्ग्रन्थ श्रमणोंका अचेलपना प्रशस्त

આ રીતે એક એક વસ્ત્રનો ત્યાગ જે રીતે બતાવવામાં આવેલ છે એનો મતલબ ફકત એટલોજ છે કે-એ પૂર્વોકત ત્રણ વસ્ત્રો રાખવાથી આત્મામાં લાઘવ નહિ આવે. મુનિજનોનો આત્મા સદા સંતોષી અને કોઈ પણ પ્રકારની આકાંક્ષા વગરનો હોવો જોઈએ, આથી જેમ જેમ ત્યાગ થતો રહે તેમ તેમ આત્મામાં એના દૂર થવાથી એ સંબંધી ભારનો પણ અભાવ થાય છે, અને એથી આત્મામાં એક પ્રકારનો લાઘવ નામનો ગુણ પ્રગટ થાય છે, આ પ્રકારથી રહેવાવાળા તે પડિમાધારી સ્થવિરકલ્પી ભિક્ષુ કાયક્લેશ નામના તપને આચરનારા હોય છે. કાયક્લેશ એ બાહ્ય તપનો એક ભેદ છે. જેમ—"पंचहिं ठाणेहिं" ઇત્યાદિ. અલ્પ વસ્ત્ર રાખવાથી પાંચ સ્થાનો દ્વારા નિર્ગ્રન્થ શ્રમણોનું અચેલપણું પ્રશસ્ત

स्वमतिपरिकल्पितत्वनिरसनायाह-'जमेयं' इत्यादि,

मूलम्—जमेयं भगवया पवेइयं तमेव अभिसमिच्चा सव्वओ सव्वत्ताए समत्तमेव समभिजाणिज्जा ॥ सू० ३ ॥

छाया—यदेतद् भगवता प्रवेदितं तदेवाभिसमेत्य सर्वतः सर्वात्मतया सम्यक्त्वमेव समभिजानीयात् ॥ सू० ३ ॥

टीका—'य'-दित्यादि, यत्=पूर्वोक्तं तदेतत्सर्वं भगवता=महावीरेण प्रवेदितं=द्वादशपर्षदि प्ररूपितम्, मुनिः तदेव=पूर्वोक्तमेव सर्वतः=सर्वप्रकारैः सर्वात्मतया सकलात्मभावेन अभिसमेत्य विचार्य=सम्यक्त्वमेव समभिजानीयात्=आसेवनपरिज्ञया सेवेत । यद्वा-'समत्वमेवे'-तिच्छाया, तेन समत्वमेव=सचेलाऽचेलावस्थयोः समानभावम् समभिजानीयात् ॥ सू० ३ ॥

होता है, वे पांच स्थान ये हैं-१ प्रतिलेखना की अल्पता, २ विश्वासपात्रता, ३ तपका सद्भाव, ४ प्रशस्तलघुता, ५ प्रभूततर इन्द्रियोंकी निग्रहता ॥ सू० २ ॥

सूत्रकार अपनेकथनमें अपनी मतिद्वारा कल्पितताका निषेध करनेके लिये कहते हैं-'जमेयं' इत्यादि ।

जो कुछ ऊपर कहा गया है वह सब भगवान् महावीरद्वारा अपनी बारह प्रकारकी सभाओंमें प्ररूपित हुआ है अतः मुनि इस पूर्वोक्त कथन का सर्व प्रकारसे विचार कर इसे सत्यरूप से ही जाने । अथवा "समत्तमेव" की छाया "समत्वमेव" भी होती है, इसका अर्थ यह है कि पूर्वोक्त कथन भगवान् द्वारा ही कथित हुआ है, अतः मुनि सचेल और अचेल इन दोनों अवस्थाओं में समान भावका आसेवनपरिज्ञासे सेवन करे ॥ सू० ३ ॥

હોય છે. તે પાંચ સ્થાન આ છે—૧ પ્રતિલેખનાની અલ્પતા, ૨ વિશ્વાસપાત્રતા, ૩ તપનો સદ્ભાવ, ૪ પ્રશસ્તલઘુતા, ૫ પ્રભૂતતર ઇન્દ્રિયોની નિગ્રહતા. (સૂ૦૨)

સૂત્રકાર આ કથનમાં પોતાની મતિ-અનુસાર કલ્પિતતાનો નિષેધ કરતાં કહે છે-" जमेयं " ઈત્યાદિ.

જે કાંઈ ઉપર કહેવાઈ ગયું છે એ બધું ભગવાન મહાવીરદ્વારા બાર પ્રકારની સભાઓમાં પ્રરૂપિત થયેલ છે, આથી મુનિ આ પૂર્વોકત કથનનો સર્વ પ્રકારથી વિચાર કરી આને સત્યરૂપથી જ જાણે. અથવા " समत्तमेव "ની છાયા " समत्वमेव " પણ થાય છે આનો અર્થ એ છે કે પૂર્વોકત કથન ભગવાનનું જ કહેલ છે આથી મુનિ સચેલ અને અચેલ આ બન્ને અવસ્થાઓમાં સમાન ભાવનું આસેવનપરિજ્ઞાથી સેવન કરે. (સૂ૦૩)

शरीराशक्ततया मन्दाध्यवसाये सति किं कर्त्तव्यमिति-दर्शयति-' जस्स णं ' इत्यादि ।

मूलम्-जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ-पुट्टो खलु अहमंसि नालमहमंसि सीयफासं अहियासित्तए, से वसुमं सव्वसमन्नागयपन्नाणेणं अप्पाणेणं केइ अकरणयाए आउट्टे तवस्सिणो हु तं सेयं जमेगे विहमाइए तत्थावि तस्स कालपरियाए, सेऽवि तत्थ विअंतिकारए, इच्चेयं विमोहायतणं हियं सुहं खमं निस्सेयसं आणुगामियं-तिबेमि ॥ सू० ४ ॥

छाया—यस्य खलु भिक्षोरेवं भवति-स्पृष्टः खल्वहमस्मि नालमहस्मि शीतस्पर्शमध्यासितुम्, स वसुमान् सर्वसमन्वागतप्रज्ञानेनाऽऽत्मना कश्चिदकरणतयाऽऽवृतस्तपस्विनस्तदेव श्रेयो यदेको विहायआदिकं, तत्राऽपि तस्य कालपर्यायः, सोऽपि तत्र व्यन्तिकारकः, इत्येतद् विमोहायतनं हितं सुखं क्षमं निःश्रेयसमानुगामिकमिति ब्रवीमि ॥ सू० ४ ॥

टीका—' यस्ये '-त्यादि, यस्य=पूर्वोक्तस्य भिक्षोः=मुनेः खलु, एवं=वक्ष्यमाणोऽध्यवसायो भवति, तमेवाह-अहं स्पृष्टः=रोगातङ्कैः शीतादिना कामिन्युपसर्गेण वा पीडितोऽस्मि, शीतस्पर्शं=शीतजन्यदुःखविशेषं योषिदुपसर्गं भावशीतस्पर्शं वा अध्यासितुम्=अधिसोढुमहं नालं=न समर्थोऽस्मि । समुत्थिते च कामिन्युपसर्गे प्रतिकारान्तरविधानासमर्थः समयपरिपालको मुनिस्तदा किं कुर्यादित्याह-'स वसु-

---

शरीर अशक्त होनेके कारण यदि अध्यवसायोमें मंदता आ जाय तो मोक्षार्थी मुनिको क्या करना चाहिये ? इसे सूत्रकार प्रदर्शित करते है-'जस्स णं' इत्यादि।

जिस मुनिके इस प्रकारका वक्ष्यमाण अध्यवसाय होता है कि "मैं रोगोंके आतङ्कसे, शीत आदिके स्पर्शसे, अथवा भावशीत-कामिनीके उपसर्ग-से पीडित हूं, मैं इस शीतजन्य दुःखविशेषको अथवा, भावशीतस्पर्शरूप कामिनीके उपसर्गको सहनेके लिये समर्थ नहीं हूं" उस

શરીર અશક્ત થવાથી જો અધ્યવસાયોમાં મંદતા આવી જાય તો મોક્ષાર્થી મુનિએ શું કરવું જોઇએ? આ વાત સૂત્રકાર સૂત્રદ્વારા પ્રદર્શિત કરે છે-'जस्स णं' ઈત્યાદિ.

જે મુનિમાં આ પ્રકારનો-વક્ષ્યમાણ અધ્યવસાય હોય છે કે-"હું રોગોના ઉપદ્રવથી, ઠંડી વગેરેના સ્પર્શથી, અથવા ભાવશીત-કામિનીના ઉપસર્ગ-થી પીડિત છું. હું આ ઠંડીના દુઃખ વિશેષને અથવા ભાવશીતસ્પર્શરૂપ કામિનીના ઉપસર્ગને સહન

मान्' इत्यादि, सः=पूर्वोक्तविचारवान् कोऽपि=उपसर्गसहनाक्षमः सर्वसमन्वागतप्रज्ञानेन=समुपलब्धहेयोपादेयविशिष्टज्ञानवता, आत्मना=अन्तःकरणेन अकरणतया=उपसर्गप्रतीकारस्याकरणप्रतिज्ञया आवृतः=व्यवस्थितः वसुमान्=चारित्रधनो मुनिर्भवति। तादृशः किं कुर्यादित्याह-'तपस्विनः' इत्यादि, यत् यस्मिन् काले स्त्री भिक्षार्थमागतं मुनिं मोहयितुमुद्यता तं न मुञ्चति, सर्वथोपसर्गयितुमिच्छत्येव तत्=तदा तपस्विनः=चिरकालोपार्जितसंयमपर्यायस्य तपोधनस्योपसर्गाभिभवाऽसहि-

---

समय वह मुनि कि जो चारित्रका पालक है एवं कामिनी आदिके उपसर्ग उपस्थित होने पर उसके अन्य प्रतिकार करनेमें असमर्थ है तोक्या करे? इस का उत्तर देते हुए सूत्रकार कहते हैं कि-वह मुनि जिसके ये पूर्वोक्त विचार हैं अपने अन्तःकरणसे कि जो समुपलब्ध हेय और उपादेयके विशिष्ट ज्ञानसे युक्त है उस आये हुए उपसर्गको अच्छी तरह अकरणपनेसे सहन करे, अर्थात् मेरे ऊपर जो यह उपसर्ग स्त्री आदि द्वारा उपस्थित किया गया है मैं उसके अनुकूल कभी नहीं होऊँगा-विषयादिकों का सेवन इसके साथ कभी नहीं करूँगा चाहे प्राण भले ही निकल जावें, इस प्रकारकी अकरणपरिज्ञासे युक्त होता हुआ अपने चारित्ररूप धन का रक्षक बने। इस प्रकारसे जब उसकी दृढ़ता होगी तो भिक्षाके लिये आये हुए उस मुनिको मोहित करनेके लिये उद्यत कोई भी स्त्री-कामिनी उसे वश करनेके लिये जब भरपूर चेष्टा करती है, उसके संयमरूपी रत्नको लूंटनेके लिये वह कोई भी बनता उपाय नहीं छोड़ती है, अथवा

કરવામાં અસમર્થ છું." એ સમયે તે મુનિ કે જે ચારિત્રના પાલક છે અને કામિની આદિના ઉપસર્ગો ઉપસ્થિત થતાં એની સામે પ્રતિકાર કરવામાં અસમર્થ છે તે શું કરે? આનો ઉત્તર આપતાં સૂત્રકાર કહે છે કે-એ મુનિ જેના પૂર્વોકત વિચાર છે પોતાના અન્તઃકરણથી કે જે સમુપલબ્ધ હેય અને ઉપાદેયના વિશિષ્ટ જ્ઞાનથી યુકત છે એ આવેલા ઉપસર્ગને સારી રીતે અકરણપણાથી સહન કરે, અર્થાત્ મારા ઉપર જે આ ઉપસર્ગ સ્ત્રી આદિ દ્વારા ઉપસ્થિત કરવામાં આવેલ છે હું તેને અનુકૂળ કદી પણ નહીં બનું-વિષયાદિકનું સેવન એની સાથે કદિ નહિ કરૂં ચાહે મારા પ્રાણ ભલે નિકળી જાય. આ પ્રકારની અકરણપરિજ્ઞાથી મક્કમ રહી પોતાના ચારિત્રરૂપ ધનના રક્ષક બને, આ પ્રકારે જો એનામાં દૃઢતા હોય તો ભિક્ષાને માટે આવેલ એ મુનિને મોહિત કરવા તત્પર થયેલ કોઇ પણ સ્ત્રી-કામિની એને વશ કરવા માટે જ્યારે ભરપૂર ચેષ્ટા કરે છે, એના સંયમરૂપી રત્નને લૂંટવા માટે તે કોઈ પણ બનતો ઉપાય છોડતી નથી, અથવા કોઇ નિર્લજ્જ

ष्णोः केनाऽपि जनेन कामिन्या सह गृहे प्रवेश्य कृतनिरोधस्य ततो निःसरणोपाय-मलभमानस्य शीलभङ्गमनिच्छतो मुनेः, विहायआदिकं=वैहायसादिकं मरणं श्रेयः=प्रशस्तमस्ति। इत्थमुपसर्गाभिभवे सति स मुनिर्गले पाशबन्धनं विषभक्षणं जिह्वाकर्षणमुपरिष्टात् पतनं वा विधाय प्राणान् परित्यजेत्, न तु चारित्रं खण्डयेदिति परमार्थः। ममौत्सर्गिकैर्भक्तपरिज्ञेङ्गितमरणपादपोपगमनरूपैर्मरणैः शरीरपरित्याग एव

कोई निर्लज्ज मनुष्य उस स्त्रीके साथ उस मुनिको कि जिसने बहुत काल संयमपर्यायकी अच्छी तरह कमाई की है, और यही तपरूपी धन ही जिसके पास एक सहारा है, एवं जो उपसर्गजन्य पराभवको सहनेमें असहिष्णु है उसको उस घरमें प्रवेश करा देता है और बाहिर नहीं निकलने देता है, इस अवस्थामें उस मुनिका कि जिसे वहांसे निकलने का कोई उपाय नहीं सूझ रहा है, और जो अपने शीलके भंगसे डर रहा है, उसके लिये यही कर्तव्य मार्ग है कि वह उस समय वैहायस आदि मरण अंगीकार करे। अर्थात्—इस प्रकारके उपद्रव आने पर वह मुनि गलेमें फांसी लगा कर, विषका भक्षण कर या जिह्वाको आकर्षित (खींच) कर अपने प्राणोंका विसर्जन कर देवे, यदि कोई उपाय उसे हाथ न आ सके तो वह ऊपरसे गिर कर भी मर जावे पर अपने अमूल्य प्राणप्यारे चारित्रकी चोरी अपनी आंखोंके समक्ष न होने देवे। यह विचार उस समय अवश्य करे कि–मुझे तो उत्सर्ग मार्ग ही अपने प्राणोंसे अधिक प्यारा था, मैं तो वही चाहता था कि मेरा मरण

મનુષ્ય એ સ્ત્રીની સાથે એ મુનિને કે જેણે ઘણા કાળથી સંયમ પર્યાયની સારી કમાણી કરી છે અને એ જ તપરૂપી ધનનો જેની પાસે એક સહારો છે અને જે ઉપસર્ગજન્ય પરાભવને સહેવામાં અસહિષ્ણુ છે એને એ ઘરમાં પ્રવેશ કરાવી દઈ બહાર નિકળવા દેતા નથી. એવી અવસ્થામાં એ મુનિ કે જેનો ત્યાંથી નિકળવામાં કોઈ ઉપાય નથી સૂજતો અને જે પોતાના શીલના ભંગથી ડરી રહેલ છે, એને માટે એ જ કર્તવ્ય માર્ગ છે કે તે એ સમયે વૈહાયસ આદિ મરણ અંગીકાર કરે. અર્થાત્–આ પ્રકારનો ઉપદ્રવ આવવાથી તે મુનિ ગળામાં ફાંસી લગાવી, વિષનું ભક્ષણ કરી અથવા તો જીભને ખેંચી કાઢી પોતાના પ્રાણનું વિસર્જન કરી દે. જો કોઈ બીજો ઉપાય તેને ન સૂઝે તો ઉપરથી પડીને પણ પ્રાણનું વિસર્જન કરી દે. ગમે તેવી આપત્તિ વચ્ચે પણ પોતાના અમૂલ્ય ચારિત્રની ચોરી પોતાની આંખો સામે ન થવા દે. એ સમયે આ વિચાર તે અવશ્ય કરે કે મને તો ઉત્સર્ગ માર્ગ મારા પ્રાણ કરતાં પણ વધુ પ્યારો છે.

श्रेयान्, परन्तु तेषां चिरकालसाध्यतया कालक्षेपासहनयोग्येऽस्मिन्नवसरे न सम्भवोऽस्ति। उपसर्गश्च सोढुमनर्हश्चारित्रविराधकः समुपस्थितस्तस्मात्साम्प्रतमापवादिकमपि तत्क्षणनिष्पाद्यं वैहायस-गार्द्धपृष्ठाख्यं बालमरणं पण्डितमरणमेवेति भावः।

ननु वैहायसगार्द्धपृष्ठादिरूपबालमरणे सत्यनर्थाधिगमस्यागमे दर्शनं यथा—

भक्तपरिज्ञा, इङ्गितमरण, और पादपोपगमन, इन तीन मरणोंमें से किसी एक मरणकी आराधनासे होता, पर हाय! मुझ दुर्भागीके लिये यह जीवन का सुवर्ण अवसर देखनेके लिये नहीं मिला। इस प्रकार आत्माकी निंदा करता हुआ वह साधु यह देख कर कि-"इन मरणोंका समय चिरकाल साध्य है, और यह समय अब कालक्षेप करने योग्य नहीं है, इनकी सम्भावना भी यहां कैसे हो सकती है, यह चारित्रविध्वंसक उपद्रव जो दुर्निवार आ कर उपस्थित हो गया है इस लिये इस समय यही अपवाद-मार्गरूप मरण मेरे लिये पंडितमरण है, वैहायस, गार्द्धपृष्ठ आदि मरण बालमरण हैं, परन्तु मेरा काम तो इस समय इनसे ही साध्य होता है अतः इन्हें ही पंडितमरण मान कर मैं अपना काम कर लूं, इसीमें मेरा कल्याण है, वैहायस आदि मरण स्वीकार करे।

शङ्का—वैहायस और गार्द्धपृष्ठरूप बालमरणसे प्राणोंको छोड़नेवालों को अनर्थकी प्राप्ति आगममें बतलाई है, जैसे—

હું તો એ ચાહું છું કે મારૂં મરણ ભકતપરિજ્ઞા, ઇંગિત મરણ, અને પાદપોપગમન, આ ત્રણ મરણમાંથી એક મરણની આરાધનાથી થાય, પરંતુ મારા જેવા દુર્ભાગીને માટે જીવનનો આ સુવર્ણ અવસર જોવાનો ન મળ્યો, આ રીતે આત્માની નિંદા કરતાં કરતાં તે સાધુ આ જોઈને-" એ મરણનો સમય ચિરકાળસાધ્ય છે, અને આ સમય હવે કાળક્ષેપ કરવા યોગ્ય નથી તો એની સંભાવના પણ કેમ થઈ શકે? આ ચારિત્રનો નાશ કરનાર ઉપદ્રવ આવીને પડ્યો છે, એ કારણે મારે માટે આ સમયે અપવાદમાર્ગરૂપ મરણ પંડિત મરણ છે. વૈહાયસ, ગાર્દ્ધપૃષ્ઠ વગેરે મરણ બાળ-મરણ છે, મારૂં કામ તો આ સમયે આથી જ સાધ્ય બને છે. આથી આને જ પંડિતમરણ માનીને હું મારૂં કામ કરી લઉં. આમાં જ મારૂં કલ્યાણ છે." વૈહાયસ આદિ મરણ સ્વીકાર કરે.

શંકા—વૈહાયસ અને ગાર્દ્ધપૃષ્ઠરૂપ બાળમરણથી પ્રાણ છોડવાવાળાને અનર્થની પ્રાપ્તિ થવાનું આગમમાં બતાવેલ છે. જેમ—

" इच्चेएणं बालमरणेणं मरमाणे जीवे अणंतेहिं नेरइयभवग्गहणेहिं अप्पाणं संजोएइ जाव अणाइयं च णं अणदयग्गं चाउरंतं संसारकंतारं भुज्जो भुज्जो परियट्टइ" इति। छाया-इत्येतेन बालमरणेन म्रियमाणो जीवो अनन्तैर्नैरयिकभवग्रहणैरात्मानं संयोजयति यावदनादिकं चानवदग्रं चातुरन्तं संसारकान्तारं भूयो भूयः परिवर्तते "। इति प्रतिषिद्धत्वेन कथं निन्दितमाचरतीति चेदाह-मैथुनं हि सकलस्याऽप्यधर्मस्य मूलं महादोषपुञ्जभूतम्, तेन च निखिलव्रतभङ्गो भवति, तथा चोक्तं भगवता-

" मूलमेयमहम्मस्स महादोससमुस्सयं। "
तम्हा मेहुणसंसग्गं निग्गंथा वज्जयंति णं " ॥ १ ॥ (इति दशवै० अ० ६)
छाया—मूलमेतदधर्मस्य, महादोषसमुच्छ्रयम् ॥
तस्मान्मैथुनसंसर्गं, निर्ग्रन्था वर्जयन्ति तम् ॥१ ॥ इति।

"इच्चेएणं बालमरणेणं मरमाणे जीवे अणंतेहिं णेरइयभवग्गहणेहिं अप्पाणं संजोएइ जाव अणाइयं च णं अणवयग्गं चाउरंतं संसारकंतारं भुज्जो भुज्जो परियट्टइ " इति।

अर्थात्—इस बालमरणसे मरनेवाला जीव अनन्त वार अपनी आत्माको नरकमें डालता है और वह अनादि अनन्त संसारमें परिभ्रमण करता है, इत्यादि, अतः जब आगममें इसका निषेध है तो वह उस निन्दित बालमरणका आचरण क्यों करता है ?

उत्तर—ऐसा नहीं कहना चाहिये, क्यों कि मैथुन सकल अधर्म का मूल है और अनेक दोषोंका पुञ्ज है। इसके सेवनसे समस्त व्रतोंका भंग होता है। इस प्रकार दशवैकालिकके अध्ययन छट्ठेमें कहा है, जैसे- "मूलमेयमहम्मस्स महादोससमुस्सयं" इत्यादि। यह मैथुन कर्म अधर्म

इच्चेएणं बालमरणेणं मरमाणे जीवे अणंतेहिं णेरइभवग्गहणेहिं अप्पाणं संजोएइ जाव अणाइयं च णं अणवयग्गं चाउरंतं संसारकंतारं भुज्जो भुज्जो परियट्टइ " इति।

અર્થાત્—આ બાલમરણથી મરવાવાળા જીવ અનન્તવાર પોતાના આત્માને નરકમાં નાખે છે, અને તે અનાદિ અનન્ત સંસારમાં પરિભ્રમણ કર્યા કરે છે.ઈત્યાદિ. આથી આગમમાં એનો નિષેધ છે તો પછી આવું બાળમરણનું નિન્દિત આચરણ કેમ કરે છે?

ઉત્તર—એવું ન કહેવું જોઈએ. કેમ કે મૈથુન સકલ અધર્મનું મૂળ છે અને અનેક દોષોનો પુંજ છે. એના સેવનથી સમસ્ત વ્રતોનો ભંગ થાય છે આ પ્રકારે દશવૈકાલિકના છઠ્ઠા અધ્યયનમાં કહેલ છે. જેમ—" मूलमेयमहम्मस्स महादोससमुस्सयं" ઈત્યાદિ. એ મૈથુન કર્મ અધર્મનું મૂળ અને મહાદોષોની ખાણ છે,

अतस्तत्सेवनापेक्षयाऽऽपवादिकबालमरणमपि पण्डितमरणमेवेत्यस्यात्रैव प्रतिपादितत्वात्। तदेव दर्शयति-'तत्राऽपो'-त्यादि, तत्राऽपि=उपसर्गाभिभवावसरे वैहायसगार्द्धपृष्ठादिमरणेऽपि तस्य=समुपस्थितोपसर्गाभिभवस्य मुनेः कालपर्याय एव चिरकालं संयमपरिरक्षणं विदधतो मुनेर्यथा द्वादशवार्षिकसंलेखनाविधिना शरीरकृशीकरणपूर्वकाऽनशनरूपेण कालपर्यायेण भक्तपरिज्ञादिमरणं गुणाय भवति, तद्वत् तदा तस्य वैहायस-गार्द्धपृष्ठमरणमपि गुणायैवेत्याशयः। यः कोऽपि बहुभिरपि कालपर्यायैर्यावन्ति कर्माण्यपनयति तावन्ति च कर्माणि स स्तोके नैव कालेन दूरी-

---

का मूल और महादोषों की खान है। ऐसा समझ कर ही निर्ग्रन्थ उसका सेवन नहीं करते हैं।

इसलिये उसके सेवनकी अपेक्षा अपवादस्वरूप बाल मरण भी पण्डितमरण ही है, यह बात यहां पर प्रतिपादित की गई है। इसी विषयको सूत्रकार दिखलाते हैं-'तत्थवि'-इत्यादि, उपसर्गजन्य अभिभवके समयमें वैहायस और गार्द्धपृष्ठ आदि बालमरण होने पर भी जैसे चिरकाल तक संयमकी रक्षा करनेवाले मुनिके लिये बारह वर्ष की संलेखनाविधिसे शरीरको कृश करनेपूर्वक अनशनरूप कालपर्यायसे भक्तपरिज्ञादि मरण लाभदायक होता है उसी प्रकार उपसर्गजन्य अभिभव जिस मुनिके उपस्थित हो चुका है उस मुनिके लिये वैहायस और गार्द्धपृष्ठ मरण भी लाभदायक होता है। जो कोई भी अव्रती प्राणी बहुत कालपर्यायों द्वारा जितने कर्मोंका नाश करता है उतने कर्मोंका नाश वह मुनि थोडेसे ही कालमें कर देता है। इसी अर्थको प्रकट करते हुए

એવું સમજીને જ નિર્ગ્રન્થ એનું સેવન કરતા નથી.

આ કારણે એના સેવનની અપેક્ષા અપવાદસ્વરૂપ બાળમરણ પણ પંડિતમરણ જ છે, એ વાત પણ અહિં પ્રતિપાદિત કરવામાં આવી છે. આ વિષયને સૂત્રકાર બતાવે છે—' तत्थ वि' ઇત્યાદિ.

ઉપસર્ગજન્ય અભિભવના સમયે વૈહાયસ અને ગાર્દ્ધપૃષ્ઠ આદિ બાળમરણ થવાથી પણ જેમ ચિરકાળ સુધી સંયમની રક્ષા કરવાવાળા મુનિને માટે બાર વર્ષની સંલેખનાવિધિથી શરીરને કૃશ-નબળું કરવાની સાથે અનશનરૂપ કાલપર્યાયથી ભકતપરિજ્ઞાદિમરણ લાભદાયક થાય છે એ જ રીતે ઉપસર્ગજન્ય અભિભવ જે મુનિના ઉપર આવી પડે છે એ મુનિ માટે પણ વૈહાયસ અને ગાર્દ્ધપૃષ્ઠ મરણ પણ લાભદાયક બને છે. જેમ કોઈ અવ્રતી પ્રાણી લાંબા કાળને અંતે કાલપર્યાયોદ્વારા જેટલા કર્મોનો નાશ કરી શકે છે એટલા જ કર્મોનો નાશ તે

करोतीति हृदयम्। तमेवार्थं प्रकटयन्नाह-'सोऽपी-'त्यादि, सोऽपि=वैहायसादि-कारी 'अपि' शब्देन केवलभक्तपरिज्ञादेरानुपूर्व्या न कारकः, इत्यर्थो द्योत्यते, तत्र वैहायसादिमरणे 'व्यन्तिकारकः' वि=विशेषेण अन्तिः-व्यन्तिः=अन्तक्रिया, तस्याः कारकः व्यन्तिकारकः=संसारान्तकारको मुनिर्भवति, अत एव तस्य तदा वैहायसादिमरणमप्यौत्सर्गिकमेवेत्यभिप्रायः। उपसंहरन्नाह-'इत्येत'-दित्यादि, इति=पूर्वोक्तम् एतत्=वैहायसगार्द्धपृष्ठमरणं, विमोहायतनम् वि=विगतो मोहः= अविवेको येषां ते विमोहाः=मोहरहिताः महापुरुषास्तेषाम् आयतनं कर्तव्यतया स्थानम् विमोहायतनम्, एवं हितम्=इष्टम् कल्याणकारित्वात्, तथा सुखं शिवसु-खजनकं कर्मनिर्जरापूर्वकमव्याबाधामन्दानन्दसन्दोहजनकत्वात्, एवं क्षमं=समर्थं

सूत्रकार 'सोवि' इत्यादि सूत्रांश कहते हैं-यहां 'अपि' शब्द यह प्रकट करता है कि केवल भक्तपरिज्ञा आदिको अनुक्रमसे नहीं करनेवाला भी वह वैहायस आदि मरण प्राप्तकरनेवाला मुनि उस मरणमें भी अन्तक्रिया रूप संसारका अन्त करनेवाला होता है, इसलिये उसका वैहायस आदि मरण भी औत्सर्गिक ही है।

इस विषयका उपसंहार करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि यह वैहा-यस और गार्द्धपृष्ठ मरण विमोहायतन-जिनका मोह-अविवेक नष्ट हो चुका है ऐसे मोहरहित महापुरुषोंका कर्तव्यरूपसे स्थान-है, यह कल्याणकारी होनेसे हित-इष्ट है, कर्मोंकी निर्जरापूर्वक अव्याबाध अमन्द आनंदपरम्पराका जनक होनेसे वह सुख-सुखस्वरूप है, अर्थात् शिवसुखका

મુનિ થોડા જ કાળમાં કરી દે છે. આ અર્થને પ્રગટ કરતાં સૂત્રકાર "सोऽवि" ઈત્યાદિ સૂત્રાંશ કહે છે-અહિં "अपि" શબ્દ એવું પ્રગટ કરે છે કે કેવળ ભક્ત-પરિજ્ઞા આદિને અનુક્રમથી ન કરવાવાળા પણ એ વૈહાયસ આદિ મરણ પ્રાપ્ત કરનાર મુનિ એ મરણમાં પણ અન્તક્રિયારૂપ સંસારનો અન્ત કરવાવાળા હોય છે. આ કારણ એનું વૈહાયસ આદિ મરણ પણ ઔત્સર્ગિક જ છે.

આ વિષયનો ઉપસંહાર કરતાં સૂત્રકાર કહે છે કે આ વૈહાયસ અને ગાર્દ્ધપૃષ્ઠ મરણ વિમોહાયતન-જેમનો મોહ-અવિવેક નષ્ટ થઈચુકેલ છે, એવા મોહરહિત મહાપુરૂષોનું કર્તવ્યરૂપથી સ્થાન-છે. એ કલ્યાણકારી હોવાથી હિત-ઈષ્ટ છે. એ કર્મોની નિર્જરાપૂર્વક અવ્યાબાધ અમંદ આનંદપરંપરાને આપનાર હોવાથી તે સુખ-સુખસ્વરૂપ છે, અર્થાત્ શિવસુખના આપનાર છે, વજ્ર જે પ્રકારે પર્વતોનું

वज्रवत् कर्मविदारणशक्तिमत्त्वात् ,तथा निःश्रेयसं-निःश्रेयसकारकं कर्मापनयनविधायकत्वात् , एवम् आनुगामिकम् आत्मनो जन्ममरणाद्यनन्तदुःखजालमुच्छेद्य मोक्षानुकूलगम नकारकत्वात् । एतादृशं मरणं तस्य मुनेर्मङ्गलरूपमेव भवतीति भावः । ' इति ब्रवीमी '-त्यस्यार्थस्तूक्तरीत्या बोध्यः ॥ सू० ४ ॥

॥ अष्टमाध्ययनस्य चतुर्थ उद्देशः समाप्तः ॥ ८-४ ॥

देनेवाला है । वज्र जिस प्रकार पर्वतोंको भेद देता है उसी प्रकार यह मरण भी कर्मोंके विदारण करनेमें समर्थ होनेसे क्षम-शक्तिशाली है । तथा कर्मोंको आत्मासे भिन्न करानेवाला होनेसे यह निःश्रेयस-मोक्षका कारक है, और आत्माको जन्म मरण आदि अनंत दुःखरूपी पाशका उच्छेदन कर मोक्षकी ओर ले जानेवाला होनेसे आनुगामिक है । ऐसा यह मरण उस मुनिके लिये मङ्गलरूप ही होता है ॥ सू० ४ ॥

॥आठवें अध्ययनका चतुर्थ उद्देश समाप्त ॥८-४॥

ભેદન કરે છે એ જ રીતે આવું મરણ પણ કર્મોનો નાશ કરવામાં સમર્થ હોવાથી ક્ષમ-શકિતશાળી છે. તથા કર્મોને આત્માથી ભિન્ન કરનાર હોવાથી તે નિઃશ્રેયસ-મોક્ષ આપનાર છે. અને આત્માને જન્મ મરણાદિ અનન્ત દુઃખરૂપી ફાંસલાનું છેદન કરી મોક્ષની તરફ લઈ જનારા હોવાથી તે આનુગામિક છે. એવું મરણ તે મુનિને માટે મંગળરૂપ થાય છે. (સૂ૦૪)

આઠમા અધ્યયનનો ચોથો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૮-૪ ॥

। अथाष्टमाध्ययनस्य पञ्चम उद्देशः ।

अथ चतुर्थोद्देशकथनानन्तरं सम्प्रति पञ्चमोद्देशः समारभ्यते । अस्यानन्तरोद्देशेन सहाऽयमभिसम्बन्धः—अनन्तरोद्देशे स्त्रीप्रभृत्युपसर्गाऽभिभवप्राप्तौ वैहायस–गार्द्ध-पृष्ठादिकं बालमरणं मुनेराचरणीयमित्युक्तम् । इह तु रोगादिना ग्लानिमुपगतो मुनिस्तद्विपरीतं भक्तपरिज्ञाख्यं मरणमङ्गीकुर्यादिति प्रतिपादयन् मुनेर्ग्लानतामुप-वर्णयितुं तावत्प्रक्रमते–' जे भिक्खू ' इत्यादि ।

मूलम्—जे भिक्खू दोहिं वत्थेहिं परिवुसिए पायतइएहिं, तस्स णं नो एवं भवइ--तइयं वत्थं जाइस्सामि । से अहेस णिज्जाइं वत्थाइं जाइज्जा जाव एवं खु तस्स भिक्खुस्स साम-ग्गियं। अह पुण एवं जाणिज्जा उवाइक्कंते खलु हेमंते गिम्हे पडिवण्णे अहापरिजुन्नाइं वत्थाइं परिट्ठविज्जा अदुवा संतरुत्तरे,अदुवा ओम-

---

आठवें अध्ययनका पाँचवाँ उद्देश ।

चतुर्थ उद्देशाके कथन करने बाद अब पंचम उद्देशाका कथन प्रारंभ होता है, इसका चतुर्थ उद्देशाके साथ यह संबंध है–वहां 'निष्प्रतीकार स्त्री आदि द्वारा कृत उपसर्गसे अभिभव प्राप्त होने पर मुनिको अन्य उपायके अभावसे वैहायस एवं गार्द्धपृष्ठ मरण आदि मरण अङ्गीकार कर लेना चाहिये' यह बात समझाई गई है । इस उद्देशमें " ग्लानि को प्राप्त हुआ मुनि उससे विपरीत भक्तपरिज्ञा नामक मरण अङ्गीकार करे " इस विषयका वर्णन किया जायगा, अतः मुनिकी ग्लानताका वर्णन करनेके लिये सूत्रकार कहते हैं–" जे भिक्खू " इत्यादि ।

આઠમા અધ્યયનનો પાંચમો ઉદ્દેશ.

ચોથા ઉદ્દેશના કથન બાદ હવે પાંચમા ઉદ્દેશનો પ્રારંભ થાય છે. તેનો ચોથા ઉદ્દેશની સાથે એવો સંબંધ છે–ત્યાં નિષ્પ્રતીકાર સ્ત્રી આદિ દ્વારા કરાએલા ઉપસર્ગથી અભિભવ પ્રાપ્ત થતાં મુનિએ અન્ય ઉપાય ન હોવાથી વૈહા-યસ અને ગાર્દ્ધપૃષ્ઠ મરણ આદિ મરણ અંગીકાર કરી લેવું જોઈએ, એ વાત સમજાવવામાં આવેલ છે. આ ઉદ્દેશમાં " ગ્લાનિથી ભરપૂર મુનિ તેનાથી વિપ-રીત ભક્તપરિજ્ઞા નામના મરણને અંગીકાર કરે " આ વિષયનું વર્ણન કરવામાં આવશે. આથી મુનિની ગ્લાનિનું વર્ણન કરવા માટે સૂત્રકાર કહે છે–" જે ભિક્ખૂ "ઇત્યાદિ.

चेले, अदुवा एगसाडे, अदुवा अचेले, लाघवियं आगममाणे तवे से अभिसमन्नागए भवइ। जमेयं भगवया पवेइयं तमेव अभिसमिच्चा सव्वओ सव्वत्ताए सम्मत्तमेव समभिजाणिया । जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ-पुट्ठो अबलो अहमंसि नालमहमंसि गिहंतरसंकमणं भिक्खायरियगमणाए, से एवं वयंतस्स परो अभिहडं असणं वा४ आहट्टु दलइज्जा, से पुव्वामेव आलोइज्जा-आउसंतो ! गाहावइ! नो खलु मे कप्पइ अभिहडं असणं वा४ भुत्तए वा पायए वा, अन्ने वा एयप्पगारे ॥ सू० १ ॥

छाया—यो भिक्षुर्द्वाभ्यां वस्त्राभ्यां पर्युषितः पात्रतृतीयाभ्यां, तस्य खलु नो एवं भवति–तृतीयं वस्त्रं याचिष्ये । स यथैषणीयानि वस्त्राणि याचेत यावत्–एवं खलु तस्य भिक्षोः सामग्र्यम् । अथ पुनरेवं जानीयात् उपातिक्रान्तः खलु हेमन्तः, ग्रीष्मः प्रतिपन्नः, यथापरिजीर्णानि वस्त्राणि परिष्ठापयेत्, अथ वा सान्तरोत्तरः, अथवा अवमचेलः, अथवा एकशाटः, अथवा अचेलः, लाघविकमागमयन् तपस्तस्याभिसमन्वागतं भवति, यदेतद् भगवता प्रवेदितम् तदेवाभिसमेत्य सर्वतः सर्वात्मतया सम्यक्त्वमेव समभिजानीयात् । यस्य खलु भिक्षोरेवं भवति–स्पृष्टोऽबलोऽहमस्मि, नालमहमस्मि गृहान्तरसंक्रमणं भिक्षाचर्यागमनाय, तदेवं वदतः परोऽभिहृतमशनं वा ४ आहृत्य दद्यात्, स पूर्वमेवाऽऽलोचयेत्–आयुष्मन्! गाथापते ! नो खलु मे कल्पतेऽभिहृतमशनं ४ भोक्तुं वा पातुं वा, अन्यानप्येवंप्रकारान्॥सू० १॥

टीका—'यो भिक्षु'–रित्यादि, पूर्वोद्देशे त्रिकल्पपर्युषितः स्थविरकल्पिको भवेत्, कल्पद्वयपर्युषितो हि नियमतो जिनकल्पिक–परिहारविशुद्धिक–यथालन्दिक

पूर्व—चतुर्थ उद्देशमें यह बतलाया जा चुका है कि स्थविरकल्पी मुनि तीन वस्त्र और एक पात्रसे व्यवस्थित होता है, अर्थात् तीन वस्त्रोंको रखनेके कल्पवाला स्थविरकल्पी होगा। यहां दो वस्त्र रखनेका कल्प जो प्रकट किया गया है उससे यह बात मालूम होती है कि दो वस्त्रोंके रखनेका कल्पवाला

આગળના ચોથા ઉદ્દેશમાં એવું બતાવવામાં આવેલ છે કે સ્થવિરકલ્પી મુનિ ત્રણ વસ્ત્ર અને એક પાત્રથી વ્યવસ્થિત હોય છે, અર્થાત્ ત્રણ વસ્ત્રો રાખવાના કલ્પવાળા સ્થવિરકલ્પી સાધુ હોય છે. બે વસ્ત્ર રાખવાનો કલ્પ જે પ્રગટ કરેલ છે તેનાથી એ વાત માલુમ થાય છે કે બે વસ્ત્રના રાખવાવાળા સાધુ નિયમથી જીનકલ્પી,

-प्रतिमाप्रतिपन्नेष्वन्यतमोऽत्र कथितः। द्वाभ्यां वस्त्राभ्यां पर्युषितः, इत्यनेनैकः कार्पासिकोऽपर और्णिकः, इति गृह्यते, वस्त्रसामान्यवाचित्वप्रतिपादनात्। 'जे भिक्खू' इत्याद्यारभ्य 'समत्तमेव समभिजाणिया' इत्यन्तस्य व्याख्या त्वेतदध्ययनस्य चतुर्थोद्देशान्तर्गत-प्रथम-द्वितीय-तृतीय-सूत्रव्याख्यावद्विज्ञेया, नवरमत्र पात्रतृतीयं वस्त्रद्वयं भवतीति, ततोऽधिकं न याचेत। यस्य खलु भिक्षोरेवं भवति-अहं स्पृष्टः=

साधु नियमसे जिनकल्पी, परिहारविशुद्धिक, यथालन्दिक एवं प्रतिमा-प्रतिपन्न, इन साधुओंमें से कोई एक होगा। "द्वाभ्यां वस्त्राभ्यां पर्युषितः" इस कथनसे यद्यपि सामान्यतया दो वस्त्रोंके ही रखनेका कल्प कथित हुआ है परन्तु उन दो वस्त्रोंमें एक वस्त्र सूत्रका और एक वस्त्र ऊनका बना हुआ कम्बल, ऐसे दो वस्त्र ही परिगणित हुए हैं, अतः वस्त्रसामान्य अर्थका प्रतिपादन करनेवाले इस वस्त्र शब्दसे इन दो वस्त्रोंका ही यहां ग्रहण हुआ है, ऐसा समझना चाहिये। "जे भिक्खू" यहांसे ले कर "समत्तमेव समभिजाणिया" यहां तकके पदोंकी व्याख्या इस अध्ययनके चतुर्थ उद्देशके अन्तर्गत पहिले दूसरे तीसरे सूत्रोंकी व्याख्या जैसी ही समझनी चाहिये। उनमें तीन वस्त्र और एक पात्रको लेकर व्याख्या की गई है यहां पर दो वस्त्र एक पात्रको ले कर व्याख्या होगी, बस उनसे इस सूत्रके पदोंकी व्याख्यामें यही विशेषता है, इस लिये इस व्याख्या के अनुसार मुनि अधिक की याचना न करे।

પરિહારવિશુદ્ધિક, યથાલન્દિક, અને પ્રતિમાપ્રતિપન્ન, એવા સાધુઓમાંથી અહીં કોઈ એકનું ગ્રહણ કરેલ છે. "द्वाभ्यां वस्त्राभ्यां पर्युषितः" આ કથનથી યદ્યપિ સામાન્યતયા બે વસ્ત્રને જ રાખવાનો કલ્પ કથિત થએલ છે, પરન્તુ તે બે વસ્ત્રોમાં એક સુતરનું અને એક વસ્ત્ર ઉનનું બનેલ કમ્બલ, એવાં બે વસ્ત્ર જ પરિગણિત થયેલ છે માટે વસ્ત્રસામાન્ય અર્થનું પ્રતિપાદન કરવાવાળા આ વસ્ત્ર શબ્દથી આ બે વસ્ત્રોનોજ સ્વીકાર કરેલ છે, એવું સમજવું જોઈએ. "जे भिक्खू" અહીંથી લઈ "समत्तमेव समभिजाणिया" અહિં સુધીના પદોની વ્યાખ્યા આ અધ્યયનના ચોથા ઉદ્દેશના અંતર્ગત પહેલા બીજા અને ત્રીજા સૂત્રની વ્યાખ્યા જેવી જ સમજવી જોઇએ. તેમાં ત્રણ વસ્ત્ર અને એક પાત્રને લઇને વ્યાખ્યા કરવામાં આવેલ છે, અહિં બે વસ્ત્ર અને એક પાત્રને લઇને વ્યાખ્યા થશે. બસ આથી આ સૂત્રના પદોની વ્યાખ્યામાં એ જ વિશેષતા છે, તેને માટે આ વ્યાખ્યાનુસાર મુનિ અધિકની યાચના ન કરે.

वातादिरोगविशेषैः पीडितः, अबलः=शक्तिरहितोऽस्मि, अत एव भिक्षाचर्यागमनाय=भिक्षार्थं गृहान्तरसंक्रमणं=गेहाद् गेहान्तरगमनं कर्तुम् अहं नालमस्मि=समर्थो नैवास्मीति । तदेवम्=इत्येवम् एतादृशवाक्यं वदतः साधोः उपलक्षणाद्अवदतोऽपि च परः=गाथापतिः प्रकृतिभद्रकः सम्प्रदायानुरक्तो वा अभिहृतं=षड्जीवनिकायविराधनासम्पादितम् अशनं=चतुर्विधमाहारम् अभिहृत्य=स्वगृहादितः समानीय दद्यात् । तद्-गृहस्थोपकल्पितमशनादिकं परिहरता जीवनस्पृहारहितेन ग्लानेनाऽपि मुनिना वीतरागोपदेशमनुगच्छता मरणमपि स्वीकार्यं न तु तदशनादिकं ग्राह्यमित्याशयः ।

उनके बादके पदोंकी व्याख्या इस प्रकार है–जिस भिक्षुके चित्तमें इस प्रकारका विचार आता है कि–" मैं वात आदि रोगविशेषोंसे आक्रान्त हो कर शक्तिरहित हो गया हूं अतः भिक्षाचर्या निमित्त एक घरसे दूसरे घर जानेकी अब मुझमें शक्ति नहीं रही है " इस प्रकारसे कहनेवाले अथवा उपलक्षणसे नहीं कहनेवाले उस साधुके निमित्त कोई गृहस्थ, कि जो प्रकृतिसे भद्र एवं अपने सम्प्रदायमें अनुरक्त है, वह षड्जीवनिकायकी विराधनासे संपन्न हुए चार प्रकारके आहारको अपने घरसे मुनिके स्थानपर ला कर यदि उन्हें देवे तो गृहस्थद्वारा लाये गये उस आहारादिकको, अपने जीवनमें भी स्पृहारहित बना हुआ वह ग्लान साधु न लेवे, और वीतरागके उपदेशका अनुसरण करनेवाला होनेसे वह अपनी मृत्यु तककी भी परवाह न करे। इस अवस्थामें उसकी यदि मृत्यु भी हो जाय तो वह अच्छी, पर उसे अकल्पनीय उस अभ्याहृत आहारादिकका ग्रहण करना कथमपि ठीक नहीं है । इस लिये जिनक-

તેના પછીના પદોની વ્યાખ્યા આ પ્રકારની છે–જે ભિક્ષુના ચિત્તમાં આ પ્રકારનો વિચાર આવે છે કે—"હું વાત આદિ રોગોથી વ્યાકુળ બની શક્તિરહિત બની ગયેલ છું માટે ભિક્ષાચર્યા નિમિત્ત એક ઘરેથી બીજા ઘરે જવાની હવે મારામાં શક્તિ રહી નથી" આ પ્રકારથી કહેવાવાળા અથવા ઉપલક્ષણથી નહીં કહેવાવાળા એ સાધુના નિમિત્ત કોઈ ગૃહસ્થ કે જે પ્રકૃતિથી ભદ્ર અને પોતાના સંપ્રદાયનો અનુરાગી છે તે ષડ્જીવનિકાયની વિરાધનાથી સંપન્ન બનેલ ચાર પ્રકારના આહારને પોતાને ઘેરથી મુનિના સ્થાનપર લાવીને તે તેને આપે તો ગૃહસ્થદ્વારા લાવવામાં આવેલ એ આહારાદિકનો પોતાના જીવનમાં પણ સ્પૃહારહિત બનેલ ગ્લાન સાધુ ન લે, અને વીતરાગના ઉપદેશનું અનુસરણ કરવાવાળા હોવાથી તે પોતાના મૃત્યુ સુધીની પરવા પણ ન કરે. આ અવસ્થામાં કદાચ તેનું મૃત્યુ પણ થઈ જાય તો પણ અકલ્પનીય એ અભ્યાહૃત આહારાદિકનું ગ્રહણ

तदा मुनिः किं कुर्यादित्याह-'स' इत्यादि-सः=जिनकल्पिकाद्यन्यतमो मुनिः पूर्वमेव= =आहारादिग्रहणात्प्रथममेव आलोचयेत्=' अधःकर्मादिदोषदूषिततयाऽभ्याहततया च प्रासुकमप्यशनादिकमेतन्न मम कल्पते, तत्सेवनापेक्षया मरणमेव श्रेयः' इति विचारयेत्, तं गृहपतिं संबोधयेच्च, तद्यथा-हे आयुष्मन्! गाथापते! एतदभ्याहृतमशनं चतुर्विधम् सदोषं निर्दोषं वा यथायोग्यं भोक्तुमुपभोक्तुं वा पातुं वा अन्यानपि=अशनाद्यतिरिक्तानपि वस्त्र-पात्रादिकान् एतत्प्रकारान् अभ्याहृतान् अधःकर्मादिदोषदुष्टान् वा न मम कल्पत इति, इत्येवं दातुमुद्यतं गृहपतिमनासेवनयाऽऽज्ञापयेत् ॥ सू० १ ॥

ल्पिक आदि मुनिजनों में से कोई भी मुनिजन क्यों न हो वह आहार आदिके ग्रहणके पहिले ही इस बात की आलोचना करे कि यह "आहार आदि सामग्री आधाकर्मी आदि दोषोंसे दूषित होनेसे, एवं अभ्याहृत-लाई गई होनेसे प्रासुक होने पर भी मुझे कल्प्य नहीं है, इसके सेवनकी अपेक्षा मरण ही अच्छा है" ऐसा विचार करे। तथा लाकर देनेवाले उस गृहस्थको भी इस प्रकार समझावे कि-"हे आयुष्मन्! गृहस्थ! यह लाया गया चारों प्रकारका आहार, अथवा यथायोग्य वस्त्र पात्र आदि अन्य वस्तुएं जो इसी प्रकार की हैं चाहे सदोष हों चाहे निर्दोष हों, मेरे भोग उपभोग एवं पानके योग्य नहीं हैं, क्यों कि ये सब आधाकर्मादिदोषोंसे युक्त हैं। आधाकर्मादिदोषविशिष्ट आहारादिक सामग्री साधु को कल्प्य नहीं मानी गई, है इस लिये मैं इन सबका परिहार करता हूं।" सू० १ ॥

કરવું ઠીક નથી. આમાં જીનકલ્પી આદિ મુનિજનોમાંથી કોઇ પણ મુનિજન કેમ ન હોય તે આહાર આદિનું ગ્રહણ કરતાં પહેલાં જ આ વાતનો વિચાર કરે કે "આ આહાર આદિ સામગ્રી આધાકર્મી આદિ દોષોથી દૂષિત હોવાથી, અને અભ્યાહૃત-લાવવામાં આવેલ હોવાથી પ્રાસુક હોવા છતાં પણ મારા માટે કલ્પ્ય નથી, એના સેવનની અપેક્ષા મરણ જ સારૂં છે" એવો વિચાર કરે. અને લાવીને આપનાર એ ગૃહસ્થને પણ આ પ્રકારથી સમજાવે કે—"હે આયુષ્મન્! ગૃહસ્થ! આ લાવવામાં આવેલ ચારે પ્રકારનો આહાર, અથવા યથાયોગ્ય વસ્ત્ર પાત્ર આદિ અન્ય વસ્તુઓ જે એ પ્રકારની છે. ચાહે સદોષ હોય, ચાહે નિર્દોષ હોય, મારા ભોગ ઉપભોગ અને પાનના યોગ્ય નથી કેમ કે એ બધું આધાકર્માદિ દોષોથી ભરેલ છે. આધાકર્માદિદોષવિશિષ્ટ આહારાદિક સામગ્રી સાધુને માટે કલ્પ્ય માનવામાં આવેલ નથી, આ માટે હું આ બધાનો ત્યાગ કરૂં છું.(સૂ૦૧)

किं चान्यदप्याह—'जस्स णं' इत्यादि ।

मूलम्—जस्स णं भिक्खुस्स अयं पगप्पे—अहं च खलु पडिन्नत्तो अपडिन्नत्तेहिं, गिलाणो अगिलाणेहिं अभिकंख साहम्मिएहिं कीरमाणं वेयावडियं साइज्जिस्सामि, अहं वावि खलु अप्पडिन्नत्तो पडिन्नत्तस्स अगिलाणो गिलाणस्स अभिकंख साहम्मियस्स कुज्जा वेयावडियं करणाए, आहट्टु परिन्नं अणुक्खिस्सामि, आहडं च साइज्जिस्सामि (१), आहट्टु परिन्नं आणक्खिस्सामि आहडं च नो साइज्जिस्सामि (२), आहट्टु परिन्नं नो आणक्खिस्सामि आहडं च साइज्जिस्सामि (३), आहट्टु परिन्नं नो आणक्खिस्सामि आहडं च नो साइज्जिस्सामि (४)। एवं से अहाकिट्टियमेव समभिजाणमाणे संते विरए सुसमाहियलेसे तत्थावि तस्स कालपरियाए से तत्थ विअंतिकारए, इच्चेयं विमोहाययणं हियं सुहं खमं निस्सेयसं आणुगामियं—तिबेमि ॥ सू० २ ॥

छाया—यस्य खलु भिक्षोरयं प्रकल्पः—अहं च खलु प्रतिज्ञप्तोऽप्रतिज्ञप्तैः, ग्लानोऽग्लानैरभिकाङ्क्ष्य साधर्मिकैः क्रियमाणं वैयावृत्त्यं स्वादयिष्यामि, अहं चापि खलु अप्रतिज्ञप्तः प्रतिज्ञप्तस्य अग्लानो ग्लानस्य अभिकाङ्क्ष्य साधर्मिकस्य कुर्यां वैयावृत्त्यं करणाय। आहृत्य परिज्ञामन्वेषयिष्यामि, आहृतं च स्वादयिष्यामि १, आहृत्य परिज्ञामन्वेषयिष्यामि आहृतं च नो स्वादयिष्यामि २, आहृत्य परिज्ञां नो अन्वेषयिष्यामि आहृतं च स्वादयिष्यामि ३, आहृत्य परिज्ञां नो अन्वेषयिष्यामि आहृतं च नो स्वादयिष्यामि ४, एवं स यथाकीर्तितमेव धर्मं समभिजानन् शान्तः विरतः सुसमाहृतलेश्यस्तत्रापि तस्य कालपर्यायः। स तत्र व्यन्तिकारकः, इत्येतद् विमोहायतनं हितं सुखं क्षमं निःश्रेयसमानुगमिकमिति ब्रवीमि ॥ सू० २ ॥

और भी इसी विषयसे संबंधित बात सूत्रकार प्रकट करते हैं—'जस्स णं' इत्यादि ।

બીજી પણ આ જ વિષયથી સંબંધિત વાત સૂત્રકાર પ્રગટ કરે છે—"जस्स णं" ઈત્યાદિ.

टीका—'यस्ये'-त्यादि, यस्य भिक्षोः=परिहारविशुद्धिकस्य यथालन्दिकस्य वा 'खलु' वाक्यालङ्कारे, अयं वक्ष्यमाणः प्रकल्पः=आचारो भवति। तमेव दर्शयति-'अह'-मित्यादि, 'चः' समुच्चये, 'खलु' वाक्यालङ्कारे, अप्रतिज्ञप्तैः=केनाप्यनुक्तैः=वैयावृत्यकरणाय केनाप्यप्रेरितैरित्यर्थः, अग्लानैः=समुचितकार्यसहनशीलैः प्रतिज्ञप्तः=वैयावृत्त्यविधानाय प्रोक्तः-'वयं तव समुचितं वैयावृत्त्यं करिष्यामः'-इत्यभिहितः वातादिक्षोभेण तपश्चर्यादिना वा ग्लानः अहम् अभिकाङ्क्ष्य=निर्जरामुद्दिश्य साधर्मिकैः=एककल्पस्थैः संयतैः क्रियमाणं=विधीयमानं वैयावृत्त्यं शुश्रूषादिकं स्वादयिष्यामि=स्वीकरिष्यामि, एतादृशो यस्य भिक्षोः प्रकल्पोऽस्तीति पूर्वेण सम्बन्धः, स भिक्षुस्तादृशं कल्पं परिरक्षन् भक्तपरिज्ञया प्राणांस्त्यजेत्, न पुनरभिग्रहं परिखण्डयेदित्याशयः। पूर्वमितरसाधर्मिकेण विधीयमानवैयावृत्त्यानुज्ञाऽ-

सूत्रकार इस सूत्रमें परिहारविशुद्धि संयमवाले साधुका, अथवा यथालन्दिक साधुका आचार कैसा होता है? इस विषयको प्रदर्शित करते हैं-"वैयावृत्त्य करनेके लिये किसी अन्य साधु द्वारा प्रेरित नहीं किये गये ऐसे अग्लान-समुचित कार्यसंपादन करनेमें सहनशील संयतोंद्वारा "हम तुम्हारी समुचित वैयावृत्य आदि करेंगे" इस प्रकारसे कहा गया मैं, जो इस समय वातपित्तादिक दोषोंसे या तपश्चर्यासे ग्लान हो रहा हूं, अपने कर्मोंकी निर्जरा करनेके उद्देशसे एककल्पस्थ उन साधुओंद्वारा की गई वैयावृत्त्य आदिको स्वीकार कर लूंगा" इस प्रकारका जिस परिहारविशुद्धिका या यथालन्दिक साधुका कल्प होता है वह भिक्षु उस प्रकारके कल्प-आचारकी रक्षा करता हुआ भक्तपरिज्ञा नामक मरणद्वारा अपने प्राणोंको छोड़ देवे पर अभिग्रहका खण्डन न करे।

સૂત્રકાર આ સૂત્રમાં પરિહારવિશુદ્ધિ સંયમવાળા સાધુનો અથવા યથાલન્દિક સાધુનો આચાર કેવો હોય છે? આ વિષયને પ્રદર્શિત કરે છે-"વૈયાવૃત્ત્ય કરવા માટે કોઈ અન્ય સાધુથી પ્રેરિત ન કરાયેલ એવા અગ્લાન એટલે સમુચિત કાર્ય સંપાદન કરવામાં સહનશીલ સંયતો દ્વારા "હું તમારી સમુચિત વૈયાવૃત્ત્ય આદિ કરીશ" એ પ્રકારે કહેવાએલ હું જે આ સમયે વાતપિતાદિક દોષોથી અથવા તપશ્ચર્યાથી અકળાઈ રહ્યો છું. પોતાના કર્મોની નિર્જરા કરવાના ઉદ્દેશથી એક કલ્પસ્થ સાધુઓથી કરવામાં આવેલ વૈયાવૃત્ત્ય આદિને સ્વીકાર કરી લઈશ." આ પ્રકારનું જેને પરિહારવિશુદ્ધિક અને યથાલન્દિક સાધુનો કલ્પ હોય છે તે ભિક્ષુ આ પ્રકારનો કલ્પ-આચાર-ની રક્ષા કરીને ભકતપરિજ્ઞા નામનું મરણ સ્વીકારી પોતાનો પ્રાણ છોડી દે છે પણ અભિગ્રહનું ખંડન કરતા નથી.

भिहिता, इदानीं स एवान्यस्य वैयावृत्यं विदधातीत्याह-' अह '-मित्यादि, ' चः ' समुच्चये 'अपि' शब्दः पुनरर्थे पूर्वस्माद्विशेषप्रदर्शनाय। अहं पुनः खलु अग्लानः=रोगादिरहितः, अप्रतिज्ञप्तः=वैयावृत्यकरणाय केनाप्यनुक्तः, प्रतिज्ञप्तस्य=कथितस्य ग्लानस्य तपसा वात-शूलरोगादिना वा पीडितस्य साधर्मिकस्य=सदृशकल्पिकस्य साधोः करणाय=उपकारार्थं निर्जरामभिकाङ्क्ष्य वैयावृत्त्यं कुर्यामिति । एतादृशो मुनिरभिग्रहशिखरिशिखरपरिसरपरिचारी प्रतिज्ञां स्वीकृत्य प्राणान् परिहरेन्न त्वभिग्रहमित्याशयः । अभिग्रहस्वरूपप्रकटनाय चतुर्भङ्गिकां दर्शयति-'आहट्टु'-इत्यादि,

---

पहिले किसी साधर्मी साधुने वैयावृत्त्य करने के लिये अपनी संमति प्रदान की पर वह इस समय स्वयं किसी दूसरे साधुकी वैयावृत्त्य करने में लग गया इसके लिये सूत्रकार " अह"-मित्यादि, सूत्रांश कहते हैं-

" मैं रोगादिरहित हूं, वैयावृत्त्य करनेके लिये मुझसे किसीने भी नहीं कहा है, इस लिये पूर्वमें कथित ग्लान साधुकी कि जो इस समय तपस्यासे अथवा वात शूल रोग आदिसे पीडित हो रहा है, अपने उपकारके लिये कर्मोंकी निर्जराकी चाहनाके उद्देशको ले कर वैयावृत्त्य कर दूँ" इस प्रकारकी भावनावाला मुनि कि जो अभिग्रहरूपी पर्वतके शिखर के प्रदेश तक पहुंच चुका है, अभिग्रह स्वीकार कर प्राणोंको छोड़ देवे पर अपने अभिग्रहको न छोडे ।

सूत्रकार अभिग्रहके स्वरूपको प्रकट करनेके लिये चार भंगोंका प्रदर्शन करते हैं-" आहट्टु "इत्यादि,

---

પહેલાં કોઈ સાધર્મી સાધુએ વૈયાવૃત્ત્ય કરવા માટે પોતાની સંમતિ આપી પણ તે આ સમય કોઇ બીજા સાધુની વૈયાવૃત્ત્ય કરવામાં લાગી ગયા, આને માટે સૂત્રકાર " अहं " ઇત્યાદિ સૂત્રાંશ કહે છે—

" હું રોગાદિકથી રહિત છું. વૈયાવૃત્ત્ય કરવા માટે મને કોઈએ કહેલ નથી આ માટે પૂર્વમાં કહેવાએલ ગ્લાન સાધુની કે જે આ સમય તપસ્યાથી અથવા વાત શૂળ આદિ રોગથી પીડિત છે, પોતાના ઉપકારને માટે કર્મોની નિર્જરાની ચાહનાનો ઉદ્દેશ લઈને વૈયાવૃત્ત્ય કરી આપુ " આ પ્રકારની ભાવનાવાળા મુનિ કે જે અભિગ્રહરૂપી પર્વતના શિખરના પ્રદેશ સુધી પહોંચેલ છે અભિગ્રહ સ્વીકારીને પ્રાણને છોડી દે, પણ અભિગ્રહ ન છોડે.

સૂત્રકાર અભિગ્રહના સ્વરૂપને પ્રગટ કરવા માટે ચાર ભંગોનું પ્રદર્શન કરે છે-" आहट्टु " ઇત્યાદિ.

कश्चिदेकः परिज्ञां=वक्ष्यमाणामभिग्रहरूपाम् आहृत्य=आदाय निश्चिनोति अहं-ग्लान-स्यापरस्य भिक्षोः साधर्मिकस्याशनादिकम् अन्वेषयिष्यामि, वैयावृत्त्यं च करिष्यामि, एवं परेण साधर्मिकेण मुनिना आहृतम् आनीतमशनादिकं स्वादयिष्यामि=ग्रहीष्यामि। इति प्रथमो भङ्गः (१)।

अपरः कश्चिदेवं प्रतिजानीते-'अहं साधर्मिकार्थमशनादिकम् अन्वेषयिष्यामि=आनेष्यामि, तथा परेण आहृतम्=आनीतं च नो स्वादयिष्यामि=नो ग्रहीष्यामि'। इति द्वितीयो भङ्गः (२)।

तथाऽन्य एवं अभिग्रहं करोति-' अहं परार्थमाहारादिकं नो अन्वेषयिष्यामि=नाऽऽनेष्ये किन्तु इतरेणाऽऽहृतं स्वादयिष्यामि'। इति तृतीयो भङ्गः (३)।

कोई मुनि इस प्रकारका अभिग्रह लेते हैं कि-मैं किसी ग्लान मुनिके लिये अथवा साधर्मिक भिक्षुके लिये आहार पानी आदि ला दिया करूंगा और उनकी वैयावृत्त्य भी कर दिया करूंगा, तथा दूसरे साधर्मी मुनिद्वारा लाये गये आहारादिकका मैं स्वयं भी ग्रहण करूंगा। यह प्रथम भंग है।१।

दूसरा कोई ऐसा अभिग्रह करता है कि-मैं साधर्मिक साधुके लिये आहारादिक ला तो दिया करूंगा पर दूसरे कोईके द्वारा लाये गये आहारादिकका मैं सेवन नहीं करूंगा। यह द्वितीय भंग है। २।

कोई दूसरा ऐसा अभिग्रह करता है कि-मैं दूसरोंके लिये आहारादिक नहीं लाऊंगा पर दूसरा कोई मुझे ला देगा तो मैं उसका सेवन करूंगा। यह तीसरा भंग है । ३ ।

कोई २ ऐसा अभिग्रह करते हैं कि-मैं न तो दूसरों के लिये आहा-

કોઈ મુનિ આ પ્રકારનો અભિગ્રહ લે છે કે હું કોઇ ગ્લાન મુનિ માટે અથવા સાધર્મિક ભિક્ષુ માટે આહાર પાણી આદિ લાવી આપીશ અને તેની સેવા ચાકરી પણ કરીશ, તથા બીજા સાધર્મી મુનિ મારફત લાવેલ આહારાદિકનું હું ગ્રહણ કરીશ. આ પ્રથમ ભંગ છે. (૧)

બીજા કોઇ એવો અભિગ્રહ કરે છે કે હું સાધર્મી સાધુ માટે આહારાદિક લાવી આપીશ પણ બીજા કોઇની મારફત લાવેલા આહારાદિકનું હું સેવન નહીં કરું. આ બીજો ભંગ છે. (૨)

કોઈ એવો અભિગ્રહ કરે છે કે હું બીજાઓ માટે આહારાદિક નહીં લાવું પણ બીજા કોઇ લાવશે તો હું તેનું સેવન કરીશ. આ ત્રીજો ભંગ છે. (૩)

કોઇ કોઇ એવો અભિગ્રહ કરે છે કે હું બીજાઓને માટે આહારાદિક

अपरश्चैतादृशमभिग्रहं करोति—'अहं परार्थमशनादिकं नान्वेषयिष्यामि, परेणाऽऽहृतमपि नो स्वादयिष्यामि'। इति चतुर्थो भङ्गः (४)।

इति बहुविधमभिग्रहं स्वीकृत्य ग्लायमानोऽपि जीवितं परिजह्यान्न पुनरभिग्रहं त्यजेदिति परमार्थः। तमेवार्थमुपसंहरन्नाह—'एव'—मित्यादि, सः=अनगारः परिज्ञाततत्त्वः एवं=पूर्वोक्तं यथाकीर्तितमेव=यथोक्तमेव धर्मम्=अभिग्रहस्वीकरणरूपं समभिजानन्=आसेवनपरिज्ञयाऽऽसेवमानः, शान्तः=कषायोपशमेन। यद्वा—'श्रान्तः' इतिच्छाया, श्रान्तः=निरन्तरसंसारपरिभ्रमणात् श्रमयुक्तः, विरतः=सर्वसमारम्भादुपरतः, सुसमाहृतलेश्यः—सुसमाहृताः=सम्यग्रूपेण गृहीताः लेश्याः=अन्तःकरणवृत्तयो येन सः। यद्वा—सुसमाहृता=सम्यक् सङ्कोचिता लेश्या=तेजोलेश्या येन स

रादिक ला कर दूंगा और न दूसरोंसे लाये हुए आहारादिकका मैं उपभोग ही करूंगा। यह चतुर्थ भंग है। ४।

इस तरह अनेक प्रकारकी प्रतिज्ञाको स्वीकार करके, ग्लायमान भी मुनि अपने जीवनको छोड़ देवे पर अभिग्रहका भंग न करे। इसी अर्थका उपसंहार करते हुए सूत्रकार कहते हैं—'एव'-मित्यादि, वह तत्त्वोंका ज्ञाता अनगार अभिग्रहका स्वीकार करना और उसका आसेवनपरिज्ञासे पूर्णरूपसे सेवन—निर्वाह करना, इस रूप धर्मको जानता हुआ भक्तप्रत्याख्यान नामक मरण स्वीकार करे। "शान्तः, विरतः, सुसमाहृतलेश्यः" ये सब अनगारके विशेषण हैं। इनका अर्थ इस प्रकार है—यह अनगार कषायोंके उपशम होनेसे शान्त, सर्व प्रकारके समारंभोंसे उपरत होनेसे विरत और अन्तःकरणकी वृत्तियोंको अच्छी तरह निगृहीत करनेसे सु-

---

નહિ લાવી આપું અને બીજાઓથી લાવેલા આહારાદિકનો પણ હું ઉપયોગ નહિ કરૂં. આ ચોથો ભંગ છે. (૪)

આવી રીતે અનેક પ્રકારના અભિગ્રહો સ્વીકાર કરીને ગ્લાન મુનિ પણ પોતાના જીવનને છોડી દે પણ અભિગ્રહનો ભંગ ન કરે. આ અર્થનો ઉપસંહાર કરીને સૂત્રકાર કહે છે-'एवं' ઈત્યાદિ. તે તત્ત્વોના જાણનાર અનગારે અભિગ્રહનો સ્વીકાર કરવો અને તેનું આસેવનપરિજ્ઞાથી પૂર્ણરૂપથી સેવન-નિર્વાહ કરવો, આ રૂપથી ધર્મ જાણીને ભકતપ્રત્યાખ્યાન નામનું મરણ સ્વીકારે. "शान्तः, विरतः, सुसमाहृतलेश्यः" આ સઘળાં અનગારનાં વિશેષણ છે એનો અર્થ આ પ્રકારે છે-તે અનગાર કષાયોનો ઉપશમ થવાથી શાન્ત, સર્વ પ્રકારના સમારંભોથી ઉપરત હોવાથી વિરત અને અન્તઃકરણની વૃત્તિઓને સારી રીતે નિગૃહીત કરવાથી સુસમાહૃતલેશ્યાવાળા કહેવાય છે, "संते" પ્રાકૃતની સંસ્કૃત

सुसमाहृतलेश्यः। प्रथमस्वीकृताभिग्रहपरिपालनाक्षमो रोगेण तपसा वा ग्लानः सन् अभिग्रहमपरित्यजन् भक्तप्रत्याख्यानेन शरीरं त्यजेदिति तात्पर्यम्।

तत्रापि मरणकालपर्याय एव=सम्पादितशिष्यगणस्य संलेखना-जोषणाजुष्ट-देहस्य यो मृत्योरवसरः स एव ग्लानावसरेऽपि कालपर्याय एव, कर्मनिर्जरणस्याऽ-

---

समाहृतलेश्यावाला कहलाता है 'संते' प्राकृतकी संस्कृत छाया 'शान्त' मानकर अर्थ ऊपर बतलाया जा चुका है। जब इसकी छाया "श्रान्त" ऐसी मानी जायगी तब इसका अर्थ इस प्रकारसे होगा कि वह "संसार में परिभ्रमण करते २ श्रमयुक्त हुआ है, इसी लिये सर्वसमारम्भोंसे यह विरत-उपरत हुआ है। "सुसमाहृतलेश्यः" का यह भी दूसरे प्रकारसे अर्थ निकलता है कि-जिसने अच्छी तरहसे तेजोलेश्या संकुचित की है, ऐसा वह अनगार होता है।

तात्पर्य कहनेका यह है कि-जिसने पहिले पूर्वोक्त अभिग्रह स्वीकृत किये हैं पर रोग या तपसे जो ग्लान अवस्थायुक्त बन रहा है इस लिये स्वीकृत अभिग्रहोंके पालन करनेमें असमर्थ हो रहा है, तो भी स्वीकृत अभिग्रहवाले साधुका यह कर्तव्य है कि वह अपने गृहीत अभिग्रहका परिहार न कर भक्तप्रत्याख्यानद्वारा शरीरका परित्याग कर दे, यह मरण कालपर्याय ही है। जिसका शिष्यमण्डल तय्यार हो चुका है, ऐसे संलेखनाके सेवनसे युक्त देहवाले साधुकी मृत्युका जो अवसर है वह

છાયા शान्त માની અર્થ ઉપર બતાવવામાં આવેલ છે જ્યારે તેની છાયા "श्रान्त" એવી માનવામાં આવશે ત્યારે તેનો અર્થ આ પ્રકારે થશે કે તે સંસારમાં પરિભ્રમણ કરતાં શ્રમયુકત થયેલ છે આ માટે સર્વ સમારંભોથી તે વિરત-નિવૃત્ત છે "सुसमाहृतलेश्यः" નો એવો પણ બીજા પ્રકારે અર્થ નીકળે છે કે જેણે સારી રીતે તેજોલેશ્યા સંકુચિત કરેલી છે એવા તે અનગાર હોય છે.

તાત્પર્ય કહેવાનું એ છે કે-જેણે પહેલાં પૂર્વોક્ત અભિગ્રહો સ્વીકારેલા છે પરંતુ રોગ અને તપથી જે ગ્લાન અવસ્થામાં આવી ગએલ છે. એ કારણે સ્વીકારેલ અભિગ્રહોનું પાલન કરવામાં અસમર્થ બની રહેલ છે, તો પણ જેણે અભિગ્રહો સ્વીકાર્યા છે તેવા સાધુનું એ કર્તવ્ય છે કે તેણે સ્વીકારેલ અભિગ્રહોનો ત્યાગ ન કરી ભક્તપ્રત્યાખ્યાનદ્વારા શરીરનો ત્યાગ કરે. આ મરણ પણ કાલપર્યાય જ છે. જેનું શિષ્યમંડળ તૈયાર થઈ ગયેલ છે એવા સંલેખનાના સેવનથી યુક્ત દેહવાળા સાધુના મૃત્યુનો જે અવસર છે તે જ ગ્લાનના અવસરમાં,

त्रापि समानत्वादित्याशयः। अत एव स तादृशो मुनिरनशनकरणे व्यन्तिकारकः= कर्मनाशकारको भवति। तदेवमुपसंहरति–'इत्येत'–दित्यादि, इत्येतद्=ग्लानस्य भक्तप्रत्याख्यानेन शरीरत्यागस्तद् विमोहायतनं हितं सुखं क्षमं निःश्रेयसमानुगामिकं भवति। एतेषां पदानां व्याख्याऽनन्तरोद्देशसमाप्तौ प्रोक्ता।' इति ब्रवीमी'–त्यस्यार्थस्तूक्त एवेति ॥ सू० २ ॥

॥ अष्टमाध्ययनस्य पञ्चम उद्देशः समाप्तः ॥ ८–५ ॥

ही ग्लान के अवसरमें भी कालपर्याय ही है, क्यों कि यहां भी कर्मोंकी निर्जराकी समानता है। इसीलिये ऐसा मुनि अनशन करके भक्तप्रत्याख्यानसे मरण करने पर कर्मका नाश करनेवाला होता है अतः भक्तप्रत्याख्यानपूर्वक शरीरका त्याग करना, ग्लान मुनिके लिये विमोहायतन, हितस्वरूप, सुखस्वरूप, क्षमस्वरूप, निश्रेयसरूप, एवं आनुगामिक रूप होता है। इन पदोंकी व्याख्या इसी अध्ययनके चतुर्थ उद्देशकी समाप्तिमें कह दी गई है ॥सू०२॥

॥ आठवें अध्ययनका पांचवां उद्देश समाप्त ॥ ८–५ ॥

પણ કાલપર્યાય જ છે, કેમ કે અહીં પણ કર્મોની નિર્જરાની સમાનતા છે, આ માટે એવા મુનિ અનશન કરીને ભક્તપ્રત્યાખ્યાનથી મરણ લાવવાથી કર્મોનો નાશ કરવાવાળા થાય છે, માટે ભક્તપ્રત્યાખ્યાનપૂર્વક શરીરનો ત્યાગ કરવો ગ્લાન મુનિ માટે વિમોહાયતન, હિતસ્વરૂપ, સુખસ્વરૂપ, ક્ષમસ્વરૂપ, નિશ્રેયસરૂપ, અને આનુગામિકરૂપ બને છે. આ પદોની વ્યાખ્યા આ અધ્યયનના ઉદ્દેશની સમાપ્તિમાં કહેવાયેલ છે. (સૂ૦૨)

આઠમા અધ્યયનનો પાંચમો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥૮–૫॥

। अथाष्टमाध्ययनस्य षष्ठ उद्देशः ।

पञ्चमोद्देशकथननानन्तरमधुना षष्ठः प्रारभ्यते। अस्य च पूर्वोद्देशेन सहायमभिसम्बन्धः—पूर्वोद्देशे ग्लानस्य भक्तप्रत्याख्यानमरणमभिहितम्; अत्र च धृति-संहननादिबलयुक्त एकत्वभावनां भावयन् इङ्गितमरणं विदधीतेति वक्तव्यमस्ति, तत्प्रसङ्गेन पूर्वं तस्य वस्त्रपरित्यागं दर्शयति—' जे भिक्खू ' इत्यादि ।

मूलम्—जे भिक्खू एगेण वत्थेण परिवुसिए पायबिइएण, तस्स णं नो एवं भवइ—बिइयं वत्थं जाइस्सामि। से अहेसणिज्जं वत्थं जाएज्जा, अहापरिग्गहियं वत्थं धारिज्जा जाव गिम्हे पडिवन्ने अहापरिजुन्नं वत्थं परिट्ठविज्जा, अदुवा एगसाडे अदुवा अचेले लाघवियं आगममाणे, तवे से अभिसमन्नागए भवइ, जहेयं भगवया पवेइयं तमेव अभिसमेच्चा सव्वओ सव्वत्ताए समत्तमेव समभिजाणिया ॥ सू० १ ॥

छाया—यो भिक्षुरेकेन वस्त्रेण पर्युषितः पात्रद्वितीयेन, तस्य खलु नो एवं भवति द्वितीयं वस्त्रं याचिष्ये, स यथैषणीयं वस्त्रं याचेत,यथापरिगृहीतं वस्त्रं धारयेद् यावद् ग्रीष्मः

॥ आठवें अध्ययनका छट्ठा उद्देश ॥

पञ्चम उद्देशके कहनेके बाद अब षष्ठ उद्देशका कथन प्रारम्भ होता है। इस उद्देशका पूर्व उद्देशके साथ इस प्रकारसे संबंध है—वहां ग्लान मुनिके लिये भक्तप्रत्याख्यानमरण धारण करना कहा है। इस उद्देशमें धृति, संहनन आदि बलविशिष्ट मुनि एकत्वभावनाको भाता हुआ इङ्गितमरण करे, यह कहा जायगा, इसलिये उसीके प्रसंगसे पहिले उसके वस्त्रोंका परित्याग सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं—" जे भिक्खू " इत्यादि ।

આઠમા અધ્યયનનો છઠો ઉદ્દેશ.

પાંચમો ઉદ્દેશ કહેવાયા બાદ હવે છઠ્ઠો ઉદ્દેશ શરૂ થાય છે આ ઉદ્દેશમાં આગળના ઉદ્દેશની સાથે આ પ્રકારથી સંબંધ છે—ત્યાં ગ્લાન મુનિ માટે ભક્તપ્રત્યાખ્યાન મરણ ધારણ કરવા કહ્યું છે, આ ઉદ્દેશમાં ધૃતિ, સંહનન, આદિ બળવિશિષ્ટ મુનિ એકત્વભાવનાને ભાવીને ઇંગિત મરણ કરે, એમ કહેવામાં આવશે. આ માટે તેના પ્રસંગથી પહેલાં તેના વસ્ત્રોનો પરિત્યાગ સૂત્રકાર પ્રદર્શિત કરે છે—" जे भिक्खू " ઇત્યાદિ.

प्रतिपन्नः, यथापरिजीर्णं वस्त्रं परिष्ठापयेत्, अथवा एकशाटः, अथवा अचेलो लाघविकमागमयन्, तपस्तस्य अभिसमन्वागतं भवति, यदेतद् भगवता प्रवेदितं तदेवाभिसमेत्य सर्वतः सर्वात्मतया सम्यक्त्वमेव समभिजानीयात्॥ सू० १॥

टीका—'यो भिक्षु'-रित्यादि, स्पष्टार्थमेतत्सूत्रम्, विशेषस्त्वयम्—अत्र 'पात्रद्वितीयेनैकेन वस्त्रेण' इति व्याख्येयम् ॥सू०१॥

अभिग्रहविशेषेण पात्रद्वितीयं वस्त्रमेकं दधतो भिक्षोः सपदि मोक्षपथमारुरुक्षोः परिकर्मितमतेर्लघुकर्मत्वादेकत्वभावनाऽध्यवसायमाह-'जस्स णं' इत्यादि—

इस सूत्रमें साधुके लिये एक वस्त्र और एक पात्र रखनेका कल्प प्रदर्शित किया गया है; अतः एक वस्त्र और एक पात्र रखते हुए किसी भी समय ऐसी इच्छा न करे कि मैं दूसरे वस्त्र या पात्रकी याचना करूं। वह मुनि यथायोग्य एषणीय वस्त्रकी ही याचना करे और जिस प्रकारका मिल जाय वही धारण करे। ग्रीष्म ऋतु आने पर वह एक वस्त्र रखना चाहे तो रखे, अथवा जीर्ण हो जाने पर उस जीर्ण वस्त्रका त्याग करके अचेल बन जावे, और जिस प्रकार भगवानने आगममें कहा उसी प्रकार संयमाचरण करता हुवा मुनि समभावसे विचरें ॥ सू०॥१॥

अभिग्रहविशेषसे एक पात्र और एक वस्त्रको रखनेवाला भिक्षु जो कि शीघ्र मोक्षके पथ पर आरूढ होनेका अभिलाषी बना हुआ है, तथा परिकर्मितमतिवाला है, लघुकर्मी होनेसे उसके एकत्वभावनाका अध्यवसाय होता है; इस लिये एकत्वभावनाके अध्यवसायका कथन करते हैं—"जस्स णं भिक्खुस्स" इत्यादि।

આ સૂત્રમાં સાધુ માટે એક વસ્ત્ર અને એક પાત્ર રાખવાનો કલ્પ પ્રદર્શિત કરેલ છે, જેથી એક વસ્ત્ર અને એક પાત્ર રાખીને કોઇ પણ વખત એવી ઇચ્છા ન કરે કે હું બીજા વસ્ત્ર અને પાત્રની યાચના કરૂં. તે મુનિ યથાયોગ્ય એષણીક વસ્ત્રની જ યાચના કરે, અને જેવા પ્રકારનાં મળી જાય તે ધારણ કરે, ગ્રીષ્મ ઋતુ આવવાથી તે એક વસ્ત્ર રાખવા ચાહે તો રાખે અથવા જીર્ણ થઇ જવાથી તે જીર્ણ વસ્ત્રનો ત્યાગ કરીને અચેલ બની જાય, અને જે પ્રકારે ભગવાને આગમમાં કહ્યું તેવા પ્રકારે સંયમાચરણ કરીને મુનિ સમભાવથી વિચરે. (સૂ૦૧)

અભિગ્રહવિશેષથી એક પાત્ર અને એક વસ્ત્રને રાખવાવાળા ભિક્ષુ કે જે શીઘ્ર મોક્ષના માર્ગપર આરૂઢ હોવાના અભિલાષી બનેલ છે, તથા પરિકર્મિત મતિવાળા છે. લઘુકર્મી હોવાથી તેને એકત્વભાવનાનો અધ્યવસાય થાય છે તેથી એકત્વભાવનાના અધ્યવસાયનું કથન કરે છે—"जस्स णं भिक्खुस्स" ઇત્યાદિ.

मूलम्—जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ—एगे अहमंसि, न मे अत्थि कोइ, न चाहमवि कस्सवि, एवं से एगागिणमेव अप्पाणं समभिजाणिज्जा, लाघवियं आगममाणे तवे से अभिसमन्नागए भवइ जाव समभिजाणिया ॥ सू० २॥

छाया—यस्य खलु भिक्षोरेवं भवति-एकोऽहमस्मि, न मेऽस्ति कोऽपि, न चाहमपि कस्यापि, एवमसौ एकाकिनमेवात्मानं समभिजानीयात्, लाघविकमागमयन्, तपस्तस्याभिसमन्वागतं भवति यावत् समभिजानीयात् ॥ सू०२ ॥

टीका—'यस्ये'-त्यादि, यस्य भिक्षोश्चेतसि एवं=वक्ष्यमाणं भवति, तदेव दर्शयति-'अह'-मित्यादि—अहम् एकोऽस्मि, न मेऽस्ति कोऽपीतरः सहायकः, न चाहमपि कस्य चिदपि परस्य दुःखविमोचने सहायकोऽस्मि, सर्वेऽपि स्वकृतकर्मफलभोक्तारः सन्त्यतो न कोऽपि मम सहायकः, नाप्यहं कस्यापि साहाय्यं कर्तुमर्होऽस्मीति परमार्थः, अतो योऽर्थः सम्पन्नस्तमाह-'एव' मित्यादि, एवं-पूर्वोक्तप्रकारेण स्वस्य सहायकासम्भवात् साहाय्यकरणासम्भवाच्चेत्यादिरूपेण असौ मुनिः आत्मानं=निजात्मानम्, एकाकिनमेव सहायरहितमेव समभिजानीयात्,

---

जिस भिक्षुके चित्तमें इस प्रकारका विचार होता है कि-"मैं एक हूं, यहां मेरा दूसरा कोई सहायक नहीं है, मैं भी किसी दूसरेके दुःखोंको दूर करनेमें सहायक नहीं हो सकता हूं, जितने भी प्राणी हैं वे सब अपने२ किये हुए कर्मोंके फलको भोगते हैं, इस लिये मैं उन्हें इस कर्मके फलके भोगमें थोडी भी सहायता करनेवाला नहीं हो सकता हूं और न दूसरे भी मुझे इस विषयमें सहायता प्रदान करनेवाले हो सकते हैं, इस प्रकार न कोई अपना सहायक है और न मैं दूसरोंका ही सहायक हूं" ऐसा विचार कर यह मुनि अपनी आत्माको सहायरहित ही मानता है, इसका यह प्रभाव होता है

જે ભિક્ષુના ચિત્તમાં એવા પ્રકારના વિચાર હોય છે કે-"હું એક છું, અહિં મારો બીજો કોઈ સહાયક નથી, હું પણ કોઈ બીજાના દુઃખોને દૂર કરવામાં સહાયક બની શકતો નથી, જેટલા પ્રાણી છે તે બધા પોતપોતાનાં કરેલા કર્મોના ફળને ભોગવે છે, આ માટે હું તેમને એ કર્મના ફળને ભોગવવામાં થોડી પણ સહાયતા કરવાવાળો થઈ શકતો નથી, અને મને પણ બીજા આ વિષયમાં સહાયતા કરવાવાળા બની શકતા નથી. આ પ્રકારે કોઈ મારો સહાયક નથી અને હું પણ બીજાનો સહાયક બની શકતો નથી." એવો વિચાર કરી એ મુનિ પોતાના આત્માને સહાયરહિત જ માને છે. એનો એ પ્રભાવ હોય છે કે તે

'नरकनिगोदादिदुःखपारावारमज्जदात्मसन्तारणे स्वात्मानं विना कोऽपि न कर्णधारः' इत्यवधार्य सम्प्राप्तं रोगशोकादिकं सन्तापकारकमितरकृतत्राणशरण-स्पृहारहितो-'मत्कृतत्वेन मयैवोपभोक्तव्य'-मिति निश्चिन्वानः सर्वं सहेतैवेति भावः। कुतो दुःखादिकं सोढव्यमित्याह-'लाघविक'-मित्यादि, अयं सूत्रभाग एतस्यैवाध्ययनस्य चतुर्थोद्देशे व्याख्यातः। इत्यलम्। सूत्रमिदं बहुषु पुस्तकेष्व-नुपलब्धमपि क्वचिदुपलब्धतया व्याख्यातमिति विभावनीयम् ॥सू० २॥

अस्याध्ययनस्य द्वितीयोद्देशे उद्गमोत्पादनैषणाऽभिहिता, पञ्चमोद्देशे च ग्रहणै-षणा कथिता, साम्प्रतं ग्रासैषणामुपदर्शयितुमाह-'से भिक्खू' इत्यादि।

कि इस मुनिके चित्तमें यह दृढ धारणा हो जाती है कि "नरक और निगोदादिकोंके दुःखरूपी समुद्रमें डूबते हुए मेरे आत्माको वहांसे पार लगानेवाला यदि कोई है तो वह अपनी आत्मा ही है-इसके अतिरिक्त और कोई नहीं।" इस प्रकारकी धारणासे प्राप्त हुए सन्तापकारी रोग और शोक आदिमें अपने लिये दूसरोंसे की जानेवाली रक्षा एवं शरणकी स्पृहासे रहित हो जाते हैं, और इस निश्चयसे कि यह सब मेरे द्वारा ही किया गयाहै अतः मुझे ही भोगना चाहिये इस प्रकार सोच कर सब कुछ सहन करता है। दुःखादिकोंके सहनेसे लाभ क्या होता है? तथा यह दुःखादिक सहन क्यों करता है? इसका उत्तर सूत्रकारने "लाघवियं आगममाणे" से लेकर "समभिजाणिया" यहां तकके पदों द्वारा दिया है। इन समस्त पदों का स्पष्ट रूपसे अर्थ इसी अध्ययनके चतुर्थ उद्देशमें लिखा जा चुका है॥ सू० २॥

મુનિના ચિત્તમાં એવી દૃઢ ધારણા બની રહે છે કે "નરક અને નિગોદાદિકોના દુઃખરૂપી સમુદ્રમાં ડુબતા મારા આત્માને ત્યાંથી પાર લગાવનાર જો કોઇ હોય તો તે મારો પોતાનો જ આત્મા છે, તેના સિવાય બીજો કોઈ નથી." આ પ્રકારની ધારણાથી પ્રાપ્ત થયેલા સંતાપકારી રોગ અને શોક આદિમાં પોતાને માટે, બીજાઓથી થનાર રક્ષા અને શરણની સ્પૃહાથી રહિત થઈ જાય છે અને આવા નિશ્ચ-યથી કે આ બધું મારા દ્વારા જ કરાએલ છે, અને મારે જ ભોગવવું જોઈએ. આ પ્રકારે સમજીને બધું સહન કરે છે, દુઃખાદિકને સહેવાથી લાભ શું મળે છે? તથા એ દુઃખાદિકને સહન કેમ કરે છે? એનો ઉત્તર સૂત્રકારે "लाघवियं आगममाणे"થી લઈ "समभिजाणिया" અહીં સુધીના પદો દ્વારા આપેલ છે. આ સમસ્ત પદોનો સ્પષ્ટ રૂપથી અર્થ આ અધ્યયનના ચોથા ઉદ્દેશમાં બતાવવામાં આવેલ છે.(સૂ૦૨)

मूलम्—से भिक्खू वा भिक्खुणी वा असणं वा ४ आहारेमाणे नो वामाओ हणुयाओ दाहिणं हणुयं संचारिज्जा आसाएमाणे, दाहिणाओ हणुयाओ वामं हणुयं नो संचारिज्जा आसाएमाणे, से अणासायमाणे लाघवियं आगममाणे, तवे से अभिसमन्नागए भवइ, जमेयं भगवया पवेइयं तमेव अभिसमिच्चा सव्वओ सव्वत्ताए समत्तमेव समभिजाणिया ॥ सू० ३ ॥

छाया—स भिक्षुर्वा भिक्षुकी वा अशनं वा ४ आहारयन् नो वामतो हनुतो दक्षिणं हनुं संचारयेदास्वादयन्, दक्षिणतो हनुतो वामं हनुं नो संचारयेदास्वादयन्, सः अनास्वादयन् लाघविकमागमयन्, तपस्तस्याभिसमन्वागतं भवति, यदेतद् भगवता प्रवेदितं तदेवाभिसमेत्य सर्वतः सर्वात्मतया सम्यक्त्वमेव समभिजानीयात्॥सू० ३॥

टीका—'स भिक्षु'-रित्यादि, सः=पूर्वोक्तरूपः भिक्षुर्वा=साधुर्वा भिक्षुकी वा=साध्वी वा अशनं वा ४ चतुर्विधम् उद्गमोत्पादनैषणापरिशुद्धं यथाप्राप्तं गृहीतं ग्रहणैषणादिदोषरहितं विगताङ्गारधूमादिकमेव भुञ्जीत, रागद्वेषाभ्यां हेतुभूताभ्या-

---

इस अध्ययनके द्वितीय उद्देशमें उद्गम उत्पादन और एषणा कही गई है। पंचम उद्देशमें ग्रहण एषणा वर्णित हुई है, अब इस समय ग्रास एषणाका वर्णन करनेके लिये सूत्रकार कहते हैं-"से भिक्खू" इत्यादि।

पूर्वोक्त स्वरूपवाला साधु अथवा साध्वी ऐसे चारों प्रकारके आहार को जो उद्गम उत्पादन और एषणासे परिशुद्ध है, जिस समय जो भी जितने रूपमें प्राप्त हुआ है, ग्रहण-एषणा आदि दोषोंसे जो रहित है, और अंगार एवं धूमादिक दोष जिसमें नहीं हैं वैसे आहारको भोगवे-उपयोग में लावे। अंगार एवं धूमादिक दोषोंके कारण राग और द्वेष हैं, इनसे ही वह आहार अङ्गार एवं धूमादिकदोषविशिष्ट होता है। राग

આ અધ્યયનના બીજા ઉદ્દેશમાં ઉદ્ગમ ઉત્પાદન અને એષણા કહેવામાં આવેલ છે. પાંચમા ઉદ્દેશમાં ગ્રહણ એષણા કહેવાયેલ છે. હવે આ સમયે ગ્રાસ એષણાનું વર્ણન કરવા માટે સૂત્રકાર કહે છે-"से भिक्खू" ઈત્યાદિ.

પૂર્વોક્ત સ્વરૂપવાળા સાધુ અથવા સાધ્વી એવા પ્રકારના આહારને કે જે ઉદ્ગમ ઉત્પાદન અને એષણાથી પરિશુદ્ધ છે, જે વખતે જે પણ જેટલા સ્વરૂપમાં પ્રાપ્ત થએલ છે, ગ્રહણ એષણા આદિ દોષોથી જે રહિત છે અને અંગાર અને ધૂમાદિક દોષ જેમાં નથી, એવા આહારને ભોગવે-ઉપયોગમાં લાવે. અંગાર અને ધૂમાદિક દોષોના કારણ રાગ અને દ્વેષ છે. આનાથીજ તે આહાર

मङ्गारधूमादिदोषदुष्टमशनादिकं जायते, रागद्वेषौ सरसनीरसाहारोपलम्भहेतुना जायेते। कारणमन्तरा कार्योत्पत्तेरदर्शनादिति रसोपलब्धिकारणपरिहारमेव प्रदर्शयति–'आहारयन्नि'–त्यादि, स भिक्षुरशनं वा ४ अशनादिकम् आहारयन्=भुञ्जानः, आस्वादयन्=तदशनादिकं चर्वयन् वामतो हनुतः=वामहनुतः आदाय रसास्वादाय दक्षिणं हनुं नो सञ्चारयेत्, अपि चाशनादिकमास्वादयन स भिक्षुः दक्षिणतो हनुतः=दक्षिणहनुतो गृहीत्वा वामं हनुं न सञ्चारयेत्, तादृशास्वादन–सञ्चारणयोः कृतयोः सतोः रसोपलब्ध्या राग–द्वेषजन्या अङ्गार–धूमादिदोषा जायन्ते, अतस्तथा कृत्वा नो आस्वादयेदित्याशयः। यो नास्वादयति तमाश्रित्य कथयति–'स'

और द्वेष होनेका कारण भी सरस और नीरस आहारकी प्राप्ति है। इससे ही राग और द्वेष ये दोनों उसमें उत्पन्न होते हैं। कारण के विना कार्यकी उत्पत्ति नहीं होती है इस लिये सूत्रकार यहां पर रसोपलब्धिरूप कारण के परिहारका प्रदर्शन करते हुए कहते हैं–वह भिक्षु जिस समय आहार करे उस समय चबाते हुए उस आहारका रसास्वादके निमित्त मुंह में एक तरफसे दूसरी तरफ परिवर्तन न करे। यदि ग्रास दक्षिणकी दाढाओंके नीचे रखा है तो उसे उन्हीं दाढाओं द्वारा चबावें–वामतरफ न फेरे, यदि वामबाजूकी दाढाओं तले उसे रखा है तो उन्हींसे उसे चबावें–दक्षिणकी तरफ उसे न ले जावें, इस प्रकार के परिवर्तनसे आहार के रसकी उपलब्धि होती है अतः इस प्रकार का चबाना और परिवर्तन करना, ये दोनों साधु के लिये रसास्वाद के निमित्त हेय हैं। ऐसा करनेसे रसकी उपलब्धि होगी और फिर उससे रागद्वेषके कारण-

અંગાર અને ધૂમાદિક દોષવિશિષ્ટ થાય છે. રાગ અને દ્વેષ હોવાનું કારણ પણ સરસ અને નિરસ આહારની પ્રાપ્તિ છે. તેનાથી જ તે બન્ને તેમાં ઉત્પન્ન થાય છે, કારણના વિના કાર્યની ઉત્પત્તિ થતી નથી. આ માટે સૂત્રકાર અહિં રસની ઉપલબ્ધિરૂપ કારણના પરિહારનું પ્રદર્શન કરીને કહે છે કે તે ભિક્ષુ જે સમય આહાર કરે તે સમય ચાવતી વખતે તે આહારના રસાસ્વાદ માટે મોઢામાં એક તરફથી બીજી તરફ ફેરફાર ન કરે. કદાચ ગ્રાસને દક્ષિણ દાંઢોની નીચે રાખેલ હોય તો તેને એ જ દાઢો દ્વારા ચાવે બીજી તરફ ન ફેરવે. કદાચ બીજી બાજુની દાઢો નીચે રખાએલ હોય તો તેનાથી જ ચાવે સામી તરફ તેને ન લઈ જાય. આ પ્રકારના પરિવર્તનથી આહારના રસની ઉપલબ્ધિ થાય છે માટે આ પ્રકારથી ચાવવું અને પરિવર્તન કરવું એ બન્ને સાધુ માટે હેય છે. એમ કરવાથી રસની ઉપલબ્ધિ થશે અને પછી તેનાથી તેને રાગ અને દ્વેષના

इत्यादि–सः पूर्वोक्तो भिक्षुः अनास्वादयन्=हन्वन्तराद्धन्वन्तरेऽशनादिसञ्चारमकुर्वन् लाघविकम्=आहारलाघवम् आगमयन्=विदधद् भवति, एतादृस्य तस्य मुनेः तपः समन्वागतं भवतीति पूर्ववत् । स्वबुद्धिपरिकल्पितत्वनिरासायाह–'यदेत'–दित्यादि, यत्=भोजनविधानं दोषरहितम् एतत् सर्वं भगवता=सर्वज्ञेन प्रवेदितं=प्ररूपितम्, तत-स्तदेव=पूर्वोक्तमेव अभिसमेत्य सर्वतः सर्वात्मतया सम्यक्त्वमेव समभिजानीयादि-त्यादेर्व्याख्या पूर्वोक्तदिशाऽवसेया ॥ सू० ३ ॥

भूत अंगार–धूमादिक दोष उत्पन्न होंगे, इसलिये इन दोषों से बचने के लिये साधु इस तरह से भोजन–आहार न चबावें। जो साधुजन इस प्रकार से भोजनको नहीं चबाते हैं–अर्थात् एक जबडे से दूसरे जबडे तरफ उसे रसास्वाद के निमित्त परिवर्तित नहीं करते हैं, इससे आहा-रविषयक रसास्वाद न आनेसे वे रागद्वेषकी लघुता करदेते हैं। इस परिस्थितिमें जो भी उन्हें अल्पमात्रामें शुद्ध निर्दोष विधि–अनुसार आहार उपलब्ध होता है वही उन्हें ग्राह्य होनेसे मुनिके तपकी प्राप्ति और वृद्धि होती रहती है। साधुके लिये जो यह निर्दोष भोजनका विधान कहा है वह सब भगवान् सर्वज्ञ द्वारा प्ररूपित ही कहा गया है, इसलिये इस पूर्वोक्त विधान को सर्व प्रकार एवं सर्वात्मरूपसे सत्य ही जानना चाहिये।

भावार्थ—चाहे साधु हो या साध्वी हो आहारको विना रसास्वाद-लिये ही करें। यह बात साधुको तब ही बन सकती है कि जब वह

કારણ અંગારધૂમાદિક દોષો ઉત્પન્ન થશે. આ માટે એવા દોષોથી બચવા માટે સાધુ આ રીતે આહારને ચાવે નહિ. જે સાધુજન આ પ્રકારથી ભોજન ચાવતા નથી અર્થાત્ એક જડબાથી બીજા જડબા તરફ તેને રસાસ્વાદ નિમિત્ત ફેરવતા નથી એથી આહારવિષયક રસાસ્વાદ ન આવવાથી તેઓ રાગદ્વેષની લઘુતા કરી દે છે. આ પરિસ્થિતિમાં જે પણ તેને અલ્પ માત્રામાં શુદ્ધ નિર્દોષ વિધિ અનુસાર આહાર મળે છે તેજ એને ગ્રાહ્ય હોવાથી એનાથી તપની પ્રાપ્તિ અને વૃદ્ધિ તેને થતી રહે છે. સાધુ માટે જે આ નિર્દોષ આહારનું વિધાન કહેલ છે તે બધું ભગવાન સર્વજ્ઞદ્વારા પ્રરૂપિત જ અહીં કહે-વાયું છે, આ માટે આ પૂર્વોક્ત વિધાનને સર્વ પ્રકારે અને સર્વાત્મરૂપથી સત્યજ માનવું જોઈએ.

ભાવાર્થ—ભલે સાધુ હોય અગર સાધ્વી આહારને રસાસ્વાદ લીધા વિનાજ આરોગે. આ વાત સાધુ માટે ત્યારેજ બને છે કે જ્યારે તે આહારને મુખમાં

एतादृशस्य भिक्षोरन्तमान्तसेविनः परिशुष्कमांसशोणितसकलकायक्रियायामव-सीदतो देहपरित्यागबुद्धिः समुदेतीति दर्शयति–' जस्स णं भिक्खुस्स '–इत्यादि।

मूलम्–जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ–से गिलामि च खलु अहं इमंसि समए इमं सरीरगं अणुपुव्वेण परिवहित्तए, से अणुपुव्वेणं आहारं संवट्टिज्जा, अणुपुव्वेण आहारं संवट्टित्ता कसाए पयणुए किच्चा समाहियच्चे फलगावयट्ठी उट्ठाय भिक्खू अभिनिव्वुडच्चे ॥ सू० ४ ॥

छाया—यस्य खलु भिक्षोरेवं भवति–तद् ग्लायामि च खलु अहमस्मिन् समये इदं शरीरकमानुपूर्व्या परिवोढुम्, स आनुपूर्व्या आहारं संवर्तयेत्, आनुपूर्व्या आहारं संवर्त्य कषायान् प्रतनुकान् कृत्वा समाहितार्च्चः फलकापदर्थी उत्थाय भिक्षुरभिनिर्वृतार्चः ॥ सू० ४ ॥

आहार का मुखमें इधर उधर परिवर्तन न करे। आहार का स्वाद न आनेसे भोजनमें लघुता होती है उससे तपकी प्राप्ति और उसकी वृद्धि साधुके होती है। यह सब आहारविषयक कथन भगवान सर्वज्ञद्वारा प्ररू-पित है, वही यहां कहा गया है इसलिये इस पर पूर्ण विश्वास करें॥सू० ३॥

जो मुनि अंत प्रान्त आहारका सेवन करता है और इसी कारणसे जिसके शरीरके मांस और शोणित शुष्क हो चुके हैं, और इसीलिये जो समस्त शारीरिक क्रियाओंके करनेमें असमर्थ बना हुआ है उसके चित्तमें इस देहको परित्याग करनेकी बुद्धि जागृत होती है, इस विषयको सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं—" जस्स णं भिक्खुस्स " इत्यादि।

આડે અવળે ન ફેરવે. આહારનો સ્વાદ ન આવવાથી ભોજનમાં લઘુતા થવાથી તપની પ્રાપ્તિ અને તેની વૃદ્ધિ સાધુને થાય છે. આ સઘળું આહાર વિષેનું કથન ભગવાન સર્વજ્ઞ દ્વારા પ્રરૂપિતજ અહિં કહેવામાં આવેલ છે. એ માટે તેના ઉપર વિશ્વાસ કરવો. (સૂ૦૩)

જે મુનિ અન્ત–પ્રાન્ત આહારનું સેવન કરે છે અને તેના કારણથી જેનું લોહી અને માંસ સુકાઈ જાય છે જેનાથી સમસ્ત શરીરની ક્રિયાઓ કર-વામાં અસમર્થ બનેલ છે તેના ચિત્તમાં આ દેહનો ત્યાગ કરવાની બુદ્ધિ જાગ્રત થાય છે, આ વિષયને સૂત્રકાર પ્રદર્શિત કરે છે–' जस्स णं भिक्खुस्स ' ઈત્યાદિ.

टीका—' यस्ये '-त्यादि, यस्य=एकत्वभावनाभावितान्तःकरणस्य भिक्षोः= अशनादिषु लघुतामुपगतस्य मुनेः खलु चेतसि एवं=वक्ष्यमाणं भवति, तदेवाह– ' तद् ' तद्यथा, 'च' शब्दः समुच्चायकः, अत एवान्तप्रान्ताशनसञ्जातरोगाभिभूतः, अहं खलु अस्मिन् समये प्रतिक्षणं शरीरस्य शीर्यमाणत्वाद् ग्लायामि=ग्लानतामुपगतोऽस्मि, इदम्=औदारिकं शरीरकं-शीर्यते=विदीर्यते यत्तच्छरीरं, शरीरमेव शरीरकम्, आनुपूर्व्या=समुचितावसरावश्यकर्तव्यक्रियया परिवोढुं=तत्र व्यापारयितुं न शक्नोमि, इति विचार्य च सः=मुनिः, आनुपूर्व्या=चतुर्थ-षष्ठा-ऽष्टमाऽऽ-चामाम्लादिकया, आहारम्=अशनादिकं संवर्तयेत्=संक्षेपयेत् ।

नन्वानुपूर्वी पुनर्द्वादशवर्षसंलेखनारूपा कुतो न गृह्यते? इति चेन्न-ग्लानिमुपगतस्य तच्छरीरस्य द्वादशवर्षकालिकावस्थानासम्भवात्, अत स्तत्कालसमुचितयाऽऽनु-

जो मुनिका अन्तःकरण एकत्व-भावनासे भावित है, और आहार आदि भी जिसका कम हो गया है उसके चित्तमें इस प्रकारका विचार आता है कि-मैं इस समय अन्त प्रान्त आहार के सेवन करनेसे रोगाक्रान्त हो चुका हूं, शरीर भी प्रतिक्षण अपने कर्तव्यपथसे क्षीण हो रहा है-शिथिल बनता जा रहा है, इसलिये योग्य अवसरमें जिन२ आवश्यक क्रियाओंको करना चाहिये वे अब इस शरीरद्वारा पूर्णरूपसे नहीं हो सकती हैं। ऐसा विचार कर वह ग्लान मुनि चतुर्थ-षष्ठ-अष्टम भक्तसे, एवं आयम्बिल आदि तपसे आहार आदिको कम कर देवे।

शङ्का—बारह वर्षकी संलेखनारूप आनुपूर्वीका आपने यहां ग्रहण क्यों नहीं किया ?।

उत्तर—यह शङ्का ठीक नहीं है, क्यों कि जो मुनि ग्लान-अवस्था-बीमारी हालत-में पड़ा हुआ है, उसका शरीर बारह वर्षतक स्थिर नहीं रह

જે મુનિનું અન્તઃકરણ એકત્વ-ભાવનાથી ભાવિત છે અને આહાર આદિ પણ જેનો થોડો થઈ ગયેલ છે તેના ચિત્તમાં એવા પ્રકારનો વિચાર આવે છે કે-હું અન્તપ્રાન્ત આહાર લેવાથી આ સમયે રોગગ્રસ્ત બનેલ છું, શરીર પણ પ્રતિક્ષણ પોતાના કર્તવ્યથી ક્ષીણ થઈ રહેલ છે-નિર્બળ બની રહેલ છે, આ માટે યોગ્ય અવસરમાં જે જે આવશ્યક ક્રિયાઓ કરવી જોઈએ તે હવે આ શરીરથી પૂર્ણ સ્વરૂપથી બની શકતી નથી. એવો વિચાર કરી તે ગ્લાન મુનિ ચઉત્થ-છટ્ઠ-અટ્ઠમ ભકતથી, આયમ્બિલ આદિ તપથી આહાર આદિ ઓછાં કરતા રહે.

શંકા-બાર વર્ષની સંલેખનારૂપ આનુપૂર્વીનો આપે ગ્રહણ કેમ નથી કર્યો ?

ઉત્તર—આ શંકા ઠીક નથી, કેમકે જે મુનિ ગ્લાન અવસ્થા-બિમારી હાલત-માં પડેલ છે, એનું શરીર બાર વર્ષ સુધી સ્થિર રહી શકતું નથી, આ

पूर्व्या द्रव्यसंलेखनयाऽशनादिकं संक्षेपयेदित्याशयः। स च द्रव्यसंलेखनया संलिख्यान्यदपि विदधीतेत्याह-'से' इत्यादि, आनुपूर्व्या=तपःक्रमेण संवर्त्य=अशनादिकं संक्षिप्य तदनु कषायान्=क्रोधादीन् प्रतनुकान्=कृशान् कृत्वा 'समाहितार्चः' समाहिता=सम्यग् व्यवस्थापिता अर्चा=शरीरं येन स समाहितार्चः=नियमितशरीरव्यापारः। यद्वा-समाहिता=सम्यक् सम्पादिता अर्चा=प्रशस्तलेश्या येन स समाहितार्चः=परिशुद्धाध्यवसायः,अथ वा समाहिता=प्रशमिता अर्चा=क्रोधाद्यध्यवसायरूपा लेश्या=ज्वाला येन स समाहितार्चः,'फलकापदर्थी'=फलमेव फलकं कर्मक्षपणात्मकं, तेन फलकेन आपदि=

सकता इसलिये उस कालमें समुचित द्रव्यसंलेखनारूप आनुपूर्वीसे यह अशनादिकको कम करे, ऐसा कहा है, और इसी विचार से चतुर्थ-षष्ठ आदिरूप आनुपूर्वीका यहां ग्रहण किया गया है।

इस द्रव्यसंलेखनारूप आनुपूर्वीसे आहारकी कृशता कर फिर वह साधु उसके बाद क्रोधादिक कषायोंको कृश करे। उनके कृश हो जाने पर फिर वह अपने शरीरको नियमित व्यापारमें लगावे। अथवा अपने परिणामोंको शुद्ध रखे। अथवा क्रोधादिक अध्यवसायरूप ज्वालाको शान्त करे। इस तरहकी प्रवृत्तिसे यह मुनि पण्डितमरण में उद्योग करके कर्मक्षपक तपकी विधिसे संसिद्ध शरीरवाला बनकर महर्षियों द्वारा तथा तीर्थंकर गणधरों द्वारा समाचरित मार्गका अनुगामी होता हुआ इंगितमरण करे।

फलकापदर्थी-इस पदमें फलक१, आपद् २, अर्थी ३, ऐसे तीन शब्द हैं। कर्मोंका जो क्षपण होता है, वह फलक है, संसारमें परिभ्रमण करनेका

માટે એ કાળમાં સમુચિત દ્રવ્યસંલેખનારૂપ આનુપૂર્વીથી તે અશનાદિકને ઓછાં કરે, એવું કહ્યું છે, અને આ જ વિચારથી ચઉત્થ-છટ્ઠ આદિરૂપ આનુપૂર્વીનો અહિં ગ્રહણ કરવામાં આવેલ છે.

આ દ્રવ્યસંલેખનારૂપ આનુપૂર્વીથી આહારની કૃશતા-અલ્પતા કરી.ફરી તે સાધુ એના પછી ક્રોધાદિક કષાયોને દૂર કરે. આ બધું છોડ્યા બાદ પછી તે પોતાના શરીરને નિયમિત વ્યાપારમાં લગાડે. અથવા પોતાના પરિણામોને શુદ્ધ રાખે. અથવા ક્રોધાદિક અધ્યવસાયરૂપ જ્વાળાને શાન્ત કરે. આ રીતની પ્રવૃત્તિથી તે મુનિ પંડિત મરણ માટે ઉદ્યોગશીલ બની કર્મક્ષપક તપની વિધિથી સંસિદ્ધ શરીરવાળા બની મહર્ષિયોદ્વારા તથા તીર્થંકર ગણધરો દ્વારા સુચવાયેલા માર્ગના અનુગામી બની ઈંગિત મરણ કરે.

फलकापदर्थी—એ પદમાં ફલક ૧, આપદ્ ૨, અર્થી ૩, એવા ત્રણ શબ્દ છે, કર્મોનો જે ક્ષય થાય છે, તે ફલક છે-સંસારમાં પરિભ્રમણ કરવાનું નામ આપદ છે. અર્થ

संसारपरिभ्रमणरूपायां योऽर्थः=प्रयोजनं स फलकापदर्थः सोऽस्यास्तीति फलकापदर्थी संसारजनककर्मक्षपणप्रयोजनवान् भिक्षुः=मुनिः उत्थाय पण्डितमरणोद्योगं विधाय अभिनिर्वृत्तार्चः-अभिनिर्वृता=कर्मक्षपकतपोविधिना संसिद्धा अर्चा=शरीरं यस्य स तथोक्तः-महर्षिसमाचरितमार्गानुगामी सन् इङ्गितमरणं कुर्यात् ॥ सू० ४ ॥

नाम आपद् है, अर्थ शब्दका अर्थ प्रयोजन है, कर्मक्षपणरूप फलकसे संसारपरिभ्रमणरूप आपत्तिमें जो अपने प्रयोजनका अभिलाषी है, अर्थात् संसार में भ्रमण करानेवाले कर्मोंको विनाश करनेका ही जिसका अभिप्रायरूप प्रयोजन है, वह फलकापदर्थी है। सूत्र में अर्चा शब्दका अर्थ शरीरलेश्या या क्रोधादिरूप ज्वाला, ऐसा अर्थ किया गया है।

भावार्थ—मुनिका शरीर जब अपने कर्तव्यमार्गके आचरण करनेमें शिथिल हो रहा हो तब उसका कर्तव्य है कि वह संसारजनक कर्मों के क्षय करनेका प्रयोजनशील होकर चतुर्थ षष्ठ आदि आनुपूर्वीद्वारा आहारको, पश्चात् क्रोधादिक कषायोंको कृश करता हुआ इंगितमरणरूप संथाराको धारण करे। यह मार्ग महर्षियों द्वारा भी इसी अवसर पर पहिले आचरित किया गया है, इस विचारसे वह मुनि भी अपनी शारीरिक क्रियाओंको नियमित कर इस मरणके करनेमें उत्तरोत्तर परिणामोंकी वृद्धि करता रहे। थोड़ी सी भी शिथिलता इस समय न आने पावे, इसकी पूर्ण सावधानी रखे। 'फलकापदर्थी' इस पदसे सूत्रकारने इस

શબ્દનો અર્થ પ્રયોજન છે. કર્મક્ષયરૂપ ફલકથી સંસારપરિભ્રમણરૂપ આપત્તિમાં જે પોતાના પ્રયોજનના અભિલાષી છે, અર્થાત્ સંસારમાં ભ્રમણ કરાવવાવાળાં કર્મોનો વિનાશ કરવાનો જ જેનો અભિપ્રાયરૂપ નિશ્ચય છે તે फलकापदर्थी છે સૂત્રમાં અર્ચા શબ્દનો અર્થ શરીરલેશ્યા–એટલે ક્રોધાદિરૂપ જવાળા, એવો અર્થ કરવામાં આવેલ છે.

ભાવાર્થ—મુનિનું શરીર જ્યારે પોતાના કર્તવ્ય માર્ગનું આચરણ કરવામાં શિથિલ થાય છે ત્યારે એનું કર્તવ્ય છે કે તેણે સંસારજનક કર્મોનો ક્ષય કરવામાં પ્રયોજનશાળી થઈ ચતુર્થ ષષ્ઠ આદિ આનુપૂર્વીથી આહાર અને ક્રોધાદિક કષાયોને દૂર કરતાં કરતાં ઇંગિતમરણરૂપ સંથારો ધારણ કરવો. આ માર્ગ મહર્ષિયોદ્વારા પણ આજ અવસરમાં પહેલાં આચરવામાં આવેલ છે. આ વિચારથી એ મુનિ પણ પોતાની શારીરિક ક્રિયાઓને નિયમિત કરી આવું મરણ કરવા માટે ઉત્તરોત્તર પરિણામોની વૃદ્ધિ કરતા રહે. આ સમયે થોડી પણ શિથિલતા ન આવે, એની પૂર્ણપણે સંભાળ રાખે. फलकापदर्थी આ પદથી સૂત્રકારે

तादृशमरणविधिमेवाह–'अणुपविसित्ता' इत्यादि ।

मूलम्–अणुपविसित्ता गामं वा नगरं वा खेडं वा कब्बडं वा मडंबं वा पट्टणं वा दोणमुहं वा आगरं वा आसमं वा सन्निवेसं वा नेगमं वा रायहाणिं वा तणाइं जाइज्जा, तणाइं जाइत्ता से तमायाए एगंतमवक्कमिज्जा, एगंतमवक्कमित्ता अप्पंडे अप्पपाणे अप्पबीए अप्पहरिए अप्पोसे अप्पोदए अप्पुत्तिंगपणगदगमट्टियमक्कडासंताणए पडिलेहिय२ पमज्जिय२ तणाइं संथरिज्जा, तणाइं संथरित्ता इत्थवि समए इत्तरियं कुज्जा, तं सच्चं सच्चवाई ओए तिन्ने छिन्नकहंकहे आईयट्ठे अणाईए चिच्चा णं भेउरं कायं, संविहूय विरूवरूवे परीसहोवसग्गे, अस्सिं विस्संभणाए भेरवमणुचिन्ने तत्थवि तस्स कालपरियाए, जाव आणुगामियं-ति बेमि ॥ सू० ५ ॥

छाया–अनुप्रविश्य ग्रामं वा नगरं वा खेटं वा कर्बटं वा मडम्बं वा पत्तनं वा, द्रोणमुखं वा, आकरं वा, आश्रमं वा, सन्निवेशं वा, नैगमं वा, राजधानीं वा, तृणानि वा, याचेत, तृणानि याचित्वा स तान्यादाय एकान्ते अपक्रमेत, एकान्तमपक्रम्य अल्पाण्डे अल्पप्राणे अल्पबीजे अल्पहरिते अल्पावश्याये अल्पोदके अल्पोत्तिङ्गपनकदकमृत्तिकामर्कटसंतानके प्रत्युपेक्ष्य२ प्रमृज्य२ तृणानि संस्तरेत्, तृणानि संस्तीर्य अत्रापि समये इत्वरिकं कुर्यात्, तत्सत्यं सत्यवादी ओजस्तीर्णश्छिन्नकथंकथः आतीतार्थः अनातीतः, त्यक्त्वा भिदुरं कायं संविधूय विरूपरूपान् परीषहोपसर्गान् अस्मिन् विश्रम्भणतया भैरवमनुचीर्णवान्, तत्रापि तस्य कालपर्यायो यावदानुगामिकम्–इति ब्रवीमि ॥सू० ५॥

प्रकारके मरण करनेमें आत्मघातका अभाव प्रकट किया है ॥सू०४॥

अब इस मरणकी ही विधिका प्रदर्शन करते हैं–'अणुपविसित्ता' इत्यादि ।

આવું મરણ કરવામાં આત્મઘાત જેવું બનતું નથી તેમ પ્રગટ કરેલ છે. (સૂ૦૪)

એ મરણનીજ વિધિને પ્રદર્શિત કરતાં સૂત્રકાર કહે છે–'अणुपविसित्ता' ઈત્યાદિ.

टीका—'अनुप्रविश्ये'-त्यादि, स भिक्षुः 'ग्रामं'-ग्रसति बुद्ध्यादिगुणानिति ग्रामस्तं, 'वा' सर्वत्र पक्षान्तरद्योतको ज्ञेयः; नगरं=प्रसिद्धं, खेटं=पांशुप्राकारबद्धं, कर्बटं =क्षुल्लप्राकारवेष्टितम्, मडम्बं-यस्य चतुर्दिक्षु सार्धक्रोशद्वयान्तरे ग्रामादिकं नास्ति तत्,

इंगितमरणका अभिलाषी वह मुनि ग्राम, नगर, खेट, कर्बट, मडम्ब, प्रत्तन, द्रोणमुख, आकर, आश्रम, सन्निवेश, निगम, अथवा राज-धानीमें जाकर घासकी याचना करे। घासको लेकर वह पर्वतकी गुफा-आदि एकान्त स्थानमें जावे। वहां कीडीआदिकोंके अण्डोंसे रहित, द्वीन्द्रि-यादिक प्राणियोंसे रहित, नीवार-धान्यादिकबीजरहित, दूर्वादिरहित, अंकुररहित, हिमरहित, भौम एवं आन्तरिक्ष जलरहित, उत्तिंग, प-नक, दक-मृत्तिका और मर्कटसन्तानसे रहित, ऐसे स्थानमें उस घासका संस्तारा करे (उसे बिछावे)। संस्तारा करनेके पहिले वह उस स्थानकी अच्छी तरह-बार बार-प्रतिलेखना कर लेवे, प्रतिलेखना कर लेने बाद उसका फिर रजोहरण आदिसे प्रमार्जन करे। बडीनीत एवं लघुनीतके स्थानका भी अच्छी तरहसे निरीक्षण करलेवे।

'ग्रसति बुद्ध्यादिगुणान् इति ग्रामः'—बुद्धिआदि गुणोंका जो ग्रास करता है-अर्थात् जहां पर रहनेसे बुद्ध्यादिक गुणोंमें विशेष उत्कर्षता नहीं आती है उसका नाम ग्राम है। नगर, प्रसिद्ध है। जिसके चारों ओर विशाल ऊँचा धूलि का कोट रहता है वह खेट है। जो छोटे परकोटेसे घिरा होता है वह कर्बट है। जिसकी चारों दिशाओंमें ढाई-ढाई कोश तक ग्रामादिक नहीं होते हैं वह मडम्ब कहलाता है। जहां पर प्रत्येक वस्तु

ઇંગિત મરણના અભિલાષી એ મુનિ ગ્રામ, નગર, ખેટ, કર્બટ, મડંબ, પત્તન, દ્રોણમુખ, આકર, આશ્રમ, સન્નિવેશ, નિગમ, અથવા રાજધાનીમાં જઈ ઘાસની યાચના કરે. ઘાસને લઇ તે પર્વતની ગુફા વગેરે એકાન્ત સ્થાનમાં જાય, ત્યાં કીડી વગેરેનાં ઇંડાંથી રહિત, બે ઇન્દ્રિયવાળા પ્રાણીઓથી રહિત, ઉત્તિંગ, પનક, દક-મૃત્તિકા અને મર્કટસંતાન-(કરોળીયાની જાળ)થી રહિત એવા સ્થાનમાં બિછાવે. સંથારો કરતાં પહેલાં તે એ સ્થાનને સારી રીતે જોઈ લે અને ત્યારપછી રજોહરણ વગેરેથી પ્રમાર્જિત કરે. દરેક રીતે એ સ્થાનનું સંપૂર્ણપણે નિરીક્ષણ કરી લે.

ग्रसति बुद्ध्यादिगुणान्, इति ग्रामः—બુદ્ધિ વગેરે ગુણોનો જે ગ્રાસ કરે છે, અર્થાત્ જે સ્થળે રહેવાથી બુદ્ધિ આદિ ગુણોમાં ઉત્કર્ષતા આવતી નથી એનું નામ ગ્રામ છે, નગર પ્રસિદ્ધ છે, જેની ચારે બાજુ ધુળના ઉંચા ઉંચા ટેકરા હોય છે તે ખેટ છે, જે નાના પરકોટાથી ઘેરાએલ છે તે કર્બટ છે, જેની ચારે દિશાઓમાં અઢી-અઢી

पत्तनं=सर्ववस्तुजातं यत्र सुखेन लभ्यते तत्, तच्च द्विविधं जलपत्तनं स्थलपत्तनं च, तत्र जलपत्तनं रत्नद्वीपादिकं, स्थलपत्तनं=लवपुरादिकं, द्रोणमुखं=जल-स्थलागमनिर्गममार्गम्, यथा-मुम्बापुर्यादिकम्, आकरं=हिरण्यादिखनिम्, आश्रमं=तापसादीनां वसतिं, सन्निवेशं=समागन्तुकनराणामावासं-सामान्यजनावासं, निगमं=प्रचुरतरवणिगादीनामावासं, राजधानीं=राजस्थानम्, अनुप्रविश्य तृणानि याचेत, तृणानि याचित्वा तानि तृणानि आदाय=गृहीत्वा एकान्तम्=निर्जनस्थानं गिरिकन्दरादिकम् उपक्रमेत=गच्छेत्, एकान्तमुपक्रम्य च-'अल्पाण्डे' अल्पानि=अविद्यमानानि अण्डानि कीटकादीनां यत्र तद् अल्पाण्डं, तत्र-अण्डपरिवर्जिते स्थाने, अल्पशब्दोऽत्र प्रकरणे सर्वत्राऽभावार्थक एव बोध्यः। एवम् अल्पप्राणे=द्वीन्द्रिया-

---

अनायास मिलती है वह पत्तन है। यह दो प्रकारका होता है-एक जल-पत्तन है और दूसरा स्थलपत्तन। रत्नद्वीप आदि जलपत्तन हैं। लवपुर (लाहोर) आदि नगर स्थलपत्तन हैं। जिसमें आने जानेका मार्ग जल एवं स्थल, इन दोनोंसे होता है वह द्रोणमुख है, जैसे वर्तमानमें बंबई आदि शहर हैं। सुवर्णआदिकी उत्पत्ति का जो स्थान है वह आकर है। तापस आदिके निवासस्थान आश्रम है। पथिकोंके ठहरनेके स्थानका नाम सन्निवेश है। जहां अधिक संख्यामें व्यापारिवर्गका निवास हो वह निगम है। जिसमें स्वयं राजाका निवास रहता है वह राजधानी है।

इस प्रकरणमें अल्प शब्द अभाव अर्थका द्योतक है। उत्तिंग, कीडी नगरेका नाम है। पनक-भाषामें लीलण-फूलणको कहते हैं, यह जहां

કોશ(ગાઉ), સુધી ગામ નથી હોતાં તે મડમ્બ કહેવાય છે. જ્યાં દરેક વસ્તુ અનાયાસે મળી જાય છે તે પત્તન છે. એ બે પ્રકારનાં હોય છે-એક જળ-પત્તન અને બીજું સ્થળ-પત્તન. રત્નદ્વીપ આદિ જળ-પત્તન છે. લવપુર-લાહોર વિગેરે નગર સ્થળ-પત્તન છે. જ્યાં આવવા જવાનો માર્ગ જળ અને સ્થળ બન્નેથી હોય છે તે દ્રોણમુખ છે તે હાલના મુંબઈ આદિ શહેર છે. સુવર્ણ વગેરેની ઉત્પત્તિનાં જે સ્થાન છે તે આકર-ખનિ છે. તાપસ વગેરેનાં નિવાસસ્થાન આશ્રમ છે. પથિકોને આશ્રય આપનારાં સ્થાનનું નામ સન્નિવેશ છે. જ્યાં અધિક પ્રમાણમાં વેપારી વર્ગનો વસવાટ હોય છે તે નિગમ છે. જ્યાં રાજાનો નિવાસ હોય છે તે રાજધાની છે.

આ પ્રકરણમાં અલ્પ શબ્દ અભાવ અર્થનો દ્યોતક છે. ઉત્તિંગ કીડી નગારાનું નામ છે. પનક-ભાષામાં લીલણ-ફુલણને કહે છે, જે જમીનમાં ભીનાશ

दिप्राणिवर्जिते, अल्पबीजे=नीवार-धान्यादि बीजरहिते, अल्पहरिते=दूर्वादिहरित-वर्जिते 'अल्पावश्याये'-अल्पः=अविद्यमानः अवश्यायो=नीहारो यत्र तत्तत्र=हिमरहिते, अल्पोदके=भौमान्तरिक्षजलरहिते, 'अल्पोत्तिङ्ग-पनक-दकमृत्तिका, मर्कटसन्तानके-उत्तिङ्गः=पिपीलिकानगरादिकः, पनकः=आर्द्रत्वेन पृथिव्यादिस्थितः उद्भिविशेषः 'लीलण-फूलण' इति भाषायाम्, दकमृतिका=अप्कायार्द्रीभूता मृत्तिका, मर्कटसन्तानकः=लूतातन्तुजालं चैतेषामितरेतरद्वन्द्वे उत्तिङ्ग-पनक-दकमृत्तिका-मर्कटसन्तानकास्ते अल्पाः=अविद्यमाना यत्र तत् तत्र स्थाने गत्वा, तच्चक्षुषा प्रत्युपेक्ष्य२=मुहुर्मुहुर्दृष्ट्वा, अत्र वीप्सायां द्विर्वचनम्; प्रमृज्य२=रजोहरणादिना सम्मार्ज्य२, तादृशे पूर्वोक्ते स्थाने तृणानि संस्तरेत्, तृणानि संस्तीर्य उच्चारप्रस्रवणभूमिं प्रत्युपेक्ष्य च संस्तारकस्थितः पूर्वाभिमुखः सदोरकमुखवस्त्रिकोपशोभितमुखः कृतसिद्धनमस्कारः आवर्तितपञ्चपरमेष्ठिमन्त्रो गृहीतचतुर्विधशरणः प्रत्याख्याताष्टादशपापः क्षमापितसकलजीवः, अत्रापि समये=एतस्मिन्नवसरे 'अपि' शब्दादन्यस्मिन्नपि आकस्मिकोपसर्गसमये क्रियमाणत्वग्वर्तनादिक्रियो धृतिसंहननादिबलसमन्वितो

जमीनमें गीलापन रहता है वहां रहती है। अपूकायसे गीली हुई मिट्टीका नाम दकमृत्तिका है। मकडीके जालेका नाम मर्कटसन्तान है। ये सब जीवजात जहां नहीं हैं, ऐसे स्थान पर वह अपना घासका संथारा करे, और उस पर पूर्वाभिमुख होकर बैठ जावे। डोरा सहित मुँहपत्तिसे शोभित है मुख जिसका ऐसा वह साधु सिद्धोंको नमस्कार कर पंचपरमेष्ठिवाचक नमस्कार मंत्रका जापकरे और अरहंत सिद्ध, साधु और केवलिप्रज्ञप्त धर्मका शरण ग्रहण करे। सत्रह प्रकारके पापस्थानोंका परित्याग करे और समस्तजीवोंसे क्षमायाचना करे, अपनी ओरसे भी उन्हें क्षमा प्रदान करे। इस अवसरमें भी त्वग्वर्तनादिक्रिया करता हुआ वह धृति-संहनन-बल-समन्वित ग्लान साधु नियत

હોય છે ત્યાં એ રહે છે. અપ્કાયથી ભીંજાએલી માટીનું નામ દકમૃત્તિકા છે. કરોળીયા વગેરેનાં જાળાં મર્કટસન્તાન છે. આવી જીવ-જાત જ્યાં ન હોય એવા સ્થાન ઉપર તે ઘાસનો સંથારો કરે, અને તેના ઉપર પૂર્વાભિમુખથી બેસી જાય. દોરા સાથેની મુહપત્તીથી શોભિત મુખવાળા તે સાધુ સિદ્ધોને નમસ્કાર કરી પંચપરમેષ્ઠિવાચક નમસ્કાર મંત્રનો જાપ કરી અરહંત, સિદ્ધ, સાધુ અને કેવલિપ્રજ્ઞપ્ત ધર્મનું શરણુ લે. અઢાર પ્રકારના પાપસ્થાનોનો પરિત્યાગ કરી સમસ્ત જીવોની ક્ષમાયાચના કરી પોતાના તરફથી પણુ એમને ક્ષમા આપે. આ અવસરમાં પણુ ત્વગ્વર્તનાદિ ક્રિયા કરતાં કરતાં તે ધૃતિ-સંહનન-બળ-યુક્ત ગ્લાન સાધુ નિયમિત દેશમાં હાલવા ચાલવારૂપ

ग्लानः स भिक्षुः इत्वरिकम्=इङ्गितमरणं नियतदेशप्रचाराङ्गीकाररूपं यावज्जीवं चतुर्विधाहारत्यागनियमं कुर्यात्, उक्तञ्च—

"पच्चक्खइ आहारं, चउव्विहं णियमओ गुरुसमीवे।
इंगियदेसंमि तहा, चिट्ठंपि हु नियमओ कुणइ॥ १॥
उव्वत्तइ परियत्तइ, काइगमाईवि अप्पणा कुणइ।
सव्वमिह अप्पण च्चिय, ण अन्नजोगेण धितिबलिओ"॥ २॥ इति

छाया—प्रत्याख्याति आहारं, चतुर्विधं नियमाद् गुरुसमीपे॥
इङ्गितदेशे तथा, चेष्टामपि नियमतः करोति॥ १॥
उद्वर्तते परिवर्तते कायिक्याद्यपि आत्मना करोति॥
सर्वमिहात्मनैव नान्ययोगेन धृतिबलिकः॥ २॥ इति।

प्रदेशमें हलने—चलनेरूप मर्यादासे युक्त इंगितमरणको कि जिसमें यावज्जीव चतुर्विध आहारका परित्याग होता है धारण करे। कहा भी है—

"पच्चक्खइ आहारं, चउव्विहं नियमओ गुरुसमीवे।
इंगियदेसंमि तहा, चिट्ठं पि हु नियमओ कुणइ॥ १॥
उव्वत्तइ परियत्तइ, काइगमाई वि अप्पणा कुणइ।
सव्वमिह अप्पण च्चिय, ण अन्नजोगेण धितिबलिओ"॥२॥इति

भावार्थ—इस इंगित मरणमें गुरुके समीप चतुर्विध आहारका परित्याग नियमसे होता है, इस मरणमें नियमित प्रदेशमें ही गमनागमनरूप चेष्टा साधु करता है, अनियमित प्रदेशमें नहीं। इसमें समस्त शारीरिक सेवा संभाल साधु स्वतः करता है, दूसरों से नहीं करवाता।

મર્યાદાયુકત ઈંગિતમરણ કે જેણે યાવજ્જીવ ચતુર્વિધ આહારનો પરિત્યાગ હોય છે–ધારણ કરે. કહ્યું પણ છે—

"पच्चक्खइ आहारं, चउव्विहं नियमओ गुरुसमीवे।
इंगियदेसंमि तहा, चिट्ठं पि हु नियमओ कुणइ॥ १॥
उव्वत्तइ परियत्तइ, काइगमाई वि अप्पणा कुणइ।
सव्वमिह अप्पण च्चिय, ण अन्नजोगेण धितिबलिओ"॥२॥ इति।

ભાવાર્થ—આ ઈંગિત મરણમાં ગુરૂની સામે ચતુર્વિધ આહારનો પરિત્યાગ નિયમથી થઈ જાય છે, એવા મરણમાં નિયમિત પ્રદેશમાં ગમનાગમનરૂપ ચેષ્ટા સાધુ કરે છે, અનિયમિત પ્રદેશમાં નહિ. એમાં દરેક રીતે શારીરિક સેવા સંભાળ સાધુ પોતે જ કરે છે–બીજાથી કરાવતા નથી.

एवमिङ्गितमरणविधायी कीदृशो भवतीत्याह–' तत्सत्य '–मित्यादि, सत्यवादी यथोक्तानुष्ठानाद् यथागृहीतप्रतिज्ञापरिपालनात्, एवम् ओजः=रागद्वेषवर्जितः, किं च–तीर्णः=दुष्पारसंसारपारावारपारं गतः, अत्र तरणस्य भविष्यत्कालिकत्वेऽपि भूतकालिकत्वमौपचारिकं बोध्यम्। एवं ' छिन्नकथंकथः ' छिन्ना=दूरीकृता कथं=कथमपिरूपा कथा=रागकथादिरूपा विकथा येन स च्छिन्नकथंकथः। यद्वा—' छिन्नकथंकथः '–छिन्ना=अपनीता ' इङ्गितमरणप्रतिज्ञामहं कथं=केन प्रकारेण पारयिष्ये ' इत्येवंविधा कथा येन स च्छिन्नकथंकथः, यस्त्वधृतिमान् दुरनुष्ठेयाचारमाचरितुं प्रवृत्तो भवति स जायते कथंकथी, परन्तु यः पूर्वोक्तविधः

इङ्गितमरण करनेवाला साधु कैसा होता है इस बातको सूत्रकार निम्नलिखित पदों द्वारा प्रदर्शित करते हैं–वह सत्यवादी होता है, कारण कि जिसरूपसे उसने नियम ग्रहण किया है उसी रूपसे वह उसका निर्वाहक होता है। वह ओज-रागद्वेष रहित होता है। तीर्ण-जिसका पार होना मुश्किल है, ऐसे संसाररूपी समुद्रको तैरनेवाला होता है। यद्यपि संसारसमुद्रसे यह अभी पार नहीं हुआ है, आगे पार होगा, फिर जो यहां ' तीर्णः ' ऐसा भूतकालका प्रयोग किया है वह केवल उपचारसे ही समझना चाहिये। यह छिन्नकथंकथ होता है–रागकथादिरूप विकथाओंका दूर करनेवाला होता है। अथवा–" इस इङ्गितमरण नियमका मैं कैसे निर्वाह कर सकूंगा ?" इस प्रकारकी कथाका परिहारक होता है। जो अधृतिवाला हो कर दुरनुष्ठेय आचारको आचरित करनेके लिये प्रवृत्त होता है वही

ઇંગિત મરણ કરવાવાળા સાધુ કેવા હોય છે એ વાતને સૂત્રકાર નિચેના પદોથી કહે છે–તે સત્યવાદી હોય છે, કારણ કે જેવા રૂપથી એણે નિયમ લીધેલ હોય છે, એ રૂપથી તે એને નીભાવે છે. તે ઓજ–રાગદ્વેષરહિત હોય છે, તીર્ણ–જેનાથી પાર થવું મહામુશ્કેલ છે તેવા સંસારરૂપી સમુદ્રને તરી જનારા હોય છે, હજુ સુધી એ સંસારસમુદ્રથી પાર થઇ શકયા નથી–આગળ ઉપર પાર થશે, છતાં પણ અહિં "તીર્ણઃ" એવો ભૂતકાળનો પ્રયોગ કરેલ છે તે ફકત ઉપચારરૂપ જ સમજવો જોઇએ. તે છિન્નકથંકથ હોય છે–રાગદ્વેષાદિક કથારૂપ વિકથાઓથી દૂર રહેનારા હોય છે. અથવા —" આ ઇંગિતમરણ નિયમને હું કઈ રીતે પાળી શકીશ " આ પ્રકારની આશંકાવાળા હોય છે જે અધૃતિવાળા (ધીરજ વગરના) થઇ દુરનુષ્ઠેય આચારનાં આચરણ કરવામાં પ્રવૃત્ત થાય છે તે કથંકથી બને છે, "હું હવે આ આચારનું પાલન કેમ કરી શકીશ " એવી કથા કર્યા કરે છે પરંતુ તે એવા નથી, કેમ કે

स महापुरुषतया धृतिबलसम्पन्नस्तादृशो न भवतीत्यर्थः, तथा–आतीतार्थः आ=समन्ताद् अतीव इतो=ज्ञातः अर्थो=जीवाजीवादिपदार्थों येन स आतीतार्थः=सम्यक्तया परिज्ञातपदार्थसार्थः। यद्वा–आतीताः=सम्यग्रूपेणातिक्रान्ता अर्थाः=प्रयोजनानि यस्य स आतीतार्थः=निवृत्तव्यापारः, एवम्–' अनातीतः– आ=समन्तात् अतीव इतः=गतोऽनादिसंसारं स आतीतः, अविद्यमान आतीतो यस्य सः–अनातीतः=अपारसंसारपारगामी, स भिक्षुः, तद्=इङ्गितमरणं–' सत्यं ' सद्भ्यो हितं सत्यं सर्वज्ञोपदेशेन सुगतिगमनेऽविसंवादात्तथ्यं विज्ञाय भिदुरं=प्रतिक्षणविशरणशीलं कायम्=औदारिकं देहं त्यक्त्वा=विहाय विरूपरूपान्=बहुविधान् परीषहोपसर्गान् संविधूय=अपनीय अस्मिन्=वीतरागोपदिष्टे शासने विश्रम्भणतया=विश्वासभाजनतया तदुक्तागमस्य निःसंशयं परिशीलितत्वेन भैरवं=कातराणां भयावहं

कथंकथी होता है, "मैं अब इस आचारका पालन कैसे कर सकूंगा" ऐसी कथा किया करता है परंतु यह ऐसा नहीं है, क्यों कि यह महापुरुष होनेसे घृतिबलसम्पन्न होता है। यह आतीतार्थ होता है–अच्छी तरहसे जीव और अजीव आदि पदार्थोंका ज्ञाता होता है। अथवा सम्यक्रूपसे अतिक्रान्त हो चुके हैं समस्त प्रयोजन जिसके ऐसा होता है। यह अनातीत–अपार संसारसे पारगामी होता है।

यह मुनि सर्वज्ञके उपदेशसे सुगतिके गमनमें विसंवादरहित होनेसे ही सज्जनोंके लिये हितविधायक इस इंगितमरणरूप सत्यको जो कायरोंके लिये भयावह है जानकर वीतराग उपदिष्ट शासनमें विश्वासयुक्त होनेके कारणसे ही सेवन करता है; और यह समझता है कि "यह औदारिक शरीर प्रतिक्षण विनाशरूप है, इस लिये इस मरणद्वारा इसका त्याग

તે મહાપુરૂષ હોવાથી ધૃતિબળસંપન્ન હોય છે, તે આતીતાર્થ હોય છે–સારી રીતે જીવ અને અજીવ વગેરે પદાર્થોના જાણકાર હોય છે. અથવા સમ્યક્રૂપથી અતિક્રાન્ત થઇ ચુકયા છે સમસ્ત પ્રયોજન જેમનાં એવાં હોય છે, તે અનાતીત–અપાર સંસારથી પારગામી હોય છે.

તે મુનિ સર્વજ્ઞના ઉપદેશથી સુગતિના ગમનમાં વિસંવાદરહિત હોવાથી જ સજ્જનોને માટે હિતવિધાયક એવા ઈંગિતમરણરૂપ સત્યને જે કાયરોને માટે ભયકારક છે જાણીને વીતરાગદ્વારા ઉપદેશેલ શાસનમાં વિશ્વાસ હોવાના કારણે સેવે છે અને સમજે છે કે–"આ ઔદારિક શરીર પ્રતિક્ષણ વિનાશરૂપ છે. આ માટે એ મરણદ્વારા ત્યાગ કરવો તે સર્વોત્તમ કાર્ય છે" આ ખ્યાલથી જે ઔદારિક શરીરનો એના સેવનથી પરિત્યાગ કરે છે એટલે આ મરણનું આચરણ કરતી વખતે

साध्वाचारम् अनुचीर्णः = आचरितवान् , तत्रापि = व्याधिपीडाजनितेङ्गितमरणस्वीकरणेऽपि तस्य=कालज्ञस्य साधोः कालपर्यायः, कर्मनिर्जरणस्योभयत्र समानत्वात् , अतः स तत्र व्यन्तिकारको भवति, इत्यारभ्य यावत् आनुगामिकं तस्य भवति। 'इति ब्रवीमी '-त्यस्यार्थस्तूक्त एव ॥ सू० ५ ॥

॥ आठवें अध्ययनका छट्ठा उद्देश समाप्त ॥ ८-६ ॥

करना सर्वोत्तम कार्य है " इसी ख्याल से जो इस औदारिक शरीरका इसके सेवनसे परित्याग करता है, एवं इस मरणके आचरण करते समय इसे जो भी अनेक प्रकारके परीषह और उपसर्ग आते हैं उन्हें यह आनंदसे सहन करता है, उस ओर ध्यान नहीं देता है, उस कालज्ञ साधुकी, व्याधिपीडासे जनित इस इंगितमरणमें भी कालपर्याय है, क्यों कि कर्मकी निर्जरा दोनों जगह समान है, इस लिये वह साधु संसारका अन्तकारक होता है और जन्ममरणके जालको विनष्ट कर मोक्षके अनुकूल मार्गपर चलनेवाला होता है ॥सू०५॥

॥ आठवें अध्ययनका छट्ठा उद्देश समाप्त ॥ ८-६ ॥

તેને અનેક પ્રકારના પરિષહ અને ઉપસર્ગ આવે છે તેને આનંદથી સહન કરે છે-એ તરફ ધ્યાન આપતા નથી. એવા કાલજ્ઞ સાધુનું વ્યાધિ પીડાથી થયેલ ઇંગિત મરણ પણ કાળપર્યાય છે, કેમ કે કર્મની નિર્જરા બન્ને સ્થળે સમાન છે, આ કારણે તે સાધુ સંસારનો અન્ત કરનાર હોય છે અને જન્મ મરણની જાળને ભેદીને મોક્ષના અનુકૂળ માર્ગ ઉપર ચાલવાવાળા હોય છે. (સૂ૦ ૫)

આઠમા અધ્યયનનો છઠો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૮-૬ ॥

। अथाष्टमाध्ययनस्य सप्तम उद्देशः ।

अभिहितः षष्ठ उद्देशः, साम्प्रतं सप्तम आरभ्यते। अस्य पूर्वोद्देशेन सहायं सम्बन्धः–पूर्वत्रैकत्वभावनाभावितान्तःकरणस्य धृति–संहननयुक्तस्येङ्गितमरणं वर्णितम्। अत्र चैकत्वभावना प्रतिमाभिः सम्पादनीयेत्येकत्वभावनामेव कथयित्वा विशिष्टतरसंहननोपेतस्य पादपोपगमनमपि विधेयमिति प्रतिपादनीयम्। तत्र प्रथमं प्रतिमाप्रतिपन्नस्याभिग्रहविशेषेणावस्थां वर्णयति–'जे भिक्खू' इत्यादि।

मूलम्–जे भिक्खू अचेले परिवुसिए, तस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ–चाएमि अहं तणफासं अहियासित्तए, सीयफासं अहियासित्तए, तेउफासं अहियासित्तए, दंस–मसगफासं अहियासित्तए, एगयरे अन्नतरे विरूवरूवे फासे अहियासित्तए, हिरिपडिच्छायणं चऽहं नो संचाएमि अहियासित्तए, एवं से कप्पइ कडिबंधणं धारित्तए ॥ सू० १ ॥

॥ आठवें अध्ययनका सातवां उद्देश ॥

छट्ठा उद्देश कहा जा चुका है। अब सप्तम उद्देश प्रारंभ होता है। इसका पूर्व उद्देश के साथ यह संबंध है—पूर्व उद्देशमें एकत्वकी भावनासे भावित अन्तःकरणवाले, एवं धृति–संहननसे युक्त साधुके इंगित मरणका वर्णन किया है। इस उद्देशमें प्रतिमाओं द्वारा वह एकत्व भावना संपादनीय है, अतः एकत्वभावनाका ही कथन करके विशिष्टतर संहननसे युक्त उस साधुको पादपोपगमन संथारा भी विधेय है, यह प्रतिपादित होगा। इसमें सर्व प्रथम सूत्रकार प्रतिमाप्रतिपन्न साधुकी अभिग्रहविशेषसे अवस्थाका वर्णन करते हैं—"से भिक्खू" इत्यादि।

આઠમા અધ્યયનનો સાતમો ઉદ્દેશ

છઠ્ઠો ઉદ્દેશ કહેવાઈ ગયેલ છે. હવે સાતમા ઉદ્દેશનો આરંભ થાય છે. આનો પૂર્વ ઉદ્દેશની સાથે આ સંબંધ છે–પૂર્વ ઉદ્દેશમાં એકત્વની ભાવનાથી ભાવિત અન્તઃકરણવાળા, અને ધૃતિ સંહનનથી યુકત સાધુના ઇંગિત મરણનું વર્ણન કરેલ છે. આ ઉદ્દેશમાં પ્રતિમાઓદ્વારા તે એકત્વભાવના સંપાદનીય છે આ રીતે એકત્વભાવનાનું જ કથન કરીને વિશિષ્ટતર (દઢ) સંહનનથી યુકત એ સાધુને પાદપોપગમન સંથારો પણ વિધેય છે, આ પ્રતિપાદિત થશે.

આમાં સર્વ પ્રથમ સૂત્રકાર પ્રતિમાપ્રતિપન્ન સાધુની અભિગ્રહવિશેષ અવસ્થાનું વર્ણન કરે છે—"से भिक्खू" ઇત્યાદિ.

छाया—यो भिक्षुरचेलः पर्युषितस्तस्य खलु भिक्षोरेवं भवति–शक्नोम्यहं तृणस्पर्शमध्यासितुं, शीतस्पर्शमध्यासितुं, दंश-मशकस्पर्शमध्यासितुमेकतरानन्यतरान् विरूपरूपान् स्पर्शान् अध्यासितुं ह्रीप्रतिच्छादनं चाहं नो शक्नोम्यध्यासितुम्, एवं तस्य कल्पते कटिबन्धनं धर्तुम् ॥सू० १॥

टीका–'यो भिक्षु'–रित्यादि, यः प्रतिमाप्रतिपन्नो भिक्षुः=अनगारः, अचेलः =अभिग्रहविशेषेण वसनवर्जितः सन् पर्युषितः=संयमे तपसि च व्यवस्थितोऽस्ति तस्य भिक्षोः=मुनेश्चेतसि एवम्=इत्थं भवति–अहं तृणस्पर्शम्=तृणस्पर्शजन्यपीडाम् अध्यासितुम्=अधिसहितुम्, एवं शीतस्पर्शमध्यासितुम्, किञ्च तेजःस्पर्शं=प्रचण्डमार्तण्डकिरणजनितोष्णजन्यकष्टमध्यासितुम्, तथा दंश-मशकस्पर्शं=दंश-मशकदंशनजनितदुःखविशेषमध्यासितुं, तथा एकतरान्=मुख्यान् केवलशीतोष्णादिजनितान्, अन्यतरान्=द्विबह्वोरेकतरान्, तथाविधान् विरूपरूपान्=बहुविधान् कर्कशकठोरभूमिकण्ट-

'यः भिक्षुः'=जो प्रतिमाप्रतिपन्न साधु, 'अचेलः'=अभिग्रहविशेष से वस्त्ररहित होता हुआ, 'पर्युषितः'=संयम और तपमें व्यवस्थित है, तस्य भिक्षोः'=उस मुनिके 'चेतसि' चित्तमें, 'एवं भवति'=इस प्रकार विचार आता है कि–'अहं'=मैं, 'तृणस्पर्शं'=तृणस्पर्शजन्य पीड़ाको, 'अध्यासितुं'= सहन करनेके लिये, 'एवं' इसी प्रकार 'शीतस्पर्शं'=शीतस्पर्शजन्य बाधाको 'अध्यासितुं'=सहन करने के लिये, 'तेजः स्पर्शं' सूर्यकी प्रखर किरणोंसे जनित उष्णताजन्य कष्टको 'अध्यासितुं'=सहन करनेके लिये, तथा 'दंशमशकस्पर्शं'=दंशमशकके काटनेसे उत्पन्न हुए परिषहविशेषको 'अध्यासितुं'=सहन करनेके लिये, तथा–'एकतरान्'–केवल शीत अथवा उष्ण आदि जनित किसी एक दुःखको, तथा 'अन्यतरान्'–शीत उष्ण आदि दो में से अथवा बहुतोंमें से किसी अन्यतर कष्टको, अथवा 'विरूपरूपान्'=अनेक प्रकारके कर्कश और कठोर भूमि और कण्टक आदिसे

यः भिक्षुः=જે પ્રતિમાપ્રતિપન્ન સાધુ, अचेलः=અભિગ્રહ વિશેષથી વસ્ત્રરહિત હોવા છતાં, पर्युषितः=સંયમ અને તપથી વ્યવસ્થિત છે, तस्य भिक्षोः=તે મુનિને चेतसि ચિત્તમાં, एवं भवति=આ પ્રકારનો વિચાર આવે છે, કે–अहं=હું, तृणस्पर्शं=તૃણસ્પર્શવાળી પીડાને, अध्यासितुं=સહન કરવા માટે, "एवं" એ જ પ્રકારે शीतस्पर्शं=ઠંડીના ઉપદ્રવવાળી બાધાને अध्यासितुं=સહન કરવા માટે, તથા तेजःस्पर्शं=અતિ તપતા સૂર્યના ઉગ્ર કિરણોને अध्यासितुं= સહન કરવા માટે, તથા दंशमशकस्पर्शं=ડાંસ મચ્છરનો પરિસહ अध्यासितुं=સહન કરવા માટે, एकतरान्= કેવલ–ઠંડી અથવા ગરમી આ બેમાંથી ગમે તે એક, अन्यतरान्=તથા બીજા પ્રકારના ઘણા દુઃખોમાંથી અન્યતર विरूपरूपान्=અનેક પ્રકારના કાંકરાવાળી અને

कादिजनितान् स्पर्शान्=दुःखानि अध्यासितुं शक्नोमि=समर्थोऽस्मि। धृति-संहनन-युक्तस्य श्रुतज्ञानदृष्ट्या परिज्ञात-नारक-तिर्यग्वेदनाभिभवस्य वैराग्यभावना-भावितस्य प्रतिमाप्रतिपन्नस्य मे तादृशानि दुःखानि बहुशोऽनुभूतपूर्वाणि सन्त्यत एतानि दुःखानि मां परिभवितुं न शक्नुवन्तीत्याशयः, परन्तु-अहं केवलं 'ह्रीप्रति-च्छादनं' ह्रिया=लज्जया गुह्यस्य प्रतिच्छादनम्=आच्छादनम् , मध्यमपदस्य गुह्यस्य लोपः, त्यक्तुं=विहातुं न शक्नोमि=लज्जास्वभावत्वेन विकृतसाधुवेषशङ्कया च तत्परिहर्तुं न समर्थोऽस्मीत्यर्थः। एवं पूर्वोक्तहेतुभिः तस्य=प्रतिमाप्रतिपन्नस्य भिक्षोः कटिबन्धनं=विस्तरेण चतुरङ्गुलाधिकहस्तप्रमाणं, दैर्घ्येण कटिप्रमाणं, गणनया चैकं

जनित 'स्पर्शान्'=दुःखोंको, 'अध्यासितुं'=सहन करनेके लिये, 'शक्नोमि' =समर्थ हूं।

भावार्थ—धृति और संहननसे युक्त, श्रुतज्ञानकी दृष्टिसे नरक और तिर्यग्गतिके कष्टोंको जाननेवाले, वैराग्यभावनासे भावित, और प्रतिमाप्रतिपन्न, ऐसे मैंने जब उस २ प्रकारके दुःखोका पूर्वमें बहुतवार अनुभव किया है तो फिर ये दुःख मुझे, दुःखित या तिरस्कृत करनेके लिये समर्थ नहीं हो सकते हैं।

"ह्री-प्रतिच्छादनं" इस पदमें मध्यम पद "गुह्य"का लोप हुआ है, अतः 'ह्रिया'=लज्जाके कारण 'गुह्यस्य'=गुह्यभागके 'प्रतिच्छादनं'= आच्छादनरूप वस्त्रको 'त्यक्तुं'=छोड़ने के लिये मैं, 'न शक्नोमि'=लज्जा-युक्त स्वभाववाला होनेसे, और साधुका वेषकी विकृति हो जानेकी शंका से समर्थ नही हूं। 'एवं'=इन पूर्वोक्त कारणोंसे 'तस्य'=उस प्रतिमाप्रतिपन्न साधुके, 'कटिबन्धनं'=चार अंगुल अधिक एक हाथ प्रमाण विस्तृत एवं

કઠોર ભૂમિના, અને કાંટા વગેરેથી ભરેલા, स्पर्शान्=દુઃખોને, अध्यासितुं=સહન કરવા માટે शक्नोमि=સમર્થ છું.

ભાવાર્થ—ધૃતિ અને સંહનનથી યુકત શ્રુતજ્ઞાનની દૃષ્ટિથી નરક અને તિર્યગ્ ગતિના કષ્ટોને જાણવાવાળા વૈરાગ્ય ભાવનાથી ભાવિત અને પ્રતિમાપ્રતિપન્ન એવો મેં જ્યારે જે જે દુઃખોનો અગાઉ ઘણી વખત અનુભવ કરેલ છે તો પછી આ દુઃખ મને દુઃખિત અથવા તિરસ્કૃત કરવામાં સમર્થ બની શકનાર નથી.

"ह्रीप्रतिच्छादनं" આ પદમાં મધ્યમ પદ "गुह्य"નો લોપ થયેલ છે. એ રીતે ह्रिया=લજ્જાથી, गुह्यस्य=ગુહ્ય ભાગના, प्रतिच्छादनं=આચ્છાદનરૂપ વસ્ત્રને, त्यक्तुं=છોડવા માટે હું, न शक्नोमि=લજ્જાયુકત સ્વભાવ હોવાથી, અને સાધુના વેષની વિકૃતિ થઈ જવાની શંકાથી સમર્થ નથી. एवं=આ પૂર્વોકત કારણોથી तस्य=એ પ્રતિમાપ્રતિપન્ન સાધુએ, कटिबन्धनं=ચાર આંગળ અધિક એક હાથ

कटिवस्त्रं धर्तुं कल्पते। यदि पुनर्लज्जापरीषहसहनसमर्थोऽपि भवेत्तर्हि केवलं सदोरकमुखवस्त्रिकारजोहरणोपधिकोऽचेल एव पराक्रमेत ॥ सू० १ ॥

वस्त्ररहितत्वेन शीतादिस्पर्शजन्यदुःखविशेषं सम्यगधिसहेतेति दर्शयति—'अदुवा' इत्यादि।

मूलम्—अदुवा तत्थ परक्कमंतं भुज्जो अचेलं तणफासा फुसंति, सीयफासा फुसंति, तेउफासा फुसंति, दंसमसगफासा फुसंति, एगयरे अन्नयरे विरूवरूवे फासे अहियासेइ, अचेले लाघवियं आगममाणे, जाव समभिजाणिया ॥ सू० २ ॥

छाया—अथवा तत्र पराक्रममाणं भूयोऽचेलं तृणस्पर्शाः स्पृशन्ति, शीतस्पर्शाः स्पृशन्ति, तेजःस्पर्शाः स्पृशन्ति, दंशमशकस्पर्शाः स्पृशन्ति, एकतरानन्यतरान् विरूपरूपान् स्पर्शान् अधिसहते अचेलो लाघविकमागमयन् यावत्समभिजानीयात्॥सू० २॥

टीका—'अथवे'—त्यादि, अथवा=पक्षान्तरे ततश्च पूर्वसूत्रे हेतुसत्त्वे वसनं धरत् यदि न लज्जते तदा चेलरहितः पराक्रमेत, इत्युक्तम्, ततोऽन्यपक्षमाश्रित्य

कटिप्रमाण लम्बे एक कटिवस्त्रका धारण करना कल्पित है—शास्त्रविहित मार्ग है। यदि वह साधु लज्जापरीषहको जीतनेमें शक्तिसंपन्न है तो भी उसे डोरेसहित मुहपत्ति और रजोहरण, ये दो उपधियां तो रखना ही चाहिये। इनके रखने पर भी वह अचेलक ही है ॥ सू० १ ॥

वस्त्ररहित होनेसे साधु शीतस्पर्श आदि जन्य दुःख विशेषको अच्छी तरह सहनकरे, इस विषयको सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं—'अदुवा' इत्यादि।

"अथवा" शब्द पक्षान्तरका द्योतक है इसलिये "पूर्वसूत्रमें लज्जादिहेतुके सद्भावमें साधु वस्त्र धारण करे, यदि लज्जापरीषह उसने जीत

પ્રમાણ પહોળું કડના પ્રમાણે લાંબું એક વસ્ત્ર કેડ ઉપર ધારણ કરવું કલ્પિત છે–શાસ્ત્રમાં કહેલ માર્ગ છે, પરંતુ તે સાધુ લજ્જાપરિષહને જીતવામાં શક્તિસંપન્ન છે તો પણ એણે દોરાસહિત મુહપત્તિ અને રજોહરણ, આ બે ઉપધિયો તો રાખવી જ જોઈએ. આને રાખવાથી પણ તે અચેલક જ છે. (સૂ૦૧)

વસ્ત્રરહિત હોવાથી સાધુ ઠંડી આદિ સ્પર્શજન્ય દુઃખ સારી રીતે સહન કરે, આ વિષયને સૂત્રકાર પ્રદર્શિત કરે છે—" अदुवा " ઈત્યાદિ.

"અથવા" શબ્દ પક્ષાન્તરનો દ્યોતક છે, માટે પૂર્વ સૂત્રમાં "લજ્જાદિ હેતુના સદ્ભાવમાં સાધુ વસ્ત્ર ધારણ કરે, કદાચ લજ્જા પરિષહ તેણે જીતી

कथयति-तत्र संयमे पराक्रममाणम् अचेलम्=वस्त्ररहितं तृणस्पर्शाः=तृणस्पर्शजन्य-दुःखानि स्पृशन्ति=अभिभवन्ति, एवं शीतस्पर्शाः स्पृशन्ति, तेजःस्पर्शाः स्पृशन्ति, दंशमशकस्पर्शाः स्पृशन्ति, एतादृशान् एकतरान् अन्यतरान् विरूपरूपान् स्पर्शान् सोऽचेलः=अधिसहते लाघविकमागमयन् यावत् सम्यक्त्वमेव समभिजानीयात्। व्याख्या पूर्वदिशाऽवसेया ॥ सू० २ ॥

प्रतिमाप्रतिपन्नोऽभिग्रहविशेषं स्वीकुर्यात्-" अहमन्येभ्यः प्रतिमाप्रतिपन्नेभ्यः किमपि दास्यामि, तेभ्यो वा ग्रहीष्यामि " इत्यादि चतुर्भङ्गिकया दर्शयति-'जस्स णं' इत्यादि।

लिया है तो वस्त्रका भी परित्याग कर देवे " जो यह विषय बतलाया है उससे भिन्न पक्षका आश्रय कर सूत्रकार कहते हैं कि-संयममें लवलीन वस्त्ररहित साधुको तृणस्पर्शजन्य दुःखविशेष पीडित करते हैं, शीतस्पर्श दुःखित करते हैं, उष्ण स्पर्श कष्ट पहुंचाते हैं, दंशमशक बाधा पहुंचाते हैं, एकतर या अन्यतर विरूपरूप परिषह उसे आकुलित करते हैं, परन्तु उस अचेल-वस्त्ररहित साधुका कर्तव्य है कि वह इन समस्त परिषह-जन्य बाधाओंको सहन करे। इससे उसे यह लाभ है कि उसके संचित-कर्मोंका भार हल्का होगा और आगामी कर्मोंका बंधन भी शिथिल होता रहेगा। 'लाघवियं आगममाणे' यहांसे ले कर 'सम्मत्तमेव समभिजाणिया' यहां तकके इन पदोंकी व्याख्या चतुर्थ उद्देशमें पहिले की गई व्याख्या के अनुसार ही जान लेनी चाहिये ॥सू० २॥

લીધો હોય તો વસ્ત્રનો પણ પરિત્યાગ કરે " જે આ વિષય બતાવ્યો છે તેનાથી ભિન્ન પક્ષનું આચરણ કરી સૂત્રકાર કહે છે કે—સંયમમાં લવલીન વસ્ત્રરહિત સાધુને તૃણસ્પર્શજન્ય દુઃખવિશેષ પીડા કરે છે, ઠંડીનો સ્પર્શ દુઃખ કરે છે, ગરમીનો સ્પર્શ પીડા પહોંચાડે છે. ડાંસ, મચ્છર બાધા પહોંચાડે છે. એકતર અને અન્યતર વિરૂપરૂપ પરિષહ તેને આકુળ વ્યાકુળ કરતાં રહે છે, પરંતુ એ અચેલ-વસ્ત્રરહિત સાધુનું એ કર્તવ્ય છે કે તે આવી સમસ્ત પરિષહજન્ય પીડાઓ સહન કરે. આથી તેને એ લાભ છે કે તેના સંચિત કર્મોનો ભાર હળવો થશે, અને આગામી કર્મોનું બંધન પણ શિથિલ થતા રહેશે. "लाघवियं आगममाणे" અહીંથી લઈ "समत्तमेव समभिजाणिया" અહીં સુધીના પદોની વ્યાખ્યા પહેલાં ચતુર્થ ઉદ્દેશમાં કહેવાઇ ગયેલ વ્યાખ્યાની અનુસાર જાણી લેવી જોઈએ. (સૂ૦ ૨)

मूलम्—जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ—अहं च खलु अन्नेसिं भिक्खूणं असणं वा ४ आहट्टु दलइस्सामि, आहडं च साइज्जिस्सामि (१), जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ-अहं च खलु अन्नेसिं भिक्खूणं असणं वा ४ आहट्टु दलइस्सामि आहडं च नो साइज्जिस्सामि (२), जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ—अहं च खलु असणं वा ४ आहट्टु नो दलइस्सामि आहडं च साइज्जिस्सामि (३), जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ—अहं च खलु अन्नेसिं भिक्खूणं असणं वा ४ आहट्टु नो दलइस्सामि आहडं च नो साइज्जिस्सामि (४)। अहं च खलु तेण अहाइरित्तेण अहेसणिज्जेण अहापरिग्गहिएण असणेण वा ४ अभिकंख साहम्मियस्स कुज्जा वेयावडियं करणाए, अहं वा वि तेण अहाइरित्तेण अहेसणिज्जेण अहापरिग्गहिएण असणेण वा ४ अभिकंख साहम्मिएहिं कीरमाणं वेयावडियं साइज्जिस्सामि, लाघवियं आगममाणे जाव समत्तमेव समभिजाणिया ॥ सू०३ ॥

छाया—यस्य खलु भिक्षोरेवं भवति—अहं च खलु अन्येभ्यो भिक्षुभ्योऽशनं वा ४ आहृत्य दास्यामि, आहृतं च नो स्वादयिष्यामि (१), यस्य खलु भिक्षोरेवं भवति—अहं च खलु अन्येभ्यो भिक्षुभ्योऽशनं वा ४ आहृत्य दास्यामि, आहृतं च नो स्वादयिष्यामि (२), यस्य खलु भिक्षोरेवं भवति—अहं च खलु अन्येभ्यो भिक्षुभ्योऽशनं वा ४, आहृत्य नो दास्यामि, आहृतं च स्वादयिष्यामि (३), यस्य खलु भिक्षोरेवं भवति—अहं च खलु अन्येभ्यो भिक्षुभ्योऽशनं वा ४ आहृत्य नो दास्यामि, आहृतं च नो स्वादयिष्यामि (४)। अहं च खलु तेन यथाऽतिरिक्तेन यथैषणीयेन यथापरिगृहीतेन अशनेन वा ४ अभिकाङ्क्ष्य साधर्मिकस्य कुर्यां वैयावृत्त्यं करणाय, अहं चाऽपि तेन यथातिरिक्तेन यथैषणीयेन यथापरिगृहीतेन अशनेन वा ४ अभिकाङ्क्ष्य साधर्मिकैः क्रियमाणं वैयावृत्त्यं स्वादयिष्यामि लाघविकमागमयन् यावत् साम्यक्त्वमेव समभिजानीयात् ॥सू०३॥

टीका--'यस्ये'-त्यादि, अस्याश्चतुर्भङ्ग्या व्याख्या पूर्वोक्तदिशैव ज्ञेया, एतेषां चाभिग्रहाणां चतुर्णामन्यतममभिग्रहं गृह्णीयादित्यादि ।यद्वा-त्रिविधानामाद्यानामेकपदेनैव प्रतिमाप्रतिपन्नः कश्चिन्मुनिरभिग्रहं गृह्णीत, चतुर्थस्य च भजनेत्याह-'अह'-मित्यादि, यस्य भिक्षोश्चेतसि एवं भवति-अहं च तेन पूर्वोक्तेन यथातिरिक्तेन=स्वोपभोगोर्वरितेन, यथैषणीयेन=प्रतिमाप्रतिपन्नानां यदेषणीयं तमनतिक्रम्य यथैषणीयेन एवं यथापरिगृहीतेन=निजार्थाभ्युपगतेन, अशनेन वा४ = चतुर्विधेनाहारेण

प्रतिमाप्रतिपन्न साधु इस अभिग्रहविशेषको स्वीकार करे कि-" मैं अन्य प्रतिमाप्रतिपन्न साधुओंके लिये कुछ दूंगा और उनसे भी कुछ लूंगा" इसी विषयको सूत्रकार चारभंगों द्वारा प्रदर्शित करते हैं—" जस्सणं भिक्खुस्स " इत्यादि ।

इस चतुर्भंगीकी व्याख्या इसी अध्ययनके पांचवें उद्देशमें की गई द्वितीय सूत्रकी व्याख्याके अनुसार समझ लेनी चाहिये। प्रतिमाप्रतिपन्न मुनि इन चार अभिग्रहोंमेंसे किसी एक अभिग्रहको, अथवा आदिके तीन अभिग्रहों में से किसी एक अभिग्रहको ग्रहण करे। चतुर्थ अभिग्रहकी भजना है, इसके लिये सूत्रकार 'अह'-मित्यादि सूत्रांश कहते हैं--जिस भिक्षुके चित्तमें ऐसा विचार आता है कि मैं उस चतुर्विध आहार से कि जो मेरे उपभोगसे बाकी बच रहा है, तथा जो यथैषणीय प्रतिमाप्रतिपन्नोंके लिये कल्पनीय है, और जिसे मैं अपने लिये लाया हूं, कर्मोंकी निर्जरा करनेकी चाहनासे साधर्मी साधु

પ્રતિમાપ્રતિપન્ન સાધુ આ અભિગ્રહ વિશેષનો સ્વીકાર કરે કે " હું અન્ય પ્રતિમાપ્રતિપન્ન સાધુઓને માટે અશનાદિ દઈશ અને એમની પાસેથી પણ અશનાદિ લઈશ." આ વિષયને સૂત્રકાર ચાર ભંગોદ્વારા પ્રદર્શિત કરે છે-" जस्स णं" ઇત્યાદિ.

આ ચાર ભંગોની વ્યાખ્યા, આ અધ્યયનના પૂર્વ ઉદ્દેશમાં કહેવામાં આવેલ બીજા સૂત્રની વ્યાખ્યા અનુસાર સમજી લેવી જોઈ એ. પ્રતિમાપ્રતિપન્ન મુનિ આ ચાર અભિગ્રહોમાંથી કોઇ એક અભિગ્રહને અથવા આગળના ત્રણ અભિગ્રહોમાંથી કોઈ એક અભિગ્રહને ગ્રહણ કરે. ચોથા અભિગ્રહની ભજના છે. આ માટે સૂત્રકાર अहं ઈત્યાદિ સૂત્રાંશ કહે છે—જે ભિક્ષુના ચિત્તમાં એવો વિચાર આવે છે કે હું એ ચતુર્વિધ આહારથી કે જે મારા ઉપભોગથી બાકી બચી રહેલ છે, તથા જે યથૈષણીય-પ્રતિમાપ્રતિપન્નો માટે કલ્પનીય, અને જેને હું મારા માટે લાવેલ છું કર્મોની નિર્જરા કરવાની ચાહ-

अभिकाङ्क्ष्य=कर्मनिर्जरणमभिवाञ्छ्य करणाय=उपभोगाय साधर्मिकस्य=समानधर्मणः साधोः वैयावृत्त्यं कुर्याम्। एतादृशमभिग्रहं कश्चिद् गृह्णाति। पुनः पक्षान्तरं-प्रदर्शयति-'अहं वाऽपी'-त्यादि-'वा' शब्दः पक्षान्तरसूचकः, यस्य खलु भिक्षोश्चेतस्येवं भवति-अहमपि=पुनः तेन=यथातिरिक्तेन यथैषणीयेन यथापरिगृहीतेनाऽशनेन वा४ कर्मनिर्जरणमभिकाङ्क्षय साधर्मिकैः क्रियमाणं वैयावृत्त्यं स्वादयिष्यामि =स्वीकरिष्यामि। एवं परिचिन्तयन् साधुः किं कुर्यादिति दर्शयति-'लाघविक'-मित्यादि, सर्वं व्यख्यातपूर्वम् ॥ सू०३ ॥

का वैयावृत्त्य करूँ। इस प्रकारका अभिग्रह कोई साधु ग्रहण करता है, और कोई साधु ऐसा अभिग्रह करता है कि-मैं यथातिरिक्त, यथैषणीय और यथापरिगृहीत चतुर्विध अशनसे कर्मोंकी निर्जरा होनेकी कामनासे साधर्मिक साधु द्वारा क्रियमाण वैयावृत्त्यको मैं स्वीकार करूँगा।

इस प्रकार विचार करनेवाला साधु क्या करे? इसे सूत्रकार "लाघवियं आगममाणे जाव समत्तमेव समभिजाणिया" इन पदोंसे प्रकट करते हैं। इन समस्त पदोंका अर्थ पहिले इसी अध्ययनके चतुर्थ उद्देश में कहा जा चुका है।

भावार्थ--साधु द्वारा साधुकी वैयावृत्त्य करनेके प्रकार यहां पर सूत्रकारने प्रदर्शित किये हैं, ये ही प्रकार जब नियमरूपसे अंगीकृत होते हैं तब अभिग्रहविशेष कहलाने लग जाते हैं, उन्हींका यहां कथन है।

નાથી સાધર્મી સાધુનું વૈયાવૃત્ત્ય કરૂં. આ પ્રકારનો અભિગ્રહ કોઇ સાધુ ગ્રહણ કરે છે. કોઇ સાધુ એવો અભિગ્રહ કરે છે કે-હું યથાતિરિકત, યથૈષણીય અને યથાપરિગૃહીત ચાર પ્રકારના અશનથી, કર્મોની નિર્જરા હોવાની કામનાથી સાધર્મિક સાધુ દ્વારા ક્રિયમાણ વૈયાવૃત્ત્યને સ્વીકાર કરીશ.

આ પ્રકારનો વિચાર કરવાવાળા સાધુ શું કરે એને સૂત્રકાર " लाघवियं आगममाणे जाव समत्तमेव समभिजाणिया " આ પદોથી પ્રગટ કરે છે. એ સમસ્ત પદોનો અર્થ પહેલાં આ અધ્યયનના ચોથા ઉદ્દેશમાં કહેવાઈ ગએલ છે.

ભાવાર્થ—સાધુઓદ્વારા સાધુઓની વૈયાવૃત્ત્ય કરવાનો પ્રકાર અહિં સૂત્રકારે પ્રગટ કરેલ છે. એ જ જ્યારે નિયમરૂપથી અંગીકૃત થાય છે ત્યારે અભિગ્રહવિશેષ કહેવામાં આવી જાય છે. એનું અહિં કથન છે.

कोई २ साधु इस प्रकारसे अभिग्रह करते हैं कि–मैं अन्य साधुके लिये आहारादिक लाकर दिया करूँगा, यही मेरेद्वारा उनकी वैयावृत्त्य है, तथा कोई साधु मेरे लिये आहार पानी लाकर देगा तो मैं भी उसे स्वीकार कर लूंगा। यह अभिग्रहका एक प्रकार है।१।

कोई एक साधु इस प्रकारका अभिग्रह करता है कि–मैं दूसरे साधर्मी साधुके लिये आहारादिक ला दिया करूँगा पर दूसरेके द्वारा लाया हुआ आहार पानी अपने उपयोग में नहीं लूंगा। यह अभिग्रहका दूसरा प्रकार है।२।

कोई २ साधु इस प्रकारका अभिग्रह कर लिया करता है कि–मैं दूसरोंके लिये आहारादिक लाऊँगा तो नहीं पर कोई मुझे लाकर देगा तो मैं उसे अपने उपभोग में ले लूंगा। यह अभिग्रहका तीसरा प्रकार है।३।

कोइ २ साधु ऐसा अभिग्रह करता है कि न मैं दूसरोंके लिये आहारदिक लाऊँगा और न अपने निमित्त किसी अन्यसे मंगवाऊँगा। यह अभिग्रहका चौथा प्रकार है।४।

इन चार प्रकारके अभिग्रहोंमेंसे साधु चाहे जिस किसी भी अभिग्रह को धारण कर सकता है, अथवा आदिके तीन अभिग्रहों में से भी

કોઈ કોઇ સાધુ એવા પ્રકારથી અભિગ્રહ કરે છે કે–હું બીજા સાધુઓ માટે આહારાદિક લાવી આપીશ, આ રીતે હું તેમની વૈયાવૃત્ત્ય કરીશ તથા કોઈ સાધુ મારા માટે આહાર પાણી લાવી આપશે તો હું સ્વીકાર કરીશ. આ અભિગ્રહનો એક પ્રકાર છે. (૧)

કોઈ કોઇ સાધુ આ પ્રકારનો અભિગ્રહ કરે છે કે–હું બીજા સાધર્મી સાધુ માટે આહારાદિક લાવી આપીશ પણ બીજાના દ્વારા લાવેલ આહાર પાણી ઉપયોગમાં નહીં લઉં. આ અભિગ્રહનો બીજો પ્રકાર છે. (૨)

કોઈ કોઇ સાધુ આ પ્રકારનો અભિગ્રહ કરે છે કે–હું બીજાઓ માટે આહારાદિક લાવીશ તો નહીં પણ કોઈ મને લાવીને આપશે તો હું તેને મારા ઉપયોગમાં અવશ્ય લઈશ. આ અભિગ્રહનો ત્રીજો પ્રકાર છે. (૩)

કોઈ કોઈ સાધુ એવો અભિગ્રહ કરે છે કે–બીજાઓના માટે હું આહારાદિક લાવીશ નહીં તેમજ મારા માટે પણ બીજાથી મંગાવીશ નહીં. આ અભિગ્રહનો ચોથો પ્રકાર છે. (૪)

આવા ચાર પ્રકારના અભિગ્રહમાંથી સાધુ પોતાની ઈચ્છામાં આવે તેવો કોઈ પણ અભિગ્રહ ધારણ કરી શકે છે. અથવા આદિના ત્રણ અભિ-

इत्थमन्यतराभिग्रहग्राहिणोऽनगारस्याचेलस्य सचेलस्य वा शरीरपीडायाः सद्भावेऽसद्भावे वा स्वायुःशेषतामवगच्छतो मुनेरुद्यतमरणविधिमुपदर्शयति--'जस्स णं' इत्यादि ।

मूलम्—**जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ—से गिलामि खलु अहं इमम्मि समए इमं सरीरगं अणुपुव्वेण परिवहित्तए, से अणुपुव्वेणं आहारं संवट्टिज्जा, संवट्टित्ता कसाए पयणुए किच्चा समाहियच्चे फलगावयट्ठी उट्ठाय भिक्खू अभिनिव्वुडच्चे अणुपविसित्ता गामं वा नगरं वा जाव रायहाणिं वा तणाइं जाइज्जा जाव संथरिज्जा, एत्थवि समए कायं च जोगं च ईरियं च पच्चक्खाइज्जा, तं सच्चं सच्चवाई ओए तिन्ने छिन्नकहंकहे आईयट्ठे अणाईए चिच्चा णं भेउरं कायं संविहुणिय विरूवरूवे परीसहोपसग्गे, अस्सिं विस्संभणयाए भेरवमनुचिन्ने, तत्थ वि तस्स कालपरियाए, सेऽवि तत्थ विअंतिकारए, इच्चेयं विमोहाययणं हियं सुहं खमं निस्सेयसं आणुगामियं--तिबेमि ॥ सू०४॥**

छाया—यस्य खलु भिक्षोरेवं भवति—तद् ग्लायामि खलु अहम् अस्मिन् समये इदं शरीरकम् आनुपूर्व्या परिवोढुम्, स आनुपूर्व्या आहारं संवर्तयेत्, संवर्त्य कषायान् प्रतनून् कृत्वा समाहितार्चः फलकापदर्थी उत्थाय भिक्षुरभिनिर्वृतार्चः अनुप्रविश्य ग्रामं वा नगरं वा यावद् राजधानीं वा तृणानि याचेत यावत् संस्तरेत्, अत्रापि समये कायं च योगं च ईर्यां च प्रत्याचक्षीत, तत्सत्यं सत्यवादी, ओजस्तीर्णश्छिन्नकथंकथः आतीतार्थः, अनातीतः, त्यक्त्वा भिदुरं कायं संविधूय विरूपरूपान् परीषहोपसर्गान् अस्मिन् मिश्रम्भणतया भैरवमनुचीर्णः, तत्रापि तस्य कालपर्यायः, सोऽपि तत्र व्यन्तिकारकः, इत्येतद्विमोहायतनं हितं सुखं क्षमं निःश्रेयसमानुगामिकम्, इति ब्रवीमि ॥सू०४॥

चाहे जिसे कर सकता है। इस पक्षमें चौथे अभिग्रहकी भजना है—धारण करे न भी करे। नीचे के सूत्रांशसे सूत्रकारने यही बात प्रकट की है—इसमें उन्होंने प्रथम द्वितीय तथा तृतीय अभिग्रहका प्रदर्शन किया है ॥सू०३॥

ગ્રહોમાંથી પણ ચાહે તે ગ્રહણ કરી શકે છે. આ પક્ષમાં ચોથા અભિગ્રહની ભજના છે—ધારણ કરે, ન પણ કરે, નીચેના સૂત્રાંશથી સૂત્રકારે એજ વાત પ્રગટ કરી છે. એમાં તેઓએ પહેલા બીજા અને ત્રીજા અભિગ્રહનું પ્રદર્શન કરેલ છે. (સૂ૦૩)

टीका--'यस्ये'-त्यादि, 'यस्य खलु' इत्यारभ्य' यावत् संस्तरेत्' इत्यन्तस्य व्याख्याऽत्रैवाध्ययने षष्ठोद्देशे चतुर्थसूत्रे प्रोक्ता। तृणानि संस्तीर्य यद्विधेयं तदाह-'अत्राऽपी'-ति, अत्रापि सस्तारकोपवेशनावसरे कृतपादपोपगमनप्रतिज्ञो भिक्षुः 'नमोत्थुणं' पठित्वा सिद्धानर्हतो धर्माचार्यांश्च नमस्कृत्य तदनु स्वयमेव पुनर्गृहीतप-

---

इस प्रकार कीसी एक अभिग्रह को धारण करनेवाले सचेल तथा अचेल साधुकी शारीरिक पीडाके सम्भवमें या असम्भवमें अपनी आयुके अवशिष्ट भागका ज्ञान होने पर मरणविधि सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं—"जस्स णं" इत्यादि।

"जस्स णं" यहां से लेकर "जाव संथरिज्जा" यहां तक के पदोंकी व्याख्या इसी अध्ययनके छठे उद्देशमें कही जा चुकी है। घास का संथारा कर साधुके कर्तव्यका प्रदर्शन करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि-साधु संथारे पर बैठ जावे तब उस समय वह साधु कि जिसने पदपोपगमन संथारा धारण करनेका नियम लिया है वह पहले "नमोत्थुणं" का पाठ पढे।पढ़कर सिद्धोंको, अर्हन्तोंको और धर्माचार्योंको नमस्कार करे। उसके बाद स्वयं पांच महाव्रतोंका पुनः ग्रहण कर, चारों प्रकारके आहारका परित्याग कर देवे, पश्चात् आकुञ्चन, प्रसारण, और दृष्टिसंचा-रण आदिरूप कायव्यापारका, अप्रशस्त मनोयोग का और सर्वथा वचन-

---

આ પ્રકારે કોઈ એક અભિગ્રહને ધારણ કરવાવાળા સચેલ તથા અચેલ સાધુની, શારીરિક પીડાના સદ્દભાવમાં અગર અસદ્દભાવમાં પોતાના આયુષ્યના અવશિષ્ટ ભાગના જાણકાર હોવાથી મરણવિધિ સૂત્રકાર પ્રગટ કરે છે-"जस्स णं" ઈત્યાદિ.

"यस्य खलु" અહીંથી લઈને "यावत्संस्तरेत्" અહીં સુધીના પદોથી વ્યાખ્યા આ અધ્યયનના છઠ્ઠા ઉદ્દેશમાં કહેવાયેલ છે. ઘાસનો સંથારો કરી સાધુના કર્તવ્યનું પ્રદર્શન કરતાં સૂત્રકાર કહે છે કે-સાધુ જ્યારે સંથારા ઉપર બેસે ત્યારે તે સમયે તે સાધુ કે જેણે પાદપોપગમન સંથારો ધારણ કરવાનો નિયમ લીધો છે તે, પહેલાં "नमोत्थुणं"નો પાઠ ભણે. પાઠ ભણીને સિદ્ધોને, અર્હન્તોને અને ધર્માચાર્યોને નમસ્કાર કરે. ત્યાર બાદ પોતે પાંચ મહાવ્રતોને ફરીથી ગ્રહણ કરે. ચાર પ્રકારના આહારનો પરિત્યાગ કરે. પછી આકુંચન, પ્રસારણ અને દૃષ્ટિસંચારણ આદિરૂપ કાયાના વ્યાપારનો, અપ્રશસ્ત મનોયોગનો અને સર્વથા વચનયોગનો,

श्चमहाव्रतश्चतुर्विधमप्याहारं प्रत्याख्याय कायं=काययोगमाकुञ्चनप्रसारणदृष्टिसञ्चारणादिरूपं कायव्यापारं योगम्=अप्रशस्तमनोयोगं सर्वथा वाग्योगं च, यद्वा-कायं =कायममत्वं योगं=तस्यैवाकुञ्चन-प्रसारणादिव्यापारम् । ईर्यां=गमनागमनरूपां क्रियां प्रत्याचक्षीत=परिहरेत् ।

एवं 'तं सच्चं' इत्यारभ्य सूत्रसमाप्तिपर्यन्तस्य व्याख्या षष्ठोद्देशेऽवसेया । 'इति ब्रवीमी'-त्यस्यार्थस्तूक्त एव ॥सू०४॥

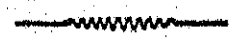
॥ अष्टमाध्ययनस्य सप्तम उद्देशः समाप्तः ॥८-७॥



योगका, अथवा कायमें ममत्वरूप कायका और उसीके आकुञ्चन, प्रसारण आदि व्यापाररूप योगका, एवं गमनागमनरूप क्रियाका परित्याग कर देवें ।

इस प्रकार "तं सच्चं" यहां से लेकर उस सूत्रकी समाप्ति तकके पदोंकी व्याख्या इसी अध्ययनके छठे उद्देशमें तथा चतुर्थ उद्देशके अन्तमें लिखी जा चुकी है उसीके अनुसार समझलेनी चाहिये। "इति ब्रवीमि" इन पदोंका अर्थ भी कहा जा चुका है ॥सू० ४॥

॥ आठवें अध्ययनका सातवां उद्देश समाप्त ॥ ८-७ ॥



અથવા કાયામાં મમત્વરૂપ કાયનો અને તેના આકુંચન, પ્રસારણ આદિ વ્યાપાર રૂપ યોગનો, એવં ગમનાગમનરૂપ ક્રિયાનો પરિત્યાગ કરે.

આ પ્રકારે "तं सच्चं" અહીંથી શરૂ કરી આ સૂત્રની સમાપ્તિ સુધીના પદોની વ્યાખ્યા આ અધ્યયનના છઠ્ઠા ઉદ્દેશમાં તથા ચોથા ઉદ્દેશના અંતમાં લખાઈ ગયેલ છે તે અનુસાર સમજી લેવી જોઈએ. "इति ब्रवीमि" આ પદોનો અર્થ પણ અગાઉના અધ્યયનોમાં કહેવાઈ ગયેલ છે. (સૂ૦૪)

આઠમા અધ્યયનનો સાતમો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૮-૭ ॥



। अथाष्टमाध्ययनस्याष्टम उद्देशः ।

सप्तमोद्देशकथनानन्तरमष्टमः प्रारभ्यते । अस्य च पूर्वोद्देशैः सहायं सम्बन्धः–पूर्वं चतुर्थोद्देशे व्याघातिमरणं वैहायस–गार्द्धपृष्ठमरणं च, पञ्चमे–भक्तप्रत्याख्यानं, षष्ठे इङ्गितमरणं, सप्तमे च पादपोपगमनमुपदर्शितम्। अत्राष्टमे–तेषां त्रयाणां भक्तपरिज्ञेङ्गितमरणपादपोपगमनानां विधिमुपदर्शयन् प्रथमं भिक्षोः समाधिपरिपालनप्रकारमेव दर्शयति–'अणुपुव्वेण' इत्यादि ।

मूलम्—अणुपुव्वेण विमोहाइं, जाइं धीरा समासज्ज ॥
वसुमंतो मइमंतो, सव्वं नच्चा अणेलिसं ॥ १ ॥

छाया—आनुपूर्व्या विमोहानि, यानि धीराः समासाद्य ॥
वसुमन्तो मतिमन्तः, सर्वं ज्ञात्वा अनीदृशम् ॥१॥

आठवें अध्ययनका आठवां उद्देश ।

सप्तम उद्देशाके कथनके बाद अब अष्टम उद्देश प्रारंभ होता है । इस उद्देशका पूर्व उद्देशोंके साथ यह संबंध है–चतुर्थ उद्देशमें व्याधि–मरण, वैहायस–मरण और गार्द्धपृष्ठमरण, पंचम उद्देशमें भक्तप्रत्याख्यान, छठेमें इंगितमरण और सप्तम उद्देशमें पादपोपगमन संथारे का वर्णन सूत्रकारने किया है। इस अष्टम उद्देशमें भक्तपरिज्ञा, ईंगितमरण और पादपोपगमन, इन तीनोंकी विधि दिखलाते हुए सूत्रकार प्रथम भिक्षुके समाधिपालनके प्रकारको प्रदर्शित करते हैं—'अणुपुव्वेण' इत्यादि ।

આઠમા અધ્યયનનો આઠમો ઉદ્દેશ.

સાતમા ઉદ્દેશના કથન પછી હવે આઠમા ઉદ્દેશનો પ્રારંભ થાય છે. આ ઉદ્દેશનો પૂર્વ ઉદ્દેશોની સાથે આ સંબંધ છે–ચોથા ઉદ્દેશમાં વ્યાધિમરણ, વૈહાયસ મરણ અને ગાર્ધ્ધપૃષ્ઠ મરણ, પાંચમા ઉદ્દેશમાં ભક્તપ્રત્યાખ્યાન, છઠ્ઠામાં ઇંગિત મરણ અને સાતમા ઉદ્દેશમાં પાદપોપગમન સંથારાનું વર્ણન સૂત્રકારે કરેલ છે. આ આઠમા ઉદ્દેશમાં ભક્તપરિજ્ઞા, ઈંગિતમરણ અને પાદપોપગમન, આ ત્રણેની વિધિ બતાવીને સૂત્રકાર પ્રથમ ભિક્ષુના સમાધિ પાલનના પ્રકારને કહે છે——'अणुपुव्वेण' ઇત્યાદિ.

टीका—'आनुपूर्व्ये'–त्यादि, वसुमन्तः=संयमिनः, 'मतिमन्तः'=मननं मतिर्हेयोपादेयपरिहारग्रहणाध्यवसायः, सा येषामस्तीति मतिमन्तः, धीराः=परीषहोपगरक्षोभ्या मुनयः, आनुपूर्व्या=क्रमेण, स च क्रमो यथा–प्रव्रज्या, शिक्षा, सूत्रार्थग्रहणतत्परस्यैकाकिविहारित्वम्, यद्वा-आनुपूर्व्या=संलेखनाक्रमैश्चतुर्थ-षष्ठाऽष्टम-दशम–द्वादशभक्तादिकतपोविशेषरूपैर्विप्रकृष्टैः यानि=कथितानि 'विमोहानि' विगतो मोह

संयम पालन करनेवाले, हेय और उपादेयरूप पदार्थों के परिहार एवं प्राप्त करानेवाले ज्ञानसे संपन्न, तथा परीषह और उपसर्गों से अक्षोभ्य ऐसे मुनिराज क्रमसे पूर्व उद्देशोंमें वर्णित भक्तपरिज्ञा, इंगितमरण और पादपोपगमनरूप विमोहको प्राप्तकर और उन्हें "अनीदृशं सर्वं ज्ञात्वा" असाधारण जानकर समाधिका पालन करें।

सूत्रगत आनुपूर्वी शब्दका अर्थ क्रम है इन भक्तप्रत्याख्यान आदि समाधिमरणोंको धारण करनेका क्रम इस प्रकार है–सर्व प्रथम मुनिदीक्षा धारण करना। तदनन्तर सूत्रका अध्ययन एवं उसके अर्थका अवधारण, अथवा युगपद्–एक साथ दोनोंका पठन और अवधारण करना। इसमें निष्णात होकर फिर एकाकी विहार करना।

अथवा—उत्कृष्ट, चतुर्थभक्त, अष्टमभक्त, दशमभक्त और द्वादशभक्त आदि संलेखनाके क्रमस्वरूप तपविशेषोंका धारण करना। 'विमोह' शब्दका अर्थ–भक्तपरिज्ञा, इंगितमरण और पादपोगमन संथारा है।

સંયમ પાલન કરવાવાળા હેય અને ઉપાદેય રૂપ પદાર્થોનો પરિહાર અને પ્રાપ્ત કરાવનાર જ્ઞાનથી સંપન્ન, તથા પરિષહ અને ઉપસર્ગોથી અક્ષોભ્ય, એવા મુનિજન ક્રમથી પૂર્વ ઉદ્દેશોમાં બતાવેલ ભક્તપરિજ્ઞા, ઇગિતમરણ અને પાદપોપગમન રૂપ વિમોહ (વિવેક)ને પ્રાપ્ત કરી અને તેને " अनीदृशं सर्वं ज्ञात्वा " અસાધારણ (વિશેષ) જાણીને સમાધિનું પાલન કરે.

સૂત્રગત આનુપૂર્વી શબ્દનો અર્થ ક્રમ છે, એ ભક્તપ્રત્યાખ્યાન આદિ સમાધિમરણોને ધારણ કરવાનો ક્રમ આ પ્રકારનો છે–પહેલાં મુનિદીક્ષા ધારણ કરવી, ત્યાર પછી સૂત્રનું અધ્યયન અને તેના અર્થનું અવધારણ, અથવા યુગપદ્–એકી સાથે બન્નેનું પઠન અને અવધારણ કરવું. આમાં નિષ્ણાત બની પછી એકલા વિહાર કરવો.

અથવા–ઉત્કૃષ્ટ ચતુર્થભક્ત, અષ્ટમભક્ત, દશમભક્ત અને દ્વાદશભક્ત આદિ સંલેખનાના ક્રમસ્વરૂપ તપવિશેષોને ધારણ કરવાં. વિમોહ શબ્દનો અર્થ–ભક્તપરિજ્ઞા ઇગિતમરણ અને પાદપોગમન સંથારો છે.

एभ्य एषामेषु वा तानि विमोहानि=भक्तपरिज्ञेङ्गितमरणपादपोपगमनानि यथाक्रम-प्राप्तानि, तानि समासाद्य=उपलभ्य अनीदृशम्=अद्वितीयम् सर्वम् उचितमनुचितं वा पूर्वोक्तं भक्तपरिज्ञादिकं ज्ञात्वा समाधिं परिपालयेयुः ॥ १॥

अपि चान्यदाह–'दुविहं' इत्यादि ।

मूलम्–दुविहं पि विइत्ता णं, बुद्धा धम्मस्स पारगा ॥
अणुपुव्वीइ संखाए, आरंभाओ तिउट्टई ॥ २ ॥

छाया––द्विविधमपि विदित्वा खलु, बुद्धा धर्मस्य पारगाः ॥
आनुपूर्व्या सङ्ख्याय, आरम्भात् त्रुट्यते ॥ २ ॥

टीका–'द्विविधमपी'–त्यादि, बुद्धाः=परिज्ञातहेयोपादेयाः, द्विविधमपि बाह्यमाभ्यन्तरं च तपो विदित्वा=आसेव्य, यद्वा–द्विविधमपि=बाह्यं शरीरोपकरणादिकम्, आभ्यन्तरं राग-द्वेषादिकमपि हेयतया ज्ञात्वा प्रत्याख्यानपरिज्ञया त्यक्त्वेत्यर्थः, खलु=निश्चयेन धर्मस्य=श्रुतचारित्राख्यस्य पारगाः=पारगामिनः सकलरहस्यवेत्तारो भवन्ति, तैः आनुपूर्व्या=प्रव्रज्याग्रहण-द्वादशाङ्गाध्ययनादिक्रमेण संख्याय="संयमं

वि+मोहमें 'वि' शब्दका अर्थ विगत–रहित है। विगत हुआ है मोह जिन्होंसे, अथवा जिन्होंका, अथवा जिन्होंमें वे विमोह हैं। 'सर्वं' शब्द यह भाव प्रकट करता है कि समाधिधारणकर्ता यह विचार अवश्य करे कि इनसंथारोका धारण करना किस समय उचित है अथवा किस समय अनुचित है॥ १ ॥

और भी सूत्रकार इस विषयमें कहते हैं–'दुविहंपि' इत्यादि।

हेय और उपादेय पदार्थों के परिज्ञाता मुनिजन बाह्य और आभ्यन्तर तपका सेवनकर निश्चय से श्रुतचारित्ररूप धर्मके सकल रहस्य के ज्ञाता होते हैं। वे प्रव्रज्याग्रहण और द्वादशांगका अध्ययन आदिके क्रमसे भक्त-

---

वि + મોહમાં 'વિ' શબ્દનો અર્થ વિગત–રહિત છે. મોહ વિગત થયેલ છે, જેનાથી અથવા જેનો અથવા જેઓમાં તે વિમોહ છે. "સર્વં" શબ્દ એ ભાવ પ્રકટ કરે છે કે સમાધિ ધારણ કરનાર એ વિચાર જરૂર કરે કે તે સંથારાનું ધારણ કરવું કયા સમયે ઉચિત છે? અથવા કયા સમયે અનુચિત છે? (૧)

વધુમાં પણ સૂત્રકાર એ વિષયમાં કહે છે–"दुविहंपि" ઈત્યાદિ.

હેય અને ઉપાદેય પદાર્થોના પરિજ્ઞાતા મુનિજન બાહ્ય અને આભ્યંતર તપનું સેવન કરી નિશ્ચયથી શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મના સકળ રહસ્યના જ્ઞાતા હોય છે. તે પ્રવ્રજ્યાગ્રહણ અને દ્વાદશાંગના અધ્યયન વગેરેના ક્રમથી ભક્તપ્રત્યાખ્યાન

परिपालयतो ममातिशिथिलगात्रतया संयमाराधने सामर्थ्याभावाच्छरीरपरित्यागावसरः समायातस्तस्मादहं भक्तप्रत्याख्यानादिषु कस्मिन् मरणे समर्थोऽस्मी"-ति विचिन्त्य, आरम्भात्=शरीरधारणार्थमशनादिगवेषणातः त्रुटयते=विरम्यते ॥२॥

अभ्युद्यतमरणाय संलेखनां विदधता मुख्यत्वेन क्रोधादिप्रतनुकरणरूपा भावसंलेखना विधेयेति दर्शयति-'कसाए' इत्यादि।

मूलम्—कसाए पयणू किच्चा, अप्पाहारे तितिक्खए ॥
अह भिक्खू गिलाइज्जा, आहारस्सेव अंतियं ॥ ३ ॥

छाया--कषायान् प्रतनून् कृत्वा, अल्पाहारस्तितिक्षेत ॥
अथ भिक्षुर्ग्लायेत्, आहारस्यैवान्तिकम् ॥ ३ ॥

प्रत्याख्यान आदिका विचार कर शरीर धारणके निमित्त आहार आदि की गवेषणासे विरक्त हो जाते हैं। सूत्रमें "संखाय" शब्द यह बतलाता है कि मुनिजन यह विचार करे कि संयमकी परिपालना करते२ मेरा शरीर अब शिथिल हो गया है इससे संयमकी आराधना करने की अब शक्ति नहीं रही है, अतः अब इस शरीर के परित्यागका समय आचुका है, इसलिये भक्तप्रत्याख्यान आदि मरणोंमें से मैं कौनसा मरण धारण करने में समर्थ हूं। इस प्रकार विचार करके अशनादिकी गवेषणा करनेका त्याग कर देवे ॥२॥

प्राप्तमरणके लिये संलेखना करनेवाले मुनिजनको मुख्यरूपसे क्रोधादिक कषायों के कृश करनेरूप भावसंलेखना करनी चाहिये, यह बात सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं—'कसाए' इत्यादि।

વગેરેનો વિચાર કરી શરીર ધારણના નિમિત્ત આહાર વગેરેની ગવેષણાથી વિરકત બની જાય છે. સૂત્રમાં "संखाय" શબ્દ એવું બતાવે છે કે મુનિજન એવો વિચાર કરે કે સંયમની પરિપાલના કરતાં કરતાં મારૂં શરીર હવે શિથિલ થઇ ગયું છે, આથી સંયમની આરાધના કરવાની મારામાં શકિત રહી નથી, એટલે હવે આ શરીરનો પરિત્યાગ કરવાનો સમય આવી ગયો છે, આ માટે ભકત-પ્રત્યાખ્યાન વગેરે મરણોમાંથી હું કયું મરણ ધારણ કરવામાં સમર્થ છું? આ પ્રકારનો વિચાર કરી અશનાદિની ગવેષણા કરવાનો ત્યાગ કરી દે.

પ્રાપ્તમરણ માટે સંલેખના કરવાવાળા મુનિએ મુખ્યરૂપથી ક્રોધાદિક કષાયોને કૃશરૂપ ભાવસંલેખના કરવી જોઇએ. આ વાત સૂત્રકાર પ્રદર્શિત કરે છે—'कसाए' ઈત્યાદિ.

टीका—'कषाया'-नित्यादि, स भिक्षुः, अल्पाहारः=स्तोकभोजी संलेखनाक्रमेण षष्ठाष्टमादिविधिना तपः कुर्वन् पारणादिने यदि केन चिदन्येन मुनिना समानीय दीयते तदप्यल्पं भुङ्क्ते, इति भावः। कषायान् कषस्य=संसारस्य आयाः= स्थानानि कषायास्तान्=क्रोधादीन् चतुर्विधान् प्रतनून्=कृशान् कृत्वा तितिक्षेत=नीचादपि दुर्भाषितादिकं सहेत, व्याध्यातङ्कं च क्षमेत, अल्पाहारकरणं कषायोपशमसम्भावनया भवति तथाऽपि कदाचित्तस्य कषायोदयो भवेत्तदापि स क्षमेत एवेत्याशयः।

अल्पाहारी वह मुनि क्रोधादिक कषायोंको कृश करके नीच पुरुषोंके कुवचनोंको और व्याधिके आतंक को भी सहन करे। यदि कदाचित् अव्याबाध शिव-सुखका अभिलाषी वह मुनि ग्लान हो जाय तो वह चार प्रकारके आहारका ही परित्याग कर देवे-संलेखना के क्रमका नहीं। सूत्रस्थित अल्पाहार पद यह प्रकट करता है कि वह साधु संलेखनाक्रमसे-षष्ठ, अष्टम आदि विधिसे-तपस्या करता हुआ पारणाके दिन किसी अन्य मुनिके द्वारा लाकर दिये गये आहारको भी अल्प मात्रामें ही लेता है। कषाय-इसमें कष और आय, ये दो शब्द हैं, कषका अर्थ संसार और आयका अर्थ स्थान है। संसारके जो स्थान हैं उनका नाम कषाय है। अल्प आहारका करना कषायोंके उपशमकी संभावनासे होता है तो भी कदाचित् उसके कषायका उदय हो जावे उस समय भी वह दुर्भाषित आदिको सहन ही करता है, यह बात भी 'तितिक्षेत' इस पदसे प्रकट होती है।

અલ્પાહારી તે મુનિ ક્રોધાદિ કષાયોને કૃશ કરતાં નીચ પુરૂષોના કુવચનોને અને વ્યાધિના દુઃખને પણ સહન કરે, અને કદાચિત્ અવ્યાબાધ શિવસુખનો અભિલાષી તે મુનિ ગ્લાન બની જાય તો તે ચાર પ્રકારના આહારનો પરિત્યાગ કરી દે—સંલેખનાના ક્રમનો નહીં. સૂત્રગત અલ્પાહાર પદ એ પ્રગટ કરે છે કે તે સાધુ સંલેખનાક્રમથી-છટ્ઠ, અટ્ઠમ, આદિ વિધિથી તપસ્યા કરતાં પારણાના દિવસે બીજા કોઈ મુનિદ્વારા લાવી આપવામાં આવેલ આહારને પણ અલ્પ માત્રામાંજ લે છે. કષાય-એમાં કષ અને આય એ બે શબ્દ છે. કષનો અર્થ સંસાર, અને આયનો અર્થ સ્થાન છે. સંસારનું જે સ્થાન છે તેનું નામ કષાય છે. અલ્પ આહાર કરવો તે કષાયોના ઉપશમની સમભાવનાથી થાય છે તો પણ કદાચ તેને કષાયનો ઉદય આવે તો તે સમયે પણ દુર્ભાષિત આદિને સહનજ કરે છે. આ વાત પણ 'तितिक्षेत' આ પદથી પ્રગટ થાય છે.

अथ=पक्षान्तरे, यदि भिक्षुः=अव्याबाधशिवसुखाभिलाषी मुनिः ग्लायेत् =केनापि साधुना समानीता भिक्षा नोपलभ्येत तेन कारणेन ग्लानो भवेत्तदा आहारस्यैव=चतुर्विधाहारस्यैव अन्तिकम्=अन्तमवसानं कुर्यात्, न तु संलेखनाक्रमस्य। अत्र 'एव'-कारेण अपि भक्तप्रत्याख्यानादिकं कुर्यात् किन्तु "कतिचिद्दिनानि भुक्त्वा पश्चात्संलेखनाशेषं करिष्यामि" इत्येवं कातरतामुपगत्य संलेखनाक्रमं न त्रोटयेदिति भावः ॥ ३ ॥

अन्यच्च-'जीवियं' इत्यादि।

मूलम्—**जीवियं नाभिकंखिज्जा, मरणं नो वि पत्थए ॥**
दुहओऽवि न सज्जिज्जा, जीविए मरणे तहा ॥ ४ ॥

छाया—जीवितं नाभिकाङ्क्षेत्, मरणं नापि प्रार्थयेत् ॥
उभयतोऽपि न सज्जेत, जीविते मरणे तथा ॥ ४ ॥

'ग्लायेत्' यह क्रियापद यह सूचित करता है कि किसी भी साधु के द्वारा समानीत-लाई गई भिक्षा यदि उस साधुको नहीं मिले तो वह ग्लान उस समय चारों प्रकारके आहारका ही त्याग कर देवे, संलेखनाक्रमका नहीं।

"आहारस्यैव" यहां पर "एव" यह पद यह बतलाता है कि वह भक्त-प्रत्याख्यान आदि करे तो परन्तु ऐसा कायर बनकर वह अपने संलेखना के क्रमका भंग न करे कि 'चलो कुछ दिनों आहार लेकर पीछे अवशिष्ट संलेखना पूर्ण कर लूंगा' ॥३॥

अन्यच्च—'जीवियं' इत्यादि।

ग्लायेत् આ ક્રિયાપદ એ સૂચિત કરે છે કે કોઈ પણ સાધુદ્વારા સમાનીત-લાવેલ ભિક્ષા કદાચ તે સાધુને ન મળે તો તે ગ્લાન તે સમય ચારે પ્રકારના આહારનો ત્યાગ કરી દે પણ સંલેખનાના ક્રમનો નહીં.

"आहारस्यैव" અહિ પર "एव" આ પદ એમ બતાવે છે કે તે ભક્ત પ્રત્યાખ્યાન આદિ કરે તો, પરંતુ એવા કાયર બનીને તે પોતાના સંલેખનાના ક્રમનો ભંગ ન કરે કે-'ચાલો થોડા દિવસ આહાર કરી લઉં પછી બાકી રહેલ સંલેખના પૂર્ણ કરી લઇશ.' (૩)

ફરી પણ કહે છે-'जीवियं' ઈત્યાદિ.

टीका--'जीवित'-मित्यादि, स संलेखनाकारी मुनिः जीवितं नाभिकाङ्क्षेत् =नेच्छेत् , क्षुधापरीषहाभिभूतो मरणम्=औदारिकशरीरत्यागमपि न प्रार्थयेत् , तथा जीविते मरणे उभयतोऽपि=उभयस्मिन्नपि न सज्जेत=आसक्तिं न कुर्यादित्यर्थः॥४॥

तदा कीदृशो भवेदित्याह-'मज्झत्थो' इत्यादि ।

मूलम्-मज्झत्थो निज्जरापेही, समाहिमणुपालए ॥
अंतो बहिं विउस्सिज्ज, अज्झत्थं सुद्धमेसए ॥ ५ ॥

छाया--मध्यस्थो निर्जरापेक्षी, समाधिमनुपालयेत् ॥
अन्तर्बहिर्व्युत्सृज्य, अध्यात्मं शुद्धमन्वेषयेत् ॥ ५ ॥

टीका--'मध्यस्थ'-इत्यादि, मध्यस्थः राग-द्वेषयोरुदासीनः, यद्वा-मध्यस्थः =जीविते मरणेऽपि च निःस्पृहः, अत एव 'निर्जरापेक्षी' निर्जरां=कर्मनिर्जरणमपेक्षितुं शीलं यस्य स निर्जरापेक्षी, स समाधिं=मरणसमाधिम् अनुपालयेत्-जीवितमरणेच्छा-

---

वह संलेखनाकारी साधु संलेखनामें अधिक जीनेकी आकांक्षा न करे, क्षुधा-परीषह आदिसे त्रस्त होकर औदारिक शरीरके परित्यागरूप मरणकी, अर्थात् अधिक जीनेकी एवं दुःखित होकर मरनेकी चाहना न रखे, तथा मरने जीने दोनों में आसक्ति न करे ॥ ४ ॥

उस समय वह कैसा होना चाहिये? इसका उत्तर देनेके लिये सूत्रकार कहते हैं—'मज्झत्थो' इत्यादि।

राग और द्वेषमें उदासीन वृत्तिवाला, अथवा जीने और मरनेमें भी निःस्पृह, अत एव कर्मोंकी निर्जरा करनेकी अपेक्षाका स्वभाववाला, ऐसा वह मुनि मरणसमाधिकी अनुपालना करे, अर्थात्-जीवित और मरणमें इच्छारहित मुनिका कालपर्यायसे जिस समय में मरण होता है उस

એ સંલેખનાકારી સાધુ સંલેખનામાં વધારે જીવવાની આકાંક્ષા નહીં કરે, ક્ષુધાપરિષહ આદિથી ત્રસ્ત બની ઔદારિક શરીરના પરિત્યાગરૂપ મરણની પણ આકાંક્ષા ન કરે. અર્થાત્-અધિક જીવવાની એમજ દુઃખિત બનીને મરવાની ચાહના ન રાખે. તથા મરવા જીવવા બન્નેમાં આસક્તિ ન કરે. (૪)

તે સમય એ કેવો હોવો જોઈએ? તેનો ઉત્તર આપતાં સૂત્રકાર કહે છે- 'मज्झत्थो' ઈત્યાદિ.

રાગ અને દ્વેષમાં ઉદાસીન વૃત્તિવાળા, અથવા જીવવામાં અને મરણમાં પણ નિઃસ્પૃહ, માટે જ કર્મોની નિર્જરાની અપેક્ષાના સ્વભાવવાળા એવા તે મુનિ મરણ-સમાધિની અનુપાલના કરે. જીવન અને મરણમાં ઇચ્છારહિત મુનિનું કાળ પર્યાયથી જે સમયે મરણ થાય છે એ સમયની તે મુનિ સાવધાન ચિત્તથી પ્રતીક્ષા

वर्जितस्य कालपर्यायेण मरणं यद् यदा भवति तं कालं स समाहितमनाः परिपालयेदित्याशयः। एवम् अन्तः=कषायान् बहिः=शरीरोपकरणादिकं च व्युत्सृज्य=विहाय शुद्धं=राग-द्वेषाद्युपशमाद्विस्रोतसिकावर्जितम्, अध्यात्मम्=अन्तःकरणम् अन्वेषयेत्=गवेषयेत् ॥ ५ ॥

किञ्च-'जं किंचु०' इत्यादि।

मूलम्—जं किंचुवक्कमं जाणे, आउक्खेमस्स मप्पणो ॥
तस्सेव अंतरद्धाए, खिप्प सिक्खिज्ज पंडिए ॥ ६ ॥

छाया—यं कं चनोपक्रमं जानीयात्, आयुःक्षेमस्याऽऽत्मनः ॥
तस्यैव अन्तरद्धायां, क्षिप्रं शिक्षेत पण्डितः ॥ ६ ॥

टीका—'यं कं चने'-त्यादि, आत्मनः=स्वस्य आयुःक्षेमस्य=स्वसम्बन्धिन आयुषः क्षेमस्य=कल्याणस्य च यं कं चन उपक्रमम्=उपक्रमणम् जानीयात् तस्यैव=संलेखनाकालस्य अन्तरद्धायाम्=मध्यवर्तिकाले पण्डितः=अवगतहेयोपादेयतया स्वायुषो निजक्षेमस्य चोपायपरिज्ञाता क्षिप्रं=शीघ्रं शिक्षेत=अभ्यसेत। यद्वा-य आत्मनः=निजस्य आयुःक्षेमस्य=सुखजीवितस्य यं कं चनोपक्रमम् आयुःपुद्गलानां

समयकी वह मुनि सावधानचित्त बन प्रतीक्षा करे। इस प्रकार अन्तरंगकी उपाधिस्वरूप कषायोंका, एवं बहिरंगकी उपाधिरूप शरीर और उपकरण आदिका परित्यागकर वह मुनि राग द्वेष आदिके उपशमसे विस्रोतसिका-संशयादिकदोष-रहित, ऐसे अपने अन्तःकरणकी गवेषणा करे ॥५॥

किञ्च—'जं किं चुवक्कमं' इत्यादि।

तथा-अपनी आयुको और अपने कल्याणके जिस किसी भी उपक्रम को वह जाने, उसका वह शीघ्र ही संलेखना कालके मध्यवर्त्ति कालमें अभ्यास करे। अथवा-वह मुनि जब ही अपने सुखमय जीवनकी स्थिति पूरी होती हुई जाने, अर्थात् 'आयुके पुद्गलोंका संकुचित होनेका

કરે. આ પ્રકારે અન્તરંગની ઉપાધિરૂપ કષાયો અને બહારની ઉપાધિરૂપ શરીર અને ઉપકરણ વગેરેનો ત્યાગ કરી એ મુનિ રાગ દ્વેષથી રહિત વિસ્રોતસિકા—સંશયાદિક દોષ-રહિત થઈ પોતાના અન્તઃકરણની ગવેષણા કરે. (૫)

ફરી—'जं किं चुवक्कमं' ઈત્યાદિ.

પોતાની આયુષ્ય અને કલ્યાણના દરેક પ્રકારના ઉપક્રમને તે જાણે, અને તે તરત જ સંલેખનાકાળના મધ્યવર્તી કાળનો અભ્યાસ કરે. અથવા-જ્યારે તે પોતાના સુખમય જીવનની સ્થિતિ પુરી થતી જાણે, અથવા-આયુષ્યના પુદ્ગલોનો

सङ्कोचनं समुपस्थितं जानीयात् स पण्डितः=अवसरज्ञः तस्यैव=उपक्रमस्य संलेखनावसरस्य अन्तरद्धायां=मध्यकाले क्षिप्रं=शीघ्रं शिक्षेत=भक्तपरिज्ञादिकमासेवनेन परिजानीयात् ॥ ६ ॥

स संलेखनापरिशुद्धकृशशरीरो मरणकाले चोपस्थिते किं विदधीत? इत्याह– 'गामे वा' इत्यादि ।

मूलम्–**गामे वा अदुवा रण्णे, थंडिलं पडिलेहिया ॥**
अप्पपाणं तु विन्नाय, तणाइं संथरे मुणी ॥ ७ ॥

छाया––ग्रामे वा अथवा अरण्ये, स्थण्डिलं प्रत्युपेक्ष्य ॥
अल्पप्राणं विज्ञाय, तृणानि संस्तरेन्मुनिः ॥ ७ ॥

टीका––'ग्रामे वा'–इत्यादि, मुनिः=भिक्षुः संलेखनाशुद्धकृशशरीरः ग्रामे वा अथवा अरण्ये=वने अल्पप्राणं=प्राणिवर्जितं स्थण्डिलं=संस्तारकदेशं प्रत्युपेक्ष्य=सम्यगवधार्य विज्ञाय=विशेषरूपेण ज्ञात्वा, तृणानि=ग्रामादौ याचनया प्राप्तानि प्रासुकानि दर्भादीनि संस्तरेत्=तैः संस्तरणं कुर्यात् ॥ ७ ॥

समय उपस्थित होचुका है' ऐसा समझे तब ही वह अवसरज्ञ मुनि संलेखना के अवसरके मध्यकालमें शीघ्र ही भक्तपरिज्ञा आदिका सेवन करने लगे ॥६॥

संलेखना से परिशुद्ध कृश शरीर मुनि मरणकालके उपस्थित होने पर क्या करे? इसके उत्तरमें सूत्रकार कहते हैं–'गामे वा' इत्यादि।

वह मुनि कि जिसका कृश शरीर संलेखनासे शुद्ध है वसतिमें अथवा जंगल में प्राणिवर्जित संस्तारक प्रदेशका निरीक्षण करे, और उसके पश्चात् जब यह निश्चित होजावे कि यह प्रदेश जीवजंतुरहित है तब ग्रामादिक में याचनासे प्राप्त प्रासुक दर्भ आदि घास को वहां पर बिछाकर अपना संथारा तैयार करे ॥७॥

સંકુચિત થવાનો સમય આવી ચુકયો છે' એવું સમજે ત્યારે તે અવસરજ્ઞ મુનિ સંલેખનાના અવસરના મધ્યકાળમાં સત્વર ભક્તપરિજ્ઞા વગેરેનું સેવન કરવા લાગે.(૬)

સંલેખનાથી જેનું કૃશ શરીર શુદ્ધ છે એવા મુનિ મરણકાળ ઉપસ્થિત થતાં શું કરે? આના ઉત્તરમાં સૂત્રકાર કહે છે–'गामे वा' ઇત્યાદિ.

જે મુનિનું કૃશ શરીર સંલેખનાથી શુદ્ધ છે, વસતિમાં અથવા જંગલમાં પ્રાણિવર્જીત સ્થાનનું નિરીક્ષણ કરે, અને એ પછી જ્યારે એવો નિશ્ચય થઈ જાય કે આ પ્રદેશ જીવ–જંતુથી રહિત છે, ત્યારે ગ્રામાદિકમાં યાચનાથી પ્રાપ્ત કરેલ દર્ભ વગેરે ઘાસને ત્યાં બીછાવી પોતાનો સંથારો તૈયાર કરે. (૭)

ततः किं कुर्यादित्याह–'अणाहारो' इत्यादि ।

मूलम्–अणाहारो तुयट्टेज्जा, पुट्ठो तत्थऽहियासए।
णातिवेलं उवचरे, माणुस्सेहि वि पुट्ठए ॥८॥

छाया––अनाहारस्त्वग्वर्तयेत् , स्पृष्टस्तत्राध्यासयेत् ॥
नातिवेलमुपचरेत् , मानुष्यैरपि स्पृष्टकः ॥ ८॥

टीका––'अनाहार'–इत्यादि–स संलेखनाशुद्धशरीरः, अनाहारः=त्रिविध-चतुर्विधाशनपरित्यागी, गृहीतमहाव्रतः स्वयं क्षान्तः क्षमापितसकलप्राणिगणः समदुःखसुखो विदितात्मतत्त्वतया मरणादप्यबिभ्यन् स संस्तरे त्वग्वर्तयेत्=प्रतिलेख्य प्रमार्ज्य च पार्श्वपरिवर्तनं विदध्यात् , स एव तत्र संस्तरे स्पृष्टः=परीषहोपसर्गैरभिभूतः सन् तान् अध्यासयेत्=अधिसहेत, अपि च–तत्र मानुष्यैः=अनुकूलैः-पुत्र-कलत्र–मित्रादिसं-

---

वह इसके पश्चात् क्या करे? इसके लिये सूत्रकार–कहते हैं–'अणाहारो' इत्यादि ।

संलेखना से शुद्ध शरीर वाला, तीन प्रकार या चार प्रकारके आहारका परित्यागी, महाव्रतों को जिसने ग्रहण किया है, समस्त जीवोंको जिसने क्षमा प्रदान किया है और उनसे भी जिसने अपने समस्त प्रत्यक्ष और परोक्ष कृत दोषों की क्षमायाचना कर ली है, सुख और दुःख में जो समभावी बन चुका है और आत्मतत्त्वका ज्ञाता होने से जो मरण से भी त्रस्त नहीं है ऐसा वह मुनि उस बिछाये हुए संथारेकी पहिले प्रतिलेखना करे पश्चात् उसकी प्रमार्जना करे। प्रतिलेखना और प्रमार्जना करने बाद फिर उस पर सोजावे। उस संथारे पर सोये२ ही वह परिषह और उपसर्गोंसे उपद्रवित बन उन्हें सहे। अपने अनुकूल–पुत्रमित्रकलत्रादिकों के संसर्गसे जनित परीषह और

એ મુનિ આ પછી શું કરે? આને માટે સૂત્રકાર કહે છે–'अणाहारो' ઈત્યાદિ.

સંલેખનાથી શુદ્ધ શરીરવાળા, ત્રણ પ્રકારના કે ચારે પ્રકારના આહારના પરિત્યાગી, મહાવ્રતો જેણે ગ્રહણ કરેલ છે, સમસ્ત જીવોને જેણે ક્ષમાપ્રદાન કરેલ છે અને પોતે પણ પોતાના બધા પ્રત્યક્ષ અને પરોક્ષ દોષોની ક્ષમાયાચના કરેલ છે, સુખ અને દુઃખમાં જે સમભાવી બની ચુકેલ છે, અને આત્મતત્ત્વના જ્ઞાતા હોવાને કારણે જે મરણનો ભય રાખતો નથી, એવો તે મુનિ બીછાવવામાં આવેલ સંથારાની પડિલેહણા કરી ફરી પરિમાર્જના કરે, એ પછી તે તેના ઉપર સુવે. સંથારો ગ્રહણ કરેલ તે મુનિ ઉપસર્ગોથી ન અકળાતાં તેને સહન કરે. પોતાના અનુકૂલ–પુત્ર–મિત્ર અને કુટુંબીજનોના સંસર્ગથી આવેલ પરિષહ અને

सर्गजनितैः, प्रतिकूलैः—वधबन्धनाक्रोशादिसमुद्भूतैः परीषहोपसर्गैरपि स्पृष्टकः= स्पृष्ट एव स्पृष्टकः अनुकूलोपसर्गैस्तदनुध्यानपरः, प्रतिकूलैश्च तैः कोपपरायणः सन् अतिवेलं नोपचरेत्=साधुमर्यादां नातिक्रामेत् ॥ ८ ॥

उक्तार्थमेव विशदयति–'संसप्पगा' इत्यादि–

मूलम्—**संसप्पगा य जे पाणा, जे य उड्ढमहेचरा ॥**
भुंजंति मंससोणियं, न छणे न पमज्जए ॥ ९ ॥

छाया——संसर्पकाश्च ये प्राणाः, ये च ऊर्ध्वमधश्चराः ॥
भुञ्जते मांसशोणितं, न क्षणुयान्न प्रमार्जयेत् ॥ ९ ॥

टीका——'संसर्पका'—इत्यादि, संसर्पकाः=संसर्पणशीलाः पिपीलिका–सर्प–मूषकादयश्च ये प्राणाः=प्राणिनः च=पुनः ये ऊर्ध्वमधश्चराः=ऊर्ध्वचारिणो गृध्रादयः, अधश्चराः=सिंह-व्याघ्र–शृगालादयः मांसशोणितं भुञ्जते, तत्र मांसभोजिनः गृध्र–सिंह–व्याघ्रादयः, शोणिताशिनः पिपीलिकादयः, आदिशब्दात् दंश–मशक-मत्कुण–यूकालिक्षादयः सन्ति, स भिक्षुस्तान् पूर्वोक्तान् प्राणिनः स्वमांसाद्यशनाय

उपसर्गोंसे हर्षित हो कर, तथा प्रतिकूल–वध बंधन आक्रोश आदिसे उत्पन्न उनसे कोपपरायण होकर वह साधु मर्यादाका उल्लंघन न करे ॥८॥

इस अर्थको सूत्रकार स्पष्ट करते हैं–'संसप्पगा य' इत्यादि ।

पिपीलिका–कीड़ी, सर्प और मूषक आदि संसर्पणशील प्राणी, गृध्र-वगैरह ऊर्ध्वचारी जीव, और सिंह, व्याघ्र एवं शृगाल आद अधश्चारी जीव कि जो मांस और शोणित का आहार करने वाले हैं, वे यदि उस साधु के मांस शोणित को खानेके लिये आवें तो वह उनकी हिंसा न करे, तथा उनके द्वारा खाया गया अपने शरीरका कोई भी अवयव वह रजोहरणादिक से प्रमार्जित न करे। गृध्र, सिंह और व्याघ्र आदि मांस

ઉપસર્ગોથી હર્ષિત બની તથા પ્રતિકૂળ–વધ–બંધન–આક્રોશ વગેરેથી ઉત્પન્ન તેઓથી કોપપરાયણ બની સાધુમર્યાદાનું તે ઉલ્લંઘન ન કરે. (૮)

આ અર્થને સૂત્રકાર સ્પષ્ટ કરે છે.–'संसप्पगा य' ઇત્યાદિ.

કીડી–સર્પ–ઉંદર–ઘુસ–ખીસકોલી–છછુંદર વગેરે સંસર્પણશીલ પ્રાણી, ગીધ વગેરે ઉર્ધ્વચારી જીવ, સિંહ, વાઘ, શીયાળ વગેરે અધશ્ચારી જીવ કે જે માંસ અને લોહીને જ ભક્ષણ કરનારા છે, એ કદાચ તે સાધુના માંસ અને લોહીનું ભક્ષણ કરવા આવે તો તે તેની હિંસા ન કરે, તેમ એના દ્વારા ખાવામાં આવેલા શરીરના કોઇ પણ ભાગને રજોહરણાદિકથી પ્રમાર્જિત ન કરે. ગીધ સિંહ,

समागतान् न क्षणुयात्=न हिंस्यात्, नापि तैर्भुज्यमानमवयवं रजोहरणादिना प्रमार्जयेत् ॥ ९ ॥

अपि चाह-'पाणा' इत्यादि।

मूलम्—**पाणा देहं विहिंसंति, ठाणाओ नवि उब्भमे ॥**
आसवेहिं विवित्तेहिं, तिप्पमाणोऽहियासए ॥ १० ॥

छाया--प्राणा देहं विहिंसन्ति, स्थानान्नाप्युद्भ्रमेत् ॥
आस्रवैर्विविक्तै,-स्तृप्यमाणोऽध्यासयेत् ॥१०॥

टीका--'प्राणा'-इत्यादि, प्राणाः=प्राणिनो द्वीन्द्रियादयो देहं=मम शरीरं विहिंसन्ति=घ्नन्ति न पुना रत्नत्रयम्, अतः परिहृतदेहाशः समाचरिताभिग्रहभङ्गभयात्तान् न निवारयेत्। नापि=नैव तस्मात् स्थानात्=स्थण्डिलात् उद्भ्रमेत्=क्वचिदन्यत्र गच्छेत्। अपि च-विविक्तैः=भिन्नैः आस्रवैः=प्राणातिपातादिभिः, शब्दादिविषयकषायादिभिर्वा तृप्यमाणः=पीडयमानो अध्यासयेत्=तत्कृतां परीषहोपसर्गबाधामधिसहेत ॥१०॥

भोजी हैं, पिपीलिकादिक, आदि शब्दसे दंश, मशक, खटमल, जू एवं लीख आदि शोणितभोजी हैं ॥९॥

और भी-'पाणा देहं' इत्यादि।

'ये द्वीन्द्रियादिक प्राणी मेरे शरीरकी ही हिंसा करते हैं, रत्नत्रयकी नहीं' ऐसा विचार कर अपने शरीरके ममत्व का त्यागी वह साधु समाचरित-गृहीत अभिग्रहके भंग के भय से उन मांसशोणितभक्षी जीवोंका निवारण न करे, और न उनके भयसे वह उस स्थानसे किसी और दूसरे स्थान में जावे। तथा वह साधु प्राणातिपातादिक अथवा शब्दादिक विषय कषायरूप अनेक आस्रवोंसे आहत-पीडित होता हुआ भी उन द्वारा की गई परीषह और उपसर्गकी पीड़ाको सहता रहे ॥१०॥

વાઘ વગેરે માંસ ખાનારા છે. કીડી આદિ, આદિ શબ્દથી મચ્છર, માકડ, જુ, લીખ વગેરે લોહી ચુસનારા છે. (૯)

ફરી પણ-' पाणा देहं ' ઇત્યાદિ.

'આ બે ઇન્દ્રિયવાળા પ્રાણી મારા શરીરનું ભક્ષણ કરનારાં છે પણ રત્નત્રયનું નહીં' એવો વિચાર કરી પોતાના શરીરના મમત્વનો ત્યાગી તે સાધુ, સમાચરિત-ગ્રહણ કરેલ અભિગ્રહના ભંગના ભયથી એ માંસ-લોહીનું ભક્ષણ કરનાર જીવોને દૂર ન કરે, તેમ એના ભયથી પોતે એ સ્થાન છોડી બીજા સ્થાને ન જાય, તથા તે સાધુ પ્રાણાતિપાતાદિક, અથવા શબ્દાદિક વિષય-કષાયોરૂપ અનેક આસ્રવોથી પીડાતો હોવા છતાં પણ તે દ્વારા થતા પરિષહ અને ઉપસર્ગની પીડાને સહન કરે.(૧૦)

अन्यच्चाह-'गंथेहिं' इत्यादि।

मूलम्-**गंथेहिं विवित्तेहिं, आउकालस्स पारए ॥**
पग्गहियतरगं चेयं, दवियस्स वियाणओ ॥११॥

छाया—ग्रन्थैर्विविक्तैः, आयुःकालस्य पारगः ॥
प्रगृहीततरकं चेदं, द्रविकस्य विजानतः ॥११॥

टीका—'ग्रन्थै'-रित्यादि, यः विविक्तैः=पृथग्भूतैः, ग्रन्थैः=बाह्यैः शरीरादिभिः, आभ्यन्तरैश्च रागादिभिः स्वात्मानं भावयन् धर्मशुक्लध्यानैकतरसमन्वितः स आयुःकालस्य=मरणावसरस्य=पारगः=पारगामी स्यात्—चरमोच्छ्वासनिःश्वासपर्यन्तं समाधिमान् भवेत्, एवंविधमरणादिविधायी नीरजाः सन् सिद्धिं, कर्मावशेषे देवलोकं वा गच्छेत्। कथितं भक्तपरिज्ञाख्यमरणम्, साम्प्रतं पद्यार्द्धेनेङ्गि-

---

और भी-'गंथेहिं' इत्यादि।

जो मुनि आत्मा से सर्वथा पृथग्भूत बाह्य-शरीरादिकरूप एवं आभ्यन्तर-रागादिरूप परिग्रहों से अपनेको भिन्न मानता है, और इसी प्रकारकी जिसकी सदा भावना बनी रहती है, तथा धर्मध्यान और शुक्लध्यान, इन दो ध्यानों में से जो किसी एक ध्यानसे समन्वित रहता है, वह मरणके अवसर का पारगामी होता है, अर्थात्-अन्तिम श्वास और निःश्वास पर्यन्त समाधिसंपन्न रहता है। इस रीतिसे मरण करनेवाला साधु कर्मरूप रजसे रहित होकर सिद्धिलोकमें अथवा कर्मोंके अवशेष रहने पर देवलोक में जाता है। यहां तक भक्तपरिज्ञा-नामक मरणका कथन किया गया है। यहां से आगे अब आधे पद्यसे सूत्रकार इंगितमरणका कथन आरंभ करते हैं-प्रथम इंगितमरण कौन करता है? इसके लिये

ફરી પણ-'गंथेहिं' ઇત્યાદિ.

જે મુનિ આત્માથી સર્વથા પૃથગ્ભૂત બાહ્ય-શરીરાદિકરૂપ, અને આભ્યંતર--રાગાદિરૂપ પરિગ્રહોથી પોતાને ભિન્ન માને છે, અને આવા પ્રકારની જેની સદા-ભાવના બની રહે છે, તથા ધર્મધ્યાન અને શુકલધ્યાન, આ બન્ને ધ્યાનોમાંથી જે કોઈ એક ધ્યાનથી સમન્વિત રહે છે તે મરણના અવસરને પાર કરનાર બને છે-અંતિમ શ્વાસ અને નિઃશ્વાસ સુધી સમાધિસંપન્ન રહે છે. આ રીતથી મરણ કરવાવાળા સાધુ કર્મરૂપ રજથી રહિત બનીને સિદ્ધિલોકમાં, અથવા કર્મોનો અવશેષ રહેવાથી દેવલોકમાં જાય છે. અહિં સુધી ભકતપરિજ્ઞા નામના મરણનું વર્ણન કરવામાં આવેલ છે. આગળ હવે અર્ધા પદ્યથી સૂત્રકાર ઈંગિતમરણના કથનનો પ્રારંભ કરે છે-પ્રથમ ઇંગિતમરણ કોણ કરે છે? એને માટે સૂત્રકાર

तमरणमुपदर्शयति–'पग्गहिय०'इत्यादि, द्रविकस्य=संयमवतः विजानतः=गीतार्थस्य जघन्येनापि नवपूर्वाभिज्ञस्य नान्यस्य इदं=वक्ष्यमाणमिङ्गितमरणं प्रगृहीततरकम् अतिशयेन सम्यक् स्वीकृतं भवति। इङ्गितमरणेऽपि संलेखनातृणसंस्तारादिकं पूर्ववद् बोध्यम् ॥११॥

तन्मरणस्यान्यमपि विधिं दर्शयति–'अयं' इत्यादि।

मूलम्—अयं से अपरे धम्मे, नायपुत्तेण साहिए ॥
आयवज्जं पडीयारं, विजहिज्जा तिहा तिहा ॥१२॥

छाया—अयं सः अपरः धर्मो, ज्ञातपुत्रेण स्वाहितः ॥
आत्मवर्जं प्रतीचारं, विजह्यात् त्रिधा त्रिधा ॥१२॥

टीका—'अय'-मित्यादि, ज्ञातपुत्रेण=भगवता महावीरेण स्वाहितः=सुष्ठु आहितः=ज्ञातः केवलालोकेन समुपलब्ध इत्यर्थः, अयं वक्ष्यमाणः इङ्गितमरणस्य धर्मः, अपरः=भक्तपरिज्ञामरणात्पृथगस्ति, एतस्यापि मरणस्य प्रव्रज्यासंलेखनादिको विधिः पूर्ववद् बोध्यः। इङ्गितमरणाभिकाङ्क्षी सर्वमुपकरणं परिहृत्य स्थण्डिलप्रत्यु-

---

सूत्रकार कहते हैं कि–जो संयमी है, तथा कमसे कम तो नौ पूर्वके ज्ञाता है वही इसे स्वीकार करता है–अन्य मुनि नहीं। इस में भी संलेखना एवं तृणसंस्तार आदिकी विधि पूर्ववत् जाननी चाहिये॥११॥

इस मरणकी अन्य विधि कहते है—'अयं से' इत्यादि।

ज्ञातपुत्र श्री महावीर के द्वारा केवलज्ञानरूपी आलोकसे अच्छी तरह जाना गया यह इंगितमरणरूप धर्म भक्तप्रत्याख्यान आदि मरण से भिन्न है। इस मरण की भी प्रव्रज्या ग्रहण करना, संलेखनादिक धारण करना आदि विधि पहिलेकी तरह ही समझना चाहिये। इंगित मरणका अभिलाषी मुनि समस्त उपकरणका परित्याग कर स्थण्डिलका

કહે છે કે જે સંયમી છે, તથા જે ઓછામાં ઓછા નવપૂર્વના જાણકાર હોય છે તેજ તેને અંગીકાર કરે છે-બીજા મુનિ નહીં. આમાં પણ સંલેખના અને ઘાસના સંથારા વગેરેની વિધિ પહેલાંની માફક જાણવી જોઈએ. (૧૧)

આ મરણની બીજી પણ વિધિ કહે છે–'अयं से' ઈત્યાદિ.

જ્ઞાતપુત્ર શ્રી મહાવીર દ્વારા કેવળજ્ઞાનરૂપી આલોકવશથી (પ્રકાશવડે) સારી રીતે જાણવામાં આવેલ તે ઇંગિતમરણરૂપ ધર્મ ભકતપ્રત્યાખ્યાન વગેરે મરણથી જુદા પ્રકારનું છે. આ મરણની પણ દીક્ષા ગ્રહણ કરવી, સંલેખના વગેરેનું ધારણ કરવું વગેરે વિધિ પહેલાની માફકજ સમજવી જોઈએ. ઇંગિત મરણના અભિલાષી મુનિએ સમસ્ત ઉપકરણનો પરિત્યાગ કરી સ્થંડિલનું

पेक्षणपूर्वकमालोचितप्रतिक्रान्तः, गृहीतपुनःपञ्चमहाव्रतो यावदशनं विहाय संस्तार-स्थितो भवेत्। एतस्मिन् विशेषं दर्शयति–'आत्मवर्ज'–मित्यादिना, स तृणसंस्तारगत इङ्गितमरणेच्छुः, त्रिधा–त्रिधा=त्रिविधैर्मनोवाक्कायरूपैः कृतकारितानुमति-भिश्च आत्मवर्जं=निजशरीरावश्यककार्यवर्जं प्रतीचारम्=अवयवसञ्चारं विजह्यात्=परिहरेत्, स्वयमेव च–उद्वर्तनपरिवर्तनं कायव्यापारादिकं करोतीति भावः॥सू०१२॥

मुहुर्मुहुः प्राणिप्राणपरिपालनस्यावश्यकतामुपदर्शयति–'हरिएसु' इत्यादि।

मूलम्–हरिएसु न निवंजिज्जा, थंडिलं मुणिया सए॥
विओसिज्ज अणाहारो, पुट्ठो तत्थऽहियासए॥१३॥

छाया–हरितेषु न निषीदेत्, स्थण्डिलं ज्ञात्वा शयीत॥
व्युत्सृज्यानाहारः, स्पृष्टस्तत्राध्यासयेत्॥१३॥

निरीक्षण, उसका संमार्जन, पापोंकी आलोचना एवं प्रतिक्रमण करे। पांच महाव्रतोंको पुनः ग्रहण करे। अशनादिकको क्रमशः कृश करते हुए उसका सर्वथा परिहार करे, और ग्रामादिकसे घासकी याचना कर एकांत स्थान में निर्जीव स्थानपर उनका संथारा कर उस पर खमत–खामणा कर स्थित हो जावे। इंगित मरणका इच्छुक मुनि मन वचन एवं कायसे, तथा कृत, कारित एवं अनुमोदना से अपने शारीरिक आवश्यक कार्यों के सिवाय अन्य–अवयवों के संचार करनेरूप प्रतीचारका परिहार कर देवे। उद्वर्तन–परिवर्तनरूप कायव्यापारादिक यह कर सकता है॥१२॥

सूत्रकार बारबार प्राणियों के प्राणोंकी रक्षाकी आवश्यकता प्रकट करते हुए सूत्र कहते हैं–'हरिएसु' इत्यादि।

નિરીક્ષણ, તેનું સંમાર્જન, પાપોની આલોચના તેમજ પ્રતિક્રમણ કરી પાંચ મહાવ્રતોને પુનઃ ગ્રહણ કરે. અન્ન વગેરે ઓછું કરતા જાય અને છેવટે તેનો સંપૂર્ણ ત્યાગ કરે, અને ગ્રામાદિકથી ઘાસની યાચના કરી એકાન્ત સ્થાનમાં, નિર્જીવ સ્થાન ઉપર સંથારો કરી એ ઉપર બેસી ખમત–ખામણા કરી સ્થિર બની જાય. ઇંગિતમરણને ઇચ્છનાર મુનિ મન વચન અને કાયાથી કરેલા, કરાયેલા, અને અનુમોદન આપેલા પોતાના શારીરિક આવશ્યક કાર્યો સિવાય બીજા અવયવોનો સંચાર કરવારૂપ પ્રતિચારનો ત્યાગ કરી દે. ઉદ્વર્ત્તન–પરિવર્તનરૂપ કાયવ્યાપારાદિક તે કરી શકે છે. (૧૨)

સૂત્રકાર વારંવાર પ્રાણીઓના પ્રાણોની રક્ષાની આવશ્યકતા પ્રગટ કરીને સૂત્ર કહે છે–'हरिएसु' ઇત્યાદિ.

---

१ 'नि' पूर्वस्य 'सद्' धातो रूपम्।

टीका—'हरितेष्वि'-त्यादि, स भिक्षुः, हरितेषु=दूर्वाङ्कुरयुतेषु प्रदेशेषु न निषीदेत्=नोपविशेत्, तं स्थण्डिलं=हरितादिवर्जितं स्थानं ज्ञात्वा शयीत, व्युत्सृज्य= आहारं त्यक्त्वा अनाहारः=कृतानशनः स्पृष्टः=परिषहोपसर्गैरभिभूतः सन् तत्र= संस्तरे वर्तमान एव अध्यासयेत्=उपस्थितं परीषहोपसर्गाभिभवमधिसहेत ॥सू०१३॥

अन्यदप्याह-'इंदिएहिं' इत्यादि ।

मूलम्—**इंदिएहिं गिलायंतो, समियं आहरे मुणी ॥**
तहावि से अगरिहे, अचले जे समाहिए ॥१४॥

छाया—इन्द्रियैर्ग्लायमानः, शमितामाहारयेन्मुनिः ॥
तथाऽपि सः अगर्ह्यः, अचलो यः समाहितः ॥ १४ ॥

टीका—'इन्द्रियै'-रित्यादि, अशनप्रत्याख्यानादिन्द्रियाणां क्षीणशक्तितया इन्द्रियैः=श्रोत्रादिभिः, ग्लायमानः=ग्लानिमनुभवन् मुनिः शमिनो=मनोनिग्रहवतो भावः शमिता, तां, यद्वा-'साम्यम्' इतिच्छाया, साम्यम्=समभावम् आहारयेत्= स्वात्मनि स्थापयेत्, आर्तध्यानसमन्वितो न भवेदित्याशयः । यथासमाधि तत्र

वह भिक्षु, जिस प्रदेशमें हरित-दूर्वादिके अंकुर हों उस प्रदेशमें नहीं बैठे। जहां हरितांकुर आदि न हों, वहीं पर ऊठे बैठे एवं सोवे। चतुर्विध आहार का परित्यागी वह भिक्षु परीषह और उपसर्गों से उपद्रवित होने पर उस संथारे पर रहता हुआ ही उपस्थित उस परिषह और उपसर्ग-जन्य बाधा को सहे ॥१३॥

और भी—'इंदिएहिं' इत्यादि ।

आहार के परित्याग कर देने से इन्द्रियां स्वयं शिथिल हो जाती हैं, अतः आहार के परित्याग से क्षीणशक्तिवाली इन्द्रियों द्वारा मुनि जब ग्लानिका अनुभव करने कगे उस समय वह अपने मनका निग्रह करके समताभावको धारण करे-आर्त्तध्यानसे युक्त न बने। हस्त-पादा-

---

તે ભિક્ષુ જે પ્રદેશમાં લીલા દર્ભ આદિના અંકુર હોય તેવા પ્રદેશમાં ન બેસે, જ્યાં લીલા દર્ભના અંકુર ન હોય ત્યાં બેસે ઉઠે અને સુવે. ચાર પ્રકારના આહા-રના પરિત્યાગી એ સાધુ પરિષહ અને ઉપસર્ગોથી ઉપદ્રવિત હોવા છતાં સંથારા ઉપર રહીને ઉત્પન્ન થતા પરિષહ અને ઉપસર્ગજન્ય બાધાઓને સહન કરે.(૧૩)

વધુ પણ—'इंदिएहिं'—ઈત્યાદિ.

આહારનો ત્યાગ કરી દેવાથી ઇન્દ્રિયો સ્વયં શિથિલ બની જાય છે, એટલે આહારના ત્યાગથી ક્ષીણશક્તિવાળી ઈન્દ્રિયોથી મુનિ જ્યારે ગ્લાનિ અનુભવવા લાગે એ સમયે તે પોતાના મનનો નિગ્રહ કરીને સમતા ભાવને ધારણ કરે-

तिष्ठेत्, तथा हि-सङ्कोचनोद्विग्नो हस्तपादाद्यवयवं प्रसारयेत्, तेन श्रान्त आसीदेत् इङ्गितप्रदेशे परिभ्रमेद्वा, तथाऽपि=एवं कुर्वन्नपि यो मुनिः, अभ्युद्यतमरणाद् गिरिरिवाऽप्रकम्प्यः शरीरमात्रेण तु चलित एव समाहितः=समाधिस्थापितचित्तो भवेत् सोऽगर्ह्यः=अनिन्द्यः, आराधक एवेत्यर्थः। स भावतोऽचल इङ्गितदेशे गमनादिकं कर्तुमर्हतीत्याशयः ॥ सू० १४ ॥

उक्तमेवार्थं प्रकटयति-'अभिक्कमे' इत्यादि ।

मूलम्-**अभिक्कमे पडिक्कमे, संकुचए पसारए ॥**

कायसाहारणट्ठाए, इत्थ वावि अचेयणो ॥ १५ ॥

छाया—अभिक्रामेत् प्रतिक्रामेत्, सङ्कोचयेत्प्रसारयेत् ॥

कायसाधारणार्थाय, अत्र वाऽपि अचेतनः ॥ १५ ॥

दिक अवयवों के संकोचसे यदि वह उद्विग्न चित्तवाला हो जाता है, तो वह हस्तपादादिको फैला सकता है। लेटे२ यदि वह थक जाता है तो वह उठ कर बैठ भी सकता है, और इंगितप्रदेशमें घूम भी सकता है। इस प्रकारसे अपनी परिस्थितिको संभालता हुआ भी वह प्राप्त हुए मरणसे चंचल-चित्त नहीं बनता, प्रत्युत पर्वतके समान अडोल ही रहता है। केवल शरीर से ही चलता है परन्तु गृहीत समाधि से कि जिसमें उसने अपना चित्त स्थापित किया है उससे चलित नहीं होता। ऐसा साधु ही अनिंद्य आराधक होता है। भावसे अचल होकर ही यह इंगित प्रदेश में गमनादिक कर सकता है ॥१४॥

कथित अर्थको ही सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं—'अभिक्कमे' इत्यादि ।

-આર્ત્તધ્યાનથી યુક્ત ન બને. હાથ પગના અવયવોના સંકોચથી જો તે ઉદ્વિગ્ન ચિત્તવાળા થઈ જાય તો તે એને ફેલાવી શકે છે. સુતાં સુતાં જો તે થાકી જાય તો તે ઉઠીને બેસી શકે છે અને ઇંગિત પ્રદેશમાં ફરી શકે છે. આ પ્રકારથી પરિસ્થિતિને સંભાળતાં છતાં પણ તે પ્રાપ્ત થતા મરણથી ચંચળ ચિત્તવાળા બનતા નથી, પરંતુ પર્વતની જેમ અડોલ રહે છે. કેવળ શરીરથી જ ચાલે છે. પરંતુ લીધેલ સમાધિથી કે જેમાં તેણે ચિત્ત સ્થાપિત કરેલ છે તેનાથી ચલિત થતા નથી. એવા સાધુ જ પ્રશંસા મેળવનાર બને છે. ભાવથી અચળ બનીને જ તે ઇંગિત પ્રદેશમાં હરી-ફરી શકે છે. (૧૪)

કહેવામાં આવેલા અર્થને જ સૂત્રકાર પ્રદર્શિત કરે છે-'अभिक्कमे' ઇત્યાદિ.

टीका—'अभिक्रामे'-दित्यादि, स मुनिः कायसाधारणार्थाय देहस्यापि सुकुमारतया तन्निर्वहणार्थम्, अभिक्रामेत्=संस्तारकाभिमुखं गच्छेत्, तथा प्रतिक्रामेत्=संस्तारकात् पश्चाद् गच्छेत्, सङ्कोचयेत्-प्रसारयेत्=हस्तपादादीनां सङ्कोचनं प्रसारणं च कुर्यात्, अत्र वाऽपि पूर्वोक्ताभिक्रमणादिकरणेऽपि 'वा' शब्दात् सति सामर्थ्ये पादपोपगमनवदत्रेङ्गितमरणेऽपि अचेतनः=शुष्ककाष्ठवत् सर्वक्रियावर्जित एव विज्ञेयः ॥ सू० १५ ॥

तथाविधसामर्थ्याऽसत्त्वे यद्विधेयं तदाह-'परिक्कमे' इत्यादि ।

मूलम्—परिक्कमे परिकिलंते, अदुवा चिट्ठ अहायए ॥
ठाणेण परिकिलंते, निसीइज्जा य अंतसो ॥ १६ ॥

छाया—परिक्रामेत् परिक्लान्तः, अथवा तिष्ठेद् यथायतः ॥
स्थानेन परिक्लान्तः, निषीदेच्च अन्तशः ॥ १६ ॥

वह मुनि देहके अतिसुकुमार होनेके कारण निर्वाह करने के लिये संस्तारक के सन्मुख जा सकता है, वहांसे पीछे लौट कर वापिस भी आ सकता है। अपने हाथ पैर आदि अवयवों को फैला सकता है और उनका संकोच भी कर सकता है। इंगित मरण करने में उद्यत वह साधु इन पूर्वोक्त क्रियाओंको कर सकता है। यदि उसमें शक्ति हो तो पादपोपगमन में जैसे शुष्ककाष्ठ की तरह निष्क्रिय पडा रहता है उसी तरह यह भी इस इंगितमरण में निष्क्रिय हो कर रह सकता है ॥१५॥

इस प्रकारकी शक्ति के अभाव में जो करने योग्य है वह सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं-'परिक्कमे' इत्यादि ।

તે મુનિ દેહના અતિ સુકુમાર હોવાને કારણે એના હલન-ચલન માટે સંથારાની આજુબાજુ જઈ શકે છે. ત્યાંથી ફરી તે પાછા સંથારાના સ્થળે આવી શકે છે. પોતાના હાથ પગ વગેરે અવયવોને ફેલાવી શકે છે અને તેનો સંકોચ પણ કરી શકે છે. ઇંગિત-મરણ કરવામાં ઉદ્યમી તે સાધુ આવી પૂર્વોક્ત ક્રિયાઓ કરી શકે છે. જો તેનામાં શક્તિ હોય તો તે પાદપોપગમનમાં જેમ સુકેલાં લાકડાંની જેમ નિષ્ક્રિય પડ્યા રહે છે તેમ તે પણ આ ઇંગિતમરણમાં નિષ્ક્રિય થઈ રહી શકે છે. (૧૫)

આ પ્રકારની શકિતના અભાવમાં જે કરવા યોગ્ય છે સૂત્રકાર તેને સૂત્રદ્વારા બતાવે છે—'परिक्कमे' ઇત્યાદિ

टीका—'परिक्रामे'—दित्यादि, यदा मुनेरुपविशतः शरीरपीडा भवेत्तदा स परिक्रान्तः=श्रममुपगतः सन् परिक्रामेत्=परिभ्राम्येत् नियतदेशे सरलगत्या यातायातादीनि समाचरेत्। तत्रापि श्रान्तश्चेत्तदा किं कुर्यादित्याह–'अथवे'–त्यादि, अथवा यथायतः=यथास्थापितशरीरः तिष्ठेत्, यदि स्थानेन=एकस्थानावस्थित्या परिक्लान्तो भवेत्—यद्युपविष्टश्चेत् पर्यङ्कोत्कुटुकाद्यासनान्तराणि कुर्यात्, उत्थितश्चेद् गमनागमनादिकं कुर्यात्, ततोऽपि क्लान्तश्चेत्तदा अन्तः=अन्ततो निषीदेच्च=उपविशेत्, तस्यामवस्थायां पार्श्वशायी दण्डायतिको लगुडशायी वा भूत्वा यथायोगमवतिष्ठेतेति तात्पर्यम् ॥ सू० १६ ॥

अपि चान्यदप्याह–'आसीणे' इत्यादि।

बैठे २ मुनि को जब शारीरिक कष्टका अनुभव होने लगे और उस दशामें उसे अपना शरीर थकासा मालूम पड़ने लगे तो वह नियमित प्रदेश में सरलगति से गमनागमन कर सकता है। ऐसा करते२ भी यदि थक जाता है, तो उसे एक स्थान पर ठहर जाना चाहिये। ठहरते समय यदि वह बैठ गया है, तो वह पर्यङ्कासन या उत्कुट आसन आदिसे बैठ सकता है, यदि खड़ा ही है तो श्रम समाप्त होते ही वह फिरसे गमनागमन कर सकता है। इस में भी जब वह थक जावे तो वह अन्तमें बैठ जावे, इस समय वह लेट भी सकता है, दण्ड जैसा हो सकता है, तथा वह अपने हाथ पैर आदि समस्त अवयवोंको इच्छानुसार पसार सकता है, तात्पर्य यह है कि–जिस रूपसे लेटनेमें या बैठनेमें उसे सुख मालूम हो वह उस प्रकार से लेट सकता है अथवा बैठ सकता है ॥ १६॥

और भी—'आसीणे' इत्यादि।

બેઠાં બેઠાં મુનિને જ્યારે શારીરિક કષ્ટનો અનુભવ થવા લાગે અને એ દશામાં તેને પોતાનું શરીર થાકેલું માલુમ પડે તો તે નિયમિત પ્રદેશમાં સરળ ગતિથી હરી–ફરી શકે છે. એમ કરતાં કરતાં પણ જો તે થાકી જાય તો તેણે એક સ્થાન ઉપર બેસી જવું જોઈએ. જે સ્થાન ઉપર પોતે બેસી ગયેલ છે ત્યાં તે પર્યંકાસન અથવા ઉત્કુટ (ઉકડુ) આસન વગેરેથી બેસી શકે છે. જો ઉભા જ રહે તો શ્રમ લાગતાં વળી ફરીથી હરી–ફરી શકે છે. એ વખતે પણ જો તે થાકી જાય તો અંતે બેસી જાય અને સુઈ પણ શકે છે, લાકડીની માફક થઈ શકે છે, અને તે પોતાના હાથ પગ વગેરે અવયવો ઈચ્છાનુસાર ફેરવી શકે છે. તાત્પર્ય એ છે કે–જે રીતે સુવા બેસવામાં એને સુખ પડે તે પ્રકારે તે સુઈ બેસી શકે છે. (૧૬)

વધુમાં—'आसीणे' ઇત્યાદિ.

मूलम्—आसीणेऽणेलिसं मरणं, इंदियाणि समीरए ॥
कोलावासं समासज्ज, वितहं पाउरेसए ॥ १७ ॥

छाया—आसीनोऽनीदृशं मरणम्, इन्द्रियाणि समीरयेत् ॥
कोलावासं समासाद्य, वितथं प्रादुरेषयेत् ॥ १७ ॥

टीका–'आसीन'–इत्यादि. अनीदृशम्=अनन्यतुल्यं कातरजनदुष्करं मरणम्=इङ्गिताख्यम् आसीनः=उपविशन्=स्वीकुर्वन ताद्दशमरणकृताध्यवसाय इत्यर्थः, स मुनिः इन्द्रियाणि=श्रोत्रादीनि समीरयेत्=मनोज्ञामनोज्ञशब्दादिविषयेषु राग–द्वेषाकरणेन प्रेरयेत्–विषयेभ्य इन्द्रियाणि निवर्तयेदित्यर्थः। राग–द्वेषयोरसत्त्वेन स्वत एव तानि स्वविषयेभ्यो निवृत्तानि भवन्तीति परमार्थः। स एव 'कोलावासं' कोलानां घुणाख्यकीटविशेषाणाम् आवासः=स्थानं, तम्, अन्तर्घुणक्षतं पीठफलकादिकं समासाद्य=प्राप्य वितथम्=अतथाभूतं कोलावासादन्यं सर्वथा घुणादिजीवरहितं

जिसे कायर जन अंगीकार नहीं कर सकते ऐसे इस इंगित मरण को स्वीकार करनेवाला यह मुनि अपनी श्रोत्र आदि इंद्रियोंको मनोज्ञ और अमनोज्ञ शब्द आदि विषयों में राग और द्वेष नहीं करके उस तर्फ से हटा लेवें। विषयों में जब इंद्रियोंका राग और द्वेष नहीं होगा तो वे स्वतः उस ओर से हट जायेंगी। वह मुनि कोलावास–भीतर से जिसे घुनने खा लिया है ऐसे पीठ फलकादिको छोडकर अच्छे मजबूत निश्छिद्र पीठ–फलकादिककी अपने सहारे के निमित्त गवेषणा करे। घुण नामक कीट–विशेषका नाम कोल है, इनका जिसमें स्थान है वह कोलावास है। इससे भिन्न कि जिसके भीतर घुन न लगा हो जिसमें छिद्र न हो और जिसकी प्रतिलेखना आदि क्रिया अच्छी तरह से हो

જેને અસંયમી જન અંગીકાર નથી કરી શકતા એવા એ ઈંગિત–મરણને સ્વીકાર કરવાવાળા એ મુનિ પોતાની શ્રોત્ર વગેરે ઈન્દ્રિયોને મનોજ્ઞ અને અમનોજ્ઞ શબ્દ વગેરે વિષયોમાં રાગ અને દ્વેષ નહિ કરતા એ તરફથી હટાવી લે, વિષયોમાં જ્યારે ઇન્દ્રિયોનો રાગ અને દ્વેષ ન હોય ત્યારે તે જાતે જ તે તરફથી હઠી જશે. તે મુનિ, જેને અંદરથી ઘુણ લાગેલ છે એવા પીઠ–ફલકાદિકને છોડી દઈ સારા મજબુત છિદ્ર વગરના પીઠ–ફલકાદિકની પોતાના સહારા માટે ગવેષણા કરે, જે લાકડામાં કોઈ કીડાનું સ્થાન ન હોય તેવા છિદ્ર વગરના, જેની પ્રતિલેખના વગેરે ક્રિયા સારી રીતે થઈ શકે એવા

प्रादुरेषयेत्=प्रकटं प्रतिलेखनयोग्यं छिद्रवर्जितं पीठफलकादिकमवष्टम्भनार्थमन्वेषयेत् ॥ १७ ॥

कोलावासयुक्तपीठफलकादिवर्जने हेतुमाह–'जओ' इत्यादि ।

मूलम्–**जओ वज्जं समुप्पज्जे, न तत्थ अवलंबए ॥**

तओ उक्कसे अप्पाणं, फासे तत्थऽहियासए ॥१८॥

छाया––यतो वज्रं समुत्पद्येत, न तत्रावलम्बेत् ॥

तत उत्कर्षयेदात्मानं, स्पर्शांस्तत्राऽध्यासयेत् ॥ १८ ॥

टीका––'यत'–इत्यादि, यतः=यस्मात् कोलावासादियुक्तपीठफलकाद्यवष्टम्भनात् वज्रम्=वज्रमिव गुरुत्वाद् ज्ञानावरणीयादिकर्म, यद्वा–'अवद्य'–मितिच्छाया, अवद्यं=पापं समुत्पद्येत=जायेत, तत्र=तादृशे घुणक्षतपीठफलकादौ न अवलम्बेत=अवष्टम्भनादिक्रियां नैव कुर्यात्, ततः=तस्माद् उत्थानोपवेशनपार्श्वपरिवर्तनादिका-

---

सकती हो ऐसे पीठ–फलकादिक को ही वह साधु अपने उपयोग में ला सकता है, इससे भिन्न कोलावासयुक्त सछिद्रको नहीं ॥१७॥

पूर्वोक्त प्रकारके पीठफलकादिक उपयोगमें क्यों नहीं लाना चाहिये? क्यों इनका परिहार करना चाहिये? इस विषयमें कारण बताते हुए सूत्रकार कहते हैं––'जओ' इत्यादि।

कोलावासयुक्त पीठ–फलकादिकको अपने उपयोग में लानेसे कठोर वज्रकी तरह ज्ञानावरणीयादिक कर्मोंका अथवा पापका उस साधुके बंध होता है, अर्थात्–घुने पीठ फलकादिकका सहारा लेने से साधु ज्ञानावरणीयादिक कर्मोंका अथवा पापोंका संचय करनेवाला होता है, इसलिये उसका उसे अवष्टंभ–सहारा आदि नहीं लेना चाहिये, एवं उत्थान,

---

પીઠ–ફલકાદિકને જ તે સાધુ પોતાના ઉપયોગમાં લઈ શકે છે. તેનાથી ભિન્ન એટલે કીડાએ પાડેલા છિદ્રવાળા નહીં. (૧૭)

કીડાએ પાડેલા છિદ્રવાળા લાકડાના પાટીયાનો ઉપયોગ પીઠ માટે કેમ ન લેવાય? એનો શા માટે પરિહાર કરવો જોઈએ? આ વિષયમાં કારણ બતાવતાં સૂત્રકાર કહે છે––'जओ' ઈત્યાદિ.

કીડાએ કોતરેલા કે તેમાં વાસ કરેલ પીઠ–ફલકાદિકને પોતાના ઉપયોગમાં લેવાથી વજ્રના જેવા કઠોર જ્ઞાનાવરણીયાદિક કર્મોનો, અથવા 'अवद्य'—પાપનો બંધ થાય છે. અંદરથી કોહાઈ ગયેલા એવા લાકડાના પીઠ–ફલકાદિકનો આશરો લેવાથી સાધુ જ્ઞાનાવરણીયાદિક કર્મોના અથવા પાપોના સંચય કરવાવાળા બને છે, આ માટે તેનો સહારો સાધુએ ન

ययोगाद् दुष्प्रणिहितवाग्योगादार्तध्यानादिमनोयोगाच्चावद्यप्रादुर्भावकारणाद् आत्मानम् उत्कर्षयेत्=पृथक् कुर्यात् निवर्तयेदित्यर्थः। तत्र=इङ्गितमरणे धृतिसंहननयुक्तोऽप्रतिकर्मदेहः वर्धिष्णुशुभाध्यवसायो वीतरागप्रोक्तपदार्थसार्थस्वरूपश्रद्धाप्ररूपणास्पर्शनाप्रतिनिविष्टचित्तः 'सर्पस्य कञ्चुक इव शरीरमिदं मम त्याज्य'-मित्येवं कृतनिश्चयः स भिक्षुः स्पर्शान्=सकलदुःखविशेषान् अध्यासयेत् 'एते च

उपवेशन और पार्श्वपरिवर्तन आदिकाययोगसे, अशुभ वचनयोगसे एवं आर्त्तध्यान आदि युक्त मनोयोग से जो पापोंकी उत्पत्ति के कारण हैं उनसे अपने को वह मुनि सर्वथा दूर रखे।

इस–इंगितमरण–में धृति एवं संहननसे युक्त साधु, कि जिसके शुभ अध्यवसाय वर्धनशील हैं और वीतराग प्रभु द्वारा प्ररूपित पदार्थों के स्वरूपकी श्रद्धा करने में, उनकी प्ररूपणा करनेमें और अन्तरंग भावसे उनकी स्पर्शना करनेमें जिसका चित्त लवलीन हो रहा है, जैसे सर्प अपनी कंचुकी (कांचली)को छोड दिया करता है–उसके परित्याग में उसे किसी भी तरह का संकोच या कष्ट नहीं होता है उसी तरह मुझे भी यह शरीर अवश्य छोडने योग्य है, इस प्रकार से जिसने दृढ निश्चय कर लिया है समस्त दुःखविशेषोंको सहन करता रहे। "ये सम्पूर्ण दुःखादिक पौद्गलिक शरीरके ही बाधा करते हैं, धर्मका अनुष्ठान करनेवाले ऐसे मेरा तो ये कुछ भी बिगाड नहीं कर सकते"

લેવો જોઈએ. ઉત્થાન, ઉપવેશન અને પાર્શ્વપરિવર્તન (પડખું ફેરવવું) વગેરે કાય યોગથી અશુભ વચન યોગથી તેમજ આર્ત્તધ્યાન વગેરે યુક્ત મનોયોગથી જે પાપોની ઉત્પત્તિનું કારણ છે તેનાથી મુનિ પોતાની જાતને સર્વથા દૂર રાખે.

એ ઇંગિત મરણમાં ધૃતિ અને સંહનનથી યુક્ત કે જેના શુભ અધ્યવસા વર્ધનશીલ છે. અને વીતરાગ પ્રભુદ્વારા પ્રરૂપિત પદાર્થોના સ્વરૂપની શ્રદ્ધા કરવામાં, તેની પ્રરૂપણા કરવામાં અને અન્તરંગ ભાવથી એની સ્પર્શના કરવામાં જેનું ચિત્ત લવલીન બની ગયેલ છે. જેમ સર્પ પોતાની કાંચળી છોડી દે છે–એના પરિત્યાગથી સાપને કોઇ તરેહનું સંકટ કે સંકોચ થતાં નથી. આજ રીતે મારે પણ આ શરીર અવશ્ય છોડવા યોગ્ય છે આ પ્રકારનો જેણે દૃઢ નિશ્ચય કરી લીધેલ છે તેવા મુનિ સમસ્ત દુઃખોને કોઇ પ્રકારના આક્રંદ વગર સહન કરતા રહે. "એ સંપૂર્ણ દુઃખાદિક પૌદ્ગલિક શરીરને જ બાધા કરે છે–ધર્મનું અનુષ્ઠાન કરવાવાળા મારા જેવાનું તો એ કાંઈ પણ બગાડી શકવાના

स्पर्शाः शरीरमेवाभिभवन्ति न तु मां धर्मानुष्ठायिन '-मिति विचिन्त्य सर्वदुःखवेदनासहनशीलो भवेदित्याशयः ॥ सू० ॥ १८ ॥

इङ्गितमरणाधिकारः प्रोक्तः, इदानीं पादपोपगमनमुपलक्ष्य दर्शयति-'अयं'इत्यादि।

मूलम्—**अयं चाययतरे सिया, जो एवमणुपालए ॥**

सव्वगायनिरोहेऽवि, ठाणाओ न विउब्भमे ॥ १९ ॥

छाया—अयं चायततरः स्याद् , य एवमनुपालयेत् ॥

सर्वगात्रनिरोधेऽपि, स्थानान्न व्युद्भ्रमेत् ॥१९॥

टीका-'अय'-मित्यादि, अयं च-चकारस्त्वर्थे, अनुपदवक्ष्यमाणः पादपोगमनविधिः, आयततरः=पूर्वोक्तभक्तपरिज्ञेङ्गितमरणापेक्षया श्रेष्ठतरः, स्यात्=भवेत्, अस्तीत्यर्थः एतस्मिन्नपि मरणे प्रव्रज्या-संलेखनादिकमिङ्गितमरणविधिवदेव सर्वं बोध्यम्। किमेतेन प्रकृते समायातमित्याह-'य एव'-मित्यादि, यः मुनिः, एवं=

इस प्रकार विचार कर वह आये हुए समस्त दुःखजन्यवेदनाओंको सहन करने का स्वभाववाला बने ॥१८॥

यहां तक इंगितमरणका अधिकार कहा। अब यहांसे आगे पादपोपगमन संथारेका प्रकरण प्रारंभ होता है--'अयं' इत्यादि।

इस सूत्रमें "च" यह शब्द "तु" के अर्थमें आया है। यह पादपोपगमन संथाराकी विधि, कि जो अभी कही जानेवाली है वह पूर्वमें कथित भक्तपरिज्ञा और इंगितमरणकी अपेक्षासे श्रेष्ठतर है। इस मरणमें भी प्रव्रज्याग्रहण, संलेखना आदिका धारण, यह सब विधि इंगितमरणकी विधिकी तरह ही समझना चाहिये। इस कथन से प्रकृत कथनमें क्या बात आई? इसका उत्तर देते हुए सूत्रकार कहते हैं कि-

---

નથી." આ પ્રકારનો વિચાર કરી તે આવેલી સમસ્ત દુઃખજન્ય વેદનાઓને સહન કરવાના સ્વભાવવાળા બને. (૧૮)

અહિં સુધી ઇંગિત મરણનો અધિકાર કહ્યો, હવે આગળ પાદપોપગમન સંથારાના પ્રકરણનો પ્રારંભ થાય છે—'अयं' ઈત્યાદિ.

આ સૂત્રમાં "च" એ શબ્દ "तु" ના અર્થમાં આવેલ છે. એ પાદપોપગમન સંથારાની વિધિ કે જે હવે કહેવામાં આવશે તે અગાઉ કહેવામાં આવેલ ભકતપરિજ્ઞા અને ઇંગિતમરણની અપેક્ષાથી શ્રેષ્ઠતર છે. એ મરણમાં પણ પ્રવ્રજ્યાગ્રહણ, સંલેખના વગેરેનું ધારણ, આ બધી વિધિ ઇંગિતમરણની વિધિની માફકજ સમજવી. આ કથનથી પ્રકૃત કથનમાં કઈ વાત આવી? આનો ઉત્તર આપતાં સૂત્રકાર કહે છે કે-જે મુનિ અગાઉની વિધિ પ્રમાણે પાદપોપ-

पूर्वोक्तविधिना पादपोपगमनविधिम् अनुपालयेत् स मुनिः सर्वगात्रनिरोधेऽपि=सकलशरीरव्यापारनिरोधेऽपि उत्तप्यमानशरीरो मूर्च्छन् शृगाल-गृध्र-पिपीलिकादिभिर्भक्ष्यमाणमांसशोणितः मारणान्तिकसमुद्घातप्राप्तो वा महासत्त्वतया तेनापि ततोऽप्यस्खलन् स्थानात्=द्रव्यतः-संस्तारकस्थानात् , भावतः-शुभाध्यवसायात् नापि=नैव व्युद्भ्रमेत्=चलेत्, शृगालादिभक्षितमांसशोणितोऽपि तस्मात्स्थानादन्यत्र नैव गच्छेदिति तात्पर्यम् ॥१९॥

पादपोपगमनस्योत्तमत्वं प्रदर्शयन् तद्विधिमाह-'अयं' इत्यादि ।

मूलम्—अयं से उत्तमे धम्मे, पुव्वट्ठाणस्स पग्गहे ॥
अचिरं पडिलेहित्ता, विहरे चिट्ठ माहणे ॥ २० ॥

छाया—स उत्तमो धर्मः, पूर्वस्थानस्य प्रग्रहः ॥
अचिरं प्रत्युपेक्ष्य, विहरेत्तिष्ठेन्माहनः ॥२०॥

जो मुनि पूर्वोक्त विधिके अनुसार पादपोपगमनकी विधिका पालन करता है वह मुनि शारीरिक समस्त व्यापारोंके निरोधमें भी शृगाल पिपीलिका और गृध्र आदि मांसशोणितभक्षी जीवों द्वारा अपने शरीरका मांस और शोणित खाये जाने पर भी चलितशरीर नहीं होता है। शरीरमें जरा भी कष्टका अनुभव नहीं करता है। अथवा मरणान्तिकसमुद्घात प्राप्त यह भिक्षु महासत्त्व-बलविशिष्ट होनेसे ऐसी हालतमें भी उससे अचलित होता हुआ द्रव्यसे संस्तारक-स्थान से और भावसे-शुभ अध्यवसाय से विचलित नहीं होता है, अर्थात् शृगाल आदि द्वारा अपने शरीर का मांस शोणित खाये जानेपर भी यह भिक्षु समाधिस्थान से दूसरी जगह नहीं जाता ॥१९॥

पादपोपगमन में उत्तमता दिखलाते हुए सूत्रकार उसकी विधिका प्रदर्शन करते हैं-'अयं से' इत्यादि।

ગમનની વિધિનું પાલન કરે છે તે મુનિ પોતાના શરીરના મોહથી તદ્દન વિરકત બની સિંહ, વાઘ, શીયાળ વગેરે માંસરકતભક્ષક જીવો દ્વારા પોતાના શરીરનું માંસ અને લોહી ખવાતા છતાં પણ ચલિત બનતા નથી-જરા પણ કષ્ટનો અનુભવ કરતા નથી, અને મૃત્યુ આવતાં સુધી પણ તે ભિક્ષુ મહાસત્ત્વ-બલવિશિષ્ટ હોવાથી એવી હાલતમાં પણ એથી અચલિત બની દ્રવ્યથી સંથારાના સ્થાનથી અને ભાવથી શુભ અધ્યવસાયથી ચલિત થતા નથી. અર્થાત્-શીયાળ વગેરે દ્વારા પોતાના શરીરના માંસ-લોહી ખવાયા છતાં પણ તે ભિક્ષુ સમાધિ સ્થાનથી બીજા સ્થળે જતા નથી. (૧૯)

પાદપોપગમનમાં ઉત્તમતા બતાવતાં સૂત્રકાર એની વિધિ કહે છે-'અયં સે' ઇત્યાદિ.

टीका—'अय'-मित्यादि, अयं प्रत्यक्षनिर्दिष्टः पादपोपगमनमरणविधिः सः धर्मः, यतः 'पूर्वस्थानस्य' इति पञ्चम्यर्थे षष्ठी, तेन-पूर्वस्थानात्=भक्तपरिज्ञेङ्गित-मरणरूपात् प्रग्रहः=श्रेष्ठः, अत एव स उत्तमो धर्मोऽस्ति। इङ्गितमरणे कायपरिपालनानुमतिरभिहिता, अत्र च तत्परिस्पन्दनमपि न कर्तव्यम्। छिन्नमूलपादपो यथा चेष्टावर्जितः क्रियावर्जितो दह्यमानश्छिद्यमानो विषमपतितः समपतितोऽपि वा यथैवावतिष्ठते न तु तस्मात् स्थानात् स्थानान्तरं गच्छति, तथैव मुनिरपि संति-

यह प्रत्यक्षनिर्दिष्ट पादपोगमन मरणकी विधि पूर्वमें प्रतिपादित भक्त परिज्ञा और इंगितमरणरूप पूर्वस्थान से श्रेष्ठ है, इसलिये यह उत्तम धर्म है। इंगितमरण में शरीरका परिपालन और उसमें अनुमति कही गई है। अथवा इंगितमरण पालनेवाला साधु अपने शरीरकी पालनानिमित्त दूसरे साधुओंको अनुमति दे सकता है, परन्तु इस मरणमें तो वह मरणकर्त्ता साधु अपने शरीरका परिस्पन्दन-हलन-चलनरूप क्रियाका भी सर्वथा परित्यागी हो जाता है। जिसका मूल छिन्न है, ऐसा उखड़ा हुआ वृक्ष जिस प्रकार स्वयं चेष्टासे रहित होता है-क्रियासे शून्य बन जाता है, चाहे वह काट दिया जाय, चाहे वह जला दिया जाय, चाहे समस्थान पर पडे अथवा विषमस्थानपर पड़े कहीं भी पडे जैसाका तैसा पड़ा रहता है, निश्चेष्ट रहता है-उस स्थानसे एक रत्तीभर भी आगे नहीं चलता है, इसी प्रकार इस मरणका धारक मुनि भी माना गया है-यह भी देहाश्रित समस्त क्रियाओंसे शून्य रहता है। इसी विषयको सूत्रकार स्पष्ट करते

આ પાદપોપગમન મરણની વિધિ પ્રથમ કહેવાયેલ ભકતપરિજ્ઞા અને ઇંગિત મરણથી શ્રેષ્ઠ છે, આ કારણે તે ઉત્તમ ધર્મ છે. ઇંગિતમરણમાં શરીરનું પરિપાલન કરવાની અનુમતિ અપાયેલ છે. અથવા-ઇંગિતમરણ પાળવાવાળા સાધુ પોતાના શરીરની પાલનાનિમિત્ત બીજા સાધુઓને અનુમતિ આપી શકે છે, પરંતુ આ મરણમાં તો મરણ સ્વીકારનાર સાધુ પોતાના શરીરના પરિસ્પંદ-હલન-ચલનરૂપ ક્રિયાનો પણ સંપૂર્ણ પણે પરિત્યાગી બની જાય છે. જેનાં મુળ તુટી ગયાં એવું ઉખડી ગયેલું વૃક્ષ જે રીતે સ્વયં ચેષ્ટાથી રહિત બને છે -ક્રિયાથી શૂન્ય થઈ જાય છે.-ચાહે તેને કાપી નાખવામાં આવે ચાહે બાળી નાખવામાં આવે, ચાહે સમસ્થાન પર પડે-ચાહે વિષમસ્થાન પર પડે, ગમે ત્યાં પડે જેમને તેમ પડી રહે છે, નિશ્ચેષ્ટ રહે છે-જે સ્થાને પડયું હોય ત્યાંથી એક દોરો પણ આગળ વધી શકતું નથી. આજ પ્રમાણે આ મરણને ધારણ કરનાર મુનિ માનવામાં આવેલ છે. એ દેહાશ્રિત સમસ્ત ક્રિયાઓથી શૂન્ય રહે છે, આ વિષયને

ष्ठेत । एतदेव स्पष्टयति-'अचिर'-मित्यादि, माहनः=मुनिः अचिरं=शीघ्रं प्रत्युपेक्ष्य=तत्स्थानं प्रतिलिख्य तत्र विहरेत्=पादपोपगमनमाचरेत् । पादपोपगमनप्रसङ्गेन तत्र विहारस्तद्विधिपरिपालनरूपः कथितः । अथ स्थानान्तरगमनं निषेधयितुमाह-'तिष्ठे'-दिति, सर्वगात्रनिरोधेऽपि स्थानान्तरगमनान्निवृत्तः सन् छिन्नपादपवत् तिष्ठेत् ॥२०॥

किञ्च—'अचित्तं' इत्यादि।

मूलम्—**अचित्तं तु समासज्ज, ठावए तत्थ अप्पगं ॥**
वोसिरे सव्वसो कायं, न मे देहे परीसहा ॥ २१ ॥

छाया—अचित्तं तु समासाद्य, स्थापयेत्तत्राल्पकम् ॥
व्युत्सृजेत्सर्वशः कायं, न मे देहे परीषहाः ॥२१॥

हैं-इस मरणको धारण करनेकी भावनावाला मुनि शीघ्र उस स्थानकी प्रतिलेखना कर पादपोपगमन संथारा धारण करे। "विहरेत्" यह क्रियापद पादपोपगमनके प्रकरणके संबंधसे उसकी विधिका परिपालन करनेरूप विहारका कथन करता है, अर्थात् मुनि पादपोपगमन संथारेका धारण उसकी विधिके अनुसार ही करे। इस संथारेमें मुनि एकस्थान से दूसरे स्थानमें नहीं जा सकता है, इस बातको सूत्रकार "चिट्ठ माहणे" इस सूत्रांशसे प्रदर्शित करते हैं, वह मुनि समस्त शारीरिक क्रियाओंके निरोध होनेसे छिन्नवृक्षकी तरह एक जगहसे दूसरी जगह जानेरूप क्रियाका सर्वथा परिहारी होता है ॥२०॥

और भी-'अचित्तं तु' इत्यादि ।

સૂત્રકાર સ્પષ્ટ કરે છે—આવા મરણને ધારણ કરવાની ભાવનાવાળા મુનિ તાત્કાલિક એ સ્થાનની પ્રતિલેખના કરી પાદપોપગમન સંથારો ધારણ કરે. 'विहरेत्' આ ક્રિયાપદ પાદપોગમન પ્રકરણના સંબંધથી એની વિધિનું પરિપાલન કરવારૂપ વિહારનું કથન કરે છે. અર્થાત્-મુનિ પાદપોગમન સંથારો એની વિધિ અનુસાર જ ધારણ કરે. આ સંથારામાં મુનિ એક સ્થાનથી બીજા સ્થાન ઉપર જઈ શકતા નથી આ વાતને સૂત્રકાર "चिट्ठ माहणे" આ સૂત્રાંશથી પ્રદર્શિત કરે છે. તે મુનિ સમસ્ત શારીરિક ક્રિયાઓનો નિરોધ હોવાથી પડેલા વૃક્ષની માફક એક જગ્યાથી બીજી જગ્યાએ જવા રૂપ ક્રિયાના સર્વથા પરિહારી હોય છે. (૨૦)

ફરી પણ—'अचित्तं तु' ઈત્યાદિ.

टीका—'अचित्त'-मित्यादि, स मुनिः, अचित्तम्=प्राणिशून्यं प्रासुकं स्थण्डिलं समासाद्य=प्राप्य तत्र=स्थण्डिले आत्मकं=स्वात्मानं स्थापयेत् । तत्र स्थितः परिहृतचतुर्विधाहारो गिरिरिवाऽप्रचलितो विहितप्रत्युपेक्षणादिपरिकर्मा सन् सर्वशः=सर्वभावेन कायं शरीरममत्वं व्युत्सृजेत्=परित्यजेत् । यदि तं शरीरपरीषहोपसर्गा अभिभवेयुस्तदा स चेतस्येवं चिन्तयेदित्याह-'न मे' इत्यादिना, मे=मम देहे=शरीरे परीषहाः तत्र समुत्पन्नाः-अनुकूल-प्रतिकूला न सन्ति, यतो देहोऽपि मदीयो नास्ति कथं तत्सम्बन्धिनः परीषहा मामभिभवेयुः, तद्विहितवेदनाया अननुभवादित्याशयः ॥२१॥

वह मुनि प्राणिशून्य-प्रासुक स्थण्डिल-स्थान प्राप्तकर वहां अपनेको स्थापित करे, अर्थात् वहां ठहर जावे। चतुर्विध आहारका परित्यागी एवं पर्वतके समान अचल वह साधु उस भूमिका संमार्जन आदि परिकर्म कर उस पर अपना घासका संथारा करे, इत्यादि समस्त पूर्वोक्त विधि कर वह साधु सर्वभावसे शरीरका ममत्व छोड देवे। उस समय यदि उसे परीषह और उपसर्ग उपद्रवित करते हैं, तो वह उन सबको, चित्तमें इस प्रकारके विचारसे सहन करे कि "देहे परीषहाः" ये अनुकूल और प्रतिकूल परीषह आदि देहमें हैं "न मे" मेरी आत्मामें नहीं हैं, जब देह हीं मेरा नही है तो फिर उस संबंधी ये परीषह आदि मुझे दुःखित या उपद्रवित भी कैसे कर सकने हैं? क्यों कि इनसे उत्पन्न वेदनाका मुझे तो कोई अनुभव ही नहीं होता है ॥२१॥

તે મુનિ પ્રાણિશૂન્ય-પ્રાસુક સ્થંડિલ-સ્થાન પ્રાપ્ત કરી ત્યાં પોતાને સ્થાપિત કરે, અર્થાત્ ત્યાં રોકાઇ જાય. ચાર પ્રકારના આહારના પરિત્યાગી અને પર્વત સમાન અચલ તે સાધુએ ભૂમિ સાફસૂફ કરી એના ઉપર ઘાસનો સંથારો કરે, આ રીતે બધી વિધિ પૂર્ણ કર્યા પછી તે સાધુ સર્વભાવથી શરીરનું મમત્વ છોડી દે. એ સમયે કદાચ તેને પરિષહ અને ઉપસર્ગ ઉપદ્રવ કરે તો તેને ચિત્તમાં આ પ્રકારના વિચારથી સહન કરે કે 'देहे परिषहा' એ અનુકૂળ અને પ્રતિકૂળ પરિષહ વગેરે દેહમાં છે. "न मे" મારી આત્મામાં નથી, જ્યારે આ દેહ જ મારો નથી તો પછી તે સંબંધી આ પરિષહ વગેરે મને ઉપદ્રવિત અથવા દુઃખી પણ કેમ કરી શકે? કેમકે આનાથી ઉત્પન્ન વેદનાનો મને તો કોઈ અનુભવ જ નથી થતો. (૨૧)

ते परीषहाः कियत्कालमध्यासनीयाः? इति शिष्यजिज्ञासायामाह-'जावज्जीवं' इत्यादि ।

मूलम्—**जावज्जीवं परीसहा, उवसग्गा इति संखया ॥**
संवुडे देहभेयाए, इयपन्नेऽहियासए ॥ २२ ॥

छाया—यावज्जीवं परीषहा,-उपसर्गा इति संख्याय ॥
संवृतो देहभेदाय, इतिप्रज्ञोऽध्यासयेत् ॥२२॥

टीका--'यावज्जीव'-मित्यादि, परीषहा उपसर्गाश्च यावज्जीवं=जीवनपर्यन्तं यथा स्यात्तथा सहनीयाः सन्ति, इति=एवं संख्याय=निश्चित्य स मुनिः देहभेदाय =कायपरित्यागार्थं संवृतः=कायादिसकलव्यापारनिवृत्तः इतिप्रज्ञः=पादपोपगमनसमुचितविधिपरिज्ञानकुशलः,अध्यासयेत्=सर्वं परीषहोपसर्गादिकमुपनतमधिसहेत॥२२॥

एतादृशं भिक्षुमुपलक्ष्य राजादिस्तं यदि निमन्त्रयेत्तन्निषेधायाह-' भेउरेसु ' इत्यादि ।

साधुको ये परीषह कितने समय तक सहन करना चाहिये ? इस प्रकारकी जिज्ञासामें सूत्रकार कहते हैं-" जावज्जीवं " इत्यादि ।

" जिस तरहसे बने उस तरहसे परीषह और उपसर्ग साधुको जीवनपर्यन्त सहन करनेयोग्य हैं " ऐसा विचार कर मुनि शरीरको छोड़नेके लिये कायादिके सकल व्यापारोंसे निवृत्त होता हुआ, तथा पादपोपगमन संथारेकी उचित विधिके परिज्ञानमें कुशल बना हुआ आये हुए परीषह और उपसर्गादिकोंको सहन करे ॥ २२ ॥

ऐसे विशिष्ट तपस्वी मुनिको देख कर यदि राजा वगैरह उसे आमंत्रित करे तो इसके निषेधके लिये कहते हैं-' भेउरेसु ' इत्यादि ।

સાધુએ આવા પરિષહ કેટલા સમય સુધી સહન કરવા જોઈએ? આ પ્રકારની જીજ્ઞાસામાં સૂત્રકાર કહે છે—' जावज्जीवं ' ઈત્યાદિ.

" જ્યાંસુધી જીવે ત્યાંસુધી પરિષહ અને ઉપસર્ગ સાધુએ જેમ બને તેમ સહન કરવા જરૂરી છે " આવો વિચાર કરી તે મુનિ શરીરને છોડવા માટે કાયાદિકના દરેક વ્યવસાયોથી નિવૃત્ત થતા, અને પાદપોપગમન સંથારાની ઉચિત વિધિના પરિજ્ઞાનમાં જ લવલીન બનતા જે કાંઇ પરિષહ અને ઉપસર્ગાદિક આવે તેને સહન કરે. (૨૨)

એવા વિશિષ્ટ તપસ્વી મુનિને જોઇ કદાચ રાજા વગેરે એને આમંત્રણ આપે તો એના નિષેધ માટે સૂત્રકાર કહે છે—' भेउरेसु ' ઈત્યાદિ.

मूलम्—भेउरेसु न रज्जिज्जा, कामेसु बहुतरेसु वि ॥
इच्छालोभं न सेविज्जा, धुववन्नं सपेहिया ॥ २३ ॥

छाया—भिदुरेषु न रज्येत, कामेषु बहुतरेष्वपि ॥
इच्छालोभं न सेवेत, ध्रुववर्णं संप्रेक्ष्य ॥२३॥

टीका—'भिदुरेष्वि'-त्यादि, स भिक्षुः=कर्मनिर्जरणपरः बहुतरेष्वपि=बहुविधेष्वपि भिदुरेषु=क्षणभङ्गुरेषु कामेषु=शब्दादिकामगुणेषु न रज्येत=न रागमुपगच्छेत्, राजा राजर्द्धिमदानेनापि यद्युपनिमन्त्र्य प्रलोभयेत्तथाऽपि तत्र न संमूर्च्छितो भवेदित्यभिप्रायः। किं च—स ध्रुववर्णं,=ध्रुवश्च=शाश्वतश्चाऽसौ वर्णः=संयमो मोक्षो वा ध्रुवर्णस्तं मोक्षं तत्साधनं च संप्रेक्ष्य=समालोच्य इच्छालोभम्=इच्छापूर्वश्चासौ लोभः=इच्छालोभस्तम् इन्द्रादिसमृद्धिप्राप्त्यभिलाषं न सेवेत="इहलोगासंसप्पओगे १ परलोगासंसप्पओगे २ जीवियासंसप्पओगे मरणासंसप्पओगे ४ कामभोगासंसप्पओगे ५" इत्यादिभगवद्वचनादिहलोकपरलोकादिवाञ्छां निषेधयेदित्याशयः ॥ २३ ॥

कर्मोंकी निर्जरा करनेमें तत्पर वह भिक्षु अनेक प्रकारके भी क्षणभंगुर ऐसे शब्दादिक कामगुणों में रागी न बने, अतः कोई राजा उस मुनिको राजऋद्धिके प्रदान करनेका प्रलोभन देकर भी यदि अपने यहां आमंत्रित करता है तो भी वह मुनि उसमें मूर्च्छित न बने। संयम अथवा मोक्षरूप ध्रुववर्णका एवं उसके साधनोंका विचार कर वह इच्छारूप लोभ-इन्द्रादिककी ऋद्धिकी प्राप्तिरूप अभिलाषा—का सेवन न करे-उसके वशवर्त्ती न बने। अपि तु—"इह लोगासंसप्पओगे १, परलोगासंसप्पओगे२, जीवियासंसप्पओगे३, मरणासंसप्पओगे४, कामभोगासंसप्पओगे५" इत्यादि भगवान्के वचनसे इस लोक और परलोक आदिकी वाञ्छाका सूत्रकारने उसके लिये निषेध किया है, अर्थात् वह परलोक आदिकी कभी भी वाञ्छा न करे ॥ २३ ॥

કર્મોની નિર્જરા કરવામાં તત્પર એવા તે ભિક્ષુ અનેક પ્રકારના ક્ષણભંગુર એવા શબ્દોની જાળમાં ન ફસાય. કદાચ રાજા તે સાધુને રાજઋદ્ધિનું પદ આપવાનું પ્રલોભન આપી આમંત્રણ આપે તો પણ તે સાધુ આવા પ્રલોભનમાં ન ફસાય. સંયમદ્વારા મોક્ષરૂપ ધ્રુવવર્ણનો અને તેના સાધનોનો વિચાર કરી ઈચ્છારૂપી લોભ–ઈન્દ્રાદિકની ઋદ્ધિની પ્રાપ્તિરૂપ અભિલાષા–નું સેવન ન કરે–એનાથી ન લલચાય, અપિતુ—"ઈહલોગાસંસપ્પઓગે ૧, પરલોગાસંસપ્પઓગે૨, જીવિયાસંસપ્પઓગે ૩, મરણાસંસપ્પઓગે ૪, કામભોગાસંસપ્પઓગે૫" ઇત્યાદિ ભગવાનના વચનથી આ લોક અને પરલોક આદિની વાંચ્છનાનો સૂત્રકારે એને નિષેધ કરેલ છે, અર્થાત્ તે પરલોક આદિની પણ કદી ઈચ્છા ન કરે. (૨૩)

किं चान्यदप्याह–'सासएहिं' इत्यादि ।

मूलम्–सासएहिं निमंतिज्जा, दिव्वमायं न सद्दहे ॥
तं पडिबुज्झ माहणे, सव्वं नूमं विहूणिया ॥२४॥

छाया––शाश्वतैर्निमन्त्रयेद् , दिव्यमायां न श्रद्धीत ॥
तत्प्रतिबुद्धयस्व माहनः, सर्वं नूमं विधूय ॥ २४ ॥

टीका–'शाश्वतै'–रित्यादि, यदि राजादिस्तं भिक्षुं शाश्वतैः=यावज्जीवनयात्रायापनयोग्यैः, बहुदानादिनाऽप्यपरिहीयमाणैरर्थैर्निमन्त्रयेत् एवं देवादिस्तपः खण्डयितुं कौतूहलादिना, विरोधेच्छया दिव्यर्द्धिप्रलोभनेन वा निमन्त्रयेत्तदा तां दिव्यमायां देवादिविहितप्रपञ्चरूपां स न श्रद्धीत=न तत्र श्रद्धां कुर्यात्, तत्र गृद्धो भूत्वा न तपः खण्डयेदित्यभिप्रायः । 'यदर्थं धनादिकमन्विष्यते तत् शरीरमेवाऽशाश्वतम्' इति

और भी सूत्रकार प्रकट करते हैं–'सासएहिं' इत्यादि ।

यदि राजा आदि उस भिक्षुके लिये उसके जीवनपर्यन्त, कि जिससे उसकी जीवनयात्राका निर्वाह अच्छी तरहसे हो सके, तथा जो दान करने पर भी कभी कम न हो सके इतने द्रव्य देनेका प्रलोभन दे कर उसे आमंत्रित करे, अथवा कोई देव आदि उसके तपको खंडित करनेके लिये कौतूहल से, विरोध की इच्छासे, अथवा दिव्य–ऋद्धिके प्रलोभनसे उसे आमंत्रित करे तो वह मुनि उस राजप्रदत्त प्रलोभनको एवं देवादिकृत प्रपंचरूप उस दिव्य चमत्कारको श्रद्धाकी दृष्टिसे न देखे । उसमें लुब्ध बन कर वह अपने तपको खण्डित न करे । इस प्रकार विचार कर हे माहन! हे श्रमण ! तुम समस्त अष्ट कर्मों के दूर करनेमें, उस शाश्वत–यावज्जीव टिकनेवाले अर्थको एवं दिव्य मायाको

વધુમાં આ સૂત્રકાર પ્રગટ કરે છે—'सासएहिं' ઇત્યાદિ.

કોઈ રાજા વગેરે એ ભિક્ષુ માટે એના જીવનપર્યંતની જેનાથી એની જીવન યાત્રાનો નિર્વાહ સારી રીતે થઈ શકે, તથા દાન કરવા છતાં પણ જે કદી ઓછું ન થઈ શકે એટલું દ્રવ્ય દેવાનું પ્રલોભન દઇ એને આમંત્રિત કરે, અથવા કોઈ દેવ વગેરે એના તપને ખંડિત કરવા માટે કુતુહલથી, વિરોધની ઇચ્છાથી અથવા દિવ્ય રિદ્ધિના પ્રલોભનથી એને આમંત્રણ આપે ત્યારે એ મુનિ આવા રાજ તરફના પ્રલોભનને, તથા દેવ આદિના પ્રપંચરૂપ એવા દિવ્ય ચમત્કારને શ્રદ્ધાની દ્રષ્ટીથી ન જુએ, એમાં લોલુપ બની તે પોતાના તપને ખંડિત ન કરે. આ પ્રકારનો વિચાર કરી હે માહન ! –હે શ્રમણ ! તમે સમસ્ત આઠ કર્મોને દૂર કરવામાં તે શાશ્વત જાવજીવ ટકનાર અર્થને અને દિવ્યમાયાને અનર્થકારક સમજો.

विचार्य 'माहणे' माहनः 'मा हण मा हण' इत्युपदेशदायको मुनिः तत्=राजादिनिमन्त्रितमर्थं देवर्द्धिं च प्रतिबुध्य=आत्मकल्याणप्रतिकूलतया विज्ञाय 'सव्वं नूमं' सर्वं नूमं=ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्म 'विहूणिया' विधूनयेत्=सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्रेण दूरीकुर्यात् । 'कर्मनिर्जरार्थमहं निष्क्रान्तः' इति विचार्य मुनिः कर्मबन्धनहेतुं राजादिनिमन्त्रितमर्थादिकं ज्ञ-परिज्ञया परिज्ञाय प्रत्याख्यान-परिज्ञया परिहरेत्, न तु तत्र रज्येदिति भावः । यद्वा-'पडिबुज्झ' 'विहूणिया' इत्यनयोः-'प्रतिबुध्यस्व' 'विधूय' इतिच्छाया, तत्पक्षे-हे माहन=हे मुने ! इदं 'सव्वं नूमं' सर्वं प्रपञ्चं विधूय-निःशेषतः परित्यज्य 'तं' तत्=आत्मकल्याणहेतुं रत्नत्रयं प्रतिबुध्यस्व=विजानीहि, तत्समाराधने तत्परो भवेदिति भावः ॥ २४ ॥

अन्यदप्याह--'सव्वट्ठेहिं' इत्यादि ।

अनर्थकर समझो । तात्पर्य यह कि-शाश्वत अर्थ देनेका प्रलोभन देकर निमंत्रण-बुलानेकी प्रेरणा-करे उसमें, अथवा देवादिकोंकी मायामें प्रीति एवं श्रद्धारहित हुआ मुनि 'यह समस्त, मोक्ष और उसके साधनोंसे प्रतिकूल है ' ऐसा विचार कर उस शाश्वत अर्थमें एवं दिव्य मायामें मूर्च्छित न बने। दिव्य मायाका निरीक्षणकर वह मुनि अपने चित्तमें इस प्रकारसे विचार करे-"यह सब मेरी तपस्याके प्रतिकूल है, और मेरे तपका खण्डन करनेके लिये यह सब आयोजन किया गया है। यदि ऐसी बात न हो तो पुरुषोंको दुर्लभ यह बहुत प्रकारका वित्त-द्रव्य ऐसे क्षेत्र, काल, और भाव आदिमें कैसे सुलभ हो सकता है । इस लिये मालूम होता है कि यह समस्त मृगतृष्णारूप ही है-आभास मात्र है अर्थात् मूलमें कुछ मिलता जुलता नहीं है " ॥ २४ ॥

और भी सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं-'सव्वट्ठेहिं ' इत्यादि ।

તાત્પર્ય એ છે કે-રાજમાં ઉંચી પદવી આપી અર્થ લોભનું પ્રલોભન દઇ નિમંત્રણ કરે, તેમાં અથવા દેવાદિકની માયામાં પ્રીતિ અને શ્રદ્ધા ન રાખનાર મુનિ "આ બધું મોક્ષ તથા એનાં સાધનોથી વિરૂદ્ધનું છે" એવો વિચાર કરીને એવા અર્થલોભ અને દિવ્ય માયાના પ્રલોભનમાં ન ફસાય. દિવ્ય માયાનું નિરીક્ષણ કરી તે મુનિ પોતાના મનમાં એ પ્રકારનો વિચાર કરે કે આ બધું મારી તપસ્યાથી પ્રતિકૂળ છે, અને મારા તપનું ખંડન કરાવવા માટે આ માયાજાળ ઉભી કરાઈ રહેલ છે, જો એમ ન હોય તો એક સાથે આટલું બધું કઈ રીતે બની શકે? આથી ચોકસ છે કે આ બધું મૃગજળસમાન છે-આભાસમાત્ર છે-વાસ્તવમાં કાંઈ પણ નથી. (૨૪)

વધુમાં સૂત્રકાર પ્રદર્શિત કરે છે—'सव्वट्ठेहिं' ઇત્યાદિ.

मूलम्—सव्वट्ठेहिं अमुच्छिए, आउकालस्स पारए ॥
तितिक्खं परमं नच्चा, विमोहन्नयरं हियं ॥ २५ ॥

छाया—सर्वार्थैरमूर्च्छितः, आयुःकालस्य पारगः ॥
तितिक्षां परमं ज्ञात्वा, विमोहान्यतरं हितम् ॥ २५ ॥

टीका—'सर्वार्थै'-रित्यादि, स सर्वार्थैः-सर्वे च तेऽर्थाः सर्वार्थास्तैः सर्वार्थैः पञ्चविधैः शब्दादिकामगुणैस्तत्साधकधनसमूहैर्वा अमूर्च्छितः=अगृद्धः, आयुःकालस्य=यावत्कालमायुः संतिष्ठते स आयुःकालस्तस्य 'पारगः'-पारम्= आयुष्कपुद्गलानां यावन्नाशं गच्छतीति पारगः=पूर्वोक्तविधिना पादपोपगमनपरः परिवर्द्धितकल्याणाध्यवसायवान् निजायुःकालस्यान्तगामी स्यात् । इत्थं पादपोपगमनप्रकारमभिसमाप्य साम्प्रतं सकलमरणानां क्षेत्र-काल-पुरुषावस्था-भेदात् समानतामुपसंहरन्नाह-' तितिक्षा '-मित्यादि, सः सर्वस्मिन्नपि पूर्वोक्तमरणप्रकारे ति-

समस्त अर्थस्वरूप पांच इन्द्रियों के पांच प्रकारके शब्दादिक कामगुणोंसे, अथवा उनके साधक द्रव्यसमुदायसे अमूर्च्छित, एवं अपनी आयुके समयका पारगामी, जितने काल तक आयु रहती है वह आयुकाल है, तथा आयुके पुद्गलोंके विनाशका नाम पार है। पूर्वोक्त विधि से पादपोपगमनमें तत्पर तथा परिवर्द्धित कल्याणके अध्यवसायवाला मुनि अपनी आयुके कालका अन्तगामी होता है। इस प्रकार सूत्रकार पादपोपगमन संथारेका कथन कर अब समस्त मरणों में क्षेत्र, काल और पुरुष अवस्थाके भेदसे समानता का उपसंहार करते हुए 'तितिक्खं' इत्यादि सूत्रांश कहते हैं—वह मुनि पूर्वोक्त इन भक्तपरिज्ञा आदि मरणोंके प्रकार-भेदमें अनुकूल और प्रतिकूल परीषह एवं उपसर्गों से

સમસ્ત અર્થસ્વરૂપ પાંચ ઇન્દ્રિયોના પાંચ પ્રકારના શબ્દાદિક કામગુણોથી, અથવા એના સાધક દ્રવ્યસમુદાયથી વિરક્ત, અને પોતાની આયુના સમયને જાણનાર, જેટલા કાળ સુધી આયુ રહે છે તે આયુકાળ છે અને આયુના પુદ્ગલોના વિનાશનું નામ પાર છે. આગળ કહેવામાં આવેલ વિધિથી પાદપોપગમનમાં તત્પર, તથા પરિવર્દ્ધિત કલ્યાણના અધ્યવસાયવાળા મુનિ પોતાના અંતકાળના જાણકાર હોય છે. આ પ્રકારે પાદપોપગમન સંથારાનું કથન કરી સૂત્રકાર હવે સમસ્ત મરણોમાં ક્ષેત્ર, કાળ અને પુરૂષ-અવસ્થાના ભેદથી સમાનતાનો ઉપસંહાર કરતાં "तितिक्खं" ઇત્યાદિ સૂત્રાંશ કહે છે-તે મુનિ આગળ કહેવામાં આવેલ ભકતપરિજ્ઞા આદિ મરણોના પ્રકાર-ભેદમાં અનુકૂળ અને

तिक्षाम्=अनुकूल-प्रतिकूल-परीषहोपसर्गाभिभवजन्यदुःखसहनरूपां परमम्=उत्कृष्टं यथा स्यात्तथा ज्ञात्वा ' विमोहान्यतरं ' विगतो मोहोऽज्ञानं येषु तानि विमोहानि, तेषां=पूर्वोक्तानां भक्तपरिज्ञेङ्गितमरणपादपोपगमनानाम् अन्यतरत्=त्रयाणामन्यतमं किमप्येकं हितं=कर्मनिर्जरायाः सर्वत्र समसम्पादकतया सम्यगिष्टं विदधीत । ' इति ब्रवीमी '-त्यस्यार्थस्तु प्रथमाध्ययनोक्तप्रकारेणाऽवगन्तव्य इति ॥ सू० २५ ॥

अध्ययनविषयोपसंहारः—

अस्मिन्नध्ययने लसन्ति च विमोक्षाख्याष्टमे येऽखिला-
स्ते सूच्यन्त इमे क्रमेण विषयाः संक्षेपतस्तान् शृणु ॥
उद्देशे प्रथमे न्यरूपि विरहः पाषण्डिकैः सङ्गते-
स्तेषां सम्मतिहानपूर्वकमथ त्यागस्तपो विद्विषाम् ॥ १ ॥

उत्पन्न दुःखोंको सहन करनेरूप तितिक्षाको सर्वोत्तम जानकर पूर्वोक्त इन भक्तपरिज्ञा, इङ्गितमरण, और पादपोपगमन, इन तीनोंमें से किसी एक को हितकारी समझ कर धारण करे । इन तीनोंमें कर्मोंको निर्जरा सर्वत्र एकसी है । " इति ब्रवीमि " इन पदोंका अर्थ प्रथम अध्ययनमें कथित प्रकारसे जान लेना चाहिये ॥२५॥

इस अध्ययनके विषयोंका उपसंहार पद्योंसे करते हैं—

इस विमोक्ष अध्ययन बीचमें आठ बड़े उद्देश दिये ।
उनमें वर्णित विषयोंका हम थोडेमें वर्णन किये ॥
प्रथम उद्देशमें—पहिले-में पाखंडी जनकी संगतिका परिहार कहा,
उन्हें न संमति देना कुछ भी तप भी उनका हेय कहा ॥ १ ॥

પ્રતિકૂળ પરીષહ અને ઉપસર્ગોથી આવેલા દુઃખોને સહન કરવારૂપ તિતિક્ષાને સર્વોત્તમ જાણી અગાઉ કહેવાયેલ એ ભકતપરિજ્ઞા, ઇંગિતમરણ, અને પાદ-પોપગમન, ત્રણમાંથી કોઈ એકને હિતકારી સમજી ધારણ કરે. આ ત્રણેમાં કર્મોની નિર્જરા સર્વત્ર એકસરખી છે. " इति ब्रवीमि " આ પદોનો અર્થ અગાઉના અધ્યયનમાં કહેવામાં આવેલ પ્રકાર જેવો સમજવો જોઇએ. (૨૫)

આ અધ્યયનના વિષયોનો ઉપસંહાર કરે છે

આ વિમોક્ષ નામના પ્રકરણમાં આઠ મોટા ઉદ્દેશ ભરેલા છે. એમાં વર્ણવવામાં આવેલ વિષયોનું અહિં સંક્ષિપ્ત વર્ણન કરેલ છે—

પ્રથમ ઉદ્દેશમાં—પાખંડી માણસોની સંગતનો ત્યાગ, આવા તપ વગરના માણ-સોને કોઈ પ્રકારની સંમતિ ન આપવી. (૧)

शास्त्राऽकल्प्यमुपेतमन्नवसनं त्याज्यं द्वितीये तथा
आहारादिनिषेधने गृहपते रोषोपशान्त्यै विधिः ॥
शैत्येनोत्थितवेपथौ स्मरशरव्याघातशङ्का मुनौ
पारावारचलत्तरङ्गनिचये क्षिप्ता तृतीयेऽसताम् ॥ २ ॥
कामासक्तिवशोपयातललनाऽभ्यासान्निरेतुं मुने,-
रप्रौढस्य मृतिर्द्विधा निगदितोद्देशे तुरीये तथा ॥

द्वितीय उद्देशमें—शास्त्रनिषिद्ध अन्नवसनादिक मुनिजनको है कल्प्य नहीं,
उनका दाता नहीं लेने पर हो जावे जो रुष्ट कहीं।
मुनिवर नहीं लेनेका कारण प्रकट खुलाशा बतलावे,
रोषशमनका यह विधान उद्देश दूसरा दरशावे ॥ २ ॥
तृतीय उद्देशमें—कंपित मुनिवरके शरीरको, शीतादिक कारणवशसे,
देख बने शंकित गृहस्थका मन मनोजकी जागृतिसे।
शीतादिक मम गात्रकंपने कारण हैं न मनोजविकार,
इस प्रकार कह मुनिवर उसकी शंकाका कर दे परिहार ॥ ३ ॥
चतुर्थ उद्देशमें—कामाधीन-चित्त ललनाजन के समीपसे जानेमें,
जो असमर्थ बने वह मुनिवर संयम भार निभानेमें।
धरे भावना-वैहायस अरु गार्धपृष्ठ ये मरण भले,
साधे वह तत्काल न विलमें पर संयमसे नहीं टले ॥ ४ ॥

બીજા ઉદ્દેશમાં—શાસ્ત્રમાં જેનો નિષેધ કરવામાં આવેલ છે તેવા અન્ન, વસ્ત્રાદિનો મુનિએ ગ્રહણ ન કરવો જોઈએ. આપવા ઇચ્છિનાર ન લેવાથી ગુસ્સે થાય તો મુનિએ ન લેવાનું કારણ ખુલાસાથી તેને સમજાવી તેના ગુસ્સાનું શમન કરવું જોઈએ, તે બીજા ઉદ્દેશમાં બતાવેલ છે. (૨)

ત્રીજા ઉદ્દેશમાં—ઠંડી વગેરેના કારણથી કાંપતા મુનિવરના શરીરને જોઈ શંકાશીલ બનેલ ગૃહસ્થની શંકાનું સમાધાન યોગ્ય સમજણથી કરવું જોઈએ આ ત્રીજા ઉદ્દેશમાં બતાવાયું છે. (૩)

ચોથા ઉદ્દેશમાં—કામને આધીન બનેલ લલના (સ્ત્રી) જનની સામે જવામાં અસમર્થ બનેલા મુનિજન સંયમને જાળવવા વૈહાયસ અને ગાર્ધપૃષ્ઠ, આ મરણને વિના વિલંબે સ્વીકારી લે, પરંતુ સંયમથી લેશમાત્ર હટે નહિ એવું ચોથા ઉદ્દેશમાં કહેવાએલ છે. (૪)

पूर्वाङ्गीकृतसंयमाक्षममुने-र्ग्लानाद्यवस्थावशात् ,
साधीयो मरणं विधानसहितं प्रोक्तं तथा पञ्चमे ॥ ३ ॥
एकलस्य च भावनेन मरणं षष्ठे प्रशस्तं कृतं,
भिक्षूणां प्रतिमा मुनेरभिहिना पाल्यैकमासादिका ॥
सामर्थ्ये गलिते तनोर्मुनिवरैराहारसंक्षेपणं,
कृत्वा शास्त्रविधानतस्तरुसमं स्थेयं तथा सप्तमे ॥ ४ ॥
चारित्रं चरतो मुनेः कलयतोऽशक्त्या परं सीदतो,
देहत्यागविधिस्त्रिधा निगदितः साफल्यनीत्यै जनैः ॥

पंचम उद्देशमें—ग्लानादिक हालतमें मुनिवर स्वीकृत संयम पालनमें,
हो असमर्थ सविधि वह धारे भक्तपरिज्ञा उस क्षणमें ॥ ५ ॥
षष्ठ उद्देशमें—मुनिवरका एकत्व भावनासे है मरण प्रशस्त कहा,
रहे सुरक्षित संयम-धन यह निर्मल मनमें भाव गहा ॥ ६ ॥
सप्तम उद्देशमें—एकमास आदिक मर्यादा वाली मुनिकी प्रतिमाएँ,
मुनिवर पाले टरे न उनसे चाहे आयें बाधाएँ।
संयम भार वहन करनेमें शक्तिहीन तन जब जाने,
षष्ठ अष्टमादिक तपक्रमसे भोजन कृश करना ठाने।
शास्त्रविहित मर्यादा माफिक तरुसम बन संथार धरे,
देहाश्रित समस्त क्रियाओंका वह मुनि परिहार करे॥ ७ ॥
अष्टम उद्देशमें—चिरपालितचारित्र-साधुकी संयम क्रिया न सधती हो,

---

પાંચમા ઉદ્દેશમાં—રોગગ્રસ્ત હાલતમાં, સંયમ પાળવામાં અસમર્થ બની જાય તેવા મુનિએ પોતે સ્વીકારેલ અભિગ્રહના પાલન માટે ભકતપરિજ્ઞા નામનું મરણ સ્વીકારવું જોઈએ, તેમ બતાવેલ છે. (૫)

છઠ્ઠા ઉદ્દેશમાં—એકત્વભાવનાવાળું મુનિનું મરણ પ્રશસ્ત કહેવામાં આવેલ છે સંયમ ધનનું નિર્મળ મનથી પાલન કરવાનો ભાવ સમજાવવામાં આવેલ છે. (૬)

સાતમા ઉદ્દેશમાં—એક માસ કે તેથી વધારાની મર્યાદાવાળું મરણ મુનિજન પાળે, ભલે ગમે તેટલી મુસીબતો સહેવી પડે છતાં અને શક્તિહીન બની જાય તે છતાં સંયમથી જરા પણ વિચલિત ન બને, છટ્ઠ-અટ્ઠમ આદિ તપક્રમથી આહારાદિક ઓછાં કરે, અને શાસ્ત્રની મર્યાદામાં બતાવ્યા પ્રમાણે સંથારો કરી દેહની સમસ્ત ક્રિયાઓને મુનિજન ત્યાગી દે. (૭)

આઠમા ઉદ્દેશમાં—ચિરકાળથી ચારિત્રસંપન્ન સાધુ વૃદ્ધાવસ્થા કે રોગના કારણે

उद्देशेऽष्टम इत्यवोचि मुनिभिश्चारित्ररत्नैषिभिः,
सारो ग्राह्यतरोऽनिशं विजयतां तापोपशान्त्यै नृणाम् ॥ ५ ॥इति।

॥ अष्टमाध्ययनस्याष्टम उद्देशः समाप्तः ॥८-८॥

॥ इतिश्री-विश्वविख्यात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलितललित-कलापालापक-प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-शाहू-छत्रपति-कोल्हापुरराजप्रदत्त-" जैनशास्त्राचार्य "-पदभूषित-कोल्हापुरराजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्य-श्रीघासीलाल-व्रतिविरचितायाम् आचाराङ्गसूत्र-स्याऽऽचारचिन्तामणिटीकायां विमोक्षाख्यमष्टम-मध्ययनं सम्पूर्णम् ॥ ८ ॥

बलविहीन होनेसे इससे, उरमें पीडा जगती हो।
तो वह साधु त्रिविध मरणमें से कोई संथार धरे,
जन्म सफल हो जाये उसका भवर का संक्लेश टरे ॥ ८ ॥

॥ आठवें अध्ययनका आठवां उद्देशः समाप्तः ॥ ८-८ ॥

यह आचाराङ्गसूत्रके विमोक्ष नामके आठवें अध्ययनकी आचार-चिन्तामणि-टीकाका हिन्दीभाषानुवाद सम्पूर्ण ॥ ८ ॥

અશક્ત બની ગયેલ હોય, અને તેનું શરીર પીડાથી રીબાતું હોય ત્યારે તે સાધુ ત્રણ મરણમાંથી કોઇ એક મરણ માટે સંથારો કરે અને પોતાના જન્મને સફળ બનાવી ભવના ફેરાને ટાળી દે. (૮)

આઠમા અધ્યયનનો આઠમો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૮-૮ ॥

આ આચારાંગસૂત્રના વિમોક્ષ નામના આઠમા અધ્યયનની આચાર-ચિંતામણિ-ટીકાનો ગુજરાતી અનુવાદ સંપૂર્ણ ॥ ૮ ॥

॥ अथोपधानश्रुताख्यस्य नवमाध्ययनस्य प्रथम उद्देशः ॥

प्रागुक्ताध्ययनाष्टके योऽर्थः प्रतिबोधितः, स वीरवर्धमानस्वामिना भगवताऽपि स्वयमाचरितस्तस्मात् साधुभिरपि तथैवाचरणीयमिति बोधयितुमिदमुपधानश्रुताख्यमध्ययनं प्रारभ्यते–उपधानस्य श्रुतस्य च प्रतिबोधकत्वादिदमध्ययनमुपधानश्रुतमुच्यते। उप=सामीप्येन धीयते=व्यवस्थाप्यते इत्युपधानं तद् द्रव्यभावभेदाद् द्विविधम्, तत्र द्रव्योपधानं शय्यादौ शिरसः समालम्बनवस्तु, भावोपधानं तु–सप्तदशविधसंयमः, स बाह्याभ्यन्तरं तपश्च, तद्धि चारित्रपरिणामरूपस्य भावस्य स्थैर्यं

॥ नववें अध्ययनका प्रथम उद्देश ॥

पहिले कहे गये आठ अध्ययनोंमें जो विषय समझाया गया है, वह वीर–वर्धमान प्रभुने स्वयं आचरित किया है, इस लिये साधुजनोंको भी वह वैसा ही आचरित करना चाहिये, इस बातको समझानेके लिये यह उपधानश्रुत नामक अध्ययन प्रारंभ किया जाता है। उपधान और श्रुतका प्रतिबोधक होनेसे यह अध्ययन भी इस नामसे कहा गया है। जो स्वयं की उपस्थितिमें किया जाता है उसका नाम उपधान है। यह द्रव्य और भावके भेदसे दो प्रकारका है। शय्या आदिमें शिरका अवलम्बनरूप तकिया आदि द्रव्य–उपधान है, इसका यहां अधिकार नहीं है। सत्रह प्रकारका संयम, एवं बाह्य और आभ्यंतर तप, ये भाव–उपधान है। यह भावरूप उपधान चारित्ररूप भावमें स्थिरताका उत्पादक होता है।

નવમા અધ્યયનનો પહેલો ઉદ્દેશ

પહેલાં કહેવાયેલા આઠ અધ્યયનોમાં જે વિષય સમજાવવામાં આવેલ છે તે વીર–વર્ધમાન પ્રભુએ પોતેજે કહેલાં છે. સાધુજનોએ પણ એવું જ આચરણ કરવું જોઇએ. આ વાતને સમજાવવા માટે ઉપધાનશ્રુત નામના અધ્યયનનો પ્રારંભ કરવામાં આવે છે. ઉપધાન અને શ્રુતના પ્રતિબોધક હોવાથી આ અધ્યયન પણ એ નામથી કહેવાયેલ છે. જે પોતાની હાજરીમાં કરવામાં આવે છે તેનું નામ ઉપધાન છે. એ દ્રવ્ય અને ભાવના ભેદથી બે પ્રકારનાં છે. સુવાની પથારી વગેરેમાં અવલમ્બનરૂપ ઓસીકા વગેરે દ્રવ્ય–ઉપધાન છે. તેનો અહીંયાં અધિકાર નથી. સત્તર પ્રકારના સંયમ અને બાહ્ય તથા આભ્યંતર તપ, એ ભાવ–ઉપધાન છે. એ ભાવરૂપ ઉપધાન ચારિત્રરૂપ ભાવમાં સ્થિરતા લાવનાર હોય છે. સંયમ

संपादयति । संयमेन तपसा च जीवस्य ज्ञानावरणीयादिकं सर्वं कर्मरजोऽपगच्छति तस्मात् सकलकर्मक्षयहेतुभूतस्य तस्य संयमस्य तपसश्च समालम्बनरूपत्वादुपधान-त्वेन व्यपदेशः। श्रुतमपि द्रव्यभावभेदात्–द्विविधम् , तत्र द्रव्यश्रुतम्–अनुपयुक्तस्य यत् श्रुतम् , द्रव्यार्थं वा यत् श्रुतम् , कुप्रावचनिकश्रुतं च द्रव्यश्रुतम् । भावश्रुतं तु–द्वादशाङ्गश्रुतविषयोपयोगः । उपधानं च श्रुतं च, इत्यनयोः समाहार उपधा-नश्रुतम् , तत्प्रतिपादकमध्ययनमुपधानश्रुताध्ययनमिति ।

इह प्रथमोद्देशे भगवतः श्रीवर्धमानस्वामिनो विहारः, द्वितीये भगवतः श-य्याऽऽसनानि, तृतीये तस्यानुकूल–प्रतिकूल–परीषहोपसर्गसहिष्णुता, चतुर्थे तु

संयम और तपसे जीवके साथ अनादिकालसे लगीहुई समस्त कर्मरूपी धूलि नष्ट हो जाती है इस कारण सकल कर्मों के क्षयका कारण उस संयम और तपका आलम्बनरूप होनेसे उसमें (भाव उपधानमें) उप-धान पनेका व्यपदेश होता है। श्रुत भी द्रव्य और भावके भेदसे दो प्रकार है । अनुपयुक्त आत्माका जो श्रुत है वह, अथवा द्रव्यके लिये जो श्रुत है वह, या कुप्रावचनिकों (मिथ्यादृष्टियों) का जो श्रुत है वह, द्रव्यश्रुत है । द्वादशाङ्गश्रुतविषयक जो उपयोग है वह भावश्रुत है। उपधान और श्रुतका जो समाहार है वह उपधानश्रुत है, इनका प्रति-पादक अध्ययन भी 'उपधानश्रुताध्ययन ' इस नामसे प्रसिद्ध हुआ है।

इस उपधानश्रुताध्ययनमें चार उद्देश हैं। उनमें प्रथम उद्देशमें श्री व-र्धमानप्रभुके विहारका, द्वितीय उद्देशमें उनकी शय्या एवं आसनादिकका, तृतीय उद्देशमें अनुकूल प्रतिकूल परीषहोंकी सहनशीलताका, और

અને તપથી જીવની સાથે અનાદિકાળથી લાગેલ કર્મરૂપી ધુળનો નાશ થાય છે. આ કારણે સકલ કર્મના ક્ષયના કારણે એ સંયમ અને તપના અવલમ્બનરૂપ હોવાથી એમાં (ભાવ-ઉપધાનમાં) ઉપધાનપણાનો વ્યપદેશ થાય છે. શ્રુત પણ દ્રવ્ય અને ભાવના ભેદથી બે પ્રકારે છે. અનુપયુક્ત આત્માનો જે શ્રુત છે તે, અથવા દ્રવ્યને માટે જે શ્રુત છે તે, અથવા મિથ્યાદષ્ટિયોનો જે શ્રુત છે તે દ્રવ્ય-શ્રુત છે. દ્વાદશાંગશ્રુતવિષયક ઉપયોગ છે તે ભાવ-શ્રુત છે. ઉપધાન અને શ્રુત, એનું પ્રતિપાદક અધ્યયન પણ ' ઉપધાનશ્રુતાધ્યયન' આ નામથી પ્રસિદ્ધ થયેલ છે.

આ ઉપધાનશ્રુતાધ્યયનમાં ચાર ઉદ્દેશ છે, એમાં પ્રથમ ઉદ્દેશમાં શ્રી વર્ધ-માન પ્રભુના વિહારનો, બીજા ઉદ્દેશમાં એમની શય્યા અને આસન આદિનો, ત્રીજા ઉદ્દેશમાં અનુકૂળ પ્રતિકૂળ પરિષહોની સહનશીલતાનો, અને ચોથા ઉદ્દેશમાં ક્ષુધા

क्षुत्पीडाजनिताऽऽतङ्कसमुद्भवे विशिष्टाभिग्रहप्राप्ताहारेण तत्प्रतीकार इत्युच्यते, तस्य भगवतस्तपश्चरणवर्णनं तूद्देशकचतुष्टयानुगामि ॥

अथ भगवतश्चर्याविधिं बोधयितुं श्रीसुधर्मास्वामी जम्बूस्वामिनमाह—'अहासुयं' इत्यादि ।

मूलम्—अहासुयं वइस्सामि, जहा से समणे भगवं उट्ठाए ।
संखाए तंसि हेमंते, अहुणा पव्वइए रीइत्था ॥ १ ॥

छाया—यथाश्रुतं वदिष्यामि, यथा स श्रमणो भगवान् उत्थाय ।
संख्याय तस्मिन् हेमन्ते अधुना प्रव्रजितोऽरीयत ॥ १ ॥

टीका—यथाश्रुतं=यथाश्रवणविषयीकृतं, तथा वदिष्यामि=कथयिष्यामि, तद् यथा—सः=लोकत्रयप्रसिद्धः, श्रमणो भगवान्=महावीरः श्रीवर्धमानस्वामी, उत्थाय=उद्यतविहारं स्वीकृत्य सर्वाभरणं विहाय पञ्चमुष्टिकं लोचं कृत्वा धर्मोपकरणतया गृहीतवस्त्रः, सामायिकार्थं कृताभिग्रहः, प्रकटीभूतमनःपर्ययज्ञानो ज्ञाना-

---

चतुर्थ उद्देशमें क्षुधा-पीड़ासे जनित आतंकके सद्भावमें विशिष्ट अभिग्रहसे प्राप्त आहारसे उस क्षुधाजन्य पीडाके प्रतिकारका वर्णन है। भगवानके तपश्चरणका वर्णन तो इन चारों उद्देशों में है ही।

अब-भगवानकी चर्याविधिको समझानेके लिये श्री सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामीसे कहते हैं—'अहासुयं' इत्यादि ।

प्रभुसे जैसा मैंने सुना है वैसा ही तुमसे कहूँगा, वह इस प्रकार—उद्यत (उत्कृष्ट) विहार स्वीकार कर, समस्त राजचिह्न आदि आभरणोंका परित्याग कर, और पंचमुष्टि केशोंका लुंचन कर, वस्त्र को धर्मका उपकरण समझकर मात्र एक ही वस्त्र धारणकर, संयमके लिये

પીડાથી થયેલ આંતકના સદ્ભાવમાં વિશિષ્ટ અભિગ્રહથી પ્રાપ્ત આહારથી એ-ક્ષુધાજન્ય પીડાના પ્રતિકારનું વર્ણન છે. ભગવાનની તપશ્ચર્યાનું વર્ણન તો એ ચારો ઉદ્દેશોમાં છે જ.

હવે ભગવાનની ચર્યા વિધિને સમજાવવા માટે શ્રી સુધર્માસ્વામી જમ્બૂ સ્વામીથી કહે છે-'अहासुयं' ઈત્યાદિ.

પ્રભુ પાસે જેવું મેં સાંભળ્યું છે તેવુંજ તમોને કહીશ. ઉત્કૃષ્ટ વિહાર સ્વીકારી, સમસ્ત રાજચિન્હ-વિગેરે આભરણોનો પરિત્યાગ કરી, અને પંચમુષ્ટિ કેશોનું લુંચન કરી, વસ્ત્રને ધર્મનું ઉપકરણ સમજી માત્ર એક જ વસ્ત્ર ધારણ

वरणीयाद्यष्टविधकर्मरजोऽपहर्त्तुं तीर्थं प्रवर्तयितुं च प्रवृत्तो भूत्वेत्यर्थः, संख्याय=प्रव्रज्याकालं विज्ञाय, तस्मिन् प्रव्रज्याग्रहणविहरणयोग्यतया प्रसिद्धे, हेमन्ते=हेमन्तर्तौ, मार्गशीर्षमासे तस्य कृष्णदशम्यां पूर्वगामिन्यां छायायाम्, अपराह्णसमय इति भावः। प्रव्रजितः=गृहीतप्रव्रज्यः, अधुना=अस्मिन् काले–प्रव्रज्याग्रहणकाले, तद्व्यवहितोत्तरकाल एवेति यावत्, अरीयत=विहारमकरोत् ॥ १ ॥

धर्मोपकरणतया वस्त्रं भगवता गृहीतमित्येतद् बोधयितुमाह—' **णो चेविमेण** ' इत्यादि।

मूलम्—णो चेविमेण वत्थेण, पिहिस्सामि तंसि हेमंते।
से पारए आवकहाए, एवं खु अणुधम्मियं तस्स ॥२॥

छाया—नो चैव अनेन वस्त्रेण पिधास्यामि तस्मिन् हेमन्ते।
स पारगो यावत्कथम् एतत् खु अनुधार्मिकं तस्य ॥ २ ॥

कृताभिग्रह होकर, मनःपर्यय ज्ञानकी प्राप्तिसे युक्त बन ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकारकी समस्त कर्मरूपी धूलिको उड़ानेके लिये, एवं तीर्थकी प्रवृत्ति करनेके लिये कटिबद्ध होकर लोकत्रयमें प्रसिद्ध वह भगवान श्री महावीर स्वामीने, प्रव्रज्या काल जानकर प्रव्रज्या ग्रहण एवं विहार करनेकी योग्यतासे प्रसिद्ध ऐसे हेमन्त–मार्गशीर्ष मास–में कृष्णपक्षकी दशमी १० तिथिके दिन अपराण्ह समय–दिनके पिछले प्रहरमें दीक्षित होकर उसी समय विहार किया ॥ १ ॥

'वस्त्र भी धार्मिक उपकरण है' ऐसा विचार कर वस्त्र ग्रहण किया, इस बातको समझानेके लिये सूत्रकार कहते हैं–'णो चेविमेण' इत्यादि।

કરી સંયમના માટે કૃતાભિગ્રહ થઈ મનઃપર્યય જ્ઞાનની પ્રાપ્તિથી યુક્ત બની જ્ઞાનાવરણીય વગેરે આઠ પ્રકારની સમસ્ત કર્મરૂપી ધુળને ઉડાડવા માટે, અને તીર્થની પ્રવૃત્તિ કરવા માટે કટિબદ્ધ થઈ લોકત્રયમાં પ્રસિદ્ધ તે ભગવાન શ્રી મહાવીર સ્વામીએ પ્રવ્રજ્યાકાળ જાણી લઈ પ્રવ્રજ્યાગ્રહણ અને વિહાર કરવાની યોગ્યતાથી પ્રસિદ્ધ એવા હેમન્ત–માગશર માસ–માં કૃષ્ણપક્ષની દશમી તિથિના દિવસે અપરાહ્ણ સમયે–દિવસના પાછલા ભાગમાં દીક્ષિત થઈ એ સમયે વિહાર કર્યો.(૧)

'વસ્ત્ર ધાર્મિક ઉપકરણ છે' એવો વિચાર કરી વસ્ત્ર ધારણ કર્યાં, આ વાત સમજાવવા માટે સૂત્રકાર કહે છે—'णो चेविमेण' ઇત્યાદિ.

टीका—स भगवान् महावीरः श्रीवर्धमानस्वामी, एवं विभावयतिस्म-अनेन वस्त्रेण=तस्मिन् शैत्यवर्धकतया प्रसिद्धे हेमन्ते=हेमन्ताख्ये ऋतौ, न चैव पिधास्यामि स्वदेहमहं नैव प्रावरिष्यामि, एतदुपभोगेन शीतसमये स्वात्मानं सुखयितुं प्रवृत्तो न भविष्यामीत्यर्थः। ईदृशविचारणाकरणप्रदर्शकं तस्य विशेषणं प्रदर्शयति-पारग इति, प्रतिज्ञायाः पारगामी, प्रतिज्ञापूरणसमर्थ इत्यर्थः। यद्वा—संसारसागरपारगमने समर्थ इत्यर्थः। कियन्तं कालमपेक्ष्य प्रतिज्ञातं भगवतेति जिज्ञासायामाह-यावत्कथमिति, यावज्जीवनमित्यर्थः।

भगवान महावीरने ऐसा विचार किया कि इस वस्त्रसे शैत्यवर्धकपनेसे प्रसिद्ध हेमन्त ऋतुमें मैं अपने शरीरको नहीं ढकूंगा-इसके उपभोगसे शीतसमयमें मैं अपनेको सुखित करनेके लिये प्रवृत्त नहीं होऊँगा। इस प्रकारकी भगवान महावीरकी विचारणाका कारण यह था कि वे अपने अभिग्रहका पूर्णरूपसे निभानेमें शक्तिशाली थे, यही बात "पारगः" इस विशेषण पदसे सूत्रकारने प्रदर्शित की है। उनके शरीरमें इतनी शक्ति थी कि जिसके आगे उस मार्गशीर्ष जैसे मासकी ठंडकी शक्ति उनके प्रति कुण्ठित हो गई थी। अथवा "पारगः" इस विशेषण पदका यह भी दूसरा अर्थ हो सकता है कि जब वे उसी भवसे संसाररूपी अथाह समुद्रको पार करनेमें समर्थ थे तब उनके समक्ष यह शीतकाल किस गणनामें था। वस्त्रसे शरीरको आवृत नहीं करनेकी प्रतिज्ञा भगवानने कुछ समयके लिये नियमरूपसे अंगीकृत नहीं की थी, किन्तु यावत्कथ-यावजीवन यह प्रतिज्ञा उन्होंने स्वीकार की थी।

ભગવાન મહાવીરે એવો વિચાર કર્યો કે આ વસ્ત્રથી ઠંડી આપવામાં પ્રસિદ્ધ એવી હેમન્તઋતુમાં હું મારા શરીરને ઢાંકીશ નહીં-આના ઉપભોગથી ઠંડીના સમયમાં હું મને સુખી કરવામાં પ્રવૃત્ત નહીં થઈશ. આ પ્રકારની ભગવાન મહાવીરની વિચારણાનું કારણ એ હતું કે તેઓ પોતાના અભિગ્રહનું પાલન પૂર્ણરૂપથી નિભાવવામાં શક્તિશાળી હતા. એ વાત 'पारगः' આ વિશેષણ પદથી સૂત્રકારે પ્રદર્શિત કરેલ છે. એમના શરીરમાં એટલી શક્તિ હતી કે જેની સામે માગશર મહિનાની ઠંડીની શકિત પણ નિર્બળ બની ગઈ હતી. અથવા "पारगः" આ વિશેષણનો બીજો એ પણ અર્થ થઈ શકે છે કે જ્યારે તે એજ ભવથી સંસારરૂપી અથાગ સમુદ્રને પાર કરવામાં સમર્થ હતા. આ સમર્થ આત્મા સામે શીત કાળની ગણત્રી શું? વસ્ત્રથી શરીરને આવૃત ન કરવાનો અભિગ્રહ ભગવાને થોડા સમયને માટે નિયમરૂપથી અંગીકૃત કરેલ નહીં પરંતુ આજીવન એ અભિગ્રહ એમણે સ્વીકાર કર્યો હતો.

ननु तर्हि वस्त्रं किमर्थमङ्गीकृतम् ? अत्राह-खु=नियमेन, एतद्=वस्त्रधारणं तस्य=भगवतः, अनुधार्मिकम्=पूर्वपूर्वतीर्थङ्करधर्मानुकूलम्, अपरैः परंपरयावतीर्ण-तीर्थङ्करैरपि पूर्वं धर्मोपकरणतया तथाऽनुष्ठितमित्यर्थः ॥ २ ॥

दीक्षाकालिकानुलिप्तचन्दनादिसुगन्धलोभाद् भ्रमरादयः समागत्य भगवद्वपुषि दंशनं चक्रुरिति बोधयितुमाह-' चत्तारि साहिए ' इत्यादि ।

मूलम्—चत्तारि साहिए मासे, बहवे पाणजाइया आगम्म ।

अभिरुज्झ कायं विहरिंसु आरुसिया णं तत्थ हिंसिंसु ॥३॥

छाया—चतुरः साधिकान् मासान् , बहवः प्राणिजातयः आगम्य ।

अभिरुह्य कायं विजह्रुः, आरुष्य खलु तत्र जिहिंसुः ॥ ३ ॥

शंका—जब वस्त्रसे शरीरको आच्छादित नहीं करनेका अभिग्रह भगवानने यावज्जीवन अंगीकृत किया तो फिर भगवानने वस्त्रका ग्रहण ही क्यों किया ?

उत्तर-शंका ठीक है, परन्तु आचारपालनके लिये ही उन्होंने ऐसा किया। जिस प्रकार परंपरासे होनेवाले धर्मतीर्थप्रवर्त्तक तीर्थकरोंने वस्त्रका धर्मका उपकरण होनेसे ग्रहण किया है। यही बात "अनुधार्मिकम्" इस पदसे सूत्रकार प्रकट की है ॥ २ ॥

दीक्षा समयमें जब भगवानके शरीरमें चंदनादि सुगंधित द्रव्योंका उवटन-लेप किया गया उस समय उनकी सुगंधिसे आये हुए भ्रमर भगवानके शरीरको काटने लगे, इस बातको समझानेके लिये सूत्रकार कहते हैं—' चत्तारि साहिए ' इत्यादि ।

શંકા—જ્યારે વસ્ત્રથી શરીરને આચ્છાદિત ન કરવાનો અભિગ્રહ ભગવાને આજીવન અંગીકૃત કર્યો તો પછી ભગવાને વસ્ત્રોને કેમ ન તજ્યાં?

ઉત્તર—શંકા ઠીક છે, પરન્તુ આચાર પાલન કરવા માટે જ તેમણે એમ કર્યું. જે પ્રકાર તીર્થંકરોએ વસ્ત્રને ધર્મ-ઉપકરણરૂપ માની ગ્રહણ કરેલ. આ વાત " अनुधार्मिकम् " આ પદથી સૂત્રકારે પ્રગટ કરેલ છે. (२)

દીક્ષા સમયે જ્યારે ભગવાનના શરીર ઉપર ચંદનાદિ સુગંધિત દ્રવ્યોનો લેપ કરવામાં આવ્યો આ સમયે તેની સુગંધથી આકર્ષાઈ ભમરાઓ શરીર ઉપર બેસવા લાગ્યાં અને કરડવા લાગ્યાં, આ વાતને સમજાવતાં સૂત્રકાર કહે છે— ' चत्तारि साहिए ' ઈત્યાદિ.

टीका—बहवः प्राणिजातयः भ्रमरादयः चतुरः साधिकान् मासान् मनोज्ञसुगन्धलोभात् आगम्य कायं=भगवतः शरीरम्, अभिरुह्य विजहुः=निजनिजचरणानि सपरुषस्पर्शं चारयामासुः। तथा-तदीयरक्ताद्यर्थितया च आरुष्य=प्रकुप्येव तत्र=भगवतः शरीरे जिहिंसुः=ददंशुः॥ ३॥

तद् वस्त्रं भगवान् कियत्कालं दधारेति शिष्यजिज्ञासायामाह—'संवच्छरं साहियं' इत्यादि।

मूलम्—संवच्छरं साहियं मासं, जं न रिक्कासि वत्थगं भगवं।
अचेलए तओ चाई, तं वोसिरिज्ज वत्थमणगारे ॥४॥

छाया—संवत्सरं साधिकं मासं, यत् न रिक्तवान् वस्त्रकं भगवान्।
अचेलकः ततः त्यागी, तद् व्युत्सृज्य वस्त्रमनगारः॥ ४॥

टीका—भगवान् श्रीवर्धमानस्वामी वस्त्रकं=तद् वस्त्रं संवत्सरम्=एकवर्षं, तथा साधिकं मासं=साधिकैकमासं किञ्चिदधिकत्रयोदशमासानित्यर्थः, यत् न रिक्तवान्

कुछ अधिक चार मासमें बहुतसी-अनेक प्राणियोंकी जातियां, अनेक जातिके भ्रमरादिक जीवजन्तु मनोज्ञ सुगंधके लोभसे आकर भगवानके शरीरके आजू-बाजू भिन२ करते हुए उनके शरीरको कठोर स्पर्श करते हुए चारों ओर घूमने लगे और क्रोधित की तरह उनके शरीरको काट२ कर लोही मांस खाने लगे॥ ३॥

उस वस्त्रको भगवानने कितने समयतक धारण किया? शिष्यकी इस जिज्ञासाका समाधान करनेके लिये सूत्रकार कहते हैं-'संवच्छरं' इत्यादि।

भगवानने उस वस्त्रको कुछ अधिक एक महीनासे युक्त एक वर्ष,

થોડા અધિક ચાર મહિનામાં ઘણા પ્રાણીઓ અને ઘણી જાતના ભમરા વગેરે જીવ જંતુની જાતિયો મનને સુગંધથી ભરપુર બનાવી દે તેવી સુંગધના લોભમાં પડી ભગવાનના શરીર ઉપર તેમજ ચારે તરફ ફરી વળી ગણગણાટ શરૂ કરી દીધો અને જાણે ક્રોધવાળા બન્યા હોય એ રીતે તેમના શરીર ઉપર સુગંધ ચુસવાની ભાવનાથી લોહી તથા માંસને ખાવા લાગ્યા. (૩)

એ વસ્ત્રને ભગવાને કેટલા સમય સુધી ધારણ કર્યું ? શિષ્યની આ જીજ્ઞાસાનું સમાધાન કરવા માટે સૂત્રકાર કહે છે—'સંવચ્છરં' ઇત્યાદિ.

ભગવાને થોડા અધિક એક મહીનાથી યુકત એક વર્ષ-એટલે થોડા અધિક

=त्यक्तवान् तत् 'स्थितकल्पः' इति कृत्वा, तत ऊर्ध्वं तद् वस्त्रं व्युत्सृज्य=अपनीय त्यागी=वस्त्रपरित्यागी अनगारः=भगवान् अचेलकः=अवस्त्रः, अभूदित्यर्थः ॥४॥

किञ्च--'अदु पोरिसिं' इत्यादि ।

मूलम्--अदु पोरिसिं तिरियभित्तिं चक्खुमासज्ज अन्तसो झाइ ।
अह चक्खुभीया संहिया, ते हंता हंता बहवे कंदिंसु ॥५॥

छाया--अथ पौरुषीं तिर्यग्भित्तिं चक्षुरासाद्य अन्तशो ध्यायति ।
अथ चक्षुर्भीताः संहितास्ते, हत्वा हत्वा बहवश्चक्रन्दुः ॥ ५ ॥

टीका--अथ=अनन्तरं, तिर्यग्भित्तिं=प्रवेशस्थाने संकुचितामग्रे विस्तीर्णां, पौरुषीं=पुरुषप्रमाणां वीथीं गच्छन् अन्तशः=मध्ये अभ्यन्तरे, चक्षुरासाद्य=ज्ञानदृष्टिं निधाय, सोपयोगो भूत्वा, ध्यायति=ईर्यासमितो गच्छति। ईर्यासमितस्य गमनमेवात्र ध्यानम् ।

अर्थात् कुछ अधिक तेरह महीने तक स्थितकल्प समझकर रखा। फिर उसके बाद उसका परिहार कर वे अचेल-वस्त्ररहित हुए ॥४॥

फिर भी—'अदु पोरिसिं' इत्यादि ।

प्रवेश स्थानमें संकुचित और आगे विस्तृत ऐसे मार्गसे वे भगवान ईर्यासमितिपूर्वक चले। यहां "ध्यायति" यह क्रियापद 'भगवान ईर्यासमितिसे गमन करते हुए' इस अर्थका बोध कराता है, क्यों कि सोपयोग ईर्यासमिति वालेका गमन ही यहां ध्यान है। "चक्षुरासाद्य" यह पद यह प्रकट करता है कि वे भगवान ज्ञानदृष्टिको रखकर-उपयोग सहित होकर चले। ईर्यासमितिसे चलते हुए भी उपयोग अस्थिर हो सकता है-परन्तु यहां पर भगवानका उपयोग अस्थिर नहीं था यह विशेषता प्रकट करनेके लिये 'चक्षुरासाद्य' यह पद सूत्रकारने रखा है।

તેરમહિના સુધી તે વસ્ત્રને સ્થિતકલ્પ સમજીને રાખ્યું. આ પછી તેઓએ તેનો ત્યાગ કર્યો અને અચેલ-વસ્ત્રરહિત થયા. (૪)

ફરી-'अदु पोरिसिं' ઈત્યાદિ.

પ્રવેશસ્થાનમાં સાંકડા અને આગળ જતાં વિસ્તૃત એટલે પહોળા માર્ગ ઉપર ભગવાન ઈર્યાસમિતિપૂર્વક ચાલ્યા. અહિં 'ध्यायति' આ ક્રિયાપદ 'ભગવાન ઈર્યાસમિતિથી ગમન કરેલ' આ અર્થનો બોધ કરાય છે, કેમ કે સોપયોગ ઈર્યાસમિતિવાળાનું ગમન જ ધ્યાન છે. 'चक्षुरासाद्य' આ પદ એવું પ્રગટ કરે છે કે ભગવાન જ્ઞાનદષ્ટિથી ઉપયોગસહિત એ માર્ગથી ચાલ્યા. ઈર્યાસમિતિથી ચાલવાવાળાનો ઉપયોગ અસ્થિર પણ થઈ શકે છે, પરંતુ ભગવાનનો ઉપયોગ અસ્થિર ન હતો. આ વિશેષતા પ્રગટ કરતાં 'चक्षुरासाद्य' આ પદ સૂત્રકારે રાખેલ છે.

तं तथा व्रजन्तमवलोक्य बालका उपसर्गं चक्रुरित्याह—'अथ चक्षुर्भीताः' इत्यादि ।

अथ=अनन्तरं, चक्षुर्भीताः=अत्र चक्षुःशब्देन दर्शनं गृह्यते, दर्शनाद्भीताः भगवन्तं विलोक्य भयमुपगताः, अत एव संहिताः=मिलिताः, ते=बालका हत्वा हत्वा=धूलिप्रक्षेपादिभिः पुनः पुनस्ताडयित्वा चक्रन्दुः=अन्यान् बालानाह्वयन्ति स्म, 'इहागच्छत पश्यत मुण्डितोऽय'-मिति, ;तथा-'किंदेशीयः कुतः समायातोऽय'-मिति कलकलशब्दं चक्रुरित्यर्थः ॥ ५ ॥

किञ्च—'सयणेहिं' इत्यादि ।

मूलम्—सयणेहिं वितिमिस्सेहिं, इत्थीओ तत्थ से परिन्नाय ।
सागारियं न सेवेइ य, से सयं पवेसिया झाइ ॥ ६ ॥

छाया—शयनेषु व्यतिमिश्रेषु स्त्रियस्तत्र स परिज्ञाय ।
सागारिकं न सेवेत च स स्वयं प्रवेश्य ध्यायति ॥ ६ ॥

टीका—शयनेषु=शय्यते यत्र तानि शयनानि=आगन्तुकार्थवासस्थानानि, तेषु व्यतिमिश्रेषु=कुतश्चित् कारणाद् गृहस्थैस्तीर्थिकैश्च संयुक्तेषु सत्सु तत्रावस्थि-

---

भगवानको इस तरह विहार करते हुए देखकर भयसे युक्त हो बालक मिलकर उनके ऊपर धूलि आदि डाल२ कर उपसर्ग करने लगे और कोलाहल करते हुए कहने लगे कि-आओ देखो यह मनुष्य मुंडित है, यह अजब ढंगका आदमी कहांसे आया है ॥५॥

और भी—'सयणेहिं' इत्यादि ।

आगन्तुक-पथिक जनोंके लिये वसने योग्य स्थानोंका नाम शयन है। इन शयनोंमें अनेक प्रकारके व्यक्ति आकर ठहरते हैं और चले जाते हैं, ऐसे स्थानोंमें यदि मुनिजन ठहरें और वहीं पर गृहस्थजन या अन्य तीर्थिक-

---

ભગવાનને આ રીતે વિહાર કરતાં જોઈ ભયભીત બનતાં બાળકોએ ધુળ કાંકરા વગેરે તેમના ઉપર નાંખવા માંડયા, અને તમાસો જોવાના નિમિત્તે બીજા બાળકોને પણ બોલાવવા લાગ્યાં અને કોલાહલ મચાવી કહેવા લાગ્યાં કે-જુઓ જુઓ આ માણુસ માથે મુંડેલ એવા અજબ ઢંગનો છે. આ માણુસ અહિં કયાંથી આવેલ છે ? (૫)

ફરી—'सयणेहिं' ઈત્યાદિ.

આગંતુક-માર્ગ વહેતા માણુસોને વસવા યોગ્ય સ્થાનોનું નામ શયન છે. આ શયનોમાં અનેક પ્રકારના માણુસો આવી રોકાય છે, અને ચાલ્યા જાય છે. આવા સ્થાનોમાં કદીક મુનિ પણ રોકાય છે અને બીજા ગૃહસ્થજન અને અન્યતીર્થિક બીજા ધર્મવાળા માણુસો

तः सन् स्त्रीभिः प्रार्थितो भवति चेत् तदा स स्त्रियः परिज्ञाय=ज्ञ-परिज्ञया 'इमाः संयमसरणिप्रतिरोधिकाः' इति ज्ञात्वा, प्रत्याख्यान-परिज्ञया परिवर्जयन् 'मुनिः सागारिकं=मैथुनं न सेवेत' इत्येवं स्वधर्ममनुस्मरन् स=भगवान् महावीरः श्री वर्धमानस्वामी वैराग्यमार्गे स्वयं=स्वमात्मानं प्रवेश्य ध्यायति=धर्मध्यानं करोति स्म ॥ सू० ६ ॥

यदि मार्गे गृहस्था आगत्य मिलन्ति पृच्छन्ति, तदानीमपि भगवतो ध्यानभङ्गो नाभूदित्याह-'जे के इमे' इत्यादि ।

मूलम्—जे के इमे अगारत्था, मीसीभावं पहाय से झाई ।
पुट्ठो वि नाभिभासिंसु, गच्छइ नाइवत्तइ अंजू ॥ ७ ॥

छाया—ये केचिद् इमे अगारस्थाः मिश्रीभावं प्रहाय स ध्यायति ।
पृष्टोऽपि नाभ्यभाषत, गच्छति नातिवर्तते ऋजुः ॥ ७ ॥

जन भी ठहरे हों और उनमेंसे कोई कामिनी उस मुनिसे अपनी वैषयिक अभिलाषा प्रकट करे तब वह मुनि उस स्त्रीको 'यह संयम मार्गकी प्रतिरोधिका है' ऐसा ज्ञ-परिज्ञासे जानकर प्रत्याख्यान-प्रतिज्ञासे सर्वथा उसका परिहार कर देवे, और इसकी वैषयिक अभिलाषाकी पूर्ति न करे, इस प्रकारके अपने धर्मका विचार करते हुए वे भगवान् महावीर वैराग्यमार्गमें अपने आपको ओत-प्रोत कर धर्मध्यानमें तत्पर रहे ॥ ६ ॥

मार्गमें चलते हुए भगवानको यदि गृहस्थजन आकरके मिलते और कुछ पूछते तो भी भगवान्का ध्यानभंग नहीं होता, इस बातको सूत्रकार प्रकट करते हैं—'जे के इमे' इत्यादि ।

પણ રહે છે. આમાં કોઈ સ્ત્રી આ સ્થાનમાં રોકાયેલા મુનિજનથી પોતાની વૈષયિક અભિલાષા પ્રગટ કરે એ સમયે મુનિ "સ્ત્રી સંયમમાર્ગનો અવરોધ કરનાર છે" એવું જ્ઞ-પરિજ્ઞાથી જાણી પ્રત્યાખ્યાન-પ્રતિજ્ઞાથી એનો ત્યાગ કરી દે, અને એની વૈષયિક-વિષયસંબંધી અભિલાષાની પૂર્તિ ન કરે, આ પ્રકારથી પોતાના ધર્મનો વિચાર કરતાં ભગવાન્ મહાવીર વૈરાગ્યમાર્ગમાં પોતાને ઓત-પ્રોત બનાવી ધર્મધ્યાનમાં મગ્ન રહે છે. (૬)

માર્ગમાં ચાલતાં ભગવાનને કોઈ ગૃહસ્થજન આવીને મળે અને પુછપરછ કરે તો પણ ભગવાનના ધ્યાનનો ભંગ નહિ થતો, આ વાતને સૂત્રકાર પ્રગટ કરે છે—'જે કે ઇમે' ઇત્યાદિ.

टीका---ये केचिद् इमे अगारस्थाः=गृहस्थाः आगत्य संमिलन्ति तैर्मिश्रीभावं=सहवासं प्रहाय=परित्यज्य सः=भगवान् ध्यायति=ध्यानमेवावलम्बते स्म। तथा-तैः कश्चिद् विषयं पृष्टोऽप्यपृष्टो वा स ऋजुः सरलहृदयो भगवान् नाभ्यभाषत, किन्तु-गच्छति ईर्यासमितः सन् मार्गे व्रजत्येव, तथा नातिवर्तते=मोक्षमार्गं ध्यानं वा न परित्यजति स्मेत्यर्थः ॥ ७ ॥

किञ्च---' णो सुकर० ' इत्यादि।

मूलम्-णो सुकरमेयमेगेसिं, नाभिभासए अभिवायमाणे।
हयपुव्वे तत्थ दंडेहिं, लूसियपुव्वे अप्पपुन्नेहिं ॥८॥

छाया---नो सुकरमेतद् एकेषां नाभिभाषते अभिवादयतः।
हतपूर्वः तत्र दण्डैः लूषितपूर्वः अल्पपुण्यैः ॥ ८ ॥

टीका---एतद्=उक्तं वक्ष्यमाणं च, भगवच्चरितं एकेषाम्=अन्येषां नो सुकरं =न कर्तुं शक्यम्, तदेव दर्शयति-अभिवादयतः=अभिवन्दनं कुर्वतो जनान्, नाभि-

जो कोई गृहस्थजन आकरके भगवानसे मार्गमें मिलते तो वे उनके साथ सहवास नहीं करते, और अपने ध्यान ही में मग्न रहते। उनके द्वारा किसी विषयको लेकर पूछे गये अथवा नहीं पूछे गये वे सरल हृदयवाले भगवान् उनसे बोलते-चालते नहीं, मार्गमें ईर्यासमितिसे ही चलते रहते। मोक्षमार्ग अथवा ध्यानकी ओरसे वे अपने चित्तको नहीं हटाते थे ॥ ७ ॥

फिर भी-'णो सुकर०' इत्यादि।

यह कहा हुआ और आगे कहा जाने वाला भगवानका चरित्र अन्य मनुष्योंके लिये सुकर-आचरण करना सहज-नहीं है, अन्य मनुष्य

જો કોઈ ગૃહસ્થ જન આવી માર્ગમાં ભગવાનને મળતા તો તેમની સાથે ભગવાન સહવાસ કરતા ન હતા અને પોતાના ધ્યાનમાં જ મગ્ન રહેતા હતા. પૂછવામાં આવતી અથવા નહીં પૂછવામાં આવતી કોઈ પણ વાતનો ભગવાન જવાબ આપતા નહીં-કોઈની સાથે બોલતા ચાલતા નહીં. માર્ગમાં ઈર્યાસમિતિથી ચાલતા રહેતા. મોક્ષમાર્ગથી અને ધ્યાનના તરફથી તેઓ પોતાનું ચિત્ત જરા પણ બીજી તરફ ફેરવતા નહીં. (૭)

ફરી—' णो सुकर० ' ઈત્યાદિ.

આ કહેવામાં આવેલ અને આગળ કહેવામાં આવનાર ભગવાનનું ચરિત્ર બીજા માણસો માટે એ રીતથી આચરણ કરવું સહેજ નથી. કોઈ માણસ વિચારે

भाषते=न ब्रवीति, नाप्यनभिवादयद्भ्यश्च क्रुध्यतीत्यपि उपलक्षणार्थतयाऽवगन्तव्यम्। प्रतिकूलोपसर्गोपस्थितौ सत्यामपि ध्यानभङ्गो नाभूदित्याह-'हतपूर्वः' इत्यादि। तत्र=अनार्यदेशादौ विहरन् अल्पपुण्यैः=हीनपुण्यैर्धर्मसंज्ञारहितैरनार्यैर्दण्डैर्हतपूर्वः पूर्वं हतः, तथा लूषितपूर्वः=हिंसितपूर्वः केशलुञ्चनादिभिः पूर्वं हिंसितो नाभिभाषते, न कषायभावं प्राप्तवानित्यर्थः ॥ ८ ॥

किञ्च-'फरुसाइं' इत्यादि।

मूलम्—फरुसाइं दुत्तितिक्खाइं, अइअच्च मुणी परक्कममाणे।
आघायनट्टगीयाइं, दंडजुद्धाइं मुट्ठिजुद्धाइं ॥९॥

छाया—परुषाणि दुस्तितिक्षाणि अतिगत्य मुनिः पराक्रममाणः।
आख्यातनृत्यगीतानि दण्डयुद्धानि मुष्टियुद्धानि ॥ ९ ॥

चाहें कि हम भी इस प्रकारके सांचेमें अपने जीवनको ढालें तो वे नहीं ढाल सकते। भगवान् अपने को वंदना करनेवाले मनुष्योंसे प्रेमसे नहीं बोलते और उपलक्षणसे नहीं वंदनेवालों पर क्रोधी नहीं होते। भगवान् के ऊपर चाहे कितनेही प्रतिकूल और अनुकूल उपसर्ग आते, तो भी वे अपने ध्यानसे विचलित नहीं होते। अनार्य देशादिकमें विहार करते समय भगवान धर्मसंज्ञारहित ऐसे हीनपुण्य अनार्यों द्वारा दण्डोंसे भी ताडित हुए, और केशलुञ्चनादिकपूर्वक उनके द्वारा दुःखित भी किये गये, उन पर पत्थर आदिका प्रहार भी किया गया तो भी भगवान् उनके प्रति कषायभावोंसे संपन्न नहीं हुए थे ॥ ८ ॥

और भी—'फरुसाइं' इत्यादि।

કે હું પણ આ પ્રકારે મારા જીવનને લઈ જાઉં તો એ પ્રમાણે તે કરી શકે નહીં-એ પ્રકારનો ઢાળ ઢાળી શકે નહીં. ભગવાનની વંદના કરવા આવતા માણસો સાથે તેઓ પ્રેમથી બોલતા નહીં; અને ઉપલક્ષણથી નહીં વાંદવાવાળા ઉપર ક્રોધ કરતા નહીં. તેમના ઉપર ગમે તેટલા પ્રતિકૂળ અને અનુકૂળ ઉપસર્ગ આવે તો પણ તેઓ પોતાના ધ્યાનથી વિચલિત થતા નહીં. અનાર્ય દેશાદિકમાં વિહાર કરતી વખતે ધર્મસંજ્ઞાથી રહિત એવા હીનપુણ્ય અનાર્યોથી ભગવાનને અનેક પ્રકારનાં કષ્ટો સહેવાં પડેલાં. દંડ વિગેરેની તાડનાથી તેમજ માથાના વાળ પકડી ખેંચવા વિગેરેથી ભગવાનને અનેક રીતે દુઃખ પહોંચાડવામાં આવેલા કાંકરા, તેમજ પથરા વિગેરેના પ્રહારો કરવામાં આવ્યા હતા તો પણ એમના તરફ કષાયભાવસંપન્ન નહિ થયા. (૮)

ફરી—'फरुसाइं' ઈત્યાદિ.

टीका—मुनिः=श्रीवर्धमानस्वामी, परुषाणि=कठोरवचनानि, दुस्तितिक्षाणि =अन्यैः प्राकृतपुरुषैर्दुःसहानि अतिगत्य=अविगणय्य, पराक्रममाणः=सम्यक् तितिक्षावान् भवति, तथा–आख्यातनृत्यगीतानि=आख्यातानि नृत्यगीतानि उद्दिश्य कौतुकं न करोति, तथा–दण्डयुद्धानि मुष्टियुद्धानि दृष्ट्वा श्रुत्वा वा नापि रोमाञ्चितो भवति ॥ ९ ॥

किञ्च—' गढिए ' इत्यादि ।

मूलम्—गढिए मिहोकहासु, समयंमि नायसुए विसोगे अदक्खू ।
एयाइं से उरालाइं, गच्छइ नायपुत्ते असरणाए ॥ १० ॥

छाया—गृद्धः मिथःकथासु समये ज्ञातसुतः विशोकः अद्राक्षीत् ।
एतानि स उदाराणि गच्छति ज्ञातपुत्रः अशरणाय ॥ १० ॥

टीका—समये=एकस्मिन् काले कदाचित् ज्ञातसुतः=भगवान् महावीरः श्री वर्धमानस्वामी मिथःकथासु=परस्परं कामसम्बन्धिवार्तालापेषु गृद्धाः=आसक्ताः स्त्रीः, विशोकः=रागरहितः सन् अद्राक्षीत् । स ज्ञातपुत्रः=भगवान् अशरणाय=शरणं=

मुनि श्री वर्धमान स्वामी अन्य साधारण प्राणी भी जिन्हें सहन न कर सकें ऐसे कठोर वचनोंकी ओर कुछ भी ध्यान न देकर सम्यक् प्रकारसे सहन करने वाले हुए–सर्व प्रकारसे अच्छी तरह सहनशील बने । तथा आख्यात (कथा–वार्ता) नृत्य और गीतकी तरफ आश्चर्यसे युक्त न हुए, एवं दण्डयुद्ध और मुष्टियुद्धोंको देखकर या सुनकर रोमाञ्चित–आश्चर्यचकित भी न बनें ॥९॥

फिर भी—'गढिए' इत्यादि ।

एक समय की बात है कि भगवान् महावीरने परस्पर कामसंबंधी–वार्तालापोंमें आसक्त स्त्रियोंको देखा तो भी वे उस ओरसे वीतराग

મુનિશ્રી વર્ધમાન સ્વામી અન્ય સાધારણ પ્રાણી પણ જેને સહન ન કરી શકે એવા કઠોર વચનોની તરફ જરા પણ ધ્યાન ન દઇ સમ્યક્ પ્રકારથી સહન કરવાવાળા થયા–સર્વ પ્રકારથી તેઓ સહનશીલ વૃત્તિના બન્યા. આખ્યાન(કથાવાર્તા) નૃત્યો અને ગીતોમાં તેઓને આશ્ચર્ય થયેલ નહીં, તેમ દંડયુદ્ધ અને મુષ્ટિયુદ્ધને જોઈ તથા સાંભળી રોમાંચિત–આશ્ચર્યચકિત બન્યા ન હતા. (૯)

ફરી—'गढिए' ઇત્યાદિ.

એક સમયની વાત છે કે ભગવાન મહાવીરે પરસ્પર કામસંબંધી વાર્તાલાપોમાં સ્રીયોને આસક્ત બનેલી જોવા છતાં પણ એ બારામાં એઓ વીતરાગી

गृहं यत्र नास्तीत्यशरणः=संयमस्तस्मै, संयमाराधनार्थम्, एतानि=अनुकूल-प्रतिकूलानि परीषहोपसर्गरूपाणि उदाराणि=अन्यजनैर्दुःसहानि गच्छति=अतिक्रामति, परीषहोपसर्गैः प्रतिबद्धो न भवतीति भावः ॥ १० ॥

तेन भगवता दीक्षाग्रहणात् पूर्वं साधिकवर्षद्वयतः शीतजलं परिवर्जितमित्याह—'अविसाहिए' इत्यादि ।

मूलम्—अवि साहिए दुवासे, सीतोदं अभोच्चा णिक्खंते ।
एगत्तगए पिहियच्चे, से अहिन्नायदंसणे संते ॥११॥

छाया—अपि साधिके द्वे वर्षे शीतोदकम् अभुक्त्वा निष्क्रान्तः ।
एकत्वगतः पिहितार्चः स अभिज्ञातदर्शनः शान्तः ॥ ११ ॥

टीका—अपि च-स भगवान् साधिके द्वे वर्षे शीतोदकम्=सचित्तजलम्, अभुक्त्वा=अपीत्वा, एकत्वगतः=एकत्वभावनामाश्रितः-'अहमेक एवासहायोऽस्मि नास्ति मम कश्चिदात्मकल्याणार्थं द्वितीयः सहायः, अपि च नास्ति केनाऽपि सह

ही रहे, अर्थात् उनकी ओर भगवानने रागसहित दृष्टि भी नहीं रखी। ज्ञातपुत्र भगवान अशरण रहे-संयमकी आराधनाके लिये अन्यजनोंका शरण नहीं लिया, एवं दुःसह प्रतिकूल और अनुकूल परीषहोंके आने पर भी अडोल रहे ॥ १० ॥

भगवानने दीक्षाग्रहण करनेके पहिले कुछ अधिक दो वर्षोंसे शीत जल-सचित्त पानीका त्याग कर दिया था, इस बातको सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं-'अवि साहिए' इत्यादि।

भगवान्ने कुछ अधिक दो वर्षों से सचित्तजलका त्याग करदिया था, अर्थात्-सचित्तजल नहीं पिया। इस एकत्व भावनासे कि-'मैं एक हूं और असहाय हूं-आत्मकल्याणके मार्गमें आगे आनेवाले मेरे लिये

જ રહ્યા, અર્થાત્ ભગવાનની તેમના તરફ રાગરહિતજ દૃષ્ટિ રહી. જ્ઞાતપુત્ર ભગવાન અશરણજ રહ્યા-સંયમની આરાધના માટે બીજાનું શરણુ ન લીધું, અને ગમે તેવા પ્રતિકૂળ કે અનુકૂળ પરિષહો-દુઃસહ દુઃખો આવવા છતાં પણુ અડોલ રહ્યા. (૧૦)

ભગવાને દીક્ષા લીધા પહેલાં બે વર્ષથી પણુ વધારે સમયથી ઠંડા પાણીનો ત્યાગ કરી દીધેલો, આ વાત સૂત્રકાર પ્રદર્શિત કરે છે—'अवि साहिए' ઈત્યાદિ.

ભગવાને બે વર્ષથી પણુ વધારે સમયથી ઠંડા પાણીનો ત્યાગ કરી દીધેલો—અર્થાત્-ઠંડુ (કાચું) પાણી પીધેલ નહી. આ એકત્વ-ભાવનાથી કે-" હું એક છું અને અસહાય છું, આત્મકલ્યાણુના માર્ગમાં આગળ જવાવાળા મારા માટે

शाश्वतिकः पारमार्थिकः सम्बन्धो ममे'-त्यादिरूपामेकत्वभावनामुपगत इत्यर्थः, तथा पिहितार्चः=अर्चा=क्रोधज्वाला पिहिता=उपशमिता येन स तथाविधः, तथा -अभिज्ञातदर्शनः=सम्यक्त्वभावनाभावितः, अत एव शान्तः सन् निष्क्रान्तः=दीक्षां जग्राह ॥ ११ ॥

किञ्च—'पुढविं च' इत्यादि।

मूलम्—पुढविं च आउकायं, तेउकायं च वाउकायं च।
पणगा य बीय-हरियाइं, तसकायं च सव्वसो णच्चा॥१२॥

छाया—पृथिवीं चाप्कायं तेजस्कायं च वायुकायं च।
पनकांश्च बीजहरितानि त्रसकायं च सर्वशो ज्ञात्वा ॥ सू० १२ ॥

टीका—भगवान् पृथिवीं=पृथिवीकायं, अप्कायं, तेजस्कायं, वायुकायं पनकान्=शैवालान्, बीजहरितानि=वनस्पतीन् त्रसकायं च ज्ञात्वा='सर्व एवैते सजीवाः' इत्यवबुध्य सर्वशः=सर्वप्रकारेण तदारम्भं परिवर्जयन् विहरति स्मेत्यर्थः॥ १२॥

इस मार्गमें कोई और दूसरा सहायक नहीं है, मेरा किसीके भी साथ निरन्तर पारमार्थिक संबंध नहीं है" ऐसा विचार कर सदा एकत्व भावनामें तत्पर रहे। क्रोध-कषायकी ज्वालाको प्रभुने उपशमित की। सम्यक्त्वकी भावनासे भावित प्रभुने इसी लिये शान्तचित्त बन दीक्षा अंगीकार की ॥ ११ ॥

और भी—'पुढविं च' इत्यादि।

भगवान्ने पृथिवीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, शैवाल, और बीज-हरितादिरूप वनस्पतिकाय, एवं त्रसकाय, इन छह कायके जीवोंको "ये सब ही जीवसहित हैं" ऐसा जानकर सर्वप्रकारसे उनके आरंभका परित्याग करते हुए ही विहार किया ॥ १२॥

આ માર્ગમાં કોઈ બીજો સહાયક નથી, મારો કોઈની સાથે નિરંતર પારમાર્થિક સંબંધ નથી" આવો વિચાર કરી પ્રભુ સદા એકત્વ ભાવનામાં તત્પર રહેતા ક્રોધકષાયની જ્વાળાને પ્રભુએ સમાવી દીધી હતી. સમ્યકત્વની ભાવનાથી ભાવિત પ્રભુએ આને જ માટે શાન્તચિત્ત બની દીક્ષા અંગીકાર કરેલી (સૂ૦૧૧)

ફરી—'પુઢવિં ચ' ઈત્યાદિ.

ભગવાને પૃથ્વીકાય, અપૂકાય, તેજસ્કાય, વાયુકાય, શૈવાલ અને બીજ-હરિતાદિરૂપ વનસ્પતિકાય અને ત્રસકાય, આ છ કાયના જીવોને "આ બધા જીવસહિત છે" એવું જાણી સર્વ પ્રકારેથી એના આરંભનો પરિત્યાગ કરતાં કરતાં જ વિહાર કરેલો. (૧૨)

भगवता पृथिव्यादिषड्जीवनिकायारम्भः परिवर्जितः, इत्याह—'एयाइं' इत्यादि ।

मूलम्—" एयाइं संति " पडिलेह, चित्तमंताइं से अभिन्नाय ।
परिवज्जिय विहरित्था, इय संखाय से महावीरे ॥१३॥

छाया—" एतानि सन्ति " प्रतिलेख्य चित्तमन्ति स अभिज्ञाय ।
परिवर्ज्य विहरति स्म इति संख्याय स महावीरः ॥ १३ ॥

टीका—स भगवान् महावीरः "एतानि पृथिव्यादीनि चित्तमन्ति" सन्ति इति प्रतिलेख्य=विचार्य, तद् अभिज्ञाय स्वरूपतो ज्ञात्वा, इति=एवं संख्याय=भेद-प्रभेदाभ्यां सर्वांशतो विज्ञाय, तदारम्भं परिवर्ज्य विहरति स्म ॥१३ ॥

जीवानां त्रसस्थावरत्वेन भेदमुपदर्श्य तेषां परस्परानुगमनं भवतीति बोधयितुमाह—'अदु थावरा' इत्यादि ।

मूलम्—अदु थावरा य तसत्ताए, तसा य थावरत्ताए ।
अदुवा सव्वजोणिया सत्ता, कम्मुणा कप्पिया पुढो बाला॥ १४ ॥

भगवानके द्वारा पृथिवी आदि छह जीवनिकायोंका आरंभ त्यक्त हुआ, इसी विषयको सूत्रकार पुनः प्रदर्शित करते हैं–'एयाइं संति' इत्यादि।

भगवान् महावीरने इन पृथिवी आदि षड्जीवनिकाय के जीवोंके आरंभका परित्याग यह विचारकर किया कि–"ये समस्त पृथिवी आदिक सचित्त–सजीव हैं"। तथा "इन सबका स्वरूप क्या है?" इसे भी अच्छी तरहसे जानकर एवं इनके भेद और प्रभेदोंका सर्वांशरूपसे मनन कर उनके आरंभसे रहित हो वे प्रभु विहार करते थे॥१३॥

त्रस और स्थावररूपसे जीवोंके भेदोंको समझाने के लिये सूत्रकार कहते हैं—"अदु थावरा" इत्यादि ।

ભગવાન દ્વારા પૃથ્વી વિગેરે ષટ્જીવનિકાયોનો આરંભ તજવામાં આવેલો, આ વિષયને સૂત્રકાર પુનઃ પ્રદર્શિત કરે છે—'एयाइं संति' ઇત્યાદિ.

ભગવાન મહાવીરે આ પૃથ્વી વગેરે ષડ્જીવનિકાયના જીવોના આરંભનો પરિત્યાગ એ વિચારીને કરેલો કે એ બધા સચિત્ત–સજીવ છે. તથા આ બધાનું સ્વરૂપ શું છે ? એને પણ સારી રીતે જાણી એના ભેદ અને પ્રભેદોને સંપૂર્ણ રીતે વિચારી એના આરંભથી રહિત થઈ પ્રભુ વિહાર કરતા હતા. (૧૩)

જીવોના ત્રસ અને સ્થાવરરૂપના ભેદોને સમજાવવા માટે સૂત્રકાર કહે છે— 'अदु थावरा' ઇત્યાદિ.

छाया—अथ स्थावराश्च त्रसतया, त्रसाश्च स्थावरतया ।
अथवा सर्वयोनिकाः सत्त्वाः कर्मणा कल्पिताः पृथग् बालाः ॥१४॥

टीका—अथ=अनन्तरं स्थावराः=पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः त्रसतया=कर्मप्रभावाद् द्वीन्द्रियादिरूपेण जायन्ते, त्रसाश्च=त्रसजीवाः द्वीन्द्रियादयश्च स्थावरतया=पृथिव्याद्येकेन्द्रियरूपेण पुनरुत्पद्यन्ते, अथवा सर्वयोनिकाः=सर्वयोनयः=उत्पत्तिस्थानानि येषां ते सर्वयोनिकाः=चतुर्गतिगन्तारः, सत्त्वाः=जीवाः, बालाः=मूढाः, कर्मणा=स्वोपात्तेनाष्टविधकर्मणा पृथक्=पृथक्त्वेन- सर्वयोनिगामित्वेन च कल्पिताः=व्यवस्थिता इति । तथा चोक्तम्—

पृथिवी, अप्, तेज, वायु और वनस्पति, ये सब स्थावरकाय-एकेन्द्रिय जीव हैं। ये कर्मके प्रभावसे द्वीन्द्रियादिक रूपसे परभवमें उत्पन्न हो जाते हैं। द्वीन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चोइन्द्रिय, और पंचेन्द्रिय जीव, ये त्रस हैं, क्यों कि इनके त्रस नामकर्मका उदय रहता है। ये त्रस जीव भी कर्मकी विचित्रतासे स्थावर-पृथिवी आदिक एकेन्द्रियरूपसे दूसरे भवमें उत्पन्न हो जाते हैं। अथवा-समस्त योनियां हैं उत्पत्तिस्थान जिन्होंकी ऐसे सर्वयोनिक-चतुर्गतिमें भ्रमण करनेवाले-जीव अज्ञानसे आवृत बन अपने२ द्वारा उपात्त-ग्रहण किये गये अष्टविध कर्मके प्रभावसे भिन्न२ रूपमें सर्व योनियोंमें जाने वाले होते हैं। तात्पर्य यह कि-हरएक भिन्न२ योनिमें रहा हुआ जीव कर्मके उदयसे परभवमें दूसरी योनिमें जन्म धारण कर सकता है। ऐसा नहीं है कि वह एक ही योनिमें नियमितरूपसे जन्म लेता रहे। सो ही कहा है—

પૃથ્વી, અપ્, તેજ, વાયુ અને વનસ્પતિ, આ બધા સ્થાવરકાય એકેન્દ્રિય જીવ છે. એ કર્મના પ્રભાવથી દ્વીન્દ્રિયાદિક રૂપથી પરભવમાં ઉત્પન્ન થઈ જાય છે. બેઇન્દ્રિય, ત્રણઇન્દ્રિય, ચાર ઇન્દ્રિય, પાંચ ઈન્દ્રિય જીવ એ ત્રસ છે, કેમકે એમને ત્રસનામકર્મનો ઉદય રહે છે. આ ત્રસ જીવ પણ કર્મની વિચિત્રતાથી પૃથ્વી આદિ સ્થાવર-એકેન્દ્રિય-રૂપથી બીજા ભવમાં ઉત્પન્ન થાય છે. અથવા-સમસ્ત યોનીઓ જેમનું ઉત્પત્તિસ્થાન છે એવા સર્વયોનિક-ચાર ગતિમાં ભ્રમણ કરવાવાળા જીવ અજ્ઞાનથી આવૃત બની પોતપોતાના દ્વારા ઉપાત્ત-ગ્રહણ કરવામાં આવેલ અષ્ટવિધ કર્મના પ્રભાવથી જુદા જુદા રૂપમાં સર્વ યોનીયોમાં જાવાવાળા હોય છે. તાત્પર્ય એ છે કે-દરેક યોનીયોમાં રહેલ જીવ કર્મના ઉદયથી પરભવમાં બીજી યોનિમાં જન્મ ધારણ કરી શકે છે. એવું નથી કે એક જ યોનિમાં નિયમિત રૂપથી તે જન્મ લેતો રહે. એ જ કહ્યું છે—

" रङ्गभूमिर्न सा काचिच्छुद्धा जगति विद्यते ।
विचित्रैः कर्मनेपथ्यैर्यत्र सत्त्वैर्न नाटितम् "॥१॥ इति ॥ १४ ॥

किञ्च—'भगवं' इत्यादि ।

मूलम्—भगवं च एवमन्नेसिं, सोवहिए हु लुप्पई बाले॥
कम्मं च सव्वसो नच्चा, तं पडियाइक्खे पावगं भगवं ॥१५॥

छाया—भगवांश्चैवमन्वैषीत् सोपधिकः एव लुप्यते बालः ।
कर्म च सर्वशो ज्ञात्वा तत् प्रत्याख्याति पापकं भगवान् ॥ १५॥

टीका—भगवान् महावीरः श्रीवर्धमानस्वामी एवं=वक्ष्यमाणप्रकारेण अन्वैषीत्=अवेदीत् बालः=मोहमुपगतः, सोपधिकः=उपधिना सह वर्तत इति सोपधिकः-द्रव्यभावोपधियुक्तः सन् लुप्यत एव=छिद्यते भिद्यत एव, कर्मप्रभावात् क्लेशमनुभवत्येवेत्यर्थः । तस्माद् भगवान् कर्म, सर्वप्रकारेण ज्ञात्वा तत्=कर्म, पापकं च=कर्मनिबन्धनं सावद्यव्यापारं च प्रत्याख्याति=निराकृतवान् ॥ १५ ॥

" रङ्गभूमिर्न सा काचिच्छुद्धा जगति विद्यते ।
विचित्रैः कर्मनेपथ्यैर्यत्र सत्त्वैर्न नाटितम् "॥ १ ॥

जगतमें ऐसी कोईसी भूमि शुद्ध नहीं बची कि जहां पर कर्मकी विचित्र रचनासे युक्त इस जीवने अपना नाटक न किया हो ॥ १४॥

फिर भी—'भगवं च' इत्यादि ।

भगवान श्री वर्धमान स्वामीने यह बात जान ली कि जो अज्ञानी प्राणी द्रव्य और भाव उपाधिसे युक्त हैं, वे ही कर्मके प्रभाव-उदयसे छेदे और भेदे जाते हैं, रात दिन अनेक क्लेशोंका अनुभव करते ही रहते हैं । इसी लिये प्रभुने कर्मका यह विचित्र प्रभाव सर्व प्रकारसे

" रङ्गभूमिर्न सा काचिच्छुद्धा जगति विद्यते।
विचित्रैः कर्मनेपथ्यै,-र्यत्र सत्त्वैर्न नाटितम् " ॥१॥

જગતમાં એવી કોઈ પણ, ભૂમિ શુદ્ધ નથી બચી કે જ્યાં કર્મની વિચિત્ર રચનાથી યુક્ત આ જીવે પોતાનું નાટક ન કર્યું હોય. (૧૪)

ફરી—"भगवं च" ઈત્યાદિ.

ભગવાન શ્રી વર્ધમાન સ્વામીએ આ વાત જાણેલી કે જે અજ્ઞાની પ્રાણી દ્રવ્ય અને ભાવ ઉપાધિથી યુક્ત છે, તે કર્મના પ્રભાવ-ઉદયથી છેદાય અને ભેદાય છે. રાત દિવસ અનેક કલેશોનો અનુભવ કરતા જ રહે છે. આ માટે પ્રભુએ

किञ्च—'दुविहं' इत्यादि ।

मूलम्—दुविहं समिच्च मेहावी, किरियामक्खायऽणेलिसं नाणी।
आयाणसोयमइवायसोयं, जोगं च सव्वसो णच्चा ॥१६॥

छाया--द्विविधं समेत्य मेधावी क्रियामाख्यातवान् अनीदृशीं ज्ञानी ।
आदानस्रोतः अतिपातस्रोतः योगं च सर्वशो ज्ञात्वा ॥ १६ ॥

टीका--मेधावी=हेयोपादेयविवेकवान्, ज्ञानी=ज्ञानचतुष्टयसंपन्नो भगवान् द्विविधं ऐर्यापथिक-सांपरायिकभेदाद् द्विप्रकारकं कर्म समेत्य=अवबुध्य, तथा-आदानस्रोतः=आदीयते गृह्यते बध्यते कर्मानेनेत्यादानं दुष्प्रणिहितमिन्द्रियं, तद्रूपं स्रोतः=कर्मागमनमार्गः मिथ्यात्वादिरूपस्तत्, अतिपातस्रोतः=प्राणातिपातादिरूपम्।

जानकर उस कर्मका और कर्मके कारणभूत पापजनक सावद्य व्यापारका सदाके लिये त्रियोग और त्रिकरणसे प्रत्याख्यान किया ॥१५॥

और भी—'दुविहं' इत्यादि ।

हेय और उपादेयके ज्ञानसे युक्त, तथा मति, श्रुत आदि चार ज्ञान-धारी भगवान श्रीमहावीर स्वामीने ऐर्यापथिक और सांपरायिकके भेदसे कर्मोंकी द्विविधता स्वयं जानकर, तथा आदानस्रोतरूप मिथ्यात्व आदि, अतिपातस्रोतरूप प्राणातिपातादि, एवं अशुभ मन वचन और कायको " ये सब सर्व प्रकारसे कर्मबन्धके कारण हैं " ऐसा जानकर संयमका अनुष्ठान-पालन करनेरूप क्रियाका कथन किया, अर्थात् आचरण किया। जिनके द्वारा कर्मोंका बंधन हो वह आदान है, और वह अशुभरूपसे

કર્મના એ વિચિત્ર પ્રભાવને જાણી એ કર્મનું અને કર્મના કારણભૂત પાપજનક સાવદ્ય વ્યાપારનું સદાને માટે ત્રિયોગ અને ત્રિકરણથી પ્રત્યાખ્યાન કરેલ. (૧૫)

ફરી-' દુવિહં ' ઇત્યાદિ.

હેય અને ઉપાદેયના જ્ઞાનથી યુક્ત તથા મતિ, શ્રુત આદિ ચાર જ્ઞાનધારી ભગવાન શ્રી મહાવીર સ્વામીએ ઐર્યાપથિક અને સાંપરાયિકના ભેદથી કર્મોની વિવિધતા સ્વયં જાણી, અને આદાનસ્રોતરૂપ મિથ્યાત્વ વગેરે, અતિપાતસ્રોતરૂપ પ્રાણાતિપાતાદિ, એમ જ અશુભ મન વચન અને કાયાને " એ બધા સર્વ પ્રકારથી કર્મ બન્ધનના કારણ છે " આવું જાણી સંયમનું અનુષ્ઠાન-પાલન કરવારૂપ ક્રિયાનું કથન એટલે આચરણ કર્યું જેનાથી કર્મોનું બંધન થાય છે તે આદાન છે,અને તે અશુભરૂપથી પ્રવૃત્ત બનેલ ઇન્દ્રિયોરૂપ હોય છે. કર્મોના આવવાના

योगं=दुष्प्रणिहितं मनोवाक्कायं सर्वशः=सर्वप्रकारैः कर्मबन्धाय ज्ञात्वा अनीदृशीम्=उत्कृष्टक्रियां=संयमानुष्ठानरूपाम् आख्यातवान्=आचरितवानित्यर्थः ॥१६॥

किञ्च—'अइवत्तियं' इत्यादि।

मूलम्—अइवत्तियं अणाउट्टिं, सयमन्नेसिं अकरणयाए।

जस्सित्थीओ परिन्नाया, सव्वकम्मावहा उ से अदक्खू॥१७॥

छाया—अतिपातिकाम् अनाकुट्टिं स्वयमन्येषाम् अकरणतया।

यस्य स्त्रियः परिज्ञाताः सर्वकर्मावहाः तु सोऽद्राक्षीत् ॥१७॥

टीका—यो भगवान् अतिपातिकां=अतिपापेभ्यः=प्राणातिपातेभ्योऽतिक्रान्तां प्राण्युपमर्दनवर्जिताम्, अनाकुट्टिम्=आकुट्टिर्हिंसा तदन्याऽनाकुट्टिः=अहिंसा, तामनुसृत्य, स्वयमन्येषां च अकरणतया—स्वतः परेण च हिंसापरिवर्जनेन प्रवृत्तः, तथा—यस्य भगवतः स्त्रियः सर्वकर्मावहाः=सर्वविधकर्मबन्धमूला इति परिज्ञाताः=ज्ञ-परिज्ञया ज्ञाताः प्रत्याख्यान—परिज्ञया परित्यक्ता भवन्ति, स भगवान् अद्राक्षीत्=यथाऽवस्थितं संसारस्वभावं परमार्थतत्त्वं ज्ञातवान् ॥१७॥

प्रवर्त्तित की गई इन्द्रियांरूप होता है। कर्मोंके आनेके मार्गका नाम स्रोत है। वह मिथ्यात्व आदि रूप है। आदानरूप स्रोतका नाम आदानस्रोत है ॥१६॥

और भी—'अइवत्तियं' इत्यादि।

प्राणातिपातरूप पापोंसे रहित होनेसे शुद्ध ऐसी अहिंसाका भगवानने स्वयं अनुसरण करके दूसरोंसे भी हिंसादिक कार्योंका परिवर्जन कराया। भगवानने सर्व प्रकारसे कर्मबन्धका मूल कारण स्त्रीवर्गका, ज्ञ—परिज्ञासे जानकर प्रत्याख्यान—परिज्ञासे परित्याग किया, और यथावस्थित संसारका स्वभाव भी जानलिया ॥ १७ ॥

માર્ગનું નામ સ્રોત છે, તે મિથ્યાત્વ આદિરૂપ છે. આદાનરૂપ સ્રોતનું નામ આદાનસ્રોત છે. (૧૬)

ફરી—'अइवत्तियं' ઇત્યાદિ.

પ્રાણાતિપાતરૂપ પાપોથી રહિત હોવાથી શુદ્ધ, એવી અહિંસાને ભગવાને સ્વયં અનુસરણ કરી, બીજાઓને પણ હિંસાદિક કાર્યોનો ત્યાગ કરાવ્યો. ભગવાને સર્વ પ્રકારથી કર્મબંધનું કારણ સ્ત્રી વર્ગને જ્ઞપરિજ્ઞાથી જાણી પ્રત્યાખ્યાન-પરિજ્ઞાથી પરિત્યાગ કરી યથાવસ્થિત સંસારના સ્વભાવને જાણી લીધો. (૧૭)

भगवतो मूलगुणानभिधायोत्तरगुणानाह-'अहाकडं' इत्यादि ।

मूलम्—अहाकडं न से सेवे, सव्वसो कम्मुणो बंधं अद्क्खू ।
जं किंचि पावगं भगवं, तं अकुव्वं वियडं भुंजित्था ॥१८॥

छाया—यथाकृतं न स सेवते सर्वशः कर्मणो बन्धमद्राक्षीत् ।
यत् किंचित्पापकं भगवांस्तदकुर्वन् विकृतमभुङ्क्त ॥ १८ ॥

टीका—यथाकृतम्=यथा येन प्रकारेण पृष्ट्वाऽपृष्ट्वा वा साधुमुद्दिश्य कृतं यथाकृतम् अधःकर्मादिकदोषदूषितं सर्वशः=सर्वप्रकारेण, कर्मणा=ज्ञानावरणीयादिनाऽऽत्मनो बन्धमद्राक्षीत्=दृष्टवान्, तस्मात् स अधःकर्मादिदोषदूषितमाहारं न सेवते स्म । अन्यदप्येवम्भूतं न सेवते स्मेत्याह—'यत् किञ्चित्' इत्यादि। यत् किञ्चित्' पापकं=पापकारणं, सदोषमन्नादिकं, तद् अकुर्वन्=अस्वीकुर्वन् अगृह्णन् विकृतं=प्रासुकम् अभुङ्क्त=सेवते स्म ॥ १८ ॥

किञ्च—'णो सेवइ' इत्यादि ।

भगवान के मूलगुणोंका कथन कर अब सूत्रकार उत्तर गुणोंका कथन करते हैं—'अहाकडं' इत्यादि ।

पूछकर अथवा नहीं पूछकर साधुके उद्देश्यसे जो किया गया हो उसका नाम यथाकृत है । यथाकृत आहारादिक अधःकर्मादिदोषोंसे दूषित रहता है। भगवानने इस यथाकृत-अधःकर्मादिदोषदूषित आहारादिका सेवन नहीं किया, कारण कि "इस प्रकारसे आहारादिके सेवनसे आत्मा कर्मोंका उपार्जन करती है, और उनका बंध करती है" ऐसा भगवानने अपने ज्ञानचक्षुसे देखा। इसी प्रकार और भी सदोष पापकारण अन्न आदि वस्तु ग्रहण करनेका भगवान्ने त्याग कर दिया । केवल वे निर्दोष प्रासुक ही आहारादि लेते थे ॥१८॥

ભગવાનના મૂળગુણોનું કથન કરી હવે સૂત્રકાર ઉત્તરગુણોનું કથન કરે છે– 'अहाकडं' ઇત્યાદિ.

પૂછીને અથવા ન પૂછીને સાધુના ઉદ્દેશથી જે કરાયેલ છે તે યથાકૃત આહારાદિક છે, જે અધઃકર્માદિ દોષોથી દૂષિત રહે છે. ભગવાને આ યથાકૃત અધઃકર્માદિદોષદૂષિત આહારાદિકનું સેવન કરેલ નથી, કારણ કે "આવા પ્રકારના આહારાદિકના સેવનથી આત્મા કર્મોનું ઉપાર્જન કરે છે, અને તેનો બંધ પણ કરે છે" એવું ભગવાને પોતાના જ્ઞાનચક્ષુથી જોયું. આ રીતના બીજા પણ સદોષ પાપકારણવાળા અન્ન આદિ વસ્તુ ગ્રહણ કરવાનો ભગવાને ત્યાગ કર્યો. તેઓ ફકત નિર્દોષ પ્રાસુક જ આહારાદિક લેતા હતા. (૧૮)

मूलम्—णो सेवइ य परवत्थं, परपाए वि से ण भुंजित्था।
परिवज्जियाण ओमाणं, गच्छइ संखडिमसरणाए ॥१९॥

छाया—नो सेवते च परवस्त्रं, परपात्रेऽपि स नाभुङ्क्त।
परिवर्ज्यापमानं गच्छति संखडिमशरणाय ॥ १९ ॥

टीका—स=भगवान् परवस्त्रं न सेवते=न गृह्णाति, अपि च परपात्रेऽपि नाभुङ्क्त, अपमानं परिवर्ज्य=अगणयित्वा अशरणाय=संयमाराधनार्थमदीनमनस्कः सन् संखण्डि=संखण्ड्यन्ते उपमर्द्यन्ते प्राणिनो यत्र तां संखडिम्=आहारपाकस्थानं गच्छति=जगामेत्यर्थः। अत्र संखडि-शब्देन ज्ञातिभोजनरूपोऽर्थो न गृह्यते, तस्याः शास्त्रे निषिद्धत्वात् ॥ १९ ॥

किञ्च—' मायण्णे ' इत्यादि।

मूलम्—मायण्णे असणपाणस्स, नाणुगिद्धे रसेसु अपडिन्ने ।
अच्छिं पि नो पमज्जिज्जा, नो वि य कंडूयए मुणी गायं॥२०॥

छाया—मात्राज्ञोऽशनपानस्य, नानुगृद्धो रसेषु अप्रतिज्ञः ।
अक्षिणी अपि नो प्रमार्जयति, नापि च कण्डूयते मुनिर्गात्रम् ॥ २०॥

और भी—'णो सेवइ ' इत्यादि।

भगवानने दूसरोंका वस्त्र अपने उपयोगमें नहीं लिया, और न दूसरोंके पात्रमें भोजन ही किया। अपने अपमानका ख्याल न कर, स्वयं भगवान संयम आराधनाके निमित्त अदीनमन होकर आहारके पाकस्थान (गृहस्थोंके यहां आहार बनानेके भोजनघर) में जाते थे। भगवानने यह ख्याल नहीं किया कि आहार लेनेके लिये जानेमें मेरा अपमान है। ऐसा करनेसे ही संयमकी अच्छी तरहसे पालना होती है, ऐसी भावनासे वे स्वयं आहार लेने जाया करते थे ॥ १९ ॥

ફરી–' णो सेवइ ' ઇત્યાદિ.

ભગવાને બીજાઓનાં વસ્ત્રોને પોતાના ઉપયોગમાં નથી લીધાં. તેમજ બીજાના પાત્રમાં ભોજન પણ કીધું નથી. પોતાના અપમાનનો ખ્યાલ કર્યા વિના ભગવાને પોતે સંયમ આરાધનાના નિમિત્ત અદીનમન બનીને ગૃહસ્થોને ત્યાં તેમના ભોજનગૃહે જતા હતા. આમાં ભગવાને એવો ખ્યાલ નથી કર્યો કે આહાર લેવા જવામાં મારૂં અપમાન થાય છે. આવું કરવાથીજ સંયમની સારી રીતે પાલના થાય છે. એવી ભાવનાથીજ તેઓ જાતે આહાર લેવા જતા હતા. (૧૯)

टीका—अशनपानस्य मात्रज्ञः=परिमाणज्ञः । तथा रसेषु=मधुरादिषु नानुगृद्धः =अनासक्तः, गृहस्थावस्थायामपि रसगृद्धिरहितत्वादिति भावः, अत एव अप्रतिज्ञः रसविशेषप्रतिज्ञावर्जितः, "अद्य मया मोदका एव ग्राह्याः' इत्यादिरूपा प्रतिज्ञा भगवतो नासीत्, किन्तु शीतलपर्युषितपिण्डनीरसपुराणकुलत्थादिके सप्रतिज्ञ एव। तथा—अक्षिणी अपि रजःकणकादिनिस्सारणाय न प्रमार्जयति, अपि च मुनिः=सर्वजीवसमभावो भगवान् गात्रं न कण्डूयते दंशमशकादिदंशनेऽपि हस्तादिना शरीरसंघर्षणं न कृतवानित्यर्थः ॥ २० ॥

फिर भी—'मायण्णे' इत्यादि।

भगवान सदा अशनादिकका सेवन मात्रानुसार ही किया करते थे, क्यों कि वे स्वयं 'इन्हें कितनी मात्रामें लेना चाहिये' इस विषयसे परिचित थे। तथा प्रभु कभी भी किसी भी रसमें गृद्ध नहीं बने। गृहस्थ अवस्थामें भी ये रसगृद्धिसे रहित रहे, इसी लिये भगवान् किसी रसविशेषके लेनेकी प्रतिज्ञा अंगीकृत नहीं की। "आज मैं मोदक ही खाऊँगा" इत्यादि प्रकारकी प्रतिज्ञा भगवानने कभी भी धारण नहीं की। शीतल, पर्युषित पिण्ड और नीरस पुरानी कुलथी आदिके आहार लेनेमें तो वे नियमयुक्त ही रहे। भगवानने अपनी आंखोंमें गिरे हुए रजके कणोंको निकालनेके निमित्त आंखोंको कभी कहीं न मसलते और न दंशमशकादिकके काटने पर शरीरको खुजाते थे ॥ २० ॥

ફરી—'मायण्णे' ઇત્યાદિ.

ભગવાન સદા અશનાદિકનું સેવન માત્રાનુસાર જ કરતા હતા, કેમ કે તેઓ સ્વયં 'એને કેટલી માત્રાથી લેવાં જોઇએ' તેનાથી પરિચિત હતા, તથા પ્રભુ કયારેય પણ કોઈ પણ રસમાં ગૃદ્ધિવાળા થયા નથી. ગૃહસ્થ અવસ્થામાં પણ તેઓ રસગૃદ્ધિથી અલિપ્ત રહ્યા હતા. આ કારણે ભગવાને કદી કોઈ રસ વિશેષને લેવાની પ્રતિજ્ઞા અંગીકૃત કરેલ ન હતી. "આજ હું લાડુ જ ખાઇશ" ઈત્યાદિ પ્રકારની પ્રતિજ્ઞા ભગવાને કદિ પણ ધારણ કરેલ ન હતી. શીતળ, પર્યુષિત-પિંડ અને જુની કળથી વગેરેનો આહાર લેવામાં તો તેઓ પ્રતિજ્ઞાવાળા જ રહ્યા, ભગવાને પોતાની આંખોમાં પડેલા રજકણોને બહાર કાઢવા નિમિત્તે પણ આંખોને કદિ મસળી ન હતી, તેમ ડાંસ, મચ્છરના કરડવાથી શરીરને કદિ પણ ખંજવાળેલ નથી. (૨૦)

अन्यच्च--'अप्पं तिरियं' इत्यादि ।

मूलम्—अप्पं तिरियं पेहाए, अप्पं पिट्ठओ य पेहाए ।
अप्पं वुइए पडिभासी, पंथपेही चरे जयमाणे ॥२१॥

छाया--अल्पं तिर्यक् प्रेक्षते, अल्पं पृष्ठतः प्रेक्षते ।
अल्पमुक्तः प्रतिभाषी, पथिप्रेक्षी चरति यतमानः ॥ २१ ॥

टीका--भगवान् मार्गे गच्छन् तिर्यक्=तिरश्चीनम् अल्पं प्रेक्षते=न पश्यति स्म । अत्राल्पशब्दो निषेधार्थकः । तथा पृष्ठतोऽपि अल्पं प्रेक्षते । उक्तः=केनापि पृष्ठः सन् अल्पं प्रतिभाषी=न ब्रवीति स्म, किन्तु पथिप्रेक्षी=पन्थानं=स्वशरीर-परिमितां पुरोवर्त्तिनीं भूमिं प्रेक्षितुं=द्रष्टुं शीलमस्येति स तथोक्तः यतमानः=यतनां कुर्वाणः सन् चरति=विहरति स्म ॥ २१ ॥

पुनश्च--'सिसिरंसि' इत्यादि ।

मूलम्—सिसिरंसि अद्धपडिवन्ने, तं वोसिज्ज वत्थमणगारे ।
पसारित्तु बाहू परक्कमे, नो अवलंबियाण खंधंमि ॥२२॥

छाया--शिशिरेऽध्वप्रतिपन्न,-स्तद् व्युत्सृज्य वस्त्रमनगारः ।
प्रसार्य बाहू पराक्रमते, नो अवलम्ब्य स्कन्धे ॥ २२ ॥

और भी--'अप्पं तिरियं' इत्यादि ।

भगवानने मार्गमें विहार करते समय न तिरछा देखते और न पीछे ही देखते, किन्तु अपने शरीरप्रमाण भूमिका ही सामने निरीक्षण करते। विहारमें किसीके पूछने पर भी प्रभु किसीसे कुछ नहीं बोलते थे, और यतनाचारपूर्वक ही प्रभु विहार करते थे ॥ २१ ॥

फिर भी--'सिसिरंसि' इत्यादि ।

ફરી પણ—" अप्पं तिरियं " ઇત્યાદિ.

ભગવાન્ માર્ગમાં વિહાર કરતી વખતે આડું અવળું જોતા ન હતા, તેમ પાછળ પણ ફરીને જોતા ન હતા, પણ પોતાના શરીરપ્રમાણ ભૂમિને જ જોઇને ચાલતા. વિહારમાં કોઇના પૂછવા ઉપર પણ પ્રભુ કોઇથી બોલતા ન હતા અને યત્નાચારપૂર્વક પ્રભુ વિહાર કરતા હતા. (૨૧)

ફરી—' सिसिरंसि ' ઇત્યાદિ.

टीका--अध्वप्रतिपन्नः=मार्गारूढः अनगारो=भगवान् शिशिरे=शीतकाले तद् वस्त्रं व्युत्सृज्य=परित्यज्य बाहू=भुजौ स्कन्धभागे नो अवलम्ब्य=शीतबाधानिवारणार्थं न संस्थाप्य, किन्तु प्रसार्य=बाहुद्वयं विस्तार्य च पराक्रमते=परीषहसहनाय यतते स्म ॥ २२ ॥

उपसंहरन्नाह--' एस विही ' इत्यादि ।

मूलम्--एस विही अणुक्कंतो, माहणेण मईमया ।

बहुसो अपडिन्नेण, भगवया एवं रीयंति-त्तिबेमि ॥२३॥

छाया--एष विधिरनुक्रान्तो माहनेन मतिमता ।

बहुशोऽप्रतिज्ञेन भगवता, एवं रीयंते, इति ब्रवीमि ॥ २३ ॥

टीका--माहनेन=यः स्वयं हननिवृत्तः सन् परं प्रति 'मा हन मा हन' इत्येवं वदति, स माहनस्तेन, मतिमता=हेयोपादेयप्रज्ञावता बहुशोऽप्रतिज्ञेन=सर्वथा निदान-

---

मार्गारूढ-विहारमें रहे हुए-भगवानने उस वस्त्रका शीतकालमें परित्याग कर दिया। शीतको दूर करनेके लिये उन्होंने अपने दोनों हाथोंको कंधों पर नहीं रखा, अर्थात् शीतसे पीड़ित होने पर लोग दाये हाथको वांये कंधे पर और बांयें दाथको दाहिने कंधे पर दबा कर रखलेते हैं, इससे शीतबाधा सताती नहीं है, सो प्रभुने शीतबाधाकी निवृत्तिके लिये वस्त्र त्यागकरके भी ऐसा नहीं किया, प्रत्युत दोनों भुजाओंको ऊंची करके वे शीत-परीषहको सहन करते थे ॥२२॥

उपसंहार करते हुए कहते हैं--'एस विही' इत्यादि ।

स्वयं हननादिकार्योंसे निवृत्त होकर दूसरोंको भी 'मा हन, मा हन- 'मत मारो, मत मारो' इस प्रकार कहकर उनसे निवृत्त कराने वाले, तथा

માર્ગારૂઢ-વિહારમાં રહેતા-ભગવાને એ વસ્ત્રનો ઠંડીના સમયે ત્યાગ કરી દીધેલ. ઠંડીને દૂર કરવા માટે તેઓએ પોતાના બન્ને હાથોને ખાંધ ઉપર રાખ્યા નથી, અર્થાત્ ઠંડીથી પિડાતી વખતે લોકો ડાબા હાથને જમણા કાંધ પર અને જમણા હાથને ડાબા કાંધ ઉપર રાખે છે, જેથી ઠંડીની પીડા એને સતાવતી નથી, પરંતુ પ્રભુએ ઠંડીથી બચવા વસ્ત્રત્યાગ કર્યા પછી પણ એમ કરેલ ન હતું, પરંતુ બન્ને હાથોને ઉંચા કરી તેઓ શીત-પરિષહને સહન કરતા હતા. (૨૨)

ઉપસંહાર કરતાં કહે છે--' एस विही ' ઈત્યાદિ.

સ્વયં હણવાદિક કાર્યોથી નિવૃત્ત બની બીજાઓને પણ मा हन-मा हन-"મારો નહિ, મારો નહિ" આ પ્રકારનું કહીને તેનાથી નિવૃત્ત કરાવનાર, તથા હેય અને

रहितेन भगवता=श्रीवर्धमानस्वामिना एषः=प्रागुक्तः विधिः=आचारः अनुक्रान्तः= अनुसेवितः, एवम्=अनेन विधिनाऽन्येऽपि मोक्षसाधकाः साधवः सकलकर्मक्षयार्थं रीयन्ते=विहरन्ति संयममार्गे विहरेयुरिति भावः। 'इति ब्रवीमि' अस्य व्याख्या पूर्ववत् ॥ २३ ॥

॥ नवमाध्ययनस्य प्रथम उद्देशः समाप्तः ॥ ९-१ ॥

हेय और उपादेयके विवेकसे युक्त, एवं सर्वथा अप्रतिज्ञ-निदानरहित, ऐसे श्रीवर्धमानस्वामीने यह पूर्वोक्त आचार स्वयं पालन किया,अतः इसी तरहसे अन्य मोक्षसाधक साधुजन भी अपने समस्तकर्मोंका नाश करनेके लिये संयममार्गमें विचरण करे, अर्थात् इसी प्रकारसे इस विधिका पालन कर अन्य मोक्षार्थी मुनि भी अपने कर्मोंका नाश करनेके लिये संयम-मार्गमें लवलीन बनें। "इति ब्रवीमि" इन पदोंकी व्याख्या पहिले की गई व्याख्याकी तरह जान लेनी चाहिये ॥२३ ॥

॥ नववें अध्ययनका प्रथम उद्देश समाप्त ॥ ९-१ ॥

ઉપાદેયના વિવેકથી યુકત અને સર્વથા અપ્રતિજ્ઞ-નિદાનરહિત એવા શ્રી વર્ધમાન સ્વામીએ આ પૂર્વોકત આચાર સ્વયં પાલન કરેલ. એટલે આ રીતે બીજા મોક્ષસાધક (મોક્ષના અભિલાષી) સાધુજન પણ પોતાના સમસ્ત કર્મોનો નાશ કરવા માટે વિચરણ કરે. અર્થાત્—એવા પ્રકારથી એવી વિધિનું પાલન કરી બીજા મોક્ષાર્થી મુનિ પણ પોતાના કર્મોનો નાશ કરવા માટે સંયમમાર્ગમાં લવલીન બને "इति ब्रवीमि" આ પદોની વ્યાખ્યા અગાઉના અધ્યયનોમાં કહેવાયા પ્રમાણે સમજવી જોઈએ. (૨૩)

નવમા અધ્યયનનો પ્રથમ ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૯-૧ ॥

। अथ नवमाध्ययनस्य द्वितीय उद्देशः ।

इहानन्तरप्रथमोद्देशके महावीरस्य भगवतो विहारः कथितः, तत्र शय्याऽऽसनानि यथा तस्याऽऽसन् तद्बोधनार्थं द्वितीयोद्देशकं कथयति। तत्र जम्बूस्वामी श्रीसुधर्मस्वामिनं पृच्छति—'चरियासणाइं' इत्यादि।

मूलम्—चरियासणाइं सिज्जाओ, एगइयाओ जाओ बुइयाओ ।
आइक्ख ताइं सयणासणाइं, जाइं सेवित्था से महावीरो ॥१॥

छाया—चर्यासनानि शय्या एकिका या उक्ताः ।
आख्याहि तानि शयनासनानि यानि सिषेवे स महावीरः ॥ १ ॥

टीका--'चरिया' इति लुप्तविभक्तिकमिदम् । चर्यायां=विहारावस्थायां यानि आसनानि, याश्च, शय्या एकिकाः=एकैकप्रकारा विभिन्नरूपाः पूर्वम् उक्ताः, यानि शयनासनानि स=लोकत्रयप्रसिद्धः भगवान् महावीरः श्रीवर्धमानस्वामी सिषेवे तानि आख्याहि, इति ॥१॥

नववें अध्ययनका दूसरा उद्देश ।

इस नवम अध्ययनके प्रथम उद्देशमें श्री महावीर प्रभुका विहार वर्णित किया जा चुका है। उस विहारमें प्रभुकी शय्या और आसन जिस प्रकारके थे उन्हें समझानेके लिये सूत्रकार इस द्वितीय उद्देशका प्रारंभ करते हैं । यहां जम्बूस्वामी श्रीसुधर्मास्वामीसे पूछते हैं-'चरियासणाइं' इत्यादि ।

भगवन्! यह तो कहिये कि भगवान्श्री महावीरने विहार करते समय जिन२ शय्या और आसनोंका सेवन किया है ये एक ही प्रकारके थे या भिन्न२ प्रकारके ॥१॥

નવમા અધ્યયનનો બીજો ઉદ્દેશ

આ નવમા અધ્યયનના પ્રથમ ઉદ્દેશમાં શ્રી મહાવીર પ્રભુના વિહારનું વર્ણન કરવામાં આવેલ છે. એ વિહારમાં પ્રભુની શય્યા અને આસન જે પ્રકારનાં હતાં એ સમજાવવા માટે સૂત્રકાર આ બીજા ઉદ્દેશનો પ્રારંભ કરે છે. અહિં જમ્બૂસ્વામી શ્રી સુધર્મા સ્વામીને પૂછે છે-'चरियासणाइं' ઈત્યાદિ.

ભગવન્! એ તો બતાવો કે ભગવાન શ્રી મહાવીરે વિહાર કરતી વખતે જે જે શય્યા અને આસનનું સેવન કરેલ તે એક જ પ્રકારનાં હતાં કે જુદા જુદા પ્રકારનાં ? (૧)

एवं पृष्टः श्रीसुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिनं प्रत्याह–' आवेसण० ' इत्यादि।

मूलम्–आवेसणसभापवासु, पणियसालासु एगया वासो ।
अदुवा पलियट्ठाणेसु, पलालपुंजेसु एगया वासो ॥२॥

छाया—आवेशनसभाप्रपासु पण्यशालासु एकदा वासः।
अथवा पलितस्थानेषु पलालपुञ्जेषु एकदा वासः॥२॥

टीका––एकदा=कदाचित्, आवेशनसभाप्रपासु=आ=समन्ताद् विशन्ति यत्र, तदावेशनम्=शून्यगृहम्, सभा=ग्रामनगरवासिनां लोकानामास्थायिकार्थमागन्तुकानां शयनार्थं च या कुडयाद्याकृतिर्ग्रामवासिभिर्नगरवासिभिश्च क्रियते सा सभा, प्रपा=पानीयशाला, आवेशनं च, सभा च, प्रपा च, एषामितेतरयोगद्वन्द्वः-आवेशनसभाप्रपास्तासु, तथा कदाचित्–पण्यशालासु=आपणेषु भगवतो वासः अभूत्। अथवा–कदाचित् पलितस्थानेषु=पलितमिव पलितं=कर्म तस्य स्थानानि कर्मस्थानानि कर्मा-

---

इस प्रकार पूछे जाने पर श्री सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामीसे कहते हैं–' आवेसण ' इत्यादि ।

उन त्रिलोकप्रसिद्ध श्री महावीर भगवानकी शय्या और आसन सब भिन्न२ प्रकार के थे। वे कभी आवेशन–शून्यगृहमें, कभी सभा–नगर या ग्रामवासियोंद्वारा नगर और ग्रामके लोगोंको बैठनेके लिये और पथिकोंको सोनेके लिये जो कुडयाकृति–आस्थाई (चोरा) बनाई हुई होती है उसमें, कभी२ प्याऊ–पानीकी शाला–में कभी२ पण्यशाला–दुकानोंमें, या पलिस्तथान-लुहारकी शालामें और कभी२ पलालकी बनी हुई झोंपडीमें निवास करते थे। " पलियट्ठाणेसु " की संस्कृत छाया "पलितस्थानेषु" है। इसका अर्थ "पलितमिव पलितं–कर्म, तस्य स्थानं कर्मस्थानं=कर्मादा-

---

આ રીતે પુછવાથી શ્રી સુધર્માસ્વામી જમ્બૂસ્વામીને કહે છે–' आवेसण 'ઈત્યાદિ.

તે ત્રણ લોકમાં પ્રસિદ્ધ શ્રી મહાવીર ભગવાનની શય્યા અને આસન જુદા જુદા પ્રકારનાં હતાં તેઓ ક્યારેક ઉજડ ઘરમાં, કદી સભા–નગર અથવા ગ્રામવાસીઓએ લોકોને બેસવા માટે અને મુસાફરોને ઉતરવા માટે બનાવેલ સાર્વજનિક આરામગૃહોમાં, ક્યારેક પરવોમાં, ક્યારે–ક્યારેક કોઈ દુકાનોમાં અથવા લુહારની કોડમાં અને ક્યારેક પરાળની બનાવેલી ઝુંપડીમાં નિવાસ કરેલો. " पलियट्ठाणेसु " ની સંસ્કૃત છાયા " पलितस्थानेषु " છે. આનો અર્થ–पलितमिव

दानस्थानानि 'कारखाना' इति प्रसिद्धानि, तेषु लोहकारादिशालादिषु, तथा कदाचित् पलालपुञ्जेषु=पलालनिर्मितकुटीरेषु तस्य वासः अभूत् ॥२॥

किञ्च–'आगंतारे' इत्यादि।

मूलम्–आगंतारे आरामागारे, तह य णगरे वि एगया वासो।
सुसाणे सुण्णगारे वा, रुक्खमूले वि एगया वासो ॥३॥

छाया—आगन्त्रगारे आरामागारे तथा च नगरेऽपि एकदा वासः।
श्मशाने शून्यागारे वा, वृक्षमूलेऽपि एकदा वासः ॥३॥

टीका—एकदा=कदाचित् आगन्त्रागरे=आगन्तृभ्यः अगारम् आगन्त्रगारं ग्रामान्नगराद् वा बहिरागन्तुकजननिवासार्थं गृहं धर्मशालेत्यर्थः, तस्मिन् भगवतो वासः =अवस्थानं बभूव। एकदा=कदाचित् आरामागारे–आरामः=उपवनं तत्रागारं=गृहं तस्मिन्, तथा कदाचित् नगरेऽपि=नगरमध्येऽपि तस्य वासो बभूव। तथा एकदा श्मशाने वा, अथवा शून्यागारे=शून्यगृहे कदाचित् वृक्षमूलेऽपि=वृक्षतलेऽपि भगवतो वासो बभूव ॥३॥

नस्थानं" इस व्युत्पत्तिके अनुसार कर्मों के आदानका स्थानभूत–कारखाना भी होता है। पलाल–एक तरहका घास होता है ॥२॥

और भी—'आगंतारे' इत्यादि।

कभी२ वे प्रभु ग्राम तथा नगरसे बाहर बनी हुई धर्मशालामें उतरते तो कभी २ बगीचामें ठहरते। कभी नगरमें तो कभी श्मशानमें, कभी किसी शून्यघरमें तो कभी किसी वृक्षके नीचे ही रहजाते। इस प्रकार प्रभुके ठहरनेका कोई नियमित स्थान नहीं था, जहां अवसर देखते वहां प्रासुक स्थानमें ठहर जाते ॥ ३ ॥

पलितं, कर्म, तस्य, स्थानं=कर्मस्थानं, कर्मादानस्थानं આ વ્યુત્પતિ અનુસાર કર્મોના આદાનનું સ્થાન–કારખાનું પણ થાય છે ત્યાં. પરાળ આ એક જાતનું ઘાસ છે. (૨)

ફરી—" आगंतारे " ઇત્યાદિ

ક્યારેક ક્યારેક પ્રભુ ગામ અથવા તો શહેરની બહાર બનેલી ધર્મશાળાઓમાં ઉતરતા તો ક્યારેક બગીચામાં રોકાતા. ક્યારેક નગરમાં તો ક્યારેક સ્મશાનમાં, ક્યારેક ઉજ્જડ ઘરોમાં તો ક્યારેક કોઈ વૃક્ષના નીચેજ રહી જતા. આ રીતે પ્રભુના રોકાવાનું કોઈ નિયમિત સ્થાન ન હતું, જ્યાં અવસર મળતો ત્યાં પ્રાસુક સ્થાનમાં રોકાઈ જતા. (૩)

भगवान् कियन्तं कालं यावत् तपःसंयमाराधनं कृतवानिति जिज्ञासायामाह-'एएहिं मुणी' इत्यादि।

मूलम्—एएहिं मुणी सयणेहिं, समणे आसि पतेरसवासे ।
राइंदियंपि जयमाणे, अप्पमत्ते समाहिए झाइ ॥४॥

छाया—एतेषु मुनिः शयनेषु श्रमणः आसीत् प्रत्रयोदशवर्षाणि ।
रात्रिंदिवमपि यतमानः अप्रमत्तः समाहितो ध्यायतिः ॥४॥

मुनिः=भगवान् महावीरः श्रीवर्धमानस्वामी एतेषु=प्रागुक्तेषु शयनेषु=वसतिषु प्रत्रयोदशवर्षाणि=प्रकर्षेण=किंचिदधिकार्धभागेन त्रयोदशं येषु तानि तथाभूतानि वर्षाणि, सार्धपञ्चमासन्यूनत्रयोदशवर्षाणीत्यर्थः; रात्रिंदिवमपि=अहर्निशं, यतमानः =संयमाराधनपरायणः, श्रमणः=तपसि समुद्युक्त आसीत् । तथा-अप्रमत्तः निद्रादि-प्रमादपरिवर्जितः समाहितः=विस्रोतसिकारहितः सन् ध्यायति धर्मध्यानमिति ॥४॥

किञ्च—'णिद्दं पि नो' इत्यादि।

मूलम्—णिद्दं पि नो पगामाए, सेवइ भगवं उट्ठाए ।
जग्गवइ य अप्पाणं, ईसिंसाई आसि अपडिन्ने ॥५॥

छाया—निद्रामपि नो प्रकामतया सेवते भगवान् उत्थाय ।
जागरयति चात्मानं ईषच्छायी आसीत् अप्रतिज्ञः ॥ ५ ॥

भगवानने कितने समयतक तप और संयमका आराधन किया ? इस प्रकारकी जिज्ञासाका समाधान करते हुए सूत्रकार कहते हैं—'एएहिं' इत्यादि ।

विहार अवस्थामें श्रमण भगवान महावीर इन पूर्वोक्त वसतियोंमें तेरह वर्षसे कुछ कम अर्थात्-साढेबारह वर्ष और पन्द्रह दिन-रहे। वे रात और दिन संयमकी आराधना करते हुए तपश्चर्यामें तत्पर रहे, और प्रमादरहित होकर समाधिभावयुक्त वे सदा धर्मध्यानमें तत्पर रहे ॥४॥

और भी—'णिद्दंपि नो' इत्यादि ।

ભગવાને કેટલા સમય સુધી તપ અને સંયમની આરાધન કરી ? આ પ્રકારની જીજ્ઞાસાનું સમાધાન કરતાં સૂત્રકાર કહે છે-'एएहिं' ઈત્યાદિ.

વિહાર અવસ્થામાં શ્રમણ ભગવાન શ્રી મહાવીર વસ્તીયોમાં ૧૩ તેર વર્ષથી થોડો ઓછો સમય રહ્યા હતા તેઓ રાત દિવસ સંયમની આરાધના કરતાં કરતાં તપશ્ચર્યામાં તત્પર રહેતા અને પ્રમાદરહિત થઈ સમાધિભાવયુક્ત ધર્મ-ધ્યાનમાં સદા એકરૂપ બની રહતા. (૪)

ફરી—'णिद्दंपि नो' ઈત્યાદિ.

टीका—भगवान्=महावीरः श्रीवर्धमानस्वामी प्रकामतया निद्रामपि नो सेवते, निद्राऽधीनो न बभूवेत्यर्थः। चकारस्त्वर्थे, किन्तु उत्थाय=निद्रासमागमनकाले सावधानीभूय आत्मानं जागरयति=तपःसंयमाराधने प्रवर्तयति। अप्रतिज्ञः=स्वाप-प्रतिज्ञारहितः ईषच्छायी=छद्मस्थावस्थाया अन्तिमरात्रावन्तर्मुहूर्तमात्रकालस्वप्नदर्शी आसीत्=अभूत् ॥५॥

किञ्च—'संबुज्झमाणे' इत्यादि।

मूलम्—संबुज्झमाणे पुणरवि, आसिंसु भगवं उट्ठाए।
निक्खम्म एगया राओ, बहिं चंकमिया मुहुत्तागं ॥६॥

छाया—संबुध्यमानः पुनरपि आसिष्ट भगवान् उत्थाय।
निष्क्रम्यैकदा रात्रौ बहिश्चङ्क्रम्य मुहूर्तकम् ॥ ६ ॥

टीका—पुनरपि भगवान् श्रीवर्धमानस्वामी संबुध्यमानः=निद्रादोषं सम्यग् जानन् 'निद्रा कर्मबन्धस्य कारणमस्ती'—त्यवगच्छन् निद्रासमागमनकाले संयमोत्थानेन उत्थाय एकदा=कदाचित् शीतकाले रात्रौ बहिर्निष्क्रम्य=बहिर्नि-

भगवान श्री महावीर प्रभुने अधिक निद्राका सेवन नहीं किया, अर्थात् वे निद्राके अधीन नहीं हुए। जिस समय निद्रा आनेका समय होता था उस समय वे सावधान होकर अपनी आत्माको तप और संयमकी आराधना करनेमें लगा देते थे। ये स्वाप–सोनेकी प्रतिज्ञासे रहित थे। छद्मस्थावस्थाकी अन्तिम रात्रिमें अन्तर्मुहूर्तकालमात्र ही स्वप्नदर्शी बने ॥ ५ ॥

और भी—'संबुज्झमाणे' इत्यादि।

श्री वीरप्रभु निद्राके आधीन नहीं हुए, क्यों कि यह वे जानते थे कि निद्रा कर्मबन्धका कारण है। यदि कभी निद्रा आने लगती तो शीत-

ભગવાન શ્રીમહાવીર સ્વામીએ કદી અધિક નિદ્રાનું સેવન કર્યું નથી, અર્થાત્ તેઓ નિદ્રાને આધીન બન્યા નથી. જે સમયે નિદ્રા આવવાનો સમય હોય એ સમયે સાવધાન બની પોતાના આત્માને તપ અને સંયમની આરાધનામાં લગાડી દેતા હતા. તેઓ સ્વાપ–સુવાની પ્રતિજ્ઞાથી રહિત હતા, છદ્મસ્થાવસ્થાની છેલ્લી રાત્રે અન્તર્મુહૂર્તકાળમાત્રમાં સ્વપ્નદર્શી બન્યા. (૫)

ફરી—'संबुज्झमाणे' ઇત્યાદિ.

નિદ્રાને શ્રી મહાવીર પ્રભુ કર્મ બંધનું કારણ માનીને તેનો ત્યાગ કરતા હતા. ક્યારે નિદ્રા આવતી તો શીતકાલની રાત્રીમાં મકાન બહાર જઈ મુહૂર્ત માત્ર ધર્મધ્યાનમાં તત્પર બની નિદ્રાના વિજેતા બનતા. (૬)

गत्य मुहूर्तकं=मुहूर्तमात्रं चङ्क्रम्य=ध्याने विहृत्य धर्मध्यानावस्थितो भूत्वेत्यर्थः आसिष्ट=उपाविशत्-निद्रां परिवर्जयामासेति भावः ॥ ६ ॥

किञ्च--' सयणेहिं ' इत्यादि।

मूलम्-सयणेहिं तस्सुवसग्गा, भीमा आसी अणेगरूवा य ।
संसप्पगा य जे पाणा; अदुवा जे पक्खिणो उवचरंति॥७॥

छाया--शयनेषु तस्योपसर्गा भीमा आसन् अनेकरूपाश्च ।
संसर्पकाश्च ये प्राणा अथवा पक्षिण उपचरन्ति ॥ ७ ॥

टीका--शयनेषु=शय्यते=स्थीयते विविधासनादिभिर्यत्र तानि शयनानि आश्रयस्थानानि, तेषु तस्य भगवतः श्रीवर्धमानस्वामिनः भीमाः=घोराः अनेकरूपा उपसर्गा आसन्=उपस्थिता बभूवुः। तथा-ये संसर्पकाः=सरीसृपाः शून्यगृहादौ सर्पनकुलादयः, प्राणाः=प्राणिनः, अथवा-ये पक्षिणः=श्मशानादौ गृध्रादयस्तेऽपि उपचरन्ति=नानाविधमुपसर्गं कुर्वन्ति स्म, तद्गात्रचर्ममांसादिकं कृन्तन्ति स्मेत्यर्थः॥७॥

किञ्च--'अदु कुचरा' इत्यादि।

कालकी रातमें मकानसे बाहर जाकर मुहूर्तमात्र धर्मध्यानमें तल्लीन होकर वे उस निद्रा पर विजय प्राप्त कर लेते ॥६॥

और भी—'सयणेहिं' इत्यादि ।

शयनोंमें-आश्रयभूत स्थानोंमें उन वीर प्रभुके ऊपर घोर उपसर्ग उपस्थित होते थे। कभी २ शून्य घरमें रहने पर सरीसृप-सर्प नकुल आदि प्राणी, अथवा श्मशानमें वसने पर गृध्र आदि पक्षी अनेक प्रकारसे उनके ऊपर उपसर्ग करते, परन्तु वे धीर वीर सबकुछ सहन करते थे, यहां तक कि जब गृध्र आदि पक्षी उनके शरीरके मांसको भी नोंचते तो भी वे समभावसे सहन करते परंतु उनका निवारण नहीं करते ॥७॥

और भी—'अदु कुचरा' इत्यादि ।

ફરી--' सयणेहिं ' ઈત્યાદિ.

શયનમાં-આશ્રયવાળા સ્થાનોમાં શ્રી મહાવીર પ્રભુ ઉપર ઘોર ઉપસર્ગ ઉપસ્થિત થતા હતા. ક્યારેક ઉજ્જડ ઘરોમાં રહેવાથી સર્પ વગેરે પ્રાણી તેમજ શ્મશાનમાં રહેવાથી ગીધ વગેરે પક્ષીથી અનેક પ્રકારનાં દુઃખો સહેવાં પડતાં હતાં ધીર વીર એવા પ્રભુ આ બધાં દુઃખોને સહન કરતા તે ત્યાં સુધી કે જ્યારે ગીધ વગેરે પક્ષીયો તેમના શરીરના માંસને ચાંચોથી ચાવતા તો પણ સમભાવથી બધુ સહન કરતા, પરંતુ તેનું નિવારણ કરતા નહીં. (૭)

ફરી—' अदु कुचरा ' ઈત્યાદિ.

मूलम्—अदु कुचरा उवचरंति, गामरक्खा य सत्तिहत्था य ।
अदु गामिया उवसग्गा, इत्थी एगइया पुरिसा य ॥८॥

छाया—अथ कुचरा उपचरन्ति ग्रामरक्षाश्च शक्तिहस्ताश्च।
अथ ग्राम्या उपसर्गा स्त्रियः एकिकाः पुरुषा वा ॥ ८ ॥

टीका—कुचराः=कुत्सिताचरणशीलाः चौरव्यभिचारिप्रभृतयः उपचरन्ति=भगवत उपसर्गं कुर्वन्ति स्म । स्वस्वकार्येऽन्तरायं मत्वा भगवन्तं कशादिभिस्ताडयन्ति स्मेत्यर्थः । तथा—शक्तिहस्ताः=शस्त्रविशेषधारिणः ग्रामरक्षाः=प्राहरिकादयः उपचरन्ति=चौरलुण्टकशङ्कया भगवन्तं प्रहरन्ति स्म । अथवा ग्राम्याः=ग्रामधर्मावस्थिताः कामवशगा इत्यर्थः, अत एवोपसर्गाः=उपसर्गकारित्वादुपसर्गरूपाः स्त्रियः एकिकाः=एकाकिन्यः समागत्य उपचरन्ति=भगवन्तं विषयार्थमुपसर्गयन्ति स्म। वा=अथवा—पुरुषा अपि तम् उपचरन्ति='इममन-

---

चौर, व्यभिचारी आदि जन भी उनको उपसर्ग देते थे। इसका कारण यह था कि वे भगवानको अपने २ कार्योंमें विघ्नरूप मानते थे, अतः वे भगवानको चाबुकसे मारते थे। गांवकी रक्षा करनेवाले कोटवाल आदिजन भी कि जिनके हाथमें शक्ति नामका शस्त्र रहता था, भगवानको चोर, लुटेरा समझकर उनपर प्रहार करते। कभी२ कामाधीन मदोन्मत्त स्त्रियां भी भगवानके पास अकेली आकर उनसे वैषयिक लालसा प्रकट करती, इस तरह वे भी भगवानके ऊपर अनेक प्रकारसे उपद्रव बरसाती। कोई पुरुषवर्ग भी यह समझकर कि 'यह अतिशयरूप संपन्न है—अनन्तरूप और लावण्यका भंडार है, इसे देखकर हमारी

ચોર, વ્યભિચારી વિગેરે માણસો તરફથી ભારે રીતનો ત્રાસ આપવામાં આવતો, જેનું કારણ એ હતું કે એ લોકો ભગવાનને પોતપોતાના કાર્યોમાં વિઘ્નરૂપ ગણતા, આથી તેઓ ભગવાનને ચાબખાથી મારતા હતા. ગામની રક્ષા કરવાવાળા પટેલ પસાયતા વગેરે લોકો પણ કે જેના હાથમાં શક્તિ નામનું શસ્ત્ર રહેતું હતું, ભગવાનને લૂટારા, ચોર વગેરે માનતા અને આ કારણે અવનવીન ત્રાસ આપતા. કોઈ કોઈ વખત કામથી મદોન્મત્ત બનેલી એવી સ્ત્રીઓ પણ ભગવાન પાસે એકલી આવતી અને તેમની પાસેથી વિષયભોગની લાલસા જણાવતી. આ કારણે આવી સ્ત્રીઓ પણ ભગવાનની ઉપર અનેક પ્રકારના ઉપદ્રવ વરસાવતી. કોઈ પુરૂષવર્ગ પણ ભગવાનનું અતિશય લાવણ્યમય શરીર જોઇ એવી શંકા ધરાવતા કે 'અમારી સ્ત્રીઓ આમનું લાવણ્ય-

न्तरूपलावण्यशालिनं विलोक्य मदीयदयिता मत्तो विरता भविष्यती'-ति मत्वोपसर्गं चकारेत्यर्थः ॥८॥

किञ्च--'इहलोइयाइं' इत्यादि ।

मूलम्—इहलोइयाइं परलोइयाइं, भीमाइं अणेगरूवाइं ।

अवि सुब्भि-दुब्भिगंधाइं, सद्दाइं अणेगरूवाइं ॥९॥

छाया--ऐहलौकिकान् पारलौकिकान् भीमान् अनेकरूपान् ।

अपि सुरभिदुरभिगन्धान् शब्दान् अनेकरूपान् ॥ ९ ॥

टीका--भगवान् ऐहलौकिकान्=मनुष्यकृतान्, पारलौकिकान्=देवतिर्यक्-कृतांश्च भीमान्=भयङ्करान् अनेकरूपान्=अनुकूलप्रतिकूलान् उपसर्गान् सहते स्म । तथा-सुरभिदुरभिगन्धान्=सुरभिगन्धान्=स्रक्चन्दनजनितान्, दुरभिगन्धान्=पूतिगन्धान् मृतसर्पशृगालकलेवरसमुत्थान्, तथा अनेकरूपान्-मनोज्ञामनोज्ञान् शब्दाँश्च सहते स्म ॥ ९ ॥

ललनाएँ हमसे विरक्त हो जायगीं' इस दुरभिप्रायसे उन पर उप-सर्ग करते ॥८॥

और भी—'इहलोइयाइं' इत्यादि ।

वे भगवान परीषह और उपसर्गोंकी कुछ भी परवाह न कर मनु-ष्यकृत अनेक भयंकर उपद्रवोंको, देवकृत एवं तिर्यञ्चकृत अनेक कठोर उपसर्गोंको, चाहे वे अनुकूल हों चाहे प्रतिकूल हों, सहते थे। पुष्पोंकी माला, और मलयागिरचंदनसे उत्पन्न सुगन्धिमें और सडे हुए सर्प, शृगाल आदिके कलेवरकी दुर्गन्धमें, तथा मनोज्ञ और अमनोज्ञ इन्द्रि-योंके शब्दादिक विषयोंमें उन्हें न राग था और न द्वेष था, वे सब अवस्थामें समभावी थे॥९॥

મય શરીર જોઈ અમારાથી વિરકત બની જશે' આવો ખરાબ વિચાર મનમાં લાવી એમના ઉપર ત્રાસ વરતાવતા. (૮)

ફરી-'इहलोइयाइं' ઈત્યાદિ.

ભગવાન આવા દુઃખો અને ઉપસર્ગોની લેશ માત્ર પરવા ન કરતાં મનુષ્યો દ્વારા કરાતા અનેક ભયંકર ઉપદ્રવો, દેવ અને તિર્યંચોથી કરાતા અનેક કઠોર ઉપસર્ગો, ચાહે તે અનુકૂળ હોય કે પ્રતિકૂળ, તેને સહન કરતા. પુષ્પોની માળા, મલીયાગિરી ચંદનથી ઉત્પન્ન સુગંધમાં, તથાસડેલા સર્પ, તેમજ અન્ય મરેલા પશુઓના સડેલા શરીરોની દુર્ગંધમાં, તથા મનોજ્ઞ અને અમનોજ્ઞ ઈન્દ્રિયોના શબ્દાદિક વિષયોમાં એમને ન તો રાગ હતો ન દ્વેષ, તેઓ દરેક અવસ્થામાં સમભાવી હતા. (૯)

अन्यच्च--' अहियासए ' इत्यादि ।

मूलम्—अहियासए सयासमिए, फासाइं विरूवरूवाइं ।
अरइं रइं अभिभूय, रीयइ माहणे अबहुवाई ॥१०॥

छाया--अध्यास्ते सदासमितः स्पर्शान् विरूपरूपान् ।
अरतिं रतिम् अभिभूय रीयते माहनः अबहुवादी ॥१०॥

टीका— सदासमितः=पञ्चसमितिसमन्वितः विरूपरूपान्=अनेकप्रकारकान् स्पर्शान्=दुःखविशेषान् अध्यास्ते=अधिसहते स्म। अबहुवादी=अल्पभाषी माहनः= भगवान् अरतिं संयमे, तथा रतिं विषयानन्दे अभिभूय=तिरस्कृत्य निवार्येत्यर्थः, रीयते=तपःसंयमसमाराधने प्रवर्तते स्म ॥१०॥

किञ्च—' स जणेहिं ' इत्यादि।

मूलम्—स जणेहिं तत्थ पुच्छिसु एगचरा वि एगया राओ ।
अव्वाहिय कसाइत्था, पेहमाणे समाहि अपडिन्ने ॥११॥

छाया—स जनैः तत्र अप्रच्छि एकचरा अपि एकदा रात्रौ ।
अव्याहते कषायिताः प्रेक्षमाणः समाधिम् अप्रतिज्ञः ॥ ११ ॥

और भी--'अहियासए' इत्यादि ।

उन प्रभुने निरन्तर पांच समितियोंके पालनमें सावधान रह कर ही अनेक प्रकारके दुखोंको सहन किया। वे सदा ही हित मित प्रिय वचन बोलते। अल्पभाषण करते–बहुत थोड़ा बोलते। संयमसे अरतिभावको और विषयोंसे रतिभावको हटानेमें ये सदा जागरूक रहते और तप संयमकी ही आराधनामें सदा तत्पर रहते ॥१०॥

और भी—'स जणेहिं' इत्यादि ।

ફરી–' अहियासए ' ઈત્યાદિ.

પ્રભુ નિરંતર પાંચ સમિતિયોના પાલનમાં સાવધાન રહેતા, અને અનેક પ્રકારના દુઃખોને સહન કરતા. તેઓ સદા હિત મિત અને પ્રિયવચન જ બોલતા, એટલે બહુ જ થોડા બોલતા. સંયમથી અરતિભાવને અને વિષયોથી રતિભાવને દૂર કરવામાં જાગૃત રહેતા. તપ અને સંયમનીજ આરાધનામાં સદા તૈયાર રહેતા. (૧૦)

ફરી–' स जणेहिं ' ઈત્યાદિ.

टीका-शून्यगृहे निर्जने वा स भगवान् जनैः अप्रच्छि=पृष्टः, यथा-'को भगवान्? किमत्र स्थितः? कुतः समायातः ?, इत्येवं पृष्टोऽपि तूष्णीमेवासीत्। तथा-एकचराः=एकाकिनः जारपुरुषादयः एकदा=कदाचित् , रात्रौ दिवसे वा भगवन्तं पप्रच्छुः, तदा भगवता-अव्याहृते सति कषायिताः=क्रोधादियुक्ताः सन्तः भगवन्तं दण्डमुष्ट्यादिभिस्ताडयन्ति स्म। भगवांस्तु अप्रतिज्ञः=वैरनिर्यातनप्रतिज्ञारहितः समाधिं प्रेक्षमाणः=धर्मध्यानं समालम्बयन् सहते स्म ॥११॥

किञ्च—' अयमंतरंसि ' इत्यादि।

भगवान् जिस समय विहारमें रहते हुए शून्यगृह आदिमें ठहरते तो उस समय मनुष्य अनेक प्रकारके उनसे प्रश्न करते-कोई पूछता-तुम कौन हो? क्यों ठहरे हो। कोई २ पूछता - अरे तुम कहांसे आये हुए हो, इत्यादि। इस प्रकार पूछे जाने पर भी वे प्रभु किसीको कुछ भी उत्तर नहीं देते और मौन रहते। इसी प्रकार कभी२ व्यभिचारी पुरुष अकेले आकर जब भगवानसे कुछ पूछते तो भगवान् उस समय भी मौन रहते-उन्हें कुछ भी उत्तर नहीं देते। इस प्रकार उनके चित्तमें भगवानके प्रति कषायपरिणति जागृत हो जाती और इससे क्रोधाविष्ट हो वे भगवानको दण्ड और मुक्के आदिसे खूब पीटते-मारते, परन्तु फिर भी भगवानके चित्तमें वैरका बदला लेनेका भाव उनके प्रति जागृत नहीं होता था, प्रत्युत समाधिपूर्वक वे धर्मध्यानमें ही तल्लीन होकर उन सब उपसर्गों को सहते ॥११॥

और भी--'अयमंतरंसि' इत्यादि।

ભગવાન જે સમય વિહારમાં રહેતા અને ઉજ્જડ ઘર વગેરે સ્થળે રોકાતા તો એ સમયે માણસો આવી અનેક પ્રકારના પ્રશ્નો કરતા. કોઇ પુછતું તમે કોણ છો ? અહિં કેમ રોકાયા છો ? કોઈ કોઇ પુછતું કે તમે કયાંથી આવ્યા છો ? વગેરે. આ રીતે પુછનારાઓમાંના કોઈને પણ પ્રભુ કોઇ પણ ઉત્તર આપતા નથી પરંતુ મૌન રહેતા. આજ રીતે કોઇ કોઇ વ્યભિચારી પુરૂષ એકલો આવી ભગવાનને કાંઈ પુછે તો પણ ભગવાન મૌન જ રહેતા, એને પણ કાંઈ જવાબ આપતા નહીં. આથી એ લોકોના દિલમાં ભગવાન પ્રત્યે કષાયપરિણતિ જાગી જતી અને ક્રોધયુક્ત બની આવા માણસો ભગવાનને લાકડીથી કે હાથથી ખુબ માર મારતા, છતાં પણ ભગવાનના દિલમાં તેમના પ્રત્યે બદલો લેવાની વૃત્તિ જાગતી નહીં. ગમે તેવા સમયે પણ તેઓ સમાધિપૂર્વક ધર્મધ્યાનમાં જ તલ્લીન રહી આ બધા ઉપસર્ગોને સહન કરતા. (૧૧)

ફરી—' अयमंतरंसि ' ઇત્યાદિ.

मूलम्—अयमंतरंसि को इत्थ ?, अहमंसि त्ति भिक्खु आहट्टु ।
अयमुत्तमे से धम्मे, तुसिणीए कसाइए झाइ ॥१२॥

छाया—अयमन्तः कोऽत्र ? अहमस्मीति भिक्षुः आहृत्य ।
अयमुत्तमः स धर्मस्तूष्णीकः कषायितान् ध्यायति ॥१२॥

टीका—अन्तः=मध्ये, अयं कोऽस्ति, इत्येवं दुःशीलैः कर्मकरादिभिर्वा पृष्टः भगवान् कश्चिद् शङ्कादिदोषवारणार्थमाह स्म—'अहं भिक्षुरस्मि' इति। एवमुक्ते सति स्वार्थव्याघातेन कषायितास्ते भगवन्तमब्रुवन्—'आहट्टु'=अयं देशीयः शब्दः शीघ्रार्थकः, शीघ्रमितः स्थानान्निर्गच्छ, ततः स भगवान् अयं=निषेधितस्थानान्निस्सरणरूपो धर्मः=आचारः उत्तमः=श्रेष्ठः, इति कृत्वा ततो निर्जगाम। यदि ते निर्गन्तुं नाब्रुवन् तदा कषायितान् प्रति तूष्णीकः सन् ध्यायति=ध्यानस्थ एवासीत्=धर्मध्यानात् प्रच्युतो न बभूवेत्यर्थः ॥१२॥

"इस शून्ये घरके भीतर कौन ठहरा हुआ है" इस प्रकार जब प्रभुसे कोई दुश्शील कर्मकरादि जन पूछता, तब भगवान उसकी शंकाकी निवृत्तिके लिये यही प्रत्युत्तर देते कि—मैं भिक्षु हूं। इस प्रकार प्रभुके कहने पर जब उसका किसी प्रकारका स्वार्थ उनके वहां रहनेसे घातित होता तो वह भगवान पर क्रुद्ध होकर उनसे कहता कि—तुम यहांसे निकल कर शिघ्र ही किसी दूसरे स्थानपर चले जाओ। भगवान भी इसकी इस प्रकारकी बातसे भी मध्यस्थभावयुक्त होकर यह समझकर कि 'निषेध किये गये स्थानपर साधुको नहीं ठहरना चाहिये, यही साधुका उत्तम आचार है' वहांसे निकल जाते। यदि वे वहांसे निकलनेको नहीं कहते तो भी प्रभु अपने ऊपर कषाययुक्त उन मनुष्योंके प्रति समभावी होकर धर्मध्यानमें ही मग्न रहते—धर्मध्यानसे कभी ये प्रच्युत नहीं होते॥१२॥

"આ ઉજ્જડ ઘરમાં કોણ ઉતરેલ છે" એ પ્રકારથી જ્યારે પ્રભુને કોઈ પુછતું ત્યારે ભગવાન એની શંકાનું સમાધાન કરવા એટલો જ પ્રત્યુત્તર આપતા કે—હું ભિક્ષુ છું. આ જવાબ પછી પુછનારનો આમાં કોઈ પ્રકારનો સ્વાર્થ ન દેખાતો તો તે ભગવાન સામે ક્રોધિત બની કહેતો કે તમે અહિંથી નીકળી કોઈ બીજા સ્થાન ઉપર તાત્કાલિક ચાલ્યા જાવ. ભગવાન પણ આ પ્રકારની એની વાતથી મધ્યસ્થ ભાવયુક્ત થઈ એવું સમજીને એ સ્થાનનો ત્યાગ કરતા કે 'જ્યાં વિરોધ કરવામાં આવે એ સ્થાનમાં સાધુએ ન રોકાવું જોઈએ. એ જ સાધુનો ઉત્તમ આચાર છે' ત્યાંથી નીકળી જતા. જો તે ત્યાંથી નિકળવાનું નહિ કહેતા તો પણ પ્રભુ પોતાના ઉપર કષાયયુકત થતા તે માણસો પ્રત્યે સમભાવી બની ધર્મધ્યાનમાં મગ્ન રહેતા. ધર્મધ્યાનથી કદી પણ તેઓ ચ્યુત ન થતા. (૧૨)

किञ्च--'जंसिप्पेगे' इत्यादि।

मूलम्—जंसिप्पेगे पवेयंति, सिसिरे मारुए पवायंते।
तंसिप्पेगे अणगारा, हिमवाए निवायमेसंति ॥१३॥

छाया--यस्मिन्नप्येके प्रवेपन्ते शिशिरे मारुते प्रवाति (सति)।
तस्मिन्नप्येकेऽनगारा,–हिमवाते निवातमेषयन्ति ॥१३॥

टीका--यस्मिन् शिशिरे=शिशिरऋतौ, मारुते–शीतपवने प्रवाति=प्रकर्षेण वहति सति, एके=केचन अन्ये जनाः प्रवेपन्ते=प्रकर्षेण दन्तवीणावादनपुरस्सरं कम्पन्ते। यद्वा–'प्रवेदयन्ति' इति छाया, शीतसमुत्थं स्पर्शदुःखमनुभवन्ति। तस्मिन्नपि काले एके=केचन अन्येऽनगाराः हिमवाते=शीतलसमीरे वहति सति निवातं=निर्वातस्थानम्, एषयन्ति=गवेषयन्ति ॥ १३ ॥

किञ्च--'संघाडीओ' इत्यादि।

मूलम्—संघाडीओ पवेसिस्सामो, एहा य समादहमाणा।
पिहिया व सक्खामो, अइदुक्खे हिमगसंफासा ॥१४॥

छाया--संघाटीः प्रवेक्ष्यामः, एधांसि च समादहन्तः।
पिहिता वा शक्ष्यामः, अतिदुःखान् हिमकसंस्पर्शान् ॥१४॥

और भी—'जंसिप्पेगे' इत्यादि।

शीतऋतुमें कि जिसमें शीतल पवनके चलने पर कई मनुष्योंके शरीरमें रोंगटे खडे हो जाते हैं, दांतोंसे दांत बजने लगते हैं, शरीरमें खूब कपकपी छूटने लगती है, इस प्रकार बड़ी मुश्किलसे शीतका दुःख सहन होता है। कई एक अनगार तो इस शीतकालमें ऐसे स्थानकी खोजमें रहते हैं कि जहां शीतल वायुका संचार तक भी न हो और ठंडी हवासे त्राण–रक्षण–होता रहे ॥ १३ ॥

ફરી—'જંસિપ્પેગે' ઇત્યાદિ.

શરદીની ૠતુમાં ઠંડા પવનના ચાલવાથી માણસોના શરીરમાં એનો પ્રવેશ થતાં રૂવાડાં ઉભાં થઇ જાય છે, દાંત સામે દાંત અથડાય છે, શરીરમાં કંપારી છુટે છે. આ રીતે ખુબજ મુશ્કેલીથી ઠંડીનું દુઃખ માણસો સહન કરે છે. કોઈ અનગાર તો આ ઠંડીથી બચવા એવા સ્થાનની તપાસમાં રહે છે કે ઠંડા વાયુનો સંચાર પણ ન થઈ શકે અને ઠંડીથી એનો બચાવ થઇ શકે. (૧૩)

टीका—तथा-केचिदेकेऽनगाराः=साधवः इच्छन्ति-शीतार्दिता वयं संघाटीः= शीतनिवारणक्षमाणि प्रावरणानि यथावश्यकमेकं द्वयं त्रयं वा प्रवेक्ष्यामः=स्वशरीरं तत्र निवेशयिष्याम इति, तथा कुर्वन्ति च। परतीर्थिकास्तापसादयस्तु एवमिच्छन्ति-वयम्-एधांसि=काष्ठानि समादहन्तः अतिदुःखान् हिमकसंस्पर्शान्=शीतस्पर्शान् सोढुं शक्ष्यामः=पारयिष्यामः, इति, तथा कुर्वन्ति च। एके केचिद् गृहस्थाः पुनरेवं वाञ्छन्ति-वयं पिहिताः=शीतनिवारणक्षममृदुककम्बलशालद्विशालकादिभिराच्छादिताः सन्तः शीतस्पर्शान् सोढुं शक्ष्याम इति, तथा कुर्वन्ति च ॥१४॥

किञ्च—'तंसि' इत्यादि।

मूलम्—तंसि भगवं अपडिन्ने, अहे विगडे अहियासए दविए।
निक्खम्म एगया राओ, चाएइ भगवं समियाए ॥१५॥

और भी—'संघाडीओ' इत्यादि।

कई एक साधुजन अपने पासमें रखी हुई उपधिसे अपने शरीरको ढांक कर शीतसे अपनी रक्षा करते हैं, कभी ऊनी कंबल ओढ लिया करते हैं तो कभी सूती दो वस्त्रोंसे अपने शीतका निवारण कर लेते हैं। इससे भी यदि ठंडका निवारण नहीं हो तो ऊनी कंबलके साथ सूती चद्दर मिलाकर शीतकी बाधासे अपनी रक्षा किया करते हैं। परतीर्थिक तापसजन तो ऐसे समयमें लकडे जलाकर धूनी लगा लेते हैं और उसके पास बैठकर तापते हुए शीतकी कड़कती ठंडीसे अपनी रक्षा करते रहते हैं। कई धनिक गृहस्थजन इस समय शीतनिवारण योग्य शाल दुशाले ओढकर शीतसंबंधी दुःखोंसे अपनेको बचाते रहते हैं ॥१४॥

ફરી—'સંઘાડીઓ' ઈત્યાદિ.

કોઈ કોઈ સાધુજન ઠંડીના બચાવ માટે પોતા પાસે રાખેલાં વસ્ત્રાદિકથી પોતાના શરીરને ઢાંકી ઠંડીથી રક્ષણ મેળવે છે. ક્યારેક ઉની કમ્બલ ઓઢી લે છે. તો ક્યારેક સુતરનાં બે વસ્ત્રોથી પોતાની ઠંડીનું નિવારણ કરી લ્યે છે. પરંતુ જ્યારે ઠંડીનો ઉપદ્રવ વધે છે, ત્યારે ઉની કમ્બલ અને સુતરાઉ વસ્ત્રો ભેળાં કરી ઓઢે છે અને ઠંડીથી પોતાનું રક્ષણ કરે છે. પરતીર્થિક તાપસજન તો આ સમયે લાકડાં બાળી ધુણી ધખાવી એની પાસે બેસી તાપે છે અને એ રીતે કડકડતી ઠંડીથી પોતાની રક્ષા કરે છે. ધનવાળા કોઈ ગૃહસ્થો આ સમયે શાલ દુશાલા ઓઢીને ઠંડીથી પોતાને બચાવે છે. (૧૪)

छाया--तस्मिन् अप्रतिज्ञः, अधोविकटे अध्यास्ते द्रविकः ।
निष्क्रम्यैकदा रात्रौ शक्नोति, भगवान् शमितया ॥१५॥

टीका--तस्मिन्=तथाभूते शिशिरे काले हिमवाते प्रवहति सति अप्रतिज्ञः=निर्वातस्थानप्रार्थनादिरूपप्रतिज्ञाविवर्जितः, द्रविकः-द्रावणात्=कर्मग्रन्थिनाशनाद् द्रवः=संयमः, सोऽस्यास्तीति द्रविकः=यथाख्यातचारित्रः, भगवान्=श्रीवर्धमानस्वामी अधोविकटे=कुड्यादिरहिते स्थाने स्थित्वा अध्यास्ते=अतिदुःखदशीतस्पर्शानधिसहते स्म । एकदा=कदाचित् रात्रौ निष्क्रम्य=मुहूर्त्तमात्रं बहिः स्थित्वा भगवान् शमितया=उपशान्तभावेन व्यवस्थितः सन् अतिदुःखान् हिमसंस्पर्शान् सोढुं शक्नोति=अधिसहते स्म ॥१५॥

और भी 'तंसि' इत्यादि ।

ऐसे शीतकालमें भी श्री वीर प्रभुने यह स्वप्न तकमें भी विचार नहीं किया कि मुझे कोई निर्वात स्थान मिल जाय, प्रत्युत वे इस समयमें भी चौहटे पर कि जहां चारों ओरसे शीतल पवन बहकर ठंडको खूब असह्य बना देती है, स्थित होकर यथाख्यात चारित्र की आराधनामें तल्लीन रहते हुए शीतपरीषहको सहन करते। कभी२ रात्रिमें भी वसतिसे बाहर निकल कुछ समय तक वहां ठहर कर उपशान्त भावसे वे प्रभु शीतकालके कष्टोंको सहते।

इस सूत्रमें 'द्रविक' शब्दका अर्थ-"यथाख्यातचारित्रका आराधन करने वाला" ऐसा है। "द्रावणात्=कर्मग्रन्थिनाशनाद् द्रवः" कर्मरूप

ફરી—"तंसि" ઈત્યાદિ.

આવા ઠંડીના સમયમાં પણ શ્રી વીર પ્રભુએ સ્વપ્ને પણ એવો વિચાર નથી કર્યો કે મને કોઇ ઠંડીથી બચી શકાય તેવું સ્થાન મળી જાય. આવી કડકડતી ઠંડીના સમયે પણ પ્રભુ તદ્દન ઉઘાડા કે જ્યાં ચારે તરફથી ઠંડી પવનનો સુસવાટો લાગતો હોય તેવા સ્થાને સ્થિત બની યથાખ્યાત ચારિત્રની આરાધનામાં તલ્લીન રહી ઠંડીના ઉપદ્રવને સહન કરતા. કયારેક કયારેક આવી કડકડતી ઠંડીમાં રાત્રીના વખતે વસતીથી બહાર નીકળી જઇ ઉપશાંત ભાવથી ઠંડીના કષ્ટોને સહન કરતા.

આ સૂત્રમાં દ્રવિક શબ્દનો અર્થ-'યથાખ્યાત ચારિત્રનું આરાધન કરવાવાળા' એવો છે. 'द्रावणात् कर्मग्रन्थिनाशनाद् द्रवः' જેનાથી કર્મરૂપ ગ્રંથીનો વિનાશ થાય છે તે દ્રવ-સંયમ અર્થાત્ યથાખ્યાત ચારિત્રછે. આ દ્રવ જેનામાં હોય છે તે દ્રવિક છે.

उद्देशकार्थमुपसंहरन्नाह—' एस विही ' इत्यादि ।

मूलम्—एस विही अणुक्कंतो, माहणेण मइमया ।

बहुसो अपडिन्नेण, भगवया एवं रीयंति-त्तिबेमि॥१६॥

छाया—-एष विधिरनुक्रान्तो, माहनेन मतिमता ।

बहुशोऽप्रतिज्ञेन, भगवता, एवं रीयन्ते ॥ इति ब्रवीमि ॥१६ ॥

अस्य व्याख्या-अस्यैवाध्ययनस्य प्रथमोद्देशगताऽन्तिमगाथा(२३)व्याख्यावद् विज्ञेया । इति ब्रवीमीत्यर्थस्तूक्त एव ॥ १६ ॥

॥ नवमाध्ययनस्य द्वितीय उद्देशः समाप्तः ॥ ९-२ ॥

ग्रन्थिका जिससे विनाश हो वह द्रव-संयम, अर्थात् यथाख्यात चारित्र है, यह द्रव जिसके मौजूद हो वह द्रविक है। यथाख्यातचारित्रकी आराधनासे ही जीव अपने अवशिष्ट चार अघातिया कर्मोंका नाश कर मुक्तिस्थानका पात्र हो जाता है, इसके बिना नहीं, ऐसा शास्त्रसंमत सिद्धान्त है। "अधोविकट" शब्द कुडयादि-भीत आदिरहित स्थानका वाचक है। वह स्थान कि जिसमें भीत आदिका आवरण नहीं हो, चौहटा ही ऐसा होता है, क्यों कि वह चारों ओरसे बिलकुल खुला हुआ रहता है, और ऐसे ही स्थानमें सब तरफसे बहुत जोरकी हवा आती है। 'शमिता' शब्दका अर्थ-उपशान्त भाव है। राग द्वेषका संबंध जिस भावमें नहीं होता है वही उपशान्तभाव कहा गया है ॥१५॥

अब सूत्रकार इस उद्देशके अर्थका उपसंहार करते हुए कहते हैं—' एस विही ' इत्यादि ।

યથાખ્યાત ચારિત્રની આરાધનાથીજ જીવ પોતાના અવશિષ્ટ ચાર અઘાતિયા કર્મોનો નાશ કરી મુક્તિસ્થાન મેળવવા ભાગ્યશાળી બની રહે છે, એના વગર નહીં. એવો શાસ્ત્રસંમત સિદ્ધાંત છે. "अधोविकट" શબ્દ ભીત વગેરેથી રહિત એવા સ્થાનનો વાચક છે. એ સ્થાન કે જેને ભીત વગેરેનો બચાવ ન હોય તેને ઉઘાડું સ્થાન કહેવામાં આવે છે, કેમકે ચારે તરફથી તે બીલકુલ ખુલ્લું હોય છે અને એવા સ્થાનમાં ચારે તરફથી મોટા પ્રમાણમાં ખુલ્લી હવા આવતી હોય છે. शमिता શબ્દનો અર્થ ઉપશાંત ભાવ છે. રાગ દ્વેષનો સંબંધ જે ભાવમાં નથી તે ઉપશાન્ત ભાવ કહેવાય છે. (૧૫)

હવે સૂત્રકાર આ ઉદ્દેશના અર્થનો ઉપસંહાર કરતાં કહે છે-' एस विही ' ઈત્યાદિ.

स्वयं हननादि कार्यों से निवृत्त होकर दूसरों को भी मा हन–मा हन–'मत मारो–मत मारो' इस प्रकार कह कर उनसे निवृत्त करानेवाले, तथा हेय और उपादेयके विवेकसे युक्त, एवं सर्वथा अप्रतिज्ञ–निदानरहित ऐसे श्रीवर्धमानस्वामीने इस पूर्वोक्त आचारका स्वयं पालन किया, अतः इसी तरह से अन्य मोक्षसाधक साधुजन भी अपने समस्त कर्मोंका नाश करनेके लिये संयम मार्गमें विचरण करें। अर्थात् इसी प्रकारसे इस विधिका पालन कर अन्य मोक्षाभिलाषी साधुजन भी अपने कर्मोंका नाश करनेके लिये संयममार्गमें लवलीन बनें। 'इति ब्रवीमि' हे जम्बू! जैसा मैंने भगवानसे सुना हूँ वैसा ही कहता हूँ, अपनी कल्पनासे नहीं।१६।

॥ नववें अध्ययनका द्वितीय उद्देश समाप्त ॥ ९–२ ॥

સ્વયં હનનાદિ કાર્યોથી નિવૃત્ત બની બીજાઓને પણ मा हन, मा हन–"મારો નહિં, મારો નહિં" આ પ્રકારનું કહીને તેનાથી નિવૃત્ત કરાવનાર, તથા હેય અને ઉપાદેયના વિવેકથી યુકત અને સર્વથા નિદાનશૂન્ય, એવા શ્રી વર્ધમાન સ્વામીએ આ પૂર્વોકત આચાર સ્વયં પાલન કરેલ, માટે આ રીતે બીજા મોક્ષસાધક સાધુજન પણ પોતાના સમસ્ત કર્મોનો નાશ કરવા માટે સંયમ માર્ગમાં વિચરણ કરે, અર્થાત્ એવા પ્રકારથી એવી વિધિનું પાલન કરી બીજા મોક્ષાભિલાષી સાધુજન પણ પોતાના કર્મોનો નાશ કરવા માટે સંયમ માર્ગમાં લવલીન બને. "इति ब्रवीमि" હે જંબૂ! જેવું મેં ભગવાનથી સાંભળ્યું તેવુંજ કહું છું, પોતાની કલ્પનાથી નહિં (૧૬)

નવમા અધ્યયનનો બીજો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૯–૨ ॥



॥ अथ नवमाध्ययनस्य तृतीय उद्देशः ॥

इहानन्तरद्वितीयोद्देशके भगवतः शय्यासनानि कथितानि। तत्रावस्थितेन ये परीषहा उपसर्गाश्च यथा भगवता सोढास्तत्प्रतिबोधनार्थं तृतीयमुद्देशकं कथयन् भगवतस्तृणस्पर्शादिसहनमाह–' तणफासे ' इत्यादि।

मूलम्–तणफासे सीयफासे य, तेउफासे य दंसमसगे य।
अहियासए सया समिए, फासाइं विरूवरूवाइं ॥१॥

छाया—तृणस्पर्शान् शीतस्पर्शांश्च, तेजःस्पर्शांश्च दंशमशकांश्च।
अध्यास्ते सदा समितः, स्पर्शान् विरूपरूपान् ॥ १ ॥

टीका—सदा–सर्वकाले समितः=सम्यग्भावं गतः, यद्वा–समितिसमन्वितः, भगवान् आतापनादिकाले तृणस्पर्शान्=कुशादिस्पर्शान्, शीतस्पर्शांश्च, तथा तेजः–

नववें अध्ययनका तीसरा उद्देश।

इससे पहिले द्वितीय उद्देशमें सूत्रकारने भगवान श्री वीर-प्रभुके शयन और आसनोंका वर्णन किया है। उस उद्देशमें यह कहा गया है कि उस अवस्थामें रहे हुए प्रभुने अनेक प्रकारके उपसर्ग और परीषहोंको सहा है। इस तृतीय उद्देशमें सूत्रकार यह स्पष्ट करेंगे कि किस २ प्रकारके उपसर्ग और परीषहोंको प्रभुने सहा है? अतः सर्व प्रथम तृणस्पर्श आदि परीषहोंके सहन करनेके विषयमें सूत्रकार कथन करते हैं—' तणफासे ' इत्यादि।

सम्यग्भाव, या पांच समितिसे युक्त वे प्रभु आतापना आदिके समयमें अनेक प्रकारके तृणस्पर्शजन्य कष्टोंको, शीतस्पर्शजन्य दुःखोंको,

---

નવમા અધ્યયનનો ત્રીજો ઉદ્દેશ.

આ ત્રીજા ઉદ્દેશથી પહેલાં બીજા ઉદ્દેશમાં સૂત્રકારે ભગવાન શ્રી વીરપ્રભુના શયન અને આસનોનું વર્ણન કરેલ છે. તે ઉદ્દેશમાં એવું બતાવ્યું છે કે તેવી અવસ્થામાં રહેલા પ્રભુએ અનેક પ્રકારના પરિષહ અને ઉપસર્ગો સહ્યા છે. આ ત્રીજા ઉદ્દેશમાં સૂત્રકાર એ સ્પષ્ટ કરશે કે ભગવાને કેવા કેવા પરિષહ અને ઉપ-સર્ગો સહન કર્યા છે. આથી સર્વ પ્રથમ તૃણસ્પર્શ આદિ પરિષહો સહન કરવાના વિષયનું સૂત્રકાર કથન કરે છે–' तणफासे ' ઈત્યાદિ.

સમ્યગ્ભાવ, અને પાંચ સમિતિથી યુક્ત તે પ્રભુ આતાપના આદિના સમયમાં અનેક પ્રકારના તૃણસ્પર્શજન્ય કષ્ટોને, ઠંડીના ત્રાસજન્ય દુઃખને,

स्पर्शान्=उष्णस्पर्शान्, तथा दंशमशकान्=दंशमशकदंशनजनिततीव्रदुःसहस्पर्शान्, एतान् विरूपरूपान्=अनेकप्रकारकान् स्पर्शान् अध्यास्ते=सहतेस्म ॥१॥

किञ्च—' अहे '–त्यादि।

मूलम्—अह दुच्चरलाढमचारी, वज्जभूमिं च सुब्भभूमिं च।
पंतं सिज्जं सेविंसु आसणगाणि चेव पंताणि ॥२॥

छाया—अथ दुश्चरलाढमचारीत् वज्रभूमिं च शुभ्रभूमिं च।
प्रान्तां शय्यामसेविष्ट, आसनकानि चैव प्रान्तानि ॥२॥

टीका—अथ=अनन्तरम् भगवान् दुश्चरलाढं=दुर्गमं लाढनाम्ना प्रसिद्धं देशविशेषम्, अचारीत्=अगात्। लाढदेशो द्विविधभूमिकः, वज्रभूमिकः शुभ्रभूमिकश्चेति। तत्र द्विविधेऽपि देशे भगवान् विहारं कृतवानित्याह-'वज्रभूमिं चे'-त्यादि। वज्रभूमिं तथा शुभ्रभूमिं च=लाढान्तर्गतदेशविशेषम्, अचारीदित्यन्वयः। तत्र च प्रान्ताम्=अमनोज्ञां जीर्णशून्यगृहादिरूपां विविधोपद्रवयुक्तां, शय्यां=वसतिं, प्रान्तानि च

उष्णस्पर्शजन्य व्यथाओंको, और दंशमशक आदिके काटनेसे उत्पन्न हुई तीव्र-दुःसह पीडाओंको सहते थे ॥१॥

फिर—' अह दुचर० ' इत्यादि।

भगवान अनेक प्रकारके परीषह और उपसर्गोंको सहते हुए विहार करते २ जिस देशमें प्रवेश करना मुश्किल है ऐसे लाढ देशमें पहुँचे। वहांपर वज्रभूमि और शुभ्रभूमि इस प्रकार दो प्रकारकी भूमियां हैं। भगवानने इन दोनोंमें विहार किया। इस विहारमें उन्हें प्रान्त-अमनोज्ञ-जीर्ण एवं शून्यघररूप अनेक प्रकार के उपद्रवोंसे युक्त शय्या-वसति, और धूलि आदिसे परिपूर्ण-धूसरित एवं टूटे फूटे काठ

ઉષ્ણુસ્પર્શજન્ય વ્યથાઓને, અને ડાંસ તથા મચ્છર આદિના કરડવાથી ઉત્પન્ન થતી તીવ્ર અસહ્ય પીડાઓને સહન કરતા હતા. (૧)

ફરી—' अह दुच्चर० ' ઈત્યાદિ.

ભગવાન અનેક પ્રકારના પરિષહ અને ઉપસર્ગોને સહેતા સહેતા વિહાર કરતા કરતા જે દેશમાં પ્રવેશ કરવો મુશ્કેલ છે એવા અનાર્ય લાઢ દેશમાં પહોચ્યા, ત્યાં વજ્રભૂમિ અને શુભ્રભૂમિ આ પ્રકારના બે ભાગો છે. ભગવાને એ બન્નેમાં વિહાર કર્યો. આ વિહારમાં તેમને પ્રાન્ત-અમનોજ્ઞ-જીર્ણ એટલે પડતર એવા શૂન્ય ઘરોમાં અનેક પ્રકારના ઉપદ્રવોથી યુક્ત શય્યા-વસતી અને ધૂળ

धूलिशर्करालोष्टादिपूर्णानि, दुर्घटितकाष्ठानि आसनकानि फलकादीनि च भगवानसेविष्ट ॥ २ ॥

किञ्च––लाढनामकेषु देशविशेषेषु भगवतो बहवः प्रतिकूला उपसर्गा बभूवुस्तान् भगवान् सहतेस्म, इत्याह––' लाढेहिं ' इत्यादि।

मूलम्–लाढेहिं तस्सुवसग्गा, बहवे जाणवया लूसिंसु ।
अह लूहदेसियभत्ते, कुक्कुरा तत्थ हिंसिंसु निवइंसु ॥३॥

छाया––लाढेषु तस्योपसर्गा बहवो जानपदा अलूषिषुः।
अथ रूक्षदेश्यं भक्तं कुकुरास्तत्र जिहिंसुः निपेतुः ॥ ३ ॥

टीका––लाढेषु=लाढाख्येषु देशविशेषेषु, तस्य=भगवतः, बहवः=बहुविधाः, उपसर्गाः प्रतिकूलरूपाः बभूवुः। तान् कथयति––" जाणवया " इत्यादि। जानपदाः=जनपदे भवाः–तद्देशीया दुश्चरित्रा अनार्या लोकाः अलूषिषुः=उल्मुकदण्डप्रहारादिभिर्भगवन्तमताडयन्। अथ=अपि च तत्र रूक्षदेश्यं=रूक्षकल्पम् विगतरसम्

आदिवाले आसन–फलक वगैरह मिले, जिन्हें प्रभुने समभावसे अपने उपयोगमें लिया ॥ २ ॥

इस लाढनामके देशमें भगवानको बहुत अधिक प्रतिकूल उपसर्ग सहने पडे, इस बातको बतलानेके लिये सूत्रकार कहतेहैं–'लाढेहिं' इत्यादि।

इस लाढ नामके देशविशेषमें भगवानने अनेक प्रकारके उपसर्गोंको सहा। जैसे–उस देशके अनार्य मनुष्योंने भगवानके ऊपर उल्मुक –मशालदण्ड और अस्त्र शस्त्र आदि द्वारा अनेक प्रकारसे प्रहार किये– उन्हें मारे–पीटे। वहां उन्हें अन्त प्रान्त आहार मिला। वहांके कुत्तोंने भी भगवानके शरीरको अपने तीक्ष्ण दांतों द्वारा विविधरूपसे क्षत–

વગેરેથી પરિપૂર્ણ એવાં ધુળીયાં મકાન જેનો તુટેલ ફુટેલ કાઠમાળ છે, અને એવાંજ આસન–ફલક વગેરે મળેલાં જેને પ્રભુએ સમભાવથી પોતાના ઉપયોગમાં લીધેલ. (૨)

આ લાઢ નામના દેશમાં ભગવાનને ઘણાં જ પ્રતિકૂળ ઉપસર્ગો સહેવા પડેલા. આ વાત બતાવવા માટે સૂત્રકાર કહે છે—' लाढेहिं ' ઇત્યાદિ.

આ લાઢ નામના દેશવિશેષમાં ભગવાને અનેક પ્રકારના ઉપસર્ગો સહ્યા. જેમ–તે દેશના અનાર્ય મનુષ્યોએ ભગવાન ઉપર ઉલ્મુક–મશાલ, દંડ, અસ્ત્ર શસ્ત્ર વગેરેથી અનેક પ્રકારે પ્રહારો કર્યા–એમને માર્યા–પીટયા. ત્યાં તેમને અન્ત-પ્રાન્ત આહાર મળેલ. ત્યાં કુતરાઓએ પણ ભગવાનના શરીરને પોતાના તીક્ષ્ણ

अन्तप्रान्तं भक्तम्=अन्नम्, भगवता लब्धम्। तत्र कुक्कुराः=श्वानः, जिहिंसुः=भगवतः शरीरं दन्तैश्चिच्छिदुः, उपरि च निपेतुः=आरोहवन्तः ॥ ३ ॥

किञ्च—'अप्पे' इत्यादि।

मूलम्—अप्पे जणे निवारेइ, लूसणए सुणए दसमाणे ।
छुछुकरंति आहंतुं, समणं कुक्कुरा दसंतु—त्ति ॥४॥

छाया—अल्पो जनो निवारयति लूपकान् शुनकान् दशतः ।
छु—छु कुर्वन्ति आहत्य 'श्रमणं कुकुरा दशन्तु' इति ॥ ४ ॥

टीका—यः लूषकान्=उल्मुकदण्डादिभिर्भगवतो हिंसकान् जनान्, दंशतः=भगवद्गात्रं दन्तैश्छेदयतः शुनकांश्च=कुक्कुरान् निवारयति=दूरीकरोति, तादृशो जनस्तत्र अल्पः=कोऽपि नासीदित्यर्थः, अल्पशब्दोऽत्राभावार्थकः' प्रत्युत जना आहत्य=ताडयित्वा "श्रमणम्=एनं मुण्डिनं कुकुराः दशन्तु" इतीच्छया छु-छु कुर्वन्ति=दंशनाय कुक्कुरान् प्रेरयन्ति स्म-भगवन्तं कुक्कुरैर्दंशयामासुरित्यर्थः। एवम्भूते प्रतिकूलोपसर्गकारके देशे भगवान् षण्मासपर्यन्तमवतस्थौ ॥४॥

विक्षत किया। भगवानको देखकर वे कुत्ते उन्हें काट खाते और उनके ऊपर चढजाते ॥३॥

और भी—'अप्पे जणे' इत्यादि ।

उस देशमें ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं था जो भगवानको मारने वालोंसे तथा काटने वाले कुत्तोंसे बचाता। उल्टे वहांके लोग इसी भावनासे कि 'इस मुण्डित श्रमणको कुत्ते काट खावें' ऐसा विचार कर उनपर कुत्तोंको छुछकारते और उनसे उन्हें कटवाते। इस प्रकार इस प्रतिकूल अवस्थावाले देशमें भी भगवानने छ महीने तक विहार किया॥४॥

દાંતોથી જુદે જુદે સ્થળે બટકાં ભરેલાં. ભગવાનને જોતાંજ એ એમના પર ધસી આવતાં અને બટકાં ભરતાં. (૩)

ફરી—'अप्पे जणे' ઇત્યાદિ.

એ દેશમાં એવો કોઈ પણ માણસ ન હતો કે જે ભગવાનને મારવાવાળાઓથી કે કરડતા કુતરાઓથી બચાવે. ઉલ્ટા ત્યાંના લોકો એવી ભાવનાવાળા હતા કે 'આ મુંડિત સાધુને કુતરાઓ કરડી ખાય' એવા વિચારથી કુતરાઓને તેમના ઉપર ડચકારીને કરડાવવા માટે છોડી મુકતા. આવા પ્રતિકૂલ અવસ્થાવાળા દેશમાં પણ ભગવાને છ મહિના સુધી વિહાર કર્યો. (૪)

किञ्च—' एलिक्खए ' इत्यादि।

मूलम्—एलिक्खए जणा भुज्जो, बहवे वज्जभूमि फरुसासी।
लट्ठिं गहाय नालियं, समणा तत्थ य विहरिंसु ॥५॥

छाया—ईदृक्षा जना भूयो बहवो वज्रभूमौ परुषाशिनः।
यष्टिं गृहीत्वा नालिकां श्रमणास्तत्र च विजह्रुः ॥ ५ ॥

टीका—ईदृक्षाः=उक्तविधाः जना यत्रासन् , तत्र देशे भगवान् भूयः=बहुशः विहरतिस्म। तत्र लाढदेशे वज्रभूमौ=वज्रभूमिनाम्नि देशविशेषे बहवो जनाः परुषाशिनः=तुच्छभोजिनः, अत एव क्रोधस्वभावाः सन्ति तेन ते साधुमवलोक्य कुकुरादिभिः कदर्थयन्ति। नन्वेवं कुकुरादिभिः साधुकदर्थने तत्रत्याः शाक्यादयः कथं तत्र विचेरुः ? इति जिज्ञासायामाह—'यष्टि'—मित्यादि। तत्र च श्रमणाः=अन्ये-शाक्यादयः श्वादिनिवारणार्थं यष्टिं=स्वदेहप्रमाणं दण्डं नालिकां=स्वदेहाच्चतुरङ्गुलाधिकप्रमाणं दण्डं वा गृहीत्वा विजह्रुः=विचरन्तिस्म।

और भी—'एलिक्खए जणा' इत्यादि।

यद्यपि इस प्रकारके ही बहुतसे मनुष्य वहां थे तो भी भगवानने वहां विहार बंद नहीं किया—प्रत्युत वे बार२ वहीं पर विचरते और प्रतिकूल परीषह और उपसर्गोंको धैर्यके साथ शांतचित्तसे सहन करते। वज्रभूमिमें बहुत मनुष्य तुच्छ आहार करते हैं, इसलिये उनके स्वभावमें क्रोध ही क्रोध सदा बना रहता है—वे विना किसी निमित्तके भी सदा क्रोधसे भरे रहते हैं। ये साधु संतोंको देखकर द्वेष करते हैं और कुत्ते आदिकोंसे उन्हें व्यर्थमें कष्ट पहुँचाते हैं।

शंका—यदि ऐसी बात है तो वहां पर शाक्यादि साधु कैसे विचरण करते हैं ?

ફરી—' एलिक्खए जणा ' ઈત્યાદિ.

જો કે એવા પ્રકારના માણસો ઘણા હતા તો પણ ભગવાને ત્યાંનો વિહાર બંધ કરેલ ન હતો, અને તેઓ વારંવાર ત્યાં વિચરતા અને પ્રતિકૂલ પરિષહ તથા ઉપસર્ગને ધૈર્ય સાથે શાન્ત રીતે સહન કરતા. વજ્રભૂમિમાં ઘણા મનુષ્યો તુચ્છ આહાર કરે છે જેનાથી તેના સ્વભાવમાં ક્રોધજ ભરેલો રહે છે. કોઈ પણ જાતના કારણ વગર પણ તેઓ ક્રોધયુક્ત જ રહે છે. સાધુ સંતોને જોઈ તેમના ઉપર દ્વેષ કરે છે અને કુતરાઓ વિગેરેથી તેમને દુઃખ પહોંચાડે છે.

શંકા—આવી વાત છે તો ત્યાં શાક્યાદિક સાધુ કઇ રીતે વિચરી શકે છે ?

भगवदाज्ञानुवर्तिनां साधूनां तु स्थविरावस्थामन्तरेण न कल्पते दण्डधारणं, तथा चोक्तं व्यवहारसूत्रे (उ०८) "थेराणं थेरभूमिपत्ताणं कप्पइ दंडए वा०" इत्यादि; अत्र 'थेराणं' इत्युपलक्षणं रोगिग्लानानाम्, स्थविरादेरन्यत्र दण्डधारणं न युक्तं, भय-हिंसा-जनकत्वादागमाविहितत्वाच्च, अत एवाग्रे "निहाय

उत्तर—वहां पर वे साधु कुत्ता आदिको भगाने या उन्हें ताडनेके लिये अपने हाथोंमें अपने शरीरप्रमाण दण्ड और अपने शरीरसे चार अंगुल अधिक ऊँची नलिका-दण्डविशेष पासमें रखते हैं, और विचरण करते रहते हैं।

शंका—भगवानने भी क्यों नहीं वहां विहार करते समय अपने हाथमें दण्ड आदि रक्खा?

उत्तर—स्थविर-वृद्ध अवस्थाके सिवाय दण्ड धारण करनेकी आज्ञा भगवानके शासनमें रहने वाले साधुओंके सिद्धान्तमें नहीं है, अतः भगवानने भी उस समय वहां दण्ड आदि पासमें नहीं रखा, व्यवहार सूत्रमें भी यही कहा है—

"थेराणं थेरभूमिपत्ताणं कप्पइ दंडए वा०" इत्यादि। इस सूत्रमें 'थेराणं' यह पद रोगी ग्लान अवस्थाका भी उपलक्षक है, अतः स्थविरादि अवस्थाके सिवाय अन्य अवस्थाओंमें दण्डका धारण करना युक्त नहीं माना गया है, क्यों कि एक तो दण्डका धारण करना अन्यजीवोंको भयका जनक तथा हिंसाका जनक होता है, दूसरे इस प्रकारका शास्त्रमें इसके

ઉત્તર—તે સ્થળે તેવા સાધુ કુતરા વગેરેને જે ભગાડવા માટે અને તેને મારવા માટે પોતાના હાથોમાં પોતાના શરીરપ્રમાણે લાકડી અને પોતાના શરીરથી ચાર આંગળ મોટો એવો દંડ રાખે છે અને વિહાર કરે છે.

શંકા—ભગવાને પણ એ દેશમાં વિહાર કરતાં પોતાના હાથમાં દંડ-લાકડી વગેરે કેમ ન રાખ્યાં?

ઉત્તર—વૃદ્ધ અવસ્થા સિવાય દંડ ધારણ કરવાની આજ્ઞા ભગવાનના શાસનમાં રહેવાવાળા સાધુઓના સિદ્ધાંતમાં નથી, માટે ભગવાને પણ તે સમય તે સ્થળે દંડ વગેરે પાસે રાખેલ ન હતાં. વ્યવહાર સૂત્રમાં પણ એ જ કહેલ છે-

"थेराणं थेरभूमिपत्ताणं कप्पइ दंडए वा०" ઈત્યાદિ.

એ સૂત્રમાં "थेराणं" આ પદ રોગી ગ્લાન અવસ્થાનું ઉપલક્ષક છે, માટે સ્થવિર આદિ અવસ્થા સિવાય અન્ય અવસ્થાઓમાં દંડને ધારણ કરવા એ યુક્ત માનેલ નથી, કેમકે એક તો દંડને ધારણ કરવો તે બીજા જીવોને ભયજનક તથા હિંસાને પ્રોત્સાહન આપનાર છે. બીજું શાસ્ત્રમાં દંડ ધારણ કરવાનું કહીં પણ

दंडं' पाणेहिं॰इत्यपि वदता भगवता दण्डधारणं स्वयमनाचरितं, मुनीनां च दण्ड-धारणप्रतिषेधायोपदिष्टमिति सुस्पष्टं ज्ञायते । ये तु दण्डिनः 'सर्वावस्थायां दण्डधारणं मुनिकल्पः' इति मत्वा सर्वदा दण्डेन सह वर्त्तन्ते तदेतत्तेषां प्रबलमोह-विजृम्भणमात्रम् ॥५॥

किञ्च—'एवं पि' इत्यादि।

मूलम्—एवं पि तत्थ विहरंता, पुट्ठपुव्वा अहेसि सुणएहिं ।
संलुंचमाणा सुणएहिं, दुच्चराणि तत्थ लाढेहिं ॥६॥

छाया—एवमपि तत्र विहरन्तः स्पृष्टपूर्वा आसन् शुनकैः ।
संलुच्यमानाः शुनकैः दुश्चराणि तत्र लाढेषु ॥ ६ ॥

रखनेका कोई विधान भी नहीं है "निहाय दंडं पाणेहिं" इस सूत्रांशसे आगे चलकर भगवानने यही स्पष्ट किया है, अतः इस अवस्थामें दण्डका धारण अयोग्य समझ श्री वीरप्रभुने भी दण्ड ग्रहण नहीं किया। जब अन्य मुनिजनोंको भी पूर्वोक्त अवस्थाओंके अतिरिक्त दण्ड धारण करनेकी वीरप्रभुकी आज्ञा ही नहीं है, तो विचारनेकी बात है कि वे प्रभु स्वयं दण्ड कैसे ग्रहण कर सकते थे। जो लोग यह समझकर कि दण्ड धारण करना मुनियोंका कल्प है सदा दण्ड धारण करते हैं यह उनकी मान्यता शास्त्रीय मार्गसे सर्वथा प्रतिकूल है, तथापि दण्ड रखते हैं इसका कारण सिर्फ प्रबल मोहका ही विलास जानना चाहिये ॥५॥

और भी—'एवं पि' इत्यादि ।

विधान नथी. "निहाय दंडं पाणेहिं" આ સૂત્રાંશથી આગળ ચાલી ભગવાને એ સ્પષ્ટ કરેલ છે. માટે એ અવસ્થામાં દંડ ધારણ કરવો એ અયોગ્ય સમજી વીર પ્રભુએ દંડ ધારણ કરેલ ન હતો. જ્યારે બીજા મુનિયોને માટે પણ પૂર્વોક્ત અવસ્થાઓના અતિરિક્ત દંડ ધારણ કરવાની વીર પ્રભુની આજ્ઞા નથી ત્યારે વિચારવાની એ વાત છે કે જ્યાં બીજાને માટે દંડ ગ્રહણ કરવાની આજ્ઞા નથી ત્યાં પ્રભુ પોતે દંડ શી રીતે ધારણ કરી શકે? જે લોકો દંડ રાખે છે તે એવું સમજે છે કે દંડ રાખવો તે મુનિઓનો કલ્પ છે તેથી સદા દંડ ધારણ કરે છે. એમની એ માન્યતા શાસ્ત્રીય માર્ગથી તદ્દન વિરૂદ્ધની છે તો પણ દંડ રાખે છે, આનું કારણ કેવળ પ્રબળ મોહનો વિલાસજ સમજવો જોઈએ. (૫)

ફરી—"एवं पि" ઈત્યાદિ.

टीका—तत्र=लाढदेशेषु एवमपि=यष्ट्यादिग्रहणेनापि विहरन्तः श्रमणाः=अन्ये शाक्यादयः, शुनकैः=कुकुरैः स्पृष्टपूर्वाः=दष्टपूर्वा आसन्। तथा शुनकैः संलुच्यमानाः=इतश्चेतश्च गात्रे भक्ष्यमाणाः आसन्। दण्डैर्वार्यमाणा अपि तत्रत्याः श्वानः प्रतिनिवृत्ता न भवन्तीति भावः, अत एव तत्र=तेषु लाढेषु दुश्चराणि=सतां दुर्गमानि ग्रामादीनि सन्तीत्यर्थः ॥ ६ ॥

'अन्ये श्रमणा यष्ट्यादिकं गृहीत्वा विजह्रुः' इत्युक्तम्, भगवान् कथं तत्र लाढेषु विहारमकरोदिति दर्शयितुमाह—'निहाय दंडं' इत्यादि।

मूलम्—निहाय दंडं पाणेहिं तं कायं वोसिरिज्ज मणगारे।
अह गामकंटए भगवंते, अहिआसए अभिसमिच्चा ॥७॥

छाया—निहाय दण्डं प्राणिषु तं कायं व्युत्सृज्यानगारः।
अथ ग्रामकण्टकान् भगवानध्यास्ते अभिसमेत्य ॥ ७ ॥

उस लाढदेशमें इतने बलिष्ठ कुत्ते हैं कि दंडा हाथमें लेकर भी विचरण करनेवाले अन्य शाक्यादिक श्रमण उनको भगाते तो भी वे लपककर झूम जाते और काट खाते हैं, पहिले भी इनको उन्होंने कईवार काट खाया है। वहांके ग्राम इन कुत्तोंसे ही दुर्गम बने हुए हैं। अतः अपरिचित कोई भी व्यक्ति वहां नहीं जा सकता ॥६॥

जब अन्य साधुजन दण्डादिसे सज्ज होकर वहां विचरण करते हैं तब भगवान् वीर प्रभुने कैसे वहां विहार किया ? इस विषयको सूत्रकार स्पष्ट करते हैं—'निहाय दंडं' इत्यादि।

भगवानने उस लाढदेशमें विहार करते समय अनेक प्रकारके परीषह और उपसर्गोंको कर्मोंकी निर्जराका कारण मान बडे ही धैर्य और

લાઢ દેશમાં એવા બળવાન કુતરા હોય છે કે હાથમાં દંડ લઈને વિચરણ કરવાવાળા શાકયાદિક શ્રમણ એને ભગાડે છતાં તે સામે કુદીને કરડે છે. અગાઉ પણ ઘણા શાકયાદિક શ્રમણોને એ કુતરાઓએ કરડી ખાધા છે. ત્યાંના ગામડાં આ કુતરાઓથી દુર્ગમ રહે છે એટલે અપરિચિત કોઇ પણ વ્યક્તિ ત્યાં જઈ શકતી નથી. (૬)

જ્યારે અન્ય સાધુજન દંડ વગેરેથી સજ્જ થઈ ત્યાં વિચરણ કરે છે ત્યારે ભગવાન વીર પ્રભુએ ત્યાં વિહાર કઇ રીતે કર્યો? આ વિષયને સૂત્રકાર સ્પષ્ટ કરે છે—'निहाय दंडं' ઈત્યાદિ.

એ લાઢ દેશમાં વિહાર કરતી વખતે ભગવાને અનેક પ્રકારના પરિષહ અને ઉપસર્ગોને કર્મોની નિર્જરાનું કારણ માની ખુબ જ ધૈર્ય અને સમભાવ સાથે

टीका—अनगारः=भगवान् प्राणेषु=प्राणिषु दण्डं=लकुटयष्ट्यादिकं निहाय=अगृहीत्वा सर्वथा परित्यज्य 'ओहाक् त्यागे' इति धातोर्ल्यबन्तरूपम्। यद्वा-दण्डं=दुष्प्रणिहितमनोवाक्कायरूपं निहाय=त्यक्त्वा, तथा तम्=अनार्यकृतोपसर्गोपन्नं कायं काय=ममत्वं व्युत्सृज्य अथ=अनन्तरम् अभिसमेत्य=सम्यग् निर्जरां विदित्वा ग्रामकण्टकान्=रूक्षभाषिणोऽनार्यलोकान् तत्कृतपरीषहोपसर्गानिति यावत्, अध्यास्ते=अधिसहतेस्म। दुस्सहपरीषहोपसर्गसम्प्राप्तौ सत्यामपि भगवान् सर्वमेव सहतेस्म, किन्तु-प्राणिभयहिंसाजनकत्वाद् यष्टिलकुटादिकं न गृहीतवानितिभावः॥७॥

समभावके साथ सहन किया, परन्तु फिर भी दण्ड आदिका उन्होंने उस अवस्थामें भी ग्रहण नहीं किया, उसका कारण प्राणियोंको अभय देना था, यदि वे दण्ड वगैरहका उस समय वहां उपयोग करते तो अन्य प्राणियोंको उससे भय अवश्य होता, जो जैन मुनियोंके लिये सर्वथा हेय है। भगवान शारीरिक ममत्वसे रहित थे। रक्षाके साधनोंका उपयोग वे ही लोग करते हैं-जिन्हें बाह्य पदार्थोंसे अपने बिगाड़का भय होता है, भगवान निर्भय थे अतः न तो उन्हें उन अनार्यों से भय हुआ और न उनके द्वारा कृत उपसर्ग और उपद्रवोंसे। सूत्रका शब्दार्थ इस प्रकार है—शारीरिक ममतासे रहित वे प्रभु 'जीवोंको मेरे द्वारा भय न हो' इस अभिप्रायसे दण्डका अथवा मन वचन कायकी अशुभ प्रणिधानरूप प्रवृत्तिका सर्वथा परित्याग कर "ये सब बाह्य उपसर्ग और परिषह मेरे कर्मोंकी निर्जराके साधक हैं" ऐसा विचार कर उन्हें अनार्यों के संसर्गसे विचलित नहीं होकर सहा ॥७॥

સહન કર્યાં. પરન્તુ છતાં પણ તેમણે લાકડી સરખીએ સાથે ન લીધી, એનું કારણ પ્રાણીયોને અભય આપવાનું હતું. જો એ સમયે પ્રભુ લાકડી વગેરે રાખત તો અન્ય પ્રાણીયોને એનાથી ભય અવશ્ય લાગત જે જૈન મુનિયોને માટે સર્વથા ત્યાજ્ય છે. ભગવાન શારીરિક મમત્વથી તદ્દન રહિત હતા. રક્ષાના સાધનોનો ઉપયોગ તો એ લોકો કરે છે કે જેમને બાહ્ય પદાર્થોથી પોતાના બગાડનો ભય હોય છે. ભગવાન નિર્ભય હતા આથી એમને ન અનાર્યોનો ભય થયો કે ન તો એના તરફથી કરાયેલા ઉપસર્ગ અને ઉપદ્રવોનો. સૂત્રનો શબ્દાર્થ આ પ્રકારનો છે—શારીરિક મમતાથી રહિત એ પ્રભુ 'જીવોને મારાથી ભય ન હો.' આ અભિપ્રાયથી દંડનો અથવા મન વચન અને કાયાની અશુભ પ્રણિધાનરૂપ પ્રવૃત્તિનો સર્વથા પરિત્યાગ કરી. "આ બધા બાહ્ય ઉપસર્ગ અને પરિષહ મારા કર્મોની નિર્જરાના સાધક છે" એવો વિચાર કરી અનાર્યોના સંસર્ગથી વિચલિત ન બનતાં સહન કરેલ. (૭)

स केन प्रकारेण ग्रामकण्टककृतपरीषहोपसर्गान् सहते ? इति सदृष्टान्तमाह–'नागो' इत्यादि।

मूलम्—नागो संगामसीसे वा, पारए तत्थ से महावीरे।
एवं पि तत्थ लाढेहिं, अलद्धपुव्वो वि एगया गामो॥८॥

छाया—नागः संग्रामशीर्षे इव पारगः तत्र स महावीरः।
एवमपि तत्र लाढेषु अलब्धपूर्वोऽप्येकदा ग्रामः ॥ ८ ॥

टीका—संग्रामशीर्षे=युद्धक्षेत्रे नाग इव=हस्तीव तत्र=तेषु लाढेषु महावीरः पारगः=पारगामी अभूत्। यथा–हस्ती युद्धभूमौ शत्रुसेनां विजित्य तत्पारगामी भवति, तथा स महावीरः=भगवान् अपि लाढेषु परीषहोपसर्गानीकं विजित्य तत्पारगामी अभूत्। किञ्च–एवमपि तत्र=तेषु लाढेषु ग्रामाणामतिदूरवर्तित्वाद् एकदा=एकस्मिन् काले कदाचिद् भगवता ग्रामः=लोकानां वासस्थानम् अलब्धपूर्वः=पूर्वं न लब्धः, तेनारण्यमार्गे गच्छतो भगवतः समीपमागत्यानार्यलोकाः परीषहोपसर्गं चक्रुः। एतच्चानुपदमेव वक्ष्यते ॥८॥

दृष्टान्तद्वारा सूत्रकार इसी बातकी पुष्टि करते हैं–'नागो' इत्यादि।

जिस प्रकार युद्धक्षेत्रमें गजराज शत्रुसेनाको परास्त कर उससे पार हो जाता है, ठीक इसी प्रकार वे महावीर प्रभु भी लाढदेशमें उपसर्गरूपी सेनाको जीतकर उससे पार हुए। एक समयकी बात है कि जब भगवान विहार करते२ एक ऐसे ग्राममें आ रहे थे जो छोडे हुए ग्रामसे बहुत दूर था, तथा जिसमें वे पहिले कभी नहीं आये थे, उस समय जंगली मार्गसे आते हुए उनके पास बहुतसे अनार्यजन आये और अनेक प्रकारके परीषह और उपसर्ग करने लगे ॥८॥

દૃષ્ટાન્તદ્વારા સૂત્રકાર એ જ વાતની પુષ્ટિ કરે છે—'नागो' ઇત્યાદિ.

જે રીતે યુદ્ધક્ષેત્રમાં જેમ ગજરાજ શત્રુસેનાને પરાસ્ત કરી એની આરપાર નીકળી જાય છે. બરાબર એ જ રીતે મહાવીર પ્રભુ પણ લાઢ દેશમાં પરિષહ અને ઉપસર્ગરૂપ સેનાને જીતી એનાથી પાર થયા. એક સમયની વાત છે કે જ્યારે ભગવાન વિહાર કરતાં કરતાં એક એવા ગામમાં જઈ રહ્યા હતા કે જે છોડેલા ગામથી ઘણો દૂર હતો અને જ્યાં અગાઉ કદી પણ ગયા ન હતા. એ વખતે જંગલના માર્ગથી જતાં ઘણા અનાર્ય લોકો તેમની પાસે આવ્યા, અને એમના ઉપર અનેક પ્રકારના પરિષહ અને ઉપસર્ગ કરવા લાગ્યા. (૮)

तदेवाह--'उवसंकमंत०' इत्यादि।

मूलम्--उवसंकमंतमपडिन्नं, गामंतियं पि अप्पत्तं।
पडिनिक्खमित्तु लुसिंसु, एयाओ परं पलेहि-त्ति ॥९॥

छाया--उपसंक्रामन्तमप्रतिज्ञं ग्रामान्तिकमपि अप्राप्तम्।
प्रतिनिष्क्रम्य अलूषिषुः एतस्मात् परं पलायस्वेति ॥ ८ ॥

टीका--प्रतिनिष्क्रम्य=तेऽनार्यलोकास्तस्माद् ग्रामात् प्रतिनिर्गत्य, अप्रतिज्ञं=नियतावस्थानादिप्रतिज्ञारहितम्-उपसंक्रामन्तम्=वासार्थं व्रजन्तं, ग्रामान्तिके=वसतिसमीपे प्राप्तमप्राप्तं वा भगवन्तम् अलूषिषुः=दण्डमुष्ट्यादिभिस्ताडयामासुः, ऊचुश्च-'एतस्मात्=इतः स्थानात् परम्=अन्यस्थानं, पलायस्व' इति ॥ ९ ॥

किञ्च-'हयपुव्वो' इत्यादि।

सूत्रकार इन्हीं परीषह और उपसर्गोंको बतलानेके लिये सूत्र कहते हैं--'उवसंकमंत०' इत्यादि।

उस ग्रामके वे अनार्यजन अपने २ घरसे निकल कर नियमित स्थान पर ठहरनेके अथवा एक नियत स्थान पर रहने आदिके बन्धसे रहित उन भगवानसे जो उस समय ठहरनेके लिये उस ग्रामकी ओर बढ रहे थे, तथा वसतिमें आने भी नहीं पाये थे, उस पहले ही पासमें आकर कहने लगे कि तुम शीघ्र ही यहांसे किसी दूसरी जगह भाग जाओ। ऐसा कहते हुए उन लोगोंने भगवानको दण्ड, मुष्टि आदिसे खूब प्रहार किया ॥९॥

और भी 'हयपुव्वो' इत्यादि।

સૂત્રકાર એ પરિષહ અને ઉપસર્ગોને સમજાવવા માટે સૂત્ર કહે છે--'उवसंकमंत०' ઈત્યાદિ.

એ ગામના એ અનાર્યજન પોત-પોતાના ઘરેથી નીકળી નિયમિત સ્થાન પર રોકાવાના અથવા એક નિયત સ્થાન પર રહેવા આદિના બંધનથી રહીત એવા ભગવાનથી કે જે તે સમય રહેવા માટે તે ગામની તરફ આવી રહ્યા હતા, અને વસતીમાં આવી પણ નહિ શકયા તે પહેલાંજ સામને આવી કહેવા લાગ્યા કે તમે તાત્કાલિક અહીંથી બીજી જગ્યાએ ભાગી જાઓ. એમ કહી એ લોકોએ ભગવાનને લાકડી, હાથની મુઠી વગેરેથી ખુબ પ્રહાર કરેલા. (૯)

ફરી--'हयपुव्वो' ઈત્યાદિ.

मूलम्—हयपुव्वो तत्थ दंडेण, अदुवा मुट्ठिणा अदु कुंतफलेण।
अदु लेलुणा कवालेण, हंता हंता बहवे कंदिंसु ॥१०॥

छाया——हतपूर्वस्तत्र दण्डेन, अथवा मुष्टिना अथवा कुन्तफलेन।
अथ लेष्टुना कपालेन, हत्वा हत्वा बहवः चक्रन्दुः ॥ १० ॥

टीका——तत्र=ग्रामाद् बहिः स भगवान् हतपूर्वः=पूर्वं दण्डादिभिस्ताडित आसीत्, तथापि दण्डेन अथवा-मुष्टिना, अथवा-कुन्तफलेन=भल्लेन, अथवा-लेष्टुना=मृत्खण्डेन, कपालेन=घटखर्परादिना हत्वा हत्वा बहवः-अनार्याः, चक्रन्दुः= 'पश्यत पश्यत कीदृशोऽयं मुण्डितः' इति कल-कल-शब्दं चक्रुः ॥ १० ॥

किञ्च-'मंसाणि' इत्यादि।

मूलम्—मंसाणि छिन्नपुव्वाणि, उट्टंभिया एगया कायं।
परीसहाइं लुंचिंसु, अदुवा पांसुणा उवकरिंसु ॥११॥

छाया——मांसानि छिन्नपूर्वाणि अवष्टभ्य एकदा कायम्।
परीषहा अलुञ्चिषुः, अथवा पांसुना उपाकिरन् ॥११॥

टीका——तत्र भगवतः शरीरे मांसानि छिन्नपूर्वाणि=पूर्वं छिन्नानि आसन् तथापि एकदा=कदाचित् कायं=भगवतःशरीरम् अवष्टभ्य=आक्रम्य परीषहाः=

प्रभु जब ठहरनेके लिये उस गांवके पास आ पहुँचे तब एक तो उन अनार्योंने उन्हें गांवकी बाहर ही पहिले दण्ड मुष्टि आदिसे खूब मनमाना प्रहार किया। दण्डेसे, कुन्तफल-भालेसे, मिट्टीके ढेलोंसे, खपरियोंसे प्रहार कर जब वे शांत हुए तो फिर वे चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगे कि-अरे भाईयो! देखो देखो यह मुण्डित कैसा व्यक्ति है?।१०।

फिर भी—'मंसाणि' इत्यादि।

उन अनार्य लोगोंने भगवानके शरीरको पहिले ही अनेक प्रकारसे क्षत-विक्षत कर दिया था, और उन्होंने मांसपिंड भी कहीं२ से काट

પ્રભુ જ્યારે રોકાવા માટે એ ગામની પાસે પહોંચ્યા ત્યારે એક તો એ અનાર્યોએ તેમને ગામની બહાર જ દંડ, મુષ્ટિ વગેરેથી માર મારેલો. દંડથી ભાલાથી માટીના ઢેફાથી કે ઠીકરાથી માર મારી શાન્ત થયા તો ફરી તે રાડો પાડી પાડીને કહેવા લાગ્યા કે અરે ભાઈઓ! જુઓ આ મુંડિત કેવી વ્યક્તિ છે. (૧૦)

ફરી—'मंसाणि' ઇત્યાદિ.

એ અનાર્ય લોકોએ ભગવાનના શરીરને પહેલેથી જ લાકડીઓ તથા હાથ વડે માર મારી ચીરા ઉજરડાવાળું બનાવી દેવા ઉપરાંત કોઈ કોઈ

विविधप्रतिकूलपरीषहरूपा अनार्यलोकाः भगवन्तमलुञ्चिषुः=आक्रुष्टवन्तः, अथवा- पांसुना=धूलिना उपाकिरन्=भगवतः शरीरमाच्छादयामासुः ॥ ११ ॥

किञ्च--' उच्चालइय ' इत्यादि ।

मूलम्—उच्चालइय निहणिंसु, अदुवा आसणाउ खलइंसु ।
वोसट्ठकाए पणयाऽऽसी, दुक्खसहे भगवं अपडिन्ने ॥१२॥

छाया—उच्चाल्य निजघ्नुः अथवा आसनादस्खलयन् ।
व्युत्सृष्टकायः प्रणत आसीत् दुःखसहः भगवान् अप्रतिज्ञः ॥१२॥

टीका--अनार्यलोकाः उच्चाल्य=उच्चैर्नीत्वा=भगवन्तमूर्ध्वमुत्थाप्य निजघ्नुः =भूमौ निपातयामासुः । अथवा आसनात्=गोदोहिकोत्कुटुकवीरासनादिकात् अस्खलयन्=भगवन्तं निपातितवन्तः । भगवान् परीषहोपसर्गं केन प्रकारेण सेहे ? इत्याह—व्युत्सृष्टकाय इत्यादि । भगवांस्तु व्युत्सृष्टकायः=कायोत्सर्गस्थितः, अत

लिया था, फिर भी उनकी भगवानको दुःखित करने की कुत्सित मनोवृत्तियां शांत नहीं हुईं । वे कभी २ भगवानके शरीर पर अनेक प्रकारसे आक्रमण कर उन्हें इधर उधर लोंच डालते और फिर बादमें उनके ऊपर अधिकसे अधिक धूलि फेंकते ॥ ११ ॥

और भी—' उच्चालइय ' इत्यादि।

वे अनार्यजन कभी२ भगवानको ऊपर उठाकर नीचे पटक देते थे, अथवा गोदोहिक आसन, उत्कुटक आसन, और वीरासन आदिसे नहीं चलायमान उन प्रभुको वे उन आसनोंसे चलायमान करते-हिलाकर पटक देते। भगवानने ये परीषह और उपसर्ग किस प्रकारसे जीते इसे ' वोसट्ठकाए ' इस पदसे स्पष्ट करते हुए सूत्रकार कहते हैं-ये सब परी-

---

અવયવમાંથી માંસના લોચા પણ કાપી લીધેલા, આ પ્રકારના હિચકારા કૃત્યથી પણ ન સંતોષાતાં લોહી નીતરતા પ્રભુના શરીરને એક બાજુથી બીજી બાજુ ઢસરડવાનું તેમજ ધુળ અને કાંકરાઓથી વધુ દુઃખીત બનાવવાનું કરેલું. (૧૧)

ફરી પણ--' उच्चालइय ' ઈત્યાદિ.

એ અનાર્ય લોકોને આટલેથી પણ સંતોષ ન થયો હોય તેમ ભગવાનના ક્ષત-વિક્ષત બની ગયેલા શરીરને ઉંચું ઉપાડી ફેંકવામાં પણ બાકી રાખેલ નહીં. પરંતુ ગોદોહિક આસન, ઉત્કુટક (ઉકડુ) આસન અને વીરાસન વગેરેથી ધ્યાનસ્થ થયેલા પ્રભુને એ લોકો ચલાયમાન કરી શકયા નહીં. ભગવાને આ પ્રકારનાં માનવતાવિહોણાં અનાર્યોદ્વારા અપાયેલાં કષ્ટોને કેવા પ્રકારે સહન કર્યા ? એને 'वोसट्ठकाए' એ પદથી સ્પષ્ટ કરતાં સૂત્રકાર કહે છે—

एव अप्रतिज्ञः=दुःखप्रतीकारप्रतिज्ञारहितः, अत एव दुःखसहः=परीषहोपसर्गजन्य दुःखसहिष्णुः सन् प्रणतः=प्र=प्रकर्षेण नतः=धर्मध्यानलीन आसीत् ॥१२॥

भगवतः परुषपरीषहसहनं सदृष्टान्तमाह-'सूरो' इत्यादि ।

मूलम्—सूरो संगामसीसे वा, संवुडे तत्थ से महावीरे ।
पडिसेवमाणे फरुसाइं; अचलं भगवं रीइत्था ॥१३॥

छाया——सूरः संग्रामशीर्षे इव, संवृतस्तत्र स महावीरः ।
प्रतिसेवमानः परुषान्, अचलो भगवान् अरीयत ॥ १३ ॥

टीका——सङ्ग्रामशीर्षे=रणभूमौ संवृतः=कवचाच्छादितकायः सूर इव=अप्रतिहतपराक्रमी योद्धेव स महावीरः संवृतः=धैर्यादिगुणाच्छादितमनोवाक्काययोगः

षह और उपसर्ग भगवानने धर्मध्यानमें लीन होनेसे जीते। धर्मध्यानमें लीनता होने पर ही कायसे ममत्वका अभाव होता है, जहां धर्मध्यान का सद्भाव होता है वहां दुःखादिकोंके होने पर भी आत्मा उनसे विचलित नहीं होती, वे प्रभु अप्रतिज्ञ-उन प्रहारादि परीषहोंके प्रतीकार करनेकी भावनासे रहित थे ॥ १२ ॥

भगवानने इन परुष-कठोरवचनादिजन्य परीषहोंको कैसे सहन किया? इस विषयका खुलाशा सूत्रकार दृष्टान्तसे करते हैं--'सूरो' इत्यादि ।

जिस प्रकार कवच धारण किये हुए कोई एक सबल योधा युद्धमें शत्रुओंके द्वारा अनेक रीतिसे किये गये भाले आदि शस्त्रोंके आघातों से बाल२ बच निकलता है और विजयश्री की प्राप्तिसे सुशोभित होता

આ બધા ત્રાસ અને દુઃખો ભગવાન ધર્મધ્યાનમાં લીન હોવાથી જીતેલા. ધર્મધ્યાનમાં લીનતા હોવાથી જ કાયાના મમત્વનો અભાવ થાય છે જ્યાં ધર્મધ્યાનનો સદ્ભાવ હોય છે ત્યાં ગમે તેવાં દુઃખો આવી પડે તો પણ આત્મા વિચલિત થતો નથી. તે પ્રભુ અપ્રતિજ્ઞ-ગમે તેવા આક્રમણ થયા છતાં તેની સામે બચાવ કરવાની કે સામનો કરવાની ભાવનાથી રહિત હતા. (૧૨)

ભગવાને એ અનાર્યોનાં કઠોર વચનોથી તથા મારથી ઉત્પન્ન થયેલ પરીષહોને કઈ રીતે સહન કર્યા ? આ વિષયનો ખુલાસો સૂત્રકાર દૃષ્ટાંતથી કરે છે— 'सूरो' ઈત્યાદિ.

જે પ્રકારે કવચ ધારણ કરેલ કોઈ એક સબળ સૈનિક યુદ્ધમાં શત્રુઓ તરફથી ભાલાં, તરવાર વગેરે શસ્ત્રોથી થતા પ્રહારોની તેમ જ તેના શરીરના માંસના લોચા બહાર નીકળી જતાં તેની પણ દરકાર ન કરતાં વિજય મેળવ-

तत्र=लाढदेशे परुषान्=दुःसहपरीषहान् प्रतिसेवमानः=सहमानः, अत एव अचलः=निष्कम्पः सन् अरीयत=विहरतिस्म। यथा शूरः शत्रुभिः कुन्तादिशस्त्रैः प्रतिहन्यमानोऽपि कवचावृतशरीरः सन् न पराजयं प्राप्नोति तथा भगवानपि अनार्यलोकैर्दण्डमुष्ट्यादिविविधघोरपरीषहोपसर्गैरुपद्रुतोऽपि धैर्यादिगुणसंवृतः सन् न धर्मध्यानच्युतिलक्षणं पराजयं प्रापेति भावः ॥१३॥

उद्देशकार्थमुपसंहरन्नाह--'एस विही' इत्यादि।

मूलम्--एस विही अणुक्कंतो माहणेण मइमया।
बहुसो अपडिन्नेण भगवया एवं रियंति--त्तिबेमि ॥१४॥

है, उसी प्रकार उस लाढ देशमें धैर्य आदि सद्गुणरूप कवचसे युक्त मन, वचन और काय योगवाले भगवान् महावीरने उन दुःसह परीषहोंको अडोल बन कर सहते हुए विहार किया। तात्पर्य यह है कि--जिस प्रकार कवच पहिरे हुए योधा युद्धमें शत्रुओंद्वारा किये गये वारोंको बचाता हुआ अपने लक्ष्य पर डटा रहता है और अन्तमें विजयकी प्राप्तिसे जैसे आनंदित होता है, उसी प्रकार ठीक भगवान् महावीर भी उस लाढदेशमें इन अनार्यों द्वारा किये गये अनेक प्रकारके भयंकर उपद्रवोंसे युक्त होने पर भी धैर्य आदि गुणोंसे संवृत शरीरवाले होनेसे उन्हें सहते हुए अपने धर्मध्यानसे तनिक भी विचलित नहीं हुए ॥१३॥

इस उद्देशके अर्थका उपसंहार करते हुए सूत्रकार कहते हैं--'एस विही' इत्यादि।

વામાં જ તન્મય બની શત્રુઓને હરાવવામાં જ એટલે કે ધ્યેયની પ્રાપ્તિમાં જ મશગુલ રહે છે, અને વેદનાની કે પોતાના શરીરના લબડતા માંસના લોચાની જરા સરખીએ પરવા કરતો નથી, એ જ રીતે એ લાઢ દેશમાં ધૈર્ય વગેરે સદ્‌ગુણરૂપ કવચથી શોભતા અને તેમજ મન, વચન અને કાયાના યોગવાળા ભગવાન મહાવીરે પણ અસહ્ય એવાં દુઃખોને અડોલ રહી સહન કરતાં વિહાર કર્યો. તાત્પર્ય એ કે--જે રીતે કવચ ધારણ કરેલા યોદ્ધાને યુદ્ધમાં શત્રુએ તરફથી કરવામાં આવતા પ્રહાર-વારને બચાવતાં બચાવતાં તે યોદ્ધો પોતાના લક્ષથી જરા પણ વિચલિત બનતો નથી, અને અંતે વિજય પ્રાપ્ત કરે છે, ઠીક એ જ રીતે ભગવાન મહાવીર પણ એ લાઢ દેશમાં અનાર્યો દ્વારા કરવામાં આવેલ અનેક પ્રકારના ભયંકર ઉપદ્રવો આવવા છતાં પણ ધૈર્ય વગેરે ગુણોથી શોભતા શરીરવાળા હોવાથી આવી પડેલા ઉપદ્રવોને સહેવા છતાં પોતાના ધર્મધ્યાનથી લેશ માત્ર પણ ચલિત બનેલ ન હતા. (૧૩)

આ ઉદ્દેશના અર્થનો ઉપસંહાર કરતાં સૂત્રકાર કહે છે--'एस विही' ઇત્યાદિ.

छाया--एष विधिरनुक्रान्तः माहनेन मतिमता।
बहुशः अप्रतिज्ञेन भगवता एवं रीयन्ते, इति ब्रवीमि ॥१४॥

टीका--अस्य व्याख्याऽत्रैवाध्ययने प्रथमोद्देशेऽभिहिता, तत एवावगन्तव्या। इति ब्रवीमीत्यस्यार्थस्तूक्त एव ॥ १४ ॥

नवमाध्ययनस्य तृतीय उद्देशः समाप्तः ॥ ९-३ ॥

इस सूत्रकी व्याख्या इसी अध्ययनके प्रथम उद्देशमें की जा चुकी है, अतः वहांसे समझ लेनी चाहिये। 'इति ब्रवीमि' इसका अर्थ पहले किया जा चुका है ॥ १४ ॥

नववें अध्ययनका तीसरा उद्देश समाप्त ॥९-३॥

આ સૂત્રની વ્યાખ્યા આ અધ્યયનના પ્રથમ ઉદ્દેશમાં કહેવામાં આવી ગઈ છે, માટે ત્યાંથી સમજી લેવી જોઈએ. 'इति ब्रवीमि' આનો અર્થ પહેલાં આવી ગયેલ છે. (૧૪)

નવમા અધ્યયનનો ત્રીજો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥૯-૩॥

॥ अथ नवमाध्ययनस्य चतुर्थ उद्देशः ॥

इहानन्तरतृतीयोद्देशके भगवतः परीषहोपसर्गसहनं प्रतिबोधितम् । अथ चतुर्थोद्देशके रोगातङ्कपीडाप्रतीकारपरिहारेण परीषहोपसर्गाणामतीव सहनं तपश्चर्याप्रवृत्तिं च भगवतः कथयन्नाद्यं सूत्रमाह–'ओमोयरियं' इत्यादि ।

मूलम्—**ओमोयरियं चाएइ, अपुट्ठेऽवि भगवं रोगेहिं ।**

पुट्ठे वा अपुट्ठे वा, नो से साइज्जइ तेइच्छं ॥१॥

छाया––अवमौदरिकां करोति अस्पृष्टोऽपि भगवान् रोगैः।

स्पृष्टो वा अस्पृष्टो वा नो स स्वदते चिकित्साम् ॥ १ ॥

टीका––भगवान् रोगैरस्पृष्टोऽपि=वातादिप्रकोपरहितोऽपि, अवमौदरिकां=न्यूनोदरतां करोतिस्म, लोका हि रोगाऽऽक्रान्ताः सन्तस्तत्प्रशमनार्थं न्यूनोदरतां करोति, भगवांस्तु रोगानाक्रमणेऽपि कर्मनिर्जरार्थं तां कर्तुं प्रवृत्त इति भावः । यद्यपि स भगवान् अस्पृष्टो वा=कासश्वासादिभिरनाक्रान्त आसीत्, किन्तु स्पृष्टो वा=कुकुरादिभिः क्षतगात्रोऽपि सन् चिकित्सां=औषधादिभिस्तत्प्रतीकारं नो स्वदते=नाभिलषतिस्म॥१॥

॥ नववें अध्ययनका चौथा उद्देश ॥

तृतीय उद्देशमें भगवानने किन२ परीषह और उपसर्गोंको सहा ? यह प्रकट किया गया है। इस चतुर्थ उद्देशमें भगवानद्वारा आचरित तपश्चर्याका वर्णन किया जायगा, अतः सर्व प्रथम सूत्रकार अवमौदर्य तपका कथन करते हैं–––'ओमोयरियं' इत्यादि ।

भगवान यद्यपि किसी भी वातादिकके प्रकोपसे उत्पन्न होने वाले रोगसे सदा रहित थे तो भी ऊनोदर नामक तपको करते थे, कारण कि कर्मोंकी निर्जराका प्रधान साधन तप ही है। तपके विना कर्मों की निर्जरा

નવમા અધ્યયનનો ચોથો ઉદ્દેશ

ત્રીજા ઉદ્દેશમાં ભગવાને કેવા કેવા પરિષહ અને ઉપસર્ગો સહ્યા તેનું વર્ણન કરવામાં આવેલ છે. આ ચોથા ઉદ્દેશમાં ભગવાને આચરેલી તપસ્યાનું વર્ણન કરવામાં આવશે. આ માટે સર્વ પ્રથમ સૂત્રકાર અવમૌદર્ય તપનું કથન કરે છે—'ओमोयरियं' ઈત્યાદિ.

ભગવાન જો કે કોઈ પણ વાત આદિના પ્રકોપથી ઉત્પન્ન થવાવાળા રોગથી સદા રહિત હતા તો પણ ઉનોદરી તપ કરતા હતા, કારણ કે કર્મોની નિર્જરાનું પ્રધાન સાધન તપ જ છે. તપ વગર કર્મોની નિર્જરા

नहीं हो सकती है। तपसे दो लाभ होते हैं-एकतो संचित कर्मोंकी निर्जरा और दूसरा संवरकी प्राप्ति, इसी लिये मोक्षार्थियोंको मोक्ष प्राप्तिके लिये तपश्चर्याकी अनिवार्य आवश्यकता है। भगवानने भी इसी अभि-प्रायसे तपश्चर्या करनेमें थोडी भी कमी नहीं रखी, और ज्यादासे ज्यादा तपश्चर्या करने में ही अपने आपको संलग्न किया, इस विषयमें उन्हें अनेक परीषह और उपसर्गोंको सहने पडे-जो सामान्यजनके लिये असह्य होते हैं।

भावार्थ-प्रायः यह बात देखी जाती है कि मनुष्य जब किसी रोग आदिसे आक्रान्त होता है, तब वह ऊनोदर रहता है जिससे उसके रोग शमित हों, परन्तु भगवान तो जन्मसे ही रोगादिकसे रहित थे, फिर भी तप करनेमें जो उन्होंने करकसर नहीं रखी, उसका कारण सिर्फ कर्मोंकी निर्जरा करना था। इसी प्रकार श्वास कास (खांसी) आदिसे भगवान रहित थे। उन्हें त्रिलोकमें भी कोई ऐसी चीज-वस्तु नहीं थी जो दुर्लभ होती, परन्तु फिर भी जब उनके उपर कुत्ते आदि उपसर्ग करते, उनके शरीर पर झपटकर जब उन्हें काट खाते तब भी वे किसी भी औषधिका उपचार नहीं करते ॥ १ ॥

બની શકતી નથી. તપથી બે લાભ થાય છે-એક તો સંચિત કર્મોની નિર્જરા અને બીજુ સંવરની પ્રાપ્તિ, આ માટે મોક્ષાર્થીઓએ મોક્ષપ્રાપ્તિ માટે તપશ્ચર્યા કરવી જોઇએ એ અનિવાર્ય છે. ભગવાને પણ આ અભિપ્રાયથી તપસ્યા કરવામાં જરા પણ બાકી રાખેલ નથી, અને વધારેમાં વધારે તપસ્યા કરવામાં પોતે પોતાના આત્માને જોડેલો. આ બારામાં એમને અનેક પ્રકારનાં પરિષહ અને ઉપસર્ગો સહેવા પડયા જે સામાન્ય માણસો માટે અસહ્ય હોય છે.

ભાવાર્થ-આથી એ વાત જોવામાં આવે છે કે જ્યારે કોઈ રોગ વગેરેથી પીડા ઉભી થાય છે ત્યારે તે ભુખ્યો રહે છે જેથી તેનો રોગ ઓછો થાય, પરંતુ ભગવાન તો જન્મથી જ રોગાદિકથી રહિત હતા, તો પણ તપ કરવામાં તેઓએ જરા પણ ઉણપ રાખી નથી, તેનું કારણ ફક્ત કર્મોની નિર્જરા કરવાનું હતું. આ પ્રકારે ખાંસી-ઉધરસ વગેરેથી ભગવાન રહિત હતા. તેમના માટે ત્રણ લોકમાં એવી કોઈ પણ વસ્તુ ન હતી કે જે તેમને માટે દુર્લભ હોય, તો પણ જ્યારે કુતરાઓ વગેરે તેમના ઉપર આક્રમણ કરતા અને ઉપસર્ગ આપતા, તેમના શરીર ઉપર ઝપટ મારી કરડતા-બચકાં ભરતા ત્યારે કોઇ પણ ઔષધિનો ઉપચાર પ્રભુ કરતા નહીં. (૧)

तदेव दर्शयितुमाह–'संसोहणं च' इत्यादि।

मूलम्–संसोहणं च वमणं च, गायब्भंगणं च सिणाणं च।
संवाहणं च न से कप्पे, दंतपक्खालणं च परिन्नाए ॥२॥

छाया––संशोधनं च वमनं च गात्राभ्यञ्जनं च स्नानं च।
संवाहनं च न तस्य कल्पते दन्तप्रक्षालनं च परिज्ञाय ॥२॥

टीका––परिज्ञाय=अशुचि, अशुचिसंभवमौदारिकशरीरमिति विदित्वा संशोधनं=बस्तिकर्मणौषधप्रयोगेण वा मलकोष्ठस्य सम्यक् शोधनं, तस्य भगवतो न कल्पत इत्यन्वयः। एवमग्रेऽपि वमनादिषु योजनीयम्। वमनं=वमनजनकौषधप्रयोगेण शरीरान्तर्वर्तिकफादिनिःसारणं, तथा गात्राभ्यञ्जनं=शतपाकसहस्रपाकतैलादिभिश्चन्दनकुङ्कुमकेसरादिभिर्वा गात्रोद्वर्तनं, तथा–स्नानं=द्रव्यस्नानं=अप्रासुकेन–प्रासुकेन वा जलेन स्नानम्। तद् द्विविधं–देशस्नानं सर्वस्नानं चेति। तत्र हस्ताद्यधिष्ठानादिशौचातिरेकेणाऽक्षिपक्ष्मप्रक्षालनमपि देशस्नानम्। सर्वस्नानं–सर्वाङ्गप्र-

इसी बातको और स्पष्ट करते हैं–'संसोहणं च' इत्यादि।

भगवानने कभी भी संशोधन-बस्तिकर्म–इमेमा अथवा विरेचक औषधि आदिद्वारा मलकोष्ठकी शोधनक्रिया, वमनकारक औषधिके उपचारसे शरीरके भीतरके कफादिक मैलका संशोधन–बाहर निकालना, शतपाकवाले, अथवा सहस्रपाकवाले तैलसे मर्दन, अथवा चंदन, कुंकुम और केशर आदिसे शरीरका उवटन और प्रासुक अथवा अप्रासुकजलसे द्रव्य स्नान करना, ये समस्त क्रियाएँ बिलकुल नहीं कीं, कारण कि इस प्रकारकी क्रियाओंका करना उनके आचारसे उन्हें कल्प्य नहीं था। द्रव्यस्नान–देशस्नान और सर्वस्नानके भेदसे दो प्रकारका है। हाथ पैर आदिकी शुद्धिके सिवाय आंखों और उनकी पलकोंका प्रक्षालन करना देशस्नान,

આ વાતને વધુ સ્પષ્ટ કરવામાં આવે છે–'संसोहणं च' ઇત્યાદિ.

ભગવાને કદી પણ સંશોધન–બસ્તિકર્મ–એનીમા અથવા વિરેચક ઔષધી વગેરે દ્વારા મળશુદ્ધિની ક્રિયા, કય–ઉલટી કરાવનારા ઔષધોના ઉપચારથી શરીરની અંદરના કફ વગેરે મેલને બહાર કાઢવો, શતપાક કે સહસ્રપાક તેલથી મર્દન, અથવા ચંદન, કંકુ કે કેશર વગેરેથી શરીરનું લેપન, ગરમ અથવા ઠંડા પાણીથી દ્રવ્યસ્નાન કરવું, આવી બધી ક્રિયાઓનો ભગવાને સર્વથા ત્યાગ કર્યો હતો, કારણ કે આ પ્રકારની ક્રિયાઓ કરવા માટે તેમના આચારથી તેમનો કલ્પ ન હતો દ્રવ્યસ્નાન–દેશસ્નાન તથા સર્વસ્નાનના ભેદથી બે પ્રકારના છે. હાથ પગ વગેરેની શુદ્ધિના સિવાય આંખો અને તેની પાપણોનું પણ પ્રક્ષાલન કરવું એ દેશ–સ્નાન,

क्षालनम्—अप्रासुकजलेन स्नानकरणेऽप्कायादिविराधनया तपःसंयमविनाशात्, प्रासुकजलेनापि स्नानकरणे शुषिरविदीर्णभूमिवर्तिजन्तूनामुत्प्लावनेन प्राणिविराधनायाः सद्भावात् साधोः स्नानं न कल्पत इति भावः। उक्तञ्च—

नोदकक्लिन्नगात्रोऽपि, स्नात इत्यभिधीयते।
स स्नातो यो दमस्नातः, स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥१॥
चित्तमन्तर्गतं दुष्टं, तीर्थस्नानैर्न शुध्यति।
शतशोऽपि वपुर्धौतं, सुराभाण्डमिवाशुचि ॥ २ ॥

और समस्त अंग उपांग सहित शरीरका प्रक्षालन करना सर्वस्नान है। अप्रासुक जलसे स्नान करनेपर अप्कायके जीवोंकी विराधना होती है, इससे स्नान करनेवालेके तप और संयमका विघात होता है। प्रासुकजलसे भी स्नान करनेसे जीवोंकी विराधना इसलिये होती है कि वह पानी बहकर जमीनमें भीतर समा जाता है और छेदोंमें भरजानेसे उनके भीतर रहे हुए जीव उससे मर जाते हैं। इस प्रकार उन्हें कष्टका कारक होनेसे वह प्रासुकजल द्वारा किया गया स्नान भी साधुओंके लिये हेय है। कहा भी है—

नोदकक्लिन्नगात्रोऽपि स्नात इत्यभिधीयते।
स स्नातो यो दमस्नातः, स बाह्याभ्यन्तरे शुचिः ॥१॥
चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानैर्न शुद्ध्यति।
शतशोऽपि वपुर्धौतं सुराभाण्डमिवाशुचि ॥२॥

અને સમસ્ત અંગ ઉપાંગો સહિત શરીરનું પ્રક્ષાલન કરવું તે સર્વ-સ્નાન. અપ્રાસુક જલથી સ્નાન કરવામાં અપ્કાય જીવોની વિરાધના થાય છે, જેથી સ્નાન કરનારને તપ તેમજ સંયમનો વિઘાત થાય છે. પ્રાસુક જળથી પણ સ્નાન કરવાથી જીવોની વિરાધના એ રીતે થાય છે કે તે પાણી વહેતું-વહેતું જમીનમાં સમાઈ જાય છે, તેમજ જમીનના છિદ્રોમાં ઉતરી જતું હોવાથી તેમાં રહેલા જીવો મરે છે, આ પ્રકારે તેના કષ્ટનું કારણ હોવાથી તેવા પ્રાસુક જળથી કરાયેલ સ્નાન પણ સાધુ માટે ત્યાજ્ય હોય છે. કહ્યું પણ છે—

नोदकक्लिन्नगात्रोऽपि, स्नात इत्यभिधीयते।
स स्नातो यो दमस्नातः, स बाह्याभ्यन्तरे शुचिः ॥१॥
चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानैर्न शुद्ध्यति।
शतशोऽपि वपुर्धौतं सुराभाण्डमिवाशुचि ॥ २ ॥

अन्यच्च–स्नानं मददर्पकरं, कामाङ्गं प्रथमं स्मृतम् ।
. तस्मात्कामं परित्यज्य, नैव स्नान्ति दमे रताः ॥१॥

अपरंच–" मलमइलपंकमइला, धूलीमइला न ते नरा मइला ।
जे पावपंकमइला, ते मइला जीवलोयंमि " ॥ १ ॥

छाया–" मलमलिनाः पङ्कमलिना,–धूलीमलिना न ते नरा मलिनाः ।
ये पापपङ्कमलिना,–स्ते मलिना जीवलोके ॥१॥ " इति ।

तथा संवाहनं=हस्तादिना शरीरपरिकर्म, अस्थ्यादिसुखार्थं गात्रनिष्पीडनम् । तथा–दन्तप्रक्षालनं=काष्ठेन चूर्णादिना वा दन्तमार्जनं च तस्य भगवतः श्रीवर्द्धमान-स्वामिनो न कल्पते ॥ २ ॥

और भी–स्नानं मददर्पकरं, कामाङ्गं प्रथमं स्मृतम् ।
तस्मात् कामं परित्यज्य, नैव स्नान्ति दमे रताः ॥१॥

फिर भी–मलइलपंकमइला, धूलीमइला न ते नरा मइला ।
जे पावपंकमइला, ते मइला जीवलोयंमि ॥१॥

भावार्थ––पानीको शरीर पर डालना, अथवा उससे शरीरको गीला करना इसका नाम स्नान नहीं है। ऐसे लौकिक स्नानसे न बाह्य शरीरकी शुद्धि होती है और न आभ्यन्तर आत्माकी ही। इन दोनों प्रकारकी शुद्धिका कारण दमस्नान है। पांच इन्द्रिय और मनको वश करनेका नाम दम है। इससे (पांच इन्द्रियोंके वश करने से) शरीरकी, और मनको वश करनेसे आत्माकी शुद्धि होती है, इसीका नाम बाह्य और आभ्यन्तर शुद्धि है। दम को स्नान इस लिये कहा है कि जिस प्रकार जल स्नानसे शरीर आदिके ऊपरका लगा हुआ मैल दूर हो जाता है

ફરી પણ–સ્નાનં મદદર્પકરં, कामाङ्गं प्रथमं स्मृतम् ।
तस्मात् कामं परित्यज्य, नैव स्नान्ति दमे रताः ॥१॥

ફરી પણ–" मलमइलपंकमइला, धूलीमइला न ते नरा मइला ।
जे पापपंकमइला, ते मइला जीवलोयंमि " ॥१॥

ભાવાર્થઃ–પાણીને શરીર ઉપર ઢોળવું, અથવા તેનાથી શરીરને ધોવું તેનું નામ સ્નાન નથી પણ એવા લૌકિક સ્નાનથી નથી બાહ્ય શરીરની શુદ્ધિ થતી કે નથી તેમ અંદરના આત્માની પણ, આ બન્ને પ્રકારની શુદ્ધિનું કારણ દમસ્નાન છે. પાંચ ઈન્દ્રિયો અને મનને વશ કરવાનું નામ દમ છે. આથી પાંચ ઇન્દ્રિયોને વશ કર-વાથી શરીરની અને મનને વશ કરવાથી આત્માની શુદ્ધિ થાય છે. તેનું નામ અભ્યંતર શુદ્ધિ છે. દમસ્નાન આ માટે કહેવાયેલ છે કે જે પ્રકારે જળસ્નાનથી શરીર વગેરે ઉપર લાગેલો મેલ દુર થઈ જાય છે એ પ્રકારે આ દમક્રિયાથી

किञ्च-'विरए' इत्यादि।

मूलम्-विरए य गामधम्मेहिं, रीयइ माहणे अबहुवाई।
सिसिरंमि एगया भगवं, छायाए झाइ आसीय ॥३॥

छाया--विरतश्च ग्रामधर्मेभ्यो, रीयते माहनः अबहुवादी।
शिशिरे एकदा भगवान्, छायायां ध्यायति आसित्वा ॥३॥

उसी प्रकार इस दम-क्रियासे इन्द्रिय आदिकी निरर्गल प्रवृत्तिसे उत्पन्न हुई शारीरिक और आत्मिक अपवित्रता भी जो एक मैल जैसी मानी गई है नष्ट हो जाती है। दमस्नानके विना इस अन्तर्गत चित्तकी दुष्टता चाहे हजारों भी तीर्थोंमें स्नान क्यों न कर लिया जाय कभी नष्ट नहीं हो सकती है। जिस प्रकार मदिराके रखनेका वर्तन अनेक बार धोने पर भी शुचि-पवित्र नहीं होता है, उसी प्रकार सैकडों बाहिरी उपायसे धोया गया यह शरीर भी कभी पवित्र नहीं हो सकता है। इसलिये जो दमस्नान करनेमें रत साधु हैं वे इस मद और दर्पकारी तथा कामके प्रधान कारणभूत इस जलस्नानसे दूर रहते हैं। इसी लिये प्रभु इन सब बातोंसे परे रहे और आत्मिक शुचिताकी वृद्धिकी ओर अग्रेसर हुए। भगवानने इसी प्रकार 'शरीरको सुख मिले' इस भावनासे दूसरोंको प्रेरित कर कभी भी किसीसे अपना शरीर नहीं दबवाया और न अपने दांतोंका प्रक्षालन-दन्तधावन ही किया, क्यों कि ये सब बातें जैनदीक्षामें हेय-त्याज्य-मानी जाती हैं ॥२॥

ઈન્દ્રિય વગેરેની નિરર્ગળ પ્રવૃત્તિથી ઉત્પન્ન થયેલ શારીરિક અને આત્મિક અપવિત્રતા પણ જેને મેલ જેવી માની લેવાયેલ છે તે નાશ પામે છે. દમસ્નાન વિના અન્તર્ગત ચિત્તની દુષ્ટતા હજારો તીર્થોમાં સ્નાન કરવાથી પણ નાશ પામતી નથી. જે રીતે દારૂ રાખવાનું ઠામ અનેક વખત સાફ કરવા છતાં પણ તે તેની વાસથી મુકત થઈ પવિત્ર બનતું નથી, તેવી રીતે બહારના સેંકડો ઉપાયોથી ધોવામાં આવેલ આ શરીર પણ કદી પવિત્ર થતું નથી, માટે જે સાધુ દમસ્નાન કરવામાં મસ્ત છે તેવા સાધુ આવા મદ અને દર્પકારી તથા કામના પ્રધાન કારણભૂત આ જળસ્નાનથી દુર રહે છે. આથી જ પ્રભુ આવી રીતથી દુર રહ્યા અને આત્મિક શુદ્ધિની વૃદ્ધિને માટે અગ્રેસર રહ્યા. ભગવાને આવી રીતે 'શરીરને સુખ મળે' આ ભાવનાથી બીજાઓને પ્રેરિત કરી કદી પણ કોઈથી પોતાનું શરીર દબાવરાવ્યું નહિ, અને પોતાના દાંતોનું ધોવું એટલે દાતણ કરવું વગેરે પણ કરેલ નહીં, કારણ કે આ બધી વાતો જૈનદીક્ષામાં હેય-ત્યાજ્ય-માનેલ છે. (૨)

टीका--ग्रामधर्मेभ्यः=शब्दादिविषयेभ्यः, विरतः=निवृत्तः, माहनः=अहिंसोपदेशी, अबहुवादी=अल्पभाषी, भगवान् रीयते=विहरतिस्म। एकदा शिशिरे भगवान् छायायां वृक्षलतामण्डपादेरधस्तात् आसित्वा=उपविश्य ध्यायति=ध्यानलीनो बभूव ॥ ३ ॥

किञ्च-'आयावइ' इत्यादि।

मूलम्-आयावइ य गिम्हाणं, अच्छइ उक्कुडुए अभितावे।
अदु जावइत्थ लूहेणं, ओयणमंथुकुम्मासेणं ॥४॥

छाया--आतापयति च ग्रीष्मेषु, तिष्ठति उत्कुटुकः अभितापम्।
अथाऽयापयत् रूक्षेण, ओदनमन्थुकुल्माषेण ॥ ४ ॥

टीका--भगवान् ग्रीष्मेषु आतापयति=सूर्यातापनां सेवतेस्म। केन प्रकारेणेत्याह-'तिष्ठती'-त्यादि। उत्कुटुकः=उत्कुटुकासनो भूत्वा अभितापं=सूर्याभिमुखं तिष्ठति। अथ=समुच्चये, तथा रूक्षेण=नीरसेनान्तप्रान्तेन पर्युषितेन च ओदनमन्थुकुल्माषेण, ओदनः=कोद्रवौदनादिः, मन्थु=बदरचूर्णादिकं, कुल्माषः=कुलत्थादिः, एषां समाहारः ओदनमन्थुकुल्माषं, तेन अयापयत्=शरीरयात्रां निर्वहतिस्म ॥४॥

फिर भी—"विरए य" इत्यादि।

शब्दादिक पांच इन्द्रियोंके विषयोंसे सर्वथा विरक्त वे भगवान सदा जीवोंको अहिंसा धर्मका उपदेश देनेवाले थे। बहुत कम बोलते थे। यदि बोलनेका अवसर आता तो सदा हित मित और प्रिय वचन बोलते थे। कभी२ शिशिर ऋतुमें भगवान वृक्ष, लता-मण्डप आदिके नीचे बैठ कर ध्यानमें लीन होते थे ॥३॥

और भी—'आयावइ य' इत्यादि।

ग्रीष्मऋतुमें प्रभु सूर्यके संमुख उत्कुटुक (उकडु) आसनसे बैठकर आतापना लेते। तथा अन्त प्रान्त और पर्युषित कोद्रवका अन्न

ફરી—'विरए य' ઈત્યાદિ.

શબ્દાદિક પાંચ ઇન્દ્રિયોના વિષયોથી સર્વથા વિરકત એવા ભગવાન સદા જીવોની અહિંસાના ઉપદેશક હતા. થોડું બોલતા હતા. કદાચ બોલવાનો પ્રસંગ આવતો તો સદા હિત મિત અને પ્રિય વચન કહેતા હતા. કદી કદી શિશિર ઋતુમાં ભગવાન વૃક્ષ, લતામંડપ વગેરેની નીચે બેસી ધ્યાનમાં લીન થતા હતા. (૩)

ફરી પણ—'आयावइ य' ઈત્યાદિ.

ગ્રીષ્મઋતુમાં પ્રભુ સૂર્યની સામે ઉત્કુટુક (ઉકડુ) આસનથી બેસી આતાપના લેતા હતા, તથા અન્ત પ્રાન્ત અને પર્યુષિત કોદરાનું અન્ન વગેરે, બોરનું ચૂર્ણ

भगवान् कियन्तं कालं रूक्षोदनादीनि सेवते स्मेत्याह—'एयाणि' इत्यादि।

मूलम्—एयाणि तिन्नि पडिसेवे, अट्ठमासे य जावए भयवं ।
अवि इत्थ एगया भगवं, अद्धमासं अदुवा मासंपि ॥५॥

छाया—एतानि त्रीणि प्रतिसेवते, अष्टमासांश्च यापयति भगवान्।
अप्यत्र एकदा भगवान्, अर्द्धमासमथवा मासमपि ॥ ५ ॥

टीका—भगवान् एतानि=पूर्वोक्तानि त्रीणि=ओदनादीनि यथाप्राप्तं प्रतिसेवतेस्म। एवं कृत्वाऽष्टौ मासान् यापयति=शरीरयात्रां निर्वहतिस्म। अथ भगवतस्तपो वर्णयति—'अवि इत्थ' इत्यादि। अपिच—एकदा भगवान् अत्र=छद्मस्थावस्थायाम् अर्द्धमासमथवा मासमपि चतुर्विधाहारपरित्यागेन तपश्चकार ॥ ५ ॥

किञ्च—'अवि साहिए' इत्यादि।

मूलम्—अवि साहिए दुवे मासे, छप्पि मासे अदुवा विहरित्था ।
राओवरायं अपडिन्ने, अन्नं गिलायमेगया भुंजे ॥६॥

आदि, बेरों-बोरोंके चूर्ण आदि तथा कुलथी आदिसे अपने शरीरका निर्वाह करते। यह सब रूक्ष आहार है ॥ ४ ॥

भगवानने कितने दिनों तक रूक्ष आहारका सेवन किया? इसे सूत्रकार प्रकट करते हैं—'एयाणि' इत्यादि।

भगवान्ने इन ओदन-कोद्रव, मंथु-बेरचूर्ण और कुलथी, ये तीन प्रकारके पर्युषित रूक्ष आहार जिस समय गोचरीमें जो मिल जाता था वही लेते थे, इस प्रकार आठ मास तक रूक्ष आहार सेवन किया। भगवान्ने अपनी इस छद्मस्थावस्थामें कभी२ अर्ध मास या एक मास आदि अनेक चौविहार तपश्चर्या की ॥५॥

વગેરે તથા કળથી વગેરેથી પોતાના શરીરનો નિર્વાહ કરતા. આ બધા રૂક્ષ આહાર છે. (૪)

ભગવાને કેટલા દિવસો સુધી રૂક્ષ આહારનું સેવન કર્યું? એને સૂત્રકાર પ્રગટ કરે છે—'एयाणि' ઇત્યાદિ.

ભગવાને એ ઓદન-કોદ્રવ, મંથુ-બોરચુર્ણ અને કલથી, એ ત્રણ પ્રકારના પર્યુષિત-વાસી રૂક્ષ આહાર જે સમયે ગોચરીમાં જે મળી જતું તે લેતા હતા. આ પ્રકારે આઠ માસ સુધી રૂક્ષ આહારનું સેવન કર્યું. ભગવાને પોતાની એ છદ્મસ્થ અવસ્થામાં કદી કદી અર્ધોમાસ, અગર એકમાસ આદિ અનેક ચૌવિહાર તપશ્ચર્યા કરી. (૫)

छाया--अपि साधिकौ द्वौ मासौ षडपि मासान् अथवा विजहार।
रात्रोपरात्रमप्रतिज्ञः, अन्नं ग्लानमेकदा भुङ्क्ते ॥ ६ ॥

टीका--अपि च-साधिकौ द्वौ मासौ=सार्धमासद्वयम्। अथवा षण्मासान् अपि पानीयमप्यपीत्वा अप्रतिज्ञः=पानप्रतिज्ञारहितः सन् रात्रोपरात्रम्=अहर्निशं विजहार=तपश्चर्यायां विहरतिस्म। तथा-एकदा=तपःपारणादिवसे ग्लानं=पर्युषित-मन्तमान्तम्, अन्नम्=ओदनादिकं भुङ्क्तेस्म ॥६॥

किञ्च—'छट्ठेण' इत्यादि।

मूलम्—छट्ठेण एगया भुंजे, अदुवा अट्ठमेण दसमेणं।
दुवालसमेण एगया भुंजे, पेहमाणे समाहिं अपडिन्ने॥७॥

छाया--षष्ठेन एकदा भुङ्क्ते अथवा अष्टमेन दशमेन।
द्वादशेन एकदा भुङ्क्ते प्रेक्षमाणः समाधिमप्रतिज्ञः ॥ ७ ॥

टीका--अप्रतिज्ञः=इहलोकपरलोकप्रतिज्ञारहितः समाधिं=संयमसमाधिं प्रेक्ष-माणः=पर्यालोचयन् भगवान् एकदा=कदाचित् षष्ठेन=षष्ठभक्तेन भुङ्क्तेस्म। अथवा अष्टमेन, एकदा द्वादशेन=द्वादशभक्तेन च भुङ्क्तेस्म। षष्ठभक्तादीनां पारणां चकारेत्यर्थः ॥ ७ ॥

और भी—'अवि साहिए' इत्यादि।

इतना ही नहीं-किन्तु कभी२ ढाई२ मास तक अथवा छह छह मास तक चौविहार तपश्चर्या करके भगवान् तपमें लवलीन रहे। पारणाके दिन अन्त-प्रान्त और पर्युषित ओदनादिका आहार ग्रहण करते थे ॥ ६ ॥

और भी—'छट्ठेण एगया' इत्यादि।

कभी भगवान् छठ (बेला) करते थे, कभी अट्ठम (तेला) करते, कभी द्वादशभक्त (पचोला) करते हुए समाधि भावमें लीन रहते थे॥७॥

ફરી પણ—'अवि साहिए' ઈત્યાદિ.

એટલું જ નહી પણ કોઈ કોઈ વખતે બબ્બે અઢી અઢી મહિના સુધી અથવા છ છ મહિના સુધી ચૌવિહાર તપસ્યા કરીને ભગવાન તપમાં લવલીન રહ્યા. પારણાના દિવસે અન્ત પ્રાન્ત અને વાસી ઓદનાદિનું સેવન કરતા હતા. (૬)

ફરી—'छट्टेण एगया' ઈત્યાદિ.

ક્યારેક ભગવાન છઠ્ઠ કરતા હતા, ક્યારેક અઠમ કરતા હતા, ક્યારેક દ્વાદશભક્ત કરતા સમાધી ભાવમાં લવલીન રહેતા હતા. (૭)

किञ्च—' णच्चा णं ' इत्यादि।

मूलम्—णच्चा णं से महावीरे, नो वि य पावगं सयमकासी ।
अन्नेहिं वा ण कारित्था, कीरंतंपि नाणुजाणित्था ॥८॥

छाया—ज्ञात्वा खलु स महावीरः नापि च पापकं स्वयमकार्षीत्।
अन्यैर्वा नाकारयत्, कुर्वन्तमपि नान्वज्ञासीत् ॥ ८ ॥

टीका—अपि च-स महावीरः ज्ञात्वा हेयोपादेयमवबुध्य पापकं कर्म=हिंसादिरूपं न स्वयमकार्षीत्, अन्यैर्वा तत्पापकं कर्म नाकारयत्। कुर्वन्तं=पापकर्म समाचरन्तमन्यमपि नान्वज्ञासीत्=नान्वमोदयत् ॥ ८ ॥

अथ भगवतो ग्रासैषणाविधिमाह-' गामं पविस्स ' इत्यादि ।

मूलम्—गामं पविस्स नगरं वा, घासमेसे कडं परट्ठाए ।
सुविसुद्धमेसिया भगवं, आयतजोगयाए सेवित्था ॥९॥

छाया—ग्रामं प्रविश्य नगरं वा ग्रासमेषयति कृतं परार्थाय ।
सुविशुद्धमेषयित्वा भगवान् आयतयोगतयाऽसेविष्ट ॥ ९ ॥

टीका—भगवान् ग्रामं नगरं वा प्रविश्य ग्रासमन्वेषयतिस्म । कीदृशं ग्रासमित्याकाङ्क्षायामाह-' कडं परट्ठाए ' इत्यादि । परार्थाय कृतम्=उद्गमदोषरहितं,

---

और भी—' नच्चा णं ' इत्यादि ।

हेय और उपादेय तत्त्वके ज्ञाता भगवान् महावीरने कभी भी न स्वयं पापकर्म किया, न किसीसे कराया और न पापकर्म करते हुएका अनुमोदन किया ॥ ८ ॥

अब भगवान्‌की ग्रास-एषणाविधिको कहते हैं-'गामं पविस्स' इत्यादि।

ईर्यासमितिपूर्वक विहार करनेवाले प्रभु महावीरने ग्राम अथवा नगरमें प्रवेश कर उद्गम और उत्पादनाके दोषोंसे रहित शुद्ध आहार

ફરી—' नच्चा णं ' ઈત્યાદિ.

હેય અને ઉપાદેય તત્ત્વના જ્ઞાતા ભગવાન મહાવીરે કદિ પણ પોતે પાપકર્મ કર્યા નથી, અને બીજા પાસે કરાવ્યા પણ નથી, તેમજ પાપકર્મ કરવાવાળાનું અનુમોદન પણ કર્યું નથી. (૮)

હવે ભગવાનની ગ્રાસ-એષણાવિધિને કહે છે-' गामं पविस्स ' ઈત્યાદિ.

ગામ અગર નગરમાં પ્રવેશ કરી ઉદ્ગમ અને ઉત્પાદનાના દોષોથી રહિત શુદ્ધ આહારની ગવેષણા કરી. ગવેષણા કરી બાદમાં જ્ઞાનચતુષ્ટયથી મન વચન

तथा—सुविशुद्धम्=उत्पादनादोषवर्जितम्, एषयित्वा=एषणादोषं परिहरन् अन्वेष्य, भगवान् आयतयोगतया=आयतश्चासौ योगश्च—आयतयोगः=ज्ञानचतुष्टयेन सम्यग् मनोवाक्कायलक्षणयोगप्रणिधानम्, तस्य भावः आयतयोगता, तया=ग्रासैषणादोषपरिवर्जनेन सम्यक् शुद्धमाहारम् असेविष्ट ॥ ९ ॥

पुनरपि ग्रासैषणाविधिं गाथात्रयेणाह—'अदु वायसा' इत्यादि ।

मूलम्—अदु वायसा दिगिंछिया, जे अन्ने रसेसिणो सत्ता ।
घासेसणाए चिट्ठंति, सययं णिवत्तिए य पेहाए ॥१०॥

छाया—अथ वायसा बुभुक्षिता येऽन्ये रसैषिणः सत्त्वाः ।
ग्रासैषणया तिष्ठन्ति सततं निपतितांश्च प्रेक्ष्य ॥१०॥

टीका—अथ भिक्षार्थं गच्छतो भगवतः पथि बुभुक्षिताः=क्षुत्पीडिताः रसैषिणः=पिपासाकुलाः वायसाः=काकाः, तथा येऽन्ये सत्त्वाः पारावतादयः

की गवेषणा की। गवेषणा कर बादमें ज्ञानचतुष्टयसे मन, वचन और काय, इन तीन योगोंकी शुभ प्रवृत्तिपूर्वक उस आहारका जो ग्रास–एषणाके दोषोंके परिहारसे भलीभांति शुद्ध था सेवन किया ॥९॥

ग्रास–एषणा की विधिका कथन सूत्रकार तीन गाथाओंसे प्रकट करते हैं—'अदु वायसा' इत्यादि ।

भगवान् जिस समय आहारके लिये विचरण करते थे, उस समय भूखसे व्याकुल और प्यासससे दुःखित कौवा तथा कबूतर आदि जो अपनी बुभुक्षाके शमनार्थ इधर उधरसे आकर जहां संमिलित होते रहते, उनको जरा भी कष्ट न हो, आहार पा कर ये उड न जायें, इस

અને કાય, આ ત્રણ યોગોની શુભપ્રવૃત્તિપૂર્વક એ આહાર કે જે ગ્રાસૈષણાના દોષોના પરિહારથી સારી રીતે શુદ્ધ હોય તેનું સેવન કરેલું. (૯)

ગ્રાસ–એષણાની વિધિનું કથન સૂત્રકાર ત્રણ ગાથાઓથી પ્રગટ કરે છે,— 'अदु वायसा' ઈત્યાદિ.

ભગવાન આહાર માટે જે સમયે વિચરણ કરતા હતા એ સમયે ભૂખથી વ્યાકુળ અને તરસથી દુઃખી એવા કાગડા તથા કબુતરો વગેરે જીવો કે જે ભૂખને સંતોષવા રસ્તામાં જહીં કહીંથી આવી જ્યાં એક જગ્યાએ મળતા હતા. અને બીજા પણ વધુ સંખ્યામાં આવી તેમની સાથે ભળતાં હતાં. આવા પક્ષિઓ ઉડી ન જાય અને તેને જરા પણ કષ્ટ ન પહોંચે આ રીતે સંભાળપૂર્વક એમની

पक्षिणः ग्रासैषणया=भक्षणपानेच्छया भूम्युपरि तिष्ठन्ति=विचरन्ति, तथा सततम्=प्रतिक्षणं निपतितान्-आकाशाद् भूमितलमागतान् प्रेक्ष्य=दृष्ट्वा भगवान्-तेषां प्रतिरोधमकुर्वन् पार्श्वभागतः शनैर्गच्छन् ग्रासमन्वैषीदिति तृतीयगाथया सम्बन्धः।१०।

किञ्च—'अदुवा' इत्यादि। 'वित्तिच्छेयं' इत्यादि।

मूलम्—**अदुवा माहणं च समणं वा, गामपिंडोलगं च अतिहिं वा।**
सोवागं मूसियारिं वा, कुक्कुरं वावि चिट्ठियं पुरओ ॥११॥
वित्तिच्छेयं वज्जंतो, तेसिमप्पत्तियं परिहरंतो।
मंदं परक्कमे भगवं, अहिंसमाणो घासमेसित्था ॥१२॥

छाया—अथवा ब्राह्मणं च श्रमणं वा ग्रामपिण्डोलकं चातिथिं वा।
श्वपाकं मूषिकारिं वा कुक्कुरं वापि स्थितं पुरतः ॥ ११॥
वृत्तिच्छेदं वर्जयन् तेषामप्रत्ययिकं परिहरन्।
मन्दं पराक्रमते भगवान् अहिंसन् ग्रासमन्वैषीत् ॥ १२ ॥

टीका—अथवा-ब्राह्मणं तथा श्रमणं=शाक्याऽऽजीवकपरिव्राजकतापसनिर्ग्रन्थानामन्यतमं, तथा-ग्रामपिण्डोलकं=भिक्षुकं, अतिथिम्=अकस्मादागतं, श्वपाकं=चाण्डालं,

---

रीतिसे अपने आपको संभालते हुए उन्हींके समीपसे धीरे२ निकल जाते। तात्पर्य यह है कि-प्रभु जिस समय आहार लेनेके लिये निकलते थे, उस समय उनके गमनसे किसी भी जीवको कष्ट नहीं पहुंचता था। यहां तक कि जो कबूतर आदि जीव मार्गमें चुगते हुए इधर-उधर फिरा करते उस समय उनके नजदीकसे यत्नापूर्वक भगवान् निकल जाते ॥१०॥

फिर भी—'अदुवा' इत्यादि। वित्तिच्छेयं' इत्यादि।

इसी प्रकार ब्राह्मण, श्रमण, शाक्य, आजीवक, परिव्राजक, तापस, भिक्षुक, और अकस्मात् आया हुआ चांडाल एवं मार्जार-दुग्धका

બાજુમાંથી ધીરે ધીરે નીકળી જતા તાત્પર્ય એ છે કે—પ્રભુ જે સમયે આહાર લેવા નીકળતા હતા ત્યારે એમના જવા આવવાથી કોઇ પણ જીવને કષ્ટ પહોંચતું નહીં, ત્યાં સુધી કે જે કબુતર વગેરે જીવ માર્ગમાં ચણ ચણતાં આમ-તેમ ફરતાં એ સમયે ભગવાન એમની નજીકથી સાવધાનીપૂર્વક નીકળી જતા. (૧૦)

ફરી—'अदुवा' ઈત્યાદિ.

આ રીતે બ્રાહ્મણ, શ્રમણ, શાકય, આજીવક, પરિવ્રાજક, તાપસ અને ભિક્ષુક, આમાંથી કોઈને પણ તેમના તરફથી નડતર થતાં નહીં. અને અકસ્માત્

मूषिकारिं=दुग्धार्थिनं मार्जारं, अपि च कुकुरं=श्वानं वा पुरतः अग्रे स्थितं दृष्ट्वा तेषां वृत्तिच्छेदं वर्जयन्, अप्रत्ययिकम्=अप्रतीतिं परिहरन् भगवान् मन्दं पराक्रमते=पार्श्वभागतः शनैर्गच्छतिस्म। तथा अहिंसन्=कुन्थुप्रभृतीनपि जन्तून् अपीडयन् ग्रासमन्वैषीत्=एषणाशुद्ध्या भिक्षार्थमटतिस्म ॥११॥१२॥

किञ्च—'अवि सूइयं' इत्यादि।

मूलम्—अवि सूइयं वा सुक्कं वा, सीयं पिंडं पुराणकुम्मासं।
अदु बुक्कसं पुलागं वा, लद्धे पिंडे अलद्धे दविए ॥१३॥

छाया—अपि सूचितं वा शुष्कं वा, शीतं पिण्डं पुराणकुल्माषम्।
अथ बुक्कसं पुलाकं वा, लब्धे पिण्डे अलब्धे द्रविकः ॥ १३ ॥

टीका—अपि च-सूचितं=व्याघारितं हिङ्गुजीरकादिना संस्कृतं व्यञ्जनादियुक्तं तक्रादौ निक्षिप्तं मुद्गचणकादिवटकान्नं 'दहीवडा' इति भाषा-

अर्थी बिलाव, और कुत्ता आदिको देख कर भगवान् इन किसीको विघ्न नहीं करते हुए यत्नापूर्वक धीरे २ निकल जाते। उनके चलनेसे कुन्थु आदि सूक्ष्म जीवों तकको भी कोई कष्ट न पहुँचता ॥११-१२॥

और भी—'अवि सूइयं' इत्यादि।

भगवान् को भिक्षा निमित्त जाते समय जो भी गृहस्थोंके यहां शुद्ध निर्दोष आहार मिल जाता था, वे उसे ही ले लेते, चाहे वह बिलकुल रूक्ष भी क्यों न हो। हींग और जीरे आदिसे संस्कृत, व्यञ्जनादिसे युक्त एवं तक्र-छांछमें पडे हुए, मूंग और चना आदिकी गीली दालको बांट तैलमें तल कर तयार किये पदार्थका नाम सूचित है। भाषामें इसे "दहींवड़ा" कहते हैं। सूचित पदसे राईता, करम्बा

આવી ચડેલ ચાંડાલ, તેમજ દુધની લોભી બીલાડી, કુતરા વગેરેને જોઈ ભગવાન એ કોઈને વિઘ્નરૂપ ન થતાં યતનાપૂર્વક ધીરે ધીરે નીકળી જતા. એમના ચાલવાથી કુંથવા કે કીડી, મકોડી વગેરે સૂક્ષ્મ જીવોને પણ કોઈ કષ્ટ થતું નહીં. (૧૧-૧૨)

ફરી-'अवि सूइयं' ઇત્યાદિ.

ભગવાને ભિક્ષા નિમિત્તે જવાના સમયે જે પણ ગૃહસ્થોને ત્યાં શુદ્ધ નિર્દોષ આહાર મળી જતો તેને ગ્રહણ કરતા, ચાહે તે બીલકુલ રૂક્ષ પણ કેમ ન હોય. હીંગ અને જીરૂ વગેરેથી વઘારેલા વ્યંજનાદિથી યુકત એમજ તક્ર-છાસમાં પડેલા મગ અને ચણાની દાળને ભીંજાવી વાટી તૈયાર કરવામાં આવેલા પદાર્થનું નામ સૂચિત છે. ભાષામાં એને "दहीवडा" કહેવામાં આવે છે, સૂચિત-પદથી

प्रसिद्धं, करम्बादिकं वा, 'राईता' इति भाषाप्रसिद्धं वा, तथा-शुष्कं वा भर्जितचणकादिकं, तथा शीतं=पर्युषितं वा पिण्डम्=आहारम्, तथा पुराणकुल्माषं= पुरातनमाषकुलत्थादि बहुदिवससिद्धस्थितकुल्माषमित्यन्ये। अथ-बुक्कसं वा नीरस-धान्यौदनं वा, यद्वा-पुरातनसक्तुपिण्डं वा, तथा पुलाकं वा=यवधानादिकं 'जवधाणी' इति भाषाप्रसिद्धं लब्ध्वा, तथाऽन्यस्मिन्नपि निर्दोषे पिण्डे=लब्धेऽप्यलब्धे वा द्रविक एव=संयममना एवासीत्। अयं भावः-लब्धे सति यथालब्धपर्युषित-

---

आदि भी लिये जाते है। भुंजे हुए चने आदि अन्नका नाम शुष्क है। पर्युषित (वासी), आहार-शीत और पुरानी उडदकी दाल तथा कुलथी आदिको कहते हैं। नीरस धान्यके चावल अथवा पुराना सक्तुपिण्ड-बुक्कस, और यव-धान आदिक जिसे भाषामें 'जवकी धाणी' कहते हैं और वही पुलाक कहलाता है। आहारमें प्रभुको दहींवड़ा आदि पदार्थ मिल जावे तो कोई हर्ष नहीं और भुंजे हुए चने आदि शुष्क पदार्थ मिल जावें तो कोई शोक नहीं। इनके अतिरिक्त और भी चाहे कोई पदार्थ क्यों न मिल जाय यदि वह निर्दोष एवं शुद्ध होता तो प्रभु उसे अपने आहारमें ग्रहण कर लेते। वे किसी भी पदार्थको जो शुद्ध निर्दोष होता वह ले लेते थे। नहीं मिलने पर भी वे संयमसे अपने मनको विचलित नहीं करते। आहार मिले तो ठीक, नहीं मिले तो ठीक, इस प्रकार दोनोंमें समभाव रखते थे। मिलने पर वे उस गृहस्थकी अथवा उस गांवकी प्रशंसा नहीं करते

રાયતા, કરંબા વિગેરે પણ લેવાય છે. શેકેલા ચણા વગેરે અન્નનું નામ શુષ્ક છે. પર્યુષિત (વાસી) આહારને, ટાઢી અને જુની અડદની દાળ અને કળથી વગેરેને કુલ્માષ કહે છે નીરસ ધાન્યના ચોખા, અથવા લાંબા વખતથી બનાવેલા સકતુપિંડ-બુક્કસ, અને યવધાન વગેરે, જેને ભાષામાં "જવની ધાણી ' કહે છે, એનેજ પુલાક કહે છે. આહારમાં પ્રભુને દહીંવડાં વગેરે મળી જાય તો હર્ષ નહીં અને શેકેલા ચણા વગેરે શુષ્ક પદાર્થ મળે તો કોઈ શોક નહીં. આનાથી બીજી જાતનો કોઈ પણ પદાર્થ ભલે મળે પણ તે નિર્દોષ અને શુદ્ધ હોય તો પ્રભુ એને પોતાના આહાર માટે ગ્રહણ કરી લેતા શુદ્ધ અને નિર્દોષ એવો કોઈ પણ પદાર્થ પ્રભુ પોતાના આહાર માટે ગ્રહણ કરી લેતા, ન મળવાથી પણ સંયમથી પોતાના મનને ચલિત થવા ન દેતા. આહાર મળે તો ઠીક ન મળે તો ઠીક, આ રીતે બન્નેમાં સમભાવ રાખતા. મળવાથી તેઓ આપનાર

मन्तप्रान्तादिकं निर्दोषमशनादिकं रागद्वेषरहितः सन् भुङ्क्तेस्म, अलब्धे च ग्रामादिकं गृहस्थमात्मानं वा न निन्दतिस्मेति ॥१३॥

किञ्च—'अवि झाइ' इत्यादि।

मूलम्—अवि झाइ से महावीरे, आसणत्थे अकुक्कुए झाणं ।
उड्ढं अहे तिरियं च, पेहमाणे समाहिमपडिन्ने ॥१४॥

छाया—अपि ध्यायति स महावीरः आसनस्थः अकौत्कुचः ध्यानम् ।
ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् च प्रेक्षमाणः समाधिमप्रतिज्ञः ॥१४॥

टीका—अपि च-स महावीरः भगवान् आसनस्थः=उत्कुटुकगोदोहिकावीरासनाद्यासनस्थितः, अकौत्कुचः=मुखविकारादिरहितः, तथा-अप्रतिज्ञः=शरीरशुश्रूषादिप्रतिज्ञारहितः समाधिम्=आत्मशान्ति प्रेक्षमाणः=भावयन् ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्=लोक-

और नहीं मिलने पर अपनी एवं गृहस्थ और उस ग्रामकी निन्दा नहीं करते, समभाव बन अपने संयममार्गमें दत्तचित्त रहते थे ॥१३॥

फिर भी—'अवि झाइ' इत्यादि।

वे भगवान् महावीर, उत्कुटुक (उकडु) आसन, गोदोहिका-आसन एवं वीरासन, इनमेंसे किसी एक आसनसे विराजमान होकर ध्यानमें तल्लीन होते। ध्यान करते समय उनका शरीर निष्कंप रहता। मुख नेत्र आदि किसी भी अवयवमें उनके हलन-चलनादिरूप विकृति नहीं होती। शारीरिक शुश्रूषाकी भावना उनके भीतर देखने तकको भी नहीं मिलती। सदा वे आत्मशान्ति की ही भावना भाते रहते। ध्यानमें वे उर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोक, इन तीनों लोकोंके स्वरूपका, तथा

ગૃહસ્થની અથવા એ ગામની પ્રસંશા ન કરતા, અને ન મળતાં પોતાની કે, ન આપનાર ગૃહસ્થની અથવા એ ગામની નિન્દા ન કરતા. સમભાવથી સંયમ માર્ગમાં એકચિત્ત રહેતા. (૧૩)

ફરી પણ—'अवि झाइ' ઈત્યાદિ.

ભગવાન મહાવીર, ઉત્કુટુક (ઉકડુ) આસન, ગોદોહિકાઆસન, અને વીરાસન, આમાંના કોઈ એક આસનથી વિરાજમાન થઈ ધ્યાનમાં તલ્લીન રહેતા. ધ્યાન કરતી વખતે તેમનું શરીર નિષ્કંપ રહેતું. મુખ, નેત્ર વગેરે કોઈ પણ અવયવની હલન ચલનની ક્રિયા થતી નહીં. શરીરની શુશ્રૂષાની ભાવના એમનામાં કદી પણ થતી ન હતી. સદા આત્મશાન્તિની જ ભાવના રાખતા. ધ્યાનમાં ઉર્ધ્વલોક, મધ્યલોક અને અધોલોક, આ ત્રણે લોકના સ્વરૂપના તથા

त्रयविषयकं ध्यानं=जीवाजीवादिपदार्थानां द्रव्यगुणपर्यायनित्यानित्यादिरूपतया चिन्तनरूपं ध्यायति=करोतिस्म ॥ १४ ॥

किञ्च—'अकसाई' इत्यादि ।

मूलम्—अकसाई विगयगेही य, सद्दरूवेसु अमुच्छिए झाइ।
छउमत्थोऽवि परक्कममाणो, न पमायं सइं पि कुव्विरथा॥१५॥

छाया—अकषायी विगतगृद्धिश्च शब्दरूपेषु अमूर्च्छितो ध्यायति ।
छद्मस्थोऽपि पराक्रमाणो न प्रमादं सकृदप्यकार्षीत् ॥१५॥

टीका—अकषायी=क्रोधादिकषायरहितः, अत एव—विगतगृद्धिः=विषयाऽऽसक्तिरहितः, अत एव-शब्दरूपेषु=उपलक्षणार्थत्वात् शब्दरूपगन्धरसस्पर्शेषु, अमूर्च्छितः=ममत्वभावरहितः सन् ध्यायतिस्म, तथा–छद्मस्थोऽपि भगवान् पराक्रममाणः=तपःसंयमे विहरन् सन् प्रमादं सकृदपि=एकवारमपि नाकार्षीत्=न

इनके भीतर रहे हुए जीव और अजीव आदि पदार्थों के द्रव्य गुण और पर्याय की अपेक्षासे नित्य और अनित्यरूप स्वरूपका विचार करते ॥१४॥

और भी—' अकसाई ' इत्यादि।

क्रोध आदि कषायपरिणतिसे रहित भगवान् महावीरने विषयोंमें आसक्तिसे और शब्द, रूप, रस, एवं गन्ध आदि पौद्गलिक गुणोंकी ममतासे रहित हो कर ध्यानका अवलम्बन किया। यद्यपि भगवान चार ज्ञानके धारी थे, अतः छद्मस्थावस्थामें वर्तमान थे, फिर भी तप और संयममें अपनी शक्तिकी स्फूर्ति करते हुए उन्होंने केवलज्ञानकी प्राप्ति तक एक वार भी प्रमादका सेवन नहीं किया। जबसे दीक्षा धारण करी

એની અંદર રહેનારા જીવ અને અજીવ આદિ પદાર્થોના દ્રવ્ય ગુણ અને પર્યાયની અપેક્ષાથી નિત્ય અને અનિત્યરૂપ સ્વરૂપનો વિચાર કરતા. (૧૪)

ફરી પણ—' अकसाई ' ઈત્યાદિ.

ક્રોધ વગેરે કષાય પરિણતિથી રહિત ભગવાન મહાવીર વિષયોની આસક્તિથી અને શબ્દ, રૂપ, અને ગંધ વગેરે પૌદ્ગલિક ગુણોમાં મમતાથી રહીત રહી ધ્યાનનું અવલમ્બન કરતા. જો કે ભગવાન ચાર જ્ઞાનના ધારક હતા આથી છદ્મસ્થ અવસ્થામાં વર્તમાન હતા તો પણ તપ અને સંયમમાં પોતાની શકિતની સ્ફૂર્તિ કરીને તેઓએ કેવળજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ સુધી એકવાર પણ પ્રમાદ સેવ્યો નથી. જ્યારથી દીક્ષા ધારણ કરી ત્યારથી કેવળજ્ઞાન

कृतवान्, दीक्षाग्रहणानन्तरं यावत्केवलपर्यायं प्राप्तवान् तावच्छद्मस्थावस्थायामपि भगवान् लेशतोऽपि प्रमादं न चकारेति भावः ।

केचित्त्वेवं वदन्ति—एतद्वचनं भगवतः प्रशंसापरं, परमार्थतो भगवान् षड्लेश्याधारी प्रमादवान् संयमे स्खलित इति, तथा 'भगवान् चूके' इति भाषायामपि प्रलपन्ति, तन्निर्मूलं प्रबलमोहोदयजनितकल्पनामात्रम्, आगमरहस्यानभिज्ञानात्, तथाहि—सर्वे तीर्थङ्कराः स्वस्वगणधरेभ्यः स्वयमनुष्ठितं तपःसंयमविधिं कथयन्ति—यदन्येऽपि मोक्षाभिलाषिणः सोत्साहमनुष्ठाय मोक्षपदं प्रयान्तु-इति। सर्वस्मिन्नागमेऽपि परं-

तबसे केवलज्ञान प्राप्त होनेकी अवस्था तक उन्होंने अपनी छद्मस्थावस्थामें भी कभी भी प्रमादको अंशतः भी अपने पास तक नहीं आनेदिया।

कोई२ इस गाथाके "सकृदपि प्रमादं नाकार्षीत्" इस वचन को केवल भगवान् की प्रशंसापरक ही मानते हैं। प्रशंसा प्रायः वस्तुस्थितिसे रिक्त होती है। उसका कारण वे यह बतलाते हैं कि "भगवान् षड्लेश्याधारी थे, तथा प्रमादसहित और संयमसे भी स्खलित–च्युत थे, इसी लिये वे लोग "भगवान् चूके" ऐसा कह दिया करते हैं" सो उनका इस प्रकारका कथन निर्मूल है–सत्यसे रहित है। मालूम होता है कि इस प्रकारकी कल्पना करनेवाले व्यक्तिको आगमका रहस्य ज्ञात नहीं है कि समस्त तीर्थङ्कर अपने द्वारा अनुष्ठित तप और संयम की विधिको अपने २ गणधरोंसे कहते हैं। इस प्रकारके कथन करनेका उनका उद्देश सिर्फ यही होता है कि अन्य मोक्षाभिलाषी मुनि भी उनके

પ્રાપ્ત થવાની અવસ્થા સુધી તેઓએ પોતાની છદ્મસ્થ અવસ્થામાં પણ કોઈ વખત પ્રમાદનો અંશ પણ પોતાની પાસે આવવા દીધો નથી.

કોઈ કોઈ આ ગાથાના "सकृदपि प्रमादं नाकार्षीत्" આ વચનને કેવળ ભગવાનની પ્રશંસાપરકજ માને છે. પ્રશંસા પ્રાયઃ વસ્તુસ્થિતિથી રિક્ત હોય છે. એનું કારણ પણ આ બતાવે છે કે ભગવાન છલેશ્યાધારી હતા, પ્રમાદસહિત અને સંયમથી પણ ચ્યુત હતા. આ કારણે તે લોકો "भगवान चुक्या" એવું કહ્યા કરે છે" તેઓનું આ પ્રકારનું કહેવું નિર્મૂળ છે–સત્યથી રહિત છે. માલુમ પડે છે કે આ પ્રકારની કલ્પના કરવાવાળા માણસોને આગમનું આ રહસ્ય જાણવામાં આવ્યું નથી કે સમસ્ત તીર્થંકર પોતાના દ્વારા અનુષ્ઠિત તપ અને સંયમની વિધિને પોતપોતાના ગણધરોને કહે છે, આ પ્રકારનું કથન કરવાનો ઉદ્દેશ ફક્ત એજ હેતુ છે કે બીજા મોક્ષાભિલાષી મુનિ પણ તેમના આ પ્રકારના તપ અને

परया गणधरैस्तदीयचरितं सूत्ररूपेण संग्रथितं, तदेव चात्रोपधानश्रुताध्ययनं मुनीनामुपकारार्थं प्रवृत्तं, तस्मात्कथमपि नास्त्यत्र प्रशंसापरकत्वशङ्कावसर इति, उक्तञ्च–

"सव्वे तित्थयरा खलु, नियचरियं जं कहेंति उवहाणे।
गंथंति गणहरा तं, तहेव नो नूणमब्भहियं ॥१॥" इति।

छाया––सर्वे तीर्थकराः खलु, निजचरितं यद्वदन्ति उपधाने।
ग्रथ्नन्ति गणधरास्तत्, तथैव नो न्यूनमभ्यधिकम् ॥१॥ इति।

इस प्रकारके तप और संयमकी अनुष्ठित प्रवृत्तिको सुनकर, अथवा जानकर मुक्तिमार्गमें उत्साहशील बने और मुक्तिका लाभ करते रहें, अतः समस्त आगमों में गणधरोंने जो तीर्थङ्करों के चरितका सूत्ररूपसे वर्णन किया है वही इस उपधानश्रुत नामक अध्ययनमें अन्य मुनिजनोंके उपकार निमित्त वर्णित किया गया है–इसमें उनकी प्रशंसा की कल्पना करनेकी बात ही कौन सी है, इस विषयमें उनकी प्रशंसापरता की कल्पना करना बिलकुल निर्मूल ही है। कहा भी है—

"सव्वे तित्थयरा खलु, नियचरियं जं कहेति उवहाणे।
गंथंति गणहरा तं, तहेव नो नूणमब्भहियं" ॥ १ ॥

यह आगमप्रसिद्ध बात है कि अपने२ गणधरों के प्रति जो समस्त तीर्थङ्कर अपने २ चरितका कथन करते हैं, वे गणधर उपधानमें उस चरितका उसी रूपसे (न कम और न अधिक) ग्रथन करते हैं ॥१॥

સંયમની અનુષ્ઠિત પ્રવૃત્તિને સાંભળીને અથવા જાણીને મુક્તિમાર્ગમાં ઉત્સાહશીલ બને અને મુક્તિનો લાભ કરતા રહે. માટે સમસ્ત આગમોમાં ગણધરોએ જે તીર્થંકરોના ચરિત્રનું સૂત્રરૂપે વર્ણન કરેલ છે તે આ ઉપધાનશ્રુત નામના અધ્યયનમાં અન્ય મુનિજનોના ઉપકાર નિમિત્ત વર્ણન કરેલ છે. આમાં તેમની પ્રશંસા કરવાની વાતજ ક્યાં છે? આ વિષયમાં તેમની પ્રશંસા અંગેની કલ્પના કરવી બીલકુલ નિર્મુળ જ છે. કહ્યું પણ છે—

"सव्वे तित्थयरा खलु, नियचरियं जं कहेइ उवहाणे।
गंथंति गणहरा तं, तहेव नो नूणमब्भहियं" ॥ १ ॥

આ આગમપ્રસિદ્ધ વાત છે કે પોતપોતાના ગણધરો પાસે સમસ્ત તીર્થંકર પોતપોતાના ચરિત્રનું કથન કરે છે. તે ગણધર ઉપધાનમાં તે ચરિત્રનું એ જ રૂપથી (ન ઓછું ન વધારે) ગ્રથન કરે છે. (૧)

भावतः षड्लेश्यावत्त्वं तु भगवतः कथमपि न संभवति, धर्मप्रकृतिकस्य तस्य धर्मलेश्यामात्रसद्भावात्, धर्मलेश्या हि तिस्रः सन्ति, तथा चोक्तम्="तेऊ पम्हा सुक्का, तिन्नि एयाओ धम्मलेस्साओ।" इति। अधर्मस्य तु तत्र लेशतोऽपि शङ्का नास्ति, अस्मिन्नेवोद्देशके—

"णच्चा णं से महावीरे, णो चिय पावगं सयमकासी।
अन्नेहिं वा ण कारित्था, कीरंतं पि नाणुजाणित्था (९-८)" ॥

इत्यष्टमगाथायां भगवता न स्वयं पापं कृतं, नान्यैः कारितं, कुर्वन्तमन्यं प्रति नानुमोदितमित्येवं त्रिकरणत्रियोगैर्भगवतः पापसम्बन्धाभावो बोधितः। एवं च तस्मिन्नधर्मलेश्यात्रयस्य स्थानं नोपपद्यते।

यह जो कहा गया है कि भगवान छह लेश्यावाले थे सो भी कथन युक्तिसंगत नहीं है, कारण कि स्वभावतः धर्मप्रकृतिसम्पन्न प्रभुके सिर्फ धर्मलेश्या मात्रका ही सद्भाव होता है, पापलेश्याका नहीं। तेज, पद्म और शुक्ल, ये तीन लेश्याएँ धर्मलेश्या कही जाती हैं कृष्ण, नील और कापोत, ये अधर्मलेश्या (पापलेश्या) हैं। इन अधर्मलेश्याओंका तो वहां अंशतः भी सद्भाव नहीं पाया जाता है, क्यों कि इसी उद्देशमें—

"णच्चा णं से महावीरे, णो चिय पावगं सयमकासी।
अन्नेहिं वा न कारित्था, कीरंतंपि नाणुजणित्था" ॥ (९-८)

इस आठवीं गाथा द्वारा यही बात स्पष्ट की गई है कि-जब भगवानने स्वयं कभी पाप नहीं किया और न दूसरोंसे ही कराया, तथा करनेवालों की अनुमोदना भी नहीं की, इस प्रकार वे तीन करण और

આ જે કહેવાયું છે કે ભગવાન છ લેશ્યાવાળા હતા તે પણ કહેવું યુક્તિસંગત નથી, કારણ કે સ્વભાવતઃ ધર્મપ્રકૃતિસંપન્ન પ્રભુને ફક્ત ધર્મલેશ્યા માત્રનો જ સદ્ભાવ હોય છે, પાપ-લેશ્યાનો નહી. તેજ, પદ્મ, અને શુક્લ, આ ત્રણ લેશ્યાઓ ધર્મલેશ્યા કહેવાય છે. કૃષ્ણ, નીલ અને કાપોત એ, અધર્મ-લેશ્યા (પાપ-લેશ્યા) છે. એ અધર્મ-લેશ્યાઓનો ત્યાં લેશ માત્ર પણ સદ્ભાવ દેખવામાં આવતો નથી. કેમકે એ જ ઉદ્દેશમાં—

"णच्चा णं से महावीरे, णो चिय पावगं सयमकासी।
अन्नेहिं वा न कारित्था, कीरंतंपि नाणुजाणित्था ॥" (९-८)

આ આઠમી ગાથા દ્વારા એ વાત સ્પષ્ટ કરેલ છે કે જ્યારે ભગવાને પોતે કદી પાપ કરેલ નથી, અને ન બીજાથી કરાવેલ, તથા કરવાવાળાઓને અનુમોદન પણ આપ્યું નથી. આ પ્રકારે જ્યારે તેઓ તીન કરણ અને ત્રણ યોગથી પાપના

'प्रमादवशेन संयमे स्खलितः' इत्यपि तेषां कथनमुन्मत्तप्रलपनम्, "छउमत्थोवि परक्कममाणो न पमायं सइंपि कुव्वित्था" इति यदत्र गाथायां सुस्पष्टं वचनं येषां दृष्टिपथं नारोहति ते प्रबलमोहान्धाः सम्यग्दृष्टिभिर्दयनीया इत्यलं विस्तरेण ॥१५॥

तीन योगसे पापके त्यागी रहे तो फिर उनमें पापका (पापलेश्याओंका) सम्बन्ध कल्पित करना बिलकुल मूर्खतापूर्ण है, इस लिये यह बात अवश्य२ माननी चाहिये कि भगवानमें अधर्मलेश्याके लिये किंचिन्मात्र भी स्थान घटित नहीं होता है।

तथा 'भगवान चूके' इस प्रकार कह कर जो यह बात सिद्ध करना चाहते हैं कि 'भगवान प्रमादके वशसे संयमसे स्खलित हुए हैं' यह भी कथन एक तरह उन्मत्तका प्रलाप जैसा ही है, क्यों कि "छउमत्थो वि परक्कममाणो न पमायं सइंपि कुव्वित्था" मालूम होता है यह आगम वचन उनकी दृष्टिमें नहीं आया है, नहीं तो वे इस प्रकारका व्यर्थ प्रलाप नहीं करते। इसको जान बूझकर भी जो अपनी हठग्राहिता नहीं छोडे तो उनके लिये हम क्या कहें-ऐसे जीव प्रवल मोहसे ही अन्धे बने हुए हैं, जो जान-बूझकर भी वास्तविक वस्तुस्थितिसे अजान हो रहे हैं, ऐसे जीवों पर सम्यग्दृष्टि जीव केवल दयाके सिवाय और क्या अपनी ओर से प्रकट कर सकते हैं। अब इस विषयमें और अधिक कहने की जरूरत नहीं है ॥१५॥

त्यागी रह्या तो पछी तेमनामां पापलेश्याओनो संबंध कल्पित करवो ते बीलकुल मूर्खतापूर्ण छे. आ माटे ए वात अवश्य मानवी जोईए के भगवानमां अधर्मलेश्या माटे जरासरखुंए स्थान संभवित नथी.

"भगवान चुक्या" आ प्रकारनुं कहीने जे ए वात सिद्ध करवा ईच्छे छे के भगवान प्रमादवशथी संयमथी स्खलित थया छे. आ कहेवुं पण एक तरेहना उन्मादनो प्रलापज छे, केमके-"छउमत्थो वि परक्कममाणो न पमायं सइंपि कुव्वित्था" मालूम थाय छे के आवुं आगमनुं वचन तेनी द्रष्टीमां आव्युं नथी, नहीं तो ते आ प्रकारनो व्यर्थ प्रलाप न करत. आवी रीते जाण्या पछी पण जे पोतानी हठाग्रहता न छोडे तो तेने माटे कहेवानुं शुं होय? एवा जीव प्रबळ मोहथी अंध बनेल छे, जे जाणीबुजीने पण वास्तविक वस्तुस्थितिथी अजाण रहे छे. एवा जीवो उपर सम्यग्द्रष्टी जीव केवळ दया सिवाय पोताना तरफथी बीजुं शुं करी शके? हवे आ विषयमां अधिक कहेवानी जरूरत नथी. (१५)

किञ्च—'सयमेव' इत्यादि।

मूलम्—सयमेव अभिसमागम्म, आयतजोगमायसोहीए।
अभिनिव्वुडे अमाइल्ले, आवकहं भगवं समियासी ॥१८॥

छाया—स्वयमेवाभिसमागम्य आयतयोगमात्मशोध्या।
अभिनिर्वृतः अमायावी यावत्कथं भगवान् समित आसीत् ॥१८॥

टीका—अमायावी=मायारहितः भगवान् स्वयमेव=आत्मनैव, अभिसमागम्य=संसारस्वरूपं विदित्वा स्वयंबुद्धः सन् तीर्थप्रवर्तनार्थमुद्यतो बभूवेत्यर्थः। यद्यपि भगवान् स्वयमेव तीर्थप्रवर्त्तनार्थमुद्युक्त आसीत् तथापि लोकान्तिका देवा भगवदन्तिकं समागत्य परम्परागताचारमालम्ब्य भगवन्तं तीर्थप्रवर्त्तनाय प्रार्थयामासुः।

और भी—'सयमेव' इत्यादि।

मायाचारीकी प्रवृत्तिसे सर्वथा रहित भगवान् महावीरने अपने आप ही इस संसारका स्वरूप भलीभांति जान कर परित्याग किया, उन्होंने संसारकी असारताका पाठ किसी दूसरेके पाससे नहीं सीखा, क्यों कि तीर्थङ्कर स्वयंबुद्ध होते हैं। सांसारिक असारताके चित्तमें चढ़ने पर दीक्षाके भाव होते ही लोकान्तिक देवोंका शीघ्र ही आगमन होता है। ये आ कर तीर्थप्रवृत्ति करनेके लिये प्रभुसे प्रार्थना करते हैं। यद्यपि भगवान् तीर्थप्रवृत्ति करनेके लिये पहिलेसे ही तय्यार रहते हैं, फिर भी लोकान्तिक देवोंका ऐसा ही परम्परागत नियोग–आचार–है कि प्रभु जब दीक्षा लेनेके लिये उद्यत होते हैं तब ये आ कर अपने परम्परागत इस नियोग की पूर्ति करते हैं। कहा भी है—

ફરી પણ—'સયમેવ' ઈત્યાદિ.

માયાચારીની પ્રવૃત્તિથી સર્વથા રહિત ભગવાન મહાવીરે પોતાની જાતે આ સંસારનું સ્વરૂપ ભલી–ભાંતિથી જાણી પરિત્યાગ કર્યો. તેઓએ સંસારની અસારતાનો પાઠ બીજા કોઈ પાસેથી શીખેલ ન હતા. કેમકે તીર્થંકર સ્વયંબુદ્ધ હોય છે. સાંસારિક અસારતા ચિત્તમાં ચડતાં દીક્ષાના ભાવ થતાં જ લોકાન્તિક દેવોનું શીઘ્ર આગમન થાય છે. એ આવીને પ્રભુથી તીર્થ-પ્રવૃત્તિ કરવા માટે પ્રાર્થના કરે છે જો કે ભગવાન તીર્થપ્રવૃત્તિ કરવા માટે પહેલેથી જ તૈયાર રહે છે તો પણ લોકાંતિક દેવોનો એવો પરમ્પરાગત નિયોગ–આચાર–છે કે પ્રભુ જ્યારે દીક્ષા લેવા માટે ઉદ્યત હોય છે ત્યારે તે આવીને પોતાની પરમ્પરાગત આ નિયોગની પૂર્તિ કરે છે. કહ્યું પણ છે—

उक्तञ्च--

"आदित्यादिर्विबुधविसरः सारमस्यां त्रिलोक्या,-
मास्कन्दन्तं पदमनुपमं यच्छिवं त्वामुवाच।
तीर्थं नाथाऽलघुभवभयच्छेदि तूर्णं विधत्स्वे,-
त्येतद् वाक्यं त्वदधिगतये नाकिनां स्यान्नियोगः॥१॥" इति।

तीर्थप्रवर्तनार्थं कथं प्रवृत्तोऽभूदितिदर्शयितुमाह-'आत्मशोध्या' कर्मणः क्षयोपशमादुपशमात् क्षयाच्चात्मनः शोधिस्तया, आयतयोगं=सुप्रणिधानयुक्तमनो-

---

"आदित्यादिर्विबुधविसरः सारमस्यां त्रिलोक्या,-
मास्कन्दन्तं पदमनुपमं यच्छिवं त्वामुवाच।
तीर्थं नाथाऽलघुभवभयच्छेदि तूर्णं विधत्स्वे,-
त्येतद्वाक्यं त्वदधिगतये नाकिनां स्यान्नियोगः" ॥ १ ॥

हे भगवन्! सारस्वत आदित्य आदि आठ प्रकारके लोकान्तिक देव, अनुपम एवं तीनों लोकमें सारभूत ऐसे शिवपद-मोक्षपदको प्राप्त करने के लिये उद्यत हुए आपके पास आ कर इस प्रकार प्रार्थना करते हैं कि -"हे नाथ! इस संसाररूपी महाभय को नष्ट करनेवाले तीर्थकी आप शीघ्र स्थापना करें" यह उनकी प्रार्थना आपके लिये निवेदनमात्र है, क्यों कि आप तो स्वयंबुद्ध हैं। उन देवोंका यह केवल परम्परागत आचार है ॥ १ ॥

भगवान अपने चारित्रमोहनीयरूप कर्मके क्षयोपशम, उपशम और सर्वथा

"आदित्यादिर्विबुधविसरः सारमस्यां त्रिलोक्या,
मास्कन्दन्तं पदमनुपमं यच्छिवं त्वामुवाच।
तीर्थं नाथाऽलघुभवभयच्छेदि तूर्णं विधत्स्वे,
त्येतद्वाक्यं त्वदाधिगतये नाकिनां स्यान्नियोगः" ॥ १ ॥

હે ભગવાન્! સારસ્વત આદિત્ય આદિ આઠ પ્રકારના લોકાંતિકદેવો અનુપમ અને ત્રણે લોકમાં સારભૂત એવા શિવપદ-મોક્ષપદ-ને પ્રાપ્ત કરવા માટે ઉદ્યત-તૈયાર થયેલ આપની પાસે આવીને આ પ્રકારે પ્રાર્થના કરે છે કે-"હે નાથ! આ સંસારરૂપી મહાભયને નષ્ટ કરવાવાળા તીર્થની આપ શીઘ્ર સ્થાપના કરો" આ પ્રકારની તેઓની પ્રાર્થના આપને માટે નિવેદનમાત્ર છે, કેમકે આપ તો સ્વયંબુદ્ધ છો. તે દેવોનો આ કેવળ પરંપરાગત આચાર છે. (૧)

ભગવાન પોતાના ચારિત્રમોહનીયરૂપ કર્મના ક્ષયોપશમ, ઉપશમ અને

वाक्काययोगं विधाय, अभिनिर्वृतः=कषायानलप्रशमेन शीतीभूतः, अत एव यावत्कथं= यावज्जीवं समितः=समितिपञ्चकसमन्वितः, तथा गुप्तित्रयसमन्वितश्चासीत् ॥१६॥

उपसंहरन्नाह–' एस विही ' इत्यादि ।

मूलम्—एस विही अणुक्कंतो, माहणेण मईमया ।
बहुसो अपडिन्नेणं, भगवया एवं रीयंति–त्तिबेमि ॥१७॥

छाया—एष विधिरनुक्रान्तः, माहनेन मतिमता ।
बहुशोऽप्रतिज्ञेन, भगवता एवं रीयन्ते–इति ब्रवीमि ॥१६॥

टीका—अस्य व्याख्या प्रथमोद्देशकेऽभिहिता तत एवाधिगन्तव्या। ' इति ब्रवीमि ' अस्य व्याख्याऽपि पूर्वं गता ॥ १७ ॥

॥ नवमाध्ययनस्य चतुर्थ उद्देशः समाप्तः ॥९-४॥

क्षयसे आत्माकी शुद्धि कर चारित्र अंगीकार कर मन, वचन और कायकी प्रवृत्तिको सुप्रणिधानयुक्त करते हुए कषायरूपी अग्निके प्रशमसे अत्यंत शीतल हुए और जीवनपर्यन्त पांच समिति एवं तीन गुप्तिसे युक्त शोभित हुए ॥१६॥

अब सूत्रकार उपसंहार करते हुए कहते हैं–' एस विही ' इत्यादि ।

इस सूत्रकी व्याख्या प्रथम उद्देशमें की जा चुकी, है अतः वहींसे जान लेनी चाहिये ॥१७॥

॥ नववें अध्ययनका चौथा उद्देश सम्पूर्ण ॥९-४॥

સર્વથા ક્ષયથી આત્માની શુદ્ધિ કરી ચારિત્ર અંગીકાર કરી, દીક્ષા ધારણ કરી મન, વચન અને કાયાની પ્રવૃત્તિને સુપ્રણિધાનયુક્ત કરતાં કરતાં કષાયરૂપી અગ્નિના પ્રશમથી અત્યંત શીતળ બન્યા અને જીવનપર્યન્ત પાંચ સમિતિ અને ત્રણ ગુપ્તિથી યુક્ત શોભિત થયા. (૧૬)

હવે સૂત્રકાર ઉપસંહાર કરતાં કહે છે—' एस विही ' ઈત્યાદિ.

આ સૂત્રની વ્યાખ્યા પ્રથમ ઉદ્દેશમાં કહેવાઈ ગયેલ છે, એટલે ત્યાંથી સમજી લેવી જોઈએ. (૧૭)

નવમા અધ્યયનનો ચોથો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૯-૪ ॥

अध्ययनविषयोपसंहारः--

श्रीवर्धमानस्य विभोर्विहारं, शय्यासनं घोरपरीषहांश्च।
विलक्षणाभिग्रहलब्धभुक्तिं, प्रोचे नवाङ्काध्ययने सुधर्मा ॥ १ ॥
माघशुक्लत्रयोदश्यां, गुरौ पुष्ये च वैक्रमे।
द्व्यधिकद्विसहस्रेऽब्दे, टीकेयं पूर्णतामगात् ॥ २ ॥

॥ इत्याचाराङ्गसूत्रस्याचारचिन्तामणिटीकायामुपधानाख्यं नवममध्ययनं सम्पूर्णम् ॥ ९ ॥

अध्ययनके विषयोंका उपसंहार—

इस अन्तिम श्लोकद्वारा टीकाकारने इस नवमें अध्ययनके चार उद्देशोंमें वर्णित विषयका उपसंहार रूपसे कथन किया है, वे बतलाते हैं कि श्रीसुधर्मास्वामीने प्रथम उद्देशमें भगवान् के विहार का, द्वितीय उद्देशमें उनके शयन और आसनका, तृतीय उद्देशमें घोर परीषह और उपसर्गोंके सहनेका और चतुर्थ उद्देशमें नाना प्रकारके कठिन अभिग्रहोंसे प्राप्त आहारका वर्णन किया है ॥१॥

विक्रम संवत् २००२ माघशुक्ल १३ बृहस्पतिवार पुष्य नक्षत्रमें यह टीका पूर्ण हुई है ॥ २ ॥

यह आचाराङ्गसूत्रके उपधानश्रुत नामके नववें अध्ययनकी आचार-चिन्तामणि-टीकाका हिन्दीभाषानुवाद सम्पूर्ण ॥ ९ ॥

અધ્યયનના વિષયોનો ઉપસંહાર:—

આ અંતિમ શ્લોકદ્વારા ટકીકારે આ નવમા અધ્યયનના ચોથા ઉદ્દેશમાં વર્ણવવામાં આવેલા વિષયના ઉપસંહાર રૂપે કથન કરેલ છે. તેઓ બતાવે છે કે શ્રી સુધર્માસ્વામીએ પહેલા ઉદ્દેશમાં ભગવાનના વિહાર બાબત, બીજા ઉદ્દેશમાં એમના શયન અને આસન બાબત, ત્રીજા ઉદ્દેશમાં ઘોર પરિષહ અને ઉપસર્ગો સહેવા બાબત, અને ચોથા ઉદ્દેશમાં ઘણા પ્રકારના કઠણ અભિગ્રહોથી મળેલ આહારનું વર્ણન કરેલ છે. (૧)

વિક્રમ સંવત ૨૦૦૨ મહાસુદિ ૧૩ ગુરૂવાર પુષ્ય નક્ષત્રમાં આ ટીકા પૂર્ણ થઈ છે. (૨)

આ આચારાંગસૂત્રના ઉપધાનશ્રુત નામના નવમા અધ્યયનની આચાર-ચિંતામણિ-ટીકાનો ગુજરાતી અનુવાદ સંપૂર્ણ ॥ ૯ ॥

शास्त्रप्रशस्तिः—

तस्मै श्री-वर्द्धमानाय, केवलालोकशालिने ।
दयालवे सदा भूयाद्, घासीलालकृता नतिः ॥१॥

उद्यद्धीरजरामरस्य महतः पूज्यस्य गच्छाश्रितः,
शान्तो दान्त उदारचित्तकमलः शब्दागमन्यायवित् ॥
नम्रो जीवदयाकरो मुनिवरो गच्छाधिपो भासुरः,
श्रीमानस्ति गुलाबचन्द्र-विबुधः पट्टानुपट्टाश्रितः ॥ २ ॥

शान्तो दान्त उदश्चितामलयशश्चन्द्रो महान् पण्डितः,
सेवासद्विनयैर्वशीकृतजगद्विद्यागुणैर्मण्डितः ॥
धर्माचारनिदेशपूतधरणिर्भव्यैकचिन्तामणि,-
लोंकानन्दकरो विभाति धनजी-स्वामी सदा सन्मुनिः ॥३॥

गणेऽस्मिन् प्रमुख्यः सुधीवृन्दवन्द्यो,-
भ्रमन् देशदेशान्तरं पावयन् यः ॥
भविस्थापितस्वीयधर्मप्रबोधो,-
मुनिर्नानचन्द्रः कवीन्द्रः सुबोधः ॥ ४ ॥

अत्रत्यः प्रियधर्मको दृढतरं धर्मं दधानस्तथा,
श्रीसङ्घोऽतितरामुदारचरितो बन्धादिबोधे क्षमः ॥
पुण्यापुण्यनिरूपणेऽपि निपुणो जीवानुकम्पापरो,-
जीवाऽजीवमुखं च तत्त्वमभितो विद्वान् सदा राजते ॥५॥

चारित्र-श्रुतयुग्मकेन सुषमा जैनानुशास्तेर्यथा,
सङ्घाभ्यां जिनशासनस्य च तथा सा लिम्बडीपत्तने ॥
एवं स्थानकवासिसङ्घ उभयोऽन्योऽन्यानुरागोन्नतो,-
जानन्नास्रव-संवरादिकमयं रत्नत्रये तत्परः ॥ ६ ॥

बालोऽपि धर्मी स्थविरोऽपि धर्मी,
समागतः प्राघुणकोऽपि धर्मी ॥
प्रायोऽत्र सङ्घे सकलोऽपि धर्मी,
धन्या जनन्यो जनयन्ति ताँश्च ॥ ७ ॥

श्रीमान् यादवजी-स्वामी, सेवाभावी विनीतिमान् ।

मुनिव्रतधरो धीमान् , साम्प्रतं राजतेतराम् ॥ ८ ॥

जिनागमज्ञः प्रियमञ्जुभाषी,
विहाय दोषान् गुणतो विलासी ॥

तपःक्रियाज्ञाननिरस्ततन्द्रः,
सदा मुनिश्चश्चति रूपचन्द्रः ॥९॥

श्रीमान् केशवलालजीमुनिवरः स्वामी सतां सेवकः,
शीलं विश्ववशीकरं च विनयं संधारयन् यत्नतः ॥
धर्मादेशरतो दयाद्रुतमनाश्चारित्ररक्षापरो,–
धीरं वीरवरं सदा परिचरन् शान्तोऽधुना राजते ॥१०॥

शान्तिमान् मूलजीस्वामी, भद्रभावसमन्वितः,
दान्तो दयापयोराशिः, स्थानवासी विराजते ॥११॥

मुनिः श्रीनागजीस्वामी, व्याख्यानामृततोषकः ।
शान्तो मृदुस्वभावश्च, दयालुः शोभते भुवि ॥ १२ ॥

नवलचन्द्रमुनिर्विनयान्वितो,–
मृदुलचित्त उदारमतिः सदा ॥
सकलसाधुनिषेवणतत्परो,–
विशदबोधकलार्जन उद्यतः ॥१३॥

विनीतः सुशान्तो दयाराजितान्तः,
सदा सत्पथे विद्यमानोऽतिदान्तः ॥
तपःसंयमाचारनिष्ठाविशालः,
सुधीवृन्दसेवी मुनिश्चुन्निलालः ॥१४॥

मृदुस्वभावो विनयी गुणज्ञः
सदा सदाचारलसत्समज्ञः ॥
निरन्तरध्यानलसज्जिनेन्द्रः
सुशोभते धीविभवो महेन्द्रः ॥१५॥ इति ॥

॥ इतिश्री–विश्वविख्यात–जगद्वल्लभ–प्रसिद्धवाचक–पञ्चदशभाषाकलितललित–कलापालापक–प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक–वादिमानमर्दक–शाहू–छत्रपति–कोल्हापुरराजप्रदत्त–" जैनशास्त्राचार्य "–पदभूषित–कोल्हापुरराजगुरु–बालब्रह्मचारि–जैनाचार्य–जैनधर्मदिवाकर–पूज्य–श्रीघासीलाल–व्रतिविरचितायाम् आचाराङ्गसूत्र–स्याऽऽचारचिन्तामणिटीकायां प्रथमः श्रुतस्कन्धः सम्पूर्णः ॥ १ ॥

શ્રી અખિલ ભારત શ્વેતામ્બર સ્થાનકવાસી

જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ.

ગરેડીઆ કુવા રોડ–ગ્રીન લોજ પાસે

રાજકોટ.

*

સમિતિની શરૂઆત તા. ૧૮–૧૦–૪૪ થી
તા.–૨–૧૧–૫૭ સુધીમાં દાનવીર મહાશયો
તરફથી મળેલી રકમોની નામાવલી.

*

(રૂા. ૨૫૦ થી ઓછી રકમો આ યાદીમાં સામેલ કરેલી નથી.)

*

આદ્ય મુરબ્બીશ્રી–૪

(ઓછામાં ઓછી રૂા. ૫૦૦૦ ની રકમ આપનાર)

૧૦૦૦૦	શેઠ શાંતિલાલ મંગળદાસભાઈ, પ્રમુખ સાહેબ	અમદાવાદ
૬૦૦૦	શેઠ હરખચંદ કાલીદાસભાઈ (હા. શેઠ લાલચંદભાઈ, જેચંદભાઇ, નગીનદાસભાઈ, વૃજલાલભાઈ તથા વલ્લભદાસભાઈ)	ભાણવડ
૫૨૫૧	કોઠારી જેચંદભાઈ અજરામર હા. હરગોવીંદભાઈ જેચંદ	રાજકોટ
૫૦૦૧	શેઠ ધારશીભાઈ જીવનભાઈ	સોલાપુર

મુરબ્બીશ્રીઓ–૨૧

(ઓછામાં ઓછી રૂા. ૧૦૦૦ ની રકમ આપનાર)

૩૬૦૫	વકીલ જીવરાજ વર્ધમાન હા. કોઠારી કહાનદાસભાઈ તથા વેણીલાલભાઇ	જેતપુર
૩૬૦૪	દોશી પ્રભુદાસ મુળજીભાઇ	રાજકોટ
૩૨૮૯ા–ાા	મહેતા ગુલાબચંદ પાનાચંદ	રાજકોટ
૩૨૫૦	મહેતા માણેકલાલ અમુલખરાય	ઘાટકોપર
૩૧૦૧	સંઘવી પીતામ્બરદાસ ગુલાબચંદ	જામનગર
૨૫૦૦	શેઠ શામજીભાઈ વેલજી વીરાણી	રાજકોટ
૨૦૦૦	નામદાર ઠાકોર સાહેબ લખધીરસીંહજી બહાદુર	મોરબી
૨૦૦૦	શેઠ લહેરચંદ કુંવરજી હા. શેઠ ન્યાલચંદભાઈ લહેરચંદ	સિદ્ધપુર
૨૦૦૦	શાહ છગનલાલ હેમચંદ વસા હા. મોહનલાલભાઈ તથા મોતીલાલભાઈ	મુંબઈ
૧૯૬૩	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	મોરબી
૧૦૦૧	શેઠ આત્મારામ માણેકલાલ	અમદાવાદ
૧૦૦૧	શેઠ માણેકલાલ ભાણજીભાઇ	પોરબંદર
૧૦૦૦	શેઠ સોમચંદ તુલસીદાસ	રતલામ
૧૦૦૦	કોઠારી છબીલદાસ હરખચંદ	મુંબઈ
૧૦૦૦	કોઠારી રંગીલદાસ હરખચંદ	શીહોર
૧૦૦૨	બગડીઆ જગજીવનદાસ રતનશી	દામનગર
૧૦૦૧	શ્રીમાન ચંદ્રસિંહજી મહેતા (રેલ્વે મેનેજર સાહેબ)	કલકત્તા
૧૦૦૧	મહેતા પોપટલાલ માવજીભાઈ	જામજોધપુર
૧૦૦૧	મહેતા સોમચંદ નેણશીભાઇ (કરાંચીવાળા)	મોરબી
૧૦૦૧	શાહ હરીલાલ અનુપચંદ	ખંભાત
૧૦૦૨	દોશી કપુરચંદ અમરશી હ. દલપતરામ કપુરચંદ દોશી	જામજોધપુર

સહાયક મેમ્બરો-૨૬

(ઓછામાં ઓછી રૂ. ૫૦૦ ની રકમ આપનાર)

૭૫૦	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ હા. શેઠ ગુંઆભાઇ વેલસીભાઈ	વઢવાણ શહેર
૭૫૦	મોદી કેશવલાલ હરિચંદ્ર	સાબરમતી
૭૦૦	શેઠ નરોત્તમદાસ ઓધડભાઈ	જોરાવરનગર
૫૦૧	શેઠ શીવલાલ ડમરભાઇ	લીંમડી
૫૦૦	કામદાર તારાચંદ પોપટલાલ ધોરાજીવાળા	રાજકોટ
૫૦૦	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	થાનગઢ
૫૦૦	શેશ તારાચંદજી પુખરાજજી	ઔરંગાબાદ
૫૦૦	શ્રી સ્થાનકવાસી જેન સંઘ	ઔરંગાબાદ

૧૫૦ શેઠ શેષમલજી જીવરાજજી
૧૨૫ ,, અનરાજજી લાલચંદજી
૧૨૫ ,, ધુકડચંદજી રૂપચંદજી
૧૦૦ ,, દગડુમલજી ચાંદમલજી
૫૦૦

૫૦૦	મહેતા મોહનધાલ કપુરચંદ	રાજકોટ
૫૦૦	શેઠ ગોવીંદજી પોપટભાઇ	રાજકોટ
૫૦૦	મહેતા મુળચંદ રાઘવજી હા. મગનલાલભાઇ તથા દુર્લભજીભાઈ	પ્રાફા
૫૦૧	શેઠ હરખચંદ પરસોત્તમ હા. ભાઇ ઇન્દુકુમાર	ચોરવાડ
૫૦૧	શેઠ ખીમજી બાવાભાઇ હા. તેમના પુત્ર કુલચંદભાઇ નાગરદાસભાઇ, ગુલાબચંદભાઇ, તથા જમનાદાસભાઇ	મુંબઇ
૫૦૧	શેઠ મણીલાલ મોહનલાલ ડગલી હા. શેઠ મુળજીભાઈ મણીલાલ	મુંબઇ
૫૦૧	શેઠ ઇશ્વરલાલ પુરૂષોત્તમદાસ	અમદાવાદ
૫૦૧	શેઠ ચંદુલાલ છગનલાલ	અમદાવાદ
૫૦૧	સ્વ. કાંતીલાલભાઇના સ્મરણાર્થે હ. શેઠ બાલચંદ સાકરચંદ	મુંબઈ
૫૦૦	અ. સૌ. બેન મણીગૌરી મગનલાલ તે મહેતા સોમચંદ તુલસીદાસનાં ધર્મપત્નિ	રતલામ
૫૦૧	સ્વ. પીતાશ્રી નંદાજીના સ્મરણાર્થે હ. વેણીચંદ શાંતિલાલ (જાબુઆવાળા)	મેઘનગર

૭૫૧	શાહ રંગજીભાઇ મોહનલાલ	અમદાવાદ
૫૦૧	કામદાર રતીલાલ દુર્લભજી જેતપુરવાળા	મુંબઇ
૫૨૭	બાટવીયા ગીરધર પ્રમાણુંદ હસ્તે અમીચંદ ગીરધરભાઇ—	ખાખીજાળીયા
૫૧૧	મોરબીવાળા સંઘવી દેવચંદ નેણશીભાઇ તથા તેમનાં ધર્મપત્નિ અ. સૌ. મણીબાઇ તરફથી. હા. મુળચંદ દેવચંદ કરાંચીવાળા	મલાડ
૫૦૧	શેઠ કેસરીમલજી વસતીમલજી ગુગલીયા	રાણાવાસ
૫૦૧ા	સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ હસ્તે બાટવીયા અમીચંદ ગીરધરભાઇ	ખાખીજાળીયા
૫૦૨	વોરા મણીલાલ પોપટલાલ	અમદાવાદ

પ્રથમ વર્ગના મેમ્બરો—૨૭૭

(ઓછામાં ઓછી રકમ રૂા. ૨૫૦ આપનાર)

૪૦૨	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	ધ્રાફા
૪૦૦	ધી વાડીલાલ ડાઇંગ એન્ડ પ્રિન્ટંગ વર્કસ	રાજકોટ
૩૫૩	શેઠ રતનશી હીરજીભાઈ હા. ગોરધનદાસભાઈ	જામજોધપુર
૩૦૧	શેઠ જેચંદભાઈ માણેકચંદ	ભાણવડ
૨૫૧	સંઘવી માણેકચંદ માધવજી	ભાણવડ
૨૫૧	શેઠ લાલજીભાઈ માણેકચંદ (લાલપુરવાળા)	ભાણવડ
૨૫૧	શેઠ રામજી ઝીણાભાઈ	ભાણવડ
૨૫૧	પંચમીયા ;ભવાનભાઈ કાળાભાઈ	વડીઆ
૨૫૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	વાંકાનેર
૨૫૧	શેઠ રતીલાલ ન્યાલચંદ	રાજકોટ
૨૫૦	બાબુ પરશુરામ છગનલાલ શેઠ (ઉદેપુરવાળા)	રાજકોટ
૨૫૧	શેઠ મગનલાલ છગનલાલ વિશ્રામ (ધ્રાફાવાળા)	રાજકોટ
૨૫૧	શેઠ જેઠાલાલ ગોરધનદાસ	ઉપલેટા
૨૫૧	સ્વ. બહેન સંતોક કચરા હા. ઓતમચંદભાઇ, છોટાલાલભાઈ તથા અમૃતલાલભાઈ વાલજી (કલ્યાણવાળા)	ઉપલેટા
૨૫૧	શેઠ ખુશાલચંદભાઇ કાનજીભાઈ હા. શેઠ પ્રતાપભાઈ	ઉપલેટા
૨૫૧	શેઠ છોટાલાલ કેશવજી	જામનગર

૨૫૧	શાહ લક્ષ્મીચંદ કપુરચંદ	જેતલસર જંકશન
૨૫૧	શાહ ચતુરદાસ ઠાકરશીભાઈ	જામનગર
૨૫૧	ખંઢેરીયા કાન્તિલાલ ત્રંબકલાલ (સ્ટેશન માસ્તર)	વાંકાનેર
૨૫૧	શાહ કેશવલાલ જેચંદ	વેરાવળ
૨૫૧	શાહ ખીમચંદ શૌભાગ્યચંદ વસનજી	વેરાવળ
૨૫૧	સ્વ. બાખડા વચ્છરાજ તુલસીદાસનાં ધર્મપત્નિ કમળબાઈ તરફથી હા. માણેકચંદભાઇ તથા કપુરચંદભાઇ	ગોંડલ
૨૫૧	શેઠ છગનલાલ નાનજીભાઇ	મુંબઈ
૨૫૧	ઘેલાણી ત્રીકમજી લાધાભાઈ	જુનારદેવ
૨૫૧	શેઠ ગીરધરલાલ કરમચંદ	અમદાવાદ
૨૫૧	શેઠ છોટાલાલ વખતચંદ	અમદાવાદ
૨૫૧	ગોસલિયા હરિલાલ લાલચંદ	અમદાવાદ
૨૫૧	શેઠ પ્રેમચંદ માણેકચંદ	અમદાવાદ
૨૫૧	શેઠ માણેકલાલ ભગવાનદાસ	ખંભાત
૨૫૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ હ. પટેલ કાંન્તીલાલ અંબાલાલ	ખંભાત
૨૫૧	શેઠ રમણીકલાલ એ. કપાસી	કોલ્હાપુર
૨૫૧	બહેન સુરીબહેન (લક્ષ્મીબેન) હા. મહેતા હરીલાલ પીતામ્બરદાસ	પાલનપુર
૨૫૦	શેઠ વાડીલાલ નેમચંદ વકીલ	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ વીઠલદાસ મોદી માસ્તર	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ નાગરદાસ માણેકચંદ	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ મણીલાલ જીવણલાલ	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ નાગરદાસ વાઘજીભાઈ	અમલનેર
૨૫૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	અમલનેર
૨૫૧	શેઠ મનુભાઈ મુળચંદ (ઈન્જીનીયર સાહેબ)	રાજકોટ
૨૫૧	શેઠ શાંતિલાલ પ્રેમચંદ [તેમનાં ધર્મપત્નીના વરસીતપ પ્રસંગે ખુશાલીના]	રાજકોટ
૨૫૦	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ હા. ચંપાલાલજી મારવે	ડોંડાઇચા
૨૫૧	શેઠ મોતીલાલજી રણજીતલાલજી હીંગડ	ઉદેપુર
૨૫૦	શેઠ બાદરમલજી સુરજમલજી બેન્કર્સ	યાદગીરી
૨૫૦	શેઠ ગોપાલજી મીઠાભાઈ	હાટીના માળીયા
૨૫૧	ઉદાણી ન્યાલચંદ હાકેમચંદ (વકીલ)	રાજકોટ

૨૫૧ શેઠ પ્રજારામ વીઠલજી — રાજકોટ

૨૫૧ શેઠ મેઘરાજજી દેવીચંદજી મહેતા — મદ્રાસ

૨૫૧ પટેલ ગોવિંદલાલ ભગવાનજી — કોલકી

૩૦૨ પટેલ ખીમજી જેઠાભાઈ વાઘાણી — કોલકી

૨૫૧ શેઠ હકમીચંદ દીપચંદ ગોંડલવાળા [સ્ટેશન માસ્તર ભક્તિનગર] — રાજકોટ

૨૫૧ શેઠ વસનજી નારણજી — જામખંભાળીયા

૨૫૧ શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ — જામખંભાળીયા

૨૫૧ શેઠ કીશનલાલ પૃથ્વીરાજ — ખીચન (પાલી)

૨૫૧ શેઠ પદમસી ભીમજી ફોફરીયા — ભાણવડ

૨૫૧ અ. સૌ. બહેન બચીબહેન બાબુભાઈ — ધોરાજી

૨૫૧ શેઠ નેમચંદ સવજીભાઈ મોદી — લાલપુર

૨૫૦ શ્રી સ્થા. જૈન સંઘ હા. પ્રમુખ શેઠ પ્રેમચંદ ભગવાનલાલ — નંદુરબાર

૨૫૧ શેઠ અમૃતલાલ હીરજીભાઈ જસાપરવાળા હા. નરભેરામભાઈ — જેતપુર

૨૫૧ દોશી છોટાલાલ વનેચંદ — જેતપુર

૨૫૧ કામદાર લીલાધર જીવરાજના સ્મરણાર્થે તેમનાં ધર્મપત્ની બાઈ ઝબકબહેન તરફથી હા. ભાઈ શાંતિલાલ — જેતલસર

૨૮૭ શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ — જામજોધપુર

૨૫૧ સ્વ. બહેન વિજ્યાગૌરી રાયચંદ હા. શેઠ રાયચંદ પાનાચંદ — ધોરાજી

૨૫૦ ગાંધી પોપટલાલ જેચંદભાઇ — ધોરાજી

૨૫૧ શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ હા. પ્રમુખ રાયચંદ વૃજલાલ અજમેરા — વીંછીયા

૨૫૧ શેઠ મુળચંદ પોપટલાલ હા. મણીલાલભાઈ તથા જેસીંગલાલભાઈ — લાલપુર

૨૫૧ શેઠ મણીલાલ મીઠાભાઈ હા. હરીલાલભાઈ (હાટીના માળીયાવાળા) — જુનાગઢ

૨૫૧ સ્વ. વસાણી હરગોવિંદદાસ છગનલાલના સ્મરણાર્થે તેમનાં ધર્મપત્નિ બાઈ છબલબેન તરફથી — બોટાદ

૨૫૧ શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ — ચુડા (ઝાલાવાડ)

૨૫૧ શેઠ મગનલાલજી બાગરેચા — ઉદેપુર

૨૫૧ શેઠ ચાંપશીભાઈ સુખલાલ — સુરેન્દ્રનગર

૨૫૧ સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ ખોટાદ

૨૫૧ સ્વ. પૂજ્ય માતુશ્રી સમરતબાઇના સ્મરણાર્થે
હા. ડૉકટર સાહેબ નરોત્તમદાસ ચુનીલાલ કાપડીયા રાણપુર

૨૫૧ સ્વ. તુરખીયા લહેરચંદ માણેકચંદ સુદામડાવાળાના સ્મરણાર્થે
તેમનાં ધર્મપત્ની જીવતીબાઇ તરફથી હા.જયંતિલાલ લહેરચંદ ડાભાસ

૨૫૧ શ્રી સ્થા. જૈન મોટા સંઘ ધ્રાંગધ્રા

૨૫૧ શાહ દીલપકુંવર સવાઈલાલ
હા. શેઠ સવાઇલાલ ત્રંબકલાલ વઢવાણ શહેર

૨૫૧ શેઠ છોટુભાઈ હરગોવિંદદાસ કટોરીવાળા મુંબઇ

૨૫૧ રા. રા. નાથાલાલ ડી મ્હેતા મોમ્બાસા

૨૫૧ સંઘવી પ્રાણલાલ લવજીભાઈ જામખંભાળીયા

૨૫૧ બાવીશી મણીલાલ ચત્રભુજના સ્મરણાર્થે
તેમનાં ધર્મપત્ની બાઈ મણીબેન તરફથી
હા. ભાઇ રસીકલાલ, અનીલકાંત તથા વિનોદરાય આસનસોલ

૨૫૧ ભાવસાર ખોડીદાસ ગણેશભાઈ ધંધુકા

૨૫૧ શાહ પોપટલાલ ધનજીભાઇ ધંધુકા

૨૫૧ સ્વ. ગુલાબચંદભાઈના સ્મરણાર્થે
હા. વોરા પોપટલાલ નાનચંદ ધંધુકા

૨૫૧ શેઠ ચત્રભુજ વાઘજીભાઈ વસાણી ધંધુકા

૨૫૧ સ્વ મોહનલાલ નરસીદાસના સ્મરણાર્થે
તેમનાં ધર્મપત્ની સુરજબેન મોરારજી તરફથી બરવાળા

૨૫૧ શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ પાણસણા (લીંબડી)

૨૫૧ સંઘાણી મુળશંકર હરજીવનભાઈના સ્મરણાર્થે
હા. તેમના પુત્રો જયંતિલાલભાઈ તથા રમણીકલાલભાઇ ઉપલેટા

૨૫૧ શાહ મગનલાલ ગોકળદાસ
હા. રતીલાલ મગનલાલ કામદાર વઢવાણ શહેર

૨૫૧ સંઘવી મુળચંદ બેચરભાઇ
હા. જીવનલાલ ગફલદાસ વઢવાણ શહેર

૨૫૧	બ્હેન સુર્યબાળા નૌતમલાલ જસાણી [વરસતીપનાં પારણાંની ખુશાલીમાં]	રાજકોટ
૨૫૧	શાહ રાયચંદ ઠાકરશીના સ્મરણાર્થે હા. ભાઈ શાંતીલાલ રાયચંદ	લખતર
૨૫૧	ભાવસાર હરજીવનદાસ પ્રભુદાસના સ્મરણાર્થે હા. ભાઈ ત્રીભોવનદાસ હરજીવનદાસ	લખતર
૨૫૧	શાહ તલકશી હીરાચંદના સ્મરણાર્થે હા. ભાઈ અમૃતલાલ તલકશી	લખતર
૨૫૧	શાહ ચુનીલાલ માણેકચંદ	લખતર
૨૫૧	શેઠ વૃજલાલ સુખલાલ	વઢવાણ શહેર
૨૫૧	શેઠ કાંતિલાલ નાગરદાસ	વઢવાણ શહેર
૨૫૧	વોરા ચત્રભુજ મગનલાલ	વઢવાણ શહેર
૨૫૧	સંઘવી શીવલાલ હીમજીભાઇ	વઢવાણ શહેર
૨૫૧	શાહ દેવશીભાઈ દેવકરણ	વઢવાણ શહેર
૨૫૧	શાહ જાદવજી ઓઘડભાઇ સદાદવાળાના સ્મરણાર્થે હા. ભાઈ શાંતિલાલ જાદવજી	લખતર
૨૫૧	ભાવસાર ચુનીલાલ પ્રેમચંદભાઇ	સુરેન્દ્રનગર
૨૫૧	શ્રી વર્ધમાન શ્વેતામ્બર સ્થા. શ્રાવક સંઘ હા. શેઠ કેસરીમલજી અનોપચંદજી ગુગળીયા	મલાડ (મુંબઇ)
૨૫૧	દોશી ઠાકરશી ગુલાબચંદના સ્મરણાર્થે તેમનાં ધર્મપત્ની સમરતબેન વૃજલાલ તરફથી હા. જયંતીલાલ ઠાકરશી	લખતર
૩૦૦	શાહ અમુલખભાઈ ઉર્ફે બચુભાઈ નાગરદાસનાં ધર્મપત્નિ અ. સૌ. બેન લીલાવંતીના વરસીતપનાં પારણાની ખુશાલીમાં હા. ભાઇ કાંતીલાલ નાગરદાસ	વીરમગામ
૨૫૧	કામદાર કેશવલાલ હીમતરામ પ્રોફેસરસાહેબ (ગોંડલવાળા)	વડોદરા
૨૫૧	શેઠ ડુંગરશી હંસરાજ વીસરીયા	મુંબઇ
૨૫૧	શેઠ ધનરાજ મુળચંદ મુથા	લોનાવાલા (પુના)
૨૫૧	મ્હેતા નાનાલાલ છગનલાલનાં ધર્મપત્ની સ્વ. ચંચળબેન તથા પુરીબેનના સ્મરણાર્થે હા. ભાઈ મનહરલાલ નાનાલાલ	મુ. વણી (વીરમગામ)

૪૫૧	દોશી ચુનીલાલ ફુલચંદ મોરબીવાળા મુ. શાલબની (બંગાળ)	
૩૦૧	શાહ હીરાચંદ છગનલાલ હા. શાહ ચીમનલાલ હીરાચંદ	સાણંદ
૨૫૧	શેઠ મોહનલાલ જેઠાભાઇના સ્મરણાર્થે હા. શેઠ આત્મારામ મોહનલાલ	કલોલ
૨૫૧	શાહ રમણીકલાલ કાળીદાસ તથા અ. સૌ. કાંતાબેન રમણીકલાલ (ધ્રાંગધ્રાવાળા)	મુંબઇ
૨૫૧	ડોકટર મયાચંદ મગનલાલ હા. ડો. રતનચંદ મયાચંદ	કલોલ
૨૫૧	સ્વ. શાહ નાથાલાલ ઉમેદચંદના સ્મરણાર્થે હા. શાહ રતીલાલ નાથાલાલ	કલોલ
૨૫૧	શ્રી સ્થા. દરીયાપુરી જૈન સંઘ હા. ભાવસાર દામોદરદાસ ઈશ્વિરભાઈ	કડી
૨૫૧	શાહ મણીલાલ તલકચંદના સ્મરણાર્થે હા. મારફતીયા ચંદુલાલ મણીલાલ	કલોલ
૨૫૧	અ. સૌ. ચંપાબેન હ. શેઠ જીવરાજ લાલચંદ દોશી	સાણંદ
૨૫૧	પટેલ મહાસુખલાલ ડોસાભાઈ	સાણંદ
૨૫૧	શાહ સાકરચંદ કાનજીભાઇ	સાણંદ
૨૫૧	શાહ હીંમતલાલ હરજીવનદાસ	મુંબઇ
૨૫૧	શાહ જીતેન્દ્રકુમાર વાડીલાલ માણેકચંદ (રાજસીતાપુરવાળા)	સાબરમતી
૨૫૧	અ. સૌ. સમરતબેન પ્રેમચંદ C/o પ્રેમચંદ માણેકચંદ (રાજસીતાપુરવાળા)	સાબરમતી
૨૫૧	શા. કાંતિલાલ ત્રીભોવનદાસ	અમદાવાદ
૨૫૧	સ્વ. શેઠ ઉજમશી નાનચંદના સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરફથી હા. શેઠ ચુનીલાલ નાનચંદ	વીરમગામ
૨૫૧	સ્વ. શાહ મણીલાલ લક્ષ્મીચંદના સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરફથી હા. ખીમચંદભાઇ	વીરમગામ
૨૫૧	સ્વ. શેઠ હરીલાલ પ્રભુદાસના સ્મરણાર્થે હા. શેઠ અનુભાઈ હરીલાલ	વીરમગામ
૨૫૧	સંઘવી જેચંદભાઇ નારણદાસ	વીરમગામ

૨૫૧	સ્વ. શાહ વેલશીભાઈ સાકરચંદના સ્મરણાર્થે હા. ચીમનલાલ વેલશી કત્રાજવાળા	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ પોચાલાલ પીતામ્બરદાસ	અમદાવાદ
૨૫૧	પારેખ મણીલાલ ટોકરશી લાતીવાળા તરફથી મોટીબેનના સ્મરણાર્થે	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ નારણદાસ નાનજીભાઈના સુપત્ર વાડીભાઈના ધર્મપત્ની અ. સૌ. નારંગીબેનના વરસીતપ નિમિત્તે હા. શાંતીભાઈ	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ પોપટલાલ મોહનલાલ	અમદાવાદ
૨૫૦	શેઠ પ્રેમચંદ સાકરચંદ	અમદાવાદ
૩૫૧	લાલ પુરણચંદજી જૈન (સેન્ટ્રલબેંકવાળા)	દીલ્હી
૨૫૧	સ્વ. છબીલદાસ ગોકળદાસના સ્મરણાર્થે તેમનાં ધર્મપત્નિ કમળાબેન તરફથી હા. મંજુલાકુમારી	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ રતીલાલ વાડીલાલ	અમદાવાદ
૨૫૧	શેઠ લાલભાઈ મંગળદાસ	અમદાવાદ
૨૫૧	અ. સૌ. કમળાબેન તે કામદાર ગોરધનદાસ મગનલાલનાં ધર્મપત્નિ (વઢવાણવાળા)	રંગુન
૨૫૧	વોરા ડોસાભાઈ લાલચંદ સ્થા. જૈન સંઘ હા. વોરા નાનચંદ શીવલાલ	વઢવાણ શહેર
૨૫૧	વોરા ધનજીભાઈ લાલચંદ સ્થા. જૈન સંઘ હા. વોરા પાનાચંદ ગોબરદાસ	વઢવાણ શહેર
૨૫૧	સ્વ. અમૃતલાલ વર્ધમાનના સ્મરણાર્થે હા. કહાનજીભાઈ અમૃતલાલ દેશાઈ	અમદાવાદ
૨૫૧	શ્રી વીરમગામ સ્થા. જૈન શ્રાવિકા સંઘ	વીરમગામ
૨૫૧	સ્વ. ત્રિભોવનદાસ દેવચંદ તથા સ્વ. અ. સૌ. ચંચળબેનના સ્મરણાર્થે હા. ડોકટર હિંમતલાલ સુખલાલ	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ મુલચંદ કાનજીભાઈ તરફથી હા. શાહ નાગરદાસ ઓઘડભાઈ	વીરમગામ
૨૫૧	શેઠ મોહનલાલ પીતાંબરદાસ હા. ભાઈ કેશવલાલ તથા મનસુખલાલભાઈ	વીરમગામ

૨૫૧	શાહ રતનશી મોણશીની કું	મુંબઈ
૨૫૧	ભાવસાર ભોગીલાલ જમનાદાસ	અમદાવાદ
૨૫૧	શાહ શીવજી માણેકભાઈ	બેરાજા (કચ્છ)
૨૫૧	શાહ લુણાજી ગુલાબચંદ	સંજેલી (પંચમહાલ)
૨૫૧	શ્રી સ્થા.જૈન સંઘ હા. શાહ પ્રેમચંદ દલીચંદ	સંજેલી (પંચમહાલ)
૨૫૧	શાહ કૂંવરજી ગુલાબચંદ	લીમડી (પંચમહાલ)
૨૫૧	શાહ પાનાચંદ સંઘજીભાઈ હા. ત્ર્યંબકલાલ રતીલાલ	મુંબઈ
૩૦૧	શાહ અમુલખભાઈ મુળજી હા. પ્રકાશચંદ અમુલખ	હારીજ
૩૦૧	સ્વ બેન ચંદ્રકાંતાના સ્મરણાર્થે: હા. અમુલખ મુળજીભાઇ	હારીજ
૨૫૧	સ્વ. પદમશી સુરચંદના સ્મરણાર્થે હા. શીવલાલ પદમશી	મેસાણા
૨૫૧	શાહ ગોકળદાસ શામજી ઉદાણી	એડન કેમ્પ
૨૫૧	શ્રીમતી અ. સૌ. બેન ચંદ્રાવતી તે શ્રીમાન બહોતલાલજી નાહરનાં ધર્મપત્નિ હા. શેઠ રણજીતલાલજી હીંગડ	ઉદેપુર
૨૫૧	સ્વ. શેઠ વીરચંદભાઇ જેસીંગ લખતરવાળાના સ્મરણાર્થે હા. કેશવલાલ વીરચંદ શેઠ	મુંબઇ
૨૫૧ા‌~	છાજેડ ઘાસીરામ ગુલાબચંદ	લીમડી (પંચમહાલ)
૩૫૧	મહેતા પ્રભુદાસ મુળજીભાઈ	ધોરાજી
૩૦૧	શ્રીમતી હીરાબેન નથુભાઇના વરસીતાપ નીમીત્તે હા. નથુભાઈ નાનચંદ શાહ	વીરમગામ
૨૫૧	સ્વ. મણીયાર પરસોત્તમ સુંદરજીના સ્મરણાર્થે હા. સાકરચંદ પરસોત્તમ	વીરમગામ
૨૫૧	શેઠ મણીલાલ શીવલાલ	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ ત્રીભોવનદાસ ભગવાનજી પાનેલીવાળા	જામજોધપુર
૨૫૧	શાહ નટવરલાલ ચંદુલાલ	અમદાવાદ
૩૦૧	શાહ ત્રીભોવનદાસ છગનલાલ	ગોધરા
૨૫૧	શાહ નરસીદાસ ત્રીભોવનદાસ	અમદાવાદ
૩૦૧	બીપીનચંદ્ર તથા ઉમાકાંત ચુનીલાલ ગોપાણી હા. ગોપાણી ચુનીલાલ માણેકચંદ	રાણપુર

૨૫૧	શ્રી શાહપુર, દરીયાપુરી આઠકોટી સ્થા. જૈન ઉપાશ્રય હા- વહીવટ કરનાર શેઠ ઇશ્વિરદાસ પુરૂષોત્તમદાસ	અમદાવાદ
૨૫૧	શ્રી છીપાપોળ દરીયાપુરી આઠકોટી સ્થા. જૈન સંઘ હા. શેઠ ચંદુલાલ અમૃતલાલ	અમદાવાદ
૨૭૭	શ્રી સ્થાનકવાસી છકોટી જૈન સંઘ હા. મહેતા ચુનીલાલ વેલજી	માંડવી (કચ્છ)
૨૫૧	વકીલ મણીલાલ કેશવલાલ શાહ	વડોદરા
૨૫૧	શાહ ચીનુભાઇ બાલાભાઇ C/o શાહ બાલાભાઈ મહાસુખરામ	અમદાવાદ
૨૫૧	શાહ ભાઇલાલ ઉજમશી	અમદાવાદ
૨૫૧	સ્વ. કેશવલાલ મુળજીભાઇનાં ધર્મપત્ની, સ્વ. અમૃતબાઈના સ્મરણાર્થે હા. ભાઈલાલ કેશવલાલ થાનગઢવાળા	સુરેન્દ્રનગર
૨૫૧	પુરીબેન ચીમનલાલ કલ્યાણજી સંઘવી લીમડીવાળાના સ્મરણાર્થે હા. વાડીલાલ મોહનલાલ કોઠારી	સાણંદ
૨૫૧	પારેખ નેમચંદ મોતીચંદ મુળીવાળાના સ્મરણાર્થે હા. ભીખાલાલ નેમચંદ	સાણંદ
૨૫૧	સંઘવી નારણદાસ ધરમશીના સ્મરણાર્થે હા. જયંતીલાલ નારણદાસ	સાણંદ
૨૫૧	શા. પ્રવિણચંદ્ર નરસીદાસ સાણંદવાળા	બોડેલી (ગુજરાત)
૨૫૧	માસ્તર જેઠાલાલ મોનજીભાઇ હા. મહેતા અમૃતલાલ જેઠાલાલ સીવીલઈન્જીનીયર સાહેબ	લાખેરી (રાજસ્થાન)
૨૫૧	શ્રી સુખલાલ ડી. શેઠ હા. ડૉ. કુ. સરસ્વતી બ્હેન શેઠ	અમદાવાદ
૨૫૧	શ્રી સૌરાષ્ટ્ર સ્થા. જૈન સંઘ હા. શાહ કાંતીલાલ જીવનલાલ	અમદાવાદ
૨૫૧	સ્વ. શેઠ કાળુલાલજી લોઢાના સ્મરણાર્થે હા. શેઠ દોલતસિંહજી લોઢા	ઉદેપુર
૨૫૧	સ્વ. મહેતા કુંવરજી નાથાભાઈના સ્મરણાર્થે હા. તેમનાં ધર્મપત્નિ કુંવરબાઈ હરખચંદ તરફથી (માનકુવા સ્થા. જૈન સંઘને માટે)	માનકુવા (કચ્છ)

૨૫૧	મોદી નાથાલાલ મહાદેવદાસ	અમદાવાદ
૨૫૧	શાહ મોહનલાલ ત્રીકમદાસ	અમદાવાદ
૨૫૧	સ્વ. શેઠ પ્રતાપમલજી સાખલાના સ્મરણાર્થે હા. પ્રાણુલાલ હીરાલાલ સાખલા	ઉદેપુર
૨૫૧	શ્રી છકોટી સ્થા. જૈન સંઘ હા. શાહ પોચાલાલ પીતામ્બરદાસ	અમદાવાદ
૨૫૧	દોશી વીરચંદ સુરચંદ હા. દોશી નાનચંદ ઉજમશી	વઢવાણુ શહેર
૨૫૧	સ્વ. વોરા મણીલાલ મગનલાલ હા. વોરા ચત્રભુજ મગનલાલ	વઢવાણુ શહેર
૨૫૧	શાહ પોપટલાલ હંસરાજના સ્મરણાર્થે હા. શેઠ બાબુલાલ પોપટલાલ	અમદાવાદ
૨૫૧	શાહ કુંવરજી હંસરાજ	મુંબઈ
૨૫૧	દેશાઈ અમૃતલાલ વર્ધમાન બાપોદરાવાળા હા. ભાઈલાલ અમૃતલાલ દેશાઈ	અમદાવાદ
૨૫૧	દેશાઈ અમૃતલાલ વર્ધમાન બોપોદરાવાળા હા. દલીચંદ અમૃતલાલ દેશાઈ	મુંબાઈ
૨૫૧	શાહ સાકરચંદ મોહનલાલ	ખંભાત
૨૫૧	શાહ નવનીતલાલ અમુલખરાય	અમદાવાદ
૨૫૧	શાહ મણીલાલ આશારામ	અમદાવાદ
૨૫૧	શેઠ ચીનુભાઈ સાકરચંદ	અમદાવાદ
૨૫૧	અ. સૌ. ચંપાબેન ગોસલીયા હા. ગોસલીયા હરીલાલ લાલચંદ	અમદાવાદ
૨૫૧	શ્રી વટામણ સ્થા. જૈન સંઘ હા. શ્રી ડાહ્યાભાઈ હલુભાઈ	વટામણુ (ધોળકા)
૨૫૧	કોઠારી ડોલરકુમાર વેણીલાલ	જેતપુર
૨૫૧	શાહ વરજીવનદાસ ઉમેદચંદ	અમદાવાદ
૨૫૦	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	સાબરમતી
૨૫૧	શેઠ અમરચંદ છગનલાલ બાગરેચા	નાથદ્વારા

૨૫૨	ઘેલાણી પ્રભુદાસ ત્રિકમજી	મુંબઈ
૩૦૧	સ્વ. સંઘવી મનસુખલાલ મોહનલાલના સ્મરણાર્થે હા. ધીરજલાલ મનસુખલાલ	પાલેજ
૩૦૦	મ્હેતા ગુલાબચંદ ગંભીરમલ	ઘોલવડ (થાણા)
૨૫૧	શાહ ખીમચંદ મુળજીભાઈ	વલસાડ
૨૫૧	શાહ હરજીવનભાઈ કેશવજી	મુંબઈ
૨૫૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જન સંઘ હા. છોટુભાઈ અભેચંદ શાહ	સુરત
૨૫૧	શાહ મોહનલાલ પોપટલાલ પાનેલીવાળા	ઉમરગામરોડ
૨૫૧	શાહ રવજીભાઈ તથા ભાઈલાલની કું.	કાંદિવલી
૨૫૧	શાહ રજનીકાન્ત કસ્તુરચંદ	અમદાવાદ
૨૫૧	સંઘવી જીવણલાલ છગનલાલ (સ્થા. જૈન)	અમદાવાદ
૩૦૧	સ્વ. માતુશ્રી માણેકબાઈના સ્મરણાર્થે હા. શાહ વલભદાસ નાનજી પોરબંદરવાળા	મુંબઇ
૨૫૧	શેઠ દેવરાજજી જીતમલજી પુનમીઆ સાદડીવાળા	મુંબઈ
૩૦૧	શાહ ચુનિલાલ નારણજી	આટકોટ
૨૫૧	એક સદ્ગ્રહસ્થ હા. શેઠ સુંદરલાલ માણેકચંદ	મુંબઇ
૨૫૧	અ. સૌ. બહેન પાનબાઇ હા. શેઠ પદમસી નરશીભાઇ	મલાડ
૨૫૧	શ્રી સરસપુર દરીઆપુરી આઠકોટી સ્થા. જૈન ઉપાશ્રય હા. ભાવસાર ભોગીલાલ છગનલાલ	અમદાવાદ
૨૫૧	ભાવસાર ભોગીલાલ છગનલાલ	અમદાવાદ
૩૦૧	સ્વ. પિતાશ્રી નાગશીભાઈ સેજપાલના સ્મરણાર્થે હા. શાહ રામજી નાગશી ગુંદાળાવાળા	મલાડ
૨૫૧	શાહ રામજીભાઈ કરશનજી થાનગઢવાળા	મુંબઈ
૨૫૧	શાહ ઠાકરશી કરશનજી	થાનગઢ
૨૫૧	શાહ જેઠાલાલ ત્રીભોવનદાસ	થાનગઢ
૨૫૧	શાહ ધારશી પાશવીર	થાનગઢ
૨૫૧	શાહ નગીનદાસ કલ્યાણજી વેરાવળવાળા	મુંબઈ
૨૫૧	શેઠ શીવલાલ ગુલાબચંદ	મુંબઇ

૨૫૧	શાહ હીરાચંદજી વનેચંદજી કટારીઆ	હુબલી (ધારવાડ)
૩૦૧	સ્વ. જટાશંકર દેવજી દોશીના સ્મરણાર્થે હ. દોશી રણછોડદાસ (બાબુભાઈ) જટાશંકર ટંકારાવાળા	મુંબઈ
૨૫૧	સ્વ. શેઠ વણારસી ત્રીભોવનદાસ ગોડાના સ્મરણાર્થે હા. જગજીવન વણારસી સરસઈવાળા	મલાડ
૨૫૧	સ્વ. પિતાશ્રી કાનજી મુળજીના સ્મરણાર્થે તથા માતુશ્રી દિવાળીબાઈના સોળ ઉપવાસના પારણા પ્રસંગે હા. દોશી જયંતીલાલ કાનજી કાળાવડવાળા	મલાડ
૨૫૧	સ્વ. અજમેરા ત્રીભોવનદાસ વજપાલ વીંછીઆવાળાના સ્મરણાર્થે હા. અજમેરા હરગોવીંદદાસ ત્રીભોવનદાસ	મુંબઇ
૨૫૦	શેઠ ખુશાલભાઈ ખેંગારભાઈ	મુંબઈ
૨૫૧	શાહ પ્રેમજી માલશી ગંગર	મલાડ
૨૦૧	સ્વ. પિતાશ્રી રામશી વેલજીના સ્મરણાર્થે હા. શાહ દામજી રામશી	મુંબઈ
૩૦૧	શાહ વેલજી જેસીંગભાઇ છાસરાવાળા (તેમનાં ધર્મપત્નિ સ્વા. નાનબાઇના સ્મરણાર્થે)	મલાડ
૨૫૧	સ્વ. પિતાશ્રી પતુભાઇ મોનાભાઇના સ્મરણાર્થે હા. શાહ કાનજીભાઇ પતુભાઈ કચ્છ ગુંદાળાવાળા	મુંબઇ
૨૫૧	શેઠ ત્રંબકલાલ કસ્તુરચંદ (લીંમડીવાળા તરફથી અજરામરજી શાસ્ત્રભંડારને ભેટ)	માટુંગા
૩૦૧	સ્વ. પિતાશ્રી ભીમશી કોરસી તથા માતુશ્રી પાલાબાઈના સ્મરણાર્થે હા. શાહ ઉમરશી ભીમશી કચ્છપત્રીવાળા	મલાડ
૨૫૧	મેસર્સ સવાણી ટ્રાન્સપોર્ટ કંપની હા. શેઠ માણેકલાલ વાડીલાલ	મુંબઈ
૨૫૧	શાહ ન્યાલચંદ હરખચંદ	સુરેન્દ્રનગર
૨૫૧	શેઠ ચુનિલાલ નરભેરામ વેકરીવાળા	મુંબઈ
૨૫૧	સ્વ. માતુશ્રી જીવીબાઇના સ્મરણાર્થે હા. શાહ શામજી શીવજી કચ્છગુંદાળાવાળા	ગોરેગાંવ
૨૫૧	શાહ વરજાંગભાઈ શીવજી	મલાડ
૨૫૧	સ્વ. માતુશ્રી ઝકલબાઇના સ્મરણાર્થે હા. દેશાઈ વ્રજલાલ કાળીદાસ	બગસરાભાયાણી

૨૫૧	શાહ શાન્તીલાલ માણેકચંદ	અમદાવાદ
૩૦૧	શેઠ જવાનમલજી નેમીચંદજી હા. ગાંધી રીખચંદજી	રાણાવાસ
૨૫૧	શેઠ ગુલાબચંદ ભુદરભાઈ	ખારરોડ
૨૫૧	શાહ ખીમજી મુળજી પુંજા	મલાડ
૨૫૧	સાવળા શામજી હીરજી સદાનંદી જૈન મુનિશ્રી છોટાલાલજી મહારાજના ઉપદેશથી સુવઈ સ્થા. જૈન સંઘના જ્ઞાન ભંડારને ભેટ.	સુવઇ (કચ્છ)
૨૫૧	ઘેલાણી વલભજી નરભેરામ હા. નરશીદાસ વલભજી ઘેલાણી	મુંબઇ
૨૫૧	અ. સૌ. સમતાબેન શાંતિલાલ C/o શાંતિલાલ ઉજમશી શાહ	મલાડ
૨૫૧	તેજાણી કુબેરદાસ પાનાચંદ	મુંબઈ
૨૫૧	કપાસી મોહનલાલ શીવલાલ	મુંબઈ
૨૫૧	શ્રી લોકાગચ્છ સ્થા. માર્ગી જૈન પુસ્તકાલય. હા. મ્હેતા મણીલાલ ભાઇચંદ	પાલનપુર
૨૫૧	સ્વ. પિતાશ્રી કેશવલાલ વછરાજ કોઠારીના સ્મરણાર્થે હ. પૂ. માતુશ્રી સુરજબેનનીવતી તનસુખલાલ કેશવલાલ	મલાડ
૨૫૧	દડીયા અમૃતલાલ મોતીચંદ	ઘાટકોપર
૨૫૧	અ. સૌ. લાચ્છૂબેન. હા. શાહ રવજી શામજી	કાંદેવલી
૨૫૧	શાહ શેરમલજી દેવીચંદજી જસવંતગઢવાળા હ. પૂનમચંદજી શેરમલજી ઓલ્યા	મનોર (થાણા)
૨૫૧	શેઠ સરદારમલજી દેવીચંદજી કાવેડીયા	મુંબઈ
૨૫૧	દોશી ચત્રભુજ સુંદરજી	ઘાટકોપર
૨૫૧	દોશી જુગલકીશોર ચત્રભુજ	ઘાટકોપર
૨૫૧	દોશી પ્રવીણચંદ્ર ચત્રભુજ	ઘાટકોપર
૨૫૧	મ્હેતા રતિલાલ ભાઇચંદ	મુંબઈ
૨૫૦	સ્વ. શાહ ત્રિભોવનદાસ માનસીંગ દોઢીવાળાના સ્મરણાર્થે હ. શાહ હરખચંદ ત્રિભોવનદાસ	મુંબઈ
૨૫૦	શાહ જેઠાલાલ ડામરશી ધાંગધ્રાવાળા, હ. વાડીલાલ જેઠાલાલ	મુંબઇ
૨૫૧	શાહ ચંદુલાલ કેશવલાલ	મુંબઈ

૨૫૧	શાહ પ્રેમજી હીરજી ગાલા	મુંબઈ
૩૦૧	સ્વ. પિતાશ્રી શામળજી કલ્યાણજી ગોંડલવાળાના સ્મરણાર્થે	
	તેમના પુત્રો તરફથી હા. વ્રજલાલ શામળજી	મુંબઈ
૨૫૧	શાહ ચંદુલાલ હરીલાલ	
	(સકરાભાઈના રૂા ૧૫૧ મળીને)	ખંભાત
૨૫૨	શાહ શાંતિલાલ મોહનલાલ ધ્રાંગધ્રાવાળા	અમદાવાદ
૩૦૧	પીતાશ્રી ભગવાનજી હીરાચંદ જસાણીના સ્મરણાર્થે	
	હા. લક્ષ્મીચંદભાઈ તથા કેશવલાલ ભગવાનજી	મુંબઈ
૨૫૧	સ્વ. પિતાશ્રી હંસરાજ હીરાના સ્મરણાર્થે.	
	હ. દેવશી હંસરાજ	કચ્છ બિડાલાવાળા–મલાડ
૨૫૧	અ. સૌ. બેન રતનબાઈ નાહેચા	
	હ. શાહ ધુલાજી ચંપાલાલજી	અમદાવાદ
૨૫૧	શાહ હરીલાલ જેઠાલાલ ભાડલાવાળા	અમદાવાદ
૨૫૧	શેઠ પોપટલાલ રાઘવજી રાઈડીવાળા	
	હ. માનસીંગ પ્રેમચંદ, રાઈડીવાળા	બગસરાભાયાણી
૨૫૧	શેઠ ગાંગજી કેશવજી (જ્ઞાનભંડાર માટે)	કચ્છબેરાજા

*

કુલ્લ મેમ્બરોની સંખ્યા ૪૧૦

૪ આદ્ય મુરબ્બીશ્રીઓ	૨૭૭ પ્રથમ વર્ગના મેમ્બરો
૨૧ મુરબ્બીશ્રીઓ	૮૨ બીજા વર્ગના મેમ્બરો
૨૬ સહાયક મેમ્બરો	૪૧૦ કુલ્લ મેમ્બરો

(બીજા વર્ગને સદંતર બંધ કરવામાં આવેલ છે.)

રાજકોટ તા. ૨–૧૧–૫૭

સેંકડો સર્ટીફીકેટો ઉપરાંત હાલમાં મળેલા
કેટલાક તાજા અભિપ્રાયો

શાસ્ત્રોદ્ધારના કાર્યને વેગ આપો

તંત્રીસ્થાનેથી (જૈનજ્યોતિ) તા. ૧૫-૯-૫૭

પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ ઠાણા ૪ હાલમાં અમદાવાદ મુકામે સરસપુરના સ્થા. જૈન ઉપાશ્રયમાં બિરાજમાન છે. તેઓશ્રી શાસ્ત્રોદ્ધારનું કાર્ય ખૂબ જ ખંત અને ઉત્સાહથી વૃદ્ધવયે પણ કરી રહ્યા છે. તેઓશ્રી વૃદ્ધ છે છતાં પણ આખો દિવસ શાસ્ત્રની ટીકાઓ લખી રહ્યા છે. આજ સુધીમાં તેમણે લગભગ ૨૦ જેટલાં શાસ્ત્રોની ટીકાઓ લખી નાખી છે અને બાકીનાં સુત્રોની ટીકા જેમ બને તેમ જલદી પૂર્ણ કરવી તેવા મનોરથ સેવી રહેલ છે. સ્થા. જૈન સમાજમાં શાસ્ત્રો ઉપર સંસ્કૃત ટીકા લખવાનો આ પ્રથમ જ પ્રયાસ છે અને તે પ્રયાસ સંપૂર્ણ બને એવી અમે શાસનદેવ પ્રત્યે પ્રાર્થના કરીએ છીએ. આજ સુધી ઘણા મુનિવરોએ શાસ્ત્રોનું કામ શરૂ કરેલ છે પણ કોઈએ પૂર્ણ કરેલ નથી. પૂજ્યશ્રી અમુલખઋષીજી મહારાજે બત્રીસે શાસ્ત્રો ઉપર હિંદી અનુવાદ કરેલ અને સંપૂર્ણ બનેલ, ત્યારબાદ આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજશ્રીએ હિંદી ટીકા કેટલાક શાસ્ત્રો ઉપર લખેલ પણ ઘણાં શાસ્ત્રો બાકી રહી ગયાં. પૂજ્ય હસ્તિમલજી મહારાજે એક બે શાસ્ત્રો ઉપરની ટીકાઓના અનુવાદો કરેલ. પૂજ્ય શ્રી જવાહિરલાલ મહારાજશ્રીએ સૂયગડાંગ સૂત્ર ટીકા સહિત હિન્દી અનુવાદ સાથે કરેલ. શ્રી સૌભાગ્યમલજી મહારાજે આચારાંગની હિંદી ટીકા લખેલ. પણ સંપૂર્ણ શાસ્ત્રો ઉપર સંસ્કૃત ટીકા હજી સુધી સ્થા. જૈન સાધુઓ તરફથી થયેલ નથી. જ્યારે પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજશ્રીએ ૨૦ શાસ્ત્રો ઉપર સંસ્કૃત ટીકા તેનો હિંદી ગુજરાતી અનુવાદ કરાવેલ છે આથી હવે આશા બંધાય છે કે તેઓશ્રી બત્રીસે બત્રીસ શાસ્ત્રો ઉપર સંસ્કૃત ટીકા લખવામાં સફળ થશે અને શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિએ આજ સુધી ૧૦ થી ૧૨ શાસ્ત્રો છપાવી પણ દીધાં છે અને હજી પણ તે શાસ્ત્રો વિશેષ જલદી છપાય ને માટે શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ સંપૂર્ણ પ્રયત્ન કરી રહેલ છે તે ધન્યવાદને પાત્ર છે.

જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના રૂા. ૨૫૧) ભરીને લાઇફ મેમ્બર થનારને શાસ્ત્રો તમામ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ તરફથી ભેટ મળે છે. આ રીતે એક પંથ અને દો કાજ. બન્ને રીતે લાભ થાય તેમ છે. રૂા. ૨૫૧ માં ૫૦૦ રૂપિયાની કિંમતમાં શાસ્ત્રો મળે એ પણ મોટો લાભ છે અને પ્રવચનની પ્રભાવના કરવાનો ધર્મલાભ પણ મળે છે.

આ સાલે પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના સુશિષ્ય પં. મુનિશ્રી કન્હૈયા-લાલજી મહારાજ મલાડ મુકામે ચાતુર્માસ બિરાજે છે અને તેઓશ્રી શાસ્ત્રોના મેમ્બરો કરવા માટે અથાગ પ્રયત્ન કરીને પ્રવચનની સેવા બજાવી રહ્યા છે. અને અત્યાર સુધીમાં મુંબઇ તેમજ પરાઓના લગભગ ૪૦ જેટલા ગૃહસ્થો લાઈફ મેમ્બર બની ગયા છે અને મુંબઈમાં લગભગ ૩૦૦ જેટલા મેમ્બરો થાય તે ઈચ્છવા યોગ્ય છે. શ્રીમંત ગૃહસ્થો હજારો રૂપિયા પોતાના ઘર ખર્ચમાં તેમજ મોજશોખના કામોમાં તેમજ વ્યવહારિક કામોમાં વાપરી રહ્યા છે તો આવા શાસ્ત્રોદ્ધાર જેવા પવિત્ર કાર્યમાં રૂપિયા વાપરશે તો ધર્મની સેવા કરી ગણાશે. અને બદલામાં ઉત્તમ આગમસાહિત્યની એક લાયબ્રેરી બની જશે. જેનું વાંચન કરવાથી આત્માને શાંતિ મળશે અને શાસ્ત્રઆજ્ઞા પ્રમાણે વર્તવાથી જીવન સફળ થશે.



શતાવધાની મુનિશ્રી જયંતિલાલજી મહારાજશ્રીનો અમદાવાદનો પત્ર "સ્થાનકવાસી જૈન" તા. ૫–૯–૫૭ ના અંકમાં છપાએલ છે જે નીચે મુજબ છે.

સૂત્રોના મૂળ પાઠોમાં ફેરફાર હોઈ શકે ખરો ?

તા. ૭–૮–૫૭ના રોજ અત્રે બિરાજતા શાસ્ત્રોદ્ધારક આચાર્ય મહારાજશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ પાસે, મારા ઉપર આવેલ એક પત્ર લઈને હું ગયો હતો, તે સમયે મારે પૂ. મ. સા. સાથે જે વાતચીત થઈ તે સમાજને જાણ કરવા સારૂ લખું છું.

'શાસ્ત્રોનું કામ એક ગહન વસ્તુ છે. અપ્રમાદી થઇ તેમાં અવિરત પ્રયત્નો કરવા જોઈએ. સંપૂર્ણ શાસ્ત્રોનું જ્ઞાન તેમજ દરેક પ્રકારની ખાસ ભાષાઓનું જ્ઞાન હોય તોજ આગમોદ્ધારકનું કાર્ય સફળતાથી થાય છે. આ પ્રકારનો પ્રયત્ન હાલ અમદાવાદ ખાતે સરસપુર જૈન સ્થાનકમાં બિરાજતા પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ કરી રહ્યા છે. શાસ્ત્ર લેખનનું આ કાર્ય થઈ રહ્યું છે, તેમાં અનેક વ્યક્તિઓને અનેક પ્રકારની શંકાઓ થાય છે તેમાં શાસ્ત્રોના મૂળ પાઠમાં ફેરફાર થાય છે? કરવામાં આવે છે ? એવો પ્રશ્ન પણ કેટલાકને થાય છે અને તેવો પ્રશ્ન થાય ને સ્વાભાવિક છે; કેમકે અમુક મુનિરાજો તરફથી પ્રગટ થયેલ સૂત્રોના મૂળ પાઠમાં ફેરફાર થયેલા છે. જેથી આ કાર્યમાં પણ સમાજને શંકા થાય.

પણ ખરી રીતે જોતાં, અત્યારે જે શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ ચાલી રહ્યું છે તે વિષે સમાજને ખાત્રી આપવામાં આવે છે કે, શાસ્ત્રોધ્ધાર સમિતિ તરફથી અત્યાર સુધીમાં પ્રગટ થયેલાં આગમોના મૂળ પાઠમાં જરાપણ ફેરફાર કરવામાં આવેલ નથી અને ભવિષ્યમાં જે સૂત્રો પ્રગટ થશે તેમાં ફેરફાર થશે નહિ તેની સમાજ નોંધ લ્યે.

લી.

શતાવધાની શ્રી જયંત મુનિ–અમદાવાદ

*

[૨૧]

શ્રી અખિલ ભારત શ્વેતામ્બર સ્થાનકવાસી જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિનો ટુંક પરિચય

સ્થાનકવાસી સમાજની આ એકની એક સંસ્થા છે કે જેણે અત્યાર સુધીમાં તેર સૂત્રો છપાવી બહાર પાડી દીધાં છે. સાત સૂત્રો છપાય છે અને બીજાં કેટલાક છાપવા માટે તૈયાર થઈ ચૂકયા છે.

આ પ્રમાણે આ સંસ્થાએ મહાન્ પ્રગતિ સાધી છે તેનો ટુંક પરિચય આ પત્રિકામાં આપેલ છે તે વાંચી જઇ સર્વ સ્થા. જૈન ભાઇબહેનોએ આ સંસ્થાને યથાશકિત મદદ કરી તેના કાર્યને હજુ વિશેષ વેગવાન બનાવવાની જરૂર છે.

ખાલી ઘડો વાગે ઘણો એમ સ્થા. કોન્ફરન્સ જેમ ખોટાં બણુગાં ફુંકનારી સંસ્થાની કોઈ કિંમત નથી, ત્યારે નક્કર કામ કરનારી આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને દરેક પ્રકારે ઉત્તેજન આપવાની દરેક સ્થાનકવાસી જૈનની અનિવાર્ય ફરજ છે.

અને આ સર્વ સૂત્રો તૈયાર કરનાર પૂજ્ય મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજનો સ્થાનકવાસી સમાજ ઉપર ઘણો મહાન ઉપકાર છે. વયોવૃદ્ધ હોવા છતાં તેઓશ્રી જે મહેનત લઇ સૂત્રો તૈયાર કરાવે છે તેવું કામ હજુ સુધી બીજા કોઈએ કર્યું નથી અને બીજું કોઇ કરી શકશે કે નહિ તે પણ શંકાભર્યું છે. પૂજ્ય મુનિશ્રીના આ મહાન્ ઉપકારનો કિંચિત બદલો સમાજે આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને બની શકતી સહાય કરીને વાળવાનો છે. સ્થાનકવાસી સમાજ જ્ઞાનની કદર કરવામાં પાછો હઠે તેમ નથી એવી અમો આશા રાખીએ છીએ.

"જૈનસિદ્ધાંત પત્ર" ઓકટોમ્બર ૧૯૫૭

*

શાસ્ત્રોની માહીતી

છપાયેલાં શાસ્ત્રોનાં નામ

(૧) શ્રી ઉપાસક દશાંગ સૂત્ર
(૨) ,, દશવૈકાલિક ,, (ભાગ પહેલો અને બીજો)
(૩) ,, વિપાક ,,
(૪) ,, આચારાંગ ,, (ભાગ પહેલો અને બીજો)
(૫) ,, અન્તકૃત દશાંગ ,,
(૬) ,, આવશ્યક ,,
(૭) ,, અનુત્તરોપપાતિક ,,
(૮) ,, દશાશ્રુત સ્કન્ધ
(૯)થી(૧૩) શ્રી નિરયાવલિકા,, (એકથી પાંચ ભાગ)

ઉપાસક દશાંગ અને દશવૈકાલિક ભાગ પહેલો, પહેલી આવૃત્તિ ખલાસ થતાં બીજી આવૃત્તિ પ્રસિદ્ધ કરવામાં આવેલ છે.

તુરતમાં પ્રસિદ્ધ થનારાં શાસ્ત્રોનાં નામ

૧ આચારાંગ સૂત્ર ભાગ ૩ જો
(૧૪) ૨ ઉવવાઇ (ઔપપાતિક) સૂત્ર
(૧૫) ૩ કલ્પ સૂત્ર
૪ આવશ્યક સૂત્ર (બીજી આવૃત્તિ)

પ્રેસમાં છાપવા આપેલાં બીજા સૂત્રોનાં નામ

(૧૬) ૧ નંદી સૂત્ર
૨ આચારાંગ સૂત્ર ભાગ ૧ લો (બીજી આવૃત્તિ)
૩ વિપાક સૂત્ર (બીજી આવૃત્તિ)
૪ અન્તકૃત સૂત્ર (બીજી આવૃત્તિ)

બીજી આવૃતિ છાપવા આપવાનાં સૂત્રોનાં નામ

૧ દશાશ્રુત સ્કન્ધ (બીજી આવૃત્તિ)
૨ અનુતરોપપાતિક (બીજી આવૃત્તિ)

લખેલાં તૈયાર સૂત્રોનાં નામ

(૧૭) ૧ ઉત્તરાધ્યયન સૂત્ર (સંસ્કૃત–હિન્દી–ગુજરાતી તૈયાર)
(૧૮) ૨ જ્ઞાતા ,, (સંસ્કૃત–હિન્દી તૈયાર. સંશોધન તથા ગુજરાતી બાકી)

(૧૯) ૩ સમવાયાંગ સૂત્ર (સંસ્કૃત–હિન્દી તૈયાર. સંશોધન તથા ગુજરાતી બાકી)

(૨૦) ૪ પ્રશ્ન વ્યાકરણ ,, (સંસ્કૃત–હિન્દી તૈયાર. સંશોધન ચાલુ ગુજરાતી બાકી)

(૨૧) ૫ અનુયોગદ્વાર ,, (સંસ્કૃત તૈયાર. હિન્દી અનુવાદ ચાલુ ગુજરાતી બાકી)

(૨૨) ૬ રાયપસેણી ,, (સંસ્કૃત તૈયાર. હિન્દી ગુજરાતી બાકી)

(૨૩) ૭ સ્થાનાંગ ,, (સંસ્કૃત તૈયાર. હિન્દી ગુજરાતી બાકી)

ચાલુ કામ

(૨૪) ૧ જમ્બુદ્વીપ પ્રજ્ઞપ્તિ સૂત્રની સંસ્કૃત ટીકા ચાલુ છે.

(૨૫) ૨ સુયગડાંગ સુત્રની સંસ્કૃત ટીકા ચાલુ છે.

લખવાનાં બાકી શાસ્ત્રોનાં નામ

(૨૬) ૧ ભગવતી સૂત્ર

(૨૭) ૨ જીવાભિગમ ,,

(૨૮) ૩ પ્રજ્ઞાપના ,,

(૨૯) ૪ સુર્યપ્રજ્ઞપ્તિ ,,

(૩૦) ૫ ચંદ્ર પ્રજ્ઞપ્તિ સુત્ર

(૩૧) ૬ વ્યવહાર ,,

(૩૨) ૭ બૃહદ્દકલ્પ ,,

(૩૩) ૮ નીશીથ ,,

બત્રીસ સૂત્રો તથા એક કલ્પસૂત્ર મળી સૂત્રોની સંખ્યા ત્રેત્રીસ થયેલ છે. જે જાણુવા માટે ઉપર ૧ થી ૩૩ ના આંક આપવામાં આવેલ છે.

નોટ—અત્યારે મેમ્બર થનારને તૈયાર શાસ્ત્રો હાલમાં જે સ્ટોકમાં છે તે તુરત મોકલવામાં આવે છે અને પાછળથી બીજાં તૈયાર થયે રવાના કરવામાં આવશે.

*

[૨૪]

શ્રી દશવૈકાલિક તથા ઉપાસક દશાંગ સૂત્રો

ગુજરાતી ભાષામાં અનુવાદ થયેલાં પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ વિરચિત શ્રી ઉપરોકત બે સૂત્રો જૈન ધર્મ પાળતા દરેક ઘરમાં હોવા જ જોઇએ. તે વાંચવાથી શ્રાવક ધર્મ અને શ્રમણ ધર્મના આચારનું જ્ઞાન પ્રાપ્ત થઈ શકે છે અને શ્રાવકો પોતાની નિરવધ અને એષણિય સેવા શ્રમણ પ્રત્યે બજાવી શકે છે. વર્તમાનકાળે શ્રાવકોમાં તે જ્ઞાન નહિ હોવાને લીધે અંધશ્રદ્ધાએ શ્રમણ વર્ગની વૈયાવચ્ચ તો કરી રહેલ છે. પરંતુ ' કલ્પ શું અને અકલ્પ શું ' એનું જ્ઞાન નહિ હોવાને લીધે પોતે સાવદ્ય સેવા અર્પી પોતાના સ્વાર્થને ખાતર શ્રમણ વર્ગને પોતાને સહાયક થવામાં ઘસડી રહ્યા છે અને શ્રમણ વર્ગની પ્રાયઃ કુસેવા કરી રહ્યા છે. તેમાંથી બચી લાભનું કારણ થાય અને શ્રમણને યથાતથ્ય સેવા અર્પી તેમને પણ જ્ઞાનદર્શન ચારિત્રની આરાધના કરવામાં સહા-યક થઈ પોતાના જ્ઞાનદર્શન ચારિત્રની આરાધના કરી સુગતિ મેળવી શકે. શ્રમણની યથાતથ્ય સેવા કરવી તે અવશ્ય ગૃહસ્થની ફરજ છે.

પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મ. શાસ્ત્રોધ્ધારનું અનુવાદન ત્રણ ભાષામાં રૂડી રીતે કરી રહ્યા છે અને રૂપીયા ૨૫૧) ભરી મેમ્બર થનારને રૂા. ૪૦૦–૫૦૦ ની લગભગ કીંમતના બત્રીસે આગમો ફ્રી મળી શકે છે તો તે રૂા. ૨૫૧) ભરી મેમ્બર થઈ બત્રીસે આગમો દરેક શ્રાવક ઘરે મેળવવા જોઈએ. બત્રીસે શાસ્ત્રોના લગભગ ૪૮ પુસ્તકો મળશે. તો તે લાભ પોતાની નિર્જરા માટે પુન્યાનુબંધી પુન્ય માટે જરૂર મેળવે. ઉપરોક્ત બંને સૂત્રોની કીંમત સમિતિ કંઈક ઓછી રાખે તો હરકોઈ ગામમાં શ્રીમંત હોય તે સૂત્રો લાવી અરધી કીંમતે, મફત અથવા પૂરી કીંમતે લેનારની સ્થિતિ જોઈ દરેક ઘરમાં વસાવી શકે.

—એક ગૃહસ્થ

નોંધ–ઉપરની સુચનાને અમે આવકારીએ છીએ. આવાં સૂત્રો દરેક ઘરમાં વસાવવા યોગ્ય તેમજ દરેક શ્રાવકે વાંચવા યોગ્ય છે. **તંત્રી**–

" રત્નજ્યોત " પત્ર

તા. ૧–૧૦–૫૭

